समयसार सिद्धि

भाग-१

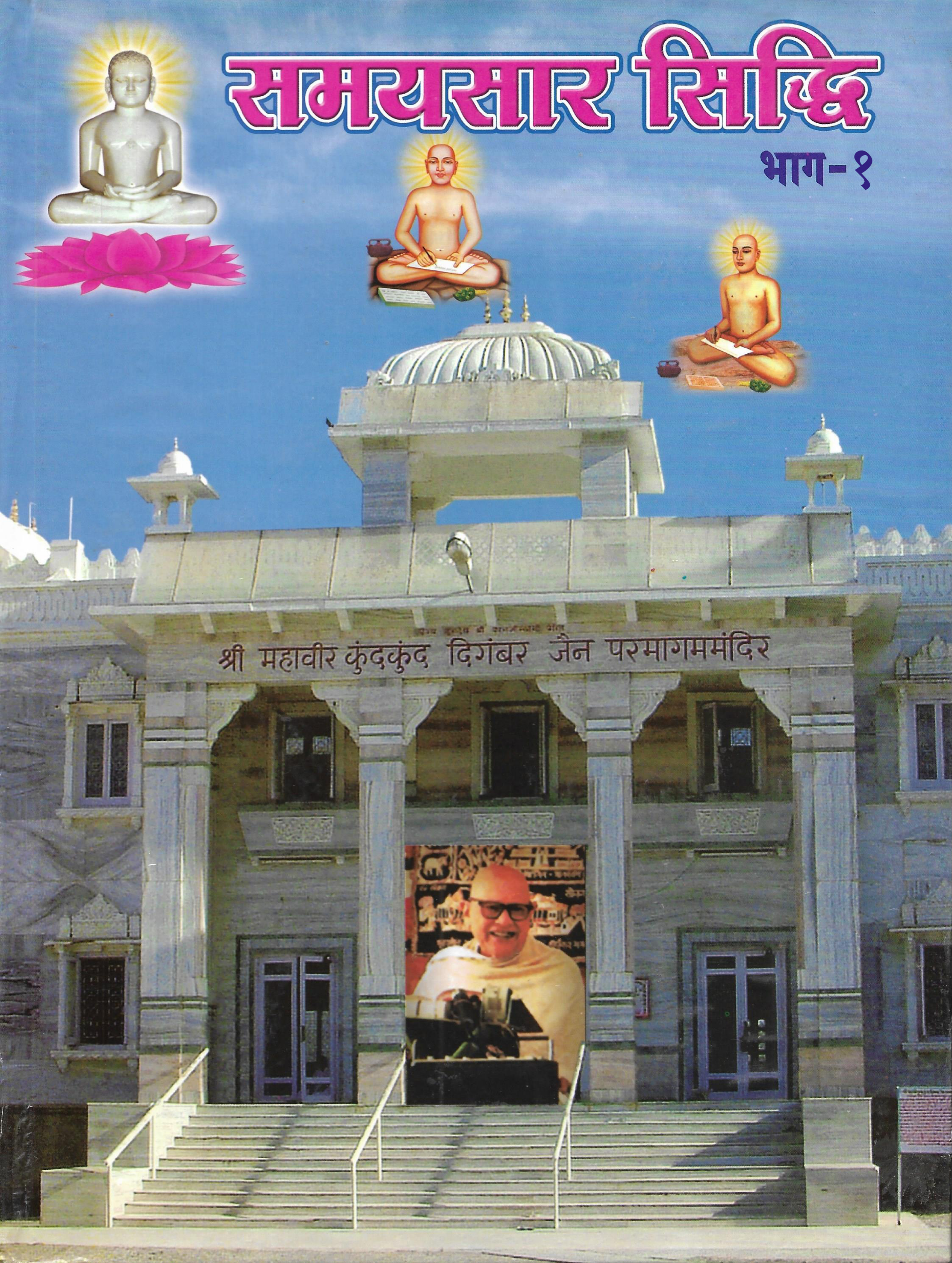

: 302, 'Krishna-Kunj', Plot No.30, Navyug CHS Ltd., V. L. Mehta Marg, Vile Parle(w), Mumbai–400056
Phone No. : (022) 2613 0820. **Website:** www.vitragvani.com **Email:** vitragva@vsnl.com

"Samaysaar Siddhi Part-1" has been published by us & the PDF version of the same has been put on our website www.vitragvani.com

We have taken due care, while preparing the same. However, if you find any typographical error, you may kindly inform us on info@Vitragvani.com

By "Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust"
(Shri Shantilal Ratilal Shah-Parivar, Mumbai)

ॐ

श्री सीमंधरदेवाय नमः
श्री निज शुद्धात्मने नमः

समयसार सिद्धि

भाग-१

अध्यात्मयुगपुरुष
परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के
समयसारजी शास्त्र पर १९ वीं वार के पूर्वरंग अधिकारकी
गाथा १ से १२ और श्लोक १ से ४ पर मंगलमयी प्रवचन

: प्रकाशक और प्राप्ति स्थान :

श्री कुंदकुंद कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
३०२ कृष्ण कुंज, प्लोट नं. ३०, वी. ऐल. महेता मार्ग,
विलेपार्ला (वेस्ट), मुंबई-४०००५६.
फोन (०२२) २६१३०८२०

कहान संवत	वीर संवत	विक्रम संवत	ई. स.
३०	२५३६	२०६६	२०१०

प्रकाशन

पूज्य गुरुदेवश्री की १२१ वीं जन्मजयंती

वैशाख सुदी-२, १५-५-२०१०

प्रथम आवृत्ति – १५०० पडतर किंमत रू. १८०/- मूल्य - रू. २०/-

ISBN : 13978-81-907806-4-3

प्राप्ति स्थान

१. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ (सौराष्ट्र). पीन नं. ३६४२५०, फोन ०२८४६ २४४३३४

२. श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
३०२ कृष्ण कुंज, प्लोट नं. ३०, वी. ऐल. महेता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट),
मुंबई-४०००५६. फोन (०२२) २६१३०८२० Email. vitragva@vsnl.com

३. पूज्य श्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट,
कहान नगर, लाम रोड़, देवलाली-४२२४०१ फोन नं. (०२५३) २४९१०४४

४. पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,
A-४ बापु नगर, जयपुर, राजस्थान-३०२०१५ फोन नं. ०१४१-२७०७४५८

५. श्री आदिनाथ-कुंदकुंद-कहान दिगंबर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन),
अलिगढ-आग्रा रोड, सासणी-२०२००१ (U.P.)

६. श्री परमागम प्रकाशन समीती,
श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागीर, जी :- दतिया (M.P.)

७. श्री सीमंधर कुन्द-कुन्द कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट,
योगी निकेतन प्लोट 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड, राजकोट-३६०००७.
फोन नं. (०२८१) २४७७७२८ मो. ०९३७४१००५०८

लेसर टाईप सेटिंग	मुद्रक	जेकेट अने मल्टीकलर फोटा
पूजा इम्प्रेशन्स	**शार्प ऑफसेट प्रिन्टर्स**	**डोट ऐड**
प्लोट नं. १९२४/बी ६, शांतिनाथ बंगलोझ, शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी सर्कल पासे, भावनगर-३६४००१ मो. ९७२५२५११३१	३१२, हिरापन्ना कोम्प्लेक्ष, डॉ. याज्ञिक रोड, राजकोट-३६०००१ मो. ९८२५०७५०६१	२३४, राज चेम्बर्स, मालविया पेट्रोल पंप सामे, गोंडल रोड, राडकोट फोन नं. (०२८१) ६६२६०७३

प्रकाशकीय

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर एवं अनेक दिगम्बर सन्तों तथा ज्ञानी गृहस्थ विद्वानों द्वारा रचित जिनागम का रहस्योद्‌घाटन करने वाले आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की भवताप नाशक मंगलवाणी न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए अपितु पंचमकाल के अन्ततक होने वाली आगामी पीढ़ी के लिए वरदान है।

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट मुम्बई, पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को जन-जन तक पहुँचाने के लिए कृत संकल्पित है। एतदर्थ उनके प्रवचनों का सी.डी./ ग्रन्थाकाररूप में प्रकाशन तथा वितरण आदि अनेक गतिविधियाँ इस ट्रस्ट द्वारा संचालित की जा रही हैं।

पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों को सी.डी. के माध्यम से सुनते समय उनके शब्दशः प्रकाशित प्रवचनों को सामने रखकर पढ़ने से प्रवचनों को सुनने-समझने का लाभ कई गुना बढ़ जाता है। अनेक स्थानों पर इस पद्धति से प्रवचन सुननेवाले अनेक स्थानों के अनेक श्रोताओं ने इस पद्धति को बहुत सराहा है।

श्रोताओं को पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों का लाभ और अधिक गहराई से प्राप्त हो रहा है - इस तथ्य से प्रोत्साहित होकर हमारे ट्रस्ट ने इस पद्धति को `पढ़िये-सुनिये योजना` का रूप देकर हिन्दीभाषी क्षेत्र में विशेषरूप से प्रचालित करने का संकल्प किया है।

एतदर्थ पूज्य गुरुदेवश्री के गुजराती में शब्दशः प्रकाशित प्रवचनों को हिन्दी में प्रकाशित करने का निर्णय किया गया है। समयसार सिद्धि के प्रथम भाग का हिन्दी अनुवाद पण्डित रमेशचन्दजी मंगल सोनगढ़ द्वारा किया गया है। इस अनुवाद को सी.डी. द्वारा सुनकर और पुनः जाँचकर व्यवस्थित करने में, आवश्यक संकेत चिन्ह लगाने में पण्डित अभयकुमारजी ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। एतदर्थ हम उक्त दोनों विद्वानों के विशेष आभारी हैं।

टाईप सेटिंग श्री नीलेशभाई, पूजा इम्प्रेशन्स, भावनगर एवं मुद्रण कार्य श्री धर्मेशभाई शाह, शार्प ऑफसेट प्रीन्टर्स द्वारा किया गया है एतदर्थ ये दोनों महानुभाव भी धन्यवाद के पात्र हैं।

पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों को जन-जन तक पहुँचाने हेतु पढ़िये-सुनिये योजना के साथ-साथ ट्रस्ट द्वारा तत्त्व प्रचार हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ भी संचालित की जा रही है जो निम्नलिखित हैं।

१. सोनगढ़ में श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन विद्यार्थी गृह का संचालन।
२. आत्मार्थी बन्धुओं को शिक्षा एवं चिकित्सा हेतु सहायता प्रदान करना।

३. मुमुक्षु समाज में निर्मित होने वाले जिन मन्दिरों एवं स्वाध्याय भवनों के निर्माण हेतु सहायता प्रदान करना।

४. मुमुक्षु मण्डलों द्वारा संचालित जिन मन्दिरों के पुजारियों को स्वास्थ्य बीमा योजना की सुविधा उपलब्ध कराना।

५. विद्वानों में परस्पर तत्त्व-चर्चा एवं वात्सल्य वृद्धि हेतु विद्वत् गोष्ठियों का आयोजन करना।

६. तीर्थ क्षेत्रों के जीर्णोद्धार हेतु सहयोग।

७. साहित्य प्रकाशन।

८. आध्यात्मिक शिक्षण शिविरों एवं बाल शिविरों आर्थिक सहयोग।

आशा है अधिक से अधिक हिन्दी भाषी मुमुक्षु इस प्रकाशन के माध्यम से पूज्य गुरुदेवश्री की स्वानुभव प्रेरक वाणी का मर्म समझकर स्वानुभूति के सम्यक् पुरुषार्थ में सफल होंगे।

भवदीय

अनन्तराय ए. शेठ

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
संक्षिप्त जीवन परिचय

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के पश्चात हुए तीन केवली और पाँच श्रुतकेवलियों एवं अनेक आचार्य भगवन्तों के माध्यम से इस पंचमकाल में भी भवताप-नाशक परम पवित्र जैन-शासन का प्रवाह प्रवर्तमान है। निर्ग्रन्थ सन्तों के अलावा अनेक ज्ञानी गृहस्थों ने भी जिनागम का गहन अवगाहन करके, उनका मर्म खोलने वाले शास्त्रों की रचना करके जिनशासन-प्रभावना में अमूल्य योगदान दिया है। इनमें पाण्डे राजमलजी, कविवर बनारसीदासजी, पण्डित टोडरमलजी, पण्डित दीपचन्दजी कासलीवाल, पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा, पण्डित दौलतरामजी आदि अनेक विद्वान उल्लेखनीय हैं।

विगत अनेक सदियों से जैन-अध्यात्म की परम्परा प्रायः विलुप्त हो रही थी, जिसे पुनः बल प्रदान हेतु सौराष्ट्र में रविवार २१ अप्रैल १८९० को भारत के आध्यात्मिक क्षितिज पर एक सूर्य उदित हुआ, जिसे आज `कानजी स्वामी` के नाम से जाना जाता है।

जन्म एवं बाल्यकाल :- पूज्य गुरुदेव का जन्म भारतवर्ष के गुजरात प्रान्त के भावनगर जिले में उनके मामा के गाँव उमराला में हुआ था। उनके पिता मोतीचन्दभाई दशाश्रीमाली जाति के थे। उनकी माता का नाम उजमबा था। बचपन में गुरुदेव का नाम कहान रखा गया परन्तु उनके गोरे और कोमल शरीर के कारण उनके साथी उन्हे मढम और पुई कहकर भी बुलाते थे।

उनकी प्राथमिक शिक्षा उमराला गाँव के ही स्कूल में प्रारम्भ हुई थी। उस समय वहाँ धूल में ही लिखकर पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था, अतः उस स्कूल को धूलि-निशाल कहा जाता था। उनकी शिक्षा का प्रारम्भ `सिद्धो वर्णसमाम्नायः` अर्थात् `वर्णो की परम्परा अनादि सिद्ध है` - इस वाक्य से प्रारम्भ हुई थी।

उनकी तीक्ष्ण बुद्धि के लक्षण बचपन से ही प्रगट होने लगे थे। कक्षा में सदैव प्रथम नम्बर में आने पर भी उनका मन लौकिक पढ़ाई में नही लगता था। उनकी रुचि धार्मिक पढ़ाई में अधिक थी। एक बार जब उनके अध्यापक ने उनसे कहा कि कानजी धार्मिक पढ़ाई के बदले रेखागणित में अधिक ध्यान दिया करो, तब उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे लिए तो धार्मिक पढ़ाई ही महत्त्वपूर्ण

है। इस घटना से सहज अनुमान लगाया जा सकता था कि यह बालक भविष्य में धर्मध्वज फहरानेवाला आध्यात्मिक सन्त होगा। तेरह वर्ष की उम्र में छठवीं कक्षा की पढ़ाई पूरी करके उन्होंने लौकिक पढ़ाई छोड़ दी।

सत्य-निष्ठा :- सन् १९०३ में व्यवसाय के लिए वे अपने पिता के साथ पालेज आ गए और अपनी बुआ के पुत्र कुँवरजी भाई के साथ दुकान पर बैठने लगे। एक बार एक पुलिसवाला दीवाली का इनाम लेने उनकी दुकान पर आया। वह आठ आने के बदले एक रूपया माँगता था, परन्तु `कानजी` ने अधिक पैसा देने से मना कर दिया और वह नाराज होकर चला गया। लेकिन उसने बदला लेने के लिए उनके ऊपर दुकान पर अफीम रखने का झूठा मुकदमा लगा दिया। इसके लिए उन्हें गवाही देने बड़ौदा की अदालत में जाना पड़ा। उनकी निडरता और निर्दोषता देखकर न्यायाधीश ने उन्हें कठघरे में खड़ा होने के बजाय बाहर खड़े रहकर ही उनका बयान लिया। उन्होंने ३ घन्टे तक सभी प्रश्नों के उत्तर निर्भीकता एवं प्रामाणिकता से दिए, जिससे न्यायाधीश बहुत प्रभावित हुए। बाद में न्यायाधीश खुद पालेज आए और उन्होंने अपने फैसले में `कानजी` को निर्दोष घोषित किया और पुलिस को दोषी ठहराते हुए उससे मुकदमें का खर्चा वसूल करने की इजाजत दी, परन्तु करुणावन्त `कानजी` ने पुलिस से खर्चा लेने से मना कर दिया।

इसी प्रकार एक बार वे अपने भागीदार के साथ दुकान का माल खरीदने मुम्बई गए। माल का वजन अधिक होने पर उन्होंने उसका वजन कराकर रसीद बनवाने को कहा। भागीदार ने कहा कि इसकी कोई जरूरत नहीं है, स्टेशन मास्टर अपनी पहचान का है, तो `कानजी` तुरन्त बोले नहीं हमको खोटा काम नहीं करना। उक्त दोनो घटनाएँ उनकी सत्यनिष्ठा, निर्भीकता, निर्दोषता आदि गुणों का परिचय देती है।

वैराग्य - प्रकृति :- बालक कहान जन्म से ही वैरागी प्रकृति के तो थे ही परन्तु सन् १९०० में १० वर्ष की उम्र में भयंकर अकाल पड़ने पर एक पशु को तड़प-तड़पकर मरते हुए देखकर, उनके कोमल हृदय में संसार के प्रति वैराग्य की लहर प्रबल हो उठी।

सन् १९०७ में पालेज में रामलीला देखकर उनका हृदय वैराग्य रस से भीग उठा तथा पूर्व संस्कारवश उनके रोम-रोम में गूँज उठा `शिवरमणी रमनार तू तुही देव का देव` ...इस गीत की १२ पंक्तियों की रचना हो

गई। इसी प्रकार सन् १९०८ में उन्होंने बड़ौदा में सती अनुसूया नाटक देखा, जिसमें वह अपने पुत्र को झुलाते हुए लोरी सुनाती है- `बेटा तू शुद्ध है, बुद्ध है, निर्विकल्प है, उदासीन है`। यह सुनकर मानो उसके वैराग्य झरने को ढ़ाल मिल गई और मैं स्वयं शुद्ध-बुद्ध हूँ - ऐसा कुछ भासित होने लगा।

व्यापार में उदासीन प्रवृत्ति :- पालेज में दुकान करते हुए भी उन्हें व्यापार में रस नहीं आता था। दुकान के काम से समय मिलते ही वे स्वाध्याय करने लगते थे। उनकी उदासीन वृत्ति देखकर लोग उन्हें भगत कहने लगे। संसार से उदासीन वृत्ति के कारण उन्होंने विवाह करने से मना कर दिया और दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

दीक्षा के समय भविष्य की घटना का संकेत :- सन् १९१४ में उन्होंने बोटाद सम्प्रदाय के साधु हीराचन्दजी महाराज से दीक्षा लेने का निर्णय किया दीक्षा-विधि के दिन हाथी पर बैठते समय उनकी धोती नसैनी में फँस कर फट गई। इस घटना से उनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया कि कहीं कुछ गलत तो नहीं हो रहा है ? क्या वस्त्रसहित मुनिपना सच्चा मुनिपना है.....?

सत्य की अपूर्व जिज्ञासा :- दीक्षा लेने के पश्चात् उन्होंने श्वेताम्बर शास्त्रों का गहन स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया, परन्तु उनमें प्रतिपादित सिद्धान्त उन्हें सत्य नहीं लगते थे। साम्प्रदायिक नियमों का पालन करने पर भी उन्हें संतोष नहीं होता था। एक बार पात्र रंगते समय वे बोले कि `स्वाध्याय छोड़कर यह सब क्यों करना पड़ता है ?` यह सुनकर उनके गुरु ने कहा `तो फिर पात्ररहित गुरु खोज लो` उस समय कौन जानता था कि ये कानजी महाराज पात्ररहित कुन्दकुन्दाचार्य का मार्ग शोध लेगे। यद्यपि उस समय उन्हें सत्य मिला नहीं था, परन्तु असत्य सहन भी नहीं होता था; अतः उन्होंने स्वयं अन्तर्शोधन करके सत्य जानने का निर्णय किया। दिगम्बर शास्त्र मिलने के पहले ही पूर्व संस्कारवश उनके ज्ञान में सर्वज्ञकथित अनेक न्याय (सिद्धान्त) भासित होने लगे तथा वे अपने प्रवचनों में डंके की चोट उनकी घोषणा करने लगे। उनमें से कुछ प्रसंग निम्नलिखित हैं :-

१. कर्म, जीव को विकार नहीं कराते; जीव स्वयं अपने विपरीत पुरुषार्थ से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है और स्वयं के सम्यक्पुरुषार्थ से ही उसे दूर करता है।

२. सन् १९१६ में एक बार उनके गुरुभाई ने यह कहना शुरु किया

कि- `केवली ने जैसा देखा होगा वैसा ही होगा, उसमें हम क्या कर सकते हैं ? केवली ने देखा होगा तो हमारा पुरुषार्थ होगा` वे कुछ दिन यह बात सुनते रहे, परन्तु एक दिन वे बोले `केवली ने जैसा देखा होगा वैसा ही होगा, यह बात तो सही है, परन्तु जगत् में केवलज्ञान है - ऐसी प्रतीति किसे होती है ? जिसे ज्ञानस्वभावी आत्मा की दृष्टि हुई उसे ही केवलज्ञान की प्रतीति होती है। और जिसे अन्तर में केवलज्ञान का स्वरूप भासित हुआ, भगवान ने उसके भव देखे ही नहीं।`

३. सन् १९२० में दामनगर में उनके सामने चर्चा आई कि `जब तक मिथ्यात्व है, तभी तक मूर्तिपूजा हो सकती है, सम्यक्त्व होने के बाद मूर्तिपूजा नहीं होती` तब उन्होंने कहा कि `सम्यग्दृष्टि को ही सच्ची मूर्तिपूजा होती है मिथ्यादृष्टि को नहीं, क्योंकि मूर्ति `स्थापना` निक्षेप है और जिसे नय होते हैं, उसे ही निक्षेप लागू पड़ता है। नय सम्यक् श्रुतज्ञानी को ही होते हैं, मिथ्यादृष्टि को नहीं; अतः सच्ची मूर्तिपूजा सम्यग्दृष्टि को ही होती है।`

४. एक बार किसी ने उनसे कहा - `विकार होने में ४९% कर्म का और ५१% जीव के पुरुषार्थ का योगदान मानो` तब वे बोले `नहीं ! विकार होने में कर्म का एक प्रतिशत भी योगदान नहीं है। जीव का १००% परिणमन, जीव में है और कर्म का १००% परिणमन कर्म में है।`

समयसार ग्रन्थ की प्राप्ति :- वे जिस सत्य की खोज कर रहे थे, वह मिलता नहीं था और मन में उठने वाली शंकाओं का समाधान होता नहीं था, इसलिए उनकी बेचैनी बढ़ती जाती थी। `जहाँ चाह है वहाँ राह है,` इस उक्ति के अनुसार सन् १९२२ में दामनगर के दामोदर सेठ ने उन्हें श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित समयसार ग्रन्थराज भेंट दिया, जिसे देखते ही उनके हृदय से उद्गार निकल पड़े - `सेठ ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है। ` समयसार ग्रन्थ का स्वाध्याय करने पर उन्हें जो चाहिए था वह मिल गया। अब वे समयसार की एक-एक पंक्ति से छलकते हुए अमृतरस का पान करने हेतु सुबह आहार लेकर गाँव के बाहर एक गहरे गड्ढे में बैठकर उसका स्वाध्याय करने लगे। एक कुशल जौहरी की भाँति उनके नेत्रों ने समयसार में छिपे रत्नों को परख लिया। पर्यायों के क्रमबद्ध परिणमन की व्यवस्था अन्तर में भासित होने लगी।

ॐकारनाद :- सन् १९२२ में वीछिया गाँव में एक बार अन्तर से ॐ

कार ध्वनि आई और ऐसा लगा कि मानो साढ़े बारह करोड़ वाद्य एक साथ बज रहे हों। मन में प्रश्न उठा कि सम्प्रदाय में तो ॐकार की मान्यता नहीं है फिर यह ध्वनि क्यों आ रही है ?

इस घटना के बाद उन्हें अनेक दिगम्बर शास्त्र मिले और वे प्रत्येक ग्रन्थ का गहन अभ्यास करने लगे और उनके प्रवचनों में अनेक सैद्धान्तिक रहस्यों का उद्घाटन होने लगा। सन् १९२६ में उन्हें आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल विरचित मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ प्राप्त हुआ, जिसने उनके तत्त्वचिन्तन को सही दिशा प्रदान की। इसके सातवाँ अधिकार की हस्तलिखित प्रति वे सदा अपने पास रखते थे।

सम्प्रदाय परिवर्तन :- अब उनके हृदय में दिगम्बर धर्म की सत्यता की श्रद्धा निरन्तर बलवती होने लगी और मिथ्या सम्प्रदाय का साधुवेश असह्य होने लगा। आखिर सिंह पिंजरे में से बाहर आने के लिए तड़प उठा और उन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदाय छोड़कर दिगम्बर धर्म स्वीकार करने का निर्णय कर लिया।

लो रोको तूफान चला रे :- उनके इस निर्णय की जानकारी समाज में होते ही खलबली मच गई। समाज में सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त होने से वे उस सम्प्रदाय के कोहिनूर हीरा कहे जाते थे; अतः समाज में उनके इस निर्णय का तीव्र विरोध होने लगा। उन्हें अनेक प्रलोभन और धमकियाँ भी दी गईं, परन्तु वे अपने निर्णय पर मेरूवत् अचल रहे।

उनसे यह निवेदन भी किया गया कि भले आप दिगम्बर शास्त्रों पर प्रवचन करें लेकिन सम्प्रदाय न छोडें, परन्तु उन्हें इस बात का दृढ़ निर्णय हो गया था कि निर्ग्रन्थ दशा में ही सच्चा मुनिपना सम्भव है; अतः उन्हें मिथ्या वेश सहन नहीं हुआ और सन् १९३५ में महावीर जयन्ती के पावन दिवस पर गुजरात प्रान्त के पालीताना शहर के समीप स्थित सिद्धक्षेत्र शत्रुंजय के समीपवर्ती गाँव सोनगढ़ के एक सूने मकान में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चित्र के समक्ष उन्होंने स्थानकवासी साधु का चिह्न मुहपट्टी छोड़कर स्वतः ही स्वयं को अव्रती दिगम्बर श्रावक घोषित कर दिया।

वहाँ वे `स्टॉर ऑफ इंडिया` के नाम से जाने गए उस मकान में ही स्वाध्याय तथा चिन्तन-मनन आदि में समय बिताने लगे। धीरे-धीरे लोग जिज्ञासावश उनके पास आने लगे कि अब कानजी महाराज क्या कर रहे हैं ? वही

उनके द्वारा समयसार का मर्म सुनकर लोग उनसे प्रभावित होने लगे।

जब श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी तो `श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट` की स्थापना की गई और एक स्वाध्याय मन्दिर बनाने का निर्णय किया गया, लेकिन तब स्वामीजी बोले कि भले आप स्वाध्याय मन्दिर बनाओ, परन्तु हम उसमें रहने के लिए बाध्य नहीं है। यदि हमारी विशुद्धि बढ़ जाएगी तो हम चले जाएँगे। अहो ! धन्य है उनके वैराग्य और निस्पृह व्यक्तित्व को। उनकी अव्रती श्रावक की भूमिका विश्व के लाखों आत्मार्थी जीवों के लिए वरदान बन गई और वे उसी भवन में निवास करते हुए प्रतिदिन सुबह और दोपहर को एक-एक घन्टे तथा रात्रि में ४५ मिनिट शंका-समाधान के माध्यम से जिनागम का रहस्योद्घाटन करने लगे। प्रातः तत्त्व-चिन्तन, जिनेन्द्र दर्शन और दोपहर में व्यक्तिगत स्वाध्याय आदि तो होता ही था।

यह क्रम निरन्तर ४५ वर्षों तक चलता रहा। इस अवधि में उन्होंने सभा में समयसार ग्रन्थ की एक-एक पंक्ति पर १९ बार प्रवचन किये। व्यक्तिगत रूप से तो समयसार का स्वाध्याय सैकड़ों बार किया। समयसार के साथ-साथ प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा अन्य सैकड़ों दिगम्बर शास्त्रों पर उनके प्रवचन हुए जो आज भी सी.डी. में सुरक्षित हैं।

अभूतपूर्व शासन प्रभावना :- आज सोनगढ़ सारे विश्व के अध्यात्म-रसिक समाज के लिए महातीर्थ बन गया। सैकड़ों लोग वहाँ अपने आवास बनाकर स्थायीरूप से रहने लगे। धीरे-धीरे जिनमन्दिर, समवशरण, मानस्तम्भ, कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप, कुन्दकुन्द परमागम मन्दिर, नन्दीश्वर जिनालय आदि जिनायतनों से स्वर्णपुरी सुशोभित हो उठी।

उनके सातिशय प्रभावना योग में सौराष्ट्र के अनेक गाँवों में दिगम्बर जिन-मन्दिरों का निर्माण हुआ। उनके पवित्र कर-कमलों से कुल ३३ पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाएँ और इतने ही वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुए हैं।

सोनगढ़ में प्रतिवर्ष दो बार लगने वाले शिक्षण शिविरों ने तो उनकी आध्यात्मिक क्रान्ति को तूफानी गति प्रदान की। आज भी इसी परम्परा में देश भर में सैकड़ों स्थानों पर शिक्षण शिविरों का आयोजन हो रहा है।

उनकी वाणी को मुमुक्षु पाठकों तक पहुँचाने के लिए सद्गुरु प्रवचन प्रसाद एवं आत्मधर्म मासिक पत्रिका प्रारम्भ हुई। आत्मधर्म के माध्यम से ही

श्री निहालचन्दजी सोगानी जैसे सैकड़ों महानुभावों ने सोनगढ़ आकर पूज्य गुरुदेव का प्रत्यक्ष समागम प्राप्त किया।

सन् १९५७ और १९६७ में विशाल संघ सहित तीर्थधाम सम्मेदशिखर आदि तीर्थों की यात्रा तथा १९५९ और १९६४ में दक्षिण भारत की यात्रा से अखिल भारतीय दिगम्बर जैन समाज भी उनसे अच्छी तरह परिचित हो गया।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ द्वारा गुजराती और हिन्दी में लाखों दिगम्बर जैन शास्त्रों का प्रकाशन हुआ, जिससे समाज में स्वाध्याय की परम्परा को विशेष बल मिला। प्रवचन सुनते समय प्रत्येक श्रोता के सामने ग्रन्थ रखने की परम्परा स्थापित करके पूज्य गुरुदेव ने स्वाध्याय की परम्परा में प्राण फूँक दिए।

आत्म-साधना के लिए अनेक आत्मार्थी भाई-बहिन आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार करके सोनगढ़ में निवास करने लगे। एतदर्थ श्री गोगीदेवी गंगवाल दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम की स्थापना की गई, जिसमें कुल ६४ बहिनें निवास करने लगी। इन सब बहिनों की प्रेरणास्रोत एवं मार्गदर्शक प्रशममूर्ति पूज्य चम्पाबहिन एवं शान्ताबहिन थीं। ये दोनों बहिनें प्रचुर अध्यात्म रसिक और गहन शास्त्राभ्यासी थीं। इनकी मंगल छत्रछाया में सभी बहिने आत्म-कल्याण हेतु उद्यमवन्त रहती थीं। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट के संस्थापक अध्यक्ष श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी, पण्डित खीमचन्दभाई जेठालाल शेठ, पण्डित हिम्मतलाल जेठालाल शाह, ब्र. चन्दूभाई आदि अनेक आत्मार्थी भाई उनकी सभा के मुख्य श्रोता थे।

इनके अतिरिक्त पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री बनारस, पण्डित कैलाशचन्दजी सिद्धान्ताचार्य बनारस, पण्डित जग-मोहनलालजी शास्त्री कटनी, पण्डित बंशीधरजी इन्दौर, पण्डित नेमीचन्दजी पाटनी आगरा आदि अनेक दिगम्बर विद्वान् भी पूज्य गुरुदेवश्री की अध्यात्म धारा से प्रभावित हुए। बाबू जुगलकिशोरजी `युगल` कोटा, पण्डित बाबूभाई महेता फतेपुर डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल जयपुर, पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा आदि सैकड़ों विद्वानों के माध्यम से पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित तत्त्वज्ञान देशभर में पहुँचने लगा।

देशव्यापी प्रचार-प्रसार :- जिनवाणी के प्रचार-प्रसार हेतु जयपुर में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की स्थापना हुई, जहाँ अनेक गतिविधियों के साथ-साथ श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट द्वारा संचालित श्री

टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय का शुभारम्भ हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री अपनी स्वानुभूति की निर्मल परिणति में स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द रस का पान करते रहे और अपनी धीर, गंभीर, सिंह-गर्जना द्वारा जिनागम के रहस्यों का उद्‌घाटन करते रहे। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता, जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति बँधती है, वह भी बन्ध का कारण है। द्रव्य-दृष्टि से सभी जीव भगवान है और इसी के आश्रय से वर्तमान पर्याय में भी भगवान बन सकते हैं। प्रत्येक पर्याय अपनी स्वतन्त्र योग्यता से अपने स्वकाल में सहज होती है, उसे कोई नहीं रोक सकता। सम्यग्दर्शन के बिना चाहे जितना क्रियाकाण्ड या शास्त्रज्ञान हो, उससे धर्म नहीं होता... आदि अनेक सिद्धान्तों को गुरुदेवश्री ने लाखों पात्र जीवों की श्रद्धा-ज्ञान में प्रतिष्ठित कर दिया। सचमुच वे जिनशासन के सूर्य बनकर चमकते रहे।

अन्तिम यात्रा :- नियति के अटल नियम के अनुसार उनकी देह भी क्रमशः क्षीणता को प्राप्त हुई और वे २८ नवम्बर, १९८० को अपनी भवान्तक यात्रा के अगले पड़ाव के लिए प्रस्थान कर गए।

यद्यपि आज वे भौतिकरूप से हमारे बीच विद्यमान नहीं है तथापि ९००० घण्टों के प्रवचनों और हजारों पृष्ठों में अंकित उनकी वाणी `अहो दिगम्बर सन्तों ने गजब काम किया है`... `भगवान आत्मा` आनन्द का कन्द, अनन्त गुणों का पिण्ड ध्रुव अखण्ड वस्तु है ....आदि वाक्यों के रूप में हमारे कानों में गूँजती है।

आगामी पीढ़ी के लिए भी पूज्य गुरुदेवश्री अभूतपूर्व प्रभावना योग छोड़ गए। उनके पश्चात् भी पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, पूज्य श्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली, तीर्थधाम मंगलायतन, चैतन्य धाम, तीर्थधाम सिद्धायतन द्रोणगिरि, आत्मार्थी ट्रस्ट दिल्ली, परमागम ट्रस्ट सोनागिर, मुमुक्षु आश्रम कोटा, श्री महावीर विद्या निकेतन नागपुर, नन्दीश्वर विद्यापीठ खनियाधाना, रत्नत्रय तीर्थ ध्रुवधाम बाँसवाडा, सिद्धक्षेत्र गजपन्था आधि संस्थाओं के माध्यम से उनकी भवतापनाशक वाणी का प्रवाह पञ्चमकाल के अन्त तक अक्षुण्ण रहेगा।

-अभयकुमारजी, देवलाली

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	तारीख	गाथा / श्लोक नं.	पेईज नं.
१	०७-०६-७८	श्लोक - १	००३
२	०८-०६-७८	श्लोक - १, २	०१५
३	०९-०६-७८	श्लोक - २	०२८
४	१०-०६-७८	श्लोक - ३	०४१
५	११-०६-७८	गाथा - १	०५५
६	१२-०६-७८	गाथा - १	०७०
७	१३-०६-७८	गाथा - १	०८२
८	१५-०६-७८	गाथा - १, २	०९४
९	१६-०६-७८	गाथा - २	१०९
१०	१७-०६-७८	गाथा - २	१२०
११	१८-०६-७८	गाथा - २	१३३
१२	१९-०६-७८	गाथा - २	१४७
१३	२१-०६-७८	गाथा - ३	१६०
१४	२२-०६-७८	गाथा - ३	१७२
१५	२३-०६-७८	गाथा - ३, ४	१८३
१६	२४-०६-७८	गाथा - ४	१९७
१७	२५-०६-७८	गाथा - ४	२०८
१८	२६-०६-७८	गाथा - ४, ५	२१९
१९	२७-०६-७८	गाथा - ५	२३२
२०	२९-०६-७८	गाथा - ५, ६	२४२
२१	३०-०६-७८	गाथा - ६	२५६
२२	०१-०७-७८	गाथा - ६	२६९
२३	०२-०७-७८	गाथा - ६	२८२
२४	०३-०७-७८	गाथा - ६	२९४

२५	०४-०७-७८	गाथा - ६	३०६
२६	०६-०७-७८	गाथा - ६	३२२
२७	०७-०७-७८	गाथा - ७	३३४
२८	०८-०७-७८	गाथा - ७	३४७
२९	०९-०७-७८	गाथा - ७	३५९
३०	१०-०७-७८	गाथा - ८	३७५
३१	११-०७-७८	गाथा - ८	३८८
३२	१२-०७-७८	गाथा - ८	४०१
३३	१४-०७-७८	गाथा - ९, १०	४१५
३४	१५-०७-७८	गाथा - ९, १०	४२७
३५	१६-०७-७८	गाथा - ९, १०	४३९
३६	१७-०७-७८	गाथा - १०, ११	४५२
३७	१८-०७-७८	गाथा - ११	४६८
३८	१९-०७-७८	गाथा - ११	४८१
३९	२१-०७-७८	गाथा - ११	४९५
४०	२२-०७-७८	गाथा - ११	५०७
४१	२३-०७-७८	गाथा - ११	५१९
४२	२४-०७-७८	गाथा - ११	५३३
४३	२५-०७-७८	गाथा - ११	५४७
४४	२६-०७-७८	गाथा - ११	५६०
४५	२८-०७-७८	गाथा - ११, १२	५७४
४६	२९-०७-७८	गाथा - १२	५९०
४७	३०-०७-७८	गाथा - १२	६०४
४८	३१-०७-७८	गाथा - १२	६१८
४९	०१-०८-७८	गाथा - १२	६३१
५०	०२-०८-७८	श्लोक - ४	६४४
५१	०४-०८-७८	श्लोक - ४	६५७
५२	०५-०८-७८	श्लोक - ४	६६९

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तण भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति।

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो ! गुरु क्हान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो ! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना !
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने क्षप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिदघन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति ! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी !

ॐ

परमात्मने नमः।

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित

श्री

समयसार

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिकृता आत्मख्यातिः।

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत मूल गाथाओं और श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि कृत आत्मख्याति नामक टीका का हिन्दी अनुवाद / पंडित जयचन्द्रजी छाबडा कृत वचनिका

पूर्वरंग

श्री परमातमको प्रणमि, शारद सुगुरु मनाय।
समयसार शासन करूं देशवचनमय भाय।।१।।
शब्दब्रह्मपरब्रह्मकैं वाचकवाच्यनियोग।
मंगलरूप प्रसिद्ध ह्वै, नमों धर्मधनभोग।।२।।
नय नय लहइ सार शुभवार, पय पय दहइ मार दुखकार।
लय लय गहइ पार भवधार, जय जय समयसार अविकार।।३।।
शब्द अर्थ अरु ज्ञान समय त्रय आगम गाये,
मत सिद्धांत रु काल भेदत्रय नाम बताये।
इनहिं आदि शुभ अर्थसमयवचके सुनिये बहु
अर्थसमयमें जीव नाम है सार सुनहु सहु।
तातैं जु सार बिन कर्ममल शुद्ध जीव शुद्ध नय कहै।
इस ग्रन्थ माँहिं कथनी सबै समयसार बुधजन गहै।।४।।
नामादिक छह ग्रन्थमुख, तामें मंगल सार।
विघन हरन नास्तिक हरन, शिष्टाचार उचार।।५।।

समयसार जिनराज है, स्याद्वाद जिनवैन।
मुद्रा जिन निरग्रंथता, नमूं करै सब चैन।।६।।

इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबद्ध समयप्राभृत ग्रंथ की श्री अमृतचन्द्र आचार्यकृत आत्मख्याति नामकी जो संस्कृत टीका है उसे देशभाषा में वचनिका लिख रहे है।

प्रथम, संस्कृत टीकाकार श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव ग्रन्थ के प्रारंभ में मंगल के लिये इष्टदेव को नमस्कार करते हैं :-

(अनुष्टुभ)

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।।१।।

श्लोकार्थ :- [नमः समयसाराय] `समय' अर्थात् जीव नामक पदार्थ, उसमें सार जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित शुद्ध आत्मा - उसे मेरा नमस्कार हो। वह कैसा है ? [भावाय] शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु है। इस विशेषणपद से सर्वथा अभाववादी नास्तिकोंका मत खंडित हो गया और वह कैसा है ? [चित्स्वभावाय] जिसका स्वभाव चेतनागुणरूप है। इस विशेषण से गुण-गुणी का सर्वथा भेद माननेवाले नैयायिकों का निषेध हो गया और वह कैसा है ? [स्वानुभूत्या चकासते] अपनी ही अनुभवनरूप क्रिया से प्रकाश करता है, अर्थात् अपने को अपने से ही जानता है - प्रगट करता है। इस विशेषण से, आत्मा को तथा ज्ञान को सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले जैमिनीय-भट्ट-प्रभाकर के भेदवाले मीमांसकों के मत का खण्डन हो गया। तथा ज्ञान अन्य ज्ञान से जाना जा सकता है - स्वयं अपने को नहीं जानता- ऐसा माननेवाले नैयायिकों का भी प्रतिषेध हो गया और वह कैसा है ? [सर्वभावान्तरच्छिदे] स्वतः अन्य सर्व जीवाजीव, चराचर पदार्थों को सर्व क्षेत्र काल संबंधी सर्व विशेषणों के साथ एक ही समय में जाननेवाला है। इस विशेषण से, सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले मीमांसक आदि का निराकरण हो गया। इस प्रकार के विशेषणों (गुणों) से शुद्ध आत्मा को ही इष्टदेव सिद्ध करके (उसे) नमस्कार किया है।

भावार्थ :- यहाँ मंगल के लिये शुद्ध आत्मा को नमस्कार किया है, यदि कोई यह प्रश्न करे कि किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया ? तो उसका समाधान इस प्रकार है :- वास्तव में इष्टदेव का सामान्य स्वरूप सर्व कर्म रहित, सर्वज्ञ वीतराग शुद्ध आत्मा ही है, इसलिये इस अध्यात्म ग्रन्थ में `समयसार' कहने से इसमें इष्टदेव का समावेश हो गया। तथा एक ही नाम लेने में अन्यमतवादी मतपक्ष का विवाद करते हैं, उन सबका निराकरण समयसार के विशेषणों से किया

है और अन्यवादीजन अपने इष्टदेव का नाम लेते हैं, उसमें इष्ट शब्द का अर्थ घटित नहीं होता, उसमें अनेक बाधाऐं आती हैं और स्याद्वादी जैनों को तो सर्वज्ञ वीतरागी शुद्ध आत्मा ही इष्ट है; फिर चाहे भले ही इष्टदेव को परमात्मा कहो, परमज्योति कहो, परमेश्वर, परब्रह्म, शिव, निरंजन, निष्कलंक, अक्षय, अव्यय, शुद्ध, बुद्ध, अविनाशी, अनुपम, अच्छेद्य, अभेद्य, परमपुरुष, निराबाध, सिद्ध, सत्यात्मा, चिदानंद, सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हत्, जिन, आप्त, भगवान, समयसार, इत्यादि हजारों नामों से कहो; वे सब नाम कथंचित् सत्यार्थ हैं। सर्वथा एकान्तवादियों को भिन्न नामों में विरोध है, स्याद्वादी को कोई विरोध नहीं है। इसलिये अर्थको यथार्थ समझना चाहिए।

प्रगटै निज अनुभव करै, सत्ता चेतनरूप।
सब ज्ञाता लखिकें नमौं समयसार सहु भूप।।१।।

प्रवचन नं. १ श्लोक-१ ता. ७-६-७८ बुधवार जेठ सुद-२ सं. २५०४

हिन्दी श्लोक १ पर पूज्य गुरुदेव श्री का प्रवचन

समयसार उन्नीसवीं बार चलता है अठारह बार पूरा हो चुका है पहले का थोड़ा बाकी था, ओम् श्रीमद्भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री समयसार। जीव-अजीव अधिकार श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरी कृत आत्मख्याति।

(अनुष्टुभ्)

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।।१।।

मूलगाथा का आत्मख्याति टीका का गुजराती अनुवाद (का हिन्दी अनुवाद)। अर्थकर्त्ता मंगलाचरण करते हैं।

श्री परमातम प्रणमीने, शारद सुगुरु मनाय
समयसार शासन करूं देशवचनमय भाय।।१।।

देव, शास्त्र और गुरु तीनों को पहले नमस्कार किया है। तीन नाम आते है देव-शास्त्र-गुरु, देव-शास्त्र-गुरु ऐसे नहीं देवशास्त्रगुरु। परमात्मा को प्रणाम कर। पूर्णपरमात्मस्वरूप को नमस्कार करके। शारद नाम शास्त्र उसे नमस्कार करके। सुगुरुको सद्गुरुको नमस्कार करके। आया है न ? तीनों को नमस्कार करके, समयसार शासन करूं।समयसार का कथन अथवा शिक्षा अथवा शासन सलाह...।

भाई, प्रचलित भाषा में

शब्दब्रह्म परब्रह्म का, वाचक वाच्य नियोग
मंगलरूप प्रसिद्ध पद, नमुं धर्मधन-भोग।

शब्दब्रह्म जो भगवान की वाणी वह परम ब्रह्म को कहनेवाली, यह परम ब्रह्मस्वरूप भगवान `वाचकवाच्यनियोग', शब्द है वह वाचक है। जैसे शक्कर (शब्द) है यह वाचक है। उसमें शक्कर नहीं है, शक्कर है वह वाच्य है। इसीप्रकार आत्मा शब्द है वह वाचक है और आत्मा है वह वाच्य है। यह आत्मा वाच्य है उसमें शब्द नहीं, और जहाँ शब्द है वहाँ वाच्य नहीं। परंतु वाचक वाच्य का नियोग, नियम संबंध है। निमित्त नैमित्तिक संबंध (है)। शब्दब्रह्म परब्रह्म का वाचक है, शब्द वाचक है और परब्रह्म वह वाच्य उसका नियोग संबंध है निमित्त नैमित्तिक।

मंगलरूप प्रसिद्धि यह, यह मंगलरूप है। भगवान की वाणी और भगवानस्वरूपआत्मा मंगलरूप प्रसिद्धि यह नमुँ नमस्कार करता हूँ। धर्मरूपी धन के अनुभव के लिये। मेरा धर्मरूपी धर्म आनंद- ऐसा मेरा धर्म यह हमारी लक्ष्मी आनंदरूपी धर्म की लक्ष्मी के भोग के लिये यह मंगल करता हूँ। आहाहा ! आनंद स्वरूप आत्मा है, यह उसकी लक्ष्मी है उसका धन है उसे भोगना है। अपनी संपदा है, आनंद अतीन्द्रियज्ञान यह निज संपदा निज धन, निज लक्ष्मी, उसे भोगने के लिये अनुभवने के लिये, यह वाणी हमनें की है, आहा ! दूसरा कोई हेतु है नहीं आहा ! जिसमें से अतीन्द्रिय आनंद का, अतीन्द्रिय आनंदरूपी धन का पर्याय में भोग होता है अनुभव हो इस हेतु शास्त्रके अर्थ करने का प्रयोजन यह है। आहा ! आहा !

श्रोता :- अर्थ करना तो परलक्षीभाव है।

गुरुदेव :- परलक्षी तो भाषा है, परंतु मेरा लक्ष्य तो इधर ही है मेरी धन रूपी संपदा उसके अनुभव के लिये मेरी बात है। - ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है न (कि) टीका करने से मेरी अशुद्धता टल जाय, और शुद्धता प्रगट हो जाय। यहाँ शुद्धता अर्थात् मांगलिक अनुभव हो - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

आत्मा का धन... धर्मरूपी धन, आत्मा का स्वभाव अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनंद अतीन्द्रिय चैतन्य के रत्नों से भरा हुआ भगवान - ऐसा जो मेरा धर्मरूपी धन, यह मेरा धर्मरूपी धन, उसका अनुभव उसका भोग-अनुभव के लिये यह मैं अर्थ करूंगा (- ऐसा) कहते हैं।

`**नय नय सार लहे शुभ वार**' परंतु इन शब्द शब्द (में) नया नया, सार निकलेगा चाहे निश्चयनय का कथन हो चाहे व्यवहार(नय) का कथन हो। परंतु नय नय सार लहे शुभ वार और अच्छे समय में शुभ समय में, आज तो अपन दूज और बुधवार

को प्रारंभ करते हैं। जेठ सुद दूज बुधवार है ना आज ? दूज का बुधवार है `नय नय सार' नय नय अर्थात् शब्दों शब्दों में, नय के वाक्यों का सार क्या है, वह उसका समय, उसके समयमें सार निकलेगा। `पद पद मार' और पद पद में नष्ट करता है संसार के मल (विभाव) को नाश कर डाले - ऐसे पद है यह सभी। आहाहा! पद पद मार - पग पग (पर) कदम कदम (पर) पर्याय पर्याय में - ऐसा कहते हैं आत्मानंद के अनुभव करने के लिये यह है। यह अनुभव की पर्याय पर्याय में दुःख जले। जन्म-मरण को (नष्ट) नाश करे, पग पग (अर्थात) पर्याय पर्याय में जन्म-मरण का नाश, दुःख को करनेवाला - ऐसा जन्म-मरण उसका नाश करता है आहाहा।

`**लय लय पार गहइ भव धार**' और इस आनंद स्वरूप में जितनी मग्नता हो लीनता (हो).... करना तो यह द्रव्यका आश्रय है। लाख बात की बात हो तो, शास्त्र के बारह अंग, बारह अंग में भी अनुभूति का कथन है आता है न ? कलशमें, चाहे बारह अंग है वह विकल्प है, परंतु उसमें अनुभूति, आत्मा शांति और आनंद स्वरूप उसकी अनुभूति करने का विधान है। उसमें - ऐसा नहीं कहा कि पुण्य करने रूप व्यवहार करने का विधान है। इसप्रकार `**लय लय पार गहइ भव धार**' भव का धारण (वह) स्वरूप की लीनता लीनता में पार कर जाता है। भव धरने से पार हो जाता है, लीनता करते। आहाहा ! अंतर्मुख दृष्टि करने पर लीनता लीनता (करते) पार (होजाता) लीनता लीनता (करके) पार करता किसको ? भव धार भव धारण का नाश करता (है) आहाहा ! जय जय दो दो शब्द है यह। नय नय, पद पद, लय लय, जय जय, **जयजयसमयसार अविकार** जय हो जय हो शुद्धात्मा, अविकारी है ना ? अविकारी समयसार शुद्धात्मा उसकी जय हो, जय हो आहा। अस्ति से मंगलाचरण किया।

शब्द अर्थ अरु ज्ञान समयत्रय आगम गाये,

शब्द को भी समय कहते हैं, अर्थ (अर्थात) पदार्थ को भी समय कहते हैं और ज्ञान को समय कहते हैं। समयत्रय आगम गाये। आगम इनको (तीनों को) समय कहता है, काल को भी समय कहते हैं मत को भी समय कहते हैं सिद्धान्त को भी समय कहते हैं। **भेद त्रय नाम बताया**, इनमें आदि शुभ इन सब में मूल सार कौन (है) ? कि शुभ अर्थ समय कथनी शुभ पदार्थ - ऐसा भगवान शुद्धात्मा शुभ अर्थात् शुद्ध पदार्थ - ऐसा समय आत्मा उसकी कथनी सुनिये बहु। आहाहा ! उसका कथन सुनो बहु बहुत बार कहूँगा, परंतु यह कहूँगा। उसमें प्रथम तो शुभ नाम अच्छा - ऐसा जो अर्थ अर्थात् पदार्थ समय कथनी सिद्धांत की बहुत शुद्ध कथनी सुनो।

शुद्धात्मा पवित्र प्रभो ! उसकी बहुत व्याख्या करेंगे - कहते हैं। है (ना) ? कथनी (सार) सुनिये बहु बहुत कहूँगा, बहुत सुनो-आहाहा ! `**तातै जु सार बिन कर्म मल**' कर्म रहित उसमें भी जीव नामक पदार्थ सार है कि `निर्मल शुद्ध जीव शुद्ध नय कहै' उस जीव को हम (अर्थात) अर्थ समय को बारम्बार कहेंगे परंतु वह अर्थ समय कैसा ? कि उसमें सार (भूत) कर्म मल रहित, कर्म अर्थात् भाव, द्रव्य कर्म से रहित - ऐसा जो शुद्ध प्रभु आत्मा उसे शुद्धनय कहूँगा, उसे शुद्धनय कहते हैं उसे शुद्धनय कहेंगे आहाहा!

शुद्धजीव शुद्धनय कहै। `**इस ग्रंथ मांहि कथनी सबै**' देखा ? इस ग्रंथ की सभी कथनी **समयसार बुधजन गहै।।** ज्ञानी जन सयाना पुरुष समयसार के शुद्ध को ग्रहण करते हैं। शुद्ध समयसार उसमें से निकाले। आहाहा ! चाहे जितने बहुत कथन आयें, परंतु उसमें से सार प्रभु शुद्ध चैतन्य यही निकालते है। उसका आश्रय करना यह निकालते है। आहाहा ! **लाख बात की बात...** आती है ना ? निश्चय उर लाओ छोड़ी जगत द्वंद्व फंद, निज आत्म हृदय में ध्याओ। आहाहा ! इस आत्मा को मूल चीज जो है। उसे, बारम्बार हे बुद्धिमान ग्रहण करो।

`**नामादिक षट् ग्रंथ मुख**' अब तो वह स्वयं बात करते हैं शास्त्रकर्त्ता नामादिक छह बोल है, नाम है मंगलाचरण है, शास्त्र कर्त्ता कौन है, संख्या कितनी है, प्रयोजन क्या है इसप्रकार ६ नाम है **नामादि छह ग्रंथ मुख, तामें मंगल सार, विघनहरन नास्तिक हरन, शिष्टाचार उचार।।** छह में भी मंगल सार है... आहाहा नाम शास्त्र मंगलिक कर्त्ता प्रयोजन वगैरह। उसमें भी मंगलसार (है) `विघ्नहरण' बाधाओं को नष्ट करनेवाला है यह मांगलिक सार (रूप) विघ्नों का नाश करनेवाला है आहाहा ! `नास्तिकहरण' और नास्तिकताका नाश करनेवाला है (और) अस्तिपने को प्रतीति करानेवाला है आहाहा ! `शिष्टाचार' परम्परारूप जो शिष्ट आचार है संतों का, वह बतानेवाला है - ऐसा उच्चारण करनेवाला है।

`**समयसार जिनराज है,**' अब आखिरका शब्द अब यह समयसार यह जिनराज है... शुद्धआत्मा यह जिनराज है `घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन' आहा ! जैन कोई पंथ नहीं, जैन कोई संप्रदाय नहीं, जैन अर्थात् समयसार स्वरूप आत्मा वह जैन है आहाहा !

`समयसार जिनराज है' जिनराज यह समयसार आत्मा शुद्धात्मा यह जिनराज है `स्याद्वाद जिनवेन' आहाहा ! तीन रखे है देव, शास्त्र और गुरु तीन पहले कहे थे ना ? उन तीनों को पुनः याद करते है कि समयसार जिनराज है देव, देव अपना आत्मा समयसार यह जिनराज है। अथवा जिनराज वह देव है `स्याद्वाद यह

जिन नैन' सापेक्ष कथन वह, शारदा वीतराग की वाणी है पहले कहा तुम यह देव, शास्त्र और गुरु **`मुद्रा जिन निरग्रंथता'** यह गुरु की व्याख्या (स्वरूप) है आहाहा ! मुद्रा जिन निर्ग्रंथदशा बाह्य और अभ्यंतर निर्ग्रंथ दशा वह मुद्रा वह गुरु **`नमूं करै सब चैन'** मैं इन तीनों को देव को शास्त्र को गुरु को `नमूं करै सब चैन' नमस्कार करने से सब चेन अर्थात् आनंद को दे। चैन करे, चैन पड़े आनंदमय, देव-शास्त्र-गुरु को वंदन करते, है विकल्प, परंतु अंदर लक्ष्य है, ध्येय आनंद की प्रतीति और चेन मिले इसलिये मैं नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत गाथाबद्ध समय प्राभृत ग्रंथ की श्री अमृतचन्द्रआचार्य कृत आत्मख्याति नाम की जो संस्कृत टीका है, उसकी देश भाषा में आत्मख्याति की वचनिका करेगें - ऐसा कहते हैं। टीका तो दो हैं जयसेनाचार्यकी भी। इसमें आत्मख्याति की टीका करेंगें अमृतचन्द्राचार्य में - ऐसा लिखते हैं।

देश भाषा में लिखते हैं संस्कृत टीकामें से, **प्रथम संस्कृत टीकाकार श्री अमृतचन्द्राचार्य ग्रंथ के प्रारंभ में पहले श्लोक द्वारा मंगल के अर्थ इष्ट देव को नमस्कार करते हैं।** इष्ट देव को नमस्कार करते हैं। इष्ट देव परमात्मा है और यथार्थ में इष्ट देव स्वयं प्रभु (निजात्मा) है। पुण्य और पाप के भाव वह अनिष्ट है, प्रवचनसार में है और भगवान आत्मा वह इष्ट है। निश्चय से शुद्धआत्मा वह इष्ट है व्यवहार से परमात्मा इष्ट है।

यह आया न शुद्धात्मा समय अर्थात जीव नामक पदार्थ इष्ट देव को नमस्कार करते हैं। गाथा, गाथा पढ़ ली है **`नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते। चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे।।१।।'** अहो ! विशेषता देखो ! पहले अस्ति से ही बात की है नास्ति से बात ही नहीं की बंध का नाश, यह अजीव का नाश, यहाँ यह बात नहीं अस्ति एक ही बात आहाहा !

नमः समयसाराय ! समय नाम जीव नामक पदार्थ, उसमें जो सार द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म रहित, शरीर वाणी आदि नोकर्म जड़कर्म और भावकर्म पुण्यपाप... इससे रहित शुद्धात्मा वह समय है। आहाहा ! उसे हमारा नमस्कार हो। इसका विरोध करते हैं, कि इसमें तो इष्ट को परमात्मा को नमस्कार किया है व्यवहारनय से किया है परंतु व्यवहार से किया है इसमें निश्चय से किया यह उसमें संयुक्त है। आहाहा ! इसमें से यह अर्थ निकालते हैं। उसे हमारा नमस्कार हो। कैसा है भावाय ? अर्थात् समयसार जो भाव, समयसार जो वस्तु भाव अर्थात् वस्तु समयसार जो पदार्थ अर्थात कि भाव शुद्ध सत्ता स्वरूप वस्तु है यह शुद्ध सत्ता स्वरूप है, आहाहा ! सत्ता, भाव

है जो यह शुद्ध सत्ता स्वरूप है। भगवान पवित्र, होनेरूप वस्तु है वह वस्तु पवित्रपने, होनेपने, सत्तापने... आहाहा ! होने रूप जो चीज है। परंतु पवित्र सत्ता रूप जो चीज है सत्ता नाम होनापना शुद्धनाम पवित्रपना होनापना और वस्तु है आहाहा ! शुद्ध सत्ता स्वरूप वस्तु है... आहाहा !

इसकी सत्ता ही शुद्ध है, उसका अस्तित्व ही शुद्ध है, द्रव्य अपेक्षा से हों ! विशेष समकित स्वभावाय बाद में आयेगा... परंतु यहाँ तो `भावाय' वस्तु है, पदार्थ है, तत्त्व है, वह शुद्ध ही है। आहाहा ! यह शुद्ध सत्ता स्वरूप वस्तु है वस्तु को सिद्ध करना है ना ? `भावाय' में तो वस्तु को सिद्ध करना है। भावाय में गुणों को नहीं, गुण को बाद में कहेंगे `भावाय' वस्तु... भगवान आत्मा शुद्धवस्तु सत्ता है। अकेला ज्ञायक आनंद शांति स्वरूप वस्तु, वस्तु है, सत्ता है। `भावाय' है `भावाय' है पर से अभाव है यह बात यहाँ नहीं लेना। `भावाय' अस्ति से लेना है। नास्ति से बात ली नहीं `भावाय' इसका अर्थ आ गया कि पर से अभाव है परंतु स्वयं से `भावाय' है, वस्तु है, सत्ता है... आहा !

`इस विशेषणपद से सर्वथा अभाववादी नास्तिकों का मत खण्डित हुआ' अभाव का अर्थ नाश। - ऐसा कहते हैं वस्तु अभावरूप है, वस्तु है ही नहीं - ऐसा कहनेवालों को `भावाय' कह कर उनके नास्तिकपने का नाश किया है। वस्तु भाव स्वरूप है अनंत अनंत (भाव) स्वरूप वस्तु है, वस्तु है, पदार्थ है, द्रव्य है, तत्त्व है अस्ति... विद्यमानपदार्थ है - ऐसा कहते हैं आहाहा ! विद्यमानता धारण करनेवाली वस्तु है, अभावरूप नहीं। मौजूदगी (अस्तित्व) धारण करनेवाली सत्ता, भाव वस्तु है, ऐसी सत्तारूपभाव एक (रूप) वस्तु है। आहाहा ! - ऐसा है... अब यह उन्नीसवी बार पढ़ा जाता है। सूक्ष्म लगे। परंतु अंदर ध्यान देना होगा ना थोड़ा आहाहा ! यह तो वस्तु कही। द्रव्य कहा। शुद्धसत्तारूप पदार्थ है उसका वाच्य इसकी दृष्टि में आना चाहिए, इस हेतु से यहाँ कहा जाता है। - ऐसा कहते हैं।

यह शब्द तो वाचक है, परंतु वाचक वाच्य नियोग - ऐसा कहा उसमें वाचक शब्द और वाच्य का संबंध है अर्थात् शुद्धसत्तास्वरूप वस्तु है ऐसे जो वाचक शब्द उसका वाच्य शुद्ध सत्ता स्वरूप वस्तु है इस बात की दृष्टि इसमें आनी चाहिए। आहाहा ! **`इससे सर्वथा अभाव वादियों का'** कथंचित अभाव है, (यहाँ) सर्वथा क्यों कहा ? कथंचित अभाव है, अभाव है... सर्वथा अभाव नहीं। यदि कथंचित् अभाव न हो तब तो स्वसे है और पर से नहीं, यह नहीं बन सके। सर्वथा अभाव नहीं - ऐसा कहा है कथंचित अभाव है। पर की अपेक्षा अभाव है और स्व की अपेक्षा भाव है। पर की अपेक्षा अभाव होने पर भी सर्वथा अभाव का निषेध किया है। कथंचित

अभाव को तो सिद्ध किया है। आहाहा ! समझमें आया कुछ ?

सर्वथा अभाववादी नास्तिकों का मत खण्डित किया। स्वभाव तो वस्तु स्वपणे-सत्तापणे वस्तु तो है, इसलिये ही उससे अनंत-अनंत दूसरी वस्तुसे उसका अभाव है-अभाव है। ***अभाव भी उसका स्वभाव है। जैसा भाव स्वभाव है वैसा अभाव भी उसका एक स्वभाव है, परंतु सर्वथा अभाव, उसका निषेध करने के लिए `भावाय' कह कर कथंचित, पर से अभाव है, परंतु सर्वथा पर से अभाव है,*** पर से नहीं अतः स्वयं से भी नहीं - ऐसा नहीं आहाहा ! समझ में आया ? सर्वथा अभाव (अर्थात) कथंचित अभाव को तो स्वीकार किया, कारण स्वरूप से वस्तु है, पर रागादिक रूप से नहीं जैसे स्वरूप से भी हो और पररूप से भी हो तो वस्तु की सिद्धि नहीं होती। आहाहा ! तब पररूप नहीं - ऐसा कहने से सर्वथा अभाव कहो तो सत्तारूप वस्तु का नाश होता है। आहाहा ! ऐसी वस्तु है, अब इसे फुरसत कहाँ, ऐसी वस्तु है बापू ! (भाई !) इसके निर्णय के लिये इसे समय निकालना पड़ेगा। आहा !

शुद्धसत्ता वस्तु है... अभी गुण की परिभाषा नहीं आयी, अभी तो द्रव्य की परिभाषा है शुद्धसत्ता द्रव्य है, सर्वथा अभाव द्रव्य का कहते हैं - ऐसा नहीं, कथंचित अभाव पर का इसमें अभाव है - इस अपेक्षा अभाव है, परंतु स्व का भी अभाव है - ऐसा नहीं, स्वरूप से है पररूप से नहीं, सर्वथा पररूप से नहीं अतः स्वयं ही नहीं। - ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें अब कहाँ इसे पकड़ में आयें (समझ में आयें) आहाहा! रास्ता - ऐसा है।

अब कहते हैं कि यह तो वस्तु है... वस्तु तो यह परमाणु भी है, छह द्रव्य हैं, परंतु यह (आत्मा) कैसी चीज है ? आत्मा जो वस्तु है, शुद्ध सत्तारूप द्रव्य है तो द्रव्य तो परमाणु आदि दूसरे भी है परंतु उनका स्वभाव क्या है, अब ? भावाय तत्त्व द्रव्य है तो उसका स्वभाव गुण क्या है ?

कि `चित्स्वभावाय' जिसका स्वभाव चेतना गुणरूप है। आहाहा ! कैसी वाणी ! वस्तु भगवान अंदर शुद्ध चैतन्य वस्तु है वह चेतना स्वभाव गुणवाली है, वह गुण है उसमें चित् उसका स्वभाव चेतना, इसमें जानना-देखना गर्भित है। चेतनागुणरूप है... आहाहा ! स्वयं सत्ता, द्रव्य अपेक्षा भावाय है परंतु गुण अपेक्षा चित् स्वभाव है। आहाहा... अब - ऐसा उपदेश। इसमें एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय (की रक्षा करने में) लगा हो यह करो, वह करो, यह सभी बातें भाई क्रिया काण्ड है। आहाहा ! और वह भी वाचक का वाच्य है वह (उसे) लक्ष्य में लेना, उसे कहते हैं। वाच्य को लक्ष्य में लेना। वाचक शब्द तो आता है, यह भगवान आत्मा, भावाय अर्थात सत्तास्वरूप, द्रव्यस्वरूप तत्त्वस्वरूप, वस्तुस्वरूप भाव है और उसका गुण एव वस्तु है तब उसमें

शक्ति चाहिए ना ? तो `चित्स्वभावाय' उसका ज्ञानादि इसमें ज्ञान की प्रधानता से बात है। ज्ञान और दर्शन (गुण) वह उसका विशेष-विशेष स्वभाव है। आहाहा ! है ?

जिसका स्वभाव चेतना गुणरूप है, इस विशेषण से गुण-गुणी का सर्वथा भेद माननेवाले... देखो ! गुणी आत्मा से ज्ञान सर्वथा भिन्न है - ऐसा माननेवालों का निषेध किया। कथंचित नाम भेद है, भाव भेद भी कथंचित है, परंतु वस्तु अपेक्षा भेद नहीं है। आहाहा ! वैसे तो गुण-गुणी के बीच में भी अतदभाव है, परंतु अभाव नहीं। प्रवचनसार में है। गुणी और गुण के बीच अतद्भाव है, परंतु अभाव नहीं। कि गुणी भिन्न और गुण भिन्न, कि गुणी में गुण नहीं और गुण, गुणी में नहीं - ऐसा नहीं, ऐसी बातें सुनो, विशेषणों से गुण-गुणी का सर्वथा भेद (माननेवाले) कथंचित भेद मानना तो उचित है - ऐसा कहते हैं, ***क्योंकि गुणी और गुण ऐसे दो नाम रखे तो नाम भेद है। भाव भेद भी किसी न्याय से है, नाम भेद हो, कथन भेद हो, फल भेद भी है। आहाहा !*** परंतु सर्वथा भेद माननेवालों का निषेध किया। कथंचित भेद है। वस्तु भगवान आत्मा सत्ता और चेतनगुण में कथंचित भेद है गुण-गुणी का। दोनों के बीच में निश्चय से अतद्भाव है। परंतु प्रदेश अपेक्षा... प्रदेश दोनों के एक ही हैं, आहाहा! द्रव्य के प्रदेश - गुण के प्रदेश भिन्न हैं और - ऐसा नहीं है देखो ठीक ! प्रदेश भेद हो तो पृथक हो जाता है, परंतु यह प्रदेश भेद नहीं होने पर भी गुण-गुणी भेद है। वस्तु है, और उसके गुण हैं - ऐसा नाम भेद, प्रयोजन भेद, फलरूप भेद, भेद हो, परंतु कथंचित भेद सर्वथा भेद... नहीं आहाहा !

जितने गुणों के प्रदेश हैं उतने ही द्रव्य के हैं जितने द्रव्य के (प्रदेश) हैं उतने ही गुणों के हैं। आहाहा ! अभी पर्याय की बात अलग है, कहो समझ में आया ? गुण-गुणी का सर्वथा भेद माननेवालों (का निषेध है)। गुणगुणी का कथंचित भेद मानना उचित है। कथंचित भेद (है) और कथंचित भेद नहीं - अब यह ऐसी बात ! कथंचित भाव और कथंचित अभाव सर्वथा अभाव भी नहीं और सर्वथा अकेला भाव भी नहीं आहाहा ! भाव स्वरूप होने पर भी पर की अपेक्षा अभावरूप भी उसका गुण है, पररूप नहीं होना - ऐसा अभाव स्वभाव है, अपने रूप रहना - ऐसा भाव स्वभाव है - ऐसा है। आहाहा !

दो बोल हुये, द्रव्य और गुण। जैन दर्शन विश्वदर्शन का मूल स्वरूप द्रव्य, गुण, पर्याय इन तीनों का यहाँ वर्णन पहले श्लोक में यहाँ अस्ति से कहा है `भावाय' इसमें द्रव्य लिया `चित् स्वभावाय' गुण लिया, अब पर्याय शेष रह गई।

`स्वानुभूत्या चकासते' यह पर्याय है। आहाहा ! अपनी स्वयं के अनुभूति, अपनी ही अनुभव रूप क्रिया। देखो ! राग की या पुण्य की क्रिया नहीं। अपने जो गुण

तथा गुणी जो निर्मल शुद्ध हैं उसकी शुद्ध अपनी जो क्रिया। आहाहा ! व्यवहार जो दया-दान-व्रत-भक्ति की क्रिया से जानने में आये - ऐसा यह नहीं - ऐसा नहीं इस प्रकार न कहकर **`स्वानुभूत्या चकासते'** अस्ति से बात की है। समझ में आया ? अपनी ही `स्वानुभूत्या चकासते' है ना ? स्वयं की स्वानुभवरूपी क्रिया, वह क्रिया है तो पर्याय, शुद्ध आनंद और ज्ञान की पर्याय से वह जानने में आता है... आहाहा ! वह पर्याय है, पर्याय नहीं - ऐसा नहीं। कार्य तो पर्याय में होता है और द्रव्य एवं गुण हैं - ऐसा निर्णय तो अनित्य ऐसी पर्याय में होता है। (पर्याय का) अनित्यपना है। आहाहा ! नित्य भी है अनित्य भी है - ऐसा है।

**`स्वानुभूत्या'** स्व-अनुभूति अपनी शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो पवित्र ऐसी शुद्ध क्रिया से जान सकें - ऐसा है। (निजात्मा) व्यवहार क्रिया से जानने में आये - ऐसी यह वस्तु नहीं आहाहा ! है कि नहीं सामने (ग्रन्थमें) ? `स्वानुभूत्या' `स्व' अर्थात् स्वयं `स्वानुभूत्या चकासते' `स्वंयकी अनुभवनरूप क्रिया से प्रकाशित होता है' अर्थात स्वयं को स्वयं से जानता है। भगवान आत्मा... जिसे व्यवहार और राग की अपेक्षा नहीं ऐसी वह चीज है - ऐसा कहते हैं अपने अनुभव की पर्याय से जानने में आती है। आहाहा ! वह राग से जानने में (नहीं) आती - ऐसी नास्ति से बात नहीं की अस्ति से कहने पर नास्ति उसमें आ जाती है। `भावाय' अर्थात् अस्ति `चित्स्वभावाय' में अस्ति और अनुभूति में अस्ति एक में द्रव्य की अस्ति दूसरे में गुणों की अस्ति तीसरे में पर्याय की अस्ति। अस्ति से सिद्ध किया है। आस्रव पुण्य, पाप, बंध और अजीव यह इसमें लिये ही नहीं।

मात्र भावाय, द्रव्य लिया है, चित्स्वभाव गुण लिया है और अनुभूति में संवर निर्जरा लिया। द्रव्य लिया, गुण लिया और स्वानुभूत्या में संवर निर्जरा की शुद्ध पर्याय ली। शुद्ध पर्याय से वह जानने में आये - ऐसा है। व्यवहार और निमित्त से.. वह जानने में आये - ऐसा नहीं। आहाहा ! यहाँ कथंचित नहीं। उसके भाव में कथंचित था, कारण कि कथंचित अभाव भी है। गुण में भी कथंचित भेद है, गुण-गुणी का भेद है। इसप्रकार यहाँ स्वानुभूत्या चकासते में कथंचित अनुभूति से जानने में आता है और कथंचित राग से जानने में आता है - ऐसा नहीं स्वयं से प्रकाशित होता है एवं राग से प्रकाशित नहीं होता - यह बात इसमें आ जाती है। नास्ति की बात अस्ति कहने में आ जाती है। आहाहा ! - ऐसा तो पहला श्लोक है यहाँ तो मंगलाचरण करते हैं !

अपने को स्वयं से जानते हैं, प्रगट करते हैं भगवान आत्मा वस्तु भी कथंचित भाव-अभाव स्वरूप, गुण भी कथंचित भेद, अभेद स्वरूप-अनुभूति की पर्याय से जानने

में आती, अन्य दूसरे से जानने में नहीं आती - ऐसा इसका स्वरूप है। आहाहा!

`**इस विशेषण से आत्मा को और ज्ञान को सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले,**' अर्थात् ज्ञान तो परोक्ष है, प्रत्यक्ष हो सकता नहीं (- ऐसा मानना) झूठा है। आहा ! सर्वथा परोक्ष है - ऐसा नहीं कथंचित परोक्ष है पूर्ण केवलज्ञान जब तक न हो तब तक परोक्ष है, परंतु श्रुत ज्ञान द्वारा वह प्रत्यक्ष है इस प्रकार दोनों है। आहाहा ! समझ में आया ? श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है। श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है वह वेदन की अपेक्षा हाँ ! वैसे श्रुत से परोक्ष है केवल से प्रत्यक्ष है श्रुत (ज्ञान) से असंख्य प्रदेश परोक्ष है परंतु उसका अनुभव है वह परोक्ष नहीं। आहाहा ! इतने अधिक पहलु (अपेक्षा) लागू होती है।

(इस विशेषण से) `आत्मा को तथा ज्ञान को सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले जैमनीय-भट-प्रभाकर भेदवाले मीमांसको के मत का खण्डन हो गया।' आहा ! अर्थात् ज्ञान और आत्मा सर्वथा भिन्न परोक्ष ही है - ऐसा माननेवालों का निषेध किया। प्रत्यक्ष है, कथंचित प्रत्यक्ष है, कथंचित परोक्ष है। वेदन की अपेक्षा यह प्रत्यक्ष है एवं बिलकुल असंख्य प्रदेश की अपेक्षा परोक्ष है। केवलज्ञान की अपेक्षा वह प्रत्यक्ष है। कुछ समझ में आया ? पुस्तक तो है सामने ?

इसीप्रकार ज्ञान अन्य ज्ञान से जाना जा सकता है - देखा ! स्वयं अपने को नहीं जानता ऐसे माननेवाले (नैयायिकों का) भी प्रतिषेध हो गया। ज्ञान है वह दूसरे ज्ञान द्वारा जानने में आये, स्वयं स्वयं से ज्ञात न हो - (- ऐसा नहीं है)। यह ज्ञान जो उत्पन्न होता है वह स्वयं को जानता हुआ ही उत्पन्न होता है। स्वयं स्वयं को जानता हुआ ही उत्पन्न होता है, आहाहा ! स्वतः उसे दूसरे ज्ञान से जानने की आवश्यकता नहीं। अब इस एक श्लोक में इतने प्रकार कितने याद रखना इसे ? अस्ति से याद रखना। सत्ता वस्तु है, गुण-गुणी का वाचक है, वह भेद है, वाच्य भी भेद है। स्वानुभूत्या चकासते इसमें किसी प्रकार पर से अनुभव हो सके - ऐसा नहीं। और वह ज्ञान ज्ञान से ही जानने में आता है। उस ज्ञानको जानने के लिए दूसरे ज्ञान की आवश्यक्ता हो - ऐसा नहीं। निरपेक्षज्ञान... परकी अपेक्षा रखे बिना। आहाहा ! यहाँ तो - ऐसा कहते हैं कि कदाचित् शास्त्र का ज्ञान किया हो, भगवान की वाणी सुनी हो तब वह अपेक्षा रखकर ज्ञान का प्रत्यक्षवेदन हो - ऐसा नहीं। आहाहा !

यह ज्ञान सीधा अपने को वेद सकता है। ***आनंद का वेदन सीधा कर सकता है और कथंचित अपेक्षा से श्रुतज्ञान से भी प्रत्यक्ष कहने में आता (है), क्योंकि जिसमें पर की अपेक्षा नहीं इसलिये प्रत्यक्ष। श्रुतज्ञान से भी सर्वथा परोक्ष ही है - ऐसा***

नहीं। आहाहा ! कथंचित प्रत्यक्ष है, कथंचित परोक्ष है, क्योंकि जो ज्ञान दूसरों की अपेक्षा रखता नहीं... समझ में आया ? इसलिये यह प्रत्यक्ष है, स्वयं से ही है। परंतु असंख्य प्रदेश इसमें पूरे जान सकता नहीं। इस अपेक्षा से केवलज्ञान को प्रत्यक्ष कहा और श्रुत ज्ञान को परोक्ष कहा और प्रत्यक्ष भी कहा। आहाहा ! ***स्वयं स्वयं से जान सके इसलिये प्रत्यक्ष, जिसे राग और निमित्त की अपेक्षा नहीं इसलिये प्रत्यक्ष, और पूरे असंख्य प्रदेशों को ऐसे सीधा जान सकता नहीं अतः परोक्ष। आ हाहाहा ! समझ में आया ?*** - ऐसा है !

ज्ञान अन्य ज्ञान से ज्ञात हो सके, स्वयं स्वयं को नहीं जानता - ऐसा माननेवालों का प्रतिषेध हुआ। आहा ! अस्ति से बात करें तो द्रव्य की, गुण की और पर्याय की, साधक की संवर निर्जरा की शुद्धि से, प्रगट समझ में आता है, इतनी (बात है)।

अब इसकी पूर्णता की व्याख्या करते हैं। आहाहा ! यह भी अस्ति से करते है `**सर्वभावांतरच्छिदे**' सर्वभाव अंतर अपने से भिन्न... अंतर है ना ? सर्व भाव अंतर अपने भाव से भिन्न। स्वयं भावाय है, वस्तु है उससे भिन्न, सर्व भावों में स्वयं आया, अंतरच्छिदे उससे भिन्न भाव उससे भिन्न, उसको जाननेवाला है। सर्व भावांतर सर्व भावों को जाननेवाला - ऐसा नहीं। सर्व भाव जो अपने, उससे भिन्न भाव, उसे जाननेवाला है समझमें आया कुछ ? `**सर्वभावांतरच्छिदे**' का अर्थ - ऐसा नहीं कि सर्व भावों को पूर्णतया जान सके - ऐसा यहाँ अर्थ नहीं। यहाँ तो सर्वभाव जो अपने हैं उससे जो भिन्न सभी भाव उसे पूरी तरह जान सकता है। सर्व भावंतर (अर्थात कि) सर्व भावों से भिन्न भाव, अपना जो भाव सत्ता और गुण-गुणी की बात की- ऐसा जो भाव और भाववान, स्वभाववान और स्वभाव उससे भिन्न (अन्य) भाव। जितने अनंत द्रव्य, गुण और पर्याय... आहाहा ! स्वयं से... है ना ? अन्य सर्व जीव अजीव भिन्न हैं ना ? अपने में सर्व भाव नाम अपने से लिया, उससे भिन्न अर्थात् अन्य सर्व जीवाजीव आहाहा !

जीव और अजीव दूसरे अनंत `चराचर' गति करनेवाले और स्थिर रहनेवाले चर अर्थात् गति करनेवाले और अचर अर्थात् स्थिर रहनेवाले, पदार्थों को सर्वक्षेत्रकालसंबंधी सर्व पदार्थों को सर्वक्षेत्र सर्वकाल संबंधी सर्व विशेषणों सहित भाव। आहाहाहाहा ! सर्व भावांतर, सर्वभाव स्वयं के और अंतर अर्थात अपने अलावा दूसरों के सभी भाव उसे अपने से भिन्न अन्य सर्व जीव अजीव, चलते और स्थिर पदार्थों को सर्वक्षेत्र काल संबंधी... तीन काल और लोकालोकक्षेत्र। आहाहा ! और सभी विशेषणों सहित, उसके सर्व भावों सहित, पर्याय सहित, एक समय में जाननेवाला है। आहाहाहा ! प्रभु पर्याय में पूर्ण सर्वज्ञ की पर्याय, एक ही समय में अपने से भिन्न अनंत पदार्थों के द्रव्य

को, क्षेत्र को, काल को और उसके भावों को गुण और पर्याय सभी को एक समय में जाननेवाला है आहाहा है ? एक ही समय में जाननेवाला है।

इस विशेषण से सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले - सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता - ऐसा जो कहते हैं - ऐसा मत है, और अनेकों को सर्वज्ञ (पना) हो सके नहीं। वर्तमान में जो पूरणज्ञान है, वर्तमान के इन सर्वज्ञ को तीनकाल और तीनलोक का ज्ञान हो सके नहीं - उनका निषेध किया है। आहाहा ! सर्व अपेक्षा से सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले मीमांसक आदि... जैन में रहनेवाले दिगम्बरों में भी (कुछ व्यक्ति) नहीं माननेवाले हैं। एक महेन्द्र (नामके पण्डित जी थे) पण्डित सर्वज्ञ को नहीं मानते थे... उनका स्वर्गवास हो गया। `निराकरण हुआ इस प्रकार सिद्ध करके।' इसप्रकार के गुणोंसे इस प्रकार विशेषणों से शुद्ध आत्मा को ही `शुद्ध आत्मा को' ही इष्टदेव जैसा सिद्ध करके, इष्टदेव कहकर... अपेक्षा से इष्टदेव हैं सच्चे परमात्मा स्वयं इष्ट देव हैं, व्यवहार से सर्वज्ञ परमात्मा इष्टदेव हैं। आहाहा ! उन्हें नमस्कार किया है, शुद्धात्मा को ही, है ? इस विशेषण से शुद्धात्मा को इष्टदेव सिद्ध करके उसे नमस्कार किया है आहाहा !

द्रव्य, गुण, पर्याय और पूर्णता, ये चार बोल लिये हैं। अपना द्रव्य सत्ता है। `भावाय, चित्तस्वभाव गुण, स्वानुभूति पर्याय, संवर निर्जरा। यह द्रव्य गुण संवर निर्जरा-सर्वभावांतरच्छिदे' यह मोक्ष पर्याय की पूर्णता बस। इस प्रकार इन चार बोल में अस्तिपना सिद्ध किया है। समझ में आया ?

उसमें यह पहला श्लोक मंगलाचरण, महा उत्तम

अस्ति जीव है, गुण-गुणी रूप भेद कथंचित हैं, कथंचित नहीं। अपने अनुभव से सिद्ध हो सकता है। परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनों तरफ से भी है। कथंचित प्रत्यक्ष और कथंचित परोक्ष है - इसप्रकार इष्टदेव तो अपना आत्मा, परमात्मा रूप इष्टदेव कह कर उसे नमस्कार किया है। इस गाथा का अर्थ पूरा हुआ लो, विशेष आयेगा।

प्रमाण वचन गुरुदेव -

(समयसार का अपूर्व स्वागत करके अंतर में मंगल प्रतिष्ठा करानेवाले श्री सद्गुरुदेव की जय हो !)

प्रवचन नं.-२ श्लोक-१-२ ता. ८-६-७८ गुरुवार, जेठ सुद-३ सं. २५०४

पहले कलश का भावार्थ। इस कलश में इष्टदेव को नमस्कार किया है, परंतु स्वयं अपने आत्मा का अनुभव किया है। यहाँ इष्टदेव को नमस्कार करके शुरूआत की है, क्या कहा ? समझ में आया। अपना आत्मा शुद्धचैतन्य (स्वरूप) द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म रहित, अंदर से अनुभवा है, जाना है। यह जीव... पूर्णइष्ट देव को नमस्कार किया है सर्वभावांतरच्छिदे है ना ? सर्वज्ञ परमात्मा... किसी का नाम नहीं लिया, इष्टदेव अर्थात् जिनकी पूर्णदशा प्रगट हो गई है, स्वानुभव से जिन्होंने सर्वज्ञपना प्रगट किया है, उनके भावाय और चित्स्वभावाय द्रव्य और गुण है, ऐसे जीव का। पूरणदशा प्राप्त को, इष्टदेव गिनकर, अपने इष्टदेव का अनुभव करके, इष्टदेव को नमस्कार करते है।

इसका भावार्थ :- **यहां मंगल के लिये शुद्धआत्मा को नमस्कार किया है। यदि कोई यह प्रश्न करे किसी इष्ट देव का नाम लेकर** (**नमस्कार**) **क्यों नहीं किया ?** कोई महावीर कि ऋषभदेव भगवान कि कोई और **तो उसका समाधान :- वास्तव में इष्टदेव का सामान्य स्वरूप,** `जिन्हें दिव्यशक्ति पूर्णप्रगटी है, ऐसे इष्टदेव का सामान्य तरह से (यह वस्तु का स्वरूप)' सर्वज्ञ है, सर्वकर्मरहित है इष्टदेव का स्वरूप सर्वकर्म रहित है। पहले सहित थे, बाद में रहित हुये, अर्थात इस प्रकार जिन्हें सर्वज्ञ, वर्तमान दशामें जिन्हें सवर्ज्ञता प्रगट हुयी है। सर्वज्ञ स्वभाव तो था वस्तु स्वयं सर्वज्ञ स्वभावी ही है, आत्मा सर्वज्ञ स्वरूपी, सर्वज्ञ स्वभावी त्रिकाल है, परंतु जिन्होंने, आत्मा का अनुभव करके उसमें से सर्वज्ञदशा प्रगट की उन्हें नमस्कार करते है, समझ में आया ?

वीतराग, वीतराग हुये हैं, वीतरागस्वरूप तो थे, सभी आत्मायें वीतरागस्वरूप ही हैं, जिनस्वरूप ही है, परंतु जिसको वीतरागता पर्याय में प्रगट हुयी वह, जिसे पर्याय में आत्म द्रव्य का अनुभव हुआ वह, पूरण पर्याय जिसे प्रगट हुयी वीतरागता, उन्हें नमस्कार करते हैं। वीतराग शुद्धआत्मा ही है। सर्व कर्म रहित वीतराग, सर्वज्ञ और वह शुद्धात्मा ही है अर्थात `ज्ञ' और चारित्र दोनों ले लिए, सर्वज्ञपना और वीतराग अर्थात् चारित्र (की) पूर्णता दो वस्तु।

`इसलिये इस अध्यात्म ग्रंथ में `समयसार' कहने से इसमें इष्टदेव का समावेश हो गया।' समयसार को नमस्कार किया इसमें इष्टदेव आ गये। `नमः समयसाराय' - ऐसा आया ना ? इस समयसार में इष्ट देव आगये। प्रगट रूप पर्याय जिसकी है, वह इष्टदेव आ गये। और जिन्होंने नमूना जाना है, सर्वज्ञ पर्याय की उसमें प्रतीति हुयी है, सर्वज्ञ का अंश मतिश्रुतज्ञान प्रगटा है, वीतराग अंश जिसे प्रगटा है, वह सर्वज्ञ पूर्णवीतराग इष्टदेव को नमस्कार करता है, किसी का नाम लेकर नहीं, गुण

वाचक है।

इस आध्यात्म ग्रंथ में `समयसार' कहने से इसमें इष्टदेव का समावेश हो गया। तथा एक ही नाम लेने में अन्यमतवादी मतपक्ष का विवाद करते हैं उन सब का निराकरण (**समयसार के विशेषणों से किया है**) (**हो गया**) एक ही नाम हो - ऐसा कुछ नहीं इसके जितने विशेषण हैं। हजारों लाखों अनंतों, एक निर्मल वीतरागसर्वज्ञ दशा को, अनंतगुणों के नाम से पहचान करा सकते है। आहाहा ! एक ही नाम का विवाद करता है, अतः सभी का निराकरण `समयसार' के विशेषणों का वर्णन करके किया (है) समयसार का विशेषण कहा ना कि स्वानुभूत्या चकासते, भावाय, चित्स्वभावाय अर्थात द्रव्य है, गुण है अनुभूति से जिसने आत्मा जाना है और अनुभूति द्वारा जिन्होंने सर्वज्ञपना प्रगट किया है, ऐसे विशेषणों द्वारा वर्णन करके किया (है)।

पुनश्च अन्यवादी जन अपने इष्ट देव का नाम लेते हैं उसमें इष्ट शब्द का अर्थ घटित नहीं होता, उसमें अनेक बाधायें और विरोध आते हैं, (**और स्याद्वादी जैनों को तो सर्वज्ञ वीतरागी शुद्धात्मा इष्ट है।**) स्याद्वाद की अपेक्षा यह स्वरूप जिस प्रकार है, चैतन्य का वास्तविक शक्ति स्वरूप और प्रगट स्वरूप जिस प्रकार है, उसे स्यादवादी कह सकते, आहाहा ! जैनों को तो सर्वथा वीतरागशुद्धात्मा ही इष्ट है `**सर्वथा**' प्रगट दशा ली है ना ? सर्वज्ञ वीतराग शुद्धात्मा ही इष्ट है, फिर चाहे इष्टदेव को परमात्मा कहो। यहाँ से शुरूआत की है। परमस्वरूप, परमस्वरूप जिसे प्रगट हो गया है, ऐसे परमात्मा कहो वस्तुतः तो परमात्मा ही हैं वस्तु अपेक्षा परमात्मा है परंतु व्यक्त प्रगटदशा में जिसकी परमात्मदशा हुयी है उसे परमात्मा कहते हैं ? आहाहा ! परमज्योति कहो, परम चैतन्यज्योति, चैतन्यप्रकाश की जलहल ज्योति, जिसे पूरण प्रगट हो गई है। `परमेश्वर' कहो परम ईश्वर, जो परमेश्वर स्वरूप तो परमेश्वर ही है। अपना परमेश्वर - ऐसा आया था न, अड़तीस गाथा में (अप्रतिबुद्ध) भूल गया था, यह परमेश्वर भूल गया था, उस परमेश्वर को याद करके, व्यक्त में (पर्याय में) प्रगट दशा में परमेश्वरपना (प्रगट) किया उन्हें परमेश्वर कहते हैं। `परमब्रह्म' कहते, परमब्रह्म परम आनंद जिसे परम आनंद प्रगट हुआ वह ब्रह्मस्वरूप है, आहाहा ! जिसकी दशा में पूरण अतीन्द्रिय आनंद प्रगट हुआ वह परमब्रह्म कहलाता है। `शिव' कहलाता है। उन्हें उपद्रव रहित पूरण कल्याण प्रगट हो गया है इसलिये `शिव' भी कहलाता उन्हें शिव कहते हैं। वह लोग शिव कहते हैं वह नहीं वह (यहाँ) समझ में आया ?

`शिव' नमोथ्थुणुं में आता है। शिवमलय मरु, मणंत, `शिव' अर्थात् कल्याणमूर्ति कोई उपद्रव है नहीं, जिन्हें पूर्णानंद पर्याय प्रगट हो गई। उन्हें शिव भी कहते हैं।

वे `निरंजन' कहलाते हैं। **जिन्हें अंजन नहीं मैल नहीं निर्मलानंद जिनकी दशा प्रगट हुयी है (अतः) निरंजन कहलाते (हैं)** `निष्कलंक' कहलाते (हैं) भव और भव के भाव का कलंक जिन्हें नहीं - ऐसे निष्कलंक परमात्मा कहलाते (है)। आहाहा ! `अक्षय' कहलाते, हुये वे हुये नाश को प्राप्त होंगे नहीं अब पूर्णदशा प्राप्त हुयी, यह नष्ट नहीं होंगी, अब नष्ट नहीं होगी। पर्याय में पूर्णता हुयी वह भी नष्ट नहीं होगी। द्रव्य गुण का तो नाश नहीं। जिनकी पूर्णपर्याय प्रगट हो गई उसका नाश नहीं होगा। आहाहा ! अक्षय, अमेय, चारित्र पाहुड़ में तो पर्याय को अक्षय अमेय कहा है, साधक जीव की हो, क्योंकि प्रभु (ज्ञायक) स्वयं अक्षय अमेय है वस्तु अमेय अर्थात् जिसकी मर्यादा नहीं - ऐसा जिसका स्वभाव है और नष्ट किसी दिन होगा नहीं, ऐसे अक्षय अमेय को जिसने जाना और जिन्होंने स्थिरता प्रगट की इस स्थिरता को भी अक्षय अमेय कहा जाता है, पूरण हुये विना, आहाहा ! शक्ति अक्षय अमेय है, परन्तु पर्याय साधकरूप प्रगटी वह अक्षय अमेय है और पूर्ण प्रगटेगी वह तो अक्षय अमेय ही है आहाहा !

इसलिये उसे कहते हैं अक्षय, `अव्यय' नाश न हो किसी दिन, क्षय नहीं हो और व्यय (अर्थात) जिसका नाश न हो, हुयी जो दशा हुयी वह हुयी, आहाहा ! एक तरफ - ऐसा कहते हैं कि केवलज्ञान, संवर निर्जरा आदि पर्याय नाशवान है। यह पर्याय है इस (अपेक्षा) से, (३८ गाथा नियमसार) भगवान स्वयं अक्षय अविनाशी है, केवलज्ञान, केवलदर्शन अनंत आनंद जो पर्याय प्रगटी है उसकी एक समय की स्थिति है, इसलिये उसे वहाँ नाशवान कहा है। परंतु यहाँ तो वैसी की वैसी रहना है अतः उसे वहाँ अविनाशी अव्यय कहा है। आहाहा ! (वैसी की वैसी कायम रहनेवाली है) इस अपेक्षा से। है तो एक समय की पर्याय, पर्याय का स्वरूप ही एक समय की मर्यादा का है, इस अपेक्षा वह तो नाशवान है और दूसरे समय वैसी ही होगी और हमेशा वैसी की वैसी (होती) रहेगी, इस अपेक्षा अव्यय कहलाती है। आहाहा कितनी अपेक्षायें लागू होती हैं, अलौकिक वस्तु है।

`शुद्ध' है, यह पर्याय शुद्ध है, वस्तु, द्रव्य गुण तो शुद्ध है ही। वे सभी, परंतु यह जो इष्टदेव है व्यवहार से प्रीति करने लायक वह शुद्ध है। प्रत्येक पर्याय उनकी पवित्र प्रगट हो गई है `बुद्ध' है अकेली ज्ञान की पर्याय पूर्ण हो गई है, बुद्धति इति बुध; जाने... पूरा जानना जिसे प्रगट हो गया है, `बुद्ध' है `अविनाशी' है, नाश जिसका नहीं `अनुमप है' जिन्हें कोई उपमा नहीं, किसकी उपमा ? उसकी उपमा उन्हींको। आहाहा ! `अरूपी' है पर वस्तु है... इसलिये उसमें अनंत अनंत स्वभाव अपरिमित अमर्यादित भरा है, ऐसी पर्याय जब प्रगट होती है उसका क्या कहना। आहाहा ! वह तो अनुपम है उसे कोई उपमा दे सकते नहीं।

`अछेद्य है', `अभेद है' छेद सकते नहीं। यह उनकी पर्याय भी छेद सकते नहीं पर से। क्योंकि उसमें प्रभुत्व नाम का गुण है उस (प्रभुत्व) गुण की पर्याय के कारण पर्याय में भी प्रभुत्वपना आ गया है इसलिये वह स्वतंत्ररूप (है) और दूसरे से खण्डित न हो - ऐसा स्वभाव जिसका प्रगट हो गया है इसलिये उसे अछेद्य कहते हैं, अभेद्य है, खण्ड (टुकड़े) और बिखराव न हो। छेद अर्थात् टुकड़ा न हो छेद माने टुकड़ा न हो और भेद माने बिखराव न हो ऐसी अखण्ड ध्रुव पर्याय प्रगट हुयी है अंदर आहाहा ! ऐसी ही पर्याय का स्वरूप प्रगट है - ऐसा ही स्वरूप द्रव्य का है क्योंकि था, उसमें से आया। कहीं बाहर से आता नहीं। आहाहा ! अछेद्य अभेद।

`**परमपुरुष उसे कहते**' आहाहा ! प्रथम तो परमपुरुष तुम स्वयं परम पुरुष हो। आहा ! परमपुरुष पास में होने पर भी तुम परमपुरुष को देखने के लिये निवृत्ति लेता नहीं, परमपुरुष, प्रभु (ज्ञायक) परमपुरुष है, तुम्हारे पास में है, तुम्हारी एक समय की पर्याय के पास है, आहाहा ! उसे देखने, उसके अस्तित्व को जानने का प्रयत्न करते नहीं, और बाहर के प्रयत्न पुण्य और पाप में रुक कर परमपुरुष को भूल जाता है, यह तो परमपुरुष पर्याय में प्रगट हो गया आहाहा यह परमपुरुष है।

`**निराबाध है**' कोई इसे बाधा (नुकसान) करे - ऐसा है नहीं। आहाहा ! अब उनको भवभ्रमण हो कि किसी कर्म का उदय आये - ऐसा नहीं होता।

`**सिद्ध है**' यह पूरण सिद्ध परमात्मा `सत्यात्मा' सच्चा आत्मा है यह। आहाहाहा ! अभूतार्थ रागादिकवाला आत्मा तो अनात्मा है, वस्तु अपेक्षा आत्मा है, परंतु रागद्वेष पर्याय के कारण अनात्मा है। वह तो पर्याय अपेक्षा भी सत्यात्मा है। आहाहाहा ! वस्तु तो भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परंतु पर्याय में भी सत्र्याथ हो गया, (जैसा) पूरण सत्य स्वरूप है वैसा प्रगट हो गया है। आहा !

`**चिदानंद है**' चिद् अर्थात् ज्ञान और आनंद यह ज्ञान और आनंद जिसकी दशा है वह चिदानंद स्वरूप स्वयं है प्रभु इष्टदेव। एक ही नाम हो - ऐसा कुछ नहीं, ऐसे सभी चाहे जितने हजारों नाम हो परंतु उसमें हैं वह। `**सर्वज्ञ**' है यह सर्वज्ञ है यह एक समय की पर्याय में तीनकाल तीनलोक जाने - ऐसा सर्वज्ञपना जगत में है, ***ऐसी प्रतीति करनेवाले को श्रद्धा अपेक्षा केवलज्ञान प्रगट होता है।*** क्या कहा यह ? जो सर्वज्ञपना अंदर है वह केवलज्ञान है - ऐसा मान्यता में नहीं था, श्रद्धा में भरोसा नहीं था। यह सर्वज्ञ स्वरूपी हूँ, पूरण स्वरूपी हूँ - ऐसी प्रतीति हुयी अनुभव में, वह सम्यग्दर्शन में केवलज्ञान है - ऐसा प्रगट हुआ। श्रद्धा अपेक्षा से प्रगटा, पर्याय में प्रगट होगा जब केवलज्ञान होगा तब, पहले समकित में श्रद्धा अपेक्षा केवलज्ञान प्रगट होता है। आहाहा ! अर्थात् पूरण स्वरूप ही आत्मा है सर्वज्ञ स्वरूपी ही है

यह ऐसी प्रतीति हुयी तब सर्वज्ञ और केवलज्ञान नहीं था - ऐसा जो माना था उसे केवलज्ञान है, सर्वज्ञ है - ऐसा प्रतीति में (आया) उसने केवलज्ञान माना (तो) प्रतीति अपेक्षा केवलज्ञान हुआ, केवलज्ञान हुआ। आहाहाहा !

`**वीतराग**' है पूरण वीतरागस्वरूप ही है, परंतु यह तो पर्याय में वीतराग है, आहाहा ! जिसे एक समय की दशा, अकषाय वीतरागरूप है... ऐसी जिसे प्रतीति हो उसे श्रद्धा अपेक्षा वीतरागदशा प्रगटी है कि मैं वीतराग हूँ। परंतु यहाँ तो पर्याय में प्रगट हो गई है वीतराग दशा। आहाहा ! अरूपी होने पर भी, इसमें रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श का अभाव होने पर भी, उसके गुणों के स्वभाव में अरूपीपने के स्वभाव की कोई मर्यादा नहीं - ऐसा यह वीतराग है आहाहा ! जिसकी वीतराग शक्ति की भी मर्यादा नहीं। यह वीतराग पर्याय है, पर्याय में जिसे वीतरागता आयी वह अंदर वीतरागशक्तिरूप में अनंत स्वभाव है, उसमें से आयी है। वीतराग पर्याय आयी फिर भी शक्ति में तो अनंती वीतरागता, एक (एक) शक्ति में अनंती वीतरागता पड़ी है आहाहाहाहा ! उसकी जिसे प्रतीति और ज्ञान हुआ है उसे यह वीतराग है - ऐसी प्रतीति, अर्थात् वीतरागपना है - ऐसा श्रद्धा में प्रगटा। मैं जो रागी था पुण्यवाला था अल्पज्ञ और कषायवाला - ऐसा माना था, उसे अंदर में वीतरागस्वरूप, अकषाय स्वरूप - ऐसा जिसने अंर्तमुख होकर माना, जाना वह वीतरागपने की श्रद्धा प्रगट। हुयी मैं तो वीतरागी ही हूँ यह दशा उसे वीतरागपने की पर्याय में प्रगट होती है। आहाहा!

`**अर्हंत है**' उन्हें कुछ इसे जानना बाकी नहीं। अर्हंत है ना ? अरहंत नहीं लिया अर्हंत कुछ भी इन्हें जानना शेष नहीं। जिसका स्वभाव जानना है उनको नहीं जानना, यह किस प्रकार हो ? जानना उसे जानना जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, अनंत, अनंत, अनंत, अनंत, अनंत, उन्हें जानना जानना ही होता है। नहीं जानना - यह बात उन्हें हो सके नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा जिसे कुछ जानना शेष नहीं, पूरा रहस्य खिल गया है। - ऐसा आत्मा जगत में है इष्टदेव, उसे आत्मा इष्ट हुये बिना नहीं रहे। आहाहा ! पूरण अरहंत, पूरण दशा जिसे प्राप्त है, ऐसी जिसकी मौजूदगी जगत में है, जिसने उसे स्वीकारा कि, मेरा स्वभाव ही कुछ भी न जाने - ऐसा नहीं, पूरण जाने - ऐसा अरहंत स्वभाव है - ऐसी जिसे प्रतीति हुयी है, यह जीव ऐसे अरहंत को नमस्कार करता है आहाहाहा ! अन्य प्रकार कहें कि (यह) निश्चयपूर्वक का व्यवहार है।

यह इष्टदेव है - ऐसा प्रगट हुआ है। उसे यह इष्टदेव वंदनीक है। चाहे उनका नाम न ले कि भाई ऋषभदेव कि महावीर यह गुणवाचक हजारों नाम कहें तो भी उन्हें लागू होते है `**जिन है**' यह, आहाहाहा ! घट घट अंतर जिन बसे, यह शक्ति

रूप से जिन है। जिसे जिन की श्रद्धा हुयी, उन्हें जिनपना प्रगटा। कषायें प्रगट थी उसकी जगह जिनपना प्रगटा, उसे जिनकी पर्याय प्रगट होगी और (जिन्हें) है उन्हें यहाँ नमस्कार करते हैं। आहाहा ! वास्तव में तो इसको (आत्मा को) नमस्कार करते हैं, अर्थात् सभी तीन काल के जीव ऐसे हैं उन्हें, नमस्कार परंतु स्वयं का जीव भी जिन होनेवाला है, क्योंकि जिनस्वरूप की अनुभव और प्रतीति तो हुयी हैं मैं वीतराग हूँ। वह वीतराग नहीं था कषाय हूँ - ऐसा माना था तब उसे वीतरागपने की सत्ता का स्वीकार नहीं था। वीतरागपने की सत्ता का स्वीकार हुआ तब वीतराग हूँ - ऐसा प्रगटा। आहाहा ! और जिसे वर्तमान में पर्याय प्रगट हुयी है उसे नमस्कार करते हैं। आहाहा ! यह वास्तव में स्वयं को नमस्कार हुआ क्योंकि उसे जिनपना प्रगट होना है। आहाहाहाहा ! दूज हुयी उसे पूनम होना ही है, पूनम अर्थात पूरणता। पूनम पूरणता। इसप्रकार जिसने आप्त स्वरूप प्रभु - ऐसा जहां भान हुआ हैं और प्रगटा है आत्मा, आप्त प्रगटा है श्रद्धा में, वह पर्याय में प्रगटेगा उसे वर्तमान में नमस्कार करते हैं और मैं भी भविष्य में आप्त रूप में होऊँगा, अर्थात मैं भी स्वयं को नमस्कार करता हूँ। आहाहाहा ! आप्त मानने लायक, हित के लिये मानने लायक आप्त, आप्त स्वयं प्रभु आप्त ही है। परंतु पर्याय में जब ज्ञान हुआ तब वह पूरण आप्त है उसे नमस्कार करते हैं। पूरण हित का हितोपदेशी का आता है ना ? तीन बोल रत्नकरण्ड श्रावकाचार में हितोपदेषी......

`**भगवान**' है। ठीक ! यह भगवान है - ऐसे भगवान हैं, भग अर्थात अनंत आनंद ज्ञान, लक्ष्मी जिसका स्वरूप है (वह) वैसे भगवान हैं। भग...वान... संस्कृत टीका में है, भग अर्थात् अनंतज्ञान और अनंतदर्शन जिसकी लक्ष्मी - ऐसा भग- ऐसा जिसका स्वरूप वान वह हैं। भगवान उसका रूप है, अतः स्वयं भगवान ही है। परंतु भगवान है - ऐसा जिसे स्वीकार हुआ सम्यग्दर्शन में, यह भगवान पर्याय जिसे प्रगट हुयी है उसे नमस्कार करते हैं। स्वभाव में तो है, और पर्याय में जिसका भरोसा, प्रतीति और अनुभव है, जिसे पूरणता हुयी, उसे नमस्कार करते हैं। आहाहा !

`**समयसार**' है उसका नाम ही समयसार है `**नमः समयसाराय** आया ना ? इत्यादि हजारों नामों से कहो, हजारों नामों से कहो, (गुणों से) - आहाहा ! वह पुण्यशाली है - ऐसा कहलाता (है) पुण्य नाम पवित्रता का हों। आहाहा ! वह पापी (कहलाय) प्रभु को, स्वयं (अतीन्द्रिय आनंद का) अनुभव करते हैं पीते हैं और दूसरों को पिलाते हैं (इस) अपेक्षा से पापी कहलाते हैं। निर्विकल्प अनुभव पीते हैं और दूसरों को निर्विकल्प अनुभव पीने की बात करते (हैं) पा..... पी..... वह बच्चे (लकड़ी लेकर) चलते (हुये) नहीं कहते कुछ क्या कहते (पा..... पा..... पगली) पा..... पा..... पगली। छोटा लड़का

हो और लकड़ी लेकर चले - ऐसा छोटा लड़का पा..... पा..... आहाहा ! - ऐसा यह पूर्ण प्रभु पूरण पर्याय को पीता है, अनुभव करता है और उनके द्वारा पूरण पर्याय के अनुभव का उपदेश आता है, इसे जिस प्रकार रुचे, वह शब्द उसे लागू हो इस प्रकार होना चाहिए..... आहाहा !'

यह सभी नाम कथंचित सत्यार्थ हैं। उस उस अपेक्षा सत्यार्थ हैं, कथंचित अर्थात इसप्रकार चिदानंद, सिद्ध, जिन आदि सर्वथा एकांतवादियों को भिन्न नामों में विरोध है, भिन्न-भिन्न नामों में विरोध आता है दूसरों को। यहाँ - ऐसा कुछ नहीं, यह प्रभु है इन्हें कर्त्ता कह सकते (हैं) भोक्ता कह सकते (हैं) - ऐसा सभी। परंतु कर्त्ता किसका ? अपने स्वभाव का, भोक्ता भी अपने स्वभाव का। षट्कारक है न शक्ति करता कर्म करण सभी है। परमात्मा में षट्कारक का परिणमन पर्याय में समय समय में अनंत गुणों का एक-एक पर्याय में षट्कारक का परिणमन परमात्मा को भी है। नया नया है ना ! पर्याय नयी नयी होती है ना ! एक एक पर्याय में, अनंतगुण की अनंती पर्याय, उसमें एक एक पर्याय में षट्गुण हानिवृद्धि (रूप) षट्कारक की प्रवृत्ति है। षट्गुण हानिवृद्धि। वह तो अगुरुलघुत्वगुण में थी एक एक पर्याय में षट्कारक की प्रवृत्ति है। कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। शक्ति है, परंतु पर्याय में (भी) उसकी प्रगटता है। पर्याय में भी एक एक समय में, सिद्ध की पर्याय में भी पर्याय कर्त्ता (पर्याय) कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान इस प्रकार परिणमन कर रहे हैं। आहाहा ! गंभीर है... परमात्म स्वरूप... अरूपी है परंतु पदार्थ है ना ! अस्ति है ना ! यह ही सर्वोत्कृष्ट है।

रूपी हो बड़ा स्कंध रजकणों का पूरा अचेतन स्कंध वह रूपी है। उसकी अपेक्षा यह पदार्थ अरूपी है, महान है, महान सर्वोत्कृष्ट यह पदार्थ है। वह स्वयं जाने अपने को और दूसरों को, परंतु उसे छुये बिना अपने स्वभाव के सामर्थ से जाने - ऐसा सर्वोत्कृष्ट पदार्थ प्रभु स्वयं आत्मा है। जिसे प्रगट दशा (पूर्ण) हो गई वह तो परमात्मा है। उसे यहाँ नमस्कार करते हैं। इसलिये अर्थ यथार्थ समझना चाहिए।

अब इसका संक्षिप्त हिन्दी किया।

प्रगटै निज अनुभव करै सत्ता चेतनरूप।
सब ज्ञाता लखिके नमौं। समयसार सण भूप।।१।।

`प्रगटै निज अनुभव' यहाँ पर्याय की प्रगट दशा की बात ली है। जिसे यह दशा प्रगट हुयी है सर्वज्ञ वीतराग आदि की, निज अनुभव करे वह अपना अनुभव करता है। आया है ना, **स्वानुभूत्या चकासते** सत्ता भाव (गुण) रूप है और चैतन्य स्वभाव अर्थात् चेतनरूप है `भावाय' चित्स्वभावाय, स्वानुभूत्या चकासते यह गर्भित किया

इसमें। प्रगटै निज अनुभव करे अपने आनंद को प्रगट करके अनुभव करे। सत्ता है अस्तित्ववाली वस्तु है, चेतनरूप स्वभाव उसका चेतनभाव है 'भावाय' चित्त स्वभावाय, स्वानुभूत्या चकासते यह मिला दिया इसमें प्रगटे निज अनुभव करे अपने आनंद के अनुभव को प्रगट करके अनुभव करते। अस्तित्व है, टिकनेवाली वस्तु है चेतन रूप उसका स्वभाव चेतन है भाव, इस भाववान का भाव और चेतनरूप इसका स्वभाव। आहाहाहा ! '**प्रगटे निज अनुभव करे सत्ता चेतन रूप**' आहाहाहाहा ! वाह ! पुराने पंडित भी, पाठ में अनुकूल हों वह शब्द लिखे हैं। चित्स्वभावाय, भावाय भावाय का अर्थ सत्ता किया, चित्स्वभाव का अर्थ चेतनरूप किया और स्वानुभूत्या का अर्थ निज अनुभव किया। '**सो ज्ञाता लखिके नमौं**' वह ज्ञाता हो गयी, अवस्था पूरण हो गई। सर्वज्ञपद सर्वजान कर, लखीने अर्थात जानकर। देखा ! ऐसे भगवान को जान कर देखा... जानकर अनुभव कर, मैं जाननेवाला आत्मा - ऐसा अनुभव करके नमस्कार करता हूँ। आहाहा ! उसे मैं नमस्कार करता हूँ। समयसार सहु भूप... यह समयसार बड़ा बादशाह है भूप है, आत्मा राजा है (चेतनराजा) समयसार बड़ा बादशाह, राजा महाराजा, समयसार महाराजा है पूरणदशा जिसकी प्रगट होगई, राजते शोभते इति राजा। १७-१८ गाथा में आता है। जीवराया। ऐसे राजते शोभते अपनी अनंती शांति आनंद से शोभायमान हो, वह राजा। वह महाराजा बादशाह राजा स्वयं है। स्वयं स्वयं का बादशाह और स्वयं भूप (राजा)। आहाहा !

अब दूसरे श्लोक में सरस्वती को... क्या कहते हैं ? पहले श्लोक में देव को नमस्कार किया पद्धति ऐसी है ना ? देव-शास्त्र-गुरु तीन - ऐसा आता है ना ? तो पहले देव को नमस्कार किया अब दूसरा शास्त्र को करते हैं बाद में तीसरा गुरु को नहीं करते (क्योंकि) गुरु स्वयं है अमृतचन्द्राचार्य अर्थात् टीका करनेवाला मैं हूँ - ऐसा कहकर... आहाहा !

श्लोक-२

(अनुष्टुभ्)

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यंती प्रत्यागात्मनः।
अनेकांतमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्।।२।।

अब सरस्वती को नमस्कार करते हैं -

श्लोकार्थ :- [अनेकान्तमयी मूर्तिः] जिसमें अनेक अन्त (धर्म) **हैं ऐसे जो ज्ञान तथा वचन उसमयी मूर्ति [नित्यम् एव] सदा ही [प्रकाशताम्] प्रकाशरूप हो। [अनंतधर्मणः प्रत्यागात्मनः तत्त्वं] जो अनन्त धर्मोवाला है और परद्रव्यों से तथा परद्रव्यों**

के गुण-पर्यायों से भिन्न एवं परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपने विकारों से कथंचित् भिन्न एकाकार है, ऐसे आत्मा के तत्त्व को अर्थात् असाधारण, सजातीय विजातीय द्रव्यों से विलक्षण-निजस्वरूप को [पश्यन्ति] वह मूर्ति अवलोकन करती है।

भावार्थ :- यहाँ सरस्वती की मूर्ति को आशीर्वचनरूप से नमस्कार किया है। लौकिक में जो सरस्वती की मूर्ति प्रसिद्ध है वह यथार्थ नहीं है, इसलिये यहाँ उसका यथार्थ वर्णन किया है। सम्यग्ज्ञान ही सरस्वती की सत्यार्थ मूर्ति है। उसमें भी सम्पूर्ण ज्ञान तो केवलज्ञान है, जिसमें समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष भासित होते हैं। वह अनन्त धर्म सहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है, इसलिये वह सरस्वतीकी मूर्ति है, और उसीके अनुसार जो श्रुतज्ञान है वह आत्मतत्त्व को परोक्ष देखता है इसलिये वह भी सरस्वती की मूर्ति है और द्रव्यश्रुत वचनरूप है, वह भी उसकी मूर्ति है, क्योंकि वह वचनों के द्वारा अनेक धर्मवाले आत्मा को बतलाती है। इसप्रकार समस्त पदार्थों के तत्त्व को बतानेवाली ज्ञानरूप तथा वचनरूप अनेकांतमयी सरस्वतीकी मूर्ति है; इसीलिये सरस्वती के वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी इत्यादि बहुत से नाम कहे जाते हैं। यह सरस्वती की मूर्ति अनन्तधर्मों को `स्यात्' पद से एक धर्मी में अविरोधरूप से साधती है, इसलिये सत्यार्थ है। कितने ही अन्यवादीजन सरस्वती की मूर्ति को अन्यथा (प्रकारान्तर से) स्थापित करते हैं, किन्तु वह पदार्थ को सत्यार्थ कहनेवाली नहीं है।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि आत्मा को अनन्तधर्मवाला कहा है, सो उसमें वे अनन्त धर्म कौन कौनसे हैं ? उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि - वस्तु में अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तिकत्व, अमूर्तिकत्व इत्यादि (धर्म) तो गुण हैं; और उन गुणों का तीनों काल में समय-समयवर्ती परिणमन होना पर्याय है, जो कि अनन्त हैं और वस्तु में एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, भेदत्व, अभेदत्व, शुद्धत्व, अशुद्धत्व आदि अनेक धर्म हैं। वे सामान्यरूप धर्म तो वचनगोचर हैं, किन्तु अन्य विशेषरूप अनन्त धर्म भी हैं जो कि वचन के विषय नहीं हैं, किन्तु वे ज्ञानगम्य हैं। आत्मा भी वस्तु है, इसलिये उसमें भी अपने अनन्त धर्म हैं।

आत्मा के अनन्त धर्मों में चेतनत्व असाधारण धर्म है वह अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है। सजातीय जीवद्रव्य अनन्त हैं, उनमें भी यद्यपि चेतनत्व है तथापि सबका चेतनत्व निजस्वरूप से भिन्न भिन्न कहा है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य के प्रदेशभेद होने से वह किसी का किसी में नहीं मिलता। वह चेतनत्व अपने अनन्त धर्मों में व्यापक है, इसलिये उसे आत्मा का तत्त्व कहा है, उसे यह सरस्वती की मूर्ति देखती है, और दिखाती है। इसप्रकार इसके द्वारा सर्व प्राणियों का कल्याण होता है, इसलिये `सदा प्रकाशरूप रहो' इसप्रकार इसके प्रति आशीर्वादरूप वचन कहा है।।२।।

श्लोक-२ पर प्रवचन

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यंती प्रत्यागात्मनः।
अनेकांतमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्॥२॥

अनेकान्तमय मूर्ति, जिसमें अनेक धर्म (गुण) हैं - - ऐसा ज्ञान और वचन दोनों, वाचक और वाच्य, वाचक ऐसी वाणी वह भी सरस्वती कहलाती है, और उसका वाच्य - ऐसा जो ज्ञान, वो भी सरस्वती कहलाती है। आहाहा ! जिसमें अनेक धर्म हैं - - ऐसा जो ज्ञान और वाणी ज्ञान में भी अनेक धर्मों का स्वभाव है और वाणी में भी अनेक स्वभाव हैं। आहाहाहा ! सर्वज्ञ का अनुसरण करनेवाली वाणी... इसलिये आगे अनुभवशील कहेंगें ! आहाहा ! समझ में आया ? (बराबर) पश्यंती का अर्थ करेंगे और यह मूर्ति अवलोकन करती है, देखती है। यह इसमें नहीं, उसमें आया है कलशटीका में आता है कलश टीका में आता है। अनुभवशील, अनुभवशील - ऐसा अर्थ किया इसका वहाँ कलश टीका में, सर्वज्ञ की अनुसरण करनेवाली है यह इसमें (पास रखी हुयी जिनवाणी की तरफ इशारा करते हुये) यह कलशटीका है ना ? देखो पश्यंती का अर्थ किया, यहाँ पश्यंती का अर्थ मूर्तिमान अवलोकन किया है - कलशटीका में पश्यंती का अर्थ। अनुभवशील अनुभवशील अर्थात ? आहाहा ! यह वाणी सर्वज्ञ स्वरूप का अनुसरण करनेवाली है। अनुभवशील का अर्थ किया (है) सर्वज्ञ का अनुसरण करनेवाली है, अनुसरण करने में सर्वज्ञ निमित्त हैं। अनुसरण करके... है इसमें अनुभवशील... सर्वज्ञ का अनुसरण करनेवाली वाणी है इसलिये अनुभवशील कहा। पश्यंती का अर्थ यह किया। आहाहा!

ऐसी टीका ! पश्यंती का अर्थ अब इसमें क्या किया होगा ? जगमोहनलालजी ने उन्होंने तो - ऐसा लिखा है। 'पहले यहाँ (सोनगढ़ में) जब विद्वत् परिषद इकट्ठी हुयी थी और हम सुनने आये तब कानजीस्वामी के पास से मुझे अध्यात्म की रुचि पलटी - ऐसा लिखा है। परंतु उस समय क्रमबद्ध को अस्वीकार करते थे, क्रमबद्ध (को) स्वीकार नहीं करते थे।' - ऐसा लिखा है इसमें (अध्यात्म अमृतकलश) कल पुस्तक आयी है न, उसमें। क्रमबद्ध को न माने तो वस्तु की व्यवस्था ही रहती नहीं। केवलज्ञान तो एक तरफ रहा। केवलज्ञान है उसके अनुसार होता है। परंतु वस्तु है, उसकी पर्याय इसप्रकार एक के बाद एक के बाद एक इस प्रकार होती यह वस्तु की व्यवस्था है। जैसे वस्तु में गुण एक के बाद एक (है), उनमें क्रम

नहीं, एक साथ में हैं इसप्रकार तिरछे साथ में है (हाथ से इशारा करते हुये) ऐसे आयत में साथमें है (इसीप्रकार) लम्बाई में आगे पीछे... यह प्रश्न ही नहीं होता, एक के बाद एक, एक के बाद एक। छहों द्रव्य की पर्याय क्रमसर, क्रमबद्ध चलती हैं ऐसी तो वस्तु की व्यवस्था है। उस समय अस्वीकार करते (विद्वत्परिषद के समय) परंतु अब स्वीकृत लगता है। इतना पढ़ा, वह (क्रमबद्धपर्याय) पुस्तक आयी है ना ? उसमें यही (विषय है) !

यहाँ कहते हैं अनेकांतमय वाणी आहाहा ! परंतु जिसमें अनेक स्वभाव हैं, स्वपर को कहने की शक्ति वाणी में स्वतः है और ज्ञान में स्वपर को जानने की शक्ति स्वतः है अर्थात ज्ञान और वाणी में अनेक धर्म कहने में आये हैं इसलिये उन्होंने अनेकांत धर्म हैं - ऐसा कहा। ज्ञान में अनेक धर्म हैं, - स्वभाव, और वाणीमें अनेक स्वभाव, स्वपर कहने को शक्ति, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी और अनंत आनंद को कहने की शक्ति तो वाणी में वाणी के कारण है तथा यह सर्वज्ञ है इसलिये वाणी में कहने की ताकत आयी - ऐसा नहीं। आहाहा ! सर्वज्ञ है वह तो निमित्त हैं, निमित्त से दूसरे में कुछ होता नहीं, यह वाणी में ही सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनंत आनंद आदि वाणी में कहने की शक्ति, वाणी के कारण स्वयं सिद्ध अपने कारण है यहाँ सर्वज्ञ है, इसलिये वाणी में सर्वज्ञपने को कहने की शक्ति आई, वाणी में - ऐसा नहीं। भले एक साथ हो परंतु उससे यहां है - ऐसा नहीं, इसलिये अनेकांतमयी मूर्ति दोनों को कहकर ! दोनों स्वतंत्र है ना, ज्ञान और वाणी दोनों स्वतंत्र है, आहाहा अनंतगुण और अनंती पर्यायें स्वयं स्वतंत्र अनंत धर्म स्वभाववाली और उसे कहनेवाली वाणी, है तो चैतन्य के स्वरूप से विरुद्ध वाणी, कारण कि आत्मा चेतन है वाणी अचेतन है। आहाहा !

परंतु उस वाणी में भी अनंत स्वभाव, धर्म अपने से स्वयं से रहे हुये हैं। आहाहाहाहा ! यह वाणी स्वयं ही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अनंत आनंद ऐसे आत्मपदार्थ को अपने स्वभाव से ही कथन करती है, यहाँ (सर्वज्ञ) है इसलिये कथन करती (है) - ऐसा नहीं है। समझ में आया ? अंदर स्वतंत्रता है ना ? आहाहाहा ! अपूर्व बात है। आहाहा ! वीतराग के अलावा ऐसी बात कहाँ है। एक एक परमाणु में षट्कारक शक्ति मौजूद है, एक एक परमाणु में कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण छह गुण हैं, इसलिये उसकी पर्याय में षट्गुणों का परिणमन अपने से स्वतः होता है। यह वाणी - ऐसा कहे कि सर्वज्ञ है जगत में, तो यह सर्वज्ञ है उसे अनुसरण करके... भले वाणी कही परंतु सर्वज्ञ का निमित्त है अतः वाणी में सर्वज्ञ हैं - ऐसा आया - ऐसा नहीं। उस वाणी में जो अनंत धर्म, जाती है रही हैं आहाहा ! एक एक परमाणु

में अनंतगुण आकाश के प्रदेश की संख्या से भी अनंत गुणे गुण हैं, आकाश के प्रदेश हैं जिनका अंत नहीं, उसके जो प्रदेशों की संख्या उससे अनंत गुने गुण एक जीव में हैं और इतने ही चैतन्य मात्र (में) नहीं परंतु अचेतन रूपी परमाणु में भी इतने ही अनंत गुण हैं आहाहा ! दोनों स्वतः है। किसी के कारण कोई नहीं, आहाहाहा ! - ऐसा जो ज्ञान और वचन उसमय मूर्ति, मूर्ति अर्थात स्वरूप, आत्मा का ज्ञान स्वरूप, वाणी का शब्द स्वरूप, मूर्ति अर्थात स्वरूप।

`**सदा ही प्रकाशरूप हो**' आहाहा ! अनेकांत धर्मस्वभाव - ऐसा आत्मा ज्ञानमय सदा प्रकाशमान रहो, और उसकी वाणी कहनेवाली (भी) आहाहा ! ***तीनों कालों में तीनों कालों को जाननेवाले का विरह नहीं होता। तीनों कालों में तीनों कालों को जाननेवाले का किसी काल में विरह नहीं होता। तो तीनकाल में तीनकाल को जाननेवालों की वाणी जो है, वह भी पूरी, उसका विरह नहीं होता जगत में।*** आहाहाहाहा ! यह वाणी भी स्वतंत्र है उस वाणी में अपने अनंत धर्म हैं, वाणी ने स्वयं अपने धर्मों को धारण कर रखा है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के धर्मों को छूते नहीं। यह तीसरी गाथा समयसार। प्रत्येक द्रव्य, चाहे तो परमाणु हो कि चेतन हो अपने गुण पर्याय को चूमते हैं परंतु अन्य द्रव्य के गुण पर्याय को कोई द्रव्य पर्याय छूते नहीं, चूमते-अडते नहीं, आहाहाहा ! वाणी निकली यह सर्वज्ञ पर्याय को छूती नहीं और सर्वज्ञ पर्याय वाणी को चूमती नहीं, छूती नहीं। आहाहा ! फिर भी सभी का (स्वभाव) स्वयंसिद्ध अनंत धर्मस्वरूप है। अनेकांतमयी मूर्ति आहाहाहा ! वीतरागवाणी का - ऐसा स्वरूप।

सदा प्रकाशरूप रहो। सर्वज्ञपना और अनंतगुण सदा प्रगट रहो, और उसको कहनेवाली वाणी भी सदा विद्यमान रहो। आहाहा ! मुनि स्वयं हैं, अमृतचन्द्र आचार्य संत हैं, छठवें सातवें (गुणस्थान में) झूलते हैं, तीन कषाय का अभाव है और आत्मा में लीन हैं, राग आता है उसमें लीन नहीं। यह टीका करते हैं। उसका विकल्प आता है, उसमें लीन नहीं, उससे भिन्न रह कर राग को छुये बिना ज्ञान में (लीन हैं) ज्ञान में, स्वपर प्रकाशक ज्ञान स्वतः होता है, राग है इसलिये राग का ज्ञान होता है - ऐसा नहीं - ऐसा तो इसका स्वभाव है आहाहा ! और वाणी का - ऐसा स्वभाव है आहाहा ! ***भले उसे सर्वज्ञ अनुसारणी कहो, पर यह तो निमित्त से कथन है सर्वज्ञ है उसका अनुसरण करके वाणी आती है, अल्पज्ञ प्राणियों को जैसी वाणी होती (है) वैसी सर्वज्ञ को नहीं होती इतना है।*** परंतु वाणी आती है वह स्वतः सिद्ध स्वयं से आती है आहाहा ! ऐसी स्वतंत्रता।।

`**कैसी है वह मूर्ति ? कैसा है स्वरूप उसका ? अनंत धर्मणः प्रत्यगात्मनः तत्त्व**' जो अनंत धर्मवाला है और जो **परद्रव्य से तथा परद्रव्य के गुणपर्यायों से भिन्न तथा**

परद्रव्य के निमित्त से अपने विकारों से कथंचित भिन्न आत्मा की बात की कैसा है प्रभु ? कि अनंत धर्मवाला अनंत जिसके धर्म अर्थात गुण और पर्याय को धारण किया है, धर्म अर्थात गुण और पर्याय को धारण किया है।

और जो परद्रव्यों से, परद्रव्य से बिलकुल भिन्न है प्रभु (आत्मा), उसीप्रकार पर-द्रव्य के गुण पर्याय से बिलकुल भिन्न है वह वाणी के गुणपर्याय से भी प्रभु भिन्न है। आहाहाहाहा ! **और परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपने विकारों से कथंचित भिन्न** अर्थात् हुए तो हैं इसकी पर्याय में, फिर भी उसका जाननेवाला रहता है। अस्तित्व पर्याय में है फिर भी उसका जाननेवाला अर्थात् कथंचित भिन्न और कथंचित अभिन्न..... पर्याय में है, इस अपेक्षा अभिन्न कहलाता (है) और उसके स्वरूप में, ज्ञान में यह नहीं (हैं), राग हो, उसे जाननेवाला जानता है, इसलिये इसमें नहीं - ऐसा कथंचित् भिन्न `एकाकार' है आहाहाहा !

भगवान आनंद स्वरूप प्रभु एक स्वरूप है `एकाकार' अर्थात एक स्वरूप में है अपने द्रव्य गुण पर्याय से एक स्वरूप में है पर द्रव्य के गुण पर्याय से भिन्न है। आहाहाहा ! और पर द्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपनी पर्याय से कथंचित भिन्न है अभिन्न है, है इस अपेक्षा अभिन्न है, परंतु स्वरूप में गुण में नहीं इसलिये भिन्न है।

- ऐसा यह आत्मतत्त्व को... आहाहाहा ! ऐसे आत्मतत्त्व को असाधारण सजातीय, विजातीय द्रव्यों से विलक्षण, क्या कहा ? - ऐसा आत्मतत्त्व है असाधारण कि अपने जैसी सजातीय अनंत आत्मामें हैं, है ? यह उनसे भी विलक्षण है। जो इस आत्मा के गुण हैं वह दूसरे में नहीं, यह दूसरों के गुण आत्मा में हैं - ऐसा नहीं है। अतः दूसरे आत्मा के गुणों से इस आत्मा के गुण विलक्षण हैं। आहाहाहाहाहा ! व्यक्ति मध्यस्थ से शांति से पढ़े विचारे तो उसे वस्तु हाथ में आये। परंतु अपनी मानी हुयी बात से वस्तु (हाथ नहीं आये) यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ! प्रभु का विरह हुआ परंतु उनकी वाणी रह गई उसमें यह वस्तु स्थिति ! उसमें से उसका अर्थ समझने को, बहुत मध्यस्थता चाहिए। कोई पक्षपात में रह कर वाणी का अर्थ करे- ऐसा नहीं चले। आहाहा !

असाधारण सजातीय अर्थात (अन्य) आत्मा, उससे विलक्षण है, (अर्थात) यह सर्वज्ञ आदि आत्मायें है दूसरी, अन्य आत्मा और दूसरे सर्वज्ञ इनसे भी वह विलक्षण है कारण कि (उनका) जो ज्ञान है (वह) यहाँ नहीं और यह (मति श्रुत) ज्ञान है वह वहाँ नहीं। विलक्षण कहा। सजातीय आत्मायें से भी एक आत्मा का लक्षण विलक्षण (भिन्न) है।

`**विजातीय**' आत्मा के अलावा पांच द्रव्य-धर्मास्ति अधर्मास्ति आकाश और काल

(तथा पुद्गल) ऐसे द्रव्यों से विलक्षण निज स्वरूप को वह मूर्ति अर्थात वाणी अवलोकन करे अर्थात देखती है।

ज्ञान और आनंद की यह दशा देखती है और वाणी उसे कहती है - ऐसा लेना वहाँ, पश्यंती का अर्थ, वहाँ सर्वज्ञ अनुसारणी वाणी को कहा है कलशटीका में। यहाँ भी स्वयं अपने ज्ञान आनंद आदि समस्त गुणों को जानता है, और वाणी भी पूरण स्वरूप को कहती है, दिखाती है, वाणी भी पूरण स्वरूप को दिखाती है - ऐसा इसका अर्थ है।

विशेष कहने में आयेगा... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं.-३ श्लोक -२ ता. ९-६-७८ शुक्रवार, जेठ सुद-४ सं. २५०४

समयसार के दूसरे कलश का अर्थ है। भावार्थ :- दूसरे कलश का भावार्थ है ना ? पहले देव की स्तुति की। देव में इष्टदेव स्वयं आत्मा, उसकी भी की और इष्टदेव परमात्मा उसकी भी उसमें आ गई अब दूसरी शास्त्रकी... देव-शास्त्र-गुरु तीन... शास्त्र की विनय भक्ति करते हैं सदा प्रकाशित रहो - ऐसा कहेंगे।

`यहाँ सरस्वती की मूर्ति को आशीर्वचन।' आशीर्वाद (रूप) वचन अर्थात् आशीर्वाद-आशीर्वाद (रूप) नमस्कार किया है, आशीर्वादरूप नमस्कार किया है। लौकिक में जो सरस्वती की मूर्ति प्रसिद्ध है वह यथार्थ नहीं है, इसलिये यहाँ उसका यथार्थ वर्णन किया है।

`जो सम्यग्ज्ञान है वह ही सरस्वती की सत्यार्थ मूर्ति है' सच्ची मूर्ति तो सम्यग्ज्ञान है, उसमें भी सम्यग्ज्ञान में सम्पूर्णज्ञान तो केवलज्ञान है, कि जिसमें सभी पदार्थ प्रत्यक्ष दिखते हैं। वे अनंत धर्मो सहित आत्म तत्त्व को प्रत्यक्ष देखते हैं। केवलज्ञानकी मूर्ति, केवलज्ञान स्वरूप अनंतधर्मो सहित आत्मतत्त्व, अपने तत्त्व को देखती है केवलज्ञान में प्रत्यक्ष देखती है, अतः **`वह सरस्वती की मूर्ति है,' इसलिये वह सरस्वती की मूर्ति कहलाती है।**

`तद्नुसार केवलज्ञान को अनुसरण करके जो श्रुतज्ञान है वह आत्मतत्त्व को परोक्ष दिखलाता है'। परंतु यहाँ यह खूबी है, वह कहते हैं ना कि केवलज्ञान की अपेक्षासे तो क्रमबद्ध बराबर है। वह कहते हैं। केवलज्ञान की अपेक्षा क्रमबद्ध बराबर है परंतु श्रुतज्ञान की अपेक्षासे नहीं। श्रुतज्ञान तो क्रम और अक्रम दोनों (प्रकार से) जानता है।

इसलिये यहाँ अनुसारी शब्द ग्रहण किया है। इसकी बड़ी चर्चा हो चुकी है। (पं.) फूलचन्द्रजी ने चर्चा की है। वैसे केवलज्ञान की अपेक्षासे देखो तो वह व्यवस्थित है, प्रत्येक पदार्थ की पर्याय क्रमबद्ध है। जिससमय जहाँ जो होना है वही होगी, परंतु श्रुतज्ञान के अनुसार - ऐसा नहीं, कारण कि श्रुतज्ञान परोक्ष है इसलिये इसे क्रम और अक्रम दोनों होते हैं, वह लोग - ऐसा कहते हैं। तब केवलज्ञान अनुसार नहीं हुआ वह तो कल्पना के अनुसार हुआ। समझ में आता है ? - ऐसा कहते हैं, सभी वो लोग पंडितजी (फूलचन्दजी) के सामने, केवलज्ञान के हिसाब से क्रमबद्ध बराबर है। पहले से ही सभी विरोध क्रमबद्ध का था, वह सं. २०१३ की साल से क्रमबद्ध नहीं, एक के बाद एक होता है परंतु इसके बाद यह ही हो और यही हो - ऐसा नहीं। यहाँ तो केवलज्ञान के अनुसार तो एक के बाद एक ही होना है वह ही हो तब क्रमबद्ध है। परंतु खानियाँ चर्चा में श्रुतज्ञान में, उन लोगों ने फर्क किया। - ऐसा कि श्रुतज्ञान केवलज्ञान के अनुसार नहीं वह तो छद्मस्थ है इसलिये उन्हें क्रमसर भी होता है और अक्रम भी होता है। लिखा है ना ?

तब यहाँ तो कहते हैं; तदनुसार है ना ? तदनुसार जो श्रुतज्ञान, (**हो**) **उसका नाम श्रुतज्ञान कहलाये, केवलज्ञान के अनुसार कहें** (**और**) **जानें, वह श्रुतज्ञान कहलाता है।** ***केवलज्ञानानुसार न हो और अपनी कल्पना से जाने वह श्रुतज्ञान नहीं कहलाता, वह तो कुज्ञान कहलाता है।*** बड़ा फर्क है ! बड़ा अंतर है, शुरूआत में ही बड़ा फर्क है, बड़ा फर्क ! वस्तु है वह व्यवस्थित है परंतु उसका हेतु भी व्यवस्थित है। ***जिस समय होनेवाली जो पर्याय उसी समय हो आगे पीछे नहीं उसका हेतु 'अकर्त्तापना' है। पर्याय का कर्त्तापना नहीं, पर्याय होती है उसे करें क्या ? और अकर्त्तापने का हेतु ज्ञातापना है। अकर्त्ता नास्ति से है ज्ञाता अस्ति से है, जाननेवाला देखनेवाला है बस !!*** जिस समय जो जहाँ हो, अपनी पर्याय भी जिस समय हो, उसे वह जाननेवाला देखनेवाला है। बदलनेवाला कि बनानेवाला नया बनाता है - ऐसा नहीं। (कि) वहाँ नयी रचना होती ही है, उसे बनाना पड़ता नहीं। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म ! पंडितों के बीच बड़ी चर्चा चली (श्रोताः भगवान ने कहा कि नियत और अनियत है)

कहा नहीं ? क्रम और अक्रम है - ऐसा कहा, उसने श्रुत (ज्ञान) के अनुसार नियत अनियत, क्रम और अक्रम है। केवलज्ञान की अपेक्षासे नियत (निश्चित) है। उसका अर्थ क्या ? श्रुतज्ञानी केवली के अनुसार मानते कि अपने अनुसार मानते हैं ? बड़ा फर्क बड़ा विवाद था ना ?

यहाँ यह कहते हैं। केवलज्ञानी ने अनंतधर्मवाला आत्मा जिसप्रकार है उसी प्रकार देखा, जाना। इसलिये केवलज्ञान भी सरस्वती की मूर्ति है। ***तीन बातें लेंगे तीन...***

केवलज्ञान, श्रुतज्ञान और वाणी, सरस्वती की मूर्ति के तीन प्रकार..... एक तो यह लिया `तदनुसार' केवलज्ञान को अनुसरण करके... बजन यहाँ है (शास्त्र में) चिन्ह भी किया है, वहाँ जो श्रुतज्ञान है, वह आत्म तत्त्व को परोक्ष देखता है। केवलज्ञान आत्मतत्त्व को अनंत धर्मसहित क्रमसर होते देखता है, इसीप्रकार श्रुतज्ञान भी केवलज्ञान के अनुसार अनंत धर्मसहित तत्त्व को, क्रमबद्ध होती पर्यायों को (श्रुतज्ञान) जानता है। - ऐसा है।

परोक्ष देखता है। पहले आया था कि श्रुतज्ञान कथंचित प्रत्यक्ष और कथंचित परोक्ष है। पहले (कलश) में आया था। नमः समयसाराय में। क्योंकि श्रुतज्ञान अपने को जानता है भावश्रुतज्ञान। इसमें पर की अपेक्षा राग की नहीं, इस अपेक्षासे प्रत्यक्ष है और यह पूरण देख सकता नहीं। असंख्य प्रदेश और अनंतगुणों की अपेक्षा से (अतः परोक्ष) और केवलज्ञान की अपेक्षा से उसे परोक्ष है। कथंचित परोक्ष और कथंचित प्रत्यक्ष इसप्रकार है। केवलज्ञान सर्वप्रत्यक्ष ही है वहाँ कथंचित प्रत्यक्ष और कथंचित परोक्ष नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें याद रहे... स्वरूप ही - ऐसा है।

सर्वज्ञ भगवान, जो छह द्रव्य हैं उनकी जिस समय जो पर्याय नियम से हो उनको उस, उस प्रकार देखते हैं। श्रुतज्ञानी भी नियम से देखे और अनियम से देखे, नियत भी देखे अनियत भी देखे, तो केवलज्ञान अनुसार श्रुतज्ञान रहा नहीं, तो (वह) श्रतुज्ञान ही नहीं। आहाहा ! थोड़ा फर्क लगे, परंतु अंदर फर्क बहुत हो जाता है क्योंकि आत्मा स्वयं सर्वज्ञस्वरूप ही है। सर्व को जानने के स्वरूपवाला ही है। वास्तव में तो वह अपनी पर्याय की रचना करता - ऐसा भी कहाँ है वहाँ? होता है उसे जानते हैं। आहाहा ! इसीप्रकार अनंत द्रव्यों की पर्यायों होती हैं उन्हें जानते हैं। पर को (जानते) हैं - ऐसा कहना भी व्यवहार है, निश्चय से तो अपनी पर्याय को जानते हैं। आहाहा ! ऐसी बात है।

`आत्मतत्त्व को परोक्ष देखते हैं इसलिये वह भी (श्रुतज्ञान) सरस्वती की मूर्ति है,' केवलज्ञान एक समय में पूरण प्रत्यक्ष देखता (है) इसलिये वह सरस्वती की मूर्ति कहलाता है।, तदनुसार श्रुतज्ञानी भी परोक्ष देखते हैं, इसकारण वह भी सरस्वती की मूर्ति (कहलाती है।) वह अन्य मतवाले, (जो) मूर्ति कहते हैं वह नहीं। मोर के ऊपर सरस्वती बैठी है और सरस्वती वीणा बजाती है, वह तो सभी कल्पनायें है। यह तो सम्यग्ज्ञानरूपी सरस्वती ! जो पूर्ण स्वरूप को प्रत्यक्ष देखे (केवलज्ञान) और श्रुतज्ञानरूपी परोक्ष सब देखे, परोक्ष भी, परंतु देखे सब, इसलिए इसे भी यहाँ सरस्वती की मूर्ति (कहा) श्रुतज्ञान अरूपी भाव को परोक्ष सरस्वती कहा। केवलज्ञान को प्रत्यक्ष सरस्वती की मूर्ति कहा।

अब तीसरा :- `द्रव्यश्रुतवाणी, वाणी को भी सरस्वती कहा जाता है' द्रव्य श्रुत अर्थात् वाणी है वह वचनरूप है, वह भी उसकी मूर्ति है। वाणी, वीतराग की वाणी है वह भी ज्ञानी की वाणी है वह भी एक मूर्ति है `कारण कि वचनों द्वारा अनेक धर्मोवाला', उन अनेक धर्मों को सर्वज्ञ प्रत्यक्ष देखते हैं, श्रुतज्ञानी अनेक धर्मों को परोक्ष देखते हैं, `द्रव्यश्रुत में वाणी द्वारा अनेक धर्मोंवाले आत्मा को वह बताते हैं' इतना फर्क (है) वह (ज्ञान) तो देखता है। यह वाणी देखती नहीं, वाणी बतलाती है। वीतराग की वाणी द्रव्यश्रुत जो है वह वचनरूप है। वह भी उसकी मूर्ति है कारण कि वचनों द्वारा अनेक धर्मवाले आत्मा को बताती है। देखती है यह यहाँ नहीं लेना, वाणी द्वारा देखती है - ऐसा नहीं, बताती है। फिर देखनेवाला देखता है उसमें वाणी निमित्त है, वह अलग बात है।

`इस तरह सर्व पदार्थों के तत्त्वों को दिखानेवाली,' सर्व पदार्थों के तत्त्वों को दिखानेवाली, पहले आत्मा को कहा था, कहा था न ? पहले कहा सर्वपदार्थ' प्रत्यक्ष दिखते हैं। अनंत धर्म सहित आत्म तत्त्व को प्रत्यक्ष देखते हैं। केवलज्ञान में - ऐसा आया था। सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष दिखते हैं वह भी अनंत धर्मो सहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखते हैं, इसप्रकार और यहाँ सर्व पदार्थों के तत्त्व को बतानेवाली `ज्ञानरूप' केवल और श्रुत और वचन अनेकांतमय सरस्वती की मूर्ति है। अनेकांतमय, अनेक स्वरूप है, अनंत धर्म हैं ना। अतः अनेकांत कहा, अनेकांत अनेक अन्त, अनेक धर्म। आत्मा में अनंत धर्म है और प्रत्येक पदार्थ में अनंत धर्म है। उन अनंत धर्म को जाननेवाली और कहनेवाली उसे यहाँ सरस्वती की मूर्ति कहा जाता है। आहाहा !

`इसलिये सरस्वतीके नाम वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी, आता है न,' (नमो देवी वागेश्वरी जैन वाणी) इत्यादि बहुत कहा जाता है। **यह सरस्वती की मूर्ति अनंत धर्मों को `स्यात्' पद से एक धर्मी में...** एक वस्तु में अपेक्षा से अविरोधपने साधती (कहती/जानती) है। नित्य है उसी को अनित्य कहती है, अनित्य है उसे नित्य कहती (दिखाती) है। कायम रहे इसलिये नित्य है, पलटे इसलिये अनित्य है - इसप्रकार अनेक धर्मों को वह सरस्वती साधती है। आहाहा ! इसलिये वह सत्यार्थ है, इसलिये केवलज्ञान श्रुतज्ञान और वाणी तीनों ही सत्यार्थ हैं। क्योंकि वह अनंत धर्मों को धारण करनेवाले द्रव्य को अनंत धर्म स्वरूप है ऐसे अनेकांत अर्थात् अनेक धर्मरूप बताती है। जानती है, और बताती है, इसलिये वह सरस्वती सत्यार्थ है।

`कितने ही अन्य मतवाले सरस्वती की मूर्ति को अन्यप्रकार से स्थापित करते हैं, परंतु वह पदार्थों को सत्यार्थ कहनेवाली नहीं' वस्तु जिसने जानी नहीं। जिसका सर्वज्ञ स्वभाव (है), आत्मा का सर्वज्ञ स्वभाव ही है बस ! सबका जानना, अभव्य हो

कि भव्य, सभी का स्वभाव से सर्वज्ञशक्ति और सर्वज्ञ स्वरूप ही आत्मा है। जानना इतना ही उसका स्वरूप है। किसीका करना कि किसी से अपने में कराना - ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं। जानना, सभी जानना। आहाहा ! अन्यथा कहे वह सत्यार्थ नहीं।

`कोई प्रश्न करे की आत्मा को अनंत धर्मवाला कहा है तो उसमें अनंत धर्म कौन कौन से है ?' ***अनंत धर्म कहे, धर्म शब्दसे आत्मा ने धारण किये हुये गुण और पर्याय उसे धर्म कहा जाता है।*** यहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप धर्म नहीं, आत्मा ने और पदार्थों ने स्वयं अपने गुण और पर्याय को धारण कर रखा (है) अतः उसे धर्म कहा जाता है। ***धर्मी ने अनंत धर्मों को धारण कर रखा है अर्थात अनंतगुण और अनंत पर्यायों को धारण कर रखा है।*** आहाहा !

उसका उत्तर :- कौन कौन से धर्म ? वस्तु में सत्‌पना... प्रत्येक वस्तु है वह स्वयं से है, सत् है। अस्तिपना मौजूद चीज है, वस्तुपना है उसमें अपना प्रयोजन सिद्ध करें - ऐसा वस्तुपना है। अपनी पर्याय को स्वयं सिद्ध करे- ऐसा प्रत्येक वस्तु का वस्तुपना है, **`प्रमेयपना'** (प्रमेयत्व है)। प्रत्येक पदार्थ ज्ञान में ज्ञेयरूप हो, प्रमाण में प्रमेयरूप हो - ऐसा उसका स्वभाव है। प्रमाण ज्ञान में प्रमेयरूप से, ज्ञेयरूप से हो - ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसे सभी धर्म अज्ञात और `प्रदेशपना' सभी पदार्थों में प्रदेश है, अंश, अंश है। चाहे परमाणु हो फिर भी उसमें एक अंश है ना ?

जीव में असंख्य प्रदेश हैं, आकाश में अनंत प्रदेश हैं धर्मास्ति, अधर्मास्ति में असंख्य (प्रदेश) हैं, परंतु प्रदेशत्वपना वह उनका धर्म (अर्थात्) धारण किया हुआ (स्वभाव) है प्रदेशपना - ऐसा धारण किया हुआ तत्त्व है - ऐसा अन्यमत में कहीं नहीं। असंख्य प्रदेशी और अनंतप्रदेशी, जीव असंख्यप्रदेशी (है) - ऐसा अन्यत्र नहीं। उसने असंख्य प्रदेश धारण कर रखे हैं, आत्मा का यह एक - ऐसा धर्म है। **`चेतनपना'** जीव में चेतनपना यह उसका स्वभाव है। अजीव में अचेतनपना वह उसका स्वभाव है। **`मूर्तिकपना'** जड़ में (पुद्‌गल का) मूर्तिकपना यह उसका स्वभाव है। **`अमूर्तिकपना'** आत्मा और धर्मास्तिकाय आदि में अमूर्तिकपना यह तो उसका गुण है आहाहा ! है ?

`और उन गुणों का, उन अनंत गुणों का, तीनों काल समय-समय पर परिणमन होना, आहाहा ! वह पर्याय है' यह भी उसका धर्म है। प्रत्येक द्रव्य का अनंतगुण भी उसका धर्म धारण किया हुआ है और प्रत्येक द्रव्य तीनों काल समय समय में परिणमन करते हैं। इसलिये उसकी पर्याय (का होना) भी उसका धर्म है। वह पर्याय पर के कारण होती है - ऐसा नहीं। ***चाहे तो विकारी हो कि अविकारी परंतु परिणमन रूप पर्याय उसका अपना धर्म है।*** समझ में आया ? फिर कर्म के कारण विकार

हो और आत्मा के कारण कर्म का बंध हो यह बात रहती नहीं। सर्वज्ञ के कारण क्या हो (सकता) ? स्वयं स्वयंकी आत्मा के कारण अपना ज्ञान होता है।

यहाँ वाणी को निमित्त कहेंगें। निमित्त कहेंगे। परंतु निमित्त का अर्थः वह उससे होता है - ऐसा नहीं। वाणी निमित्त है इसलिये उसे सदाप्रकाशरूप रहो - ऐसा आर्शीवचन, आशीर्वचन अर्थात आशीर्वाद कहने में आया है। आहाहाहा ! आखरी बोल लिया है। सदा प्रकाशरूप रहो। आखिरी बोल लेंगें। मूल में तो यह बताकर यह कहना है ना ! केवलज्ञान भी सदाप्रकाशरूप रहो। श्रुतज्ञान भी सदा प्रकाशरूप रहो और वाणी भी वस्तु को बताने में सदा प्रकाशरूप रहो। आहाहा ! यह आशीर्वचन है। है ?

`देखो... अनंत पर्याय हैं,' फिर भी वस्तु में एकपना, प्रत्येक पदार्थ वस्तु अपेक्षा एक है और गुण पर्याय अपेक्षा अनेक है। यह भी उसके धर्म है। धारण किया हुआ (अर्थात्) एक और अनेक धारण किया हुआ भाव है। भाव कहो कि धर्म कहो। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप धर्म - यह बात अभी नहीं। यहाँ तो धारण किया हुआ हो वह धर्म बस ! ऐसी बातें है।

`एकपना, अनेकपना, नित्यपना, अनित्यपना' प्रत्येक वस्तु कायम रहने की अपेक्षा नित्य है और पलटने की अपेक्षा अनित्य है। वह भी उसका स्वभाव और धर्म है, यह पलटना और कायम रहना वह भी पर के कारण नहीं, उसका अपना धर्म है। आहाहाहा ! यहाँ तो उसका अपने अनंत गुण और उन उन गुणों की पर्यायें चाहे विकृत हो कि अविकृत, कैसी भी हों, जो उस समय हो वह उसका उस समय का धारण किया हुआ धर्म है। पर के कारण नहीं। उसका अपना स्वरूप ही - ऐसा है। आहाहाहा !

कुछ लोग - ऐसा कहते हैं एकांत है। कर्म से विकार होता है, कर्म के कारण रखड़ते हैं। अपन को क्यों केवलज्ञान नहीं होता ? कर्म के कारण। यह तो द्रव्य कर्म के कारण... यहाँ तो कहते हैं। चार अनुयोगों की एक पुस्तक छापती है ना ? `सम्यग्ज्ञान' उसमे - ऐसा लिखती है कि `(अपने को केवलज्ञान) क्यों नहीं होता ? कर्म के कारण अपने को केवलज्ञान नहीं होता।' बिलकुल गलत बात है। अपनी पर्याय उस उस काल में अपनी धारण की हुयी योग्यता से होती है, पर के कारण नहीं और पर का अभाव हो तो यहाँ हो, यह भी नहीं आहाहा ! - ऐसा ही हरेक पदार्थ का अनंत गुण और अनंत पर्याय को रखे-धारण करे - ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा ! है ?

`भेदपना'** प्रत्येक वस्तु में गुणपर्याय का भेद है और वस्तु अपेक्षा अभेद है यह भी उसका धर्म है **`भेदपना-अभेदपना' **`शुद्धपना-अशुद्धपना'** आत्मा (द्रव्य अपेक्षा) शुद्ध

होती है, और पर्याय अशुद्ध... पुद्गल में भी - ऐसा होता है। परमाणु अकेला हो तो शुद्ध है और विभाव रूप में दो, तीन, चार (परमाणु इकठे) हों तो उसकी पर्याय विभाव रूप अपने से होती है, वह भी अशुद्ध होता है, अपने कारण हो ! - ऐसा अशुद्धपने का उसका अपना धर्म है। शुद्ध-अशुद्ध आदि अनेक धर्म है **`वह सामान्य रूप धर्म तो वचनगोचर हैं'** कितने ही खास कहने लायक तो वचनगम्य है, परंतु कितने तो कह नहीं सकते ऐसे भी गुण हैं। प्रत्येक द्रव्य में अनंत सामान्य गुण हैं अस्तित्व आदि और अनंत विशेषणगुण हैं, चेतन अचेतन आदि ऐसे अनंतधर्म है एक द्रव्य में, अनंत सामान्य हैं और अनंत विशेष है।

`यहाँ सामान्यरूप धर्म तो वचनगम्य है परंतु दूसरे विशेषरूप धर्म तो वचन के विषय नहीं ऐसे भी अनंत धर्म है। वचन से नहीं कह सकते** !' वाणी जड़ है, प्रभु चैतन्य है। धर्मास्ति आदि भी अरूपी हैं, परमाणु आदि रूपी हैं। ऐसे भी अनंतधर्म हैं **`जो ज्ञानगम्य हैं' ज्ञानजान सकता है परंतु वाणी द्वारा उनकी विशेषतायें भेद डालकर अलग-अलग कह सकें - ऐसी ताकत वाणी में नहीं। सामान्य को कह सके विशेष के भेदों को न कह सके, फिर भी ज्ञानगम्य है। वाणी द्वारा विशेष कह नहीं सकते, फिर भी ज्ञानगम्य (होने से) ज्ञान में जानने में आयें - ऐसे हैं। आहाहा !

`आत्मा भी वस्तु है इसलिये उसमें अपने भी अनंत धर्म हैं'** कितने ही सामान्य कहे जा सकते हैं, कितने ही नहीं कहे जा सकते, फिर भी ज्ञानगम्य वस्तु है ऐसे अनंत धर्म आत्मा में भी हैं। वस्तु एक धर्म अनंत, अनंतगुण और अनंती पर्याय। आहाहा ! `एक' भी धर्म है `अनेक' भी धर्म है `नित्य' भी धर्म है `अनित्य' भी धर्म है, `भेद' भी है, `अभेद' भी है `सामान्य' भी है `विशेष' भी है। आहाहा ! बहुत संक्षेप में समेटा है। **`आत्मा के अनंत धर्मों में चेतनपना असाधारण धर्म है' दूसरे अनंतगुण हैं (धर्म) परंतु चेतनपना असाधारण है अर्थात् कि दूसरे गुण चेतनरूप नहीं। अपने में भी अनंत गुण हैं परंतु चेतन तो जानने और देखनेवाले यही दो धर्म है। ऐसे - ***दूसरे अनंतगुणों में यह नहीं इसलिये चेतनपना यह असाधारण अर्थात दूसरों में नहीं, दूसरे (गुण) ऐसे नहीं। दूसरों में नहीं दूसरा - ऐसा नहीं।*** आहाहा ! इसलिये चेतन का असाधारण धर्म कहा है।

आत्मा के अंदर चेतनपना असाधारण धर्म है, असाधारण अर्थात एक ही यह वस्तु है उसमें अनंतधर्म है उसमें से कोई - ऐसा चेतन नहीं। उसी प्रकार यह चेतन दूसरे चेतन में है वह चेतन यह चेतन नहीं। उसका चेतन (पना) उसमें है और इसका चेतन (पना) इसमें है। आहाहा।

ऐसी स्वतंत्रता है। ***प्रत्येक द्रव्य भी स्वतंत्र, गुण भी स्वतंत्र, पर्याय उस उस समय***

में होनेवाली पर्याय वह भी उसका अपना धर्म है, इसलिये स्वतंत्र है, उसे पर की कोई अपेक्षा नहीं। आहाहाहाहा ! यह पन्ना ऊँचा हुआ- ऐसा (पू. गुरुदेव श्री हाथ से पन्ना उठाते हुये) उसको इस अंगुली की अपेक्षा नहीं। उसका पर्याय धर्म ही उस समय उसप्रकार का होने का है। आहाहा ! (श्रोताः पर की अपेक्षा हो तो पर्याय स्वतंत्र नहीं रही) पर्याय स्वतंत्र है **'पर से हो वह पर्याय'** एक व्यक्ति ने - ऐसा लिखा था, लेख में आया था पर से हो वह पर्याय उन बंसीधरजी ने बहुत ज्यादा लिखा है, परंतु पर से हो वह पर्याय नहीं। पर्याय, अपनी उस समय की अवस्था उत्पन्न होने की योग्यता है, अपने कारण, चाहे तो विकाररूप हो चाहे तो अविकार रूप हो, परंतु उस उस समय होने की उस पर्याय की योग्यतारूप धर्म अपना अपने से अपने में है। **वास्तव में तो छह द्रव्य की पर्याय षट्कारक रूप से परिणमने के कारण उसे पर की अपेक्षा तो नहीं परंतु उसे अपने द्रव्य गुण की भी अपेक्षा नहीं।** आहाहा ! समझ में आया ? समझ में आता है ?

छहों द्रव्य, भगवान ने छह द्रव्य (देखे हैं) संख्या अपेक्षा अनंत, जाति अपेक्षा छह, परंतु, अनंत द्रव्य अपनी अपनी पर्याय के षट्कारकरूप से कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। इससे वह पर्याय, स्वयं सिद्ध (है)। ***पर की अपेक्षा बिना और द्रव्य गुण के आश्रय और आधार बिना षट्कारकरूप परिणमना - ऐसा उनकी पर्याय का धर्म है*** (जिज्ञासाः- आधार है कि नहीं महाराज) आधार यह पर्याय का आधार पर्याय। गुण का आधार नहीं - ऐसा है। आहाहा ! - ऐसा है यह (पंचास्तिकाय) बासठवी गाथा में आया है ना ? वहाँ चर्चा हुयी थी ना बासठ गाथा, विकार है वह षट्कारक का परिणमन स्वतः है। जिसे पर कारक की अपेक्षा नहीं, अपने में विकार होने में षट्कारक कर्त्ता, कर्म, पर्याय कर्त्ता, पर्याय कार्य, पर्याय साधन करण, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय अपादान, पर्याय अधिकरण, **उसे पर साधन की तो अपेक्षा नहीं परंतु (अपने ही) द्रव्य गुण की (भी) अपेक्षा नहीं** - ऐसा कहा था तब कठिन लगा, एक (पं.) फूलचन्दजी ने स्वीकार किया था। (पं.) फूलचन्दजी कहते थे कि स्वामीजी - ऐसा कहते हैं कि निश्चय से विकार के षट्कारक पर्याय के पर्याय में अपने कारण से होते है, दूसरों के कारणों की उसे अपेक्षा नहीं। पर के कारणों कर्त्ता, कर्म की उसे अपेक्षा नहीं। आहाहा ! यह तो सं. २०१३ की चर्चा (है) इक्कीस वर्ष हो गये।

यहाँ सं. २००३ में चर्चा हुयी थी, सभी पण्डित एक एकत्र हुये थे ना, बत्तीस तेत्तीस (विद्वान) विद्वत परिषद हुयी थी ना ? तीसरी साल उसे इकतीस वर्ष हुये उस समय एक पण्डित थे। वह सर्वज्ञपना नहीं मानते थे- ऐसा कहते थे कि पर्याय

होती है वह पर की अपेक्षा हो तो होती है। यहाँ तो कहा है पर की अपेक्षा तो नहीं परंतु अपने द्रव्य गुण की अपेक्षा नहीं। पण्डितजी - ऐसा है। (श्रोता :- उन्होंने बनारस से न्याय पढ़ा था) वह नहीं मानते थे। यह चर्चा ललितपुर में बहुत हुयी थी ललितपुर में उन्होंने सुना नहीं और बाहर की बातें सुनी तो उसमें थोड़ा...।

- ऐसा परम सत्य परमात्मा, त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का कहा हुआ, सर्वज्ञ से जाना हुआ, देखा हुआ, प्रत्यक्ष किया हुआ, और वाणी-वाणी के कारण प्रत्यक्ष निकली। वाणी के कारण निकली। भगवान सर्वज्ञ हैं अतः वाणी निकली - ऐसा नहीं है। आहाहा ! कारण कि वाणी के शब्द हैं परमाणु उनकी वाणी रूप पर्याय, षट्कारक रूप में पर्याय कर्त्ता, पर्याय कर्म, पर्याय करण-साधन, भाषा की पर्याय, पर्याय से होती है ! ऐसी बात है, ओंठ से नहीं आत्मा से नहीं, इच्छा से नहीं, **वह भाषा की पर्याय भाषा के परमाणु (भाषावर्गणा) से भी नहीं - ऐसा है। पर्याय के षट्कारकरूप सत् है ना ? द्रव्य सत्, गुणसत्, पर्यायसत्। सत् हो उसे हेतु (निमित्त) की आवश्यकता नहीं होती।** स्वयं सिद्ध सत् अपनी अपेक्षा से सत् है। पर के कारण पर्याय होती नहीं, बहुत कठिन लगता है, एकांत लगे ना ? आहाहा !

`**आत्मा के अनंत धर्मों में चेतनपना खास धर्म है**' यह असाधारण खास एक ही ये धर्म उसका है।' चारित्र, श्रद्धा, अस्तित्व, वस्तुत्व, समकित, आदि सभी गुण हैं, पर्याय हैं परंतु यह गुण अपने को जानते नहीं। ज्ञान गुण ही स्वयं, स्वयं को जानता है और पर को जानता है। आहाहाहा ! - ऐसा वस्तु का स्वरूप है। आत्मा के अनंत धर्मों में, अनंत गुण और पर्याय में चेतनपना खास धर्म है `दूसरे अचेतन द्रव्यों में नहीं, सजातीय जीव द्रव्य अनंत हैं' दूसरी आत्मायें भी अनंत हैं। `फिर भी जबकि उनमें चेतनपना है, तब भी सभी का चेतनपना अपने स्वरूप से भिन्न भिन्न है।' इसका चेतनपना और दूसरी आत्मा का चेतनपना भिन्न भिन्न है। इसके चेतनपने के कारण उसका चेतनपना है - ऐसा नहीं, और उसके चेतनपने के कारण इसका चेतनपना है - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा स्वतंत्र द्रव्य का स्वरूप है। इसे जाने नहीं और धर्म हो जाय उसे ? आहाहा ! पर की दया पालो, व्रत करो, उपवास करो यह तो सभी राग है और (यदि) कर्त्तापना मानता है तो वह मिथ्यात्व है। राग का कर्त्तापना ज्ञान को सोंपे... ज्ञान का स्वरूप तो जानता है, उसका स्वरूप चेतन जानना है। जाननेवाले को करना सोंपें यह तो मिथ्यात्व है। आहाहाहा !

`**सजातीय**' अपनी जाति के `जीवद्रव्य अनंत हैं।' उनमें यद्यपि चेतनपना है सभी में, तो भी सबका चेतनपना निजस्वरूप में भिन्न-भिन्न कहा है। आहाहा ! क्योंकि सभी द्रव्यों के प्रदेशभेद होने से `सभी के अंश प्रदेश भिन्न (भिन्न) हैं।' आहाहा ! किसी

के किसी में मिलते नहीं, अनंत आत्माओं में सभी में चेतनपना होने पर भी, अपने प्रदेश में रहता है। किसी के प्रदेशों में वह चेतनपना जाता नहीं। अतः अपने प्रदेश में रहनेवाला चेतनपना पर प्रदेशों में जाता नहीं पर के प्रदेश में रहनेवाला चेतनपना यहाँ आता नहीं। यह तो समझ में आये ऐसी बात है। एक घण्टे में कितना याद रखना ? यह तो सरल भाषा है यह कोई बहुत कठिन भाषा नहीं।

`**यह चेतनपना अपने अनंत धर्मों में व्यापक है,** है ? अपने आत्मा के अनंत गुण है ना उसमे चेतनपना व्यापक है, पसरा हुआ है। व्याप्त है, है यह (ज्ञायक) `**इसलिये उसे आत्मा का तत्त्व कहा है**' आत्मा का तत्त्व यह (है) क्योंकि चेतन अनंत धर्मों में व्यापक है इसलिये चेतन को आत्मा का तत्त्व कहा है। चेतनपना अपना एक असाधारण तत्त्व (धर्म) है और वह चेतन अनंत धर्मों में रहता है, फैला हुआ है, इसलिये चेतन को आत्मा का तत्त्व कहने में आया है। (अब वह अलग अलग कैसे आया, व्याप्य कैसे हुआ) व्यापा हुआ है ना। (व्याप्य तो है) यह असंख्य प्रदेश में फैला हुआ है इतना ही। (लेकीन ये असंख्य प्रदेश) वह नहीं। उसके प्रदेश का स्वभाव एक प्रदेश में अनंत गुण एकसाथ रहते है इस अपेक्षा व्यापक है।

जहाँ ज्ञान है वहाँ दर्शन है, वहाँ आनंद है, उन उन प्रदेशों में अनंत इसप्रकार व्यापे है। **यह चेतन अनंत गुणों में व्यापक है इसलिये चेतन को आत्मा का तत्त्व कहा है।** आहाहा ! भिन्न भिन्न गुण होने पर भी चेतनतत्त्व अनंत गुणों में व्यापक है ना, जहाँ श्रद्धा है वहाँ चेतन है, चारित्र है वहाँ चेतन है, अस्तित्व है वहाँ चेतन है, चेतनपना भले ही अस्तित्व रूप नहीं होता फिर भी उसके अनंत धर्मों में चेतनपना पसरकर रहा है ना ! - ऐसा है।

यह तो तत्त्वज्ञान का विषय है। दूसरे श्लोक की तो शुरूआत ही चलती है आहा !

फिरसे, `**वह चेतनपना अपने अनंत धर्मों में व्यापक है**' ***व्यापक है, (परंतु) पर रूप (अन्यगुणरूप) हुआ है - ऐसा यहाँ नहीं है। वैसे तो फैला हुआ है। जहाँ आनंद है वहाँ चेतन है, अस्तित्व है वहाँ भी चेतन है इतना। यह चेतन अस्तित्वरूप हुआ है या अस्तित्व है या चेतनरूप से हुआ है - ऐसा नहीं, परंतु वह सभी अनंत गुणों में चेतन इसप्रकार फैले है, इस अपेक्षा से उसे आत्मा का तत्त्व कहा जाता है।*** आहाहाहा ! साधारण व्यक्ति को अभ्यास न हो और एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय करके इच्छामि प्रतिक्रमण याद कर डाले, सामायिक कर डाले, हो गया (धर्म) जाओ ! यहाँ तो `**अनंत धर्मणस्तत्वं**' - ऐसा शब्द है ना ? मूल श्लोक में, है ना ? अनंत धर्मणस्तत्वं यह शब्द है ना पहले पद में। `**पश्यंती प्रत्यगात्मनः**' उसकी व्याख्या की

है `**अनंत धर्मणस्तत्वं पश्यंती**' यह अनंत धर्मों में व्यापक चैतन्य तत्त्व - ऐसा, पश्यंती यह सभी को देखता है।

सर्वज्ञ सभी को (जानें) और श्रुतज्ञान सभी को (जाने) और वाणी सभी को कहती है, यह अनंत धर्मणस्तत्वं की व्याख्या की। आहाहा ! पहला पद है उसका कि आत्मा में अनंत धर्म अर्थात गुण और पर्याय है, उसमें चेतनतत्त्व है, वह सभी गुण पर्याय में फैला हुआ है। इसप्रकार (हाथ से इशारा करते हुये) रहा हुआ है। दूसरे गुण (या) पर्यायरूप से हुआ है - ऐसा नहीं। अन्य गुणों की पर्याय रूप चेतना के गुण और पर्याय हुये हैं - ऐसा नहीं, परंतु सभी गुण की पर्याय में यह चेतनपना व्यापकर फैलकर रहा हुआ है। इस अपेक्षा उसे आत्मा का चेतन तत्त्व कहा है। आहाहा ! अनंत धर्मणस्तत्वं। समझ में आया ?

इसमें तो अंदर लिखा है उसका अर्थ है। सामने पुस्तक तो रखी है आहाहा ! कितनी सरल भाषा में पं. जयचन्दजीने लिखा है यह। पहले के पण्डित... पण्डित जयचन्द्रजी, पण्डित राजमलजी, टोडरमलजी, बनारसीदास बहुत बड़ा काम कर गये हैं। बहुत काम कर गये। मध्यस्थ (थे)। जो सत्य था वह बाहर किया। किसी का पक्ष नहीं। अभी तो एक पण्डित कहते हैं कि निमित्त से होता है, दूसरा कहता है कि निमित्त से नहीं होता, निमित्त होता है परंतु इससे होता नहीं, अब मुश्किल ! एक पण्डित कहते है, व्यवहार से निश्चय होता है, दूसरा कहता कि भाई व्यवहार हो अवश्य, विषय है इसलिये व्यवहार हो, परंतु उससे निश्चय हो - ऐसा नहीं। कारण व्यवहार राग और दुःख है और धर्म है वह सुख है। दुःख से सुख होता नहीं, लो यह बड़ा विवाद है। क्या करें ? (जो ताकतवर हो उसके सामने विवाद हो) हो, हो विरोध हो ! करते हैं करते हैं। अब ठंड़ा होता जा रहा है थोड़ा थोड़ा कुछ बाहर पढ़ते हैं ना, लोग पढ़ते हैं। बीस लाख शास्त्र छप गये हैं, लाखों अन्य अन्य तरह की छपनेवाली है। यहाँ कहाँ गुप्त बात रखना है, एक पुस्तक थोड़े ही है यहाँ तो बीस लाख पुस्तके हैं, करोड़ों रूपयों की तो पुस्तके हो गयी हैं। करोड़ों के मंदिर हो गये हैं। करोड़ों के यहाँ मकानादि हो गये (है)। यह कहीं गुप्त नहीं। आहाहा !

यहाँ तो अनंत धर्मणस्तत्वं पहला शब्द है उसका स्पष्टीकरण किया कि चेतन को अनंत धर्म का तत्त्व क्यों कहा ? कि चेतन है यह असाधारण है दूसरों के गुण उसमें नहीं, उसीप्रकार यह चेतना दूसरों में नहीं, एक बात, और यह चेतन अपने अनंत धर्मों में पसरा हुआ है, व्याप्त है। ***अनंत धर्मसे हुआ है - ऐसा नहीं लेकिन अनंत धर्म में व्याप्त है, इस अपेक्षा से चेतन को आत्मतत्त्व कहा जाता है***

आहा !

`**उसे यह सरस्वती की मूर्ति देखती है**' देखा ? किसे ? आत्मतत्त्व को-कौन तत्त्व को ? कि चेतनतत्त्व को कैसा चेतनतत्त्व ? कि अंदर में व्यापक है अनंत धर्मों में उसे। ऐसे चेतन तत्त्व को सर्वज्ञ की पर्याय देखती है, श्रुतज्ञान की पर्याय देखती है, वाणी उसे दिखाती है, आहाहा ! `**उसे यह सरस्वती की मूर्ति देखती है और दिखाती है**' यह वाणी। केवलज्ञान और श्रुतज्ञान देखता है और वाणी उसे दिखाती है।

`**इस प्रकार इसके द्वारा सर्व प्राणियों का कल्याण होता है**' देखा ? आहाहा ! अनंत धर्मणस्तत्वं पश्यन्ती प्रत्यग् आत्मनम्। आहाहा ! यह कहा ना ? **अनेकांतमयी मूर्ति नित्यमेव प्रकाशताम्** नित्य जयवंत रहो। केवलज्ञान हमेशा प्रगट रहो, श्रुतज्ञान साधकरूप में कायम रहो और उसे बतानेवाली वाणी भी जगत में कायम रहो - आहाहा !

`इसप्रकार इसके द्वारा सर्व प्राणियों का कल्याण होता है।' देखा ? केवलज्ञान से कल्याण होता है श्रुतज्ञान से होता है, और वाणी भी निमित्त है, निमित्त है। निमित्त से कल्याण होता है (- ऐसा नहीं) होता है अपने से, परंतु उसमें वाणी निमित्त है इसलिये उसे भी कल्याण का कारण कहते हैं निमित्त का अर्थ इतना है कि वह वस्तु है। परंतु वह पर में करती है और पर को कुछ करती हो तो वह निमित्त ही नहीं रहता वह तो उपादान हो जाता है। आहाहा ! वस्तु स्थिति जैसी है वैसी न्याय से जाननी पड़ेगी ना ?

इसप्रकार उससे सभी प्राणियों का कल्याण होता है ठीक ! यहाँ तो सर्व प्राणियों का उससे कल्याण होता है। **कल्याण होनेवाले का कल्याण होता है तो (- ऐसा कहा जाता है।) सर्व प्राणियों का इससे ही कल्याण होता है।** कल्याण करनेवाले (अपना कल्याण) करते हैं, केवलज्ञान, श्रुतज्ञान और वाणी। आहाहा ! अतः सर्वप्राणियों का कल्याण होता है। `**इसलिये सदा प्रकाशरूप रहो**' - ऐसा है ना आखरी शब्द, देखो... प्रकाशताम् है ना ? `नित्यमेव प्रकाशताम्' चौथा पद है। नित्यम `एव' सदा ही प्रकाशमान्, सदा ही नित्यम् `एव' एव अर्थात् निश्चय, नित्य ही, प्रकाशमान, केवलज्ञान नित्य प्रकाशमान रहो, श्रुतज्ञान नित्य प्रकाशमान रहो और वह चैतन्य तत्त्व जो अपने अनंत धर्म में व्यापक है इसलिये उस चैतन्य तत्त्व को आत्मतत्त्व कहा। उसे बतानेवाली वाणी भी सदा प्रकाशमान रहो। यह निमित्त से (कथन) है, समझ में आया ?

नहीं पकड़ में आया हो तो रात्री को चर्चा में (पूँछना) (....... प्रश्न पूँछेंगें तो हमारी पोल खुल जायेगी) पोल खुल जायेगी तो उससे स्पष्ट होगा उसमें क्या है ? पोल (खुलने से) पक्का हो जायेगा, पोल में पक्का हो जाय, पोल खुल जाय तो पोल (भरजाय) पक्की हो जाय श्रोता (आप जान लोगे) ध्यान रख कर सुनते नहीं

- ऐसी पोल खुल जाय। अपरिचित वस्तु है इसलिये उसे न भी पकड़ सके! यह तो अलौकिक बातें है बापू ! आहाहाहा !

`सदा प्रकाशरूप रहो एसा आशीर्वचन रूप उसे कहा है' आहाहा ! पं. जगमोहनलालजी - ऐसा कहते हैं, बड़े आदमी छोटे आदमी को आशीर्वाद कैसे दें? - ऐसा कहते हैं वाणी है वह छोटी है और बड़े आदमी उसे कैसें आशीर्वाद दें? परंतु उसका अर्थ यह रहा, यह प्रकाशित रहो - ऐसा, इसमें - ऐसा अर्थ लिखा है देखो ! इसका अर्थ किया है ना ?

अभी यह दो श्लोक हुये - `नमः समयसाराय' यह श्लोक हुआ और `अनंत धर्मणस्तत्वम्' यह श्लोक हुआ, दो श्लोक हुये। अर्थात् प्रथम देव का श्लोक हुआ, दूसरा वाणी का हुआ, शास्त्र का। देव और शास्त्र दोनों का हुआ। अब देव-शास्त्र-गुरु तीन... अब रहे गुरु। वह स्वयं गुरु हैं अतः अपनी बात (स्तुति) न करके, स्वयं टीका करनेवाले हैं। आहाहा ! तो टीका करते हमारा गुरुपना, जो मुनिपना है शुद्ध, उसकी वृद्धि हो - ऐसा कहेंगे। टीका करते हुये... ऐसी भाषा लिखी है, समयसार व्याख्या एव, `एव' शब्द है `एव' भी उसका अर्थ इस समयसार की व्याख्या के समय में। नहीं तो - ऐसा तो है कि टीका समयसार व्याख्या एव-समयसार की टीका करते समय, टीका के समय हमारी शुद्धि हो, और अशुद्धि नष्ट हो, उसका अर्थ यह कि मैं समयसार की टीका करूंगा उस समय मेरा झुकाव द्रव्य का ध्येय ध्रुव ऊपर हमेशा रहेगा, उससे अशुद्धि टलेगी और शुद्धि बढ़ेगी। समझ में आया। आहाहाहाहा ! कारण कि टीका करते समय हमारा लक्ष्य अर्थात् जोर तो ध्रुव ऊपर रहता है। हमारी दृष्टि का विषय त्रिकाली ध्रुव है, वह कभी छूटता नहीं। चाहे जैसा ज्ञान और चाहे जैसी वाणी हो परंतु जो ध्रुव नित्यानंद प्रभु है, हमारी दृष्टि का परिणमन उसके ऊपर हुआ है। आहाहाहा !

ध्यान में हमने जिसे ध्येय बनाया है, यह ध्येय कभी हटेगा नहीं। आहाहा ! अतः टीका में भाषा ऐसी आयेगी। समयसार व्याख्या एव, समयसार की टीका से ही... टीका से ही - ऐसा आयेगा। परंतु उसका अर्थ - ऐसा है कि समयसार की टीका के कालमें आहाहा ! पण्डितजी ! हमारे लक्ष्य की धारा ध्रुव ऊपर लगी है। आहाहा ! इससे हमको टीका करते समय अशुद्धि है उसका नाश हो और शुद्धि प्रगट हो.....। विशेष व्याख्या करेंगे।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्लोक नं.-३

(मालिनी)

परपरिणतिहेतो र्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्य व्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः।।३।।

श्लोकार्थ :- श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं कि [समयसार-व्याख्यया एव] इस समयसार (शुद्धात्मा तथा ग्रन्थ) की व्याख्या (टीका) से ही [मम अनुभूतेः] मेरी अनुभूति की अर्थात अनुभवनरूप परिणति की [परमविशुद्धिः] परमविशुद्धि (समस्त रागादि विभावपरिणति रहित उत्कृष्ट निर्मलता) [भवतु] हो। कैसी है यह मेरी परिणति ? [परपरिणतिहेतोः मोहनाम्नः अनुभावात्] परपरिणतिका कारण जो मोह नामक कर्म है, उसके अनुभाव (उदयरूप विपाक) से [अविरतम् अनुभाव्य-व्याप्ति-कल्माषितायाः] जो अनुभाव्य (रागादि परिणामों) की व्याप्ति है, उससे निरन्तर कल्माषित अर्थात मैली है; और मैं कैसा हूँ ? [शुद्ध-चिन्मात्र-मूर्तेः] द्रव्यदृष्टि से शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ।

भावार्थ :- आचार्यदेव कहते हैं कि शुद्धद्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से तो मैं शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ, किन्तु मेरी परिणति मोहकर्म के उदय का निमित्त पा करके मैली है - रागादिस्वरूप हो रही है। इसलिये शुद्ध आत्मा की कथनीरूप इस समयसार ग्रन्थ की टीका करने का फल यह चाहता हूँ कि मेरी परिणति रागादि रहित होकर शुद्ध हो, मेरे शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो। मैं दूसरा कुछ भी ख्याति, लाभ, पूजादिक नहीं चाहता। इसप्रकार आचार्य ने टीका करने की प्रतिज्ञा गर्भित उसके फल की प्रार्थना की है।।३।।

प्रवचन नं. ४ श्लोक-३ ता. १०-६-७८ शनिवार - जेठ सुद पांचम-२५०४

समयसार तीसरा कलश है। दो हो गये हैं ना ? तीसरा कलश, नमः समयसाराय यह श्लोक होगया उसमें भी सर्वज्ञपना सिद्ध किया। सर्वभावांतरच्छिदे आया ना ? वास्तवमें तो जीव का सर्वज्ञ स्वभाव है उसमें से सभी बातें प्रसिद्ध होती हैं। सर्वज्ञ स्वभाव है, 'ज्ञ' स्वभाव कहो सर्वज्ञ कहो, यह स्वभाव और उसका स्वरूप है। जो

स्वरूप है, वह प्रगट होता है। स्वानुभूत्या चकासते - अपनी अनुभूति की क्रिया से (प्रकाशित हो:, जो वह सर्वज्ञपना है, वह प्रगट होता है। वहाँ सर्वज्ञपना सिद्ध किया, अनंत धर्मणस्तत्वं, में सर्वज्ञपना सिद्ध किया, क्योंकि चेतनतत्त्व जो ज्ञायक भाव वह सभी धर्मों में (और) अपने में व्यापक है। - ऐसा कह कर उसे आत्मतत्त्व कहा, चैतन्य को।

वह भी चैतन्य अर्थात स्वभावज्ञायक, `ज्ञ' स्वभाव यह `ज्ञ' स्वभाव, सर्वज्ञ स्वभाव, अपने सर्वधर्मों में व्यापक है, वह भी वहाँ सिद्ध किया। ***स्वरूपसर्वज्ञ और प्रगट सर्वज्ञ।***

यहाँ तो विशेष विचार क्या आया कि सर्वज्ञ स्वभाव है वह भी मात्र जानना देखना उसका स्वभाव है। अर्थात यह क्रमबद्ध जो कहलाता है क्रमबद्ध, यह क्रमबद्ध का निर्णय है, वह अकर्त्तापने में होता है, करना नहीं है उसे, जानना है, ***क्रमशः पर्यायें होती हैं द्रव्य की अपनी भी, परंतु उसमें उसका कर्तृत्व नहीं, क्रमशः हो उसमें कर्तृत्व क्या करना ? उसमें भी अकर्त्तापना सिद्ध करके और अस्ति से वह भी ज्ञातापना सिद्ध किया है।*** वहाँ भी सर्वज्ञ स्वभावी, प्रगट पर्याय में सर्वज्ञ और शक्तिरूप सर्वज्ञ सिद्ध किया है। क्योंकि जहाँ पर वस्तु या खुदकी पर्याय का और अपने रागादिक को करना नहीं (जहाँ), वहाँ अकर्त्तापना है, अर्थात् ज्ञातापना है। यह ज्ञातापने का स्वभाव, उसका अनुभव होना वह सम्यग्दर्शन और पर्याय में प्रगटीकरणका, वह सर्वज्ञदेव स्वरूप है, और उन सर्वज्ञ को... स्वरूप सर्वज्ञ है उसे प्रगट करने के लिये साधते हैं, स्वानुभूत्या यह गुरु है। इसमें देव आये, गुरु आये और उनकी जो वाणी है वह शास्त्र है, परंतु यहाँ वाणी और टीका (की) व्याख्या आयेगी। आहाहाहा ! समझ में आता है ? यह वाणी जो है सर्वज्ञ की, इस वाणी में भी सर्वज्ञपना ही सिद्ध करना है, पर का अकर्त्तापना और स्वका ज्ञातापना, यह सिद्ध करना है।

अब, वह वाणी कैसी है और इस वाणी से मैं टीका करता हूँ, तो ऐसे फल को चाहते है, तो क्रमबद्ध है ना फल चाहते है ? इसका अर्थ है कि, (वाणी) मेरा स्वरूप ही देखो ?

(मालिनी)

परपरिणतिहेतो र्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्य व्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परम विशुद्धिः र्भवतु
शुद्ध चिन्मात्रमूर्ते समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः।।३।।

आहा ! उधर भी शुद्धचिन्मात्र मूर्ति कहकर सर्वज्ञ स्वरूपी आत्मा है - ऐसा सिद्ध किया है। आहाहा ! यह कहते हैं देखो **तीसरे श्लोक में टीकाकार इस ग्रंथ**

का व्याख्यान करने के फल को चाहते हुए प्रतिज्ञा करते हैं। समयसार व्याख्या एव। यह वाच्यरूप समयसार अर्थात् शुद्धात्मा, और वाचकरूप में ग्रंथ का कथन समयसार व्याख्या एव `एव' शब्द लिखा है, समयसार अर्थात शुद्धात्मा, सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु शुद्धात्मा, आहाहा ! अथवा ग्रंथ, शब्दो, समयसार आत्मा अथवा समयसार के शब्दो, उसकी कथनी और टीका से ही... भाषा ऐसी है, `एव' शब्द है ना ? व्याख्या `एव' कथनी रूप टीका से ही हमारी अनुभूति, अनुभवरूप परिणति की परमविशुद्धि हो। आहाहा !

अब एक तरफ - ऐसा कहना कि टीका करने में तो विकल्प है। पण्डितजी ! टीका करने में... क्योंकि टीका है वह तो शब्द है और परद्रव्य है, यह टीका करने से ही हमारी परम विशुद्धि हो जाये - ऐसा कह कर पर्याय में अशुद्धता है... मैं मुनि हूँ, फिर भी अभी तीन कषाय का अभाव होने पर भी विकल्प है - ऐसा सिद्ध करते हैं। टीका करने का विकल्प आया है वह विकल्प है। आहाहा ! इस टीका से ही... इसका अर्थ है कि टीका में मेरा झुकाव तो सर्वज्ञ की सिद्धि करना है। और हमारी उस समय की (दृष्टि) ध्रुव में मेरा ध्येय है, वह सर्वज्ञ स्वरूपी है उसमें मेरा ध्येय है और जो पर्याय प्रगट होती है वह सर्वज्ञ है। तब हमारी टीका के काल में, भले टीका हुयी उस समय केवल (ज्ञान) हुआ नहीं और बात तो ऐसी है (कि) टीका एव परम विशुद्धि भवतु... टीका हो गई फिर भी परम विशुद्धि केवल (ज्ञान) हुआ नहीं। फिर भी निर्मलता हुई है और निर्मलता होगी, हमारा ध्येय द्रव्य ऊपर है, चैतन्यवस्तु है। वह सर्वज्ञ स्वरूपी यह स्वयं कहेंगे, `शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति' शुद्धचिन्मात्र मूर्ति तीसरा पद है ना ? तीसरे का आखरी पद, मैं तो शुद्धज्ञायक मात्र मूर्ति हूँ। आहाहाहाहा !

सर्वज्ञ `ज्ञ' स्वभाव, चित् ज्ञानस्वभाव मूर्तिस्वरूप ही मेरा है। शुद्धचिन्मात्र, सर्वज्ञ चिन्मात्र, सर्वज्ञ स्वभाव मात्र मेरा स्वरूप है, द्रव्य दृष्टि से तो मैं - ऐसा ही हूँ। आहाहा ! चिन्मात्र मूर्ति, ज्ञान। भाषा तो देखो ! ओ हो हो हो ! एक एक गाथा में ज्ञान की पूर्णता का वर्णन करना है। जिसप्रकार वहाँ शक्तियों का वर्णन किया है न ! जीवत्व-चिति तो प्रत्येक में ज्ञान है, जीवत्व, चिति दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य वगैरह ओहोहो ! कारण कि ज्ञान बिना दूसरी चीज को जानेगा कौन ? भले अपने अनंत गुण हैं, परंतु उन गुणों को जानेगा कौन ? जाननेवाला तो ज्ञान है। दूसरे गुण कुछ जानते नहीं ! आहाहा ! मैं तो एक चिन्मात्र मूर्ति प्रभु हूँ। आहाहा ! सभी गुणों का और मेरे गुणों का ज्ञान का यह और जगत के द्रव्य-गुण-पर्याय सभी का मैं तो जाननेवाला सिर्फ द्रव्य हूँ। आहाहा ! परंतु इस टीका से ही `मम अनुभूति' मेरी अनुभूति, शुद्ध परिणति की `**परमविशुद्धि**' अर्थात - ऐसा क्यों कहा ? कि अनुभूति

है तो अवश्य `परम विशुद्धि' शब्द प्रयोग किया है ना ? आहाहा !

`परमविशुद्धि' ओ हो ! शुद्धि है, वस्तु है द्रव्य दृष्टि से कहेंगे आगे, चिन्मात्र मूर्ति हूँ। मैं तो द्रव्य हूँ और पर्याय में भी अनुभूति तो है। आहाहाहा ! वह स्वभाव को अनुसरण करके अनुभव और अनुभूति-परिणति निर्मल है, इतना सिद्ध किया।

फिर बाद में मेरी अनुभूति की परिणति की परम विशुद्धि, विशेष शुद्धि, समस्त रागादिक रहित उत्कृष्ट निर्मलता परम है ना ? अर्थात उत्कृष्ट निर्मलता हो जाये। भले टीका के काल में पूर्ण निर्मलता हुयी नहीं ***परंतु उस टीका के काल में मेरा ध्येय तो सर्वज्ञ शक्ति स्वभाव ऊपर ही है, अतः हमारी शुद्धि हमारे ध्येय के कारण, शुद्धि बढ़ती जाती है।*** ध्येयमें से मेरी दृष्टि हटती नहीं। आहाहा ! इसलिये उन्हें टीका करने से हमारी विशुद्धि हो - ऐसा मैं कहता हूँ। पंरतु इसका अर्थ यह है कि टीका के काल में मेरी परम विशुद्धि हो। पण्डितजी - ऐसी बातें हैं। आहाहा ! दिगम्बर संतो के कलश श्लोक गजब बात है। आहाहा ! एक एक वाक्य में कितनी बातें समा देते है। आहाहा ! और बाद में अपनी कही, हमारी अनुभूति पर्याय-परिणति शुद्ध चैतन्य मूर्ति हूँ, यह बाद में कहेंगे। मेरी अनुभूति में अशुद्धि है यह बाद में कहेंगे। यहाँ तो पहले अनुभूति, परम विशुद्धि-परमशुद्धि राग रहित उत्कृष्ट निर्मलता हो। आहाहा !

संतो (को) तीन कषाय के अभावरूप आंतरिक अनुभूति तो वर्तती है, और उनको ध्येय में पूर्ण सर्वज्ञ स्वरूप प्रभु... वह तो दृष्टि में वर्तता है। आहाहा ! हमारा ध्येय तो यह है। परंतु यह टीका करने की वृत्ति हुयी है कि यह शास्त्र के भाव है वह विशेष स्पष्ट हों - ऐसा भाव-विकल्प आते रहते हैं। इसलिये टीका के काल में... यहाँ पाठ तो - ऐसा है। टीका एव, व्याख्या एव, टीका से ही, तो टीका से ही तो टीका तो शब्द है। परंतु कहने का आशय यह है, उस समय मेरा यह स्पष्टीकरण करने की, जो टीका होगी उसमें हमारा जोर अंदर के शुद्धद्रव्य ऊपर (जोर) वर्तता है, उससे मुझे विशुद्धि तो है, मुझे विशुद्धि नहीं - ऐसा नहीं परंतु परम विशुद्धि हो। आहाहा ! - ऐसा कहकर अपना साधक स्वभाव, टीका के काल में वृद्धि, निश्चय से वृद्धि होगी - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा !

भगवान को पूँछा नहीं कि टीका करते समय मुझे परम विशुद्धि बढ़ेगी कि नहीं ? आहाहा ! (स्वयं अपने भगवान से पूँछा) इस आत्मा का जो स्वभाव `ज्ञ' स्वभाव और जिसने दूसरे सभी गुणों को प्रसिद्ध किया है - ऐसा जो ज्ञान स्वभाव, दूसरे गुणों को प्रसिद्ध किया है, प्रगट किया हैं - ऐसा नहीं। जो जाननेमे आया है वह बताया है। आहाहा ! - ऐसा जो हमारा ज्ञानभाव, यह बाद में कहेंगे। यह शुद्धचिन्मात्र मूर्ति

वह मैं हूँ। वस्तुतः तो यह मैं हूँ। परंतु पर्याय विशुद्ध-निर्मल है, उसमें परम विशुद्धि पर्याय में हो - ऐसी मेरी निश्चय भावना है और - ऐसा होता ही है। - ऐसा आहाहाहा !

दूसरी तरह कहें तो परमविशुद्धि हो। हमारी शुद्धि अप्रतिहत है। आहाहा ! इससे हमारी अनुभूति है, उससे वह बढ़ेगी ही। आहाहा ! क्या चैतन्य के अनुभव की बलिहारी ! और चैतन्य के पूर्ण स्वभाव के सामर्थ्यका चमत्कारपना !! आहाहा ! अरे प्रभु ! इसमें कहाँ विवाद। वह कहते हैं ना, क्रमबद्ध नहीं है। क्रमबद्ध मानना एकांत जहर है। अरे प्रभु ! सुन भाई प्रभु ! तुम सर्वज्ञ स्वभावी हो कि नहीं नाथ ! आहाहा ! तुम कौन हो ? तुम कितने हो ? कैसे हो ? तुम देखो, जितने हो उतना तुम्हें ख्याल में आता है, तो क्रमबद्ध, अकर्त्तापना और ज्ञातापना सिद्ध हो जाता है इसमें।आहाहा !

नियतवाद हो जाता है इसमें। किंतु नियतवाद के साथ पांचों वाद हैं, पांचों समवाय हैं। स्वभाव, पुरुषार्थ, भवितव्यता और काललब्धि तथा (निमित्त का अभाव) सब है। यहाँ तो जो वस्तु, मैं शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति हूँ - ऐसा जो मुझे ध्येय में भासा है वस्तु (द्रव्य) वह तो इसीप्रकार ही रहनेवाला है परंतु शुद्धि जो है वह शुद्धि भी हमारी टीका के समय शुद्धि की वृद्धि होगी। आहाहाहा ! भवतु कहते हैं भाई ! गजब है प्रभु ! आहा ! मुनियों की गाथा और पंक्ति !! आहाहा ! अरे दिगम्बर संत कहाँ है जगत में भाई ! आहाहा ! (श्रोता - स्वभावका भी ज्ञान, अशुद्धता का भी ज्ञान और शुद्धता का भी ज्ञान) - ऐसा है। आहाहा ! हमारे द्रव्य की भी खबर, हमारी जो (पर्याय में) शुद्धि हुयी है उसकी भी खबर, और शुद्धि बढ़ेगी उसकी भी मुझे खबर है। उसमें तो यथार्थ में शुद्धि बढ़ेगी - ऐसा कहने पर मैं इस भाव से ही, सम्यग्दर्शन और ज्ञान के भाव से ही, मैं पूरण केवलज्ञान लेनेवाला हूँ। आहाहा ! - ऐसा मेरा प्रभु पुकारता है (अंतर की आवाज) - ऐसा कहते हैं। चैतन्य प्रभु। स्वभाव से पूर्ण भरा हुआ अनंतगुणों को भी एक गुण एक समय में जाननेवाला- ऐसा सभी गुणों को जाननेवाला और सभी को जाननेवाला- ऐसा मेरा प्रभु सर्वज्ञस्वभाव, यह मुझे स्वीकार है। विश्वास में, सम्यग्दर्शन में यह बात बैठ गई है। वर्तमान में भी शुद्धपरिणति इसके अतिरिक्त अपने आश्रय से सम्यक्त्व है और स्व के विशेष आश्रय से हमारी शुद्धि भी है। आहाहा ! और इससे भी विशेष आश्रय होगा और शुद्धि होगी ही। आहाहाहा ! क्या मांगलिक किया है ! (शुद्धि प्रगटे उसे ही मांगलीक कहते हैं न ?) आहाहाहा !

`**परमविशुद्धि**' विशुद्धि शब्द का बहुत प्रयोग होता है, ***विशुद्धि तो शुभ को भी कहते हैं, शुद्ध को भी कहते हैं, द्रव्य को भी कहते हैं, विशुद्धि शब्द द्रव्य को भी प्रयोग होता है। गुणों में प्रयोग होता है, निर्मल पर्याय में भी प्रयुक्त होता और***

मलिन शुभ पर्याय में भी विशुद्ध (शब्द) का प्रयोग होता है। पण्डितजी ! आहाहाहा ! परंतु यह मेरी परम विशुद्धि तो बिलकुल निर्मल ही है, वह निर्मलता बढ़ जायेगी। आहाहाहा ! परम विशुद्धि समस्त का अर्थ :- **समस्त रागादिक विभाव परिणति रहित उत्कृष्ट निर्मलता** होगी। अब कहते हैं यह परिणति है, किस प्रकार है ? अशुद्धता है क्योंकि विशुद्धि हो - ऐसा कहा, अभी तक अशुद्धि है। विशुद्धि भी है और अशुद्धि भी है, विशुद्ध प्रगट, प्रगट विशुद्धि भी है और प्रगट अशुद्धि भी है, अन्यथा पूरण विशुद्ध प्रगट हो - ऐसा कहाँ से आया ? अर्थात अशुद्धि भी है। आहाहाहाहा ! तीन कषाय का अभाव (है) वह मुनिराज स्वयं आहाहा ! अरे मुझे अभी तक अशुद्धि है। वह अनादि की है वह है। अशुद्धि गयी थी फिरसे नई हुयी - ऐसा नहीं है। यह अशुद्धि का अंश मुझे अनादि का है। आहाहा !

कैसी है परिणति ? अशुद्ध, `**परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभवात्**' परपरिणति का कारण है। है तो परिणति विकारी इसलिये परपरिणति कहा जाता है। शुद्ध स्वरूप रूप परिणति नहीं। आहाहा ! परपरिणति का हेतु, हेतु शब्द है ना ? आहाहा ! हेतु शब्द है। परपरिणति हेतु, उसका यह कारण, हेतु अर्थात कारण। हमारे में जो विकार का अंश है... आहाहा, एक तरफ नियमसार में - ऐसा कहते हैं कि थोड़ा राग है मुनिको, ***कभी - ऐसा कहें कि मुनि की दशा और केवली की दशा में फर्क मानें वह जड़ है, नियमसार में एक कलश में - ऐसा कहते हैं।*** थोड़ा राग का अंश है उसे गौण करके, आहाहा ! क्योंकि, उसे निकल जाना है, इसकारण मुनि और केवली में कुछ फर्क नहीं, फर्क माने वह जड़ है, आहाहा ! - ऐसा कहा है हों ! यह कलश है। आहाहाहा ! अरे संतों की तो बलिहारी है ना !! जिन्होंने केवलज्ञान को खड़ा रखा है। आहाहा ! पंचमकाल में केवलियों के रास्ते चलनेवाले वह केवलज्ञान को खड़ा रखते हैं। आहाहाहा ! और यहाँ तक कहा है प्रवचनसार में जिसने मोक्षमार्ग साधा है उसे हम मोक्ष कहते हैं। प्रवचनसार की आखरी पांच गाथायें हैं। आखरी पांच गाथायें है, पांच रतन है। पांच गाथा, पांच रत्न। आहाहा ! परंतु यहाँ जो थोड़ी अशुद्धता है उसे ख्याल में रखा है। बिलकुल पर्याय शुद्ध ही हो गई है - ऐसा नहीं है। वस्तु है वह तो पूर्ण शुद्ध है। आहाहा ! परंतु मेरी पर्याय में अभी थोड़ी अशुद्धता है, शुद्धता है और अशुद्धता का अंश है - आहाहा !

यह परपरिणति का हेतु मोह नामक कर्म है। निमित्त, **उसके अनुभव उदयरूप विपाक के कारण** उसके विपाक (फलदान शक्ति) को लेकर। आहाहा ! उसके कारण नहीं हो। परंतु उसके विपाक में मेरा जो जुड़ना हुआ उसके कारण... उसे तो निमित्त कहा ना ? तो निमित्त यहाँ कुछ करता नहीं; अन्यथा निमित्त कहलाये नहीं परंतु

उसका पाक (फल) वहाँ निमित्त में आया, हमारी स्वयं की परिणति थोड़ी कमजोर (है) अर्थात अंदर भी (परिणति) जुड़ जाती है।

अहो ! केवली सर्वज्ञ परमात्मा उनकी धर्म कथा उनकी वाणी गणधरों और इन्द्रों के बीच में केसी होगी ? आहाहाहा ! साक्षात सिद्ध पद मानों ऊपर से उतरा हो ऐसी वहाँ वाणी निकलती होगी। आहाहा ! यहाँ मुनि कहते हैं, एक तरफ - ऐसा कहते हैं कि समकिति को बंध और आस्रव होता नहीं। आता है !? सम्यग्दृष्टि को आस्रव और बंध होता नहीं, यह मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी की अपेक्षा बात है (भोग निर्जरा का कारण है) ***एक तरफ - ऐसा कहते हैं, ज्ञानी के भोग निर्जरा के हेतु हैं। वहाँ तो उनकी दृष्टि के जोर की अपेक्षा यह बात की*** है और समकिति को आस्रव और बंध नहीं वह तीव्र मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी का नहीं। यहाँ तो मुनि कहते हैं कि हमको अभी भी अशुद्धता का अंश है आहाहा ! क्योंकि यह मोहकर्म का निमित्त है उसके कारण अनुभाव्य-व्याप्ति कल्माषितायाः अनुभाव्य रागादिक परिणामों की व्याप्ति हमारे में हमसे है। आहाहा ! मोहकर्म तो निमित्त है परंतु पर्याय में विकार की व्याप्ति हमारी कमजोरी के कारण अनादि की है, वह हो, भले मुनिपना प्रगटा है, समकित प्रगटा है, यह समकित अब केवलज्ञान लेकर ही रहेगा, परंतु यह परिणति अनादि की अशुद्ध विद्यमान है थोड़ी, आहाहाहा ! यह हमारे ख्याल में है। आहाहा !

पंचमकाल के संत... आहाहा ! कहते हैं कि यह **अविरतम् अनुभाव्य व्याप्ति** आहाहा। रागादि परिणामों की व्याप्ति अविरतम् निरंतर है ना ? आहाहा ! एक ओर प्रभु पूर्ण द्रव्य है, पर्याय-परिणति (रूप) में आनंद एवं परिणति शुद्धवर्तती है, फिर भी वहाँ एक अशुद्ध परिणति निरंतर वर्तती है। आहाहा ! कारण कि अशुद्ध परिणति गयी हो और फिर से हो - ऐसा होता नहीं, अशुद्धिरूप परिणति अनादि की है वह यदि नाश हो गई हो तो फिर से होगी नहीं। अनादि की परिणति, वस्तुस्वभाव का अनुभव होने पर भी, कुछ अंश में निर्मल परिणति होने पर भी, पूरी (निर्मल) नहीं इसलिये हमेशा कल्माषिताया-कलुषित परिणति है मेरी। आहाहा ! (निरंतर वर्तती है) आहाहा ! है ना ?

अविरतम् निरंतर कल्माषित, आहाहा ! मैली है। अनुभाव्य व्याप्ती कहा ना, उससे व्याप्त हूँ। आहाहा ! कर्म तो निमित्त मात्र है, परंतु हमारी परिणति में अभी अशुद्धता का अंश है। यह अंश अनादि का है। अनादि का अंश है इसलिये मिथ्यात्व और अनंतानुबन्धी आदि नहीं टला (गया) - ऐसा नहीं, वह तो नष्ट होगया है। तीन कषाय और मिथ्यात्व (तो नष्ट हो गया) है। परंतु यह जो है (संज्वलन) वह अनादि की परिणति है। वह तो पहले गयी थी फिर से हुयी - ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ

में आया ? - ऐसा मार्ग वीतराग का बहुत (सूक्ष्म) बापू :- आहा !

अनुभाव्य यह हमारी ही बात है - ऐसा कहते हैं। अनुभाव्यता में अनुभाव कर्म का, अनुभाव कर्म का निमित्त, अनुभाव्य हमारी परिणति, हमारी परिणति में अनुभाव्य हमारे कारण व्याप्त है - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अनुभाव यह निमित्त है, अनुभाव्य यह अपनी खुदकी अशुद्ध परिणति है साथ में, आहाहा ! निरंतर मैली है, आहाहा ! एक बाजु - ऐसा कहते हैं, जहाँ तहाँ आधार देते है कि समकिति को आस्रव बंध नहीं। ***समकिती को आस्रव बंध नहीं। किस अपेक्षा से भाई ! उसे मिथ्यात्व और अनंतानुबन्धी का मूल संसार है उसका आस्रव बंध नहीं।*** दूसरा आस्रव अभी है चौथे (गुणस्थान में) तीनकषायें, पांचवें में दो (कषाय), छठवें में एक। आहाहा ! अरे ! दशवें (गुणस्थान) तक अभी राग का अंश और आस्रव है।

एक तरफ द्रव्य त्रिकाली शुद्ध है, उसके आश्रय से शुद्धपरिणति भी हुयी है। परंतु अभी पूरा आश्रय नहीं। इसलिये कर्म का निमित्त जो अनुभाव है उसमें मेरा लक्ष्य जाता है, आश्रय होता है। आहाहा ! यहाँ (स्व का) आश्रय पूरा नहीं इसलिये वहाँ (पर में) आश्रय होता है। परंतु यह मेरे पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण राग का व्याप्तपना है। आहाहा ! यह कर्म के कारण नहीं। वैसे मलिनता का अंश बिलकुल नहीं - ऐसा नहीं है। अरे ! अब ऐसी बातें है। ***स्वामी कार्तिकेया (अनुप्रेक्षा) में तो यहाँ तक कहा है एक जगह कि समकिती अपने को वस्तु अपेक्षा, प्रभु जैसा स्वीकारता है अपनेको, परंतु समकिती पर्याय में तृणतुल्य पामर मानता है।*** कहाँ केवलज्ञान और कहाँ चारित्रदशा। आहाहा ! और कहाँ हमारी एक ओर अनंतानुबन्धी के मिथ्यात्व के अभाव की परिणति... मैं पामर हूँ। आहाहा ! तृण तुल्य हूँ - ऐसा पाठ है स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा (ग्रंथ में) तृण तृण तृण... तिनके के समान। कहाँ प्रभु का केवलज्ञान और कहाँ मैं ? एक तरफ द्रव्य अपेक्षा पूर्ण हूँ, एक तरफ पर्याय में तृण तुल्य हूँ। आहाहा ! यह हमारा लक्ष्य है और उसे टालने के लिये हमारा प्रयत्न टीका करते (समय) है। आहाहा ! जो कि टीका करने का समय आया है, अन्यथा तो उसको टालने के प्रयत्न में ही हूँ। अंतर के स्वभाव सन्मुख होने को ही मेरा प्रयत्न है पंरतु अब इस टीका का समय आया इसलिये कहता हूँ कि टीका से हमारी परम विशुद्धि हो। आहाहाहा !

निरंतर... किससे ? अनुभाव मोहकर्म के कारण। व्याप्ति कल्माषितायाः मैली है, आहाहा ! मुनिराज कहते हैं कि मेरी पर्याय में मलिनता है। आहाहाहा ! एक संज्वलन का राग, संज्वलन का एक चौकड़ी कषाय का भी मैल है, आहाहा ! यहाँ तो पाई पाई का हिसाब है। लोग नहीं कहते पाई पाई का हिसाब, आहाहा ! जैसा त्रिकाली

शुद्ध है वह भी है, परिणति शुद्ध है वह भी है, और निमित्त रूप अनुभाव्य कर्ममें जुड़ना जितना भी है उससे निरंतर कल्माषितपना भी है। आहा ! वस्तु तो जैसी है वैसी यथार्थ देखना चाहिए ना ? आगे-पीछे, कम-ज्यादा, विपरीत - ऐसा न हो (चले) आहाहा ! (सम्यग्ज्ञान तभी कहलायेगा) कम-ज्यादा, विपरीत (बिना) बराबर तुलना करना।

`अब मैं कैसा हूँ ?' देखा ! वह मेरी परिणति - ऐसा कहा था। आहाहा ! मेरी परिणति, पहले उसमें मम् अनुभूति - ऐसा था। निर्मलता और उसके साथ थोड़ा पर परिणति। हेतु मोहनाम्नोऽनुभावात् है - थोड़ी परिणति अशुद्ध है। आहाहा ! परंतु मैं कैसा हूँ ? आहाहा ! वस्तु अपेक्षा मैं कैसा हूँ ? परिणति में शुद्धता बहुत है और थोड़ी अशुद्धता है। मैं कैसा हूँ ? आहाहा ! मेरा अस्तित्व कैसा है कितना है **`शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति'** शुद्धज्ञान मात्र स्वरूप। शुद्ध ज्ञानमात्र स्वरूप **`द्रव्य दृष्टि से शुद्ध चैतन्य मात्र मूर्ति (स्वरूप) हूँ'** - ऐसा। शुद्ध चैतन्य मात्र मूर्ति शुद्ध चैतन्य स्वरूप, शुद्ध चैतन्य स्वरूप मूर्ति अर्थात स्वरूप शुद्ध चैतन्य वस्तु स्वरूप दृष्टि अपेक्षा त्रिकाल। आहाहा ! सर्वज्ञ शक्ति है ना इसमें ? अर्थात मैं तो शुद्ध चैतन्य सर्वज्ञ स्वरूप ही हूँ। चिन्मात्र पूरण चिन् ज्ञानमात्र मेरा स्वरूप है। मैं तो यही हूँ। आहाहा ! हमारी परिणति, पर्याय दृष्टि से कहा, पर्याय दृष्टि से (मलिन) परंतु वस्तु दृष्टि से तो मैं शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति हूँ। आहा ! दोनों नयों को समाया है। आहाहा !

शुद्ध चिन्मात्र ! स्पष्टीकरण किया। इसप्रकार द्रव्य दृष्टिसे स्पष्टीकरण किया, क्योंकि वह पर्याय दृष्टि से अनुभाव्य था ना इसलिये थोड़ा खुलासा (स्पष्टीकरण) किया। वस्तु हूँ, वह तो उसे द्रव्य दृष्टि से कहो कि वस्तु हूँ, वस्तु से तो मैं शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति स्वरूप हूँ। वस्तु तो चिन् ज्ञानमात्र, चेतना स्वभाव पूरण स्वरूप मात्र मेरी चीज है। अपूर्णता नहीं, अशुद्धता नहीं। आहाहा ! संयोग नहीं विकाररूप संयोगी भाव नहीं, परंतु अल्पज्ञ की पर्याय भी मैं नहीं। आहाहा ! पर्याय अपेक्षा अशुद्धता मेरे में है - ऐसा कहा। आहाहा ! वस्तु अपेक्षा शुद्धज्ञान मात्र स्वरूप, शुद्धज्ञान मात्र स्वरूप (हूँ) आहाहाहा ! यहाँ (पुनः) सर्वज्ञपना सिद्ध किया। यह वस्तु ज्ञान स्वरूप ही है। ज्ञान को **मविशेषण लगाओ** तो सर्वज्ञ ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप, ज्ञानस्वरूप यह विशेषण लगाओ तो शुद्ध चिन्मात्र स्वरूप, सर्वज्ञ स्वभाव, मात्र स्वरूप, आहाहा ! ऐसी चीज मैं त्रिकाल हूँ। शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति, मूर्ति अर्थात स्वरूप, मूर्ति अर्थात यहाँ वर्ण, रस, गंध, स्पर्शवाली मूर्ति का काम नहीं। शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूप। त्रिकाल ज्ञायकभाव, शुद्धज्ञान भाव, पूरण स्वभाव भाव - यह हमारा स्वरूप है। आहाहाहा ! एक श्लोक में कितना कहा है। आहाहाहा ! देखो ना ! संतो ने मार्ग सरल कर दिया है। संतो ने सरल कर डाला। (श्रोता :- आप भी वर्तमान में सरल करते हो)

यह शब्दार्थ हुआ।

भावार्थ :- आचार्य कहते हैं, आचार्य हैं ना ! अमृतचन्द्रआचार्य हैं। मुनि हैं और आचार्य हैं। आहाहा ! वह भी कहते हैं कि हमारी परिणति में अशुद्धता थोड़ी है आहाहाहा ! मेरे ज्ञान से ओझल नहीं, कि मैं शुद्ध ही होगया। बस हमारे में अशुद्धता जो आती रही वह निर्जरित हो जाती है - ऐसा नहीं। अशुद्धता आती है, उतनी मलिन दशा होती है और उतना बंध भी होता है। उसमें मोह निमित्त है, अनुभाव और यहाँ अनुभाव्य व्याप्त हमारे से है। इसप्रकार अशुद्धता हमारे से है और कर्म का थोड़ा बंध होता है, उसमें अशुद्धता निमित्त है। आहाहा ! विशेष जानने की इसमें कोई जरूरत नहीं, परंतु विशेष रुचि और परिणति का ज्ञान इसके ऊपर वजन है यहाँ तो ***दृष्टि का जोर ध्रुव ऊपर और परिणति के दो भाग, शुद्ध और अशुद्ध उसका ज्ञान यथार्थ वर्तता है। आहाहाहा !***

आचार्य कहते हैं कि शुद्ध चिन्मात्र मूर्ति की व्याख्या की **`शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से'** तो मैं, शुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन है। जिस ज्ञान में, शुद्ध पूर्ण द्रव्य स्वभाव, ज्ञायक वीतरागस्वरूप शुद्ध ध्रुव त्रिकाली एकरूप - ऐसा इस नय का प्रयोजन है, शुद्ध द्रव्य का आर्थिक, आर्थिक यानी प्रयोजन, शुद्ध द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है - ऐसा जो ज्ञान अर्थात नय, उसकी दृष्टि से तो मैं शुद्धचैतन्यमात्र मूर्ति हूँ। आहाहाहा ! सम्यग्दृष्टि मात्र वे सभी, मैं शुद्ध चिन्मात्र हूँ - ऐसा द्रव्य को मानते हैं। चौथे पांचवे छठवें (गुणस्थान) की पर्याय में फर्क है, वह अलग बात है। आहाहा ! `जैसा समकित तिर्यंच का वैसा समकित सिद्ध का' समकित में फर्क नहीं, चारित्र में अस्थिरता में फर्क है आता है न, ***`रहस्यपूर्ण चिट्ठी' टोडरमलजी में आता है। जैसा समकित तिर्यंच का वैसा समकित सिद्ध का, चिट्ठी में आता है ना ?*** रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है।

यहाँ कहते हैं, मैं शुद्ध द्रव्य के प्रयोजन की दृष्टि से तो शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ परंतु ऐसी चीज होने पर भी और दृष्टि में यह (चीज) आयी है फिर भी मेरी परिणति मोह कर्म के उदय का निमित्त पाकर, मैली है यह तो निमित्त है, आहाहाहा ! आचार्य - ऐसा कहते हैं कि अभी मेरी मैली दशा है - ऐसा कहते हैं। - ऐसा विकल्प उठता है थोड़ा, इतनी मैली है, ***ऐसे गर्व में चढ़ ना जाना कि, समकित हो गया अब बस कुछ नहीं, बंध भी नहीं और राग भी नहीं।*** - ऐसा कहना नहीं बापा। आहाहा !

मोह कर्म के उदय का निमित्त पाकर (परिणति) मैली है, रागादि स्वरूप हो रही है। आहाहा ! एक तरफ मोक्षमार्ग प्रकाशक में यह कहा कि मुनि को अशुभ

भाव तो है ही नहीं। आता है ना ? पहले (तो) अशुभभाव है ही नहीं, मात्र धर्म के लोभी को देखकर शुभ भाव आता है, आता है ना उसमें ? परंतु यह शुभ भाव आता है, वह अपने पुरुषार्थ की कमजोरी है। मोक्षमार्ग प्रकाशक के शुरूआत में है। आहाहा ! क्या अपेक्षा है - ऐसा जानना चाहिए ना ? शुभ भाव हो तब उपदेश होता है, क्योंकि अशुभ तो है ही नहीं। और ***एक तरफ - ऐसा भी कहते हैं कि छठवें गुणस्थान में अभी भी आर्त ध्यान है, तीन लेश्या कहीं। पीत, पद्म और शुक्ल छठवें गुणस्थानमें लेश्या कही हैं। कृष्ण, नील, कापोत नहीं, हैं। तीनों शुद्ध कहीं और एक ओर ध्यान के चार भाग करने पर, आर्त ध्यान का भाग अभी छठवें में है।*** आहाहाहा ! कषाय का अंश है ना, इतना आर्तध्यान है। उतना चैतन्य शुद्धप्राण पीड़ित होता है।

`**रागादि स्वरूप हो रही है**' इसलिये शुद्ध आत्मा की कथनीरूप शुद्ध आत्मा के कहने का रूप... इसमें से कोई - ऐसा ग्रहण करे कि देखो हम चाहे जैसा उपदेश दें, तो अपने को कुछ बंध है ही नहीं - ऐसा नहीं। छद्मस्थ को उपदेश का राग आता है, विकल्प है, केवली को नहीं। वहाँ तो विकल्प बिना वाणी निकलती है, नियमसार में पीछे (लिखा है)

यहाँ कहते हैं, `शुद्ध आत्मा की कथनी (का) जो यह समयसार ग्रंथ है उसकी टीका करने का फल यह चाहता हूँ कि हमारी परिणति रागादि रहित होकर शुद्ध हो जाओ।' टीका करने में परद्रव्य ऊपर लक्ष्य है, और एक तरफ - ऐसा कहते हैं कि परद्रव्य ऊपर लक्ष्य हो तो राग हुये बिना रहे नहीं। `**पर दव्वाओ दुग्गई**' - ऐसा कहा है, मोक्ष पाहुड़ की १६वीं गाथामें। तब यहाँ तो टीका, टीका तो शब्द है, पर-द्रव्य है परद्रव्य ऊपर लक्ष्य जाने में राग तो है, परंतु उसके ऊपर जोर न देकर, स्वभाव के ध्येय ऊपर जोर करके, इस टीका से, है ना ? उसका फल चाहता हूँ कि `हमारी परिणति रागादि रहित शुद्ध होओ,' यह अपेक्षा है। आहाहा ! एक तरफ उपदेश का विकल्प उठता है, वह राग है, इतना बंधन है, परद्रव्य तरफ का आश्रय है, राग की दिशा पर तरफ है, राग की दशा मैली है। आहाहाहा !

हमारी परिणति रागादि रहित हो जाओ, `मुझे शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो ओ...।' उसका अर्थ ही यह है कि शुद्धि की प्राप्ति होगी ही। आहाहाहा ! क्या वाणी। आहाहा ! शुद्धि (की) प्राप्ति हो, `दूसरा अन्य कुछ (नहीं) कि मैं टीका करता हूँ' तो हमारी इज्जत बढ़ेगी। ओहोहो ! जो हमने टीका की उसमें ख्याति-लाभ कुछ मान प्रसंग का लक्ष्य नहीं है बापू। यहाँ हमारा काम नहीं। ओहोहो ! (कोई) अभिनंदन दे, आपने बहुत टीका की, वह हम चाहते नहीं। आहाहा ! ऐसी टीका आत्मख्याति जैसी, अभी

हिन्दुस्तान में अन्य जगह तो नहीं (दूसरे संप्रदायों में) दिगम्बर में भी यह जो टीका शास्त्र में है - ऐसी टीका अन्य जगह नहीं। ऐसी टीका, ऐसी टीका। ओहोहो ! और जिसका नाम आत्मख्याति-आत्म प्रसिद्धि, आत्मा को प्रसिद्ध् करती हैं। आहाहा ! आहाहा ! लाभ पूजादिक चाहते नहीं। पूजा को चाहते नहीं। आचार्य है इसलिये - ऐसा कहते हैं। कुछ लोग कहते हैं तुम बहुत हठीले हो, बहुत होशियार हो, हमें कुछ चाहिए, नहीं बापू ! हमको तो टीका के समय अशुद्धता कम हो जाये, दूसरी कुछ चाह नहीं। आहाहाहा !

`इसप्रकार आचार्यने टीका करने की प्रतिज्ञा गर्भित'... टीका करने की... इस शास्त्र की टीका करने की प्रतिज्ञा ली है। उसमें गर्भित `उसके फल की प्रार्थना की है लो.' - यह श्लोक पूरा हुआ।

गाथा - १

अथ सूत्रावतार :-

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।।१।।

वंदित्वा सर्वसिद्धान् ध्रुवामचलामनौपम्यां गतिं प्राप्तान्।
वक्ष्यामि समयप्राभृतमिदं अहो श्रुतकेवलिभणितम्।।१।।

(हरिगीत)

ध्रुव अचल अरु अनुपम गति, पाये हुए सब सिद्धको।
मैं वंदु श्रुतकेवलिकथित, कहूँ समयप्राभृतको अहो।।१।।

गाथार्थ :- आचार्य कहते हैं : मैं [ध्रुवां] ध्रुव, [अचलां] अचल और [अनौपम्यां] अनुपम-इन तीन विशेषणों से युक्त [गति] गति को [प्राप्तात्] प्राप्त हुए [सर्वसिद्धान्] ऐसे सर्व सिद्धों को [वंदित्वा] नमस्कार करके [अहो] अहो ! [श्रुतकेवलिभणितं] श्रुतकेवलियों के द्वारा कथित [इदं] यह [समयप्राभृतं] समयसार नामक प्राभृत को [वक्ष्यामि] कहूँगा।

टीका :- यहाँ (संस्कृत टीका में) `अथ' शब्द मंगल के अर्थ को सूचित करता है। ग्रंथ के प्रारंभ में सर्व सिद्धों को भाव-द्रव्य स्तुति से अपने आत्मा में तथा पर के आत्मा में स्थापित करके इस समय नामक प्राभृत का भाववचन और द्रव्यवचन से परिभाषण (व्याख्यान) प्रारंभ करते हैं - इसप्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। वे सिद्ध भगवान, सिद्धत्व के कारण, साध्य जो आत्मा है उसके प्रतिच्छन्द के स्थान पर हैं, - जिनके स्वरूप का संसारी भव्यजीव चिंतवन करके, उनके समान अपने स्वरूप को ध्याकर उन्हीं के समान हो जाते हैं और चारों गतियों से विलक्षण पंचमगति-मोक्ष को प्राप्त करते हैं। कैसी है वह पंचमगति ? स्वभाव से उत्पन्न हुई है इसलिये ध्रुवत्व का अवलम्बन करती है। चारों गतियाँ पर-निमित्त से होती हैं, इसलिये ध्रुव नहीं किन्तु विनाशीक हैं। `ध्रुव' विशेषण से पंचमगति में इस विनाशीकता का व्यवच्छेद हो गया और वह गति कैसी है ? अनादिकाल से परभावों के निमित्त से होनेवाले पर में भ्रमण, उसकी विश्रांति (अभाव) के वश अचलता को प्राप्त है। इस विशेषण

से, चारों गतियों में पर-निमित्त जो भ्रमण होता है, उसका (पंचमगति में) व्यवच्छेद हो गया और वह जगत में जो समस्त उपमायोग्य पदार्थ हैं उनसे विलक्षण- अद्भुत महिमावाली है, इसलिये उसे किसीकी उपमा नहीं मिल सकती। इस विशेषण से चारों गतियों में जो परस्पर कथंचित् समानता पाई जाती है, उसका (पंचमगति में) निराकरण हो गया। और उस गति का नाम अपवर्ग है। धर्म, अर्थ और काम त्रिवर्ग कहलाते हैं; मोक्षगति इस वर्ग में नहीं है, इसलिये उसे अपवर्ग कही है। ऐसी पंचमगति सिद्ध भगवान को प्राप्त हुई है। उन्हें अपने तथा पर के आत्मा में स्थापित करके, समय का (सर्व पदार्थों का अथवा जीव पदार्थ का) प्रकाशक - ऐसा जो प्राभृत नामक अर्हत्प्रवचन का अवयव है उसका, अनादिकाल से उत्पन्न हुए अपने और पर के मोह का नाश करने के लिये, मैं परिभाषण करता हूँ। कैसा है वह अर्हत्प्रवचन का अवयव ? अनादिनिधन परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से, सर्व पदार्थों के समूह को साक्षात् करनेवाले केवली भगवान सर्वज्ञदेव द्वारा प्रणीत होने से और केवलियों के निकटवर्ती साक्षात् सुननेवाले तथा स्वयं अनुभव करनेवाले ऐसे श्रुतकेवली-टगणधर देवों के द्वारा कथित होने से प्रमाणता को प्राप्त है। यह अन्यवादियों के आगम की भाँति छद्मस्थ (अल्प ज्ञानियों) की कल्पनामात्र नहीं है कि जिससे अप्रमाण हो।

भावार्थ :- गाथासूत्र में आचार्यदेव ने `वक्ष्यामि' कहा है, उसका अर्थ टीकाकार ने `वच् परिभाषणे' धातु से परिभाषण किया है। उसका आशय इसप्रकार सूचित होता है कि, चौदह पूर्वोंमें से ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्व में बारह `वस्तु' अधिकार हैं; उनमें भी एक एक के बीस बीस `प्राभृत' अधिकार हैं। उनमें से दशवें वस्तु में समय नामक जो प्राभृत है उसके मूलसूत्रों के शब्दों का ज्ञान पहले बड़े आचार्यों को था और उसके अर्थ का ज्ञान आचार्यों की परिपाटी के अनुसार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव को भी था। उन्होंने समयप्राभृत का परिभाषण किया, परिभाषासूत्र बनाया। सूत्र की दस जातियाँ कही गई हैं, उनमें से एक `परिभाषा' जाति भी है। जो अधिकार को अर्थ के द्वारा यथास्थान सूचित करे वह `परिभाषा' कहलाती है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव समयप्राभृत का परिभाषण करते हैं - अर्थात् वे समयप्राभृत के अर्थ को ही यथास्थान बतानेवाला परिभाषासूत्र रचते हैं।

आचार्य ने मंगल के लिए सिद्धों को नमस्कार किया है। संसारी के लिये शुद्ध आत्मा साध्य है और सिद्ध साक्षात् शुद्धात्मा हैं, इसलिये उन्हें नमस्कार करना उचित है। यहाँ किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया ? इसकी चर्चा टीकाकार के मंगलाचरण में की गई है, उसे यहाँ भी समझ लेना चाहिये। सिद्धों को `सर्व' विशेषण देकर यह अभिप्राय बताया है कि सिद्ध अनन्त हैं। इससे यह

माननेवाले अन्यमतियोंका खण्डन हो गया कि `शुद्ध आत्मा एक ही है'। `श्रुतकेवली' शब्द के अर्थ में (१) श्रुत अर्थात अनादिनिधन प्रवाहरूप आगम और केवली अर्थात सर्वज्ञदेव कहे गये हैं, तथा (२) श्रुत-अपेक्षा से केवली समान ऐसे गणधरदेवादि विशिष्ट श्रुतज्ञानधर कहे गये हैं; उनसे समयप्राभृत की उत्पत्ति बताई गई है। इसप्रकार ग्रन्थ की प्रमाणता बताई है, और अपनी बुद्धि से कल्पित कहने का निषेध किया है। अन्यवादी छद्मस्थ (अल्पज्ञ) अपनी बुद्धि से पदार्थ का स्वरूप चाहे जैसा कहकर विवाद करते हैं, उनका असत्यार्थपन बताया है।

इस ग्रन्थ के अभिधेय, संबंध और प्रयोजन तो प्रकट ही हैं। शुद्ध आत्मा का स्वरूप अभिधेय (कहने योग्य) है। उसके वाचक इस ग्रन्थ में जो शब्द हैं उनका और शुद्ध आत्मा का वाच्यवाचकरूप संबंध है सो संबंध है और शुद्धात्मा के स्वरूप की प्राप्ति का होना प्रयोजन है।

प्रवचन नं.-५ गाथा-१ ता.११-६-७८ रविवार जेठ सुद-५ सं.२५०४ श्रुतपंचमी

यह एक समयसार सिद्धांत (ग्रंथ) है। समयसार अर्थात शुद्धात्मा का कथन। अंदर भगवान आत्मा देह से भिन्न... देह तो जड़ है, अंदर पुण्य पाप के भाव होते हैं, शुभ अशुभ विकल्पराग भी विकार है, उससे रहित अंदर पूरण शुद्ध चैतन्यघन, अनादि-अनंत, उत्पत्ती और नाश बिना की जो चीज है, आनंदघन उसे यहाँ समयसार अथवा आत्मा कहते हैं, ऐसी आत्मा की इसमें व्याख्या है।

प्रथम यहाँ है, मूल गाथा सूत्रकार, एक एक गाथा है ना। इसके ऊपर कुंदकुंदाचार्य ग्रंथ के प्रारंभ में मांगलिक पूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं। आज श्रुतपंचमी का दिन है और आज शुरूआत उन्नीसवीं बार शुरूआत होती है, समयसार उन्नीसवीं बार, अठारहबार तो प्रत्येक शब्द का अर्थ करके अठारहबार तो स्वाध्याय हो गया है। तैंतालीसवां वर्ष चलता है यहाँ (सोनगढ़ में) अठारहबार तो हो गया यह उन्नीसवींबार है। क्या कहते हैं सूत्र अवतार।

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।।१।।

(हरिगीत)

ध्रुव अचल अरु अनुपम गति, पाये हुए सब सिद्धको।
मैं वंदु श्रुतकेवलिकथित, कहूँ समयप्राभृतको अहो।।१।।

गाथार्थ लेते हैं। `आचार्य कहते हैं' संत हैं मुनि हैं। अतीन्द्रिय आनंद के अनुभवी हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंद से भरा हुआ सच्चिदानंद प्रभु है। अनादि से उसकी उसे (अज्ञानी को) खबर नहीं। `है ?' `सत्' `चित्' `आनंद'। है, ज्ञान, आनंद - ऐसा इसका स्वरूप है, उसके स्थाई ऐसे स्वरूप को यहाँ आचार्य कहते हैं। मैं अनुभव करता हूँ, और अनुभव करके जगत के प्राणियों के लिये और अपने हित के लिये और पूर्ण परमात्मा जो हुये उनको मैं वंदन करके शुरूआत करता हूँ। पूरण परमात्मा आत्मदशा को प्राप्त हुये, आनंद प्रभु पूर्ण आनंद स्वरूप है, उसका स्वभाव ही आनंद है। आहाहा ! इस अतीन्द्रिय आनंद स्वभाव को जिन्होंने वर्तमान दशा में प्राप्त किया, उन्हें परमात्मा कहा जाता है, उन्हें सिद्ध कहा जाता है। इन सिद्धों को नमस्कार करके मैं यह कहूँगा - ऐसा कहते हैं।

कहते हैं ना देखो ! मैं ध्रुव, ध्रुव... परमात्मा पद है वह तो ध्रुव है, पाये हुये की बात है, सिद्ध सिद्ध... जैसे सकरकंद है ना सकरकंद, उस सकरकंद के ऊपर का लाल छिलका है, वह ना देखो तो वह सकरकंद है, सकरकंद अर्थात शक्कर की मिठाश का पिण्ड, फिर भाषा तो शक्करिया कि शक्कर जैसा (यह तो) भाषा हो गई है। मूल में तो लाल जो छाल है लाल, वह न देखो तो यह सकरकंद है, शक्कर की मिठाश का दल है। सादी भाषा है। यह तो दृष्टांत है। इसीप्रकार यह आत्मा... कठिन बात है। यह आत्मा अंदर जो चीज है, उसमें पुण्य पाप के विकल्प जो राग उठता है, वह तो लाल छिलके की तरह हैं, यह शरीर तो जड़ है वह तो कहीं आत्मा में नहीं। वह तो मिट्टी जड़ धूल है। परंतु अंदर जो दया-दान-व्रत-भक्ति के भाव वह पुण्य राग है। हिंसा, झूठ, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध यह पाप राग है। यह पुण्य और पाप के भाव वह लाल छिलके जैसा सकरकंद के ऊपर है। उन भावों के पीछे देखो तो आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का कंद है। आहाहाहा !

प्रभु ! परंतु स्वीकार करना (कठिन है) कभी अभ्यास नहीं किया, इस दुनियाँ के अभ्यास के सामने बाहर के अभ्यास बढ़ाये, यह डाक्टर के, एल. एल. बी. के, एम. ए. यह बड़ी बड़ी उपाधियाँ लम्बी की उन्होंने, परंतु यह मैं हूँ उसकी खबर नहीं मिली। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं - जो कोई अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप प्रभु है, ऊपर के लाल छिलके की भांति पुण्य और पाप के भाव विकार और विकृत है, उन्हें जिसने दूर करके, जिसने पूरण अतीन्द्रिय आनंद का कंद प्रभु है, जैसे सकरकंद शक्कर की मिठाश का पिण्ड है, उसे छिलका निकाल कर खुला किया, उसी प्रकार जिसने

पूरण अतीन्द्रिय आनंद का नाथ प्रभु पूरण सत्ता होनेवाली चीज, अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप, उसका भान करके जिसने विकार का नाश किया, और पूर्णानंद की जिसे प्राप्ति हुई, उसे यहाँ सिद्ध परमात्मा परमेश्वर कहा जाता है। वह परमेश्वर को नमस्कार करते हैं। आहाहा ! तो इसमें आस्थापना तो इतना आया। एक तो पूर्ण आनंद को प्राप्त अनंत परमात्मा हो गये। क्योंकि हरेक जीव भी पुरुषार्थ करे तो थोड़े समय में पूर्णानंद (को) प्राप्त हो। तब (अभीतक) अनंत काल हुआ उसमें अनंत हो गये हैं। सिद्धपद को, परमात्मपद को पाये हुये अनंत आत्मा हो गये हैं।

इसलिये यहाँ कहते हैं सभी सिद्धों को, अनंत अनंत सिद्ध जो हुये। आहाहा ! प्रतीति में कितनी बात है उन्हें ? कि अनंत आत्मायें और वे अनंत आत्मा अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप हुए। वह अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप दशा को प्राप्त हुये और मुक्त हुये अर्थात दुःख और विकार से मुक्त हुये और उसकी जगह अतीन्द्रिय आनंदरूप पूर्णता की प्राप्ति की, उन्हें यहाँ सिद्ध और परमात्मा कहा जाता है। आहाहा ! वह उसे नमस्कार करते हैं, वह ध्रुव हुए हैं, है ? परमात्मदशा हुयी वह अब ध्रुव है, अब उसे गतियों में भटकना नहीं। जैसे चना कच्चा हो तब कषायला लगे और बोनेपर उगे परंतु सिकने से कषायलापन जाता, मिठाश आती और बोनेपर उगे नहीं चना। ऐसे भगवान आत्मा पुण्य और पाप और शरीर मेरे - ऐसा माने वहाँ तक अज्ञान से उसे कषायला अर्थात दुःख का वेदन है। उस दृष्टांत से सिद्ध (करते है) परंतु जब उसे सेकते हैं तब जैसे चने में मिठाश अंदर थी, जो थी वह आती है, वह कहीं बाहर से आती नहीं, इसीप्रकार आत्मा में राग और द्वेष और अज्ञान, स्वरूप के भान द्वारा नाश करते हैं तब अज्ञान जल जाता है और इसके स्थान में अतीन्द्रिय आनंद और ज्ञान प्राप्त होता है। जो प्राप्ति हुयी वह वैसी की वैसी रहती है इसलिये उसे ध्रुव कहते हैं। इस संसार में तो एक भवमें से दूसरा भव ऐसी लाइन लगी है कतार ! यहाँ जन्मे और मरे, जन्मे और मरे, जन्मे और मरे, आहाहा ! लाइन लगी है अनंत भवों की।

परंतु जिसने आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप का भान करके, जिसने राग, द्वेष और अज्ञान का नाश किया, उसकी दशा ध्रुव हो गई ! अब बदलेगी नहीं, उसे अब गति नहीं, भव नहीं और ***जो सिद्ध हुये उन्हें फिर से संसार में आना नहीं इसलिये उन्हें ध्रुव कहा, पर्याय को ध्रुव हो ! वस्तु तो त्रिकाली ध्रुव है, परंतु (पर्याय का अर्थ ?)*** पर्याय अर्थात अवस्था पर्याय अर्थात हालत, पर्याय अर्थात दशा, पर्याय अर्थात वर्तमान स्थिति। जैसे सोना है वह सोना कायम है इस अपेक्षा सोने को द्रव्य कहते है, और सोने से पीलापन और चिकनापन पर है वह भी कायम

(स्थाई) है इसलिये गुण कहते हैं, परंतु सोने में कुण्डल, कड़ा, अंगूठी दशायें होती है, उसे अवस्था कहते हैं। आहाहा ! कुण्डल, कड़ा, अंगूठी अवस्थायें, ऐसे भगवान आत्मा, जैसे सोना वस्तु अपेक्षा अनादि है वैसे ही आत्मा अनादि है। जैसे सोने में पीलापना चिकनापना आदि है वह भी अनादि के है, इसीप्रकार आत्मा में आनंद और ज्ञानादि स्वभाव वह अनादि के हैं परंतु उसकी अवस्था में जैसे सोना में कड़ा अंगूठी आदि होते हैं, उसीप्रकार इसकी अवस्था में पुण्य और पाप, राग और द्वेष कर रहा है और अज्ञान की दशा से चार गति में भ्रमण कर रहा और परिभ्रमण कर रहा है। आहा ! इस दशा को टाले और टालकर इस दशा में निर्मल जो आनंद स्वरूप है वह दशा प्रगट करे उस दशा को यहाँ ध्रुव कहते हैं। वह बाद में पलटे नहीं। यहाँ की गति तो पलटे एकमें से दूसरी मनुष्य मर कर कीड़ा हो, कीड़ा मर कर कौआ होता है। आहाहा !

क्योंकि वस्तु तो अनादि है और परिभ्रमण के दुःख और उसका कारण जो विकार का सेवन कर रहा है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप कर रहा है इसलिये वह परिभ्रमण में तो पड़ा ही है। एक अवतारमें से दूसरा अवतार, लाईन लगी ही है जन्म की। यह जन्म मरण जिसके छूट गये, आहाहा ! और जिसका स्वरूप अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंद से भरा हुआ था वह जिसने वर्तमान दशा में प्राप्त किया उन परमात्मा को यहाँ ध्रुव कहते हैं। यह दशा अब उन्हें रहनेवाली है, बदलनेवाली नहीं, इसलिये ध्रुव कहते हैं। न्याय समझ में आता है ना ? बात तो लौजिक से है परंतु अब विषय पूरा अन्य है। जगत के धंधे से विषय ही अन्य है आहाहा !

ध्रुव, `अचल' यह पूरण दशा को पाये, वह वहाँ से अब आयें - ऐसा नहीं, इसलिये अचल है। अनुपम पूर्णपद को पाये उन्हें उपमा नहीं होती। अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप ***प्रभु स्वभाव जिसका होता वह दुःखरूप नहीं होता, विकृत नहीं होता, विपरीत नहीं होता,*** उसका अंतर स्वभाव भगवान आत्मा का अतीन्द्रिय आनंद, अतीन्द्रियज्ञान, अतीन्द्रिय शांति उसका स्वभाव है। यह अधूरा नहीं, विपरीत भी नहीं, उस वस्तु के मूल स्वभाव को आवरण भी नहीं। अरे ! ऐसी बातें हैं।

वह शक्ति जहाँ प्रगटी... सोना में जैसे सोलहवान प्रगट किये और मैल तथा अन्य धातु निकल गई, वैसे भगवान आत्मामें से पुण्य और पाप का कथिर अर्थात् मैल निकल गया, और अवस्था में पूर्णानंद का नाथ प्रगट हुआ उसे यहाँ अचल और अनुपम गति पाये हुये कहा जाता है। समझ में आया कुछ ? `कुछ' अर्थात किस तरह से कहा जाता है उसका नाम कुछ, समझ में आता है। वह तो समझ जायें तो समझ जायें, परंतु `कुछ' अर्थात किस रीति से कहा जाता है (इसलिए कुछ

कहते हैं)। `समजाय छे कांई' इसका अर्थ यह है। आहाहाहा !

कहते हैं यह ध्रुव, अचल और अनुपम तीन विशेषणों से युक्त गति को प्राप्त हुये परमात्मा, सिद्ध गति को प्राप्त हुये। परमानंद दशा को प्राप्त हुये, संसार अवस्था जिनकी नाश हो गयी। यह परिभ्रमण रूपी अवतार जिसके अभाव हो गये। कांतिभाई ! णमो सिद्धाणम्, उनकी बात चलती है, णमो सिद्धाणम् कोई पक्ष नहीं वस्तु का स्वरूप है। आहाहा !

ऐसी `गति को प्राप्त हुये - ऐसे सर्व सिद्धों को'... अनंत परमात्मा हुये, कारण कि अनंत अनंत काल हुआ, उस अनंत काल में, अनंत संत आदि हुये, तो उन्होंने आत्मा की साधना करके, आत्मा के आनंद का, अल्पकाल में वह मुक्ति को प्राप्त करेंगें, उन्हें अनंत काल मुक्ति जाने में चाहिए नहीं। आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति, जैसे दोजमें से पूनम होने में तेरह दिन का अंतर रहता है, अनंत काल का अंतर नहीं रहे। दूज से पूनम, इसीप्रकार आत्मा का अनुभव, राग से भिन्न चैतन्य के आनंदके अनुभव का बीज पका जहाँ, दूज हुयी दूज, उसे पूर्ण प्राप्ति के लिये ज्यादा समय न लगे अब ! दूज उगी वह तेरहवें दिन पूनम हुयी, पूनम अर्थात पूरण, अमावास्या यानी आधा मास, आधा महीना। ऐसे पूरण दशा को प्राप्त होने में उसे समय नहीं लगेगा। इसलिये यहाँ कहते हैं, ऐसे अनंत सिद्ध हुये। आहाहा ! आत्मा की दशा को प्राप्त करते करते अनंत हो गये हैं।

जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ... सम्यग्दर्शन, सत्यदर्शन, पूर्णानंद का नाथ सत्य है उसका दर्शन हो गया, अनुभव हुआ, मैं तो शुद्ध हूँ, यह पुण्य पाप के भाव वह तो मैल, अशुद्ध और दुःख रूप है। - ऐसा जहाँ भान हुआ, अब उसे पूर्ण प्राप्ति में अनंत समय नहीं चाहिए, अल्पकाल में यह पूरण की प्राप्ति करेगा, तब ऐसे अनंत सिद्ध हो गये। अनंत काल के प्रवाह में अनंत परमात्मदशा को प्राप्त हुये, इसलिये सर्व सिद्ध शब्द प्रयोग किया है, सभी परमात्माओं को मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा ! है ना ? नमस्कार करके... अहो ! अहो ! भव्य जीवो- ऐसा कहते हैं आचार्य संत, श्रुतकेवली भणितं, श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ, सर्वज्ञपरमात्मा के द्वारा कहा हुआ और श्रुतकेवली अर्थात भावश्रुत का ज्ञान जिसे हो गया उनके द्वारा कहा हुआ, इस समयसार नाम के प्राभृत को कहूँगा। इस शास्त्र को मैं कहूँगा, जगत के हित के लिये और हमें इस जाति का विकल्प उठा इसलिये मैं कहूँगा - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! कठिन काम है, एक एक शब्द कठिन है। (समझने में।)

अंतर की इस चीज (आत्मवस्तु) का कभी अभ्यास नहीं, सच्चिदानंद प्रभु वस्तु है, वस्तु है, तत्त्व है, तो वस्तु में बसे हुये गुण हैं उसे वस्तु कहते हैं। वस्तु जिसमें

अंदर अनंत शक्ति बसी हुयी है, इसलिये वस्तु कहते हैं। इसप्रकार भगवान आत्मा वस्तु है, उसमें अनंती अनंती पवित्र शक्तियाँ बसी हुयी हैं। उन शक्तियों की जिन्होंने दशा प्रगट की और अज्ञान का नाश करके परिभ्रमण बंद किया, उन्हें यहाँ परमात्मा कहा जाता है। ऐसे अनंत परमात्मा को नमस्कार करते हैं। आहाहा ! है ? - ऐसा कहकर अब मैं इस शास्त्र को कहूँगा। अब टीका !

टीका :- संस्कृत में पहला शब्द `अथ' है, संस्कृत है पहले `अथ', `अथ' क्यों कहा है ? इस शास्त्रकी ये ही शुरूआत है, यह श्रुत पंचमी का दिन है इस दिन श्रुत की रचना हुयी थी वह श्रुतपांचम, दोहजार वर्ष हुए अंकलेश्वर में इस श्रुत की रचना हुयी थी, और आज इस समयसार की शुरूआत होती है उन्नीसवी बार सभा के अंदर, यहाँ कहते हैं `अथ' वह मंगल के लिये है, अर्थात क्या ? `अथ' अब कहता हूँ, ***अर्थात अनादि का जो संसार है उसका नाश होता है और `अथ' अब आनंद की नई शुरूआत होती है।*** अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप भगवान आत्मा वह अनादि से दुःख को वेद रहा है। राग और द्वेष, पुण्य और पापके भावोंको वेद रहा है। वह तो दुःख है उसमें अतीन्द्रिय आनंद का अंश नहीं।

अब यहाँ कहते हैं कि मांगलिक के लिये `अथ' शब्द लिख दिया है `अथ' का अर्थ मांगलिक किया, प्रारंभ हो गया। आत्मा के अनुभवन की शुरूआत के लिये `अथ' शब्द मंगल के लिये प्रयोग किया है। आहाहाहा ! बहुत शर्तोंवाला शब्द है बापू ! मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहाहा ! है ? - ऐसा कहते हैं कि अब मार्ग की शुरूआत हो गई है। प्रभु ! आनंद का नाथ अंदर सच्चिदानंद प्रभु ! चैतन्य जलहल ज्योति जिसके प्रकाश की सत्ता में जगत जानने में आता है। जिसके प्रकाशकी सत्तामें जगत जानेमें आता है। वह जाननेवाला जागा है इसलिये उसे `अथ' नाम मंगलिक कहा जाता है। आहाहा ! है ? एक `अथ' शब्द का इतना अर्थ है।

`अथ' मंगल के लिये... मंगल का अर्थ यह है की मम + गल, मंग + ल, ऐसे दो अक्षर हैं। `मंग' अर्थात पवित्रता और `ल' अर्थात लाति प्राप्ति। भगवान, अतीन्द्रिय आनंद का नाथ प्रभु स्वभाव वह पवित्र है, उसे `मंग' कहते हैं और `ल' उसकी दशा (पर्याय) में प्राप्ति करे उसे मंगल कहते हैं। अरे ! दुनियाँ को तो पांच पचास लाख मिलें तो मंगलिक कहते हैं। वास्तु (मकान का उद्‌घाटन) करे और पांच पचास हजार खर्च करे उसे मंगलिक कहते हैं। कुटुम्बियों को एकत्र करके लापशी भोजन आदि कराये। लड़के की शादी करे और पांच दश हजार खर्च करे और मंगलिक कहे, यह सभी अमांगलिक है, नाशवान है। यह मांगलिक नहीं, मंगल तो उसे कहते हैं जिससे आत्मामें पवित्रता प्रगट हो, उसे मंगलिक कहते हैं। प्रभु स्वयं आनंद स्वरूप

है, सच्चिदानंद उसका स्वभाव है। उसमें से सत् आनंदमें से अतीन्द्रिय आनंद की पवित्र `मंग' नाम पवित्रता और `ल' नाम प्राप्ति। (जो) ऐसी पवित्रता की प्राप्ति कराये, उस भाव को मांगलिक कहते हैं। डॉकटर ? हरेक शब्द में फर्क है। आहाहा ! अथवा मं और गल पहले `मंग' और `ल' लिया। उसमें मंग पवित्र प्रभु, शुद्ध स्वरूप चैतन्यघन उसकी पवित्रता जिसने अंतरमुर्ख होकर, बर्हिमुख की दृष्टि छोड़कर, अंर्तमुख होकर जिसने आनंद को प्रगट किया, उसने पवित्रता प्रगट की इसलिये इसे मंगलिक कहते हैं। मं.....ग.....ल...... यह तो प्रत्यय हैं संस्कृत। दूसरा अर्थ `मम्' और `गल'। वहाँ `मंग' और `ल' था यहा `मम्' और `गल',। आत्मा आनंद स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन है, उसे वे पुण्य-पाप और शरीर हमारा- ऐसा जो `मम्' नाम अहंकार है - ऐसा जो मिथ्यात्व भाव है उसे `गल' नाम गलाये उसे मंगलीक कहा जाता है।

उन पुस्तकों में नहीं आया होगा डॉक्टरों के अभ्यास (पढ़ाई) में कहीं ? आहाहाहा ! पूरा मार्ग दूसरी जाति का है। प्रभु क्या कहें ? आहाहा ! अंतर की चीज, जन्म-मरण रहित होने की चीज कोई पूरी भिन्न है। अभी तो लोग धर्म के नामपर कुछ न कुछ पांच पच्चीस लाख खर्चे (तो) हो गया धर्म ! धूल में भी धर्म नहीं, तुम लाख नहीं करोड़... १ करोड़ दो ना। आहाहा ! कैम्प में (बढ़वान कैम्प में) गये थे ना ? तुम्हारे जमाई के पास, वहाँ रुपये दिये थे ना उन्होंने चिमन भाई वह दामनगरवाले, चिमनभाई मालूम है ना ? आये थे ना, अभी आये थे। वहाँ गये थे, आये थे घर से बहिन थी, लडकी (भी)। हमारे सामने नरियल रखा था, और ऐसे जहाँ दो पांच लाख खर्चे करें अर्थात समझें कि धर्म हो गया। धूल में नहीं बापू ! आहाहा ! एक अभी मद्रास गये थे, वहाँ खून की जांच कराई भी है। मद्रास में एक बड़ा अस्पताल है, उसमें एक नानालाल भट्ट है बड़े गृहस्थ, सरल स्वभावी, उन्हें ऐसी खबर लगी कि महाराज अस्पताल में खून जांच को जानेवाले हैं, यह थोड़ा अभी १५ दिन में लेते है (टेस्ट के लिये)। इसलिये वह स्वयं साथ में आये, बिचारे सरलस्वभावी है, छह लाख रुपया उन्होंने स्वयं दिये हैं। मद्रास की होस्पीटल में छह लाख रुपया दिये हैं। अकेले स्वयं नानालाल भट्ट नाम के हैं। उन्हें यह खबर लगी कि महराज हमारी अस्पताल में खून जांच करने को आनेवाले हैं। अतः हमारे साथ आये, हर पंद्रह दिन में खून लेते हैं, कुछ जांच करते हैं, शंका है डॉक्टरों को खून में यहाँ (तो) कुछ दिखता नहीं, बहुत-बहुत डॉक्टर हैं (उनमें) से बड़ा डॉक्टर है वह पारसी एक बड़ा क्या नाम ? भरुचा डॉक्टर, भरुचा डॉक्टर बड़ा डॉक्टर है वह आया, आये थे। आये थे देखने के लिये। बापू ! यहाँ होगा शरीर में धूल में कुछ, हमारे आत्मा में कुछ नहीं। आहाहा ! शरीर में तुम्हें लगता हो तो लगे

भले। इन लोगों को - ऐसा लगे कि पांच दश लाख रुपया दें अर्थात, भट्ट ने छ लाख रुपया दिया, लोग जाने (बड़ा मानें) बापू ! पैसा तुम्हारी चीज नहीं पैसा तो जड़ है, अजीव है और तुम जीव हो, जीव की चीज अजीव हो सके नहीं, इसलिये अजीव (पैसा) हमने दिया, यह अहंकार है। आहाहा !

पर के प्रति अहंकार और अंदर राग हो उसका भी अहंकार दया दान का राग वह भी विकल्पराग है। उसका अहंकार, यह मेरा है उसे यहाँ मम् कहते हैं। मम् को अहंकाररूपी पाप कहते हैं। वह जो गले वह गलाये मं.....ग.....ल..... वह आत्मा के आनंद का आश्रय करके उस अहंकार को गलाये उसे मंगल कहते हैं, उस मांगलीक की यहाँ बात है। पण्डितजी ! है ?

'अथ' शब्द मंगल के अर्थ को दिखाता है 'ग्रंथ के आदि में प्रारंभ करते हुए, सर्व सिद्धों को' परमात्मा हुये जो अनंत सिद्ध। संसाररूप विकृत दशा का नाश करके और अविकृतदशा पूर्णानंद की दशा प्रगट करके ऐसे अनंत सर्व सिद्धों को 'भाव-द्रव्य स्तुति से'... सूक्ष्मबात है थोड़ी अभी... क्या कहते हैं ? पूरण परमात्मा हुये सिद्ध और हमें भी - ऐसा होना है। परंतु जो हुये, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ, किस प्रकार ? नमस्कार के दो प्रकार !

(१) भाव (२) द्रव्य

दोनों शब्दों में... सूक्ष्म बात है। भाव द्रव्य स्तुति अर्थात ? भगवान पूर्णानंद स्वरूप स्वयं आराधक है, सेवन करने लायक है, उसको सेवन करनेवाला भी मैं, ऐसी निर्विकल्प दृष्टि की सेवन, निर्विकल्प शांति से, आत्मा का मंगलिक करे, उसे भाव स्तुति कहा जाता है। फिरसे। आत्मा अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप प्रभु, उसे पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, निर्विकल्प वीतरागी दशा से स्वरूप की सेवा करे, त्रिकाल स्वरूप में एकाग्र हो, उसे भाव स्तुति, भाव स्तुति कहा जाता है। शब्द अन्य जाति के है ? 'भाव' शब्द है ना ? सब सिद्धों को अनंत परमात्माओं को भाव और द्रव्य स्तुति से भाव अर्थात यह कि ***मैं स्वयं परमात्मस्वरूप ही हूँ और मेरी निर्मल पर्याय द्वारा मैं परमात्म स्वरूप का आदर करता हूँ। उसका नाम भाव स्तुति कहा जाता है,*** जिसमें राग नहीं, आहाहा... ऐसी कहां फुरसत मिले, फुरसत ही कहाँ है। निवृत्ति लेने की, संसार के पाप कर्मों से दो पांच दश हजार का वेतन हो, वहाँ तो जाने कि, ओ हो हो, बढ़ गये, धूल में भी बढ़े नहीं, धूल में नहीं अर्थात क्या ? वहाँ पुण्य भी नहीं, धर्म तो नहीं परंतु पुण्य भी नहीं। आहाहा !

यहाँ कहते हैं... अनंत परमात्मा हुये उनको मैं शास्त्र की शुरूआत करते हुये (कहता हूँ), मैं भी परमात्मा होने की अभिलाषावाला जीव हूँ, साधक हूँ, आत्मा के

आनंद के अनुभव में आया हूँ, परंतु हमारी अभी पूर्ण दशा नहीं, इसलिये पूर्ण दशा प्राप्त जीवों को, अनंत जीवों को भाव से नमस्कार करता हूँ। भाव से नमस्कार की परिभाषा यह कि स्वयं शुद्ध आनंद है, स्वयं सेवन करने लायक है स्वयं आराधक है एवं स्वयं आराध्य है। आराध्य अर्थात् सेवन करने लायक और आराधक सेवन करनेवाला... आराधक सेवा करनेवाला, आराध्य सेवा करने लायक। आहाहा ! मैं स्वयं आराध्य और आराधक हूँ। ***मैं आराधक और परमात्मा मुझे आराध्य, वह तो द्रव्य नमस्कार में जाता है, विकल्प में जाता है।*** सूक्ष्मबात है भाई ! आहाहा ! यह तो अगम्यगम की बातें है। भाव नमस्कार... पण्डितजी ! आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनंदकंद, उसे मैं ध्येय में लेकर और वर्तमान मेरी ध्यान की दशा में उसे ध्येय बनाकर और उसकी सेवा करूँ, उसका नाम भाव स्तुति कहा जाता है, जिसमें परमात्मा भी नहीं आवे, जिसमें विकल्प न आवें, विकल्प अर्थात् राग। आहाहा !

मैं शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानंद वस्तु हूँ ना। वस्तु है ना। अस्ति है ना ! मौजूदगी है ना। मौजूद वस्तु है ना ! और जो वस्तु में अनंत अनंत जानने में आता है। वह जाननेवाला अनंत है। ***क्योंकि जिसमें अनंतपना जानने में आता है निश्चय से वास्तव में तो (ज्ञेय) जानने में नहीं आते, परंतु वह जाननेवाले की दशा का अनंतपना जानने में आता है, यह जाननेवाले की पर्याय ही जानने में आती है।*** आहाहाहा ! यह पिलास्टिक नहीं, परंतु पिलास्टिक संबंधी जो यहां ज्ञान है, स्वका ज्ञान और परका ज्ञान, वह ज्ञान यहाँ जानने में आता है। इसमें (ज्ञानमें) यह (पिलास्टिक) जानने में आता - ऐसा कहना व्यवहार है। शेष यथार्थ में तो अपने ज्ञान की स्वपर प्रकाशक पर्याय जानने में आती है। सूक्ष्म बात है प्रभु ! आहाहा ! यह लौजिक ही अलग जाति का है प्रभु, यह तत्त्व ही अलग जाति का है।

यहाँ यह कहते हैं, मैं भाव से ही स्तुति करता हूँ। फिर द्रव्य, द्रव्य आया, अब द्रव्य से अर्थात ? अनंत परमात्मा प्रति मेरे शुभ राग विकल्प उत्पन्न होते हैं इसलिये नमस्कार करता हूँ, यह द्रव्य नमस्कार है। पण्डितजी ! कुछ समझ में आता है ?

अंदर का आत्मा... पूर्ण इदम् पूर्ण स्वरूप में प्रभु विराजमान है, उनकी वर्तमानदशा, निर्मल निर्विकारी दशा द्वारा उसमें एकाकार होना, जिसमें राग का संबंध नहीं और जिसमें निर्विकल्पराग बिना की शांति और समाधि उसको यहाँ `भाव नमस्कार' कहते हैं। आहाहा ! और अब जो अनंत परमात्मा हुये उनके ऊपर मेरा लक्ष्य जाता है, वह अंदर में लक्ष्य में था, इसलिये वह मैं अपने आत्मा की सेवा करता, (हुँ) आराध्य भी मैं और आराधक भी मैं। अब विकल्प उठा है, शुभ राग, तो आराधक मैं और

आराध्य परमात्मा, सिद्ध भगवान सेवन करने लायक हैं, यह शुभ राग है। यह किस जाति की बातें... बापू मार्ग - ऐसा है यह धर्म की दशा और धर्म का कोई प्रकार - ऐसा अपूर्व है बापू... अरेरे ! उनको हाथ में तो आया नहीं परंतु उन्हें सुनने भी नहीं मिलता। ***- ऐसा मनुष्यपना मिला, उसमें भव के अभाव की बात सुनने में न मिले वह भव किस काम का ?***

चाहे दश हजार का वेतन और पचास हजार का वेतन वह धूल का वेतन, अपने रामजी भाई के लड़के को आठ हजार का वेतन है ना ? सुमन भाई पहले `- ऐसो' में थे। (जिसका चिन्ह) उड़ता हुआ घोड़ा पहले `- ऐसो' कम्पनी में थे वहाँ से निकल गये। अब यह जगमोहनलाल है, जामनगर के श्वेतांम्बर, देरावासी, साड़े तीन करोड़ की आमदनी है साल की, यहाँ आ गये हैं (वह)। वहाँ आये थे, अभी खून जांच करने गये थे मद्रास (वहाँ आये थे) वहाँ बिचारे डॉक्टर ने उनका बहुत आदर किया। उन डॉक्टर ने !

मद्रास के गर्वनर हैं अपने यहाँ प्रभुदास भाई पटवारी। में प्लेन से उतरा तब उन्हें खबर मिली की महाराज आये हैं। अतः मेरी मोटर के पास आये, `महाराज ! हमारे गर्वनर होल में आना पड़ेगा, मुझे आपका स्वागत करना है। पटवारी स्वयं, फिर तो व्याख्यान में स्वयं आये। यह डॉक्टर है ना पटवारी भावनगर का उनका भाई, उनका भाई है, व्याख्यान में आये। बाईस मिनट सुना, उनको काम बहुत (था) व्याख्यान बाईस मिनट सुना, परंतु महराज हमारे गर्वनर होल में पधारना पड़ेगा आपको, बाद में गये, वहाँ आधा घण्टे रहे थे। बाहर है बड़ा राजमहल उसको गर्वनर (हाउस) कहते, अपनी हिन्दी भाषा में राज्यपाल कहलाते हैं, परंतु बहुत सीधे आदमी। नरम है नरम, अंदर बहुत विनंती करी, हमारे होल में पधारना होगा, लोगों को थोड़ा पता चले कि महाराज आये थे यहाँ गर्वनर होल में। उसमें बड़ा जंगल है, आसपास तेरहसौ तो हिरण हैं, आसपास जगह बड़ी। खरगोस है, लोमडी है, राजमहल बड़ा है, सब है। परंतु हमने कहा - इस तत्त्व को समझो बापा ! इस बिना सभी धूल धाणी और हवा पानी (व्यर्थ) है।

सीधे सरल हैं, परंतु समय मिले नहीं, समय लम्बा। आहा ! यहाँ यह कहते हैं कि चाहे जितनी बड़ी पदवी हो और चाहे जितने करोड़ों अरबों रुपये हो, यह कोई सुखी नहीं, वह तो दुःखी हैं, बिचारे ! क्योंकि परपदार्थ पर उनका लक्ष्य जाता है, इसलिये राग होता है और राग होता है इसलिये दुःख होता है। स्व का आत्मा का आश्रय करें तब वहाँ उन्हें आनंद है और वहाँ सुख है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, मैं मेरे आत्मा को नमस्कार करता हूँ भाव (स्तुति) आहाहाहा !

- ऐसा कह कर अपनी स्थिति भी बतायी है। मैं किस भूमिका मैं हूँ। आत्मा के आराधन की भूमिका में हूँ, आचार्य - ऐसा कहते हैं, आत्मा क्या है यह मुझे अनुभव हो गया है। अब अल्प काल में हमें परमात्मा बनने का (स्व)काल है। इसलिए एक तो मैं अपने आत्मा का सेवन करता हूँ, आनंद के नाथ में मेरी एकाग्रता है यह हमारा भाव नमस्कार है, भाव स्तुति है, और जब इसमें मैं रह नहीं सकता, तब जो परमात्मा हो गये, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। तब वह शुभराग है, पुण्य है धर्म नहीं। आहाहा ! मेरा आत्मा (ही) आराधक और आराध्य, ऐसी जो निर्विकल्प समाधि अंदर होना, वह भाव स्तुति, वह धर्म और परमात्म (पद को) पाये हुए को नमस्कार करना, वह शुभ विकल्प और राग, वह पुण्य, धर्म नहीं (श्रोता :- धर्म का कारण तो है ना) बिलकुल नहीं। स्पष्टीकरण कराते है ! वकील है न इसलिये ? क्योंकि राग बिलकुल कारण हो ही नहीं पूर्ण सकता।

भगवान आत्मा सच्चिदानंद, निर्मलानंद का नाथ, पूर्ण पूर्ण पूर्ण पूर्ण इदम, पूर्ण शक्ति का सागर वह तो सुख का समुद्र है। भाई तुम्हें मालूम नहीं। आहाहा ! वह अतीन्द्रिय आनंद का समुद्र है... कैसे स्वीकार हो ? सुबह जब दो बीड़ी पिये तब दिशा उतरे पायखाना भाई साहब को, ऐसे तो कुलक्षण, अब उन्हें - ऐसा आत्मा ! बापू सब मालूम है। दुनियाँ की तो सभी खबर है ना ! यहाँ घाटकोपर में ८८ वर्ष हुये (जन्म जयन्ती थी) ८९ वैशाख सुद दूज, ८९ पूरे होगये शरीर को, हाँ आत्मा को वर्ष नहीं, आत्मा तो अनादि अनंत है, इतने (समय) में बहुत अधिक देखा। बहुत देखा और बहुत जाना, ८९ वर्ष शरीर को नव्वे में एक कम यह भी जन्म की अपेक्षा, शेष तो माता के पेट में सवानौ महीना रहें वह (आयु) यहीं की है, वह गिनो तो अब एक डेढ़ महीना रहा ८९ पूरा होने में सवानौ महीना इसी भव के हैं ना ? आयुष्य यहीं का है ना ? माता के पेट में आये, परंतु लोग तो जन्म से गिनते हैं कब आये वह नहीं गिनते। आहाहाहा ! अरेरे ! ऐसे अवतार अनंत किये हैं। प्रभु !

यहाँ तो कहते हैं कि हमें अब अवतार करना नहीं - ऐसा जो मेरा आत्मा है उसे हमने पहचाना, हमने आराधा, हमने सेवा की है, हमने भाव स्तुति की है, अपने स्वरूप की। आहाहा ! परंतु अभी मैं अल्पज्ञ हूँ, पूर्ण वीतराग हुआ नहीं इसलिये मुझे (जो) परमात्मा हुये उनके प्रति मुझे बहुमान का राग (रूप) विकल्प आता है। यह राग शुभराग हैं उसे द्रव्य स्तुति कहते हैं और निर्विकल्प समाधि अन्दर (की) शांति, उसे भाव स्तुति कहा जाता है। पण्डितजी ! ऐसी बातें है। संस्कृत में है सभी संस्कृत में है ना ? जयसेन आचार्य की टीका, उसमें सभी है। सहारनपुर के पण्डित हैं। सहारनपुर है ना ?

भाव द्रव्य स्तुति से... क्या कहते हैं अब `अपने आत्मा में और पर के आत्मा में स्थापित करके' बापू ! यह कहानी नहीं, यह कहीं कथा नहीं, यह तो आत्म-कथा है। कहते हैं कि मैं एक आत्मा पूर्णानंद का नाथ... वह मुझे अनुभव में आया, इसलिये अपने अनुभव से उसका सेवन करता हूँ। निर्विकल्प शांति है वह मेरी भाव स्तुति है। परंतु जब उसमें मैं (ज्यादा) रह सकता नहीं क्योंकि अल्पज्ञ हूँ पूर्ण सर्वज्ञ हुआ नहीं, इसलिये पूर्ण परमात्मा हुये उनको मैं शुभ विकल्प नाम राग से नमस्कार करता हूँ। यह शुभ राग व्यवहार नमस्कार है। यह द्रव्य नमस्कार और अंदर निर्विकल्प शांति है वह भाव स्तुति है। अरे ! - ऐसा पढ़ने की कहाँ फुरसत हो। ४१५ तो गाथायें है और साड़े तीन हजार (श्लोक प्रमाण) इतनी तो संस्कृतटीका है, साड़े तीन हजार श्लोक की, आत्मख्याति नाम है। उस टीका का नाम आत्मख्याति। आत्मप्रसिद्धि, आत्मा कैसा है उसकी प्रसिद्धि। ख्याति अर्थात प्रसिद्धि !!

यहाँ कहते हैं कि अपनी आत्मा में; आहाहा ! स्वयं के आत्मा में भी मैं भाव-स्तुति (रूप) नमस्कार करता हूँ और विकल्प आया है व्यवहार से भी परमात्मा को नमस्कार करता हूँ। ऐसे सिद्ध भगवान को (जो) पूर्ण परमात्मदशा को प्राप्त हुए, उन्हें अपने आत्मा में स्थापित करता हूँ। हमारी वर्तमान दशा है, उसमें अनंत परमात्माओं का सत्कार करता हूँ, अर्थात कि स्थापना करता हूँ। आहाहा ! प्रभु अनंत परमात्मा जो सिद्ध हो गये, वह हमारी पर्याय में आओ अर्थात बसो ! अर्थात इतने अनंत परमात्मा अनंत सर्वज्ञ हुये, ***उन सभी को अपनी पर्याय में सम्मान करता (हूँ), उसका अर्थ यह हो गया कि हमारी दृष्टि द्रव्य ऊपर ढल गई है त्रिकाल ऊपर ढल गई है। आहाहाहाहा !***

यह तो थोड़ी बहुत सूक्ष्मबात है बापू ! यह कोई कहानी नहीं ! कहीं यह किस्सा नहीं। यह तो अनंत काल के जन्म मरण का नाश करने की भाव (रूप) दशा है, शेष तो सभी मिला धूल (पैसा) अनंतबार। कहते हैं कि मेरी आत्मा में भाव स्तुति और द्रव्य स्तुति से और दूसरे के आत्मा में... क्या कहते हैं ? इन श्रोता के आत्मा में। - ऐसा कहते हैं - ऐसे श्रोताओं को मैं सुनाऊंगा - ऐसा कहते हैं। अपने और पर के आत्मा में स्थापित करके अनंत सिद्धों को... जो अनंत सिद्ध है, ध्रुव, अचल और अनुपम अर्थ हो गया। वह अभी तो आयेगा फिर से। अपनी आत्मा में स्थापित करता हूँ। जब अपने को किसी गाम में बाहर जाना हो, किसी दूसरे गांव में, तब क्या करते हैं, दो चार घर दूर तक जाकर वापस आते वह वार-कवार कहलाता। बाद में जब जाने का दिन आता है तब सामान लेकर चले जाते हैं। इसीप्रकार यहाँ कहते हैं, कि मैं मेरे आत्मा में भाव नमस्कार की सामग्री रखता

हूँ। अब मुझे पूरणता प्राप्त करना है, वह पूर्ण होगी यह हमारी पूर्ण दशा और उसके साथ विकल्प है वह राग है, यह पूर्णता प्रति हमारा सम्मान है। आहाहा ! समझ में आया ?

सामग्री ले जाकर वापस आते हैं और बाद में (समय आनेपर) लेकर चले जाते हैं, फिर उस दिन बदलने की आवश्यकता नहीं रहती उसे। आहाहा ! इसप्रकार हमारे आत्मा में प्रभु आनंद का नाथ है, उसमें, मेरे आत्मा में मैं सिद्धों को स्थापित करता हूँ, अनंत परमात्मा हो गये, उनका मैं अपनी पर्याय (दशा) में स्वीकार करता हूँ। अपनी पर्याय में सत्कार करता हूँ। आहाहाहाहा ! इस प्रकार, अनंत परमात्माओं का विश्वास जिसे हो और जिसे परमात्मा होने की जिज्ञासा है - ऐसे श्रोताओं के आत्मा में भी मैं सर्व सिद्धों को स्थापित करता हूँ - ऐसा कहते हैं। बाद में मैं तुम्हें सुनाऊंगा - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

यह क्या कहा ? (तुम भविष्य के सिद्ध हो - ऐसा मानकर सुनना) सिद्ध स्वरूपी ही तुम्हारा स्वभाव है और अल्प काल में तुम्हें सिद्ध होना हो तो सुनो, और सुननेवालों से भी कहते हैं कि अनंत सिद्धों को मैं तुम्हारी पर्याय में स्थापन करता हूँ, प्रतिष्ठित करता हूँ। आहाहाहा ! अभी तक अनंत अनंत सिद्ध हो गये, अनंतकालमें। अनंतकाल में, किस समय परमात्मा नहीं हुये ? ऐसे अनंत हो गये हैं। एसे अनंत परमात्माओंको मेरी आत्मा में स्थापित करता हूँ, परंतु श्रोताओंको - ऐसा कहते हैं पर के, है ना ? पर के आत्मा में स्थापित करके आहाहा ! इन श्रोताओं में अनंत सिद्धों को जहाँ पर्याय में स्थापित किया है और वह जब स्वीकार करता है, तब वह सुनने की पात्रतावाला हो जाता है। आहाहा ! सूक्ष्मबात है बापू ! यह लौजिक दूसरी जाति का है !

`नि' धातु है ना `न्याय' में, न्याय में `नि' धातु है। यह लोग सरकार न्याय करते हैं वह अलग बात है... परंतु यह तो सर्वज्ञ की... `नि' धातु अर्थात `नि' ले जाना, जैसा स्वरूप है उस तरफ ज्ञान को खीच कर ले जाना उसका नाम न्याय। नि धातु है, न्यायमें नि धातु है। जैसा स्वरूप है उसमे ज्ञानको ले जाना, पीछे पीछे ले जाना उसका नाम न्याय ! इस न्याय से यहाँ मेरी आत्मामे भी अनंतसिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहाहा ! तुम पामर जैसा अपने को मानते हो, श्रोता को कहते हैं, परंतु तुम्हारी पर्याय में अनंत सिद्धों को महेमान (बनाकर) स्थापित करता हूँ। आहाहाहा !

इसीप्रकार अनंत सिद्धों को पर्याय में रखकर, मैं कहूँगा वह बात सुनो। मैं आत्मा की बात कहूँगा, वह सुनो। यह जगत से भिन्न दूसरी जाति की बातें चलती हैं। आहाहा ! है ? दूसरे के आत्मा में स्थापित करके, `यह समय नाम का प्राभृत,' यह समय नामक शास्त्र, समयसार, शास्त्र, भाव-वचन और द्रव्य-वचन। क्या कहते हैं यह ?

अंदर में भाव वचन अर्थात ज्ञान की दशा का विकास हुआ, उससे मैं कहूँगा और द्रव्य वचन अर्थात विकल्प उठा है वाणी आदि का, उससे कहूँगा। आहाहा ! भाववचन अर्थात यह वाणी नहीं परंतु अंदर में जो यह ज्ञान की विकास (रूप) शक्ति है, ज्ञान की शक्ति का विकास पर्याय में प्रगट है, उससे मैं कहूँगा उसे भाव वचन कहा जाता है। यह ज्ञान के विकास की जो दशा है, उससे मैं कहूँगा, यह भाव वचन कहा जाता है। ... और वाणी द्वारा और विकल्प द्वारा कहेंगे वह द्रव्य वचन है। पहले भाव-स्तुति और द्रव्य-स्तुति थी, अब यहाँ भाव-वचन और द्रव्य-वचन दो आये। दोनों में यह है। आहाहा ! हमारी ज्ञान की दशा में हमें जो विकास वर्तता है उससे मैं कहूँगा। कहनेवाली वाणी तो जड़ है, परंतु उसमें जो ज्ञान का विकास है, वह निमित्तमात्र है और जो वाणी निकलेगी वह द्रव्य वाणी है, यह वाणी तो जड़ है। आहाहा ! यह वाणी तो जड़ है। यह कोई आत्मा नहीं। यह द्रव्य-वाणी से कहूँगा और भाव-वाणी से कहूँगा। आहाहा !

यह तो अभी मंगलाचरण की शुरूआत है। उपोद्घात करते हैं। पहली गाथा है। आज श्रुतपंचमी है जेठ सुद पांचम। षट्खण्डागम की रचना आज हुयी थी अंकलेश्वर(में)। आहाहा ! अपनी यह १९ वीं बार शुरूआत है। एक-एक शब्द का अर्थ अठारह बार तो हो गया है, यह उन्नीसवीं वार चलता है। भाई तत्त्व सूक्ष्मवस्तु है। आत्मा उसका जो ज्ञान, आत्म-ज्ञान यह चीज बहुत सूक्ष्म है। आहाहा !

डॉक्टर ! जूनागढ़ नरसींह मेहता '**ज्यां लगी आत्म तत्त्व चीन्हों नहीं त्याँ लगी साधना सर्व झूठी**' यह आत्मा - ऐसा, परमात्मा ने कहा - ऐसा जो उसका स्वरूप; जबतक चीन्हों नहि यानी पहचाना नहीं अर्थात जाना नहीं, तबतक तुम्हारे व्रत और भक्ति, तप और दान सब एक अंक बिना के शून्य हैं। आहाहाहा ! पाप की तो बात ही क्या करनी ? यह कमाना, भोग, विषय और नोकरी तथा इसमें लेना-देना यह सभी पूरा पाप है। २२-२३ घण्टे में यदि एकाद घण्टा मिले कदाचित सुनने को तो भी उसमें कुछ शुभ राग हो, आहाहा ! यह भी बंधन का कारण है। समझ में आया ?

यहाँ द्रव्य और भाव-वचन से परिभाषण प्रारंभ करते हैं। भाषा तो देखो, हमारा जो ज्ञान का विकास है उससे मैं आत्मा की बात करूंगा और विकल्प से अथवा वाणी से करूंगा, प्रारंभ करता हूँ। शुरू करते-करते कहाँ पूरा होगा, वह होगा तब जान लेना। आहाहा ! शुरू करता हूँ - ऐसा लिखा है ना ? परिभाषण आहाहा ! है ? परिभाषण अर्थात समस्त प्रकार से पूरा भाव ज्ञान और वाणी में वह पूरणपना आया। उसका नाम परिभाषण 'परि' उपसर्ग है। (अर्थात) समस्त प्रकार से उसका

कथन प्रारंभ करता हूँ। अब प्रारंभ करता हूँ, आहाहाहाहा ! इस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मुनि हैं नग्न दिगम्बर संत, जंगल में बसते हैं, दो हजार वर्ष हुये संवत् ४९ में जंगल में रहते थे उन (गाथाओं) से श्लोक संस्कृत में बनाये हैं। आहाहा ! और यह टीका है वह उनके एक हजार वर्ष बाद अमृतचन्द्राचार्य मुनि हुये, उन्होंने बनाई है।

इस नये कलश का यह नाम दिया है भाई, `अध्यात्म अमृत कलश' (पं.) जगमोहन लालजी ने नया छापा है न ? राजमलजी की टीका, जगमोहनलालजीने उसका नाम `अध्यात्म अमृत कलश' वह अमृतचन्द्राचार्य के कलश हैं ना ? इसलिये पुस्तक का नाम `अध्यात्म अमृत कलश' - ऐसा नाम रखा है। यहाँ नहीं, वहाँ आया है, अभी भेंट आया है ना ?

यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, वह सिद्धभगवान कैसे हैं, आहाहा ! परमात्मारूप हुई दशा अस्तिरूप से। अभी तो श्रद्धा का भरोसा नहीं ? आहाहा ! कि जैसे अनंत जीव परिभ्रमण करते हैं उसीप्रकार अनंत जीव पूरण सिद्धपद को प्राप्त हुये हैं। क्योंकि जब मैं शुरूआत करूंगा पूरा होने की, तो अल्पकाल में हमारी पूरणता होगी, तो जिसने शुरूआत की है उसे अल्पकाल में (पूर्णता) हो गई है। ऐसे अनंत जीव हो गये हैं। लौजिक न्याय से (सिद्ध) है। आहाहा ! समझ में आया ? यह सिद्ध भगवान, सिद्धपने के कारण, सिद्ध परमात्मदशा, अशरीरी... जिनको शरीर नहीं है, वाणी नहीं, विकल्प नहीं, राग नहीं पूर्णानंद का नाथ प्रभु ! ऐसे अनंत परमात्मा बिराजते हैं, जिन्हें `णमो सिद्धाणं' में बताते हैं। पाँच नवकार के पद हैं और नमो अरिहंताणं `अरि' नाम दुश्मन। राग और अज्ञान यह दुश्मन है उसे `हंत' नाम नष्ट किया-और जिन्होंने पूरण आनंद प्रगट किया उन्हें अरहंत कहते हैं परंतु उन्हें शरीर होता है, उन्हें वाणी होती है, शरीर और वाणी से रहित को सिद्ध भगवान कहते हैं, **नमो सिद्धाणं** दूसरे पद में यह पांचों पदों के शब्द का अर्थ है। कोई यों ही नहीं। मनगढ़न्त नहीं (अंधश्रद्धा नहीं)। उसके भाव, शब्दों के अर्थ गहरे हैं। कांतिभाई ! **णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणम्, णमो आयरियाणम्,** परन्तु इनका भाव क्या है ? पक्ष में पड़े हों उन्हें कुछ समझ नहीं आता। आहाहा !

ऐसे अनंत सिद्धों को... आहाहा ! सिद्धपने के कारण साध्य जो आत्मा, क्या कहा ? आत्मा साध्य है और आत्मा को (ही) साधना करनी है ना ? जिनके साध्य में सिद्ध (भगवान) प्रतिछंद, प्रतिछंद अर्थात **हे भगवान** (- ऐसा कहने पर) तब सामने से आवाज (प्रतिध्वनि) आती है, **हे भगवान** ! यह प्रतिछंद अर्थात सामने से प्रतिध्वनि आती है प्रतिघात सामने से आवे ना ? हे भगवान। तुम सिद्ध हो, तो सामने से

प्रतिध्वनि आयी सामने से पलटकर, `हे आत्मा तुम सिद्ध हो'। समझ में आया ? आहाहा ! है ? वह प्रतिछंद के स्थानपर है, सामने से ध्वनि उठी है। जैसे परमात्मा को तुम कहते हो कि आप पूर्ण हैं, पूर्णानंद, हो तो ऐसी ही प्रतिध्वनि तुम्हारे लिये वापस आती है। `तुम भी पूरण हो'। पूरणानंद हो। आहाहा ! - ऐसा है। इसमें आदमी को कहाँ फुरसत है ? आत्मा साध्य है और यह (सिद्ध) आत्मा उसके प्रतिछंद के स्थान में है। सिद्ध प्रतिछंद के स्थान पर है। **जिनके स्वरूप का संसारी भव्य जीव चिंतन करके, `पूरण परमात्मपद को प्राप्त हुये'** उनके स्वरूप का संसारी जीव चिंतन करके। आहाहा ! उन जैसा होना चाहते हैं, जिसको अब संसार दशा में रहना नहीं। आहाहाहा ! ऐसे प्राणी को सिद्ध भगवान आत्मा को साधने में प्रतिछंद हैं। उनका ध्यान करें, विचार करें कि ऐसे सिद्ध, ऐसे परमात्मा, इन जैसा ही मैं हूँ। आहाहा ! स्वरूप का... संसारी भव्य जीवों... दोनों बात सिद्ध की हैं, अनंत सिद्ध, सिद्ध किये, अनंत काल में परमात्मदशा को प्राप्त, और संसारी भव्य जीव भी अनंत हैं, भव्य अर्थात मोक्ष जाने लायक ऐसे जीव, सिद्ध भगवान का चिंतन करके... आहाहा ! उनके समान अपने स्वरूप को ध्यान कर, सिद्ध (का) जैसा परमात्मा (स्वरूप है) वैसा हमारा स्वरूप है - ऐसा ध्यान करके आहाहा ! है ? उन जैसे हो जाते हैं ?

सिद्धों का ध्यान करके सिद्ध जैसे हो जाते हैं। इसलिये सिद्धों का ध्यान करके सिद्धों की स्थापना करते हैं। विशेष कहेंगे...　　　　(प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं.६　　गाथा-१　　ता.१२-८-७८ सोमवार जेठ सुद-६ सं. २५०४

समयसार की पहलीगाथा चलती है, फिर से लेते हैं। टीका, टीका, यहाँ संस्कृत टीका में `अथ' शब्द मंगल अर्थ को सूचित करता है, प्रारंभ में `अथ' शब्द है। `अथ' प्रारंभ - ऐसा शब्द रखा है। संस्कृत, में `अथ' मंगल के स्वरूप का... अर्थात साधक धर्म की शुरूआत होती है... आहाहा ! `अथ' अर्थात अब अनंत काल से जो साधक स्वरूप जिसका ज्ञान नहीं था - ऐसा चैतन्य स्वभाव, उसकी अब साधकरूप में शुरूआत होती है। यही `अथ' नाम नई शुरूआत है। उसका नाम `अथ' यह ही मांगलिक है। आहाहाहा ! यह `अथ' तो संस्कृत टीका के शब्द का अर्थ हुआ।

\`अब... ग्रंथ के आदि में' पाठ में - ऐसा आया, गाथा में तो ध्रुव, अचल और अनुपम... परंतु यहाँ अर्थ में मुख्य वंदितु सव्व सिद्धे। - ऐसा जो शब्द लिया है, उसमें से \`वंदितु' का अर्थ निकाल कर और सर्व सिद्धों को अपनी पर्याय में स्थापित करता हूँ और श्रोता की पर्याय में अनंतसिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहा ! अनंत अनंत सिद्धों का प्रथम तो अस्तित्व सिद्ध किया, यद्यपि संसारी प्राणी अनंत गुने हैं, फिर भी सिद्ध भी अनंत हैं और वह भी आदि बिना के है अनादि के हैं। - ऐसा नहीं कि पहले संसार था और फिर सिद्ध हुये। आहाहा ! ऐसी वस्तु स्थिति है, सिद्ध हुआ वह तो संसार (दशा)में से होते है; फिर भी - ऐसा नहीं कि पहले संसार फिर सिद्ध। और ***एक व्यक्ति की अपेक्षा से पहले (संसार है) परन्तु सामान्य की अपेक्षा से तो अनन्त सिद्ध अनादि से हैं।*** अहाहा !

जैसे आकाश के अंत का नाप है ? आहा ! यह क्या कहलाये वह क्षेत्र, क्षेत्र, क्षेत्र की बेहदता क्या कहें ? जिसप्रकार क्षेत्र के स्वभाव की बात है उसीप्रकार संसारी और सिद्ध दोनों स्वभाव अनादि के हैं। आहाहा ! कितने ही पण्डित - ऐसा कहते हैं कि सिद्धों की अपेक्षा संसार आठ वर्ष बड़ा है, आठ वर्ष के बाद सिद्ध होते हैं न, वह तो एक व्यक्ति की अपेक्षा से समुच्चय (दृष्टि से) सिद्ध भी (अनादि अनंत) हैं और संसारी भी अनादि अनंत हैं। जैसे क्षेत्र की लम्बाई-चौड़ाई की मर्यादा दिमाग में नहीं आये, कहाँ अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... यह चला ही जाता है। अलोक के बाद क्या ? फिर फिर वही ही है ! (आकाश) आहाहा ! जैसे क्षेत्र के अमर्यादित अस्ति की सिद्धि है, उसीप्रकार सिद्ध भी अनादि के सिद्ध हैं आहाहा ! वह कैसे हैं सिद्ध ?

वह सभी सिद्ध, एक सिद्ध नहीं, अनंत सिद्ध हैं, अनंत शब्द प्रयोग किया नहीं, सभी सिद्ध - ऐसा शब्द प्रयोग किया है। आहा ! वह अनंतकाल, छह महिना और आठ समय में छहसो आठ मुक्ति पायें तो अनंत काल में कितनी संख्या हुई ? आहाहा ! वह सभी, आहाहा ! यहाँ, तो दूसरा कहना है, इतने अधिक सभी सिद्धों को मैं वंदता हूँ यह शब्द है। - ऐसा कहा है। ***वंदित्तु में से सर्व सिद्धों को हमने अपनी पर्याय में स्थापित किया है - ऐसा (अर्थ) निकाला है, आदर किया।*** राग पर्याय भिन्न रही। हमारी ज्ञान की पर्याय चाहे अल्पज्ञ है, और श्रोता की भी ज्ञान की पर्याय अल्पज्ञ है, उन दोनों का ख्याल है, फिर भी अल्पज्ञ पर्याय में अनंत सिद्धों को जानने की उसकी सामर्थ है। आहाहा ! भले मति-श्रुत ज्ञान की पर्याय हो, तो भी अनंत सिद्धों को जानने की ताकत है। तो अनंत सिद्ध हैं उसका ज्ञान की पर्याय आदर करती है, अर्थात वंदन करती है, अर्थात अपनी पर्याय में उसे स्थापित करते

हैं, उसका अर्थ वंदन करते हैं - ऐसा कहा। आहाहा !

सर्व सिद्धों को अपनी पर्याय में भावस्तुति से और द्रव्यस्तुति से स्थापित करता हूँ - ऐसा आया न ? है न ! भाव-द्रव्य-स्तुति अर्थात कि अपनी पर्याय में मैं अपना आत्मा पूर्णशुद्ध वह आराधक और मैं आराध्य। मैं आराध्य अर्थात वस्तु, और आराधक। मेरी पर्याय निर्विकल्प समाधि अर्थात्, निर्विकल्प शांति वह आराधक और त्रिकाली वस्तु, आराधन करने योग्य। (है) ऐसी निर्विकल्प समाधि उसको यहाँ भावस्तुति कहते हैं। आहाहा ! पर्याय में सभी अनंत सिद्ध... भाई, यह संसार यहाँ भूल जाते हैं आहाहा ! राग को भूल जाते हैं। हमारी ज्ञान पर्याय में... कुन्दकुन्दआचार्यने वंदितु कहा उसमें से अमृतचन्द्रआचार्य ने एक हजार वर्ष बाद यह भाव इसमें है - ऐसा निकाला आहाहा ! `वंदितु सव्व सिद्धे' में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य - ऐसा कहना चाहते हैं वह मैं अर्थ करता हूँ। (अमृतचन्द्राचार्य से) हजार वर्ष पहले हो गये हैं।

क्योंकि जहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान खिला है, वह कला सभी को जान लेती है। आहा ! यह यहाँ पर दिखाया, एक तो सर्व सिद्ध, सिद्ध किये अर्थात कि कोई एक ही आत्मा माननेवाले... पवित्र होने पर सभी एक ही हो जाते हैं इसका निषेध किया। (श्रोताः- ज्योति में ज्योति मिल गई) पवित्र हो गये, परमात्मा हो गये, फिर भिन्न क्यों रहें ? - ऐसा कहनेवालों का निषेध किया है। बापू ! प्रत्येक परमात्मा (भिन्न)-भिन्न अनंत हैं, उनकी सत्ता भिन्न-भिन्न है, सभी हैं, एक है - ऐसा नहीं आहाहा ! सर्व सिद्धों को जो संख्यातीत अनंत... उन सभी सिद्धों को, आहाहा ! अपनी अल्पज्ञ पर्याय में उन्हें रखता हूँ। आहाहाहा ! हमारी पर्याय के गर्भ में अनंत सिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहाहा ! हमारी अल्पज्ञ पर्याय में अनंत सर्व सिद्धों को बिठाता हूँ। आमंत्रण देकर... प्रभु यहाँ पधारो। आहाहा ! हमारी पर्याय आपको रखने की पात्रता रखती है। आहाहाहा ! गजब काम किया है ! (अमृतचन्द्रआचार्य ने अमृत साक्षात् भरा है)

वंदितु सव्वसिद्धे... गजब काम प्रभु ! एक तो अनंत सिद्धों की, सिद्धि की है। हमसे पहले अनंतसिद्ध हो गये हैं, ऐसे सिद्धों को सिद्ध करके और हमारी पर्याय अल्पज्ञ होने पर भी उसमें अनंत सिद्धों को स्थापित करने की ताकत है। ***हमारी पर्याय की भी इतनी ताकत है कि अनंत सिद्धों को रख सकती है, अनंत सिद्ध हैं इस प्रकार पर्याय जान सकती है !*** आहाहा ! सब सिद्धों को भाव स्तुति से परद्रव्य है इसलिए सिद्ध उन्हे अकेला द्रव्य नमस्कार होता है - ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा ! हमारा भाव नमस्कार संयुक्त है। मैं शुद्ध पूर्णानंदप्रभु वह आराधन करने लायक, वह मैं और निर्विकल्प पर्याय से आराधक भी मैं - ऐसी भावस्तुति

से हमारी पर्याय में सिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहा ! वंदन करता हूँ। गजब टीका है। आहाहा ! अभी तो ऐसी टीका कहीं (देखने नहीं मिलती)। आत्मख्याति टीका गजब है। भाई ! (उसका स्पष्टीकरण गजब (का) किया है आपने) आहाहा ! उसमें है कितना, है न उसमें। आहाहा ! ऐसे अनंत सिद्धों को अपनी अल्पज्ञ पर्याय में - ऐसा मैं कहूँ - ऐसा नहीं, परंतु हमारी पर्याय अनंत सिद्धों का संग्रह कर सकती है। अनंत सिद्ध अर्थात् अनंत केवली, अनंत सर्वज्ञ, एक सर्वज्ञ को स्वीकारे तो, अनंत सर्वज्ञों को स्वीकारते हैं। ऐसी हमारी अल्पज्ञ पर्याय की ताकत है। आहाहा ! गजब काम किया है न ! आहा ! मैं भाव स्तुति से तो स्थापित करता हूँ, परंतु विकल्प द्वारा भी स्थापित करता हूँ। व्यवहार (से) सिद्ध को अपनी पर्याय में स्थापित करता हूँ। आहाहा ! इसप्रकार कुन्दकुन्दाचार्य जो पाठ में कहते हैं उसे अमृतचन्द्राचार्य, उसमें यह भाव भरे हैं - ऐसा बताते हैं। आहाहा ! जैसे भैंस के थन में दूध भरा होता है और स्वस्थ बहिन निकाले उसीप्रकार इस पाठ में जो भाव भरा है उसे अमृतचन्द्राचार्य तर्क से, स्पष्ट करके उस भाव को बाहर निकालते हैं। आहाहा ! (वर्तमान में आप खोलते हैं) आहाहा ! (उनकी बलिहारी है बापा!)

भावस्तुति से आदर करता हूँ, अर्थात कि भावस्तुति से हमारी पर्याय में निर्विकल्प दशा में उसे स्थापित करता हूँ। आहाहाहा ! और विकल्प की दशा में भी उन अनंत सिद्धों को (मेरा) वंदन, अर्थात पर होने से वंदन करता हूँ। वह विकल्प है परंतु उस विकल्प में भी अनंत सिद्धों को मैं स्थापित करता हूँ। आहाहा ! ऐसी बात! आहा ! एक बात।

भाव-द्रव्य स्तुति से अपने आत्मा में, हमारे आत्मा में, आहाहा ! देखो तो सही मांगलिक किया, हम सिद्ध होनेवाले हैं, अल्पकाल में हों ! - ऐसा कहते हैं, हमने अनंत सिद्धों की स्थापना पर्याय में की है। हम भी भविष्य में सिद्ध होनेवाले हैं। आहाहा ! तो अनंता अनंता अनंता अनंता सिद्धो... उन्हें निर्विकल्प दशा द्वारा और विकल्प द्वारा अपनी ***अल्पज्ञ पर्याय में और राग में उसे स्थापित करता हूँ। आहाहा ! ज्ञान में तो समझ कर स्थापित करता हूँ और राग में विकल्प में (भी) बहुमान आया इसलिये स्थापित करता हूँ।*** कारण कि राग कुछ जानता नहीं। आहाहा ! ऐसे अनंत सिद्ध भगवान को भाव द्रव्य स्तुति द्वारा अपने ज्ञान में एक बात, तथा दूसरे के आत्मा में... आहाहा ! गजब किया, प्रभु समयसार ने तो। आहाहा !

श्रोता की पर्याय में... श्रोता चाहे अप्रतिबुद्ध है, अभी अज्ञानी है, फिर भी प्रभु तुम श्रोता के रूप में आये हो। हम कहीं सुनाने जाते नहीं, परंतु श्रोता की अपेक्षा सुनने आये हो। आहा ! ***इस स्थिति में सुनने आये हो तो तुम्हारी पर्याय की भी***

इतनी पात्रता हमें लगती है कि उस पर्याय में अनंत सिद्धों को हम स्थापित करते हैं। आहाहाहा ! और हमारे विकल्प द्वारा भी अनंत सिद्धों को तुम्हारी पर्याय में स्थापित करते हैं। आहाहा ! भाव-द्रव्य दोनों से है न ! स्व और पर दोनों में। आहाहाहा ! ओहोहो ! सिद्धों को नीचे उतारा है। सिद्ध तो वहां हैं... प्रभु! अब आप हमसे दूर नहीं रह सकते। आहाहाहा ! हमारी पर्याय में हम आमंत्रण देते हैं न ! उसका काल आयेगा अतः हम पूर्ण सिद्ध हो जायेंगे। इसप्रकार तो यहाँ इतना जोर देते हैं। श्रोता को भी, ***ऐसे श्रोताओं को ही, श्रोता गिनने में आया है। आहाहा ! कि जिसकी अल्पज्ञ पर्याय में भी सुनने आया है सिद्धों का स्वरूप और आत्मा का स्वरूप सुनने आया है तो उसकी पर्यायमें भी हम अनंत सिद्धों को स्थापित करते हैं और वह (स्वयं) स्थापित कर सकें - ऐसी उनकी योग्यता देखते हैं।*** आहाहाहा !

दूसरों की आत्मा में स्थापित करके... प्रभु भी पर आत्मा है उसमें तुमको क्या? बापू ! विकल्प उठा है न ! वोच्छामि है न ! कहेंगे - ऐसा (अर्थ) हुआ न ! वोच्छामि शब्द डाला है न ! कहेंगे (- ऐसा है) तब किसे कहेंगे ? श्रोता को, आहाहा ! हम उनको कहेंगे। `वोच्छामि' इसका अर्थ करेंगे। भावार्थ में यथा स्थान जो शब्द आना चाहिए उस स्थान पर वह शब्द आया है। उसका नाम परिभाषण सूत्र कहा जाता है, भावार्थ में आयेगा। आहाहा ! आत्मा में स्थापित करके... पर के आत्मा की पर्याय में स्थापित करके... ऐसे ही श्रोताओं को लिया है। आहाहाहाहा ! कि जिसकी पर्याय में अनंत सिद्धों को एकत्र कर सकेंगें। आहाहा ! ***उसकी पर्याय अनंत सिद्धों को स्वीकारेगी और आदर करेगी। ऐसे श्रोता को श्रोतारूप में गिनने में आया है।*** आहाहा ! और वह श्रोता भी... आहाहाहा ! जब अनंत सिद्धों (को) स्थापित करते हैं प्रभु ! जैसे हम सिद्धपने को प्राप्त होंगे वैसे यह टोली (समूह) भी सिद्धपने को प्राप्त होगी ही। आहाहा ! आहाहाहा !

नहीं प्राप्त होवे - ऐसी बात हमारे पास है ही नहीं। आहाहा ! कहते हैं... इस श्लोक में आया है न ? हमने देह और आत्मा को भिन्न बताया हैं तब कौन नहीं माने ? मानेगा ही । आहाहा ! ऐसे अस्तित्व का, पूरण सर्वज्ञ पर्याय का अस्तित्व जहाँ हम सिद्ध करके तुममें स्थापित करते हैं... शक्ति में तो वह पूरण है और तुम उस शक्ति से पूरण हो, परंतु प्रगट हुयी पर्याय में वह नहीं, तुम्हारी शक्ति में (है), परंतु पर्याय में नहीं, इसलिये, अब पर्याय में स्थापित करके... तुम पर्याय में (भी) सिद्धों का लक्ष्य लेकर हमें सुनना। आहाहा ! तुम सिद्धों को लक्ष्य (में) लेकर यह सुनना। आहाहा ! (तुम) अवश्य सिद्ध हो जाओगे। आहाहाहा ! (वर्तमान पर्याय अल्पज्ञ है) अल्पज्ञ है, परंतु इतनी ताकत है (क्यों) कि श्रोता बनकर तुम आये हो, और

हमें सुनने के लिये तुम आये हो, तो तुम्हारी पर्याय की ताकत अनंत सिद्धों को रखने की है, अपनी पर्याय में। आहाहा ! ***मैं स्थापित करता हूँ पर की पर्याय में, तो उसका अर्थ क्या ? मैं तुम्हारी पर्याय की इतनी योग्यता देखता हूँ। हमारे ज्ञान में - ऐसा आया है कि तुम्हारी पर्याय में इतनी ताकत है और तुम भी इसीप्रकार मानना।*** आहाहा ! गजब काम किया है न ! यह `वंदित्तु सव्व सिद्धे' आहाहाहाहा ! विकल्प है तो द्रव्य से बात की है, परंतु निर्विकल्पसहित का विकल्प है। आहाहा ! इसप्रकार सुननेवालों की पर्याय में भी हम अनंत सिद्धों को स्थापित करते हैं, तब प्रभु तुम नहीं रख सकते यह प्रश्न ही नहीं। आहाहा ! अनंता सिद्ध को पर्याय में स्थापित करते हैं, इसलिये तुम्हारा लक्ष्य अल्पज्ञरूप में नहीं रह सकता। आहाहा ! अनंत सर्वज्ञों को पर्याय में स्थापित किया तो तुम्हारा लक्ष्य सर्वज्ञ ऊपर जायेगा तथा लक्ष्य रखकर अब हमारी बात सुनना। आहाहाहा ! प्रवीणभाई। ऐसी बातें हैं आहाहा ! भाग्य (से सुनने मिलता है) !

अमृतचन्द्र आचार्य हजार वर्ष पहले `वंदित्तु सव्व सिद्धे' का अर्थ करते हैं। कहाँ हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्द आचार्य हुये, वह भी स्वयं छद्मस्थ थे अमृतचन्द्राचार्य, (भी) बापू ! छद्मस्थपना न देखो आहाहा ! हमारा प्रभु सर्वज्ञ स्वभावी और हमारी पर्याय में अनंत सर्वज्ञों को हमने स्थापित करके रखा है। वह अब बाहर नहीं जा सकता। आहाहाहा ! अब हमारा आत्मा सिद्धसे दूर नहीं रह सकता आहाहा ! कौन जाने क्या भरा है इसमें !! इतनी वजनदार है अंदर शक्ति और उसका संग्रह। ओहोहो ! ऐसे पर के आत्मा में स्थापित करके। यहाँ तक तो कहनेवाले और सुननेवाले दोनों के आत्मा में स्थापित करके, यहाँ तक बात की है।

अब कहना है क्या ? समय नाम का प्राभृत (कहना है) फिर समय का प्राभृत, फिर समय का अर्थ पदार्थ भी होता है और मूल अर्थ आत्मा होता है। आत्मा में सभी पदार्थ आ जाते हैं, आत्मा का ज्ञान होनेपर स्वका ज्ञान होने से उसमें पर का ज्ञान आ जाता है। क्योंकि एक समय की पर्याय में छह द्रव्यों को जानना, - ऐसी पर्याय की ताकत है। जीव के एक समय की पर्याय में छहो द्रव्यों को जानना - ऐसी पर्याय की शक्ति है एक समय की पर्याय में अनंत सिद्ध, अनंत निगोदिया और अनंत परमाणु अनंत स्कंधों को एक समय की पर्याय में जानने की शक्ति है। आहा ! तो एक समय की पर्याय की ऐसी ताकत है, तो ऐसी अनंती पर्यायों को धारण करनेवाला गुण (उन गुणो) को धरनेवाला प्रभु, आहाहा ! कहते हैं कि उसको लक्ष्य में लेकर अब हमारी बात सुनो। आहाहा ! समझ में आया ?

समय नाम के प्राभृत को भाव-वचन अर्थात् हमारे क्षयोपशम ज्ञान की जो दशा

प्रगट हुयी है, उस विकास के द्वारा में कहूँगा। वाणी और विकल्प में ज्ञान निमित्त है, परंतु ज्ञान के इस भाव-वचन द्वारा, भाव-वचन अर्थात् विकल्प नहीं। यहाँ भाव वचन अर्थात् ज्ञान का विकास जो पर्याय में है, जो मैं समयसार को कहना चाहता हूँ, उसका मुझे ज्ञान है, उस क्षयोपशम को हम भाव-वचन कहते हैं। आहाहा।

जो कहा जायेगा समयसार, उसका मुझे ज्ञान है तब मैं कहूँगा, यह तो प्रगट ज्ञान को भाव-वचन कहा जाता है। समझमें आया ? कल तो वह डाक्टर थे जो समझते नहीं थे अतः स्पष्टीकरण विशेष नहीं आया। प्रथम तो बाहर में बहुत उलझ गये हों... आहाहा ! यह बातें बापा, यह तो पूर्ण निवृत्ति की बात है। आहाहा ! उसके साथ - ऐसा कहा कि द्रव्य-वचन अर्थात् कि विकल्प आदि तब उससे जो पुण्य बंधेगा, उससे हमें भविष्य के भव में सभी संयोग धर्म के मिलेंगे। द्रव्य-स्तुति हुई न ? आहाहा ! हम, भगवान के पास ने गणधर संतो के पास (सुनी) क्योंकि उसी स्थान पर हम भविष्य में जानेवाले हैं, अपना पूरा करने। आहाहाहा ! भाव से तो वर्तमानमें हम निर्विकल्प समाधि स्तुति करते हैं, परंतु विकल्प से भी करते हैं क्योंकि हमें ज्ञात है कि इस भव में सर्वज्ञ नहीं हैं। आहाहा ! सर्वज्ञ को स्थापित करते हैं, परंतु ***इस भव में पर्याय में सर्वज्ञपना नहीं होगा - ऐसा हमें ज्ञात है, इसलिए विकल्प से - ऐसा ज्यादा पुण्य बंधेगा कि जहाँ सर्वज्ञ परमात्मा होंगे, समोसरण होगा, गणधर होंगें इस विकल्प के फल में - ऐसा पुण्य बंधेगा और - ऐसा संयोग मिलेगा।*** आहाहा !

स्वभाव की धारा से स्वभाव पूर्ण होगा और विकल्प की धारा से पूर्ण को समझानेवालों का संयोग प्राप्त होगा। आहाहा ! समझमें आया ? - ऐसा मार्ग है बापू ! अरे ! परमात्मा के संतो का पेट बहुत (बड़ा है) आहाहा ! उनकी ज्ञान कला, समकित कला, चारित्र कला, उसकी क्या बात कहें ? आहाहा ! मुनिराज स्वयं कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं हजार वर्ष बाद (भगवान) हुये। प्रभुजी, आप तो भगवान के पास नहीं गये थे न ? कुन्दकुन्दाचार्य तो गये थे और उनकी समकितदशा में भले क्षायक न हो, परंतु वहाँ गये थे अतः अप्रतिहत दशा तो है, परंतु आप (अमृतचन्द्र) गये नहीं थे न ? (तो कहते हैं) हम भाव-भगवान के पास गये थे। आहाहा ! और उसमें से यह ज्ञान की धारा आती है, उसके द्वारा कहूँगा। आहाहाहाहा ! मैं अपने वैभव से कहूँगा - ऐसा कहते हैं। फिर कहेंगे कि हमने केवली और श्रुतकेवली को सुना है, निमित्त अपेक्षा कहेंगे, भगवान को हमने सुना है, श्रुतकेवलियों के साथ चर्चा करके सुना है, प्रभु ! आहाहा ! हम ऐसे अकेले जीव पंचम काल के नहीं। परंतु हमने भगवान के पास सुना है। आहाहाहा ! तथा संतो के पास तथा श्रुत केवलियों

के पास हमने चर्चायें की हैं ! प्रभु हमारा आत्मा पंचमकाल में भले हो परंतु ऐसी स्थिति में था वहाँ से आया हूँ गजब टीका है। आहाहा ! भाव और द्रव्य को स्थापित करके। समय अर्थात भाव-वचन और द्रव्य-वचन से परिभाषण (कहेंगे) ! परिभाषण का अर्थ करेंगे। जहाँ जहाँ जो चाहिए वहाँ वहाँ उसकी स्थापना करे, शास्त्र की रचना, उसका नाम परिभाषण, परि अर्थात समस्त प्रकार से कहना, अर्थात जिस शैली से, जिस प्रकार जिस समय, जिस क्षेत्र में उसके योग्य जो शब्द हों उसकी रचना (करना) उसका नाम परिभाषण है। पंचमकाल के प्राणियों के लिये, यहाँ कहते हैं और वह पंचमकाल में हैं तो उनके योग्य भी परिभाषण होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

शुरु करते हैं, परिभाषण करते हैं - ऐसा नहीं कहा, शुरू करते हैं, ज्ञान के विकासमें से प्रारंभ करते हैं। आहाहाहा ! तथा हम छद्मस्थ हैं और शुरू करते हैं। आहाहा ! ऐसी शरूआत थी कि उसकी पूर्णता हो गयी, समयसार पूरण हो गया। आहाहा ! समझ में आया ? कहने का आशय कि हम शुरू करते हैं, शुरू करते हैं। आहाहा ! पूरा हो उसके लिये समय तो यहाँ उसे पूरा हो गया। ४१५ गाथा और टीका पूरी हो गई। पूरण हो गया। परिभाषण... शुरू करते है, ज्ञान की धारा में हमें जो कहना है वह हमने भगवान के पास सुना है, श्रुतकेवली के पास चर्चा की है और हमें भी अंदर से स्वयं प्रतिभास हुआ है, उसमें से शुरू करते हैं। आहाहा ! गजब कहते हैं !! कहेंगे - ऐसा नहीं कहा परिभाषण करूंगा, भाई ! पण्डितजी ! (आचार्य देव कहते हैं) शुरू करते है, गजब बात कहते हैं न ! क्या कहते हैं। आहाहा ! प्रभु तं `एयत्त विहत्तं दाएहं' इतना तो कहा परंतु फिर कहा `जदि दाएजज' दिखाने में आये... मैं छद्मस्थ हूँ, आहाहा ! हमारा नाथ और तुम्हारा नाथ ऐसे आत्मा को कहने के लिये हम शुरू करते हैं परंतु जो दिखायेंगे न, तथा एयत्त विहत्तं में' दिखाता हूँ, दिखाता हूँ परंतु दिखाऊ तो..... आहाहाहा !

प्रभु तुम श्रोता के रूप आये हो, सिद्धों को स्थापित किया है, आहाहा ! अनुभव से प्रमाण करना। आहाहा ! शुरू करते हैं... परंतु शुरू किया तो उनका तो वह पूरण हो गया। टोडरमलजी ने शुरू किया परंतु पूरण नहीं हुआ, `मोक्षमार्गप्रकाशक' शुरू किया परंतु पूर्ण नहीं हुआ। यहाँ संत कहते हैं कि मैं प्रारंभ करता हूँ अभी पूरा नहीं हुआ है परंतु पूरा हो जायगा। आहाहा ! शुरू करते हैं - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य देव कहते हैं, आहाहा ! संत आचार्य इसप्रकार वाणी द्वारा - ऐसा कहते हैं, है तो सभी वस्तु निर्विकल्प और निर्विकल्प दशा में सिद्ध स्थित हैं, परंतु इसप्रकार, मैं वाणी द्वारा वस्तु की स्थिति का वर्णन शुरू करता हूँ। शुरू करता हूँ। आहाहा !

`वोच्छामि' - ऐसा कहा न ! भाई, उसमें से निकाला है। (कहा) शुरू करता

हूँ। `वंदित्तु सव्व सिद्धे' सर्व सिद्धों को स्थापित करके, अपने और तुम्हारे आत्मा में, भाव और द्रव्य-स्तुति से भाव और द्रव्य-वचन से आहाहाहा ! प्रारंभ करते हैं। आहा ! मैं कहता हूँ - ऐसा नहीं कहकर शुरू करते हैं इस प्रकार `वोच्छामि' शब्द है पाठ में। है ? (मैं) कहता हूँ। उसका अर्थ अमृतचन्द्राचार्य ने यह निकाला है। आहाहा ! जो भाव है वही निकाला है कि यह `वोच्छामि' कहा भले ही इसका अर्थ यह है। आहाहा ! प्रारंभ करता हूँ। कहना प्रारंभ करता हूँ। आहाहाहा ! गाथा मे ंतो भाव-द्रव्य-वचन नहीं है। विकल्प उत्पन्न हुआ है वह द्रव्य-वचन है। विकल्प है यही द्रव्य-वचन है। वाणी तो असद्भूत व्यवहारनय से द्रव्य-वचन है। विकल्प उठता है वह अंर्तजल्प है। निर्विकल्पता है यह तो अंतर शांति समाधि है। भाव नमस्कार और भावस्तुति है। आहाहाहा !

- ऐसा श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं - ऐसा अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि इसप्रकार कुन्दकुन्दाचार्य देव कहते हैं। आहाहा ! और यह टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य हैं थोड़ा भी हो, सत्य होना चाहिए न ? आहाहा ! इसप्रकार शुरू करते हैं - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं समयसार कहूँगा - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं - ऐसा न लेकर प्रारंभ करता हूँ - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहाहा ! एक-एक शब्द का मूल्य है, यह संतों की वाणी है - जिन्होंने केवली के भाव का स्पष्टीकरण किया है। आहाहाहा ! प्रभु तुम भी महान हो तुम्हारी बात भी महान है बापू ! आहाहा ! तुम्हारी पर्याय में अनंत सिद्धों की स्थापना की अब तुम्हारी पर्याय की महानता, द्रव्य की तो क्या बात करना। आहाहा ! परंतु तुम्हारी पर्याय में... आहाहा ! अनंत सिद्धों को जहाँ स्थापित किया, अब उसे राग का आदर नहीं होगा।

अल्पज्ञ में सिद्धों की स्थापना की अब उनमें अल्पज्ञता रहेगी नहीं। आहाहा ! यह सर्वज्ञ स्वभावी भगवान की बात करेंगे प्रभु ! तो सर्वज्ञ स्वभाव में ही तुम जाओगे और सर्वज्ञ हो जाओगे। आहाहा ! निःशंक, निःसंदेह - ऐसा तुम जानो। आहाहा हम भव्य होगें कि अभव्य ? ऐसी बात रहने दो, किसने तुम से बात की आहाहा ! भव्य अभव्य मार्गणा का तो निषेध है, आत्मा में भव्य-अभव्य नहीं। आत्मा भव्य भी नहीं अभव्य भी नहीं। भव्य हो तो सिद्धों में भव्यपना रहना चाहिए। सिद्धों में भव्यपना रहता नहीं। ***सिद्धों में भव्यत्व का अभाव है क्योंकि भव्य की जो योग्यता थी वह प्रगट हो गई अब भव्यपना सिद्धों में नहीं, अभव्यपना तो है ही नहीं परंतु सिद्धों में तो भव्यपना-अभव्यपना दोनों नहीं। आहाहा !***

यहाँ कहते हैं कि जहाँ हम बात करते हैं वहाँ तुम भव्य-अभव्य का प्रश्न ही करना नहीं, परंतु सिद्ध होने में अनंतकाल लगेगा यह भी मत मानना। आहाहा !

सम्यक्त्व होने के बाद सिद्ध होने में असंख्य समय ही चाहिए, अनंत समय नहीं चाहिए, आहाहा... उसी प्रकार हम यहाँ स्थापित करते हैं तो प्रभु विश्वास करना, विश्वास करना अंदर कि इस आत्मा को ऐसी बात सुनने को मिली और जब हम सुनने के योग्य हुये, तथा उसमें अनंत सिद्धों को प्रभु ने हममें स्थापित किया और हमारी योग्यता देख कर उन्हें स्थापित किया है। आहाहा ! श्रोताओं को (सागमटे न्योता) (चूल से) दिया है। संयुक्त निमंत्रण समझे न ! घर के सभी लोग और महेमान सभी आना - ऐसा।

हमारे काठियावाड में संयुक्त निमंत्रण अर्थात पूरा घर। महेमान सहित भोजन को आना - उसे संयुक्त निमंत्रण कहा जाता है। कमरबंद जीमने का कहें तो तो युवान लोग आयें, और कन्या का कहें तो कन्या आयें - ऐसे तीन प्रकार है। निमंत्रण विधि के तीन प्रकार है है न ? तीन है न ?

यहाँ संयुक्त निमंत्रण है। आहाहा ! प्रभु सभी श्रोता सिद्धपद होने योग्य हो। हाँ तुम सभी। इसलिये हम सिद्धों की स्थापना करते हैं तुममें प्रभु। आहाहाहा ! और यह बात हम शुरू करते हैं अर्थात कि तुम्हें भी बात सुनने तैयार रहना पड़ेगा। प्रारंभ करते हैं अर्थात अंत होगा तब तक तुम्हें ध्यान रखना पड़ेगा। आहाहा ! आहाहा !

यह सिद्ध भगवान... अब जो सिद्धों की स्थापना की, अपनी पर्याय में और सामनेवाले श्रोता को आत्मा की पर्याय में, सिद्धों की स्थापना की, '**यह सिद्ध भगवान सिद्धपना के कारण साध्य जो आत्मा।**' अपना आत्मा साध्य है उसके स्थान में सिद्ध है, सिद्ध भी साध्य हैं जैसे, वैसे आत्मा साध्य है। जिसप्रकार सिद्धपने को साधना है, इसीप्रकार यहाँ आत्मा को साधना है, यह आत्मा सिद्धों को साधता है। सिद्धपना के कारण साध्य जो आत्मा उसके प्रतिछन्द स्थान पर हैं। सिद्धपने के कारण साध्य आत्मा प्रतिछन्द-प्रभु पूर्ण तुम हो, तब सामने से (प्रतिध्वनि) प्रभु तुम पूर्ण हो। प्रतिछन्द (प्रतिध्वनि) सामने से आवाज ध्वनि सुननेवाला चौंक उठे ऐसी आवाज है। आहाहा ! तुम पूर्ण आनंद के नाथ हो, तब सामने से आवाज आती है प्रतिध्वनि, पूर्ण अनंत आनंद के नाथ तुम हो। आहाहा ! जितने सिद्धों के लिये विशेषण कहने में आते उसके सामने आवाज ध्वनि उठती है प्रतिध्वनि कि तुम भी वैसे ही हो। आहाहा ! समझ में आया कुछ ?

'सिद्ध भगवान सिद्धपने के कारण... पूरण सिद्ध हो गये हैं तथा उसके कारण साध्य जो आत्मा उसके प्रतिछन्द स्थान पर हैं। आत्मा साध्य है उसका प्रतिछन्द स्थान सिद्ध हैं, जिनके स्वरूप का संसारी भव्य जीव... अभव्य निकाल दिये आहाहा ! चिंतन करके अंदर में ध्यान करके। आहाहाहा ! संसारी भव्य जीव जिनके स्वरूप का चिंतन करके... जैसे सिद्ध हैं - ऐसा ही मैं हूँ। आहाहा ! हमारी जाति और

प्रभु की जाति में फर्क नहीं आहाहा ! - ऐसा चिंतवन करके... सिद्धों को अपने आत्मा में चिंतवन करके, उनके सामने अपने स्वरूप का ध्यान करके। सिद्ध समान अपने स्वरूप का ध्यान करके, देखा ? मूल बात, यहाँ दुहराना है ! चिंतवन भले उनके स्वरूप का परंतु मूल तो यहाँ पीछे ले जाना है, उनके समान अपने स्वरूप का ध्यान करके, आहाहा ! जैसे बालक अपनी माता का दूध पीता है उसी प्रकार आनंद का ध्यान करते हैं ध्याते हैं। आहाहा ! है ? अपने स्वरूप को ध्याकर। आहाहा ! स्वरूप को ध्येय बनाकर ध्यान में ध्याकर। आहाहा ! स्वरूप को ध्यान में ध्येय बनाकर, ध्यान में ध्याकर, उसका रस लेकर, आहाहाहाहा ! उन जैसे हो जाते है, उन जैसे हो जाते हैं। नहीं होंगे - ऐसा प्रश्न ही नहीं है। आहाहा !

सिद्धों का ध्यान, साध्य आत्मा के प्रतिछन्द के स्थान पर है, जैसा तुम सिद्धों को कहोगे - ऐसा ही तुम्हारा आत्मा है। ऐसे आत्मा को सिद्धों के स्वरूप का चिंतन करके प्रथम तो चिंतवन, फिर अंदरध्यान करके इसप्रकार अंतर के पूरण स्वभाव को ध्याकर अहाहा ! ध्याकर अर्थात ध्यान में उसके आनंद को लेकर। मां के आंचलमें से जैसे बालक दूध पीता है उसीप्रकार आत्मा के अंदर आनंदमें से उसे ध्याकर, आनंद को पीकर... आहाहा !

एक भाई कहते थे कि यह समयसार हमने १५ दिन में पढ़ लिया, आप तो बहुत तारीफ करते हो, परंतु हमने तो १५ दिन में पढ़ लिया। अरे भाई ! इसकी एक एक पंक्ति भाई ! बापा ! (पढ़ लिया था परंतु समझा नहीं था) ! समझे क्या धूल ? पंरतु - ऐसा कहते (है), आप समयसार की बहुत तारीफ करते हो, मैं पढ़ गया। बापा अंग्रेजी के शब्दों की तरह ए. बी. सी. डी. इस प्रकार पढ़ गये। परंतु बापू, उसकी एक एक पंक्ति, एक-एक गाथा बापू, यह तो संतो की अमर वाणी है। अमृतवाणी (है) - अमर होने की वाणी है। यह वाणी अफर है - ऐसा तुम्हें अफरपना, सिद्धपना हो - ऐसी यह अफर बात है, श्रोताओं को - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा !

उनके समान अपने स्वरूप को... देखा ? सिद्ध समान अपने स्वरूप को ध्याकरके आहाहाहा ! उन जैसे हो जाते हैं। सिद्ध जैसे हो जाते है। (श्रोता :- पर्याय में) आहाहा ! जो सिद्ध का चिंतवन करे... उनको हमने वंदन क्यों किया, उसका आदर क्यों किया कि उनका ध्यान, चिंतवन करके उनके आत्मा का ध्यान करके उन समान हो जाते हैं इसलिये `वंदित्तु सव्व सिद्धे' सिद्धों को आत्मा में स्थापित किया उन्हें वंदन किया - ऐसा कहा जाता है, आहाहाहा ! गजब व्याख्या है ना !!

`चारों गतियों से विलक्षण... आहाहा ! चारों गति दुःखरूप हैं भाई ! मनुष्य

गति स्वर्गगति भी दुःखरूप है, पराधीन है, जिस सिद्धों के स्वरूप को तेरी पर्याय में स्थापित किया, हमारी पर्याय में स्थापित किया, उनके सिद्ध का चिंतवन करके हमारा स्वरूप - ऐसा है, ऐसे अंतर आत्मा का ध्यान करके सिद्ध गति को प्राप्त करेगें। आहाहाहा ! चारों गतियों से विलक्षण-चारों गतियों में उसका कुछ लक्षण मिले ऐसी चार गति नहीं उससे विलक्षण है सिद्ध की गति यह तो कोई विलक्षण है। आहाहाहा ! विपरीत लक्षण - ऐसा नहीं परंतु कोई भिन्न प्रकार का, विलक्षण है। आहाहा ! अरे यह बात केवली परमात्मा, जिनेन्द्र देव त्रिलोकनाथ, कहेंगे। हम उनके पास से सुनकर यहाँ आये है। आहाहा !'

प्रभु विराजते हैं (सीमंधरनाथ !) आहाहा ! उनके पास हमने सुना है, कुछ शंकादि हो तो श्रुत केवलियों के पास चर्चा करके हमने समाधान किया है। आहाहा ! वह त्रिलोकनाथ का संदेश हम तुम्हें सुनाते है, आहाहा ! सुननेवालों को कहते हैं, सिद्धों को हमने क्यों स्थापित किया और नमस्कार किया ? ***भाव-द्रव्य स्तुति क्यों की ? कि उनका चिंतवन करके और उनके स्वरूप जैसा, हमारा स्वरूप है। - ऐसा अंतर में ध्यान करके ध्याकर सिद्ध जैसे हो जाते हैं।*** आहाहा ! और वह सिद्ध चार गति से विलक्षण हैं। है ? `पंचमगति मोक्ष' उसको प्राप्त हुये हैं चारों गतियो से विलक्षण है। आहाहा ! ऐसी जो पंचमगति, यह भी है तो एक गति, सिद्ध भी एक गति है, पर्याय है, द्रव्य-गुण नहीं। द्रव्य गुण तो त्रिकाल है, यह तो पंचमगति को प्राप्त हुये हैं। - ऐसा है न ? (सिद्ध) पर्याय को प्राप्त हुये है। पूर्ण मोक्ष दशा को प्राप्त हुये हैं आहाहा ! पंचमगति - ऐसा जो मोक्ष उसे प्राप्त हुये हैं। अर्थात कि वह सिद्ध पर्याय को प्राप्त हुये हैं। देखो ! तुम्हारा स्वरूप सिद्ध जैसा है इस पर्याय में तुम्हें स्थापित करके उसीका चिंतन करके, उसरूप का ध्यान करके, पंचमगति मोक्ष को (पाना है), यह भी गति एक पर्याय है, प्राप्त हुये हैं, मोक्ष गति रूप पर्याय को उन्होंने प्राप्त किया है। मोक्ष कोई गुण नहीं, गुण और द्रव्य तो त्रिकाल है, जो प्राप्त होती वह पर्याय होती है। आहाहा ! पंचम गति रूप मोक्ष को पाते हैं।

अब पहले जो विशेषण कहे थे, (अंदर) ध्रुव अचल, अनुपम, गाथा के अर्थ में - गाथा के अर्थ में पहले आये वह विशेषण, वह विशेषण अब कहते हैं। टीका में - कि यह मोक्ष गति है कैसी ? जो मोक्ष पर्याय को प्राप्त हुये हैं, नयी प्राप्त की है, थी नहीं, नहीं थी, शक्ति रूप में सिद्ध(पना) था। परंतु मोक्ष पर्याय रूप में नहीं थी किसी भी दिन (समय) अभूतपूर्व, (अर्थात) पहले नहीं हुयी, ऐसी मोक्ष पर्याय को पायेंगे ही, पायेंगे। आहाहा ! वह मोक्ष गति कैसी है। आहाहा ! उसकी विशेष बात करेंगे।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं.७ गाथा-१ ता. १३-६-७८ मंगलवार जेठ सुद-७ सं. २५०४

समयसार की पहली गाथा चलती है, यहाँ तक आया है। `पंचमगति मोक्ष को प्राप्त किया है' यहाँ तक आये है। अब यह गति कैसी है, यह बात चलती है। पहले विशेषण आये हैं, ध्रुव अचल और अनुपम उसके विशेषण हैं। अब स्पष्ट करते हैं। अपनी पर्याय में अंतर स्थापित करके... अनंत अनंत सिद्धों को स्थापित करके... वोच्छामि कहा है ना ? कहेंगे तो, किसी को कहेगें न ? वोच्छामि कहा है न ? कहेंगे तो उन्हें भी मैं कहूँगा, उनमें भी सिद्धों को स्थापित करता हूँ।

ऐसे सिद्धों का ध्यान करके, अपने स्वरूप को ध्याते हैं, और जिससे सिद्धपद को पाते हैं। उसे यहाँ सिद्ध गति कहते हैं, यह सिद्ध गति कैसी है ? यह कहते हैं, ***कैसी है पंचमगति ? स्वभावभावरूप है, स्वभावरूप है - ऐसा नहीं कहा क्योंकि पर्याय है ! सिद्ध की पर्याय है इसलिये स्वभावभावरूप है,*** **`स्वभाव भाव भूततया' -** ऐसा शब्द है न ! मूल संस्कृत शब्द - ऐसा है - **स्वभाव भाव भूततयां,** स्वभावभावरूप-भूत का अर्थ रूप है। आहाहा ! सिद्ध गति को प्राप्त ऐसे अनंत सिद्धों को हमारी और तुम्हारी आत्मा में स्थापित करता हूँ। आहाहा ! वह सिद्ध कैसे हैं ? कि पंचमगति को प्राप्त हुये हैं। आहाहाहा ! स्वभावभावरूप होगये हैं। स्वभाव तो त्रिकाल है परंतु यहाँ तो स्वभावभाव पर्यायरूप दशा होती है। सिद्ध भगवान अपनी पर्याय में स्वभावभावरूप होते हैं। स्वभावभावरूप है। वस्तु तो स्वभाव है भगवानआत्मा सिद्ध स्वरूप ही है, इसलिये तो पर्याय में अनंत सिद्धों को स्थापित करके कहेंगे। तब कहनेवाले को और सुननेवाले को, दोनों (की पर्याय) में स्थापित करके - ऐसा कहा। आहाहा ! और वह गति कैसी प्राप्त करते हैं ? कि स्वभावभावरूप (अर्थात्) जैसा उसका स्वभाव है वैसी ही उनकी दशा में, स्वभावभाव रूप दशा प्राप्त हुये हैं। स्वभावभाव अर्थात उसकी पर्याय बताते हैं। स्वभाव त्रिकाल, वर्तमान (भी) उनका स्वभावभावरूप हो गया है। आहाहा ! पण्डितजी ! आहाहा !

जैसा उसका स्वभाव था ऐसी ही दशा पर्याय में उसके होने योग्य भाव में, स्वभावभावरूप दशा हुई है। आहाहा ! इसलिये उसे ध्रुव कहते हैं। ***पर्याय को ध्रुव कहते हैं, ध्रुव स्वभाव जो था, स्वभाव ध्रुव था उसमें से पर्याय स्वभावभावरूप परिणमी इसलिए उसे ही ध्रुव कहते हैं।*** आहाहा ! (श्रोता :-) (दो ध्रुव हुए त्रिकाली ध्रुव और एक वर्तमान ध्रुव) हाँ, ध्रुव यह यहाँ पर्याय है, कारण तो - ऐसा कहना है कि स्वभावभावरूप दशा हो गई, अब उसे वहाँ से पलटना नहीं, ध्रुव हो गयी। आहाहा ! चार गतियों

में तो गति बदल जाती है, एक गतिमें से दूसरी गति यह तो ध्रुव (पर्याया) आहाहा ! देखो यह कहते हैं।

स्वभावभावरूप है इसलिये, इसलिये कि स्वभावभावरूप है, `स्वभावभाव भूततया ध्रुवत्वम्' अर्थात इसप्रकार ध्रुवपने को अवलम्बता है। संस्कृत है न ? `स्वभावभाव भूततया ध्रुवत्वम्' आहाहा ! ... - ऐसा कहकर `स्वभाव भी जिसका था वह, वह नहीं था - ऐसा नहीं, वह आया तो वह कहीं बाहरमें से कोई चीज नहीं आयी।' आहाहा ! उसका वह स्वभावभाव था, वह स्वभावभावरूप पर्याय में भाव हो गया। आहाहा ! स्वभावभाव तो त्रिकाल था, उसमें से वर्तमान पर्याय में उस भाव की स्थितिरूप, भावना स्वरूप में परिणमित हो गई। आहाहा ! उसे यहाँ सिद्धगति कहा जाता है। `इणमो' शब्द है न `इणमो'। `इणमो' शब्द वस्तु को नहीं, कहने को लागू होता है। **`वोच्छामि समय पाहुड़म् इणमो**' `यह' ओ हो - ऐसा है न ? इणम् ओ इणम् ओ, इदम् `ओ' `म' और आ गया इदम में `ओ' भिन्न हो गया। यह **अहो** - ऐसा कहकर कहते हैं। आहाहा ! - ऐसा समयसार में कहेंगे यह अहो, श्रुतकेवली भणियम्, आहाहा। उसे कहेंगे। आहाहा ! क्या कहा ? इणमो शब्द है न ? इणमों का अर्थ `इदम्' और `ओ' उसमें से भी भिन्न हुआ **`ओहो**'... यह। **ओहो** ! श्रुतकेवली केवली भणियं, ऐसे समयसार को मैं कहूँगा। मैं तो हूँ परंतु जिसे सुनना है उससे कहूँगा अर्थात उन जीवों की भी पर्याय में सिद्ध दशा को स्थापित किया है (वह सभी सिद्ध (दशा) प्राप्त होंगे) वह पायेंगे ही यहाँ तो एक ही बात है न ! यहाँ दूसरी बात है ही नहीं। आहाहा ! किसी को कम समय लगे किसी को अधिक लगे। आहाहा ! क्योंकि यह (**आ**)**अहो** ! आश्चर्य भरी बात बतलाते हैं। हे ! भव्य - ऐसा कहा न ? आहाहा ! वहाँ से - ऐसा कहना (प्रारंभ किया) अहो ! भव्य जीवो - ऐसा कहा। गाथार्थ में कहा गाथार्थ में - ऐसा कहा है, अहो है ? अहो ! शब्द है, अहो ! शब्द लिखा है, आहा ! अहो शब्द है न ? मूल पाठ में, शब्दार्थ में है। वह, अहो कह कर तो मैं श्रुतकेवली द्वारा कहा हुआ, केवली द्वारा कहा हुआ और श्रुत केवली द्वारा कहा हुआ... भाई अहो ! यह कहने का अवसर आया न ? सुननेवाले को भी सुनने में आया, आहाहा ! - ऐसा कहकर अहो आश्चर्य बताते हैं ! तीनलोक के नाथ केवली ने कहा (वही) कहेंगे और श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ कहेंगे। आहाहा ! - ऐसा समय कब मिलेगा - ऐसा कहते हैं। साक्षात् भगवानने (सीमंधर प्रभुने) कहा। वह हमने सुना और श्रुतकेवली के पास चर्चा (समाधान) किया, वह मैं कहूँगा, आहाहा ! इसमें से इतना इतिहास निकलता है ? कि वह भगवान के पास गये थे कि नहीं ? वह स्वयं - ऐसा क्यों कहें ? परंतु इसमें यह आ जाता है। ***भगवान कहते हैं वह***

कहेंगे, उसका अर्थ ही यह हो गया कि भगवान से सुना है। आहाहा ! और श्रुत केवलियों के पास चर्चा की है। ऐसी समयसार की स्थिती जो आत्मा की, उसे मैं कहूँगा। उसमें कोई टीका (निन्दा) करते हैं कि `मैं कहूँगा' - ऐसा तो आया। इसमें मैं कहूँगा, भाषा में क्या आयेगा ? वैसे तो वाणी है वह पर है, फिर भी कहूँगा- ऐसा फिर क्यों आया पुनः वहाँ, लेकिन भाषा में दूसरा क्या आये ? कहेंगे, वाणी निकलेगी वाणी के योग से, परंतु हमारा जो ज्ञानभाव है उसके अनुसार वाणी होगी। भाषा, भाषा के कारण है। परंतु जैसे वाणी सर्वज्ञ अनुसारिणी है, दूसरे श्लोक में आया न। जैसे परमात्मा की वाणी सर्वज्ञ अनुसारिणी है उसका अर्थ अनुभवशीली किया है, केवलज्ञान के आधार से कहेंगे। यह मैंने भगवान के पास सुना है, श्रुतकेवली के पास से जाना है, उसको अनुसरण करती हुयी वाणी निकलेगी। आहाहाहा ! समझ में आया ? एक-एक शब्द में बहुत गहराई भरी है। ओहोहो ! कुछ तो कल कही थी। पहले शब्दमें से, आहाहा ! यहाँ तो ध्रुवमें से इतना लेना (समझे)। यह (सिद्ध) गति स्वभावभाव से ही ध्रुवपने का अवलम्बन करती है अर्थात ध्रुवरूप रहती है `चारों गतियाँ' पर-निमित्त से होने के कारण ध्रुव नहीं है। एकरूप रहती नहीं है। गति परिवर्तनशील है सर्वार्थसिद्ध की गति हो फिर भी पलटजाती है, शीघ्रता से मनुष्य हो जाता है। आहाहा ! यह पाण्डव, पांच पाण्डव में नकुल सहदेव को (- ऐसा विचार आया) (भाईयों के प्रति) साधर्मी हैं और मुनि हैं, छठवे-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं और - ऐसा उपसर्ग आया, उसमें तीनों कुछ विकल्प किये बिना मोक्ष पधारे, परंतु दो मुनियों को थोड़ा विकल्प आया। अरेरे ! कैसा तो होगा मुनियों को ? आहाहा ! वहाँ गति, सर्वार्थसिद्धि की हो गई, केवलज्ञान रूक गया, यह शुभभाव, शुभभाव में, दो भव बढ़ गये। आहाहा ! यह तो सिद्ध गति जिसमें दूसरी गति ही नहीं। पर निमित्त से हुयी गति तो पलट जाती है, यह तो स्वभाव से हुयी गति ध्रुव, अब यह पलटे नहीं आहाहा ! सिद्धपनमें से पुनः अवतार धारण करें ? (यह नहीं) अन्य (मतवाले) - ऐसा कहते हैं कि भक्तोंपर संकट आये, राक्षसों से (यदि भगवान के भक्तों पर संकट आयें)... परंतु अंदर संकट कहां है ? कहा जाता है कि उपसर्ग आता है, इसलिये कहलाता है, उपसर्ग होता है। वह क्या है ? जानते हैं। जानते हैं और आनंद से सहन करते हैं, हठ और दुःख से सहन नहीं करते। आहाहा ! परिसह उपसर्ग में तो उग्र जोर है, अंतर पुरुषार्थ का, अतीन्द्रिय आनंद के जोर से पुरुषार्थ (प्रारंभ करते) आनंद आनंद आनंद आनंद दुनियाँ उन्हें संयोग से देखे, (वह तो) अंदर में आनंद की लहरों को अनुभवते हैं। आहाहा !

यहाँ ऐसी पंचमगति ! चारों गतियाँ तो दूसरे में (बदलती) हैं ध्रुव नहीं, चारों

गतियाँ तो विनाशीक हैं। `ध्रुव विशेषण से पंचमगति में इस विनाशीकता का निराकरण हुआ।' अब यह गति पलटेगी ही नहीं। आहाहा ! मोक्ष होने के बाद भी अवतार धारण करे - इस बात को गलत ठहराया। जिसका संसार जल गया, जो चना सिक गया वह चना उगे किस प्रकार ? अरे ! ***चना जैसी वस्तु भी सिकने के बाद उगे नहीं तो यह तो अज्ञान और राग-द्वेष को जला करके आत्मा की ध्रुव दशा प्रगट की है। आहाहा*** ! यह वहाँ से विनाश नहीं पायेगी (नष्ट नहीं होगी) इसलिये उसे ध्रुव कहते है।

और वह गति कैसी है ? अनादिकाल से परभाव के निमित्त से होता पर में भ्रमण, उसकी विश्रांति... अचल है न ? अचल, अगाढ, अचलपने को पाते हैं, अब अचलता पाकर, मिली तो मिली वह अब बदले नहीं। आहाहा ! ध्रुव कहा, अब अचल कहा। आहाहा ! चलायमान न हो, अब ऐसी दशा को पाया ऐसे अनंत सिद्धों को हमने पर्याय में स्थापित किया, वह ऐसे सिद्ध हैं - ऐसा कहते हैं। सिद्धों की पहचान कराते हैं। आहाहा ! उनका पंचमगति में अभाव हुआ। `चार गतियों में पर-निमित्त से जो भ्रमण होता है उसका यहाँ पंचम गति में' अचल कह कर चले नहीं - ऐसा कहकर `व्यवच्छेद किया' ***ध्रुव में तो अस्ति को स्थापित किया यह अचल जो अब चले नहीं वहाँ से पलटे नहीं, इसप्रकार - ऐसा स्थापित किया, अचलपने*** को पाया है, दो शब्द हुये।

तीसरा, फिर वह कैसी है ? ध्रुवम् अचलम् अनुपम्... अब अनुपम की व्याख्या करते हैं। **जगत में जो समस्त उपमायोग्य पदार्थ हैं, उनसे विलक्षण अद्‌भुत माहात्म्य होने से।** आहाहा ! `उन्हें किसीकी उपमा मिल सकती नहीं।' सिद्ध कैसे है ? कि सिद्ध जैसे। उनके जैसे वही। अर्थात सिद्ध जैसे सिद्ध। उन्हें दूसरी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। आहाहा ! उपमा देने योग्य पदार्थ है उनसे अद्‌भुत विलक्षण माहात्म्य होने से उन्हें किसी की उपमा मिल नहीं सकती `इस विशेषण से चारों गतियों में जो परस्पर कथंचित साम्यता दिखती है'... चक्रवर्ती का सुख, इन्द्र जैसा इन्द्र का सुख चक्रवर्ती जैसा अंश भी समान मिलता है, परंतु यहाँ (सिद्धों में) कुछ मिले - ऐसा नहीं। सिद्ध गति को कोई उपमा मिल सके - ऐसा नहीं है। आहाहा ! परस्पर समानपना कथंचित चारों गतियों में मिल जाती है, `उसका यहाँ पंचम गति में विच्छेद हुआ।'

`और वह कैसी है ?' यह विशेष कहा... तीन तो पाठ में (गाथा में) है। ध्रुव, अचल, अनुपम अब सिद्ध गति है न। गति वह अपवर्ग है - ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा ! त्रिवर्ग से भिन्न अपवर्ग है, है ? देखो, आहाहा ! अपवर्ग उसका नाम है।

`अपवर्ग क्यों कहना' कि धर्म अर्थात पुण्य, अर्थ अर्थात लक्ष्मी, काम अर्थात विषय यह त्रिवर्ग कहलाता है, आहाहा ! मोक्षगति वह इन वर्गों में नहीं होने से, मोक्ष गति पुण्य में नहीं, पैसा में नहीं और विषयों में नहीं, तीनों वर्ग से भिन्न अपवर्ग है, वर्ग बिना की है। वर्ग तीन है पुण्य, पाप अर्थात् लक्ष्मी का मिलना और यह विषय, अपवर्ग कहा न ? अर्थ और काम अर्थात वासना, उससे रहित हैं। `**सिद्ध भगवान ऐसी पंचम गति को पाये है।**' आहाहा ! उसके भाव में उसका भासन आना चाहिए कि सिद्धगति ऐसी है, इसप्रकार उसे धर्म, अर्थ और काम से भिन्न... वहाँ पुण्य भी नहीं, विषय वासना नहीं और वहाँ लक्ष्मी नहीं। आहाहा ! उनको ऐसे सिद्ध भगवंतों को पहचान कर कहा है - ऐसा कहते हैं। ऐसे सिद्ध भगवंत ध्रुव, अचल और अनुपम, त्रिवर्ग से भिन्न अपवर्ग। आहाहा ! ऐसी दशा को `स्वभावभाव भूततया' प्राप्त हुये हैं। मैं फिर से कहता हूँ। `उन्हें अपनी और पर की आत्मा में स्थापित करके।' आहाहाहा ! कहूँगा - ऐसा कहा है अर्थात सुननेवाला तो है, तथा कहनेवाले और सुननेवाले दोनों वोच्छामिमें से निकाला और दोनों आत्माओं में सिद्धपना स्थापा है। अनंता-अनंता-अनंता-अनंता सिद्ध अनंता-अनंता सर्वज्ञ अनंता-अनंत अनंत केवलियो। एक केवली की स्वीकृति कठिन (पड़ती है) एक केवली के द्रव्य गुण पर्याय को जाने तब स्वयं के आत्मा को जाने और उसका मोह नष्ट हो जाये। आहाहा ! तो ऐसे अनंत सिद्धों को... आहाहा ! श्रोता के ज्ञान की पर्याय में, राग में नहीं, राग नहीं आहा ! आहाहा ! पर्याय में अनंत सिद्धों को पहचान करके कहता हूँ कि ऐसी पर्याय में मुझे (मैं) स्थापित करता हूँ और सुननेवालों की पर्याय में (भी) स्थापित करता हूँ। आहाहा ! पूरी सेना को खड़ा किया है। स्वयं और सुननेवालों को साथ लेकर एक साथ जानता है आहाहा ! आया है न अंत, अंत अंत में।

यहाँ आखिरमें कहा है न `मज्जन्तु' - पूरा लोक आकर... आता है न ? अंतिम कलश - जीव अधिकारका - पूरा लोक आ जाओ, कोई बाकी नहीं, आहाहा ! ऐसे इधर सुननेवाला भी - ऐसा हो वह जीव भी। आहाहा ! सिद्धपदको उसकी पर्यायमें स्थापित करता हूँ अतः उसका लक्ष्य भी द्रव्य ऊपर रहेगा और हमारी बात सुनेगा तो उसकी शुद्धि हो जायेगी, आहाहाहा ! - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

उनको अपनी और दूसरों की आत्मा में स्थापित करके, आहाहा ! `समय का-सर्व पदार्थों का अथवा जीव पदार्थ का प्रकाशक... - ऐसा।' `वोच्छामि' समय शब्द आया था न ? `वोच्छामि समयपाहुड़म्' अब उसकी व्याख्या करते हैं, फिर श्रुत केवली की करेंगे; समय नाम सभी पदार्थों का अथवा जीव पदार्थ का प्रकाशक - ऐसा प्राभृत नामका अर्हत्प्रवचन का अंश है यह तो, आहाहा ! भगवान की वाणी, अरहंत

की वाणी त्रिलोकनाथ, जिनेश्वर, परमेश्वर उनकी जो वाणी उसका यह अंश है। कहते हैं कि पूरा तो हमारे पास कहाँ है, आहाहा ! अर्हत्प्रवचन, अर्हत, अरहंत - ऐसा नहीं लिया, जिनको कुछ शेष नहीं ऐसे पूरण जाननेवालों के प्रवचनका, पूरा जाननेवालों के प्रवचन, आहाहा ! एक अंश है यह, यह तो अवयव है आहाहाहा !

`अनादिकाल से उत्पन्न हुये अपने और दूसरों के मोह के नाश के लिए...' आहाहाहा ! अहो..... `भव्य जीवो' - ऐसा कहकर, मैं मोह के नाश के लिये कहता हूँ। आहाहा ! ***हममें भी थोड़ा अस्थिरता का अंश है उसका भी नाश होगा और श्रोताओं को भी मिथ्यात्व और अव्रत का नाश करने के लिये मैं यह कहूँगा।*** आहाहाहा ! अनादिकाल से उत्पन्न हुआ हमारा और पर का मोह... भाई मुनि को मोह होता नहीं न। यह अस्थिरताका कहा है न ! स्वयं कहा है न ! अमृतचन्द्राचार्यने (कहा कि) कल्माषिताया अनादि का अशुद्धता का अंश है वह बाधक है, उसके नाश के लिये हमारी यह टीका है। आहाहा ! इस अशुद्धता से मुझे निर्मलता होगी - ऐसा नहीं, (परंतु) अशुद्धता के समय (स्वभाव की ओर झुकते-झुकते) हमारा लक्ष्य ध्रुव ऊपर विशेष जाता है, जिससे अशुद्धता का नाश होगा आहाहाहा !

यहाँ भी कहते हैं अपने और दूसरों के मोह के नाश के लिये, क्या कहते हैं आचार्य कुन्दकुन्द `मैं परिभाषण करता हूँ' स्वयं के मोह और दूसरों के मोह के नाश के लिये यह परिभाषण करता हूँ... आहाहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! वोच्छामि है न ? वक्ष्यामि, वोच्छामिमें से वक्ष्यामिमें से यह सब निकाला (कहा) परिभाषण निकाला उसमें से।

वक्षामि - ऐसा है न ? मैं कहूँगा ? क्या कहूँगा ? अर्थात जिस-जिस स्थान पर जिसकी जरूरत है वहाँ वहाँ वह भाव आयेंगे, गाथा रचना अक्षरों से होगी, आहाहा ! ऐसे परिभाषण (कथन) को मैं कहूँगा। आहाहा ! अपना और दूसरों के (मोह) नाश के लिये यह सिद्धांत है, यह मैं कहूँगा, परंतु थोड़ी हमारी भी अशुद्धता है, उसके नाश के लिये और श्रोताओं के भी मोह के नाश के लिये मैं यह कहूँगा। आहाहाहाहा ! जोर तो कितना है देखो न !! सिद्धों को नीचे उतारा है, प्रभु आप ऊपर और हम यहाँ नीचे, तुम जरा यहाँ आओ फिर मैं भी आपके पास आऊँगा, आपके पास वहाँ ऊपर। आहाहा ! हमारी पर्याय में आप पधारो फिर मैं आप जहाँ हो वहाँ आऊँगा। आहाहा ! कहते हैं कि अपनी पर्याय में मोह के नाश के लिये आपको स्थापित किया है आहाहा ! अपने आत्मा में और श्रोताओं के आत्मा में मोह के नाश के लिये मैं कहूँगा (अर्थात कि) इसके लिये यह परिभाषण किया है - ऐसा आया था न ! आहाहाहाहा ! क्या ! (महिमा) कुन्दकुन्दाचार्य की और क्या। (महिमा) उनकी

वाणी की एक एक अक्षर में कितना मर्म भरा है। आहाहाहा ! श्वेतांबर में तो - ऐसा कहते हैं `संयमे आवशत भगवताया' भगवान ने - ऐसा कहा है, मैं कहूँगा। यहाँ तो कहते हैं मैं कहूँगा, भगवान के पास से सुना है परंतु कहनेवाला मैं हूँ अभी। आहाहा ! और मैं अपने वैभव से कहूँगा। आहाहाहाहा ! मुझे प्रगट हुयी (जो) दशा उससे समयप्राभृत को मैं कहूँगा, आहाहा ! यह प्रवचन का अवयव है। आहाहा !

मैं परिभाषण करता हूँ, आहाहा ! वहाँ भी लोग तर्क करते हैं देखो परिभाषण करता हूँ, कथन करता हूँ (आखिर ... तो आया ?)) परंतु दूसरा क्या आये ? व्यवहार में किस प्रकार आये ? वाणी वाणी के कारण निकलती है, परंतु वाणी में जो कहने का आशय है, ज्ञान में निमित्त है, इससे - ऐसा कहने में आया कि मैं कहूँगा। क्योंकि ज्ञान में पहले - ऐसा आया, कि ज्ञान का जो स्वभाव है हमारा, उससे मैं कहूँगा। है न ? आहाहा ! भावश्रुत से कहूँगा। आहाहा ! हमारे स्वभाव में भी सिद्धपद को स्थापा और दूसरों में भी स्थापा, और अब मैं मोह के नाश के लिये... मोह (शब्द) समुच्चय प्रयोग किया है। अर्थात स्वयं को कहीं दर्शनमोह नहीं (परंतु) श्रोता को दर्शन मोह चारित्र मोह दोनों हो सकते हैं, परंतु हमारे और तुम्हारे इन सभी के मोह नाश के लिये यह कहते हैं, राग को रखने के लिये नहीं। भले ही हम कहें और तुम्हें प्रेम आये और शुभ राग आये परंतु राग रखने के लिये यह कथन नहीं। आहाहाहा !

कारण कि यहाँ तो वीतरागता का वर्णन करना है, और चारों अनुयोगों के कथन का सार वीतरागता है। पंचास्तिकाय की १७२वीं गाथा में आता है, चारों अनुयोगों का सार वीतरागता है। इस अनुयोग में - ऐसा है और इस अनुयोग में - ऐसा है - ऐसा नहीं। चारों अनुयोगों का सार वीतरागता है इसका अर्थ यह हुआ कि चारों अनुयोगों का कहने का आशय स्वद्रव्य का आश्रय करना है कि जिससे वीतरागता प्रगटे। आहाहा ! चारों अनुयोग चाहे तो चरणानुयोग हो, करणानुयोग हो, कथानुयोग हो। प्रभु तो - ऐसा कहें अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य चारों अनुयोगों का सार शास्त्रों में शब्दों से कहते आये है। सूत्र तात्पर्य भी पूरे शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है और वह वीतरागता... आहाहा ! प्रगट करने के लिये और इस राग का नाश करने के लिये यह वाणी निकलेगी। आहाहा ! गजब बात है न !!

सहज ही वाणी निकल गई है न। आहाहा ! श्रोता (हमारा भी अहो भाग्य - ऐसा) ऐसी बात है। बात तो सही है। अहो ! सिद्धों के समीप में जाने का मार्ग तो यह है। इसीलिये तो कहेंगे। संसार में कहीं रुकने जैसा है नहीं, (संसार) नाश के लिये कहेंगे। गजब बात है न... ***हमारा कथन जितना आयेगा वह सभी मिथ्यात्व***

और राग द्वेष के नाश के लिये कथन है। कहीं मिथ्यात्व और राग द्वेष को रखूँ-ऐसा कथन होता ही नहीं क्योंकि यह तो वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोक नाथ से सुना है और उसीप्रकार परिणमन हो गया है। आहाहाहा ! और श्रुतकेवली के पास से चर्चा करके हमें परिणमन हुआ है। हम पंचमकाल के साधु अतः हमारी वाणी साधारण है, और उसका फल साधारण है - ऐसा नहीं समझो आहाहा ! पण्डितजी ?

यह तो अंदर का भाव, आहाहा ! मक्खन भरा है न मक्खन। `**आहाहा ! कैसा है वह अर्हत प्रवचन का अवयव**' **आहाहा ! यह समयसार (ग्रंथ) कैसा है ?** कि `**अनादि निधन परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से**' आहाहा ! प्रथम तो उत्पन्न हुये मोह के नाश के लिये (कहा) अब मैं परिभाषण करता हूँ। कैसा है प्रवचन ? कि अनादि अनंत - ऐसा परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से। आहाहाहा ! अनादि-अनंत - ऐसा, परमागम - ऐसा शब्दब्रह्म उससे प्रकाशित हुआ होने से। आहाहा ! वाणी है वह अनादि से निकलती ही है - ऐसा कहते हैं। दिव्यध्वनि अनादि संतों की वाणी, केवलियों की निकलती ही है। अनादिनिधन, अनादि, आदि नहीं और अनिधन, निधन अर्थात अंत नहीं, जिसका अंत नहीं और जिसकी शुरूआत नहीं - ऐसा परमागम शब्दब्रह्म, शब्दब्रह्म है यह, जैसे भगवान आत्मा परमब्रह्म है। आहाहा ! इसीप्रकार यह वाणी भी शब्दब्रह्म है। सर्व व्यापक शब्द पूर्ण सभी बातों को कहनेवाला है। आहाहा ! जैसे भगवान आत्मा परमब्रह्म सर्वज्ञ स्वरूप है उसीप्रकार वाणी भी सर्व का वास्तविक स्वरूप कहनेवाली (भी) शब्दब्रह्म है। आहाहा ! इस शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से। आहाहा ! इसलिये तो प्रकाशित कहा। वाणी, समय प्राभृत कहा है न ! समय प्राभृत कहेंगे -

अब `श्रुतकेवली भणियं' यह चौथापद है उसका अर्थ चलता है। आहाहाहा ! `सर्व पदार्थों के समूह को साक्षात करनेवाली,' सर्व पदार्थों के समूह को साक्षात करनेवाली, समझाना है तो किसप्रकार समझायें ? एक ओर कहें दूसरे पदार्थों को जानना यह असद्भूत है, परंतु यहाँ तो सर्व पदार्थों को साक्षात करनेवाला - ऐसा तो ज्ञान का स्वभाव है। - ऐसा सिद्ध करना है, केवलज्ञानियों का (ज्ञान) आहाहाहा !

सर्व पदार्थों का समूह। आहाहाहा ! अनंतद्रव्यों, अनंतद्रव्यों के अनंतगुण अनंती पर्याय उसका ढेर पड़ा है, सम्पूर्ण लोक में प्रगटरूप में सिद्ध है यह पर्याय की शोभा से प्रगट है। यह सभी पदार्थों में आ जाता है। सर्व पदार्थ के समूह को साक्षात करनेवाले केवली भगवान ! कोई इसमें - ऐसा कहते हैं कि श्रुतकेवली भणियं कहा है उन्होंने दोनों कहाँसे निकाले ? कि दोनों इसमें से निकलते है, नियमसार में दोनों शब्दों को स्पष्ट भिन्न किया है `**केवली**' `**श्रुतकेवली भणियं**' पहला पद है नियमसार में, यह कहने का आशय, इसमें भी यही है। आहाहा !

केवली भगवान - सर्वज्ञ से प्रणीत होने से, आहाहाहा ! प्रतिज्ञा बद्ध !! मैं महाव्रत धारी हूँ मुनि, सत्यव्रतधारी हूँ, यह मैं कहता हूँ। आहाहा ! कि यह अर्हंत का यह प्रवचन, यह साक्षात केवली भगवान के श्रवण से कहा हुआ है। उससे कहा हुआ है। आहाहा ! अन्य साधारण व्यक्तियों को दुःख लगे। श्वेतांबरों के यहाँ यह वाणी है ही नहीं, यह स्थिति ही वहाँ नहीं। सभी कल्पित बातें करके (पंथ) खड़ा किया है वहाँ। बापू क्या हो ? आहाहा ! यहाँ तो सर्वज्ञ भगवान कैसे ? कि सर्व पदार्थों के समूह को साक्षात प्रत्यक्ष करनेवाले, ऐसे सर्वज्ञ से प्रणीत, सर्वज्ञ से प्रणीत निमित्त से कथन है न ? उनसे कहा हुआ होने से, उनसे कहा हुआ होने से एक बात। दूसरी, केवलियों के निकटवर्ती साक्षात सुननेवाले आहाहाहा ! प्रभु के समोशरण में नजदीक में विराजमान श्रुतकेवलियो... ओहोहो ! भगवान की वाणी निकलती है, उनके समोशरण में निकटवर्ती नजदीक सुननेवाले बैठे हैं। आहाहाहा ! निकटवर्ती केवलियों का निकट में रहनेवाले साक्षात सुननेवाले, अन्य जगह कहा होगा, उसे सुनकर... - ऐसा नहीं। आहाहा ! भगवान की सीधी वाणी, समवशरण में सीधा सुननेवाले। आहाहाहा ! उसीप्रकार स्वयं अनुभव करनेवाले भगवान के नजदीक में, भगवान से सीधी वाणी सुनकर, सुनकर और वही अनुभव करके... अकेली सुनी - ऐसा नहीं। आहाहाहा !

यह तो श्रुतकेवली की व्याख्या चलती है। स्वयं अनुभव करनेवाले अपने से अनुभव करनेवाले, दूसरों ने कहा अतः मैं कहता हूँ मानता हूँ - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! अपने स्वरूप से प्रत्यक्ष अनुभव करके जाननेवाले... देखो यह श्रुतकेवलीयों (को)। आहाहा ! यह शास्त्र की प्रमाणिकता स्थापित करते हैं कि यह शास्त्र केवली के श्रीमुख से निकला है और निकटवर्ती श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ है। उन्होंने सुना है और अनुभव किया है, उनसे कहा हुआ यह समयसार है... आहाहाहाहा ! साक्षात सुननेवाले एवं स्वयं अनुभव करनेवाले, भगवान ने वीतराग भाव तो कहा परंतु सुनकर स्वयं वीतरागभाव का अनुभव करनेवाले, वीतरागस्वरूपप्रभु आत्मा तो वीतरागस्वरूप है, द्रव्य जिनस्वरूप है परंतु पर्याय में जिनस्वरूप का अनुभव करनेवाले... आहाहा ! पर्याय में वीतराग भावों का अनुभव करनेवाले... देखो ये संत। आहाहाहा !

ऐसे श्रुतकेवली गणधरदेवों ने कही हुयी होने से। आहाहा ! ऐसी श्रुतकेवली गणधर से कही हुयी है। केवली परमात्मा से कही हुई है, परंतु ऐसी श्रुतकेवली गणधरों से कही हुयी है, कारण कि हमने भगवान को सुना है, और बहुधा तो हमने गणधरों के पास से चर्चा की है। आहाहा ! भगवान से चर्चा होती नहीं, वहाँ तो दिव्यध्वनि निकले। आहाहा ! उसमें से छोटे बड़े संदेह (तथा) शंकायें हो विशेष जानकारी के लिये, आशंका, शंका नहीं अपितु आशंका... यह तो गणधरों और संतों के पास

से हमने सुना है। आहाहा !

`ऐसे श्रुतकेवली गणधर देवों से कही हुयी होने से प्रमाणता को प्राप्त हुयी है।' क्या ? यह अर्हंत प्रवचन का अंश, यह समयसार अर्हंत प्रवचन का एक भाग। वह प्रमाणता को, प्रमाणपने को प्राप्त हुआ है क्योंकि सर्वज्ञ भगवान से सीधा, सर्वपदार्थों के जाननेवालों से सीधा सुना है और श्रुतकेवली (भगवान के) निकटवर्ती जिन्होंने सुना है। आहाहा ! हमेशा रहनेवालों के पास से, हम तो कभी (एकबार) गये हैं, गणधर निकटवर्ती सदा होते हैं। आहाहा ! ऐसे श्रुतकेवलियों और केवली भगवान से कहा हुआ होने से यह समयसार प्रमाणता को प्राप्त हुआ है। आहाहाहाहा ! मैं सिद्धांत को कहूँगा परंतु वह प्रमाणरूप में कैसे है ? कि इसप्रकार है, सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहा हुआ है, आहा ! उनसे कहा हुआ होने से, आहाहाहा ! और निकटवर्ती नित्य सुननेवाले संतों से कहा हुआ होने के कारण, कायम सुननेवालों, नजदीक रहनेवालों के द्वारा कहा हुआ होने से... आहाहा ! भगवान ने कहा वह दूसरों ने सुनाया तथा दूसरों ने तीसरे से कहा इसप्रकार से नहीं, आहाहा ! साक्षात गणधरों तीर्थंकर के पास निकट में रहनेवाले, आहाहाहा ! कितना अस्तित्व सिद्ध करते हैं, और प्रमाणता को किसप्रकार सिद्ध करते हैं। आहाहा ! प्रमाणिकता को प्राप्त हुआ है। आहाहा !

यह सिद्धांत समयसार इस प्रकार सत्यता को प्रमाणता को प्राप्त हुआ है। आहाहा ! उसमें किसी ने लिखा है भगवान की वाणी तो अनंत उसमें से यही वाणी भगवान की है यह किस प्रकार खबर पड़े ? - ऐसा लिखा है, उस श्रमणसूत्र में (८३३ में श्लोक है अंदर) यहाँ है न श्लोक लिखा अंदर कहा है न ? प्रमाणिकता को प्राप्त हुआ है। अनुभव करके सर्वज्ञ से कहा हुआ और केवली से कहा हुआ, तथा हम अनुभव करके कहते हैं (अतः) प्रमाणिकपने को प्राप्त हुआ है ! यह सत्य है दूसरा सत्य नहीं - ऐसा कैसे ? यह ही सत्य है - ऐसा नहीं, कि भगवान ने तो अनंत जाना है न ? वाणी अनंतवे भाग में निकली, इसलिये यही सत्य हैं यह कैसे कहा जा सकता है ? - ऐसा नहीं - ऐसा नहीं प्रभु !! तुम रहने दो भाई ! - ऐसा रहने दो भाई ! आहाहा ! प्रभु ! पोने सोलह आना एक तत्त्व पलटे तो पूरा तत्त्व (पलट) जाता है भाई ! आहाहा ! `भगवान की वाणी अनंतवे भाग निकली अतः किसी ने कुछ माना किसी ने कुछ जाना अतः इनकी ही वाणी सच्ची - ऐसे कैसे कहना ?' अरे प्रभु तुम रहने दो - ऐसा रहने दो भाई। आहाहा ! आहाहा !

सर्वज्ञ से सीधा सुना है और निकटवर्ती गणधरों से भी हमने सीधा सुना है। आहाहा ! और हम अनुभव करके कहते हैं (तुम भी अनुभव करो) आहाहा ! अभी तो एक गाथा में समयसार (की प्रमाणिकता) सिद्ध करने की कितनी बात कहते हैं

(सत्य वात !) आहाहा ! धन्य भाग्य। आहाहा ! अर्थात आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी है - ऐसा जिन्होंने सर्वज्ञ स्वभाव प्रगट किया है... उनके द्वारा कहा हुआ है और सर्वज्ञ स्वभावी माननेवाले भी छद्मस्थ श्रुतकेवलियों, उन्होंने भगवान के पास से नजदीक रहकर सुना है, एक ने कहा और दूसरे ने उससे कहा - इसप्रकार नहीं। साक्षात भगवान की वाणी सीधी कान में पड़ी है। आहाहाहाहा ! (बराबर) आहाहा !

यह तो अभी समयसार कहेंगे, पहली गाथा (है) और निराभिमानता तो देखो उनकी। आहाहा ! भगवान के द्वारा कहा हुआ है बापू। श्रुतकेवली के द्वारा कही हुई है वह कहेंगे। आहाहा ! फिर कहेंगे कि अपने वैभव से कहेंगे। परंतु यहाँ अभी इतना विनय स्थापित करते हैं कितनी विनय की स्थापना करते है। आहाहा ! मैं कहूँगा इसलिये प्रमाण है - ऐसा पहले नहीं कहा, यहाँ। आहाहाहाहा ! यहाँ सर्वज्ञप्रभु की अस्ति स्थापित की और उन सर्वज्ञ को वाणीवाला स्थापित किया, शरीरवाला स्थापित किया, सिद्ध (भगवान) नहीं, सिद्ध नहीं। वाणीवाले अर्थात अरहंत को स्थापित किया कि जिनको वाणी है, आहाहा ! प्रणीत - ऐसा कहा है न ? प्रणीत आहाहाहा ! 'प्रणीत' है देखो न। सर्वज्ञ से प्रणीत वाणी है, सर्वज्ञ तो सिद्ध भी हैं, परंतु उन्हें वाणी नहीं। यह तो अरहंत सर्वज्ञ से प्रणीत वाणी है। आहाहाहाहाहा !

और - ऐसा भी सिद्ध किया, जैसे सिद्ध अनंत हुये इसीप्रकार सर्वज्ञ (अरहंत) भी हैं, बाद में शरीर रहित होंगे, परंतु यह सर्वज्ञ हैं, तो कहीं है या नहीं जैसे शरीर रहित सिद्ध हुये वह किसी क्षेत्र में है कि नहीं अर्थात यह ऊपर है। तब जिनको अभी वाणी है और सिद्ध नहीं हुये तथा सर्वज्ञ हुये हैं तो उनकी कोई स्थिति है कोई क्षेत्र है कि नहीं ? आहाहाहा ! बहुत समाया है। क्षेत्र सिद्ध करते हैं, भगवान महाविदेह में विराजते हैं। आहाहा !

जहाँ वाणी निकलती है उनके पास से यह बात आयी है। आहाहा ! यहाँ तो जब कुछ बोलना आया तब उसे (गर्व) हो जाये... जो मैं समयसार कहूँगा फिर भी वह तो भगवान के पास से सुना है और निकटवर्ती गणधरों के पास (उनके) साथ चर्चा करके निश्चित किया है। आहाहा !

और पांचमी गाथा में - ऐसा आया न कि हमारे गुरु ने हमको अनुग्रह करके शुद्धात्मा का उपदेश दिया (है) आहाहा ! वहाँ गुरु को लिया आहाहा ! हमको हमारे गुरु ने अनुग्रह मेहरबानी करके... हम पात्र थे इसलिये (उपदेश) दिया - ऐसा नहीं लिया, उनकी कृपा से हमें शुद्धात्मा का उपदेश मिला (है)। आहाहा ! उस वैभव से मैं कहूँगा, वहाँ - ऐसा कहेंगे; यहाँ तो अभी शुरूआत करते हैं न ? (बहुत माल निकाला साहब आपने) है कि नहीं, इसमें पण्डितजी ? दो पण्डित बैठे हैं सामने,

जिज्ञासा लेकर बैठे हैं, आखिर वहाँ से आये हैं न ? आहाहा !

अन्यवादियों के आगम की तरह अल्पज्ञानियों की कल्पना मात्र नहीं। आहा ! इसके अलावा दूसरा जो कहा हुआ है... आहाहाहा ! कठिन लगे ! दूसरों को दुःख लगे बापा ! तुम भी भगवान हो भाई !

अन्यवादियों के आगम की भांति अल्पज्ञ की कल्पना (नही)... उन्होंने तो कल्पना से आगम रचा है... देखा नहीं, जाना नहीं जगत का स्वरूप, सर्वपदार्थों का स्वरूप जाना नहीं, जाने बिना कल्पना से शास्त्र बनाये हैं, वह प्रमाणभूत नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है।

दिगम्बर संतो ! राग से मर गए हैं। आहाहा ! अरे ! अकेली निर्मान दशासे कहते हैं मैं भगवान के पास से सुना हुआ कहूँगा और निकटवर्ती गणधरों... गणधरों के निकटवर्ती वर्तनवाले (श्रुतकेवली आदि) उनके द्वारा कहा हुआ कहूँगा। परंतु प्रभु तुम यहाँ हो, वहाँ तो गणधर और भगवान यहाँ नहीं थे न ? सुनो-सुनो कुन्दकुन्दाचार्य तो (गये) थे परंतु अमृतचन्द्राचार्य टीकाकार कहते हैं, मैं इस प्रकार कहूँगा। पण्डितजी ! (श्रोता :- कानजी स्वामी भी कहते हैं कि मैं भी कहता हूँ) आहाहा !

अमृतचन्द्राचार्य तो नहीं गये थे। गये थे, गये थे प्रभु सुनो तुम। आहाहाहा ! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो वहाँ गये थे सर्वबात उनकी सच्ची, अब उसमें शंका करते लोग, कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे उसका आधार क्या है? ऐसी शंका ! अरे प्रभु - ऐसा न कहो भाई, हित के पंथ में ऐसी शंका न हो प्रभु ! आहाहा ! बाहर की बड़ाई जगत को मार डालेगी बापा। आहाहा ! यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि कल्पना से आगम बनाया - ऐसा कहके, सभीको रखा है। दिगम्बर सिद्धांत सिवाय अन्य सभी ने कल्पना से बनाये (रचे) हैं, यह (दिगम्बरग्रंथ) अप्रमाण हों - ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं इसलिये (अन्य जैसा) अप्रमाण हो, वह इसमें नहीं। आहाहा ! (-ऐसा वह लोग कहते हैं) विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं.८ गाथा-१ ता. १५-६-७८ गुरुवार जेठ सुद-९ सं. २५०४

समयसार पहली गाथा का भावार्थ है - गाथा का अर्थ हो चुका है `**गाथा सूत्र में आचार्यने वक्ष्यामि कहा है**' वोच्छामि कहा है न ! वोच्छामि का अर्थ वक्ष्यामि किया हैं। **उसका अर्थ टीकाकार ने वच (परिभाषणे) धातु से परिभाषण किया हैं। उसका आशय इस प्रकार सूचित होता है कि चौदह पूर्व में ज्ञान प्रवाद नामका पांचमें पूर्व में बारह वस्तु अधिकार हैं उसमें एक एक के बीस-बीस प्राभृत अधिकार हैं। उसमें दसवें वस्तु (अधिकारमें) समय नाम का प्राभृत है। उसके मूल सूत्रों के शब्द का ज्ञान तो पहले बड़े आचार्यों को था, एवं उसके अर्थ का ज्ञान, शब्दों का नहीं, पदार्थों का ज्ञान, अर्थों का ज्ञान आचायों की परिपाटी अनुसार श्री कुन्दकुन्दाचार्य को भी था।** अर्थों का हो ! सूत्र शब्दों का नहीं, मूल शब्द नहीं, अर्थों का ज्ञान था। जो शब्द थे वह उस समय नहीं थे। आहाहा ! उसके अर्थ का ज्ञान आचार्यों की परिपाटी अनुसार श्री कुन्दकुन्दाचार्य को भी था। उन्हें भी था इसका अर्थ यह कि (अन्य) आचार्यों को तो था एवं कुन्दकुन्दाचार्य को भी था।

उन्होंने समयप्राभृत का परिभाषण किया। परिभाषा सूत्र बांधा। अर्थात ? सूत्र की दश जातियाँ कहने में आती हैं, उसमें एक परिभाषा जाति भी है। अर्थात ? परिभाषा अर्थात ? **अधिकार को यथा-स्थान में अर्थ द्वारा सूचन करते हैं,** शब्द की बात अभी यहाँ नहीं। शब्द तो थे ही नहीं अर्थ (पदार्थ) के द्वारा ज्ञान होता था। अर्थ को बताते, (हैं) - ऐसा कहना है। यथा-स्थान में अधिकार को जहाँ चाहिए वहाँ उसके अर्थ द्वारा दिखलाये वह परिभाषा कहलाती है। समझ में आता है ? मूल सूत्र के शब्दों का ज्ञान तो नहीं था, कुन्दकुन्दाचार्य को, उसके अर्थ (पदार्थ) का ज्ञान था और उस अर्थ को यथास्थान पर लिखना अर्थात उसको परिभाषा कहा... `वोच्छामि' यथास्थान पर अर्थ को कहेंगे, जिस जगह जिसकी जरूरत है, उस स्थान में उन सूत्रों का इसप्रकार अर्थ आयेगा। आहाहा !

कुन्दकुन्दाचार्य समयप्राभृत का परिभाषण करते हैं, अर्थात समयप्राभृत के अर्थ को ही, उसके अर्थ को यथा-स्थान पर बतानेवाला परिभाषण सूत्र रचते है। है परिभाषा सूत्र, यहाँ यह भी इसी अर्थ को रचते हैं। मूलभाषा तो है नहीं इसलिये उसके अर्थ को यहाँ सूचित करते हैं।

`आचार्य ने मंगल के लिये सिद्धों को नमस्कार किया है' संसारी को शुद्धात्मा साध्य है। यहाँ तो संसारी को शुद्धात्मा साध्य है यह बात ली है, ऐसे जीव लिए

हैं। यहाँ जिसे आत्मा शुद्ध साध्य है ऐसे संसारी जीवों को यहाँ लिया है। जिसे शुद्धात्मा साध्य नहीं उसकी यहाँ बात नहीं। आहाहा ! संसारी को शुद्धात्मा साध्य है, **`और सिद्ध साक्षात शुद्धात्मा हैं'**, सिद्धपरमात्मा साक्षात शुद्धात्मा हैं। देखो यहाँ तो - ऐसा लिया, अन्यथा सिद्ध आत्मा यह क्षायकभाव है, परंतु यह शुद्धात्मा है (साक्षात अर्थात पर्याय है) पर्याय सिद्धात्मा है, परंतु पर्याय शुद्ध है। जैसा कारण समयसार त्रिकाल परम स्वभाव भाव अमर्यादितस्वरूप वस्तु, जिसे कर्म की उपस्थिति रूप निमित्त की अपेक्षा नहीं, और निमित्त के अभाव की भी अपेक्षा नहीं - ऐसा जो परम स्वभाव ज्ञायक भाव, और जिसे कारण-समयसार कहकर, उससे उत्पन्न हुआ केवलज्ञान, सिद्ध आत्मा इसे कार्यसमयसार कहा है। और कारण-समयसार तथा कार्य-समयसार दोनों में फर्क नहीं - ऐसा नियमसार में कहा है। यहाँ तो भाई ! यथास्थान पर जो हो वह आये, एक अक्षर पलटे तो पूरा पलट जाये। ***और नियमसार में संसारी को भी सिद्ध जैसा कहा है, अशुद्ध पर्याय निकालकर (गौण करके), उसका स्वभाव है वह सिद्ध स्वरूप ही है। पर्याय में सिद्ध जैसा स्वभाव है - ऐसा नहीं। परंतु वस्तु प्रत्येक सिद्ध स्वरूप ही है।*** इसलिए उसकी पर्याय में सिद्धपर्याय स्वरूप... सिद्ध स्वरूपे है, इसलिये पर्याय में सिद्धपद प्राप्त होता है। प्राप्त की प्राप्ति है। आहाहा ! थोड़े शब्दों में भी कितना भरा है।

देखा ! सिद्ध (अर्थात्) साक्षात शुद्धात्मा ? इसलिये उन्हें नमस्कार किया। ***एक तरफ सिद्धों को भी क्षायक भाव कहकर वह जीव (में) नहीं - ऐसा नियमसारमें कहा है। क्षायकभाव, क्षयोपशम भाव, उपशमभाव, उदयभाव (चारों भाव) वस्तु में नहीं, त्रिकाली में कहाँ है ? वह तो पर्याय है। आहाहा ! एक तरफ यहाँ कहते हैं कि सिद्ध साक्षात शुद्धात्मा है। वह पर्याय की अपेक्षा से क्षायकभाव से (है) आहाहा !*** वीतराग मार्ग बहुत गम्भीर !! यह सिद्ध आत्मा साक्षात शुद्धात्मा है। जिसे क्षायक भाव कहा और नियमसार में जीव में भी नहीं - ऐसा कहा है। इसप्रकार यह पर्याय (जीव में) नहीं परंतु पर्याय जो है वह तो साक्षात शुद्धस्वरूप, क्षायकभाव, स्वभावभाव, ***केवलज्ञान, केवलदर्शन को स्वभाव कहा है। तीन ज्ञान और तीन दर्शन को विभाव कहा है, दूसरी जगह इन चारों ज्ञान को विभाव कहा है, किस अपेक्षा से ? कि त्रिकाली स्वभाव नहीं तथा कर्म के अभाव की अपेक्षा केवलज्ञान में आती है, ऐसी क्षायक दशा, इस अपेक्षा से उसे विभाव कहा है। पण्डितजी ! केवलज्ञान को विभाव, यहाँ साक्षात शुद्धात्मा (कहा है), कितनी अपेक्षाएँ है। आहाहा !***

`इसलिये इसे नमस्कार करना उचित है'। किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया ? उसकी चर्चा टीकाकार ने मंगलाचरण में की है, ऊपर आ गया

है, वह यहाँ भी जानना। सभी गुणों से उसे बताया है अन्य मती एक नाम में विवाद करते हीं उसका व्यच्छेद करते हैं। उन सिद्धों को परमात्मा कहते हैं अरहंत कहतें हैं, सिद्ध आत्मा कहते हैं, पुण्यात्मा कहते हैं, अनेक प्रकार से जो उसमें लागू पड़ता है उस अपेक्षा कहते हैं। आहाहा !

`सिद्धों को' `सर्व' - ऐसा विशेषण दिया है। आया था न ? वंदित्तु सव्वसिद्धे पहली गाथा में, सर्व सिद्धों को नमस्कार। इसलिये वह सिद्ध अनंत हैं यह अभिप्राय बताया, एक सिद्ध नहीं है, सिद्ध अनंत हैं। जब पूछो तब सिद्ध अनंत ही हैं, जब कि वर्तमान तो भगवान कुन्दकुन्दआचार्य के समय भी अनंत सिद्ध तो थे ही, परंतु ***तीनों कालों में किसी भी समय अनंत सिद्ध न हों और दो चार संख्यात कि असंख्यात सिद्ध थे - ऐसा है ही नहीं, अनंत सिद्ध हैं।*** आहाहाहा ! बस ! उन अनंत में संख्या मिलती जाय तो भी अनंत के अनंत ही, फिर भी निगोद के एक शरीर के अनंतवें भाग। एक राई जितना टुकड़ा लें, लहसन के प्याजके, उसमें असंख्य तो शरीर हैं और एक शरीर (जीवों की संख्या) के अनंतवे भाग सिद्ध हुये और जितने सिद्ध होंगे (वह अनंतवें भाग प्रमाण कहलायेंगे) किसी दिन असंख्यवे भाग में सिद्ध होंगे - ऐसा बनेगा नहीं। आहाहा ! अनंतकाल बीत गया, और अनंतकाल बीतेगा, भविष्य भविष्य भविष्य अनंत अनंत अनंत तो भी एक शरीर के जीवोंके वें अनंतभाग जितने सिद्ध रहेंगे। भविष्य पूरा किस दिन होगा ? आहाहा ! वस्तु की कोई स्थिति ऐसी है, क्षेत्र पूरा कहाँ होगा ? काल पूरा कहाँ होगा ? काल की शुरूआत कहाँ से होती है ? द्रव्य की पहली पर्याय कौन सी ? द्रव्य की आखरी पर्याय कौन सी ? आहाहाहाहा ! गजब स्वभाव है। पहली किस दिन थी ? द्रव्य अनादि का है और पर्याय अनादि है। इसप्रकार आखरी पर्याय किस दिन ? द्रव्य भी अनंत काल से है और पर्याय भी, इसी ना इसीप्रकार अनंत काल से है। आहाहा !

गहन विषय जिनेश्वर देव का, तत्त्व बहुत गहन और इसके सिवाय अन्य कहीं है नहीं। दूसरी जगह सब कल्पनाओं से बात की है, परंतु इसे गहरे उतरने का समय नहीं मिले, जैन के समुदाय में जन्मे, उसे यह व्रत करना और उपवास करना, दया पालना और दान करना, बस ! इसमें रूक गये बेचारे। आहाहा ! यह तो राग की क्रियाएँ हैं। आहाहा ! यहाँ कहते हैं आत्मा में शुद्ध साधक पर्याय प्रगट करके सिद्ध अनंत हो गये हैं। आहाहा ! सिद्ध स्वरूप तो थे ही परंतु पर्याय में साधक रूप से शुद्धि को प्रगट करके पर्याय में अनंत सिद्ध हुये। आहाहा ! अनंत सिद्धों की स्वीकृति की, शुद्धात्मा के साधन से अनंत हुये और अनंत सिद्ध हुये उनकी शुद्धता पूरी हुयी, ऐसे अनंत सिद्ध हैं। आहाहा !

`और शुद्धात्मा एक ही है - ऐसा कहनेवाले अन्यमतियों का निराकरण किया। ' सर्वव्यापी एक ही आत्मा है। आहाहा ! अभी वेदान्ती आये थे व्याख्यान सुनने निन्यानवे की साल में कांप में धांग्रधा के थे। एक, एक, एक, किया करते थे, एक, एक, एक- ऐसा किया करते थे, धांग्रधा के थे। सम्वत् २०९९ की बात है। अरे भाई ! एक है और एक नहीं - ऐसा निर्णय किसने किया ? (पर्याय ने) वह दो हो गये। निर्णय करनेवाली पर्याय और निर्णय किया द्रव्य का, तो दो हो गये। द्रव्य और पर्याय दो हो गये, तब द्वैत हो गया, परंतु यह वस्तु वीतराग के अलावा किसी ने जानी नहीं। इसलिये (सभी) कल्पना से बातें करते हैं, यह तो सर्वज्ञ... आहाहाहा ! जिसके क्षेत्र का अंत नहीं (- ऐसा आकाश) यह क्या ? क्या कहते हैं ? उसके प्रदेश जितने हैं उससे (भी) अनंत गुणे गुण हैं (एक जीव में) यह क्या कहते हैं !! एक द्रव्य में अनंत गुणे गुण इसमें हैं, उसका अंत नहीं। अंतिम कौन ? आकाश का प्रदेश, दशा, पर्याय अथवा प्रदेश - ऐसा है नहीं। उससे अनंत गुने आत्मा में गुण, संख्या अपेक्षा अनंत, अनंत का अंत नहीं। इतने सभी गुण, ऐसे अनंत गुणों के स्वरूप को साधकर अनंता सिद्ध हो गये। एक ही शुद्धात्मा है। - ऐसा कहनेवालों का निषेध किया है।

फिर, `श्रुतकेवली शब्द के अर्थ में' श्रुतकेवली (लिखा) था न ? `वोच्छामि समय पाहुडमिड़मो श्रुतकेवली भणियं। पाठ में तो श्रुतकेवली भणीयं इतना है, फिर भी इसमें से दो (अर्थ) निकालना है (दो प्रकार से कहना है) हमारे (यहाँ) - ऐसा कहते हैं। `श्रुत तो प्रवाहरूप अनादि निधन प्रवाह आगम, श्रुत केवली और श्रुत केवली के दो अर्थ भिन्न किये श्रुतकेवली - ऐसा नहीं... श्रुत और केवली। आहाहा ! श्रुत तो अनादि अनंत अनिधन अर्थात अनंत प्रवाह रूप - ऐसा का - ऐसा अनादि से प्रवाहरूप (है) आहाहा ! किस दिन आगम नहीं था ? संसार में जगत में किस दिन आगम नहीं था ? आहाहा ! किस समय सिद्ध नहीं थे ? किस दिन केवलज्ञानी मनुष्यरूप में नहीं थे ? हैं ? आहाहाहा ! इसीप्रकार आगम किस दिन नहीं था अनंत काल में ? आहाहा ! प्रवाहरूप में आगम अनादि से है। आहाहा... श्रुत अनादि अनंत, अनादि अर्थात `अन' नहीं आदि और अनिधन अर्थात अंत नहीं, जिसकी आदि नही अंत नही - ऐसा प्रवाहरूप आगम आहाहा ! भूतकाल में आगम (नहीं) हमने पहले (था) कहा, पहला (आगम) - ऐसा नहीं और भविष्य में अब आगम पूरा हो गया - ऐसा भी नहीं। आहाहा ! अनादि अनंत प्रवाह रूप श्रुतज्ञान चला ही आता है। आहाहा ! आगम अनादि अनंत प्रवाहरूप (है)।

`केवली' शब्द से सर्वज्ञ और परमागम के जाननेवाले श्रुतकेवली कहे। केवली

शब्द से दो (अर्थ) निकाले। उसमें श्रुत अकेला श्रुत-परमागम बस, केवली शब्द से सर्वज्ञ भगवान। आहाहाहा ! कब नहीं थे ? तीनों कालों में तीनों कालों को जाननेवाले की उपस्थिति कब नहीं थी ? आहाहा ! अगम-अगम की (अटपटी) (सदा रहती है) की बातें है सभी। वस्तु ही ऐसी है आहाहा ! तुममें अनंतागुण है वह किस दिन नहीं थे ? और कब उनका अंत आयेगा ? अर्थात गुण पूरे हो जायेंगे भविष्य में ? आहाहा ! उनकी पर्याय किस दिन पूरी हो जायेगी ?

अकेला आत्मा... स्वभाव की बातें है। आहाहा ! केवली शब्द से सर्वज्ञ और परमागम के जाननेवाले दोनों को लिया। नियमसार में तो दोनों शब्द अलग-अलग हैं। केवली श्रुतकेवली भणिदं - ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। इसी भाव को यहाँ लिया है। कहने का आशय भी यह है। श्रुत भी है और केवली भी, दोनों हैं। सर्वज्ञ और श्रुतकेवली, श्रुत है द्रव्य अनादि अनंत आगम की वाणी उसकी भी शुरूआत नहीं उसका अंत भी नहीं। और केवली की शुरूआत भी नहीं और केवली का अंत भी नहीं। ऐसे परमागम को जाननेवाले गणधर, श्रुतकेवलियों... आहाहा ! उनकी भी आदि नहीं उनका भी अंत नहीं। आहाहा !

'उनमें से समयप्राभृत की उत्पत्ति कही' सर्वज्ञ और श्रुतकेवली, आगम अनादि अनंत, केवली श्रुतकेवली अनादि अनंत। यह ***अनादि अनंत केवली और श्रुत केवली से समयप्राभृत की उत्पत्ती हुयी। प्रारंभ हुआ - ऐसा कुछ नहीं।*** आहाहा ! यह समय प्राभृत की उत्पत्ति कही है। वह तो ग्रंथ की प्रमाणता बतलाई। ग्रंथ की यर्थाथता, प्रमाणता, यह ग्रंथ प्रमाण कैसे है ? कि इस कारण प्रमाण है। लोग कहते हैं कि यह प्रमाण है ? कि यह प्रमाण है ? कि यह सच्चां है ? अरे प्रभु ऐसी बात है ही नहीं। आहाहा ! ***'यह ग्रंथ प्रमाणता को प्राप्त हुआ है', क्योंकि श्रुत, द्रव्यश्रुत भी अनादिअनंत है। कहनेवाले भावश्रुतकेवली भी अनादि अनंत हैं और सर्वज्ञ भी अनादि अनंत है तथा उनके द्वारा कहा हुआ (आगम) भी अनादि अनंत है।*** सर्वज्ञने पहले यह कहा, अथवा श्रुतकेवलीने पहले यह कहा - ऐसा नहीं है। आहाहा ! कितनी गंभीरता।

यह तो वस्तु की स्थिति है, उसी का वर्णन है। इसमें - ऐसा होगा कि - ऐसा होगा - ऐसा है ही नहीं। - ऐसा ही है। आहाहा ! इसप्रकार ग्रंथ की प्रमाणता अर्थात सत्यता बतलाई, यह ग्रंथ सत्य है - ऐसा उसमें सिद्ध कर दिया और अपनी बुद्धि से कल्पित कहने का निषेध किया है। आहाहा ! हम अपनी बुद्धि की कल्पना से कहते हैं - ऐसा नहीं। यह तो श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ श्रुत, और श्रुत अनादि का है इसप्रकार कहलाता है। आहाहा ! (तथा) 'सिद्धोवर्णः समाम्नाय' नहीं

आता ? व्याकरणमें आता है और मोक्षमार्ग प्रकाशक में आता है कि `सिद्धो वर्ण'... भाषा है यह अनादि की सिद्ध है यह किसी ने बनाई है - ऐसा नहीं।

यह भाषा - (सिद्धोवर्ण.....) छोटी उम्र में पढ़ते थे, पहली (कक्षा) में हमें सिखाया, धूलीनिशाल (अंगुली से धूल में लिखकर सिखानेवाला स्कूल) में जाते थे। लिखनेवाले (अक्षर) धूल में लिखाते थे, तब पहला शब्द यह सिखाया था। `सिद्धो वर्णः समाम्नायः', वहाँ कहाँ शब्द के अर्थ का ज्ञान था ? एक नथ्थुमास्टर थे, एक साधारण व्यक्ति थे, धूली निशाल में... उनको वेतन थोड़ा थोड़ा देते थे। लड़कों (के माता-पिता) शादी हो या मृत्यभोज, तब देते थे। सीधा (आटा आदि) थोड़ा-थोड़ा देते चार-चार पैसा, जिससे उनकी आजीविका हो जाती थी, उसमें, उन्होंने पहले यह लिखाया था `सिद्धोवर्णाः समाम्नायः'।

अपने मोक्षमार्ग प्रकाशक में है। यहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक है ? ग्रंथ की प्रमाणता - ऐसा शब्द है। उसमें यह लिखा है। `अकार' आदि उच्चार तो अनादिनिधन है, यह कहीं किसी ने नया बनाया नहीं। उनका आकार लिखना स्वयं की इच्छा अनुसार परंतु यह भी आकार उनके अनुसार होते हैं। परंतु जो अक्षर बोलने में आते है, वे तो सर्वत्र-सर्वदा इसीप्रकार प्रवर्तते हैं। कहा है न कि, `सिद्धो वर्ण समाम्नाय' यह वर्ण शब्द है, उच्चार का संप्रदाय अक्षर के उच्चार की पद्धति स्वयं सिद्ध है। आहाहा ! मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। आहा !

और अक्षरों से उत्पन्न हुआ सत्य अर्थ का प्रकाशक पदों का समूह उसका नाम तो श्रुत है वह भी अनादि अनंत है। आहा ! मोक्षमार्ग प्रकाशक में लिखा है, अक्षर अनादि है, सर्वज्ञ अनादि है श्रुतकेवली अनादि है। आहाहा ! इसप्रकार प्रमाणित होनेपर भी फिर इनका सच्चा या इनका सच्चा ऐसी शंका करना ?। आहाहा ! महाप्रमाणता को प्राप्त हुआ है। ग्रंथ की प्रमाणता बताई, और अपनी बुद्धि से कल्पित कहने का निषेध किया। यह तो अनादि से श्रुतकेवली केवलियों और अक्षरों से चली आती है। आहाहा ! नियमसार में भी - ऐसा कहा है और टीकाकार (कहते) टीका करनेवाले हम कौन ? पद्मप्रभमलधारी देव - ऐसा कहते हैं। यह टीका तो अनादि संतों से चली आती है। इस टीका का भाव संतो से चला आता है, नियमसार में है। अभी हमारा मन परमागम के सार की पुष्टरुचि से पुनः पुनः अत्यंत प्रेरित होता है। विकल्प उठते ही रहते हैं कि इसका - ऐसा हो, इसका - ऐसा हो, इस रुचि से प्रेरित होने के कारण तात्पर्यवृत्ति नाम की यह टीका रचते हैं। तथा गुणों के धरनेवाले गणधरों से रची हुयी और श्रुतधारकों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त की हुई, इस परमागम के अर्थ सूत्र समूहों का कथन करने के लिये हम मंद बुद्धि कौन ?

यह तो भाव चला आता है। टीका का भाव नियमसार, यह भी परम्परा से मुनियों से चला आता है। मैं (कुछ) नया करता हूँ - ऐसा नहीं। पाठ है हो - ऐसा ! आहा !

गुणधर गणधररचितं श्रुतधरसन्तानरस्तु सुअक्तम्।
परमागमार्थसार्थं वक्तुममुं के वयं मन्दाः।।

आहाहा ! यह भावश्रुतज्ञान यह भाव-केवलज्ञान यह वाणी अकार आदि के अक्षर अनादि हैं। आहाहाहा !

एक भाव को भी बराबर जाने तो सभी भाव को यथार्थ जाने। जयसेनाचार्य की टीका में है। एक भाव जाने और बराबर समझे उसे सभी भावों का ज्ञान यथार्थ हो जाता है। आहाहा ! कारण कि एक भाव गंभीर... गंभीर कथन करनेवाला और वाणी वह अनादि की। आहाहा ! उसके एक भाव को भी बराबर समझे तो सभी भावों का ज्ञान यथार्थ हो जाये। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं... अपनी बुद्धि से नहीं किया। अन्यवादी अल्पज्ञानी अपनी बुद्धि से पदार्थ का स्वरूप चाहे जिसप्रकार कह कर विवाद करें उनका असत्यार्थपना बताया, यह सभी झूठा है। आहाहा ! यह वाणी परमात्मा की कही हुयी, श्रुतकेवली की कही हुयी और वाणी वाणी के रूप में चला आती ही है। आहाहा !

अज्ञानी अपनी कल्पना से बात करे, वह मान्य नहीं। शास्त्र कल्पना से रचे और (जो) भाव अपने को ठीक लगे इस प्रकार रचे। उसमें यह वस्तु मान्य नहीं। सूक्ष्मबात है।

इस ग्रंथ का अभिधेय अर्थात क्या कहना है वह चीज। संबंध और प्रयोजन, वाणी का संबंध वाचक के साथ और `प्रयोजन' आत्मा को प्रगट करना। आत्मा को, ये शुद्धात्मा का स्वरूप वह अभिधेय है। देखा ? ध्येय यह है, शुद्धात्मा यह ध्येय कहलाता है। अतः शुद्धात्मा ध्येय है, आहाहाहा ! षट्द्रव्य (छह द्रव्य) ध्येय हैं - ऐसा नहीं कहा यहाँ। षट्द्रव्य का ज्ञान तो एक समय की पर्याय में आ जाता है जीव की। तथा यहाँ तो शुद्धात्मा वह अभिधेय है। आहाहा ! शुद्धात्मा का स्वरूप वह अभिधेय है, ध्येय। शुद्धवस्तु वह ध्येय, ध्रुव वह ध्येय है ध्रुव को ध्येय कहने का पूरा आशय है। आहाहा !

उसके वाचक यह शब्द (है), इस ग्रंथ के शब्द हैं वह वाचक हैं, उनका और शुद्धात्मा का वाच्य-वाचक संबंध है। यह संबंध है। आहाहा ! वाचक शब्द और वाच्य आत्मा शुद्ध ध्येय यह वाच्य-वाचक का संबंध है। आहाहा ! और प्रयोजन, ध्येय जो शुद्धात्मा था वही कहने का प्रयोजन है। कहने का आशय है। प्रयोजन तो शुद्धात्मा के स्वरूप की प्राप्ति होना वह प्रयोजन है। लो ! शुद्ध भगवान आत्मा के स्वरूपरूप

पर्याय की प्राप्ति होना प्रयोजन है।

कहो एक गाथा में कितना भरा ?

अभिधेय अर्थात क्या कहना है कि शुद्धात्मा।

शब्द वाचक हैं, वाचक और वाच्य में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, जैसे शक्कर शब्द और शक्कर पदार्थ, शक्कर पदार्थ है अभिधेय है वह अभिधेय है, शक्कर शब्द वाचक है, दोनों का निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। वाचक, वाच्य को बतलाता है। आहाहा ! - ऐसा संबंध है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध यह पहली गाथा हो गई।

गाथा - २

तत्र तावत्समय एवाभिधीयते -

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं।।२।।

जीवः चरित्रदर्शनज्ञानस्थितः तं हि स्वसमयं जानीहि।
पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं च तं जानीहि परसमयम्।।२।।

प्रथम गाथा में समय प्राभृत कहने की प्रतिज्ञा की है। इसलिये यह आकांक्षा होती है कि समय क्या है ? इसलिये पहले उस समय को ही कहते हैं :-

जीव चरितदर्शनज्ञानस्थित, स्वसमय निश्चय जानना;
स्थित कर्मपुद्गलके प्रदेशों, परसमय जीव जानना।।२।।

गाथार्थ :- हे भव्य ! [जीवः] जो जीव [चरित्रदर्शनज्ञानस्थितः] दर्शन, ज्ञान चारित्र में स्थित हो रहा है [तं] उसे [हि] निश्चय से (वास्तव में) [स्वसमयं] स्वसमय [जानीहि] जानो [च] और जो जीव [पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं] पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित है [तं] उसे [परसमयं] परसमय [जानीहि] जानो।

टीका :- `समय' शब्द का अर्थ इस प्रकार है :- `सम्' उपसर्ग है, जिसका अर्थ `एकपना' है, और `अय् गतौ' धातु है, जिसका अर्थ गमन और ज्ञान भी है; इसलिये एक साथ ही (युगपद) जानना और परिणमन करना,-यह दोनों क्रियायें एकत्वपूर्वक करे वह समय है। यह जीव नामक पदार्थ एकत्वपूर्वक एक ही समय में परिणमन भी करता है और जानता भी है। इसलिये वह समय है। यह जीवपदार्थ सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप अनुभूति लक्षणयुक्त सत्ता सहित है। (इस विशेषण से जीव की सत्ता को न माननेवाले नास्तिकवादियों का मत खण्डन हो गया; तथा पुरुष को-जीव को अपरिणामी माननेवाले सांख्यवादियों का मत परिणमनस्वभाव कहने से खण्डित हो गया। नैयायिक और वैशेषिक सत्ता को नित्य ही मानते हैं, और बौद्ध क्षणिक ही मानते हैं; उनका निराकरण, सत्ता को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप कहने से हो गया।) और जीव चैतन्यस्वरूपता से नित्य

उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शनज्ञानज्योतिस्वरूप है; (क्योंकि चैतन्य का परिणमन दर्शनज्ञानस्वरूप है)। (इस विशेषण से चैतन्य को ज्ञानाकारस्वरूप न माननेवाले सांख्यमतवालों का निराकरण हो गया।) और वह जीव, अनंत धर्मों में रहनेवाला जो एकधर्मीपना है उसके कारण जिसे द्रव्यत्व प्रगट है - ऐसा है; (क्योंकि अनंत धर्मों की एकता द्रव्यत्व है)। (इस विशेषण से, वस्तु को धर्मों से रहित माननेवाले बौद्धमतियों का निषेध होगया।) और वह क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से जिसने गुणपर्यायों को अंगीकार किया है - ऐसा है। (पर्याय क्रमवर्ती होती हैं और गुण सहवर्ती होता है; सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं।) (इस विशेषण से, पुरुष को निर्गुण माननेवाले सांख्यमतवालों का निरसन हो गया।) और वह, अपने और परद्रव्यों के आकारों को प्रकाशित करने की सामर्थ्य होने से जिसने समस्तरूप को प्रकाशनेवाली एकरूपता प्राप्त की है - ऐसा है, (अर्थात जिसमें अनेक वस्तुओं के आकार प्रतिभासित होते हैं, ऐसे एक ज्ञान के आकाररूप है)। इस विशेषण से, ज्ञान अपने को ही जानता है पर को नहीं, - इसप्रकार एकाकार को ही माननेवाले का, तथा अपने को नहीं जानता किन्तु पर को जानता है, इसप्रकार अनेकाकार को ही माननेवाले का व्यवच्छेद हो गया और वह, अन्य द्रव्यों के जो विशिष्ट गुण-अवगाहना-गति-स्थिति-वर्तनाहेतुत्व और रूपित्व हैं, उनके अभाव के कारण और असाधारण चैतन्यस्वरूपतास्वभाव के सद्भाव के कारण आकाश, धर्म, अधर्म, काल और पुद्गल - इन पाँच द्रव्यों से भिन्न है। (इस विशेषण से एक ब्रह्मवस्तु को ही माननेवालेका खण्डन हो गया।) और वह, अनंत अन्य द्रव्यों के साथ अत्यंत एकक्षेत्रावगाहरूप होने पर भी, अपने स्वरूप से न छूटने से टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वभावरूप है। (इस विशेषण से वस्तु-स्वभाव का नियम बताया है।) - ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है।

जब यह (जीव), सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति का उदय होने से, सर्व परद्रव्यों से छूटकर दर्शन-ज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप (अस्तित्वरूप) आत्मतत्त्व के साथ एकत्वरूप में लीन होकर प्रवृत्ति करता है तब दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित होने से अपने स्वरूप को एकत्वरूप से एक ही समय में जानता तथा परिणमता हुआ वह `स्वसमय' है, इसप्रकार प्रतीत किया जाता है; किन्तु जब वह, अनादि अविद्यारूपी केल के मूल की गाँठ की भाँति (पुष्ट हुआ) मोह, उसके उदयानुसार प्रवृत्ति की आधीनता से, दर्शनज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप आत्मतत्त्व से छूटकर परद्रव्य के निमित्त से उत्पन्न मोहरागद्वेषादि भावों में एकताभाव से लीन होकर प्रवृत्त होता है तब पुद्गलकर्म के (कार्माणस्कन्धरूप)

प्रदेशोंमें स्थित होने से युगपद् पर को एकत्वपूर्वक जानता और पररूप से एकत्वपूर्वक परिणमित होता हुआ `परसमय' है, इसप्रकार प्रतीति की जाती है। इसप्रकार जीव नामक पदार्थ की स्वसमय और परसमयरूप द्विविधता प्रगट होती है।

भावार्थ :- जीव नामक वस्तु को पदार्थ कहा है। `जीव' इसप्रकार अक्षरों का समूह `पद' है और उस पद से जो द्रव्यपर्यायरूप अनेकांतस्वरूपता निश्चित की जाये वह पदार्थ है। यह जीवपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सत्तास्वरूप है, दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है, अनंतधर्मस्वरूप द्रव्य है, द्रव्य होने से वस्तु है, गुणपर्यायवान है, उसका स्वपरप्रकाशक ज्ञान अनेकाकाररूप एक है, और वह (जीवपदार्थ) आकाशादि से भिन्न असाधारण चैतन्यगुणस्वरूप है, तथा अन्य द्रव्यों के साथ एक क्षेत्र में रहने पर भी अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता। - ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है। जब वह अपने स्वभाव में स्थित हो तब स्वसमय है, और परस्वभाव-रागद्वेषमोहरूप होकर रहे तब परसमय है। इसप्रकार जीव के द्विविधता आती है।

गाथा - २ पर प्रवचन

`प्रथम गाथा में समयप्राभृत कहने की प्रतिज्ञा की', सिद्धांत अर्थात् पदार्थ को कहने की प्रतिज्ञा की, वहाँ यह आकांक्षा हो - इच्छा हो कि `समय' अर्थात क्या ? `समय' किसे कहना ? तुम समयप्राभृत कहना चाहते हो... तो किसको समय कहना ? तुम क्या कहना चाहते हो ? समय अर्थात क्या ? आहा.....! अतः अब पहले समय को ही कहते हैं। समय किसे कहना उसकी व्याख्या दूसरी गाथा से शुरू करते हैं। आहाहा !'

`जीवो'** पहले यहाँ से लिया `जीवो' इधर से उठाया। **`जीवो'** वहाँ जीवः है न व्युत्सर्ग...? जीव को बताना हैं यहाँ ! और इसलिये ४७ शक्तियों में पहली शक्ति `जीवत्वशक्ति' कही है। वह यहाँ से ली है। जीव त्रिकाल जीवत्वशक्ति से विराजता है। भगवान आत्मा त्रिकाल अपनी जीवत्वशक्ति अर्थात गुण अर्थात अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद और अनंत बल इससे उस जीव का जीवन अनादि से है। **`जीवो'** - ऐसा उठाया। इसप्रकार संस्कृत में व्युत्सर्ग होगया **`जीवो' - ऐसा कहें तो जीवो जो जीव है उसप्रकार जिये, वह जीवत्वशक्ति कही है जिसप्रकार जीव वस्तु है। उस प्रकार जिये उसे जीव कहते हैं। आहाहाहा ! इस शरीर से... और इन्द्रियों से दशप्राणों से जिये वह जीव नहीं। आहाहा !

`जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो-जीवो दंसणणाण दंसण ठिदो-'** वहाँ **`जीवो' आया न

यहाँ **`ठिदो'** आया। **तं हि ससमयं जाण।** उसे स्वसमय जानो। आहाहाहा ! आदेश किया है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य **`जाण'** - ऐसा कहते हैं। `जाण' तो इसका अर्थ यह है कि अनजान को बतलाते हैं कि जानो। जो जानते नहीं, उसे कहते हैं कि `जान' आहाहा !

`पोग्गलकम्मदेसट्ठिदं' च तं जाण परसमयं।। आहाहा !

जीव चरित-दर्शन-ज्ञान स्थित स्वसमय निश्चय जानना..... इसप्रकार जिये-(मात्र) जीव इसप्रकार नहीं कहते हैं। परंतु दर्शन-ज्ञान-चारित्र से जीवे वह जीव है। तब उसने जीव जाना कहलाये। आहाहाहा ! क्या कहा ? जीव है यह अनंत-दर्शन-ज्ञान-आनंद और वीर्य से तो जीता है, त्रिकाल, परंतु इस जीव को इसप्रकार जिसने जाना, माना और अनुभव किया उसे स्वसमय कहा जाता है। आहाहा ! उसने आत्मा को जाना - ऐसा कहा जाता है।

पहले गाथार्थ लेते हैं। `हे भव्य ! इस प्रकार यह लिया है' `जाण' वास्तवमें है न..... ? `जाण' तो किसी को कहते हैं न.....। हे भव्य। आहाहा ! जीव दर्शन ज्ञान चारित्र में स्थित रहा है, स्थित हो रहा है, पर्याय में हो। आहाहा ! जीव त्रिकाल (जीवत्व) शक्ति से तो जी रहा है। परंतु इससे जी रहा है इसका ज्ञान जिसको होता है, उसकी श्रद्धा हो, स्थिर हो वह सच्चा जीव है। आहाहा ! चारित्र में स्थित हो रहा है है न ? उसे निश्चय से स्वसमय जानो। उसे वास्तविक आत्मा जानो। जिसे सम्यग्दर्शन है। (श्रोता :- ऐसा कहा कि साधु पद हो तो वास्तविक आत्मा हो ?) यह यहाँ साधु, कहलाते हैं न.....! साधु कहलाते हैं वह तीन बोलों से उठाया है ! कहनेवाले स्वयं साधु है न ! इसलिये छठवीं गाथा में प्रमत्त-अप्रमत्त का निषेध किया है न.....! (जब कि) स्वयं प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान में है। उसका निषेध करके, ज्ञायकभाव हूं - ऐसा कहा है। कहनेवाले स्वयं अपनी स्थिति को साथ में लेकर वर्णन कर रहे हैं। आहाहा !

तथा जीव अर्थात स्वसमय... अपने में आया है उसे यह कहते हैं कि, जो जीवस्वरूप भगवान, उसके सन्मुख होकर जो सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान, उसमें स्थिरता- ऐसा जीव जो स्वसमय में आया और स्वसमय को जाना और स्वसमयरूप हुआ - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहाहा !

गजब शैली है न !! समयसार अर्थात..... (श्रोताः- दिव्यध्वनि) आहाहा ! थोड़ा भी धीरे शांति से अंदर में विचार करके..... अरे ! पशु (घास) खाते है न पशु, फिर शांति से बैठकर अंतर में जुगाली करते है..... एक साथ पेट भर लेते (फिर जुगाली करते) इसप्रकार इसकी जुगाली करना चाहिए, अर्थात बार-बार उसका मंथन

होना चाहिए। आहाहा !

जीव, स्वसमय उसे कहते हैं कि जिसकी पर्याय में, जिसकी दशा में दशावान की प्रतीति हुयी है, उसकी दशा में दशावान का ज्ञान हुआ है, उसकी दशा में दशावान में ठहरा है। आहाहा ! `उसे स्वसमय जानों'... कुन्दकुन्दाचार्य आदेश देते हैं। (श्रोताः- पर्याय से तो जाने) जानो..... जानना ही है। आहाहा ! बापू ! - ऐसा रहने दो, संदेह नहीं करो, नहीं जान सकूंगा... रहने दो। मुझे यह कठिन लगता है (- ऐसा) रहने दो !! `है' उसे प्राप्त करना उसमें तुम्हें कठिन क्यों लगता हैं - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

भगवान (आत्मा) को परमाणु (को) अपना करना हो तो नहीं हो सके, अरे राग को कायम रखना हो तो नहीं कर सकते परंतु यह तो कर सकते हैं। आहाहा ! **`जीवो चरितदंसण णाणठिदो'** भाषा कैसी प्रयोग की है ! जीव में दर्शनज्ञान स्थित हुआ - ऐसा न लेकर, `जीव दर्शनज्ञानचारित्र में स्थित हुआ'... क्या कहा ? (श्रोता :- जीव ठहरा) क्योंकि ध्येय तो आत्मा है। उसे ध्येय बना करके जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, तो वह तो द्रव्य के आश्रय से हुआ है, और यहां तो कहते हैं कि जो जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ठहरे उसे स्वसमय कहते हैं, यहाँ ठहरो (- ऐसा कहते है) आहाहा !!

जीव जो अनादि से कर्म के प्रदेश अर्थात (वि) भाव - ऐसा विकार उसमें ठहरता है, यह तो अनादि से है। यह तो अजीव है। आहाहा ! परंतु जो जीव अपनी सम्पदाको पूरी सम्पदा को ज्ञान में जानकर..... प्रतीति करके और उसमें ठहरता है, जीव उसमें ठहरता है। आहाहा ! दर्शन-ज्ञान-चारित्र में जीव ठहरता है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीव के आश्रय से होते है - ऐसा न लेकर..... आहाहाहा ! यह जैसा राग में ठहरता था, अब वह स्वभाव में ठहरता है - ऐसा बताना है, आहाहा ! बहुत अल्प शब्द (में), कहा है। यह तो निवृत्ति का मार्ग है बापू ! आहाहा !

`स्वसमय जानो' जो भगवान प्रभु (निजात्मा) पूर्ण संपत्ति से भरा हुआ है, वह जीव स्वयं स्वयं को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ठहराता है। यहाँ जो अनादि से राग में विकार में ठहरता था, उसकी पहले बात न ली, उसकी बाद में लेंगें। पहले तो यहाँ शुरूआत करना है, और शुरूआत करनेवालों को कहना है, इसलिये इन्होंने यह बात पहले ली। पहले पद में यह लिया **`जीवो चरितदंसणणाण ठिदो'** फिर वह अनादि की बात करेंगे। आहाहा ! उसको निश्चय से अर्थात `ही' - वास्तव में / जो जीव अपनी निर्मल पर्याय में ठहरता है, जीव जीव में रहता है, द्रव्य में (रहता) - ऐसा नहीं, जीव जीवके द्रव्य में रहता है - ऐसा नहीं, द्रव्य तो ठहरा हुआ ही है,

परंतु यह जीवद्रव्य अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीव (में) स्थिर होता है, उसे स्वसमय अर्थात आत्मा जानो, वह आत्मा है, है शब्द इसमें ? आहाहा !

जीव, त्रिकाली जीव में रहता है - ऐसा नहीं, त्रिकाली तो रहा हुआ (ही) है। परंतु रहे हुये को जाना किसने ? रहा है वह अंदर है - ऐसा जाने बिना रहा है - ऐसा जाना किसने ? (श्रोताः- पर्याय ने) आहाहा ! परम स्वभावभाव भगवान आत्मा अपने में रहा है, परंतु रहा है - ऐसा जाना किसने ? रहा है वह तो रहा है (क्या) उसके ध्रुव ने जाना ? आहाहा ! जीव... त्रिकाल परमस्वभावभावरूप रहता है। - ऐसा जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसकी जिसने प्रतीति की- ऐसा जिसने पहचान कर प्रतीति की, यह है - ऐसा जान कर प्रतीति की (तब) यह आत्मा प्रतीति में आया ! यह आत्मा, आत्मद्रव्य में तो था। परंतु उसकी प्रतीति में आया यह। आहाहा ! `**दंसण**' (दर्शन) में आया। उसके ज्ञान में आया। आहाहा ! भगवान आत्मा पूर्णज्ञान से तो (ध्रुव) है परंतु `है' - ऐसा जाना किसने ? जाने बिना वह `है' यह माना किसने ? आहाहा ! रमणीकभाई ? - ऐसा सूक्ष्म है, आहाहा ! गजब बात है। एक एक गाथा और एक एक पद..... शिवपद की भनकार बजती है। आहाहा!

यह जीव है। अनंत अपरिमित गुणों का भण्डार, परंतु जिसने जाना (नहीं), और माना नहीं, उसको कहा है ? आहाहा ! कहा था न..... प्रश्न हुआ था न अभी यहाँ। वारिया हैं, एक त्रिभुवन भाई, उन्होंने प्रश्न किया था, कि प्रभु आप कारण परमात्मा कहते हो जीव को..... `कारणपरमात्मा' कारणजीव, कारणप्रभु... यदि कारण हो तो उसका कार्य आना चाहिए परंतु कार्य तो आता नहीं, कारण परमात्मा तो है आप कहते हो। राजकोट में प्रश्न हुआ था। इस काठियावाड़ में उनके पिताश्री वीरजीभाई को दिगंबर के शास्त्रों का अभ्यास पहले उन्हीं को था। इस काठियावाड़ में वीरजीभाई वकील थे। ९०-९१-९२ वर्ष में गुजर गये। उनके लड़के का प्रश्न था, कारण परमात्मा आप कहते हो प्रभु ! तो कारण है तो कार्य आना चाहिए न ? और कार्य तो आता नहीं !

कहा, किसको ? कारण परमात्मा है - ऐसा जिसने - ऐसा स्वीकार किया है उसे कार्य हुये बिना रहता नहीं। परंतु स्वीकार नहीं, वहाँ कार्य कहाँ से आये इसे ? उसकी दृष्टि में कारण परमात्मा है ? वह तो है ही नहीं। दृष्टि में तो पर्याय और राग हैं। उसे कारण में से कार्य कहाँ से आये ? इसमें समझ में आता है ? आहाहा !

कारण परमात्मा है... परंतु किसको ? **है** जिसने - ऐसा माना जाना, जिसने यह जाना-माना उसको है। अर्थात यह परिणमन हुआ ऐसी पर्याय हुयी। उसकी पर्याय में उसकी स्वीकृति हुई है, तब यहाँ पर्याय हुयी है। उसकी स्वीकृति बिना, उसका

कार्य आये ही नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग... इस त्रिकाली चीज की मान्यता में ज्ञान के ज्ञेय बिना यह बात आती ही नहीं। इस ज्ञान में वह ज्ञेय आया - ऐसा जाना तब ज्ञान आया। `इतना है' ऐसी प्रतीति की तब सम्यग्दर्शन में आत्मा इतना है - ऐसा माना। आहाहा ! यहाँ इन तीन बोलों से बात की है, स्वयं वास्तवमें मुनि हैं न !

`चरितंदंसणणाणं.....ठिदो'** - ऐसा लिया है उसमें भी पहला **`चरित' शब्द है वह तो पद की रचना के लिये है। पद्य है न यह..... और काव्य की रचना पद्य के लिये **`चरित'** पहले लिया। वैसे तो **`दंसणणाणचरित'** है। परंतु पाठ में - ऐसा आया है। **`चरितदंसणणाण ठिदो'** यह गद्य होने से पद्य की रचना में इसप्रकार आया है। अन्यथा वस्तु की स्थिति में तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में है न। आहाहा ! देखो ! अर्थ क्यों रखा है देखा ? पाठ तो **`चरितदंसणणाण'** स्थित है..... है ? गाथार्थ (में) अर्थ कैसा किया, दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित रहा है। वहाँ - ऐसा कहा है गाथार्थ देखो ! मूलगाथाओं का पहला शब्द है, टीका नहीं-टीका नहीं। आहाहा ! आहाहाहा ! ***यह पण्डित कहलाते जो कहने का आशय हो वही आशय निकाले और समझे यह.....कोरी व्याकरणवाले (पंडित) नहीं निकाल सकते।*** आहाहा ! आहाहा !

अरे ! भगवान एक बार सुनो तो सही, प्रभु तुम विरोध करते हो (और कहते हो) यह एकांत है, एकांत है परंतु बापू। भाई निश्चयनय का अर्थ है सम्यक् एकांत है। नय सम्यक्एकांत है। प्रमाण में अनेकांत है। आहाहा ! सम्यक् एकांत में जैसा जीव है वैसा उसने **`दंसण'** प्रतीति की। यह दर्शन में स्थित हुआ; दर्शन आत्मा के आश्रय से हुआ - ऐसा न कहकर.....दर्शन में आत्मा स्थिर हुआ। पर्याय में आत्मा इस निर्मलपर्याय में आत्मा आया, ध्रुव तो था। आहाहा ! समझ में आया ?

- ऐसा मार्ग है प्रभु ! बहुत अलग बात है भाई, इसकी एक एक गाथा एक एक शब्द ने गजब काम किया है आहाहा ! (श्रोता :- कहते हैं कि पर्याय छूटी नहीं, इधर आ गया !) पर्याय में जानने में आया तब उसे आत्मा कहने में आया, नहीं जानने में आया उन्हें आत्मा है कहाँ ? आहाहा ! घर में हीरा पड़ा है परंतु खबर नहीं, कि कोयला है कि हीरा ? आहाहा ! ऐसी वस्तु जो है वह है उतनी की उतनी, इतनी प्रतीति किये बिना **वह है** यह आया, किसे ? आहाहा ! विशेष कहेंगें.....

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ९ गाथा-२ ता. १६-६-७८ शुक्रवार जेठ सुद-१० सं.२५०४

समयसार दूसरी गाथा, पहले गाथार्थ चलता है।

हे भव्य जीव ! जो `जीव, चरित-दर्शन-ज्ञानस्थित'... यह तो पद्य की रचना के लिये चारित्र पहले आया है। वास्तव में तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित रहा है उसे निश्चय से स्वसमय जानो। यहाँ तो तीन बोल लिये है। दर्शन, ज्ञान, और चारित्र, हैं तो अनंत गुणों की पर्याय, दर्शन ज्ञान चारित्र के साथ निर्मल रूप हुयी है परंतु यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्ष का मार्ग (है) दुःख से मुक्त होने का, उसे मुख्यरूप से कहा है।

अर्थात कि दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप आत्मा अनंतगुण स्वरूप, यह अनंत अनंत गुणों की वर्तमान पर्यायरूप में व्यक्तरूप में स्थित हो, उसे यहाँ स्वसमय नाम आत्मा कहा है। आत्मा तो आत्मा है, परंतु जिसे उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र में आया (और) परिणमित हुआ आत्मा ध्रुव, उसे ख्याल में आया उससे आत्मा को स्वसमय कहा जाता है। आत्मा तो आत्मा ही है। परंतु यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र में... (स्थित हुआ वह आत्मा है) सूक्ष्मबात है भाई ! आहाहा !

वैसे आत्मा में गुण तो अनंत हैं। रात को कहा था, जिसप्रकार यह आकाश है, उसके यहाँ के प्रदेश से शुरू करें, यहाँ आकाश के प्रदेश से शुरूआत करें तो इसप्रकार कहीं अंत नहीं। अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत... इसप्रकार यहाँ से शुरूआत करके इसीप्रकार ले जायें तो अनंत-अनंत और दोनों का एकत्र करें तो भी अनंत...अनंत। यहाँ भी अनंत, यहाँ (भी) अनंत।

एक समय में एक श्रेणी के प्रदेश, ऐसी तो अनंती श्रेणी हैं। - ऐसा एक प्रदेश, एक प्रदेश की श्रेणी, जिसका आदि और अंत नहीं। ऐसी श्रेणी एक एक ऐसी अनंत श्रेणियाँ हैं। अब यहाँ तो - ऐसा कहना है, कि जो अनंत अनंत आकाश के प्रदेश जिसका अंत नहीं, उसका अन्तिम .... ? अंत क्या ? फिर क्या ? इसीप्रकार काल की भी आदि नहीं। क्या वर्तमान का अंत आता है (नहीं) ? अनादि अनंत, आदि नहीं फिर भी अंत आये ? भविष्य का अंत नहीं। परंतु शुरूआत यहाँ से कहलाये तो सादि अनंत कहलाये और समुच्चय कहें तो अनादि-अनंत कहलाये। आहाहा !

इसप्रकार आत्मा में और परमाणु में भी इतने ही गुण हैं, कि वह आकाश के प्रदेश से भी अनंतगुणे, उसका अर्थ क्या हुआ ? आहा ! गंभीर गजब बात है !! आत्मा में संख्या अपेक्षा अनंत गुण हैं, इसीप्रकार यहाँ तीनों में कहा, परंतु है तो

अनंत गुण में स्थित। यह अनंत गुण हैं उसमें पहला-अंतिम नहीं। परंतु यह अनंत गुण हैं उसमें गिनती करने जायें कि यह एक, दो, तीन, चार, पांच तो उसका अंतिम कौन-सा गुण ? उसमें यह नहीं आवे। आहाहा ! क्षेत्र भले शरीर प्रमाण और क्षेत्र अर्थात अपना क्षेत्र असंख्य प्रदेश प्रमाण, परंतु उनके जो गुणों की संख्या... अनंत, उसमें पहला दूसरा - ऐसा नहीं। कि पहला ज्ञान फिर दर्शन - ऐसा नहीं। एक साथ फिर भी एक साथ होने पर भी उसको गिनती से गिनने लगे तो.... कि यह एक, दो, तीन, चार तो इसका आखरी गुण कौन ? आहाहा ! आखरी है ही नहीं। आहाहा ! यहाँ तो क्या बात कहते हैं पण्डितजी ! अनंत जो संख्या अपेक्षा आत्मा में गुण हैं, उन गुणों में पहला या आखरी नहीं। हैं एक साथ परंतु एक साथ में यह एक, दो, तीन, चार - ऐसा आखरी कौन ? आहाहा ! गिनने में आखरी आता ही नहीं। क्या कहते हैं यहाँ ?

अरे ! इसने निजतत्त्व, कैसा और कितना है - ऐसा इसने अंतर से सुना नहीं। आहाहा ! उसके गुणस्वरूप भाव... उसके गुणों की संख्या अपार तो गुण, गुण, गुण, ज्ञान, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आनंद शांति अस्तित्व वस्तुत्व इसप्रकार कहीं अंतिम गुण आये - ऐसा अंत नहीं। आहाहा ! जिसमें अंत बिना का, आखरी नहीं ऐसे अंत नहीं। आहाहा ! जिसमें अंत बिना... आखरी नहीं - ऐसे अनंत गुण, यहाँ तो क्या कहते हैं। आहाहा ! अरे ! इसने निजतत्त्व को जानने का प्रयत्न किया ही नहीं। शेष सभी यह संसार की होली पाप पूरे दिन (इसने किया)।

यहाँ तो कहते हैं - **`चरितदंसणणाण ठिदो' तं ही स समयं जाण।** इसमें तो जितने गुण हैं। जिन गुणों की संख्या का अंत... कहीं अंत नहीं। इतनी संख्या इतनी संख्या, इतनी संख्या, अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत इसे अनंत को अनंत गुणा वर्ग करो तो भी यह गुण आखरी गुण - ऐसा उसमें नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा यह असीम तत्त्व- ऐसा अस्तित्व, जितने गुण हैं उतनी ही उनकी पर्याय हैं। एक समय में अनंती पर्याय हैं। उसमें पहली आखरी यह (प्रश्न) नहीं कारण कि एक समय में ही अनंती पर्याय साथ में हैं। फिर भी गिनती से गिनने लगो एक, दो, तीन, चार, संख्या, असंख्य, अनंत अनंत अनंत अनंत इन अनंती पर्याय में आखरी कौन सी पर्याय ? यह प्रश्न नहीं होता। आहाहाहा ! बापू ! बहुत सूक्ष्मतत्त्व है... आहाहा ! यह गंभीर (तत्त्व) सर्वज्ञ के अलावा किसी ने देखा नहीं, जाना नहीं और कहा नहीं। आहाहा !

उसके अनंत गुणों की संख्या, आकाश के क्षेत्र का अंत नहीं। आकाश आकाश आकाश आकाश दशों दिशाओं में फिर क्या ? फिर क्या ? कहीं आकाश का अंत

नहीं। ***आकाश के इतने अधिक प्रदेशों से अनंतगुणे गुण यहाँ (आत्मा में) है। जिन आकाश के प्रदेशों का अंत नहीं।*** आहाहाहा ! उससे अनंत गुणे गुण, संख्याअपेक्षा अनंत गुणे गुण, वह रहें असंख्य प्रदेशों में, एक समय में रहते हैं, (आहा !!) रहें असंख्य प्रदेश में, रहें एक समय में रहें अनंत... परंतु अनंत का यह आखरी गुण यह... आहाहा ! वहाँ यह आखरी यह शब्द ही नहीं और उस भाव में नहीं। आहाहा ! ऐसे अनंत अनंत भावरूप गुण वह यहाँ कहेंगे आगे। यह अनंत धर्मों में रहा हुआ - एक धर्मीपना वह द्रव्य है - ऐसा आगे आयेगा। आहाहाहा !

भाषा साधारण है - ऐसा जान कर उसकी गंभीरता नहीं बैठती, भाषा तो जड़ है। जो यह अनंतगुण हैं, उनका कोई अंत नहीं। आखरी नहीं अर्थात ? यह आखरी गुण है, आखरी गुण है अनंत अनंत अनंत गिनने पर कि यह आखरी - ऐसा इसमें है ही नहीं। क्या कहते हैं यह ? 'यह बात पहली बार आयी है किसी दिन' कहने में आयी नहीं। समझ में आया ? अनंत हैं - ऐसा सब बहुत बार कहा परंतु अनंत हैं, अनंत का, अनंत का, आखरी आखरी आखरी कौन (गुण) ? आहाहाहाहा ! असंख्य प्रदेश में एक समय में अनंत की संख्या में यह आखरी - ऐसा कोई आखरी आता ही नहीं। आखरी जैसा अंत ही नहीं। आहाहाहाहा ! यह ऐसी बात है।

(श्रोता :- आपसे व्याख्यान में कहने की विनंती की थी, रात को बात तो हो गई थी) हाँ, बहनों के कान में पड़े ना! हां रात्री को बात हो गई थी। प्रथम बार की है। ***इतने वर्षों में पहलीबार यह कही है कि अनंत भाव में, यह अनंत की संख्या का आखरी गुण कौन ? - ऐसा है ही नहीं इसमें (छोर हो तो आखरी हो न) आहाहाहाहा !*** इसीप्रकार अनंत गुणों की एक समय, काल अपेक्षा एक समय... असंख्य प्रदेशों का आखरी हिस्सा क्षेत्र का, उसमें होनेवाली अनंती पर्याय। गुण तो पूरे असंख्य प्रदेशों में हैं। इसीप्रकार एक पर्याय है, उसका अंतिम असंख्य प्रदेश का अंतिम अंश उसमें उत्पन्न होनेवाली अनंती पर्यायें, क्षेत्र इतना अंश, काल-एकसमय, इन पर्यायों की संख्या इतनी अनंती। आहाहा ! कि यह पर्याय आखरी... इसप्रकार गिनती में आखरी पर्याय होती ही नहीं। आहाहाहा !

इसप्रकार..... अनंत अनंत तो कहते हैं परंतु (अनंत) किस प्रकार ? आहाहा ! क्षेत्र का अंत तो अभी इसमें कुछ होगा। कुछ होगा होगा अंदर, परंतु इतनेमें भावों का अंत नहीं, भावों की संख्या जितनी है... उसकी संख्या का कहीं अंत नहीं, ***समय एक, क्षेत्र, असंख्यात प्रदेश और भावों की संख्या का अंत नहीं 'यह' आखरी - ऐसा अंतिम नहीं।*** आहाहाहाहा ! ऐसी ही अनंती पर्याय, प्रदेश का एक अंश, समय में एक समय और संख्या में अनंत पर्याय, उसमें पहली आखरी तो नहीं इसमें कहीं,

एक साथ में हैं अनंत, फिर भी अनंत में यह यह यह यह यह अनंत अनंत यह आखरी है (- ऐसा नहीं है) आहाहा ! - ऐसा तत्त्व भगवान सर्वज्ञ सिवाय कहीं किसी ने देखा नहीं और किसी ने कहा नहीं।

एक समय में अनंत पर्यायें, उसमें से एक पर्याय अब लें, ज्ञान की एक पर्याय अनंती पर्याय की संख्या में आखरी पर्याय नहीं, अंत नहीं इतनी पर्याय, आहाहा ! क्यों ? (आकाशके) प्रदेशों की संख्या का अंत नहीं यहाँ, आत्मा में पर्याय की, संख्या का अंत नहीं। आहाहा ! अब एक एक पर्याय में ज्ञान की एक पर्याय यह ज्ञेय प्रमाण। ***ज्ञान की एक पर्याय यह ज्ञेय प्रमाण, ज्ञेय कितने ? कि अनंत आत्मा, अनंत परमाणु वह ज्ञेय और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण। ज्ञेय कितने ? कि लोकालोक प्रमाण।*** आहाहा ! एक समय की पर्याय में प्रमेय लोकालोक, जिसके भावों का अंत नहीं ***उन उन परमाणुओं के गुणों का और उनकी पर्यायों का (अन्त नहीं) वह सब यहाँ एक समय की ज्ञान पर्याय में जानने में आ जाये श्रुतज्ञान की पर्याय में ही, केवलज्ञान की तो बात क्या करना ?*** आहाहाहा !

ऐसी एक समय की पर्याय में भी अनंत अविभाग प्रतिच्छेद (हैं)। ज्ञान की एक समय की पर्याय में अनंत द्रव्य और एक एक द्रव्य के अनंत गुण, जिसका पार नहीं और एक एक गुण की पर्याय, जिनका (भी) पार नहीं - उसका पार इस श्रुतज्ञान की पर्याय में जान लिया। आहाहाहा !

इस ज्ञान की एक समय की पर्याय में ऐसे अनंत लोकालोक जाने, (अनंत) द्रव्य, अनंतगुण, तो इतने भाग होगये, एक पर्याय में, अंश, कितने अंश ? कि इन अंशों का अंत नहीं। आहाहा ! अनंत का इसप्रकार अंत नहीं। (श्रोता :- आखरी नहीं) अंत नहीं - ऐसा बोला करो - ऐसे काम नहीं चले। अनंत...अनंत...अनंत... तो द्रव्य हैं अनंत (में) भी उसका अंत आ जाता है। क्षेत्र अनंत, काल अनंत, भाव अनंत, पर्याय अनंत उसका कोई पार नहीं। आहाहा ! उसकी संख्या कितनी है ? उसका अंतिम हिस्सा कौन ? इतनी संख्या में उसकी पर्याय और एक एक पर्याय में अनंत द्रव्य और अनंत उनके गुण, जिसके गुणों का अंत नहीं, पर्याय का अंत नहीं इतनी संख्या (है), काल अनन्त है - ऐसा नहीं, काल भले एक समय हो परंतु एक समय का उसका गुण और पर्याय, एक समय की पर्याय में जानने में आये (तो) एक समय की पर्याय के भाग कितने ? उसके भाग, टुकड़े करते, करते, करते आखरी अविभाग जिसका दूसरा विभाग न हो सके। ओहोहो ! ऐसी एक समय की पर्याय में अनंत अविभाग प्रतिछेद उसके अविभाग प्रतिछेद में आखरी कौन ? अंत नहीं !

अब, यहाँ तो - ऐसा कहना है कि जितने गुण हैं उतने जहाँ दर्शन ज्ञान चारित्र

में स्थित होते हैं, तब बात तीनों की ली है यहाँ भाई ! परंतु अनंत गुणों की पर्याय वहाँ व्यक्त होकर स्थिर होती है। शुद्धि में कितनी शुद्ध होती है और कितनी शुद्ध नहीं होती - ऐसा नहीं।

परंतु यहाँ दर्शन ज्ञान चारित्र की मुख्यता गिनकर, उसमें जीव जो पूरा (संपूर्ण) अनंतगुणों का पिण्ड है वह स्थित होता है। राग में स्थित होता है यह बाद में कहेंगे। आहाहा ! अपने अंदर जो अनंत गुण हैं, उनका एकरूप द्रव्य है। अनंत धर्म जो गुण उनका धारण करनेवाला एक तत्त्व, वह तत्त्व जब अपनी निर्मल पर्याय में स्थित होता है तब उसके जितने गुण हैं, उतने गुणों का सभी गुणों का अंश प्रगट होता है। फिर भी यहाँ तीन कहे हैं, वह मुख्यरूप से मोक्षमार्ग की पर्याय की अपेक्षा से... समझ में आया ?

गंभीर है भाई ! आहाहाहा ! (श्रोता :- अगाध गंभीर... अगाध गंभीर समुद्र जैसा है !) दूसरे बहुत विचार आये हैं... अंत आये - ऐसा नहीं, आहाहा ! और जो जीव पुद्‌गलकर्म के प्रदेशों में स्थित हुआ है... अब यहाँ कर्म के प्रदेशों में स्थित - ऐसा शब्द प्रयोग किया है। ***बात यह है कि पुद्‌गल के निमित्त से होनेवाली विकारी अवस्था, उसमें स्थित है।*** उसमें अनंतागुण विकाररूप नहीं, निर्मलरूप (है), उसमें अनंता गुण निर्मलरूप में थे। समझ में आया ?

पहले जो दर्शन ज्ञान (चारित्र) में स्थित तीन मुख्य लिये, परंतु उसमें जितनी संख्या में गुण हैं, जिसका अंत नहीं उन सभी गुणों की आंशिक व्यक्तता प्रगटरूप में स्थित है। आहाहा ! उसे यहाँ स्वसमय आत्मा कहते हैं।

यह तो उन्नीसवीं बार पढ़ा जा रहा है। वही का वही आये ? आहाहा !

अब इसमें दूसरा कहना है। कि `जो जीव पुद्‌गल कर्मों के प्रदेशों में'... यह पुद्‌गल कर्म तो जड़ अजीव है। परंतु उसके अनुभाग में... एक समय की स्थिति (पर्याय) है वहाँ वर्तमान (पर्याय), वैसे भले कायम रहना - ऐसा नहीं, ***परंतु उसके अनुभाग में जो एकाग्र होता है, उसमें जितने गुण हैं वह सभी गुण कर्म के प्रदेश में स्थित नहीं हुये। गुणों की पर्याय तो सदा निर्मल रहती है। कुछ समझ में आया ? यह एक बात। दूसरी बात, कर्मरूप परिणमित हुये जो परमाणु हैं, उसमें भी कर्म परमाणु में जितने गुण हैं, वह सभी गुण कर्मरूप परिणमते हैं - ऐसा नहीं।*** आहा ! जगत में पाप के कार्य से फुरसत कहाँ, कितने पापों की गठरी बांधी, चले जाना है चार गति में परिभ्रमण करने। आहाहा ! अभी भी यह क्या वस्तु है, वह समझने का भी समय नहीं निकालता। आहाहाहाहा ! आहाहा !

- ऐसा जो अपार स्वभाव तथा पर्याय, उसका अंदर पता लगे, ज्ञान और श्रद्धा

उसे जान ले, उसे राग में (से) रस (रुचि) उड़ जाये। राग उड़ जाय - ऐसा नहीं, राग रहता है। समझ में आया ? ऐसे जो अनंतगुण और अनंती पर्याय, अंत बिना की, अन्त रहित ऐसे द्रव्य की दृष्टि जिसे होती है, उसको अस्तित्व का स्वीकार होता है, इसके रस के सामने उसे राग में रस नहीं रहता। राग तो अमुक (चारित्र) गुणों की पर्याय है और यहाँ तो अनंत अनंत अनंता, अंत नहीं आये इतने गुण। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बापू ! वीतराग मार्ग... का प्रथम सम्यग्दर्शन क्या चीज है यह..... गजब बात है।आहाहा !

इसके बिना व्यर्थ भटकता मरा है चौराशी के अवतार में। आहाहा ! यह लखपति सेठ कहलाते हैं यह मरकर गधे होते हैं, कुत्ते होते हैं, क्योंकि धर्म क्या चीज है इसकी अंतर में खबर नहीं और मांस-दारु आदि नहीं खाते-पीते हों इसलिये नरक में तो नहीं जायें। सिद्धांत में लेख है शास्त्रों में कि यह सभी ढोर तिर्यंच (तिरछी गति) में जानेवाले हैं। आहा ! जैसा स्वरूप है वैसा जिन्होंने जाना नहीं, माना नहीं, पहचाना नहीं, उसके विरुद्ध जो तिरछे भाव, विकारी भाव वक्रता करके .... किये हैं, वह वक्र अर्थात टेढ़ा हो जाता है। वह मर कर तिरछे अर्थात तिर्यंच के शरीर में जानेवाले हैं कारण कि तिर्यंच का शरीर - ऐसा (तिरछा) आड़ा है, मनुष्य का ..... इस प्रकार खड़ा है। गाय, भैंस गिलहरी आदि का इस प्रकार आड़ा है न ? टेढ़ा, आहा ! उनकी इतनी बड़ी संख्या है। बहुत संख्या (में तो) वहाँ पूर्ति करनेवाले हैं। आहाहा !

यहाँ दूसरा कहना है, कि कर्म के प्रदेशों में स्थित है तो सभी गुण तो विकारी पर्याय में स्थित नहीं एक बात, और जो कर्म परमाणु हैं वह तो विभाव रूप में परिणमित हुये हैं। एक (भिन्न) परमाणु स्वभाव रूप में है। तथा यह (कर्म) तो विभावरूप में परिणमित हुआ है। परंतु विभावरूप परिणमन में कर्म की पर्यायरूप सभी गुण परिणमे हैं - ऐसा नहीं। समझ में आया ?

जैसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के परिणमन में सर्व गुण शुद्धरूप-व्यक्तरूप परिणमें हैं। इसीप्रकार परमाणु में विकाररूप सभी गुण परिणमे हैं - ऐसा नहीं, आत्मा में भी - ऐसा है। ***आत्मा में भी अशुद्धपना-परिणमन जो है, वहाँ सभी गुण अशुद्धपने होते हैं - ऐसा नहीं। कितने ही गुण अशुद्ध होते हैं शेष तो, कितने ही गुण अभव्य के भी शुद्ध हैं पर्याय में।*** जैसे अस्तित्वगुण... अस्तित्व का अशुद्ध परिणमन क्या होगा ? अस्तित्व का अशुद्ध (रूप) क्या होगा ? रहना कम हो जाये ? बात समझ में आती है ? आहाहा ! पण्डितजी !

यह तो इसमें (परमाणु में) एक प्रदेशत्वनाम का गुण है, सामान्य (गुणों) में वह

विकाररूप परिणमे तो दो परमाणु चार परमाणु रूप होता है, तब वह अकेला नहीं रहता नहीं। आहाहा ! वह कर्मरूप परिणमित पर्यायें, उनके परमाणुमें जितने गुण हैं, उनके सभी (गुण) कर्म रूप नहीं परिणमे, अमुक गुणों की ही पर्याय कर्मरूप हुयी है। आहाहा ! उसमें जो जीव रूका हुआ है, इसप्रकार अनंतगुणों में (अशुद्धता) न आने पर (भी), अनंतपर्यायें कर्म के रस की है, वहाँ अटका है वह परसमय अर्थात अनात्मा है। (हजारों लोग जानबूझ करके भी इस तत्त्व का विरोध करते हैं वह तिरछे (भाववाले) है)। वक्रता करें, विरोध के लिये करें, विरुद्ध श्रद्धा करें आत्मा से विरुद्ध विकार भाव करें..... आहाहाहा ! `गोम्मटसार' में पाठ है, तिर्यंच क्यों होते हैं ? `तिर्यंच' है न शब्द, तिर्यंच अर्थात तिरछा तिरछा अर्थात आड़ा, बहुत संख्या तो इन्हीं की है। आहाहा ! परंतु किसे फिक्र है। आहाहा ! बाहर में थोड़ी अनुकूलता रहे, (तो) मरने के बाद में कहाँ जायेंगें, कौन जाने यह कोई (खबर) नहीं।

यहाँ कहते हैं;... एक श्लोक में कितना समा दिया है, और उसे कर्म के प्रदेश कहा है। वह कर्म के प्रदेश परमाणु तो जड़ है। परंतु उसका अनुभाग जो है उसके प्रदेश का (अंश) भाग कहलाता है, उस तरफ के लक्ष्य में जाकर, जो विकाररूप परिणमा है वह अनात्मा परसमय कहा जाता है। आहाहा ! ऐसी बात है, कर्म रूप भी परमाणु के अनंत गुण परिणमे नहीं। आहाहा ! ***इसप्रकार भगवान आत्मा के अनंत गुण... मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय आदि परिणमन में अनंत गुण नहीं परिणमें, कुछ ही गुण..... बहुत विचार करके निकाले थे बहुत वर्ष पहले बहुत ज्यादा नहीं निकले इक्कीस गुण निकले थे, विपरीतपने के। निकाले थे बहुत वर्ष पहले, छोटे गाँव में एकांत रहता है न ! विपरीत (गुण) आत्मा में मिथ्यात्व, चारित्र आनंद, प्रदेशत्व ऐसे-ऐसे कर्त्ता, कर्म, कारण, संप्रदान, अपादान ऐसे ऐसे गुण विकाररूप होते है। सभी गुण नहीं होते, समझ में आया ?***

विचार तो बहुत आते है... एक पर एक बहुत। आहाहाहा ! यहाँ कहते हैं कि `जो जीव पुद्‌गल कर्म के प्रदेशों में'... अर्थात कि यह कर्म का ही भाव है, विकार आत्मा का स्वभाव नहीं। विभाव, पुण्य और पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति, काम और क्रोध कमाना-धमाना उसका ध्यान, यह सभी पाप। आहाहा ! उसमें जो स्थित है... उसे परसमय जानो। उसे अनात्मा जानो। आहाहा ! क्योंकि इसकी पर्याय में विकाररूप होना... यह विकार आत्मा नहीं। विकार यह आत्मा का कोई स्वभाव नहीं। विकार रूप परिणमा है, हुआ है वह अनात्मा है। आहाहाहा !

यह तो शब्दार्थ हुआ अब इसकी टीका।

`समय' प्रथम समय प्रारंभ किया (कहा) टीका :- `समय' शब्द का अर्थ इस

प्रकार है **`सम्'** तो उपसर्ग है। व्याकरण के नियमानुसार `सम्' सम उपसर्ग है। उसका एक अर्थ `एकपना' - ऐसा है उसका अर्थ `एकपना' - ऐसा है। **`सम्'** एकपना **`अयगतौ'** समय है न ? समय **`सम और अय'** दो शब्द इकट्ठे हैं। सम् का अर्थ एकपना **`अय गतौ'** धातु है, `अय गतौ' धातु है। यह धातु (का अर्थ) परिणमन करना यह। आहाहा ! यह `अय' धातु का गमन अर्थ भी है, `अय' अर्थात गमन करना, परिणमन करना, गमन करना, और ज्ञान अर्थ भी है। गमन करना और परिणमना, ज्ञानरूप हो ! `गमनरूप में परिणमना और ज्ञान अर्थ।' इसलिये एक साथ ही युगपद जानना और परिणमन करना... दो क्रियायें जो एकत्वपूर्वक करे, दो क्रियायें एक समय में एकत्वपूर्वक करे, परिणमे और जाने परिणमे और जाने। ऐसी एक समय में दो क्रिया को एकरूप में करे। आहाहाहा ! है ? वह समय है। यह `समय' की व्याख्या की।

फिर से **`सम और अय'** आत्मा लेना है न यहाँ अभी तो अर्थात **`सम्'** एकरूप में **`अय'** गमन करना परिणमन करना और जानना, ऐसी दो क्रिया एक समय में जो करे उसे `समय' कहा जाता है।

`समय' कैसे पहचाने ? वह पूँछते थे उस दिन दिल्ली (वाले)... `समय' क्यों कहा ? अरे..... कहा वस्तु का स्वरूप है `समय' = सम् + अय, अतः समय कहा है। आहाहा ! आत्मा को समय क्यों कहा ? कि एकरूप परिणमे और जाने एक समय में एकत्वरूप से दो क्रिया करे... उसे समय कहते हैं। यह समय वह आत्मा है। यह आत्मा ही परिणमे और जाने। दूसरे पदार्थों में परिणमन (गमन) है, परंतु जानना नहीं। गमन की अपेक्षा दूसरों को `समय' कह सकते हैं। परंतु यहाँ तो जानना-गमन करना दोनों अर्थ में जो हो उसे `समय' कहते हैं। आहाहा !

बाद में स्वसमय लेंगें। अभी तो समय किसे कहें आहा.....। यह जीव नामक पदार्थ यह समय का अर्थ किया, अब जीव के साथ तुलना करते हैं। `यह जीव नामका पदार्थ एकत्वपूर्वक... एकत्वपूर्वक सुधारा है।' `एक ही समय' में एकत्वपूर्वक एक ही समय में परिणता भी है और जानता भी है, इसलिये वह समय है, इसलिये उस आत्मा को समय कहते हैं। जानने का कार्य भी करे और परिणमे, एक साथ दोनों करे। आहाहा ! समय एक, दो क्रिया, परिणमन करने की और जानने की `एकसाथ' कैसे कहा ? कि परिणमे पहले और जाने बाद में - ऐसा नहीं। परिणमन करना और जानना एक ही समय है। आहाहा ! दोनों को एकत्वपूर्वक करे एकत्वपने करे। आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बात है।

समयसार सुनना-समझना बापू ! कठिन काम है। सारी दुनियाँ बाकी तो सब करती है। पशु की तरह मेहनत करती है, यह सभी पूरे दिन (करती), राग को

इसको उसको होना है न पशु, पशु जैसी मेहनत करते हैं। आहाहा !

(श्रोता :- पैसावाले इसमें आ जाते ?) पैसा के बाप हों, बड़े अरबपति हों सभी पशु होनेवाले हैं, पशु, कौआ और चिंटी होनेवाले, बकरी के बच्चे होनेवाले, छिपकली के पेट में छिपकली होंगे- ऐसा होता है न बापू ! वस्तु स्वरूप - ऐसा है। आहाहा ! अरे ! इसने देखा और जाना है कहाँ देखा है कहाँ ? उसे आवश्यकता कहाँ है ? आहाहा ! अनंतकाल बीत गया प्रभु ! तुमने इसप्रकार विपरीतपना किया है। आहाहा ! भगवान आत्मा अनंत गुणों का परिणमन एकसमय (में) और उसी समय ज्ञान का जानना। दूसरे अनंत गुण परिणमते हैं परंतु जानते नहीं। आहाहा !

एक समय में अर्थात कि सूक्ष्मकाल में। आहा ! भगवान आत्मा जो अनंतगुण जो अन्त बिना के कहे, उन सभी गुणों का एक समय में परिणमन, बदलना हलचल होना... ध्रुव है इसमें हलचल नहीं। उत्पाद-व्यय में हलचल है। अर्थात यह ध्रुव... ध्रुवरूप रहकर और अनंता गुणों में हलचल अर्थात् परिणमन होता है और उसीसमय ज्ञान जानने का कार्य करे, उसे आत्मा कहते हैं।

यह सभी तुम्हारे जवाहरात ववाहरात का (जानपना), वह यहाँ शून्य के बराबर है। आहाहा !

अरे प्रभु ! - ऐसा कहाँ है भाई ? आहाहा ! अनंत काल से असंख्य क्षेत्र में अनंत बार उत्पन्न हुआ। आहाहा ! यह आत्मा... कितना है ? कैसा है ? और यह कितना (महान) आत्मा ? एक समय में अनंता गुणों का छोर नहीं, आखरी नहीं. उनका परिणमन करे, आहाहा ! और उसीसमय एकत्वपूर्वक ज्ञान करे, दोनों क्रिया करे। आहाहा ! काल भेद नहीं। आहाहा ! भाई ! जिस समय परिणमता है उसी समय जाने उसे और ज्ञान भी जिस समय परिणमता है उसी समय उसे जाने कि यह ज्ञान स्वयं परिणमता है, ज्ञान का परिणमन तो आ गया न। सभी गुण परिणमते हैं तो उसमें यह ज्ञान (गुण) भी परिणमता है - इस प्रकार आ गया। एक साथ जानता भी है। परिणमता है और जानता है। जिस समय परिणमता है उसी समय जानता है, इसलिये एकत्वपूर्वक करता है - ऐसा कहा न ? आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बात है बापा !!

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की बात प्रमाण से निकली है। आहा ! गणधरो संतो केवली के नजदीक रहनेवाले, नजदीक में रहकर जिनने सुना और अनुभव किया है, आहाहा ! उनका कहा हुआ यह शास्त्र है। इसलिये यह `प्रमाणभूत' है। आहाहा ! समझ में आया ? आहा !

एक समय में परिणमता भी है, परिणमता है, उसमें ज्ञान भी साथ में परिणमता

है - यह आ गया न ? आहाहा ! एक ही समय में ज्ञान परिणमता है न, अनंत गुण परिणमते हैं। ***परंतु एक ही समय परिणमित होता ज्ञान ज्ञान को जानता है और सभी को जानता है।*** है ? आहाहा ! एक ही समय में परिणमन भी करे और एकत्वपूर्वक जानता है सभी को जानता है हो ? जिस समय परिणमन होता है अपना और सभी गुणों का, उसी समय उसे जानता है। आहाहा !

अभी तो आत्मा कहना... खबर ही नहीं पड़े न, आहाहा ! उसे धरम हो जाये... आहा ! घूम घूम के मर गया चौरासी के अवतार में, ऐसे तो अनंतबार अवतार किये, शास्त्रों को भी जाना और पढ़ा परंतु यह भाव इस प्रकार है यह अंदर परिणमा नहीं - यहाँ - ऐसा कहा। यहाँ परिणमन का कहा न ? आहाहा ! एकत्वपूर्वक एक ही समय में अपने ज्ञान का और अनंतगुण का परिणमन एक समय में, उसी समय उन सभी का ज्ञान भी उसी समय करे। आहाहा ! परिणमन करना और ज्ञान करना एक ही समय में है। (पहले) परिणमता है और बाद में जानता है - ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है जैन धर्म (में) यह जैनधर्म। आहाहा !

(`एकत्वपूर्वक एक ही समय में परिणमता भी है और जानता भी है') `इसलिये वह समय है'। आहाहा !

`यह जीव पदार्थ कैसा है ? सदा परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहा हुआ होने से... आहाहा ! सदा ही परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से। वह तो उसका स्वभाव है और वह स्वभाव में रहा हुआ है। अर्थात `उत्पादव्ययध्रुव की एकतारूप अनुभूति जिसका लक्षण है... ऐसी सत्ता से सहित है' तीन कहे।

`सदा ही परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहा हुआ' परिणमता है - यह उत्पाद व्यय, स्वभाव में है... यह ध्रुव... आहाहा ! है ? `सदा ही परिणमन स्वरूप' बापू ! यह तो मंत्र है। यह कोई कहानी नहीं। यह तो सर्वज्ञ त्रिलोक नाथ ! जिनके पास एक भव में मोक्ष जानेवाले इन्द्र सुनते हैं। वह पिल्ले की तरह (नरम होकर) सभा में बैठते हैं। आहाहाहा ! यह कोई कहानी नहीं-कोई किस्सा नहीं। आहाहा ! यह चैतन्य हीरा की बातें चैतन्यमणि की बातें है यह तो... आहाहा ! यह चैतन्य हीरा कैसा है ? आहाहा ! कहते हैं... `सदा ही परिणमन'... उसकी पर्याय का बदलाव सदा निरंतर है। आहाहा ! एक धारावाही सदा ही परिणमन है। परिणमे पर्याय पर्याय पर्याय उत्पादव्यय उत्पादव्यय उत्पादव्यय होता ही रहता है। नयी उत्पन्न हो पुरानी नाश हो। दूसरे समय नयी उत्पन्न हो पुरानी व्यय हो - ऐसा परिणमन सदा ही... क्रमशः आहाहा ! देखो ! इसमें क्रमसर भी निकलता है। आहाहा !

सदा ही परिणमन स्वरूप, स्वभाव में रहा हुआ यह ध्रुव। आहाहा ! यह परिणमन

स्वरूप उत्पाद-व्यय और स्वभाव में रहा हुआ ध्रुव। आहाहा ! यह उत्पाद व्यय और ध्रुव स्वभाव में स्थित हुआ है। यह उत्पादव्यय और ध्रुव स्वरूप में रहा है वह हमेशा नित्य स्वरूप। आहाहा ! (श्रोता :- कायम रहना और बदलना यह तो परस्पर विरोध है) टिकना और बदलना दो स्वरूप है। नित्य परिणामी, ध्रुव उत्पादव्यय। आहाहा !

अरे ! इसने अपनी चीज को... और उन सर्वज्ञ परमेश्वर... केवली परमेश्वर ने कही है यह बात... इसने सुनने की दरकार नही की। आहा ! और - ऐसा स्वरूप दिगम्बर संत के अतिरिक्त कहीं है नहीं। लोगों ने सब जगह उलटा ही किया है, परन्तु परीक्षा किए बिना सच्चा-झूठा एक सा मालुम पड़ता है ? आहाहा ! जिसका एक एक पद और एक एक पंक्ति, पार पायें - ऐसा नहीं, इस वस्तुमें इतना है। आहाहा !

वह कहता है कि समयसार हम पढ़ गये। पढ़ा बापा। (श्रोता :- शब्द पढ़े भाव समझे बिना) शब्द पढ़े उससे क्या हुआ भाई ? अंदर भाव क्या है वह ख्याल में नहीं आये, वह पढ़ना क्या पढ़ना ? पहाड़ा दुहरा लिया। गडियों समझते न क्याकहते हैं ? उसे कुछ कहते हैं यह गडिया की भाषा दूसरी कहते हैं। (श्रोता :- पहाड़ा) पहाड़ा-पहाड़ा। चन्दुभाई तो अभी नहीं आये, रात्री को नहीं थे न, अभी भी नहीं दोनों में नहीं थे। ऐसी बात जिंदगी में पहलीबार कहने में आयी है। भाव और अंत बिना का भाव, ***अंत बिना की पर्याय/काल एक साथ भले हो अंत बिना के अविभाग प्रतिच्छेद फिर भी वह ज्ञान की पर्याय उसका अंत ले लेती है, अंत ले लेती है इसलिये वहाँ अंत आगया - ऐसा नहीं। ज्ञान की पर्याय है इसलिये वहाँ अंत आगया - ऐसा नहीं।*** ज्ञान की पर्याय उसका अंत ले लेती है `जानती है' कहा है न !

अनंत द्रव्यों का ध्रुवपना और अनंत द्रव्यों का उत्पाद व्ययपना, यहाँ आत्मा की बात करते हैं, परंतु आत्मा की पर्याय में, अनंत द्रव्य गुणपर्याय में परिणमन में जानने में, आ जाते हैं। वह ज्ञान के परिणमन में जानने में आ जाते हैं। आहाहा !! उसके अपने अस्तित्व में ही अनंतद्रव्य-गुण-पर्याययें, यह ज्ञान की पर्याय में परिणमन होने पर उसमें जानने में आ जाते हैं। आहाहा ! सदा ही परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहा हुआ होने से... उत्पादव्ययध्रुव की एकतारूप अनूभूति... क्या कहा देखा ? परिणमन है, उत्पादव्ययरूप उपजे व्यय, उपजे नष्ट हो, उस समय में ध्रुव भी एक समय में। ***इन तीन की एकतारूप अनुभूति, अर्थात तीनों का एकरूप होना, तीनों का एक रूप होना जिसका लक्षण है - इसप्रकार अनुसरण करके होना। उत्पाद-व्यय और ध्रुव का अनुसरण करके होना।*** आहाहा ! सदा ही परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहा हुआ होने से उत्पादव्यय ध्रुव की एकतारूप, तीनों की एकता एक समय में, समय

में भेद नहीं। जिस समय ध्रुव है उसी समय उत्पाद व्यय है। जिस समय उत्पाद व्यय (रूप) परिणमित होता है, उसी समय ध्रुव अपरिणमन स्वरूप रहता ही है। आहाहा !

उत्पादव्यय ध्रुव की एकतारूप अनुभूति जिसका लक्षण है 'ऐसी सत्ता से जीव सहित है' यह जीव पदार्थ कैसा है ? वहा से शुरू किया न, फिर शुरू करके यहाँ ले लिया सदा ही परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहा हुआ होने से उत्पाद व्यय ध्रुव की एकता समय की अनुभूति एकरूप में रहना जिसका लक्षण है - ऐसी सत्ता से सहित है।

उत्पाद व्यय और ध्रुव तीनों सत् है, यह सत्ता है। तीनों सत्ता उन तीनों सत्ता से जीव सहित है। वह पहले जीव कहा, कैसा जीव है वह व्याख्या की। आहा ! समझ में आया ?

'इस विशेषण से जीव की सत्ता नहीं माननेवाले नास्तिक वादियों का मत खण्डित हुआ'। कौन जाने जीव कहाँ है ? यहाँ - ऐसा माननेवाले नास्तिक... पुरुष को (जीव को) अपरिणामी माननेवाले सांख्यवादियों का निराकरण (हुआ)। आत्मा है वह बदलता नहीं कायम एक रूप रहता है - ऐसी मान्यतावालों का यह निराकरण किया। है न ? (जीव का) परिणमन स्वभाव कहने से हुआ। 'नैयायिकों और वैशेषिक सत्ता को नित्य ही मानते है' सत् है उसका एक ही रूप मानते (है) बौद्ध सत्ता को क्षणिक मानते हैं 'एक समय की सत्तावाला ही बौद्ध मानते हैं, उनका निराकरण सत्ता (को) उत्पाद व्यय ध्रुव मानने से हुआ। आहाहा !'

अर्थ करनेवाले पण्डित भी... उत्पाद व्यय सांख्य मानते नहीं, बौद्ध ध्रुव मानते नहीं। अर्थात दोनों का निषेध हुआ, उत्पादव्यय ध्रुव स्वरूप ही यह वस्तु है। एक ही समय में एकता रूप वस्तु है। - ऐसा ही यह जीव नाम का पदार्थ है। विशेष कहेंगे...... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. १० गाथा-२ ता. १७-६-७८ शनिवार जेठ सुद-११ सं.२५०४

समयसार गाथा दूसरी। पहला एक बोल चला है। जीव कैसा है ? जीव पदार्थ है न ? यह जीव पदार्थ कैसा है ? यह एक बोल हुआ।

दूसरा बोल। फिर जीव कैसा है ? है ? बीच में।

नैयायिक और वैशेषिक सत्ता को नित्य ही मानते हैं, और बौद्ध सत्ता को क्षणिक

ही मानते हैं। उनका निराकरण सत्ता को उत्पादव्यय ध्रुवरूप कहने से हुआ, यहाँ तक आया है।

'पुनः जीव कैसा है ? चैतन्यस्वरूपपने से'... उसका स्वरूप तो चैतन्य है। जानना देखना उसका कायम स्वरूप है। 'चैतन्यस्वरूपरूप से नित्य उद्योतरूप है' चैतन्य के स्वरूप से जीव नित्य प्रकाशमान है। कैसा है जीव ? कि चैतन्यस्वरूपपने से नित्यप्रकाशमान, निर्मल उद्योतरूप स्पष्ट, उद्योतरूप निर्मल और स्पष्ट '**दर्शनज्ञानज्योति स्वरूप है**' यह त्रिकाली की बात कही। त्रिकाली तत्त्व - ऐसा है। वह अब किसमें कब स्थिर होता है यह बाद में कहेंगे। ऐसी चीज है ! वह दर्शनज्ञान में स्थित होती, तब उसे स्वसमय कहते हैं - ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा ! नित्यउद्योतरूप निर्मल स्पष्ट प्रत्यक्ष दर्शन ज्ञान-ज्योतिस्वरूप है। यह तो प्रत्यक्ष दर्शनज्ञान ज्योति त्रिकाल उसका स्वरूप है। नित्यउद्योत निर्मल है। - ऐसा ही जीव द्रव्य है - ऐसा सिद्ध करना है, जीव पदार्थ - ऐसा है। फिर किसमें स्थित हो यह बाद में कहेंगे, कि पर्याय में।

'इस विशेषण से चैतन्य को ज्ञानाकारस्वरूप नहीं माननेवाले सांख्यमतियों का निषेध हुआ'। कोस्टक में कहा है कि कारण कि चैतन्य का परिणमन दर्शन-ज्ञान स्वरूप है। चैतन्य लेना है न ! जाननेवाला देखनेवाला - ऐसा परिणमन दर्शन ज्ञानरूप है। 'चैतन्य का परिणमन दर्शनज्ञानरूप है'। (श्रोता :- तीनों काल जीव कैसा है वह बताना है ?) तीनों काल जीव द्रव्य जो है वह चैतन्यस्वरूपपने के कारण नित्य उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शनज्ञान ज्योतिस्वरूप है। अर्थात कि चैतन्य का परिणमन दर्शनज्ञान स्वरूप है। इसमें परिणमन लिया। वैसे तो त्रिकाली बताना है। त्रिकाली दर्शनज्ञान स्वरूप है, उसका परिणमन दर्शनज्ञानमय है। आहाहा ! यहाँ तो त्रिकाली चैतन्य द्रव्य की दृष्टि कराके, चैतन्य के अंदर दर्शन ज्ञान में स्थित हुआ यह आत्मा है - ऐसा बताना है। आहाहाहा !

तीसरा बोल, फिर वह कैसा है प्रभु जीव द्रव्य ? अनंत धर्मों में रहनेवाला जो एक धर्मीपना आहाहा ! अनंतगुणरूपीधर्म आहाहा... अनंत गुणोंरूपी धर्म, उसमें जो रहा हुआ धर्मीरूप द्रव्य एक। आहाहा ! ***अनंतगुणों में... क्योंकि अनंतधर्म (हों) - ऐसा इसका एक गुण है।*** अनंत धर्म - ऐसा इसका एक गुण है। इसलिये अनंत धर्मों में रहनेवाला कहा। आहाहा ! एक धर्मीपना-एकद्रव्यपना एक द्रव्य में अनंतगुण रहते हैं, इसलिये एकरूप वह द्रव्य, अनंत धर्मों में एकरूपी धर्मी... वह द्रव्य है। है न ? अनंतधर्मों में रहनेवाला, ***धर्म अर्थात् गुण और पर्याय*** अथवा त्रिकाली गुण एक धर्मीपना जिसके कारण वह द्रव्यपना प्रगट है। कारण कि अनंत धर्मों की एकता

वह द्रव्यपना है। कोई भिन्न चीज नहीं। ज्ञान, दर्शन जो गुण अपार हैं, अनंत हैं और वह गुण, एक गुण जहाँ व्यापक है वहीं अनंत गुण व्यापक हैं। वहाँ अनंतगुण व्यापक हैं। - ऐसा कहा न ? इन अनंत धर्मों में रहा हुआ एक धर्मीपना, यह वस्तु जो है आत्मा, उसके गुण अनंत, परंतु उन अनंत धर्मों का एकरूप धर्मी वह द्रव्य है। आहाहा ! अर्थात ? यह धर्म अनंत इनका कोई अंत नहीं और इन धर्मों में, प्रत्येक धर्म व्यापक है। अर्थात ? ***कि अनंत गुण हैं आत्मा में, तो ज्ञान ऊपर है तथा दर्शन नीचे, चारित्र नीचे शांति नीचे वीर्य नीचे - ऐसा इसमें क्षेत्र भेद नहीं।*** समझ में आया ? जहाँ ज्ञान है वही दर्शन है, इसप्रकार व्यापक (पसरा हुआ) है। एक एक गुण अनंत धर्मों (गुणों) में व्यापक है। एक एक गुण अनंत धर्मों में रहा हुआ है।

जिस प्रकार यह रजकण है। ऊपर का रजकण वह नीचे के रजकण के साथ नहीं, नीचे का ऊपर के साथ नहीं इसप्रकार आत्मा में (गुण) नहीं। आत्मा में अनंत गुण उसमें एक गुण ऊपर है और (दूसरा) बाद में है फिर बाद में है इसप्रकार अनंत गुण का पिण्ड है - ऐसा नहीं आहाहा ! ***एक एक गुण सर्वगुणों में व्यापक है।*** आहाहा ! जिसप्रकार आम को रंग से देखो तो पूरे आम में व्यापक है। गंध से देखो तो पूरा आम गंध में व्यापक है (गंधमय)। रस से देखो तो पूरा आम रस में व्यापक है तथा स्पर्श से देखो तो पूरा आम स्पर्शमें व्यापक है। - ऐसा नहीं कि आम का रस वह ऊपर रहता है, गंध वह अंदर रहती है, स्पर्श नीचे है - ऐसा विभाग नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

गहन विषय है ! यह जितने अनंत धर्म... एक तो इन अनंतों की गंभीरता द्रव्य एक... और यह (गुण) अनंत है ***जहाँ एक है वही अनंत है। जो एक है (गुण) अनंत है जहाँ एक है वही अनंत है। जो एक है (वह) दूसरे रूप होता नहीं। एक गुण है (वह) दूसरे गुणरूप होता नहीं। परंतु जहाँ एक गुण है वही अनंत गुण साथ में व्यापक हैं।*** ऐसी बात है, इसलिये उसको अनंत धर्मों में रहा हुआ एकधर्मी (पना), द्रव्य अनंत धर्मों में व्यापनेवाला (एक)। आहाहा ! जैसे एक धर्म अनंत (धर्मों) में व्यापक है इसीप्रकार धर्मी द्रव्य अनंत गुणों में व्यापक है। आहाहा ! अनंत धर्मों में रहनेवाला एक धर्मीपना, आहाहा ! उसके कारण जैसे द्रव्यपना प्रगट है... वस्तु वह प्रगट है। आहाहा ! कारण कि अनंत धर्मों की एकता वह द्रव्यपना है। यह स्पष्टीकरण किया।

वह थोड़ा कोष्टक में चैतन्य का परिणमन लिखा है न ? वास्तव में तो नित्य दर्शन-ज्ञान स्वरूप यहाँ सिद्ध करना है, यहाँ परिणमन सिद्ध नहीं करना। परिणमन को यहाँ सिद्ध नहीं करना, यह तो वस्तु ऐसी है बस इतना। बाद में स्थित कहाँ

होती है, फिर परिणमन की दशा, वह बाद में कहेंगे। जो यह कोष्टक में है न? कारण कि चैतन्य का परिणमन दर्शनज्ञान स्वरूप है वह वहाँ बैठता नहीं। क्या कहा समझ में आया ?

यहाँ यह नित्य लेना है न, वस्तु जीव पदार्थ, त्रिकाल जीव पदार्थ कैसा है? इसके बाद स्थिति होती है दर्शन ज्ञान चारित्र में - यह परिणमन है। समझ में आया? पाठ यह है न, देखो न ? चैतन्य स्वरूपपने से नित्य उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शन-ज्ञान ज्योतिस्वरूप है।

और उसके अनंत धर्मों में रहनेवाला, ओहोहो ! जो एक धर्मीपना जिसके कारण इसे द्रव्यपना प्रगट है। क्योंकि अनंत धर्मों की एकता वह द्रव्यपना है, इस विशेषण से वस्तु को धर्म रहित-गुण रहित माननेवाले बौद्धमतियों का निषेध हुआ। यह जीव पदार्थ, `जीवो' यह शब्द है न ? इसकी व्याख्या करते हैं यह **`जीवो'** फिर **`जीवो चरित दंसणणाण ट्ठिदो'** फिर वह पर्याय की व्याख्या चलेगी समझ में आया कुछ? (श्रोता :- आप सूक्ष्मबात करते हो फिर कहते समझ में आया ?)

यह सभी नवयुवक सुनते है देखो न सभी। यह तो आत्मा की बात है। आहाहा ! ***एक तरफ `तत्त्वार्थसूत्र' में - ऐसा कहते कि उदयभाव वह जीव है। है न ? तत्त्वार्थ सूत्र दूसरा अध्याय, पुण्यपाप, रागद्वेष यह जीव तत्त्व, जीव है क्योंकि जीव की पर्याय है अतः जीव है। एक तरफ - ऐसा कहते हैं कि क्षयोपशमभाव आदि (चार) भाव भी जीव में नहीं। यहाँ द्रव्य की अपेक्षा से बात चलती है। एक तरफ - ऐसा कहें कि जीव में जो पर्याय राग, द्वेष, पुण्य-पाप होते हैं वह सभी पुद्गल है, पुद्गल है। वह, क्योंकि उसमें से निकल जाते हैं, इसलिये कि उसकी वस्तु नहीं। तथा उसे जीव तत्त्व कहा क्योंकि उसकी पर्याय में उसीके अस्तित्व में है।*** कर्म की सत्ता में राग, द्वेष, पुण्य, पाप नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है।

एक ओर कहें कि जीव में क्षायिकभाव नहीं नियमसार। यह त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से, क्षायिक भाव वस्तु में कहाँ है ? वस्तु तो परमपारिणामिकभाव एकरूप है। क्षायिक भाव तो पर्याय है। क्षायिकभाव जीव द्रव्य में नहीं और एकतरफ कहें कि पर्याय में (होनेवाले) राग द्वेष वह जीव तत्त्व है। किस अपेक्षा से... (अपेक्षा) जानना चाहिए न ? पर्याय इसकी है इसी में होती है परंतु वस्तु का स्वभाव नहीं, इसलिये उसें गौणकर पुद्गल का परिणाम कहा।

अब यहाँ जो है वह तो उसके अनंत गुणों की बात है। पर्याय की नहीं। अरे ! - ऐसा... सभी समझना।

`अनंत धर्मों की एकता वह द्रव्यपना है' आहाहा ! वस्तु में जो अनेक गुण हैं,

पर्याय की यहाँ अभी बात नहीं। उसीप्रकार पुण्यपाप के विकल्प उसमें हैं ही नहीं। वस्तु के गुणों में नहीं और वस्तु में नहीं। आहाहा ! - ऐसा जो जीव पदार्थ अनंत गुणों का एकरूप वह द्रव्य है। - ऐसा कह कर धर्मों से रहित माननेवालों का निषेध किया।

और कैसा है ? अब उसकी पर्याय सहित सिद्ध करते हैं। क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तते अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से जिसने गुणपर्याय को अंगीकर किया है। आहाहा ! क्रमरूप यह पर्याय है। क्रम क्रम से होनेवाली पर्याय, क्रम से होनेवाली में एक के बाद एक होनेवाली, एक के बाद एक फिर जो होनेवाली वही होगी, जो होना वही होगी एक के बाद एक कुछ भी, (हो) एक के बाद एक - ऐसा नहीं। ***एक के बाद एक कोई भी एक के बाद एक - ऐसा नहीं, जो होनेवाली है वह एक के बाद एक इस प्रकार क्रमवर्ती है*** वह..... आहा ! लम्बाई में इसप्रकार लगातार जीव में..... पर्याय लम्बाई अर्थात आयत-एक के बाद एक जो पर्याय होनेवाली है वह क्रमबद्ध एक के बाद एक, क्रमवर्ती कहो क्रमबद्ध कहो परंतु..... क्रमबद्ध में ज्यादा संबंध एक के बाद एक की, जो होनेवाली इस प्रकार यहाँ क्रमवर्ती में क्रमशः वर्तती है इतना। इतना भी इसमें न्याय तो आ जाता है उसमें यह..... क्रमशः वर्तती है। पर्याय एक समय (में) एक होती वही ही होगी, दूसरे समय होनेवाली, वही होगी, इसप्रकार क्रम से वह होगी- ऐसा जिसका क्रमवर्ती पर्याय का धर्म है और वह क्रमवर्ती पर्याय में उसे पर की कोई अपेक्षा नहीं, कि पर हो तो यह क्रमवर्ती पर्याय हों..... उसका अपना क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती धर्म स्वभाव है। समझ में आया ? - ऐसा सूक्ष्म है... अब समझने को कहाँ ? फुरसत मिले !

प्रथम तो सारे दिन `संसारिक पापों से फुरसत नहीं मिले। आहा ! सुनने को मिले तो फिर कहे कि जीवतत्त्व, ***राग द्वेष जीव तत्त्व (में) एक तरफ कहें राग द्वेष पुद्गल तत्त्व, किस अपेक्षा से कहते हैं (यथार्थ) ज्ञान नहीं करे तथा एकांत मान ले कि राग द्वेष जड़ के ही हैं, जड़ ही है - ऐसा भी गलत, और यह राग द्वेष वस्तु का स्वभाव है इसलिये यह तो स्वभाव में है, यह भी गलत।*** आहाहा !

`क्रमरूप और अक्रमरूप'... देखो आया, गुण है यह तिरछे क्रम में है इसप्रकार तिरछे और पर्याय इस प्रकार क्रमवर्ती है। एक के बाद एक पर्याय काल क्रम से आयत और यह (गुण) अक्रम से हैं। जितने गुण हैं उतने अक्रम से एक साथ... एक साथ परंतु ऊपर ऊपर रहते है - ऐसा नहीं। इसप्रकार सभी एक रूप में रहे हुये हैं। तिरछे-तिरछे अर्थात विस्तार.... तिरछा आत्मा का विस्तार तिरछा, पर्याय आयत (हाथ ऊपर से नीचे करते हुये) इस प्रकार लम्बी एक के बाद एक, और यह वस्तु

के गुण हैं यह अक्रम से है एक साथ अनंत (हाथ को दाँये से बायें हिलाते हुये) इसप्रकार तिरछे, फिर भी यह तिरछे एक के ऊपर एक, एक के ऊपर एक इसप्रकार ऊपर फैले हुये - ऐसे नहीं। पाथरेला समझते हो ? (जैसा हम मानते) - ऐसा विस्तार नहीं। यह एक गुण जहाँ है वहाँ सभी गुण एक साथ पसरे हुये हैं। फिर भी एक गुण दूसरे गुण रूप होता नहीं। सर्व गुण असहाय। जितने गुण अनंत हैं वह सभी असहाय हैं उनको दूसरे गुण की मदद नहीं, क्योंकि वह सत् है, असहाय है, तिरछे रहते हैं, इसलिये अक्रमरूप हैं और एक साथ व्यापे हुये हैं। अर्थात अनंत गुण अनंत संख्या में तिरछेरूप यह पहला यह दूसरा यह तीसरा - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! जिसप्रकार अनंत गुणों की संख्या में यह पहला, यह दूसरा यह आखरी- ऐसा गुणों में नहीं इसीप्रकार तिरछे गुणों में पहला गुण यह और दूसरा यह तथा तीसरा यह इसप्रकार वह तिरछा, (क्षेत्रमें फैले हुए) - ऐसा भी नहीं। समझ में आया ?

फिर से... वस्तु है उसमें अनंत गुण हैं तथा उन अनंत गुणों में काल भेद नहीं एक साथ है, एक बात ! तथा अनंत गुण हैं उसका आखरी अंतिम गुण कौन ? यह नहीं इतनी अनंत संख्या है, और वह अनंत संख्या अपेक्षा है वह..... एक दो तीन इसप्रकार जो कहे इस प्रकार नहीं रहते। एक समय में तिरछे व्यापक एक साथ में रहे हुये हैं। पण्डितजी ! आहाहा !

यह तो अभी `**जीवो**' इसकी व्याख्या करते हैं। पहला शब्द लिखा है न ? `**जीवो**' यह तो वाणी वीतराग की बापू ! सर्वज्ञ, आहाहा ! तीनलोक के नाथ की वाणी, संत जगत में आड़तिया होकर प्रसिद्ध करते हैं। ***भगवान के माल के आड़तिया हैं। कारण कि पूरा प्रत्यक्ष तो प्रभु ने देखा है, मुनियों ने पूरा प्रत्यक्ष देखा नहीं परंतु पूरे प्रत्यक्ष की उन्हें प्रतीति और विश्वास है। आहाहा !***

यह विश्वास, अनुभूति (रूप) सम्यक्दृष्टि भूमिका में... फिर वस्तु में स्थिर होनेवाले चारित्र... इस भूमिका से यह बात कर रहे हैं। आहाहा ! क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तता अर्थात ? क्रमरूप प्रवर्ते वह तो पर्याय, भले ही अक्रम में प्रवर्तते अर्थात एक साथ रहनेवाले... प्रवर्तते अर्थात, अनंतगुण है (वह) अक्रमे प्रवर्तते है। प्रवर्तते का अर्थ एक अक्रमे परिणमते हैं यह नहीं, यह बात अभी नहीं, वह परिणमन तो पर्याय (धर्म) में गया और यह गुण हैं वह अक्रमरूप प्रवर्तते (अर्थात रहनेवाले) आहाहाहाहा ! अरे, किसे खबर है? निजधर में क्या है उसकी खबर नहीं है। शेष सभी बाहर की बातें हैं। आहाहा ! - ऐसा प्रभु !

कैसा है जीव पदार्थ ? कि क्रम अक्रमरूप प्रवर्तते..... आहाहा `अनेक भाव' हैं ? दोनों अनेक भाव हैं। क्रमरूप प्रवर्तती पर्यायें अनेक भावरूप है, और गुण अक्रमरूप

रहनेवाले तिरछे एक साथ फैले हुये। इसप्रकार नहीं कि (पहले) ज्ञान (फिर) दर्शन, आनंद अपितु जहाँ ज्ञान है वहीं दर्शन है वहीं चारित्र है। इसप्रकार अनेक रूप प्रवर्तते हुये रहते हैं। आहाहाहा ! 'अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से'... ***देखा पर्याय और गुण दोनों उनका स्वभाव होने से, क्रमशः प्रवर्तना - ऐसा भी अनेक भाव रूप उसका एक स्वभाव होने से, और अक्रम प्रवर्तना-रहना यह भी इसका एक स्वभाव होने से...*** आहाहाहा !

यह तो समयसार है, भरत क्षेत्र की आखिर में आखरी, ऊँचे में ऊँची चीज, आहा... सत् को प्रसिद्ध करनेवाली वह चीज है यह।

बनिया का तो एक धंधा वही का वही बोला करे पूरे दिन, एक जाति का धंधा तो इसका यह और इसका यह, उसमें कुछ नया तर्क कि कुछ है ? यह लोहे के व्यापारी कि यह लोहा आया हो इसका यह है उसका वह है। जिसका जो धंधा हो हमारे मास्टर कहते थे ना ? हीराचन्द्र मास्टर (कहते) हम मास्टर सभी पंतु कहलाते हैं क्योंकि ? कि हमको पूरे दिन सिखाने का वही होता कहीं आड़ा तिरछा तर्क कि कहीं विशेष कुछ होता नहीं। हमारे हीराचन्द्र मास्टर, रतिलाल के पिताजी, हमारी वही की वही भाषा इसका यह तीन और दो पांच, सात और पांच बारह और फलाना वही का वही सिखाना, उसमें कहीं कोई नया तर्क, नई बात नहीं। पंतु (पोथीपण्डित) जैसे है, हम तो वही ऐसे ... बानिया समझ बिना के सभी पंतु जैसे हैं। वह का वही पूरे दिन वह के वही शब्द, वह की वही बातें नयी क्या वस्तु है ?

(श्रोता :- बानिया तो होशियार जाति है !) होशियार जाति है सब समझने जैसे ! कहा न आया था एक लड़का बीस-पच्चीस लाख का आसामी। दुकान नई करना होगी। सबके मन में - ऐसा (रहता है) कि महाराज के दर्शन करें। हमने तो इतना पूछा उनसे कि यह जो पचास साठ सत्तर वर्ष कहलाता है यह शरीर का है कि आत्मा का ? (श्रोता :- यह तो महाराज को खबर हो न ?) किरण भाई ? एक नवयुवक आया उसे जामनगर में दुकान खोलनी थी। बीस पच्चीस लाख थे। सबको प्रेम तो यहाँ बहुत है न..... गहरे गहरे तो महाराज के पैर पड़ें, (महाराज दुकान पर पधारें) मांगलिक सुनेंगे तो दुकान-दुकान अच्छी चलेगी। ऐसी ऐसी मान्यतायें हैं बाकी जो होनेवाला वही होता है। वहाँ कहाँ हमारे कारण क्या होता है ? (श्रोता :- पागल आदमी अच्छा हो जाता है)।

यहाँ कहते हैं... आहाहाहा ! जीव पदार्थ कैसा है कि जिसकी पर्यायें क्रमवर्ती प्रवर्तती है उसकी, आहाहाहाहा ! और जिसके गुण अक्रम एक साथ तिरछे विस्तार

इसप्रकार, पर्याय इस प्रकार, गुण इस प्रकार (दोनों में आड़ा खड़ा हाथ का इशारा करते हुये)। यह भी एक के बाद एक गुण - इसप्रकार नहीं। एक गुण पूरा है वही सभी अनंत गुण फैले हैं। आहाहा ! यह `विभु' नाम का गुण है न इसमें ४७ शक्ति में, विभु। जहाँ ज्ञान व्यापक है वहाँ सभी व्यापक है। यह... यह... ऐसे अनंतगुण हैं। ज्ञान यहाँ, दर्शन यहाँ, आनंद यहाँ बड़ा ढेर लगा है एक के बाद एक ऐसे नहीं। व्यापक ढेर है, जहाँ एक गुण है वही अनंत गुण रहते हैं। क्षेत्र अपेक्षा तो रहे हुये हैं भाव अपेक्षा व्यापक होकर रहे हुये हैं। आहा ! रूपया तो गिनना धूल में वहाँ क्या ? यह पात्र भी एक के बाद एक लो न इसप्रकार ! - ऐसा इसमें नहीं।

ऐसे यह गुण जो हैं... प्रथम तो एक शब्द प्रयोग किया है `क्रम और अक्रम अनेक भाव' - ऐसा कहा न ? अनेक अर्थात अनंत, दो से लेकर अनंत को अनेक कहते हैं। अर्थात वस्तु जो प्रभु आत्मा, उसकी पर्यायें अनेक इसप्रकार लम्बी क्रमशः प्रवर्तती है। वह भी एक के बाद एक आगे पीछे नहीं। यदि बीच में पाँचवें समय होनेवाली पर्याय दूसरे समय हो, दूसरे समय होनेवाली पांचमें समय हो - ऐसा भी नहीं। आहाहा ! इसप्रकार क्रमशः प्रवर्तती पर्यायें अनंत है। `अनेक' शब्द प्रयोग करके अनेक कहा है। इसीप्रकार अक्रम प्रवर्तते गुण भी अनंत हैं। आहाहा !

जरा गहराई से विचार करें तो उसका पता लगे कि, ओ हो हो हो ! (मैं कैसा हूँ)

दूसरे द्रव्य तो अपने में रहे, भिन्न। यह एक स्वयं (द्रव्य) है, जो अनंत, अनंत, अनंत गुणों से भरा हुआ, और एक गुण है वहाँ दूसरे गुण व्यापक होकर रहता हैं और अनंत हैं वहाँ संख्या का कहीं अंत नहीं, क्षेत्र से तो यह आत्मा इस शरीर प्रमाण इतने में आ गया। परंतु इसकी शक्तियाँ अर्थात गुण हैं वह तो इतने अनंत हैं कि जिसको एक के बाद एक तो काल लागू होता नहीं, परंतु उसमें आखरी का अंतिम यह गुण है - ऐसा वहाँ लागू होता नहीं। आहाहा ! इसप्रकार `अनेक' प्रवर्तते कहा। अनंत गुण एक साथ प्रवर्तते हैं। विस्ताररूप में तिरछेरूप इसप्रकार। आहाहाहा !

यह तो अब उन्नीसवींबार प्रवचन हों रहा है, यह सभी पहले अठारह बार तो बांचा गया है यह समयसार, अभी तो उन्नीसवीं बार प्रारंभ हुआ है।

(श्रोता :- हर समय भिन्न-भिन्न प्रकार से आता है ?) आये, दूसरा भिन्न प्रकार से कहीं एक जैसी बात है ? आहाहा ! (तीन वर्ष में पूरा होगा) हा यह तो कब पूरा हो ? यह तो आहाहा !

`**क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तते**' अर्थात सत्ता धारण करते... समझ में आया? `अनेक भाव जिसके स्वभाव होने से' अनेक अर्थात अनंत होने से जिसने गुण पर्याय अंगीकार किया है पदार्थ... ऐसी चीज है कि अनंत गुण अक्रमसे और अनंत पर्याय क्रम से - ऐसा अंगीकार किया है। - ऐसा यह जीव पदार्थ है। आहाहा ! गुण और पर्यायें जिसने अंगीकार किया है। आहा ! और ४९ वीं गाथा में `अव्यक्त' में - ऐसा कहते हैं कि जीव द्रव्य है उसमें पर्याय आती नहीं। ***द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं। आहाहा ! दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध करने को (कहा है) और यहाँ तो एक जीव स्वयं पूरा है उसने स्वयं गुण पर्यायों को अंगीकार किया है।*** प्रवीणभाई ! - ऐसा सूक्ष्म है। एक बार समयसार सुना अर्थात हमने सुना है बस ! अरे बापू ! यह समसार क्या चीज है आहाहा ! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा के प्रवचनों का सार है यह, यह `समयसार' है। आत्मसार, वह प्रवचनसार, उनकी वाणी का सार है। आहाहा !

ऐसे अगाध गुण और अगाध क्रम पर्यायें अनंती ऐसी जिसने अंगीकार की हैं, अर्थात कि इसप्रकार गुणपर्यायवाला द्रव्य है। गुणपर्यायवाला द्रव्य है - ऐसा `तत्त्वार्थ सूत्र' में आता है आहा !

पर्याय क्रमवर्ती होती हैं और गुणसहवर्ती होते हैं; सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं, साथ में रहनेवाले अनंत गुणों को अक्रमवर्ती भी कहते हैं। ***सहवर्ती अर्थात द्रव्य के साथ में रहनेवाले - ऐसे नहीं। द्रव्य के साथ में रहनेवाला, इसलिये सहवर्ती - ऐसा नहीं, गुण-गुण स्वयं एक साथ रहते हैं इसलिये सहवर्ती, सहवर्ती यदि द्रव्य के साथ सहवर्ती कहें तो पर्याय भी द्रव्य में साथ में वर्तती ही है,*** इसलिये यहाँ तो गुण एक साथ वर्तते हैं, तिरछे भले अनंतगुण संख्या का अंत नहीं मिले फिर भी एक समय में साथमें वर्तते हैं। गुण, गुणों के साथमें रहते (वर्तते) हैं। गुण द्रव्य के साथ में वर्तते हैं, इसलिए सहवर्ती हैं - ऐसा नहीं। आहाहा ! `पंचाध्यायी' में यह है। पंचाध्यायी में इस बात का स्पष्टीकरण किया है। आहाहा !

सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं, इस विशेषण से... जीव के विशेषण है न ! `इस विशेषण से पुरुष को निर्गुण माननेवाले सांख्यमतियों का निराकरण हुआ।' सांख्यमती कहते हैं कि पुरुष (आत्मा) तो निर्गुण है। वह तो उसकी प्रकृति के जो गुण हैं रजो तमो गुण, वह उसमें नहीं। परंतु उसके जो स्वभाव गुण हैं वह उसमें त्रिकाल पड़े हैं। वह तो उन्हें ख्याल नहीं। आता है न ? रजो तमो और सत्व यह तो प्रकृति के गुण हैं, यह प्रकृति के गुण स्वभाव में नहीं। आत्मा में नहीं परंतु आत्मा में जो त्रिकाल अनंत (गुण) एक समय में वर्तते हैं और अनंत पर्यायें क्रमशः हैं इन

गुण तथा पर्याय को जिसने अंगीकार किया है - ऐसा वह जीव द्रव्य है। आहाहा !

इसमें कितना याद रखना ? दुकान के धंधे में तो वही के वही उदाहरण और वह की वही रीति। नया सीखने को कुछ न मिले। नौकर बैठा हो तो वह भी यही बोला करे, वह का वही। इसका इतना और इसका इतना और इसका इतना... उसका सेठ बैठा हो तो वह भी यही करता रहता है, बोलता रहता है। आहाहा !

यह चीज तो दूसरी है बापू ! आहाहा ! देह में (से) भिन्न पदार्थ, वस्तु किसप्रकार है और किसप्रकार इसमें गुण और पर्याय प्रवर्त रहीं है ? इसलिये उस द्रव्य को, गुण और पर्यायों को अंगीकार करनेवाला कहा जाता है। आहाहा ! भाषा तो सादी (सरल) है, परंतु अब भाव तो यह जो हो वही हो न !! (श्रोता :- बहुत गंभीर है) गंभीर है। आहाहा ! (श्रोता :- निमित्त पर्याय का क्रम तोड़ डालता है - ऐसा दिखता है) बिलकुल झूठी बात है। यह ही अज्ञानी की मोटी उलझन है !

उपादान में अनेक जाति की योग्यता है। (जैसा) निमित्त आये वैसा (कार्य) हो - ऐसा कहते हैं, यह बिलकुल (एकदम) झूठी बात है। उपादान में उस समय एक ही जाति की जो उस समय निजक्षण उत्पन्न होने का समय है उस क्षण में वही होगा, एक ही योग्यता है। दूसरी योग्यता है ही नहीं। सभी कहते हैं... उपादान में अनेक जाति की योग्यता है, पानी में अनेक जाति की योग्यता है परंतु उसमें (जैसा) रंग डालो वैसा दिखेगा। हरा डालो तो हरा, पीला डालो तो पीला यह बात बिलकुल गलत है। आहाहा !

तत्त्व की बातें समझना, सुनना बहुत कठिन बापू ! शेष तो सब धूल है, बेकार सब पूरा... संसार, हैरान होकर मर गये है इसी न इसीप्रकार अनंत काल निकाला, परिभ्रमण करते हुये ! परंतु परिभ्रमण करनेवाले की दशा (पर्याय) और परिभ्रमण करनेवाले के अपने गुण और परिभ्रमण करनेवाला स्वयं कौन ? कितना ? कैसा है ? (यह) जाना नहीं। कभी तो भूल हुयी है (वह) कर्मों ने कराई है, आहा ! और कभी भूला है अपना त्रिकाली स्वभाव, है (- ऐसा मानता है)।

पर्याय में भूल जिस समय होनेवाली है क्रम में उसका (अपना) काल है, काललब्धि यह है। जिस समय जो पर्याय हो वह उसकी काललब्धि है और वह उसका निजक्षण है। आहाहा ! `मोक्षमार्ग प्रकाशक में तो वहाँ तक (कहा) कहा था न, उस दिन' कहा कि अरे... `जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभव नहीं,' `कर्म के कारण विकार हो - ऐसा मानना' जैन की आज्ञा जो माने तो ऐसी अनीति संभवे नहीं। `यह बात हुयी थी उस दिन' तीसरी साल में, परंतु अंदर... बहुत वर्षों से बैठी हुयी उल्टी (मान्यता) निकालना कठिन पड़े मनुष्य को, यदि बड़े पण्डित हो गये हों, पढ़ लिख

करके व्याकरण और संस्कृत के... ओहो ! (श्रोता :- काशी जाकर आया हो) काशी जाकर आया हो कि बनारस जाकर आया हो, काशी करवत ले आया हो। यह तो काशी भगवान यहाँ है। आहाहा ! वहाँ जाये तो उसकी खबर पड़े कि उसकी क्या स्थिति है। आहाहा !

`फिर वह कैसा है प्रभु ?' **`जीवो'** मात्र उसकी व्याख्या चलती है। आहा ! अतः इसलिये उसमें से शक्ति जो ४७ हैं उसमें से पहली जीवत्वशक्ति इसमें से निकाली है अमृतचन्द्रआचार्य ने। स्वयं टीका करनेवाले हैं न ! अमृतचन्द्र आचार्य ने गजब काम किया है। कुन्दकुन्दआचार्य ने पचंमकाल में तीर्थंकर जैसा काम किया है, इन अमृतचन्द्राचार्य ने गणधर जैसा काम किया है। एक हजार वर्ष बाद हुये कुन्दकुन्दाचार्य को मिले नहीं थे। आहा !

पेट में जैसा है, अंदर में है - ऐसी बात का स्पष्टीकरण करके रखा है यहाँ। आहा ! जिसे समाज को संतुलन रखने की परवाह नहीं। कि समाज इसको अच्छी तरह से मानेंगे कि नहीं मानेंगे इसकी जिसको परवाह नहीं, सत्य यह है। समाज व्यवस्थित रहो, सब इकट्ठे होकर मानें कि एकत्र होकर न मानों इसके साथ कोई संबंध नहीं। आहाहा !

(श्रोता :- निर्दयपने कहा है, वह निर्दयता से कहलाये ?) यह उन्हें निर्दयता से काट देता है, शास्त्र में - ऐसा पाठ है कलश है। रागद्वेष को भेद-ज्ञान (होनेपर) निर्दयता से काट डालता है। तथा - ऐसा पाठ है, मूल पाठ है, आरे की भांति, आरा होता है न आरा ? निर्दयता से भेद (करके) काट डालता है। अर्थात कि अनादि का राग का संबंध उसे इसप्रकार निर्दयता से भिन्न कर डालता है। अनादि का `बंधु' की तरह ***`परमात्मप्रकाश' में तो - ऐसा लिखा है। यह पुण्य-पाप जो अनादि से बंधु थे अनादि से साथ में रहनेवाले, अनादि का बंधु उस बंधु का घात करनेवाला आत्मा है।*** आहाहा ! अनादि काल से पुण्य और पाप को मिथ्यात्वभाव को साथ में रखा, उसे भेदज्ञानी ने एक क्षण में निर्दय होकर काट डाला, एक ही बार में। आहा ! ऐसी वस्तु है।

`फिर वह कैसा है ? अपने और परद्रव्यों के आकारों को प्रकाशने का सामर्थ होने से'... जीव द्रव्य में इतनी सामर्थ-ताकत है, कि अपना और परद्रव्यों का आकार अर्थात विशेष प्रकार `उसे प्रकाशने का सामर्थ होने से... जिसने समस्त रूप को प्रकाशित करनेवाला एकरूपपना प्राप्त किया है।' आहाहाहा !

सभी को जानने पर भी एकरूप रहा हुआ है। अनेक को जानने पर भी अनेक रूप हुआ नहीं, अनेक ज्ञेयों को जानने पर भी अनेक ज्ञेयरूप नहीं होता। अनेक

ज्ञेयों को जानने पर भी, वह ज्ञानरूप रहकर अनेक ज्ञेयों को जाना है जिसने... आहाहा ! ओ हो हो ! कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार बनाया होगा। आहाहाहा ! यह मैं प्रारंभ करता हूँ। आहाहा ! हमारे ज्ञान में, क्षयोपशम में जो भाव है, उसके अनुसार मैं बताना प्रारंभ करता हूँ। वाणी का विकल्प (है) परंतु वाणी तो उसके कारण आयेगी। आहाहा !

यह तो भाई निवृत्ति का काम है, निवृत्ति लेने के बाद... यह वस्तु बिलकुल निवृत्ति स्वरूप है अंदर... उसे जानने के लिये भाई, बहुत समय चाहिए अन्यथा इसका जन्ममरण नहीं मिटे बापा ! यह चौरासी के अवतार भाई ! यह शरीर छूटते ही कहाँ जायेगा ? भाई ! आहा ! यह शरीर छूटेगा परंतु कहीं आत्मा का नाश होगा ? आत्मा तो टिकनेवाला है। आहाहा ! तब यह सभी छूट जायेगा तो अकेले कहाँ रहोगे ? यह सभी मेरे, मेरे, मेरे करके ममता मिथ्यात्व में समय बिताया, यह मिथ्याभ्रमणा रहेगी भविष्य में। आहाहा ! और उसको भ्रम का फल परिभ्रमणरूप अवतार। आहाहा ! कोई परिचित प्रिये सगे वहाँ नहीं, कोई स्त्री-पुत्र उनका नहीं, कोई फुआ-फूफा, मौसिया, मौसी कोई नहीं। आहाहा ! अकेला जाकर अकेला घूमेगा उल्टे रास्ते ! आहाहा !

इसलिये एक बार बापू तुम समझो, तुम कौन हो, कितने हो और यह आत्मा कैसा (है) उसे स्वसमय कब कह सकते, और इसे परसमय क्यों कहा जाता है, कहते हैं यह बात समझो ! आहा ! आहाहा ! अपने और परद्रव्यों के आकार गुण और पर्याय सभी को, प्रकाशने का (जानने का) सामर्थ होने से... जिसने समस्त रूप को सभी रूपों को स्वद्रव्य, गुण, पर्याय, पर के द्रव्य, गुण, पर्याय सभी को जानने रूप प्रकाशित करनेवाला, फिरभी 'एकरूपपना प्राप्त किया है।' इतने अनंत ज्ञेयों को जानती हुयी ज्ञान की पर्याय अनेकरूप-पररूप नहीं होती स्वयं के ज्ञान की पर्याय रूप में एकरूप रहती है आहाहा ! समझ में आया ? अनेक को जानने के समय भी जीव की पर्याय एकरूप अपने ज्ञानरूप रहती है। परज्ञेयरूप अनेक को जानते हुये, परज्ञेयरूप वह ज्ञान होता नहीं। आहाहा ! अग्नि को जानता हुआ ज्ञान अग्निरूप (उष्ण) होता नहीं। 'ज्ञान तो ज्ञान रूप रह कर अग्नि को जानता है' आहा...हा ! इसीप्रकार ज्ञान अपने रूप रहकर अनंत ज्ञेयों को जानता है अनंत ज्ञेयों को जानने पर ज्ञान अनेकरूप खण्ड खण्ड होगया - ऐसा नहीं। आहाहा !

समयसार धर्म कथा है बापू ! यह तो भागवत कथा है आहाहा ! 'एकपना प्राप्त किया है' क्या कहा ? 'जिसमें अनेक वस्तुओं के आकार प्रतिभासते' आकार प्रतिभासते यह कहना भी निमित्त की (अपेक्षा से) बात है। वह तो अपनी पर्याय का इतना सामर्थ है कि स्व और पर को जानने के सामर्थरूप स्वयं परिणमता है। ऐसे

अपने परिणाम की पर्याय का इतना सामर्थरूप अस्तित्व है। पर है इसलिये पर को जानता है - ऐसा नहीं। यह पर है, उसके उस संबंध को अस्तित्व की ज्ञान की पर्याय का सामर्थ है, उतने अस्तित्व का स्वयं स्वयं में रहकर स्व को और पर को जानता, अनेकरूप परिणमित ज्ञान, इसलिये अनेक हो गया है - ऐसा नहीं। ज्ञान की पर्याय तो एकरूप स्वयं रही है। आहाहा ! यह कहीं लोहा बोहा में (मिले) - ऐसा नहीं है। आहाहा ! उसमें कहीं (नहीं) आहाहा ! सोना जवाहरातवाले लो ना बड़े सेठ हों, (धूलवाले) वहाँ यह बात नहीं है। आहाहा !

`जिसमें अनेक वस्तुओं के भाव प्रतिभासते हैं' - ऐसे एक ज्ञान के आकाररूप वह है। आहाहा ! इस विशेषण से सभी जीवों के विशेषण कहे न ? जीववस्तु (को) उसके विशेषण से बताते है, कि - ऐसा जीव है। उसे यह विशेषण है। विशेष वस्तु स्वयं, उसमें इन सभी विशेषणों से उसे पहचाना। आहाहा !

एक `**जीवो**' उसकी व्याख्या चलती है यह। `**जीवो चरित दंसणणाण ट्ठिदो**' वह फिर चलेगा। आहाहा ! अमृतचन्द्राचार्य जो कुन्दकुन्दाचार्य को मिले नहीं थे। भगवान के पास गये नहीं थे। परंतु कुन्दकुन्दाचार्य के पेट में जो भाव कहना चाहते थे भाषा में, वह भाव खोला है। आहाहा ! ऐसी टीका भरतक्षेत्र में अभी अन्य तो नहीं परंतु दिगम्बरों में इस समयसार की ऐसी टीका - ऐसी अन्य जगह नहीं। आहाहा ! एक बार तो इसे पूरा हिलाकर रख दे। आहाहा !

पर से भिन्न प्रभु तुम, पर से भिन्न लगता है। आहा ! पर को जानने पर भी पररूप होकर जानते हो - ऐसा नहीं। पर को जानते समय भी अपनेरूप रहकर होकर, तुम जानते हो। किरणभाई ! भाषा तो सरल है। ऐसी बातें है बापू क्या हो ? आहाहा !

पर का कुछ कर सकता तो नहीं, क्योंकि पर के आकार - ऐसा कहा न ! वह तो पररूप है, यहाँ - ऐसा आया न ? `अपने और परद्रव्य के आकारों को'... परद्रव्य परद्रव्यरूपे है उसके द्रव्य-गुण-पर्याय, अपने अपने द्रव्य-गुण-पर्याय हैं और सामर्थ होने से... उसे `प्रकाशने का सामर्थ होने से' पररूप होकर नहीं... अपने ज्ञानमें से हटकर पर को जानता है - ऐसा नहीं... आहा ! अपने ज्ञान के अस्तित्व में रहकर, स्व और पर के आकारों को जानने पर भी `एकरूप रहता है' एक में से दो होते नहीं। आहाहाहा !

यह ज्ञान स्वयं को जाने तथा पर को नहीं जानता। ऐसेकहनेवालों का निषेध किया। ***ज्ञान अपने को ही जानता है, पर को नहीं जानता `पर को जानता नहीं' किस अपेक्षा से ? पर में तन्मय होकर पर को जानता नहीं। परंतु पर को परमें***

तन्मय हुये बिना अपने में रहकर पर को पररूप बराबर जानता है। आहाहा !

`इस विशेषण से ज्ञान अपने को ही जानता है पर को नहीं जानता' - ऐसा एकाकार ही माननेवालों का, तथा अपने को नहीं जानता परंतु पर को ही जानता है - `ऐसे अनेकाकार माननेवालों का व्यवच्छेद हुआ', स्वयं स्वयं को नहीं जानता पर को ही जानता है - ऐसा माननेवाले है। आहाहा ! यह शरीर है, यह वाणी है, यह धंधा है उसे ज्ञान जाने - इसप्रकार ज्ञान पर को जानता है। अपने को नहीं जानता ! अरे परंतु, पर को जानने के समय जाननेवाली पर्याय अपनी है कि पर की है? वह अपने में रहकर पर को जानती है, कि पररूप होकर पर को जानती है, तो स्वयं अपने से स्वयं सिद्ध है उसे जाने, उसे क्यों न जाने ? आहाहा !

अपने को नहीं जानता परंतु पर को जानता है - ऐसा अनेकाकार ही (ज्ञान को) माननेवालों का व्यवच्छेद हुआ। लो ! अब विशेष कहेंगे।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. ११ गाथा-२ ता. १८-६-७८ रविवार जेठ सुद-१३ सं.२५०४

समयसार गाथा-२ (जीव का) अधिकार चलता है कि जीव-जीव... जीव किसे कहें? इसके बहुत विशेषण पहले आ चुके हैं।

उसे उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला भी कहा है न भाई ! यह क्या कहा यह ? कि वस्तु है उसकी पर्याय बदलती है। नई नई अवस्था होती है पुरानी अवस्था जाती है, बदलती है न, विचार बदलते हैं, जो बदलती वह उसकी नयी दशा उत्पन्न होती और पुरानी का नाश होता है, और वस्तु है जो अंदर ध्रुव वह कायम रहती है उत्पाद-व्यय-ध्रुव सहित वह तत्त्व जीव है... और वैसे भी कहा न गुणपर्यायवाला (द्रव्य) वह वस्तु जो है। गुण अर्थात त्रिकाली रहनेवाले, यह वस्तु जो है आत्मा अंदर, जो त्रिकाल रहती है इस अपेक्षा से ध्रुव (है), और नयी-नयी अवस्था पलटती है इसलिये पर्याय, पर्याय अर्थात हालत-दशा। वह गुण पर्यायवाला (द्रव्य) वह द्रव्य है। वह समुदाय अभी जीव को सिद्ध करता है। - ऐसा कहा (जीव) दर्शन ज्ञानमय है। ***जयसेनाचार्य की टीका में तो इस प्रकार लिया है जीव है वह निश्चय से अपने आनंद और ज्ञान प्राण से जीता है इसलिये निश्चय जीव।*** वस्तु है न। अस्ति है न। है तो उसकी

अस्ति है ऐसी शक्ति गुण है न। तो आनंद और ज्ञानादि उसके गुण है, उन प्राणों से कायम जीता (है), टिकता है इसलिये हम उसे जीव कहते हैं।

और दूसरी तरह से भी लिया कि, अशुद्धभाव प्राण से जीता है न यह। भावप्राण यह आयु, मन, वचन, काया के योग से जो प्राण है अशुद्धदशा विकारी उसके प्राण से जीता है। टिकता है यह भी एक अशुद्ध निश्चयनय से कहा है और असद्भूत, व्यवहार से दशप्राण से जीता है अथवा जड़, निमित्त है न यह, पांच इन्द्रिय इन्द्रिय आदि तो जड़ पर हैं। उससे जीव (जीता है) - ऐसा असद्भूत व्यवहार से भी कहलाये।

अब अपना यहाँ आया है यहाँ `फिर वह कैसा है', यहाँतक आया है। है ? भाई को बताओ; कैसा है यह जीव ? वस्तु है न तत्त्व है न पदार्थ है। जैसे यह जड़ है, यह जिसप्रकार अस्ति है तत्त्व, इसीप्रकार चैतन्य उसका जाननेवाला ज्ञाता। जानने में आता है इस वस्तु से जाननेवाला भिन्न पदार्थ है। यह भिन्न पदार्थ है उसके सभी विशेषण प्रयोग किये हैं। यह जीव कैसा है ? वह शक्ति और अवस्थावाला है, उत्पादव्ययध्रुववाला है, दर्शनज्ञान स्वरूप है, यहाँ फिर वह कैसा है ? विशेष बात करते हैं।

अन्य द्रव्यों के जो विशेष गुण - वह जीव में (और) अन्य, दूसरे द्रव्य (में) नहीं। यह शरीर, वाणी कहीं जीव में नहीं `अन्य द्रव्यों के' है न ? विशिष्ट जो खास गुण - ऐसा कह कर दूसरे पदार्थ भी सिद्ध किये। आकाश नाम का पदार्थ है कि जो सभी पदार्थों को रहने के लिये जगह देता है। ऐसी एक अरूपी चीज है, बहुत लम्बी वस्तु सिद्ध करने जायें तो समय लगे, आकाश नाम का एक पदार्थ है। उसका गुण अवगाहन है, अवगाहन अर्थात ? उसमें दूसरे पदार्थ रहें - ऐसा गुण को अवगाहन कहते हैं। तो यह अवगाहन गुण आकाश का है। यह आत्मा में नहीं - ऐसा सिद्ध करना है। है ? सूक्ष्म बात है। शुरूआत के श्लोक सूक्ष्म है।

`द्रव्य के जो विशिष्ट (खास) गुण' - अवगाहन-आकाश का अवगाहनगुण। एक धर्मास्ति नाम का तत्त्व है, उसका गति स्वभाव है अर्थात कि जड़-चेतन गति करते हैं उसमें यह धर्मास्ति तत्त्व निमित्त है उसका गति स्वभाव है। एक अधर्मास्ति है। जीव और जड़ स्थिर रहें, अपनी शक्ति से, तब उसमें निमित्तरूप से जो द्रव्य है उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं स्थिति। `वर्तना' यह एक काल द्रव्य है। असंख्य कालाणु हैं, जो प्रत्येक पदार्थ बदलता है-परिणमित होता है जो उसमें निमित्तरूप में है, उसे काल द्रव्य कहते हैं, आहा ! है ? और रूपीपना... वर्तना हेतुपना वह काल और रूपी यह जड़ यह शरीर फिर कैसा रूपी है जड़, जिसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श है रूपीपना वह जड़ का गुण है। यह गुण आत्मा में नहीं।

`उसके अभाव के कारण' दूसरे द्रव्य के जो खास गुण हैं वह गुण आत्मा में अभाव होने के कारण... अरे ! ऐसी बातें है। तत्त्व की वस्तु बहुत महगी हो गई। लोग अभ्यास नहीं करते और बाहर में रूक गये हैं, मूल चीज क्या है ? चैतन्यवस्तु, उससे दूसरे पांच पदार्थ भिन्न हैं, इन पांच पदार्थों के जो खास गुण हैं, उन गुणों का इसमें अभाव है। है ?

`रूपीपनाके अभाव के कारण और असाधारण चैतन्य रूपता अर्थात् ज्ञान स्वभाव के सद्भाव के कारण'... उसका तो चैतन्य जानना देखना यह स्वभाव है। कायमी त्रिकाली जानना और देखना - ऐसा चैतन्य स्वभाव, यह चेतन आत्मा का चैतन्यस्वभाव कायम होने से दूसरे पदार्थ के गुणों का इसमें अभाव है। अपने गुणों का उसमें सद्भाव है। आहाहा ! `चैतन्यरूप स्वभाव के सद्भाव के कारण' आकाश, धर्म, अधर्म, काल और पुद्गल-इन पांच द्रव्यों से जो भिन्न है... चैतन्यवस्तु, यह जगत के पांच पदार्थों से भिन्न है। उससे यह भिन्न जुदा है। आहाहा ! यह है नहीं, शरीररूप है नहीं, दूसरे रूप नहीं, कर्मरूप नहीं, आकाश और धर्म-अधर्मरूप भी आत्मा नहीं। आहाहा ! बहुत सीखना पड़े... अनादिकाल से वास्तविक चीज क्या है और यह किस प्रकार परिभ्रमण करता है, और जन्ममरण का परिभ्रमण बंद कैसे हो, यह चीज कोई अलौकिक है। आहाहाहा !

यहाँ कहते हैं। दूसरे द्रव्यों के जो गुण हैं उनका आत्मा में अभाव है। इन पांच द्रव्यों से वह भिन्न है क्योंकि (उनके) गुण इसमें नहीं इसलिये उन द्रव्यों से भिन्न है। इस विशेषण से एक ब्रह्मवस्तु को ही माननेवालों का निराकरण हुआ। एक ही आत्मा व्यापक है - ऐसा कितने ही मानते हैं, वेदांत, सर्वव्यापक एक आत्मा (मानते हैं) उनका निराकरण हुआ, कहा कि यह बात तुम्हारी गलत है। एक नहीं। (श्रोता :- दूसरे कहते हैं (कि) आप गलत हैं) वह मानें न मानें वस्तु सिद्ध करके तो कहते हैं कि दूसरे पदार्थ में गुण हैं, तो इन गुणोंवाला द्रव्य है। वह गुण (आत्मा में) इसमें नहीं, इसलिये उनद्रव्य स्वरूप आत्मा नहीं। न्याय से लोजिक... बाहर में धर्म के नाम पर दूसरे रास्ते चढ़ा दिया बिचारे लोगों को। तत्त्व अंदर क्या वस्तु है। अस्तित्वरूप में मौजूदगी चीज अंदर अनादिअनंत है और वह अपने गुणवाली, शक्तिवाली है। वह दूसरों के गुणवाली नहीं इसलिये वह दूसरे द्रव्यों का जिसमें अभाव है। (ऐसी है)... आहा !

और वह कैसा है ? इसका आखरी बोल... `अनंत अन्य द्रव्यों के साथ अत्यंत एक क्षेत्रावगाहरूप रहने पर भी' क्या कहते हैं ! भगवान यह चेतन वस्तु जानने देखने (वाली)... अन्य दूसरे द्रव्य एक जगह रहते हैं। देखो न ! यह शरीर यहाँ

है, वाणी यहाँ है, आत्मा यहाँ है, दूसरे तत्त्व भी यही है। इसप्रकार एक जगह आत्मा और दूसरे पदार्थ रहने पर भी... है ? `एकक्षेत्रावगाह (अर्थात) एक क्षेत्र में रहने पर भी' `अपने स्वरूप से नहीं छूटने पर', स्वयं स्वयं के स्वरूप से कभी छूटता नहीं। यह चैतन्य स्वरूप है। जानना देखना जिसका स्वरूप है, वह दूसरे अन्य द्रव्यों के साथ एक जगह मिले हुये रहने पर भी अपने चैतन्य स्वरूप से उसका नाश नहीं होता। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात भाई ! अभी तो (बहुत) कहना है। फिर उसका स्वसमय और परसमय। यहाँ तो अभी `जीवो' - ऐसा है, इतनी बात सिद्ध करते हैं। आहा !

`फिर भी अपने स्वरूप से नहीं छूटने से जो टंकोत्कीर्ण चैतन्य स्वभावरूप है' जाननस्वरूप अस्तिरूप में, सत्‌रूप में, शाश्वत (जिसकी) शुरूआत नहीं, आदि नहीं, अंत नहीं - ऐसा चैतन्य स्वरूप जिसका गुण है। - ऐसा आत्मा अनादि से है। आहाहा !

`है' उसकी शुरूआत नहीं होती `है' उसका नाश नहीं होता। `है' वह अपने गुणों से खाली नहीं होता... यह तो सभी महासिद्धांत हैं। आहाहा ! टंकोत्कीर्ण अर्थात जैसा है वैसा अनादि से चैतन्य स्वभावरूप है। `इस विशेषण से वस्तु स्वभाव का नियम बताया' वस्तु स्वभाव की स्थिति जिसप्रकार हो उसप्रकार बताया - ऐसा जीव नामका पदार्थ समय है। समुच्चय बात की। अंदर वस्तु चैतन्यस्वरूप और चैतन्यगुणवाला तत्त्व, इससे दूसरे तत्त्व दूसरे गुणवाले... उनगुणों का इसमें अभाव है इसलिये, उन द्रव्यों का भी इसमें अभाव है। एक जगह रहने पर भी अपने स्व चैतन्यगुण से कभी भी, `छूटता नहीं' पररूप होता नहीं वह स्वपना छूटता नहीं। आहाहा !

शरीर, शरीर रूप रहा हुआ है, वह शरीर आत्मापने होता नहीं, और उसे शरीर का शरीरपने से अभाव होता नहीं। इसीप्रकार आत्मा, आत्मापने रहता है, वह शरीररूप होता नहीं, और अपने स्वभाव से रहित होता नहीं। आहाहा ! है तो लोजिक, परंतु सूक्ष्म बहुत बापू ! अभी तो...? स्थूल चलता (है) परन्तु मार्ग सूक्ष्म बहुत बापू ! जन्म मरण रहित होने का पंथ, बहुत अलौकिक है। आहाहा !

अब - ऐसा जो जीव `सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशने में समर्थ - ऐसा केवलज्ञान'... अब क्या कहते हैं ? आत्मा में केवलज्ञान जब उत्पन्न होता है,... पूर्णज्ञान क्योंकि पूर्ण ज्ञान स्वरूप प्रभु है ज्ञानस्वरूप कहा न ? चैतन्य स्वरूप है। तब चैतन्य स्वरूप है। अर्थात् पूर्ण चैतन्य स्वरूप है, पूर्ण चैतन्य स्वरूप अर्थात् सर्वदा स्वभावी है उसका जिसने ध्यान करके, जिसकी दशा में केवलज्ञान (प्रगटा)... एक समय में तीनकाल, तीनलोक जानने में आता - ऐसा जो केवलज्ञान उत्पन्न हो... `इस केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति का उदय होने से'... आहाहा !

अर्थात क्या कहते हैं ? कि चैतन्य स्वरूप जो अंदर है वह इस शरीर, वाणी से भिन्न भेदज्ञान और पुण्य और पाप के विकल्प के वृत्तियाँ राग उनसे भिन्न - ऐसा राग और पर से भेदविज्ञान प्रगट होने से,... पर से भिन्न करने की भेदज्ञान की कला प्रगट करने से... एक तो जीवद्रव्य सिद्ध किया, दूसरे द्रव्य सिद्ध किये, इसमें (आत्मा में) दूसरे द्रव्यों के गुण नहीं, इसलिये दूसरे द्रव्य भी इसमें नहीं और अपना चैतन्य स्वभाव है, यह एक जगह दूसरे तत्त्व रहे हुए होने पर भी अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं।

अब इस स्वभाव की पूर्ण प्राप्ति जब होती है... उसे केवलज्ञान-सर्वज्ञज्ञान कहते हैं। जैसे लेंडी पीपल में ६४ पुरी चिरपिराहट भरी है। छोटी पीपल-छोटी पीपल, कद में छोटी, राग में काली, परंतु उसका चरपरा स्वभाव १००% है। अतः १०० बार घिसने पर १००% चरपरापन बाहर आता है। छोटी पीपल में चिरपराहट होती है न ? परंतु यह अंदर थी वह चोंसठ पुरी शक्ति... चोंसठ पुरी प्रतिशत अर्थात रूपया सोलह आना (पूरा) उस छोटी पीपल में भी चोंसठ पुरी अर्थात पूरापूरा चरपरापना था। इसलिये घिसने से बाहर आया है। लकड़ी को और कोयले को १०० बार घिसें तो ६४ पुरी चरपराहट बाहर नहीं आये कारण कि उसमें वह नहीं। परंतु इस पीपल में तो (चिरपरापन) है। है ? रूपया-रूपया पूरा। हरा रंग और चिरपरापना पूर्णता, यह एक लेंडी पीपल के दाने में पड़ी है। तो है... वह बाहर आती है। प्राप्त की प्राप्ति है।

इस प्रकार भगवान आत्मा... उसमें यह सर्वज्ञस्वभाव शक्ति-गुण है। सर्वज्ञ कहो कि पूरण ज्ञान कहो १००% अर्थात पूरण ज्ञान कहो। आहाहा ! पीपल की बात बैठती है परंतु यह (ज्ञायक की) बात। आहाहा ! पूरण ज्ञान अंदर है (आत्मा में) ६४ पुरी अर्थात रूपया सोलह आना। - ऐसा पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनंद स्वरूप प्रभु को जब वर्तमान में केवलज्ञान होता है तीनकाल, तीनलोक को जाननेवाला ज्ञान, `**ऐसे केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति का उदय होने से।** आहाहा ! भाषा देखो न कितना स्पष्ट किया है। किसी आत्मा को केवलज्ञान पूरणज्ञान प्रगट करने के लिये किसी दया दान भक्ति पूजा के पुण्य भाव काम करते नहीं। उनसे तो भेद विज्ञान, यह राग और पर द्रव्य से भेद भिन्न करने के भेदज्ञान, और स्वयं भेद है, इसलिये पर से भेदविज्ञान ज्योति प्रगट करने से उस भेद विज्ञान ज्योति से उसकी पर्याय में वह जिसप्रकार छोटी पीपल में चौषठ बार घिसने से जो अंदर शक्ति थी, प्राप्त की प्राप्ति ६४ पुरी चिरपराहट आती है। इसीप्रकार भगवान आत्मा को राग और पर से भिन्न करके अंतर में एकाग्रता करने से जो शक्ति में सर्वज्ञ

स्वभाव है वह पर्याय में सर्वज्ञपना उसे प्रगट होता है।

यह सभी सिद्धांत... ऊँचे है। यह तो कोलेज है। वस्तु (स्वरूप) यदि पहले जानना हो तो यह इसका (स्वरूप) समझ आये। आहाहा ! क्या कहा यह? कि जैसे यह पिपल में ६४ पुरी चरपराहट भरी है, वह घिसने से बाहर आती है, इसीप्रकार आत्मा में सर्वज्ञ स्वभाव, `ज्ञ' स्वभाव पूरा भरा है, उसे दया-दान के विकल्प और शरीर, वाणी से भिन्न करनेपर, भिन्न होनेपर, भेदज्ञान करनेपर... उसमें पूरा जो भरा है उस तरफ की एकाग्रता से, पर से भिन्न करके, और स्व में एकाग्र होने पर, वह छोटी पीपल जैसे वर्तमान में कठोर और कम चरपरी है उसे घिसने से, अल्प चिरपराहट को दूर करके और अंदर चिरपराहट पूरी भरी है, वह प्रगट होने पर... भरी थी वह प्रगट होती है, इसीप्रकार आत्मा में राग और दया दान के विकल्प आदि जो पुण्य पाप और शरीर उनसे भिन्न करना, उसमें पूर्ण स्वरूप भरा है, उसमें एकाग्र होनेपर वह केवलज्ञान अर्थात परमात्मदशा-मोक्षदशा उसे उत्पन्न होती है। आहाहा !

मोक्ष दशा उत्पन्न होने का उपाय (यह है) कि रागादि विकल्प है, वह दुःखरूप है, उससे मुक्त होना, और पूर्ण स्वभाव में एकाग्र होना। दुःख से मुक्त होना वह मुक्ति और उसके स्थान में अतीन्द्रिय आनंद और अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होना वह अस्ति। आहाहा ! शब्द भी एक एक सूक्ष्म है। ख्याल है दुनिया की सभी खबर है। यह रास्ता अगल प्रकार का है भाई ! आहाहा !

`केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली... लिखा है न ?' `सर्व पदार्थ के स्वभाव को प्रकाशने में समर्थ - ऐसा केवलज्ञान, पूरणज्ञान जब प्रगट होता है आत्मा में, तब वह सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशने में समर्थ है। पहले तो यह सिद्धांत सिद्ध किया। दूसरा यह केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति प्रगट होने से... आहाहा ! व्यवहार करते करते केवलज्ञान होगा - ऐसा नहीं आया इसमें भाई ! यह दया, दान, व्रत, भक्ति पूजा ऐसे व्यवहार सदाचरण करो यह करते-करते सर्वज्ञपना मोक्ष होगा - ऐसा नहीं। आहाहा !

उनसे भिन्न करते हुये, स्वभाव जो परिपूर्ण है उसमें एकाग्र होते... इसमें से हटते और इसमें रहते। आहाहा ! `पर से खस, स्व में बस यह टूंकूटच, यह तेरे लिए बस'... आहाहा ! कठिन सिद्धांत है बापू ! आहाहा ! यह यहाँ कहते हैं पर से हटो, भेद करो, राग चाहे तो दयादान का हो परंतु उससे भिन्न... भेद करो और स्वरूप जो है उसमें बसो, एकाग्र हो। तब वह भेदज्ञान द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति, कि जो केवलज्ञान सर्व पदार्थों को जाननेवाला है वह केवलज्ञान उत्पन्न होगा। आहाहा !

जैसे ६४ पुरी चिरपराहटमें से ६४ पुरी चरपराहट बाहर आती है, इसीप्रकार

अंदर सर्वज्ञ स्वभाव में एकाग्र होने पर, और राग से भिन्न पड़ने पर सर्वज्ञ स्वभाव शक्तिरूप है वह पर्याय में अवस्था में प्रगट होता है। आहाहा ! समझ में आया?

ऐसी बात है भाई ! बहुत लोग तो कहीं बाहर में अटके हैं। भगवान की भक्ति करें ईश्वर की भक्ति करे न ! अब ईश्वर की भक्ति करे यह तो राग है और तुम्हारा माल वहाँ कहाँ है कि वहाँ से आये ? तुम्हारा तो यहाँ पड़ा है अंदर। जो कुछ प्रगट करने की तुम्हें धर्मदशा शांत दशा प्रगट करने की भावना हो, तब वह शांत दशा ? तुम्हारी शांत दशा क्या भगवान के पास है ? तुम्हारी शांत दशा प्रगट करने की शांति से भरा हुआ तत्त्व तुम्हारा है। प्राप्त की प्राप्ति है 'है' उसमें से आयेगी। भगवान के पास से उसमें से तुम्हारा आयेगा ? समझ में आया ? आहाहा ! इन दो लाइनों में तो बहुत है। आहाहा !

- ऐसा जो जीव कहा... जीव कहो कि आत्मा कहो। 'सर्व पदार्थ के स्वभाव को प्रकाशने में समर्थ' आहाहाहा ! प्रभु ! आत्मा को जब केवलज्ञान होता है... अकेला ज्ञान प्रगट रहता है, विकार नहीं और अल्पज्ञता नहीं। पूर्ण ज्ञान होता है जब आत्मा को, वह केवलज्ञान है। वह केवलज्ञान सर्व पदार्थों के स्वभाव को जानने में समर्थ है। वह केवलज्ञान राग और परद्रव्य से भिन्न आत्मा को भिन्न जानने पर हुआ, जिसमें यह ज्ञानपना पूरा भरा है, उसमें एकाग्र होने से, पर से एकाग्रता छूटने पर स्व में एकाग्रता करनेपर वह भेदज्ञान की ज्योति से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा !

भेदज्ञान कहो कि मोक्षमार्ग कहो, केवलज्ञान कहो कि मोक्ष कहो (एकार्थ है) आहाहा ! इसमें कितना याद रहे ? सब अन्जान जैसा लगे, जगत की सब बातों की खबर है। बापू मार्ग कोई भिन्न है भाई... धरम, यह धरम प्रगट होना... धरम अर्थात आत्मा की शांति, वीतरागता, निर्दोषता, स्वच्छता वह प्रगट होना वह कहाँ से प्रगट हो ? कहते हैं कि पर से, हटकर, पर से भिन्न होकर और जिसमें यह शक्तियाँ भरी हैं उसमें एकाग्रता होने पर, वह स्वच्छता से भरपूर भगवान है, वह प्रभु अतीन्द्रियज्ञान से पूरा भरा है निजात्मा। अतीन्द्रिय आनंद के स्वभाव से भी परिपूर्ण प्रभु है। आहाहा !

जो वस्तु हो, उसका स्वभाव अपूर्ण नहीं होता। पूरण स्वभाव से भरा हुआ भगवान (आत्मा) उसमें एकाग्र होने से और पर से भिन्न पड़ने से... अस्ति नास्ति की, पर से नास्ति और स्व से अस्ति, उसमें एकाग्रता- ऐसा जो भेदविज्ञान वह मोक्ष नाम पूरणज्ञान उत्पन्न होने का कारण है। आहाहा ! इसके लिये अब फुरसत किस दिन मिले ? सारे दिन 'धंधा पानी पत्नी-बच्चे सम्हालना, धंधा करने में... अभी धरम तो नहीं परंतु पुण्य का भी ठिकाना नहीं कि दोचार घण्टे सत्य ऐसी चीज है - ऐसा पढ़ना, विचारना, सुनना, इतना ही समय न मिले। हिम्मतभाई ! आहाहा !

यहाँ तो एकदम भगवान आत्मा को सिद्ध किया 'जीवो' आहाहा ! - ऐसा- ऐसा है गुणपर्यायवाला, उत्पादव्ययध्रुववाला, दर्शनज्ञान स्वरूप वगैरह यह जीव... ***दूसरे तत्त्व है, दूसरे तत्त्व न हों तो दूसरे तत्त्वों के लक्ष्य से विकार होता है वह विकार न हो। अपने स्वभाव के आश्रय से विकार नहीं होता। क्योंकि स्वभाव में विकार है ही नहीं।*** इसलिये जो विकार होता है पुण्य और पाप का, वह परद्रव्य के लक्ष्य से होता है। इसलिये परद्रव्य और परद्रव्य के गुण का जिसमें अभाव है अर्थात इसे पर द्रव्य का लक्ष्य करना ही नहीं। आहाहा !

तुम्हारे में ही भरे हुये... उस पीपल में जैसे हरा रंग भरा हुआ है, काले रंग का नाश होकर वह हरा प्रगट होता है। अंदर भरा है। हरा कहीं बाहर से आता नहीं। हरी होती है न वह पीपल को घिसो तब, हरा रंग, हरा रंग उसमें रंग रहता है वह बाहर आता है।

इसप्रकार प्रभु आत्मा में हरा नाम अनंतज्ञान... आहाहा ! और चिरपरा नाम अनंत आनंद, अनंत वीर्य, अनंत दर्शन, अनंत स्वच्छता अनंत प्रभुता... ऐसी शक्ति से भरा हुआ जीवतत्त्व है। उसे केवलज्ञान अर्थात् मुक्ति प्राप्त करनेवाले को पर द्रव्य से भिन्न करके, अपने पूरण स्वभाव में पूर्ण पर्याय प्रगट करने के लिये, अपने पूरण स्वभाव में एकाग्र होने पर वह भेदज्ञान से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा ! ईश्वर की भक्ति और करोड़ों रूपया का दान (करे) और माला जपे माला, णमो अरहन्ताणं णमो अरहंताणं... वह सभी विकल्प और राग है, उससे तो भेद करे, भिन्न करे, क्योंकि स्वरूप में वह राग नहीं है स्वरूप में तो ज्ञानदर्शन तथा आनंद से भरा हुआ स्वरूप है। वह राग से खाली है और शुद्ध स्वभाव से भरा हुआ है। ***आहाहा ! वस्तु जो हो वह अपने स्वभाव से अपूर्ण नहीं हो, और वस्तु जो हो उसमें विकार न हो विकार तो उसकी वर्तमान दशा में होता है त्रिकाली में नहीं होता, त्रिकाली में जो विकार हो तब विकार किसी दिन मिटे नहीं और सुखी किसी दिन हो नहीं। आहाहा !***

'सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशने में समर्थ - ऐसा केवलज्ञान'। यह तो केवलज्ञान की सिद्धि की। कोई - ऐसा कहे कि आत्मा को तीनों कालों का ज्ञान होता ही नहीं। सर्व पदार्थों के स्वभाव को जाननेकी शक्ति आत्मा में है ही नहीं, उसे यहाँ झूठा ठहराया है। आहाहा !

भाई वास्तव में तो तुम्हारा 'ज्ञ' स्वभाव है न 'ज्ञ' 'जानना' यह स्वभाव है न ! यह किसका स्वभाव है। शरीर का ? राग का ? कर्म का ? यह जानना तो चैतन्य का स्वभाव है, आत्मा का और जिसका जो स्वभाव है यह 'ज्ञ' स्वभाव वह अपूर्ण न हो, जिसका स्वभाव है अपना भाव वह अपूर्ण न हो, विपरीत न हो। आहाहा !

यह पूरण स्वरूप है यह पूर्ण शक्तिरूप पूरण स्वभाव है ! उसे राग दया-दान विकल्प से भी भिन्न करके, क्योंकि उसमें पूर्ण होने की शक्ति नहीं। राग में व्यवहार में; पूरण होने की शक्ति नहीं। वह शक्ति तो स्वभाव में है। इसलिये स्वभाव में एकाग्र होने पर, त्रिकाली चैतन्य स्वभाव में एकाग्र होनेपर, और राग की पुण्य पाप की क्रिया से भिन्न होते, जो सर्वपदार्थों को प्रकाशने में समर्थ है वह भेदज्ञान ज्योति से केवलज्ञान होता है। आहाहाहा !

इसमें कितना याद रखना ? सभी नये सिद्धांत लगें... नये नहीं, बापू ! तुम्हारा स्वरूप ही यह है। तुमने जाना नहीं अपने को, यह चीज अभी सभी लुप्त हो गई है आहाहा ! वह अब बाहर आती है। आहाहा !

भाई तुम कौन हो ? जैसे उस पीपल में १००% अर्थात रूपया पूरा रूपया कहों, सोलह आना, पूरण स्वभाव से भरी हुयी चिरपराहट वह वस्तु है, इसीप्रकार यह भगवान आत्मा वस्तु है यह सोलह आना अर्थात पूरण ज्ञान और आनंद से भरी हुयी शक्तिवाला यह तत्त्व है। आहाहा ! इस शक्ति में एकाग्र होने पर, जब इस शक्ति में एकाग्र होना है तब पर तरफ से खिसक जाना है, पर तरफ से भिन्न पड़े बिना, स्व में एकाग्र नहीं हो सकते और शक्ति में एकाग्र हुये बिना उसकी दशा में परिपूर्ण ज्ञान और परिपूर्ण आनंद कभी भी प्रगट नहीं होगा ! समझ में आया ?

प्रवीण भाई ? ऐसी बातें है, दुनियाँ को पागल जैसा लगे - ऐसा है। पूरी लाइन में फरक है, हैं ? पूरा मार्ग भिन्न है बापू, तुम्हें ख्याल नहीं भाई ! अनंत काल का अनजान मार्ग... उसे यहाँ जानने को कहा है। पूर्ण की प्राप्ति इससे होगी। पूरण परमात्मा दशा जनम-मरण रहित दशा, यह राग से भिन्न और पूरण स्वभाव में एकाग्रता... इससे होगी। आहाहा !

इसमें तो कोई कुछ माने और कोई कुछ माने इसप्रकार अज्ञानी अनादि से भ्रम में पड़ा है, परिभ्रमण करके, चौराशी के अवतार... कौए और कुत्ते के अवतार कर करके, मुश्किल-मुश्किल से मनुष्यपना मिला हो, उसमें यह रीति नहीं समझे, अंत में वही के वही अवतार है। आहाहा !

यहाँ तो इस अवतार को अभाव करने का उपाय बतलाते हैं। आहाहा ! कि जिसमें यह भव और भव का भाव जिसके स्वरूप में नहीं, जिसके स्वभाव में तो परिपूर्ण ज्ञान आनंद है। आहाहाहा ! भाई, तुम वस्तु हो, वस्तु है उसमें शक्ति और गुण बसे हुये-रहते हैं। यह शक्ति-गुण बिना वस्तु हो सके नहीं, और पूरिपूर्ण आनंद ज्ञानादि परिपूर्ण गुण और शक्ति है। तो जो तुम्हारी चीज में नहीं - ऐसा यह शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के भाव, उनसे भिन्न होकर और तुम्हारे में जो पूर्ण पड़ा है,

इसमें उसका आदर करके, उसमें एकाग्र होकर, तुम्हें तुम्हारी दशा में केवलज्ञान, मुक्त दशा, दुःख से मुक्त और आनंद ज्ञान से सहित होगी तुम्हारी दशा। आहाहाहा !

दो पंक्तियों में तो बहुत भरा है, अकेले सिद्धांत ही हैं। आहाहा !

`जब यह जीव'... - ऐसा कहा न ? जीव की व्याख्या तो की जब यह जीव स्वयं करे तब, कोई कर दे या कोई करा दे- ऐसा है ही नहीं। आहाहा ! `जब यह आत्मा, सर्वपदार्थों के स्वभाव को प्रकाशने में समर्थ - ऐसा केवलज्ञान सर्वज्ञ ज्ञान'... यह पूर्ण ज्ञान प्रगट करे तो इसका अर्थ है कि अंदर पूर्ण ज्ञान है। अन्दर में केवल... केवल... पूर्ण एक ज्ञान स्वरूप ही प्रभु है। आहाहा ! अस्ति चैतन्य स्वरूप पूर्ण, ज्ञान और आनंद से पूर्ण है। वह वस्तु... उसका जिसका आदर करना हो, उसे रागादि का आदर छोड़ देना, अर्थात कि इससे भिन्न पड़ना। आहाहा ! चाहे तो दया, दान व्रत भक्ति पूजा हो, यह भी एक राग है, विकल्प है, वृत्ति है (श्रोता :- यह सुनना भी राग है) सुनना भी राग है और कहना भी राग है। आहाहा !

यह तो जन्ममरण रहित होने की बातें है प्रभु ! जन्ममरण तथा चौरासी के अवतार कर करके अनंत अवतार करे, वस्तु है न स्वयं, है तो कहाँ रही अभी तक आत्मा तो है, वह रही चार गतियों के परिभ्रमण में रही। यह कौआ और कुत्ते के भव कर करके नरक के निगोद के और मनुष्य के... आहाहा ! और एक गति में कहीं भी जाय वहाँ दुःख ही है पराधीनता है, स्वर्ग हो तो भी दुःख है पराधीनता है। अरबपति सेठ धूल के धनी कहलाते हैं वह बेचारे सभी दुःखी हैं। आहाहा ! दुःखी हैं बिचारे। आहाहा ! (श्रोता :- पैसा है तब भी बेचारे) पैसा चाहिए है न इनको ? आत्मा चाहिए नहीं, उन्हें यह धूल चाहिए है। यह लाओ, वह लाओ। यह लाओ यह मांगनेवाले भिखारी हैं। अंदर में अनंत आनंद और अनंतज्ञान भरा है। ऐसी लक्ष्मीवाला प्रभु (स्वयं) है अंदर, उसके पास जाता नहीं। जहाँ मिल सकता है वहाँ जाता नहीं। जिसमें से आये नहीं, वहाँ जाकर मांगते रहते हैं और पैसा आये तो वह कोई इसके पास तो आता नहीं। उसके पास तो ममता आती है कि मुझे पैसा आया, कि मुझे पैसा आया, कि मुझे पैसा मिला, ऐसी ममता (अपनापना) पैसा, पैसा में रहता है, जड़ में। आहाहा !

तथा यह तो ऐसी वस्तु है न ! तो यहाँ पूर्णज्ञान प्रगट करने का उपाय कहते हैं न ? तो वह पूर्णज्ञान प्रगट करने के समय की दशा... ऐसी तो अनंती शक्ति जिसमें हो, उसमें एकाग्र हो तो केवलज्ञान हो। आहाहा ! अकेला केवलज्ञान एकही पर्याय हो तो उसमें से पर्याय एक ही आये तो दूसरे समय क्या हो ? आहाहा ! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, छोटे में सूक्ष्म समय में, तीनकाल तीनों लोक को

जाने ऐसी आत्मा में शक्ति, पर्याय में प्रगट होती है, उसे केवलज्ञान कहते हैं। ऐसी तो अनंती अनंती शक्तियाँ अंदर में पड़ी हैं। अन्यथा एक ही पर्याय बाहर आए और इतना ही हो (तब तो) खाली होजाय तो फिर समाप्त होगया। - ऐसा किसी दिन बने नहीं। आहाहा !

सत्य के सिद्धांत बहुत कठिन हैं, बापू ! आहाहा ! अभी तो लोगों (को) धरम के गुरुओं ने कहीं का कुछ चला करके चढ़ा दिया है सभी खबर है दुनियां की आहाहा !

सत् प्रभु है और जो है वह शक्ति बिना का नहीं होता, अर्थात उसके गुण बिना का, स्वभाव बिना का, वह तत्त्व नहीं होता। जैसे (वस्तु) `है' इसीप्रकार उसके गुण भी, शक्ति भी त्रिकाल है। जैसे द्रव्य पूर्ण है उसी प्रकार उसके गुण भी पूर्ण हैं - ऐसा भगवान आत्मा। आहाहा ! अरे ! इसे विश्वास कैसे बैठे ? यहाँ पाँच पचास हजार जहाँ पैसा मिले वहाँ राजी होजाये, धूल में। (श्रोता :- साधारण मनुष्य सेठ हो तो खुशी हो)

मूर्ख है इसलिये खुशी होता है। मूर्ख है तथा मूर्ख किसे कहें ? प्रभु तो अंदर आनंद से भरा है उसकी लक्ष्मी का पार नहीं, अमाप और अमाप और अमाप अपरिमित, अपरिमित अर्थात जिसमें मर्यादा नहीं - ऐसा स्वभाव है बापू ! (जो) जिसका स्वभाव होता है उसकी मर्यादा नहीं होती।

- ऐसा जो आत्मतत्त्व जिसमें अपरिमित, मर्यादा बिना का स्वभाव और शक्तियाँ पड़ी हैं, उसे विश्वास (में) लेकर तथा पुण्य और पाप के भाव एवं बाहर के उनके फल... उनका विश्वास छोड़ दो। आहाहाहा ! उसमें मैं नहीं, उससे मुझे कुछ लाभ नहीं। आहाहा ! जिसमें मैं हूँ उससे मुझे लाभ है। - ऐसा अपना स्वभाव जैसे अनादि से स्वभाववान है, उसीप्रकार उसका स्वभाव... स्वभाववान हो और स्वभाव न हो ? शक्कर हो और मिठाश न हो - ऐसा बने ? (कभी न....) इसीप्रकार आत्मा स्वभाववान है और उसका स्वभाव आनंद और ज्ञान न हो - ऐसा तीनकाल में बने नहीं। आहाहा ! और जिसका स्वभाव होता वह परिपूर्ण होता है। स्वभाव, अपना भाव, अपना सत्व, अपनी शक्ति, अपना गुण, अपना स्वभाव। आहाहा ! ऐसे आत्मा में एकाग्र होने से और राग तथा शरीर की क्रिया से भिन्न होने पर उसे सर्व पदार्थों को प्रकाशने में समर्थ ऐसी केवलज्ञान ज्योति प्रगट होती है।

कल वह भाई कर रहे थे न ! शुभ राग, दया, दान, व्रत शुभराग ? सभी व्यक्तियों ने धरम मना दिया है। वृत्ति उठती है, वृत्ति विकल्प है राग है। आहाहा ! उससे भिन्न होने पर, स्वरूप में अभिन्न होनेपर `पर से विभक्त और स्व से एकत्व'

तीसरी गाथा में कहेंगे। आहाहा ! समझ में आया ?

अब इसमें देव-गुरु-शास्त्र से भी मिले - ऐसा नहीं - ऐसा यहाँ आया है। यहाँ तो जो यह गुण है, वह इसमें नहीं और उसके गुण जो है वह इसमें नहीं। तब जहाँ गुण है वहाँ जाये तो मिले, वह गुण वहाँ नहीं उनके पास। (श्रोता :- भले वह जानता नहीं तो उसे बतानेवाला तो चाहिए न ?) बतानेवाला चाहिए परंतु `जाननेवाला जाने' तब बतानेवाले ने बताया - ऐसा कहलाये देखो न ? यह नरिया कवेलू सोने के हो(गये) लो - ऐसा सुबह नहीं कहते ? सूरज उग गया (हो) और वह उठे नहीं। वह (नरिया) कवेलू सफेद होगये हों। तथा सूरज उगे तो... (श्रोता :- वह धूप हुयी हो।) वह धूप हुयी, तो यदि कवेलू सोना के हों परंतु किसे ? जो देखे उसे कि न देखे उसे ? उन्हें तो कहा कि हे भाई सोने के कवेलू हो गये अब तो उठो कब तक सोते रहोगे ? अर्थात क्या ? नरिया स्वच्छ हों, सूर्य के प्रकाश से परंतु देखनेवाले को ख्याल पड़े कि आँख (वंद कर के सोनेवाले को खबर पड़े ?) कमरा एक हो, दरवाजा एक हो और तीन रजाई ओढ़ी हों, आँखों में कीचड़ भरा हो अब वह किस प्रकार देखे यह ? आहाहा ! समझ में आया कुछ... ?

यह सभी उदाहरण शास्त्र में है हो ? एक एक उदाहरण। इसप्रकार अनादि से मिथ्यादर्शन ज्ञान अज्ञान की (भ्रमणा) उसका कीचड़ तो लगा है अंदर, आंखें तो बंद हैं और कमरा एक ही है दरवाजा खोलकर उसके सामने देखता नहीं, तब उसे सफेद कवेलू कहाँ से दिखे ? आहाहा ! इसप्रकार यह भगवान आत्मा अज्ञान तथा रागद्वेष में सो रहा है, उससे - ऐसा कहें कि यह चैतन्यप्रकाश का पुण्ज अंदर पड़ा है न ? आहाहा ! परंतु बतानेवाले ने बताया परंतु देखनेवाले को देखे बिना विश्वास कहाँ से बैठे ?

वह गुण तो वही है, चैतन्य के सूर्य का तेज है, प्रभु तो चैतन्य तेज है। उस ***सूर्य के प्रकाशरूप तेज को अपने तेज की खबर नहीं। (सूर्य के) प्रकाश की खबर तो इस (आत्मा के) प्रकाश (ज्ञान) को खबर है, चैतन्य प्रकाश जानता है कि यह जड़ प्रकाश है। मैं चैतन्य प्रकाश हूँ।*** आहाहा !

परंतु इसे उसकी महिमा आयी नहीं न ? आत्मा अर्थात क्या तथा कितना तथा क्यों इसकी ऐसी दशा पूर्ण प्रगट हो वह कैसी, कितनी होगी किसी दिन `सुना नहीं, स्वीकार नहीं, फुरसत नहीं, बाईस तेईस घण्टे तो बीबी-बच्चे धंधा और पाप में रूका है। घंटे दो घंटे मिलें तो उसको कुगुरु मिल जायें, जो दूसरे (खोटे) रास्ते में लगा दे। जहाँ है (मार्ग) वहाँ न जायें, और जो (मार्ग) नहीं है उसमें लगा दे उसे, यह पुण्य करो, दान करो, व्रत करो भक्ति करो, जिसमें आत्मा नहीं, और उसमें

से प्रगटे - ऐसा नहीं, उसमें चढ़ा दिया उसे। आहाहा ! सूक्ष्म तो लगे भाई ! आहाहा !

`भेदज्ञान ज्योति का उदय होने से' भाषा देखो ! यह उदय... श्रीमद प्रयोग करते है न ? `उदय होता चारित्र का... उदय नाम प्रगट। आहाहा ! अस्ति है वस्तु है ***आत्मा तो (है) उसकी शक्ति कुछ स्वभाव होगा कि नहीं ? तो जिसप्रकार यह वस्तु स्वयं एकरूप है, पर के अभावस्वभावरूप है; इसीप्रकार इसकी शक्तियाँ एकरूप पूर्ण है और वह भी पर के भाव के अभाव स्वभावरूप है...*** आहाहा !

- ऐसा भगवान आत्मा, सर्वोत्कृष्ट स्वयं परमात्म स्वरूप ही शक्ति से स्वभाव से है। उसमें एकाग्र होने से और राग की क्रिया शरीर की क्रिया और बाहर की क्रिया से भिन्न करके, जुदा करके, केवलज्ञान उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति का उदय होता है। आहाहाहाहा !

परन्तु बाहर में क्या करना, इसमें ? आहाहा !

बाहर का कुछ भी करोगे (तो भी) अंदर का मिले - ऐसा नहीं... लो सुनो। (श्रोता :- परंतु बाहर का कहाँ कर सकता है ?) बाहर में है कहाँ, तुम हो कहाँ ? शरीर में हो ? वाणी में ? जड़ पैसे में ? अरे पुण्य-पाप के शुभ-अशुभ भाव होते उसमें आत्मा है (क्या) ? वह तो राग है। आहाहाहा ! न्याय से थोड़ा लोजिक से - पकड़ेगा कि नहीं ? ऐसे न ऐसी अंधी दौड़ ! अरेरे ! आंख बंद होने पर कहाँ चला जायेगा। देह की स्थिति पूरी हो जायेगी, परंतु आत्मा तो अविनाशी है, वह आत्मा भी साथ में नष्ट हो जाये - ऐसा तो नहीं। शरीर तो नाश हो जायगा यहाँ। भगवान तो - ऐसा का - ऐसा (अनादि अनंत रहेगा)।

और (अज्ञानी) यह हमारा, यह हमारा मानकर अज्ञानपने की पुष्टी करके चला जायेगा, भटकने चौराशी में। आहाहा... वहाँ कही धर्मशाला नहीं, कमजोरों को रहने का स्थान बना नहीं वहाँ मौसी बैठी नहीं है कि आओ भाई ! आहाहा !

जिसमें तुम हो... तुम्हारा स्वभाव है और उस स्वभाव से स्वभाववान खाली होता नहीं प्रभु ! यह स्वभाव पूर्ण है, एक एक गुण (पूर्ण) अनंत गुणों की क्या बात करें आहाहा ! जिसके गुणों की संख्या का अंत नहीं मिले। आहाहा ! वह हरेक गुण परिपूर्ण है और ऐसे परिपूर्ण गुण का पुंज प्रभु यह आत्मा है। इस आत्मा में राग से भेद विज्ञान करके, यह मार्ग है बापू ! दूसरे भले चाहे जिसप्रकार (दूसरे) रस्ते चढ़ाये जीवन चला जायेगा प्रभु, फिर मनुष्यपना अनंतकाल में मिलना मुश्किल होगा ? आहाहा !

दो पंक्ति में तो ओहोहोहो ! फिर कहते हैं... सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशने में समर्थ- ऐसा केवलज्ञान अकेली पर्याय पूर्ण प्रगट हो उसे उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति

उसे पर से भिन्न करने की भेदज्ञान दशा... वह पूर्ण प्राप्ति का उपाय है। वह सर्व परद्रव्य से छूटकर... भेद कहा न ? भेदज्ञान कहा न ? तो सर्व परद्रव्य से छूटकर, पुण्य और पाप आदि के भाव होते, दया, दान आदि के भाव वह भी परद्रव्य राग है, उससे छूटकर, दर्शनज्ञानस्वभाव में निश्चित वृत्तिरूप... आहाहा !

जो ज्ञान-दर्शन-स्वभाव है उसमें नियत-निश्चय परिणतिरूप, अस्तित्वरूप आत्मतत्त्व के साथ एकत्वरूप प्रवर्तता हुआ वर्तता है। आहाहाहाहा ! जब यह भगवान आत्मा, परद्रव्य से छूटकर, अपने ज्ञान-दर्शन-स्वभाव में स्थिर रहे... नियत वृत्ति, निश्चयवृत्ति परिणति - ऐसा अस्तित्वरूप आत्मतत्त्व के साथ एकत्वगतपने वर्तता है, तब दर्शनज्ञानचारित्र, तीनों लेना है न फिर ? पाठ में `चारित्रदर्शनज्ञान' था (यहाँ) फिर ले लिया था यह। (वह तो) पद्य को रचने के लिये... आहाहा !

सर्व परद्रव्यों से छूटकर, इसमें क्या बाकी रहा ? परमात्मा, देव-शास्त्र-गुरु उससे छूटकर... शिवलाल भाई ! केवली, गुरु यह पर द्रव्य ? इनके पिताजी ने प्रश्न किया था सम्वत् २०१० में, चौबीस वर्ष हुये... बोटाद में नगरनिगम के मकान में व्याख्यान चलता था, दश की साल... यह प्रश्न किया कि देव-गुरु-शास्त्र भी पर ? शुद्ध है, वह पर ? लाख बार पर। यहाँ सभी द्रव्य पर कहे हैं न ? इसमें (क्या) देव-गुरु-शास्त्र बाकी रखे ? आहाहा ! सर्व परद्रव्यों से छूटकर आहाहा ! दर्शन-ज्ञान-स्वभाव स्वयं का.... इसमें ज्ञान-दर्शन-चारित्र है न ? नियतवृत्तिरूप - ऐसा अस्तित्वरूप आत्मतत्त्व के साथ एकत्वपने वर्तता है, तब उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित होने से... आहाहाहा ! अंतर स्वरूप श्रद्धा में वर्तता, ज्ञान में वर्ते और स्थिरता में वर्ते, तब वह आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र में आया, इसलिये उसे स्वसमय अर्थात सच्चा आत्मा कहा जाता है। आहाहा ! स्वसमय उसे कहें, उसे आत्मा कहें। आहाहाहा !

(आत्मा) है तो परंतु परिणति में श्रद्धा ज्ञान चारित्र में आये तब उसे हैं ऐसे आत्मा (को) स्वसमय कहें... - ऐसा कहते हैं। क्या कहा यह ? है तो है। आहाहा ! वस्तु तो है अनंत आत्मायें अंदर मौजूद हैं... परंतु उसकी तरफ की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, पूर्णानंद के नाथ में श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की परिणति करे... उसे सच्चा आत्मा कहते हैं और वह स्वसमय नाम आत्मा, आत्मरूप हुआ - ऐसा उसे कहा जाता है और उसे धर्मी कहा जाता है। विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. १२ गाथा-२ ता. १९-६-७८ शनिवार जेठ सुद-१४ सं.२५०४

फिर से... जब यह जीव, जीव की व्याख्या तो की पहले सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ - ऐसे केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदविज्ञान ज्योति का उदय होने से... आत्मा में राग से और विकल्प से... 'भेदज्ञानज्योति' - ऐसा शब्द प्रयोग किया है। यह राग शरीर और कर्म से भिन्न परंतु अस्तित्व उसका चैतन्य ज्योति 'भेदज्ञानज्योति'... ऐसी भेदज्ञान ज्योति का उदय होता है, प्रगट होती है। इस भेदविज्ञान ज्योति से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा ! आत्मा की पूर्ण मोक्ष दशा अर्थात पूर्ण दुःख से रहित दशा और पूर्णअतीन्द्रिय आनंद के लाभ की दशा, वह भेदज्ञान से उत्पन्न होती है। व्यवहार के राग के संबंध से केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता। आहाहा !

यह तो धीर-गम्भीर लोगों की बात है भाई ! यह 'भेदज्ञान ज्योति का उदय होने से'... देखो ! यहाँ भेदज्ञान ज्योति शब्द प्रयोग किया है... सर्व परद्रव्यों से छूटकर... रागादि सभी परद्रव्य उनसे छूटकर 'दर्शनज्ञानस्वभाव में'... दर्शनज्ञान - ऐसा जो स्वभाव- ऐसा जो उसका निश्चय अस्तित्व, दर्शन और ज्ञान - ऐसा जिसका अस्तित्व... मौजूदगी (उपस्थिति)। भगवान आत्मा ज्ञाता दृष्टा, ऐसी जिसकी सत्ता है-मौजूदगी दर्शन और ज्ञान की सत्ता है। यह - ऐसा आत्मतत्त्व... आहाहा ! उसके साथ एकत्वरूप रहे एकत्व परिणमनरूप में अंदर वर्ते। आहाहा ! राग से और विकल्प से भेदज्ञान ज्योति के द्वारा भिन्न करके और केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली तो यह एक ही वस्तु है, आहाहा ! ***व्यवहार रत्नत्रय केवलज्ञान उत्पन्न करने का कारण नहीं। कहीं कहा हो तो वह उपचार से कथन, (किया है) निश्चय के साथ व्यवहार को सहचर देखकर, साथ देखकर, इसका उसमें उपचार किया होता है।*** वस्तुस्थिति यह है। आहाहा !

तब इसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित होने से आत्मतत्त्व जो दर्शन और ज्ञान के अस्तित्ववाला तत्त्व है, ज्ञाता और दृष्टा इसस्वभाववाला जो अस्तित्व मौजूदगी वस्तुतत्त्व है। इसमें जो, है न ? 'एकत्वगतवर्ते' - ऐसा भगवान आत्मा एकपने राग से भिन्न और स्वभाव में एकत्वपने वर्ते, तब दर्शनज्ञान चारित्र में स्थित होने से, चैतन्य ज्ञान और आनंद स्वरूप, उसकी सत्तावाला तत्त्व... विद्यमान पदार्थ उसमें एकरूप जब रहे तब वह दर्शनज्ञानचारित्र में स्थित होने से, तब वह सम्यग्दर्शनज्ञान और चारित्र में स्थित है। समझ में आया ? ऐसी सूक्ष्म बातें है।

जिसको केवलज्ञान अर्थात मुक्ति... मोक्ष जिसे उत्पन्न करना है, उसे भेदज्ञान

ज्योति से वह उत्पन्न होता है। वह राग के व्यवहार के, व्यवहार श्रद्धाज्ञानचारित्र, उससे भिन्न करे, तब वह भेदज्ञान ज्योति द्वारा केवलज्ञान उत्पन्न होता है। इसलिये वह आत्मा में दर्शनज्ञानचारित्र में स्थित हुआ होने से... आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात है, धरम बहुत सूक्ष्म है। आहाहा !

दर्शनज्ञानचारित्र में स्थित होने से... `देखो पाठ में' **`चरितदंसणणाण'** था। परंतु मूल में तो पद्य में रचना करने के लिये, जो मूल था वह अर्थ में इसप्रकार आया। अर्थ करनेवाले ने दर्शनज्ञानचारित्र लिया और टीका में अमृतचन्द्र आचार्य ने भी - ऐसा लिया; वहाँ - ऐसा नहीं लिया चारित्र दर्शनज्ञान।

क्या कहा यह ? **`जीवो चरितदंसणणाण ट्ठिदो'** - ऐसा आया न मूल पाठ में उसका अर्थ - ऐसा किया जीव जब अपने में एकत्वपने दर्शनज्ञानचारित्र में स्थित होकर वर्ते तब उसे आत्मा, स्वसमय आत्मा कहा जाता है। वह जैसा उसका रूप था उसमें यह आया। आहाहाहा !

भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञान स्वरूप उसका रूप, यह उसकी उपस्थिति है। यह बाहर के रागादिक के विकल्प से भेद करके और अपने आत्मतत्त्व में एकत्वरूप आया... रागादि में जाता वहाँ वह बिगड़ता, एकड़े एक और बगड़े बे यह आत्मतत्त्व वस्तु है उसमें एकत्वगत पने, दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित... यह एकत्व। पुण्य तथा दयादान व्रत के राग में स्थित, यह तो दोपना बिगड़ना है। वह कर्म में स्थित है, कर्म के रसरूप भाग में स्थित है, यह आत्मा दर्शनज्ञान जिसका रस है, जिसका स्वभाव है, उसमें वह स्थित नहीं। ऐसी बात है।

तब दर्शनज्ञानचारित्र में स्थित होने से `एकसाथ स्व को एकत्वपूर्वक जानता हुआ' एक साथ आत्मा को एकत्वरूप जानता और `स्व-स्वरूप एकत्वपूर्वक परिणमता - ऐसा जब एकत्वरूप वर्ते प्रभु आत्मा, तब वह `दर्शनज्ञानचारित्र में स्थित होने से' जीव दर्शनज्ञान चारित्र में स्थित होने से, एकसाथ स्व को एकत्वपूर्वक जानता, एक साथ अपने को जानता और स्व स्वरूप एकत्वपूर्वक परिणमता, `जानता और परिणमता' समय का अर्थ करना है... एक समय में जाने और परिणमे ऐसी पीडा है, वह आत्मा है। दूसरी चीज परिणमती है परंतु जानती नहीं। अर्थात वास्तव में समय उसे कहें कि स्वयं स्वयं के स्वरूप को जानता हुआ परिणमें और परिणमता हुआ जाने यह दोनों के एक साथ हों उसे आत्मा कहा जाता है। आहाहा !

अब इन लोगों में ज्यादा तो यह (मानते है) निश्चयचारित्र है वह व्यवहार चारित्र से प्राप्त होता है। (श्रोता :- वह पहुंचाता है) क्या पहुंचाये वह कल आया था न ? (श्रोता :- व्यवहार चारित्र से निश्चय चारित्र है) - ऐसा है नहीं। (व्यवहार) आता है।

स्वरूप की एकत्वगत की, दर्शन-ज्ञान-चारित्र की स्थिति में, अपूर्णदशा में, व्यवहार के पंचमहाव्रत के आदि विकल्प होते हैं, परंतु उनसे निश्चय की प्राप्ति होती है - ऐसा नहीं, और - ऐसा कहीं कहा हो तो वह निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है, उससे होता है - ऐसा कहने के लिये नहीं। आहाहा ! यहाँ कहाँ तक पहुंचना है उसे !!

'स्व-रूपे को एकत्वपूर्वक परिणमता' है न...? यहाँ समय का अर्थ किया, जानना और परिणमना... पहले कहा था न ? सम उपसर्ग और सम गमन अर्थ में भी है और ज्ञान अर्थ में भी है। पहले कहा था यहाँ उसका सार बताया है।

जिस समय जानता है उसी समय परिणमता है। आहाहा ! अथवा जिस समय ज्ञान होता है, उसी समय उसे जानता (है) आहाहा ! प्रारंभ की गाथायें तो महत्व की है ! संक्षेप में बहुत भर दिया है, बाद में १३ वीं गाथा में विस्तार से तो करेगें। आहाहा !

आत्मा दर्शन ज्ञान में अस्तिपनेरूप तत्त्व है, उसमें जो एकत्वरूप दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित हो, वह जीव उसी समय दर्शनज्ञान चारित्ररूप परिणमता है और उसी समय उसे जानता है। समझ में आया ? है न सामने ? यह तो उन्नीसवीं बार बांचा जा रहा है समयसार। (श्रोता :- सभी के लिये उन्नीसवीं बार नहीं आपके लिये है) बहुत तो यहाँ होंगे कि नहीं ?, कितने ही नहीं हो, जो विशेष उत्सव पर आते हैं वे नहीं होगा। जो यहाँ कायम रहनेवाले है वे होंगे। आहाहा !

'- ऐसा वह स्वसमय' ऐसी प्रतीति कराई जा रही है, आहाहा ! भगवान आत्मा दर्शन तथा ज्ञान की सत्तावाला तत्त्व जिसमें विकार की मौजूदगी तीनकाल में है ही नहीं। - ऐसा जो भगवान स्वभाव वह दर्शनज्ञान में (स्थित) - ऐसा तत्त्व है, उसमें एकत्वपने अर्थात ? राग का सहारा लेकर नहीं, राग से भिन्न करके... एकत्वपने, आहाहा ! वहाँ राग से भिन्नपना लेकर... यहाँ राग मंद है अतः आत्मा में एकत्व होता है - ऐसा नहीं। तब तो भिन्नपना नहीं हुआ। आहाहा !

यहाँ तो राग के विकल्प की जाहे जैसी वृत्ति हो... देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धारूप राग वृत्ति हो, कि शास्त्र के ज्ञान का विकल्प हो... उन सबसे भिन्नरूप - ऐसा है न ? आहाहा ! एकत्वपूर्वक जानता (और) एकसाथ परिणमता दर्शनज्ञान चारित्रस्वरूप और उसी समय ही उसे जानने स्वरूप एकत्वरूप परिणमता - ऐसा वह 'स्वसमय' ऐसी प्रतीति की जाती है श्रद्धा की जाती है। यह वस्तु स्वयं दर्शन ज्ञान वस्तु... उसमें एकत्व करके श्रद्धा ज्ञान और चारित्र में स्थित हुये वह स्वसमय है - ऐसी प्रतीति कराई जाती है। - ऐसा आत्मा वह स्वसमय हुआ, जैसा था वैसा हुआ, दर्शनज्ञानरूप

था, ऐसी ही पर्याय में दर्शनज्ञान की प्रतीति, दर्शनज्ञान का ज्ञान, दर्शनज्ञान में स्थिरता। आहाहाहा ! युगपत स्व को एकत्वपूर्वक (जानता), परिणमता - ऐसा वह स्वसमय है - ऐसी प्रतीति की जाती है, पाठ - ऐसा है न ? **`स्वसमय जाण'** - ऐसा कहा न ? कुन्दकुन्दाचार्यने - ऐसा शब्द लिया है, उसे स्वसमय जानो।

- ऐसा जो भगवानआत्मा (का) स्वरूप, उसमें जो एकत्वरूप दर्शनज्ञानचारित्र में पर के साथ और मदद बिना, स्वरूप में दर्शनज्ञानचारित्र में, अपने अस्तित्व में श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र में वर्ते उसे तुम स्वसमय जानो। उसका यहाँ अर्थ किया कि प्रतीति की जाती है (कि) यह आत्मा - ऐसा है वह स्वसमय है - ऐसा जानने में, प्रतीति करने में आती है। आहाहा !

अब इसे कहाँ पहुँचना है ? सारे दिन व्यवहार की बातें करता है ? व्यवहार... व्यवहार व्यवहार बीच में आये, परंतु यह व्यवहार भी जिसे निश्चय की भावना है, वह व्यवहार निश्चय को पहुंचाये। परंतु भावना का क्या अर्थ ? आहाहा ! बहुत सूक्ष्मबात भाई ! (श्रोता :- भूमिका के योग्य आये) भूमिका के योग्य आता है, होता है अवश्य है न ! नहीं हो - ऐसा नहीं। परंतु इससे (क्या) वह निश्चय की प्राप्ति कराता है ? जिसे एकत्व हो वह पहुंचा सकता है ? दोपना साथ में ले वह पहुंचाता है ? (ना) आहाहा ! व्यवहार आता है बीच में वह बंध का कारण है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंचमहाव्रत आदि का राग, शास्त्र का, शास्त्रों को पढ़ने का विकल्प वह सभी आता है, परंतु है यह बंध का कारण। बंध के कारण को साथ में लेकर निश्चय की प्राप्ति हो - ऐसा नहीं। उससे भेद करके, भिन्न करने से निश्चय प्राप्त होता है। फिर भी वह व्यवहार आये बिना रहे नहीं। पूरण वस्तु न हो वहाँ व्यवहार आये, स्वसमय हो तो उसे कहें। आहाहा ! अपना दर्शनज्ञानस्वरूप के अस्तित्व में परिणमन, श्रद्धा, ज्ञान तथा चारित्ररूप में हुआ उसे `स्वसमय' जानना चाहिए। उसे स्वसमय प्रतीति करनेमें उसे आता है। ऐसे जीव को मोक्षमार्ग है - ऐसा श्रद्धान किया जाता है। आहाहा !

`जीवो चरित'** जीव कहकर **`चरित दंसणणाण ट्ठिदो' अर्थात दर्शनज्ञान चारित्र में (जो) स्थित वह **`स्वसमय'** जानो, इतने का अर्थ हुआ। दो पद का, अब तीसरे पद की (व्याख्या)।

परंतु जो अनादि अविद्यारूप जो - ऐसा संसार... केला के मूल (जैसा) आहाहा ! अपना पूर्ण दर्शनज्ञानस्वरूपी प्रभु (आत्मा) ज्ञातादृष्टा की उपस्थितिवाला भगवान, उसके अज्ञान के कारण, आहाहा ! उस स्वरूप के भान बिना, `अनादि अविद्यारूप केले की गांठ', गांठ वह जिसमें से केले के वृक्ष होते है न ? उसकी जड़ जो गांठ

जैसी (होती) है केला की मूल की गांठ उसमें से, बहुत केले उगते है, निकलते ही रहते ! गांठ हो केला की उसमें से केले के वृक्ष होते ही रहते हैं। आहाहा !

अज्ञानरूपी केले के जड़ की गांठ जैसा, मोह ! जैसे केले की गांठ में अनेक केला होने की ताकत है, केला की गांठ होती है न ! बड़ी गठान, उसमें अनेक केला (के वृक्ष) ऊगें। गठान की बात है केला की बात नहीं, केले (उगें) इसीप्रकार मोहरूपी गांठ उसमें अनंतभव फलें - ऐसा यह मोह है। आहाहा !

अनादि अज्ञानरूपी जो गठान, वह केला की जड़ की गांठ जैसा पुष्ट हुआ है, आहाहा ! मोह, जिसके उदय अनुसार... उसे जो कर्म का उदय है, उसको अनुसरण करके स्वयं आधीन होकर प्रवर्ते... वह उदय उसे प्रवर्ताये - ऐसा नहीं, परंतु उदय के अनुसार स्वयं प्रवृत्ति के आधीनपने के कारण (प्रवर्तता है) आहाहा !

जो यहाँ स्वभाव की आधीनता से दर्शनज्ञान और चारित्र में स्थित होना चाहिए - ऐसा न करके निमित्त जो कर्म का उदय, उसके अनुसार से प्रवृत्ति की आधीनपने से, आहाहा ! कर्म के अनुभाग के निमित्त के अनुसार स्वयं आधीन होकर प्रवृत्ति करता है, कहीं उसे कर्म कराता नहीं। आहाहा ! उसके उदयानुसार प्रवृत्ति के आधीनपने से, दर्शनज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप... वहाँ कहा था न `नियतवृत्तिरूप अस्तित्व', उसमें प्रवृत्ति कही। `नियतवृत्तिरूप आत्मतत्त्व से' दर्शनज्ञानस्वभाव में निश्चय अस्तित्वरूप आत्मतत्त्व, आत्मतत्त्व उसे कहें कि जो ज्ञान दर्शन में अस्तित्व से रहता है, दर्शनज्ञान - ऐसा जो निश्चय... उसका जो टिकना, उसका जो आत्मतत्त्व। वह दर्शनज्ञान में टिकता हुआ आत्मतत्त्व है। आहाहा ! समझ में आया ?

दर्शनज्ञान स्वभाव में नियत निश्चय होनेपनेरूप आत्मतत्त्व... दर्शनज्ञान स्वभाव में निश्चयरूप रहता हुआ आत्मतत्त्व... उससे छूटकर, मोह की प्रवृत्ति के उदय अनुसार आधीनपने के कारण... निमित्त के उदय के आधीनता से। आहाहा ! है ? आत्मतत्त्व से छूटकर, (जो) कर्म के उदय के आधीनता से प्रवर्तता है, वह आत्मतत्त्व से छूटा था। आहाहाहा ! स्वरूप जो दर्शनज्ञानस्वरूप है, दृष्टाज्ञाता जो आत्मतत्त्व है, उससे छूटा और मोह की गांठ, जैसा केले की गांठ मोह, उसके अनुसार प्रवृत्ति करता है, मिथ्यादर्शन, ज्ञान और चारित्र में प्रव्रतता हुआ मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याराग। आहाहा !

यह तो अंतरंग की बातें है बापू, कहीं अभी बाहर में मिले - ऐसा नहीं। आहा ! और बाहर में व्यवहार में यह है - ऐसा कहा न ? यह तो दर्शनज्ञानस्वभाव अस्तित्व में आत्मतत्त्व है। भगवान आत्मा, दर्शनज्ञानमय सत्तावाला आत्मतत्त्व है। ऐसे सत्तावाले तत्त्व को छोड़कर... जिसकी प्रवृत्ति मोह के अनुसार है, वह स्वद्रव्य से च्युत होजाता

है। आहाहा ! समझ में आया ?

`परद्रव्यों के निमित्त से आत्मतत्त्व से छूटकर, परद्रव्य के निमित्त से निमित्त से, हो ? मोह, राग, द्वेष आदि भावों के साथ... निमित्त से का अर्थ ***निमित्त कहीं (मोहरागद्वेष) उत्पन्न कराता नहीं, परंतु यहाँ इस तरफ (स्वतरफ) एकाग्र नहीं, इसलिये निमित्त तरफ एकाग्र है।*** आहाहा ! परद्रव्य के निमित्त से, लोग यहाँ ज्यादा जोर देते हैं `परद्रव्य के निमित्त से होता है, देखो निमित्त से (कहा है)।' निमित्त का अर्थ क्या ? परद्रव्य है उसके तरफ के झुकाव से, स्वद्रव्य से च्युत होने से, और परद्रव् के निमित्त से उत्पन्न मोहरागद्वेषादि भाव... आहाहा ! यहाँ लिया तो फिर उन प्रारंभ के तीन में दर्शन, ज्ञान, चारित्र और यहाँ मोह-राग-द्वेष उस आदि में तीन आते हैं। आत्मतत्त्व से छूटकर दर्शनज्ञान की मौजूदगीवाला प्रभु (निजात्मा), उसकी आस्था, श्रद्धा, ज्ञान से छूटकर और मोह जो है उसके अनुसार आधीन रूप प्रवर्तता हैं।

निमित्त से उत्पन्न होनेवाले मोह-राग-द्वेषादि भाव के साथ... मिथ्यात्व, राग और द्वेष रतिवासना आदि के साथ एकत्वपने मानकर... इसका अर्थ किया - उसमें सम्मुचय लिया, एकपना मानकर वर्तता है। यह मिथ्यात्व में राग वह हमारी वस्तु है - ऐसा मिथ्यात्व में एकत्वरूप वर्तता है, और राग में एकत्वरूप वर्तता है द्वेष में एकरूप वर्तता है। जो आत्मतत्त्व दर्शनज्ञानमय, उससे भिन्न होनेपर भी एकरूप वर्तता है, उसका नाम मिथ्यात्व तथा मोह, राग, द्वेष है। आहाहा ! एकरूप वर्तता है' `तब, पुद्‌गल कर्म के प्रदेशों में स्थित होने से' देखा ! मोह, राग, द्वेष में वर्तता है वह पुद्‌गल में स्थित कहा जाता है। यहाँ जो भगवान आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र के एकत्व में जो स्थित था, उससे छूटकर... निमित्त के आधीन होकर, मोह-राग-द्वेष के प्रदेशो में (स्थित हुआ) इसे पुद्‌गलकर्म का प्रदेश कहते हैं। मोह, राग, द्वेष भी कर्म का ही भाग है, कर्म तरफ के झुकाववाली उपाधि है। आहाहा ! यह मिथ्यात्व और राग, द्वेष, भगवान तो निरूपाधि तत्त्व है... यह तो दर्शन ज्ञानमय निरूपाधि तत्त्व है। निमित्त के आधीन उपाधि तत्त्व के साथ एकत्वरूप वर्तता है उसे अनात्मा कहा जाता है। परसमय कहा जाता है। आहाहा !

`तब पुद्‌गल कर्म के प्रदेशों में स्थित होने से... युगपद पर को एकत्वपूर्वक जानता, आहाहाहा ! ***यहाँ जानता तो लिया... परंतु मोह को राग, द्वेष को एकत्वरूप से जानता और परिणमता वहाँ (ज्ञानी) भिन्न रूप जानता और परिणमता। आहाहा !***

एक-एक श्लोक की क्या बात है ? आहाहा ! मध्यस्थ होकर विचारे, धीरज से सत्य का शोधक बनके तो यह चीज है ऐसी कहीं है ही नहीं। आहाहा ! युगपद पर को एकत्वपूर्वक जानता आहाहा ! `समय' का अर्थ किया न ? कि एक **साथ**

जाने और परिणमे। तब जब स्वसमय में एकाग्र है, तब उसी समय जाने और परिणमे और यहाँ राग के साथ-मिथ्यात्वादि के साथ एकाग्र है, उस-उस समय एकत्वपूर्वक जानता है, मोह और राग हमारा है - ऐसा जानता और उसरूप में एकत्वरूप में परिणमता है। आहाहा ! जानना तो रखा, परंतु जानने में विशेष यह आया, यह `एकत्वरूप जानता' मोह तथा रागद्वेष के परिणमन को स्वभाव में आत्मा में एकत्वरूप जानता है। आहाहा ! समझ में आया ? वह एकसाथ स्व को `एकत्वपूर्वक जानता' पहले में - ऐसा था, दर्शनज्ञानचारित्र में स्थित होने से स्व को `एकत्वपूर्वक जानता', (और परिणमता) यहाँ पर को `एकत्वपूर्वक जानता'... बस इस प्रकार अस्ति-नास्ति की है।

`युगपद पर को एकत्वपूर्वक जानता' तथा पररूपे `एकत्वरूपे परिणमता' - ऐसा वह परसमय - ऐसा प्रतीति रूप होता है। ***उसे नहीं, दूसरे को.... यह आत्मा अज्ञानी है, परसमय है, अनात्मा है, अनात्मा में एकत्वरूप वर्तता है इसलिये परसमय है।*** - ऐसा जानने में आता है। है न ? वहाँ **जानीहि `पोग्गलकम्म पदेस ट्ठिदं च तं जानीहि**' है न ? दोनों में जानना जानना आहाहा ! दोनों में प्रतीति कहा, उसका अर्थ यह है कि जानने में - ऐसा आता है। आहाहा ! एकत्वपूर्वक परिणमता - ऐसा जो पर समय - ऐसा प्रतीतिरूप किया जाता है। अर्थात कि जानने में यह आत्मा, अनात्मा हुआ - ऐसा जानने में आता है। आहाहा ! राग के विकल्प एक साथ एकत्वपने परिणमता और एकत्वपने जानता, जानना तो रहा, परंतु एकरूप जानता। उसे परसमय - ऐसा जानने में आता है। यह परसमय है। यह अनात्मा है। वह स्वरूप से च्युत होकर जो उसमें नहीं, उसमें वह रहता है इसलिये परसमय कहा जाता है। आहाहा !

यह बात वादविवाद से समझ में आये - ऐसा नहीं है। वस्तु की स्थिति ऐसी है, फिर कितनी ही बातें शास्त्रों में आती है कोई कथन व्यवहार नय से हो, वह तो ज्ञान कराया है। आहाहा ! वस्तुस्थिति तो यहाँ से प्रारंभ की है, उसका विस्तार बाद में है। आहाहा !

`इसप्रकार जीवनाम के पदार्थ को'... जीवनामक पदार्थ तो कहा, पहले गुणपर्यायवाला, उत्पादव्ययध्रुववाला, दर्शनज्ञानवाला, ऐसे जीव पदार्थ को स्वसमय और परसमय - ऐसा द्विविधपना प्रगट होता है, (स्वभाव में) एकत्व हो तो स्वसमयपना प्रगट होता है, राग में एकत्व हो तो परसमयपना प्रगट होता है। एक में दोपना इस प्रकार खड़ा होता है। आहाहा ! वस्तु एक दर्शन-ज्ञानमय प्रभु में (आत्मा में) - ऐसा पर में राग में एकत्व होने से परसमयपना दुविधपना... स्वसमयपना और परसमयपना द्विविधपना उत्पन्न होता है। ***एक में दोपना उत्पन्न होना... यह हानिकारक है। आहाहा ! स्व में एकत्वरूप प्रगट होना वह आत्मा को लाभदायक है। आहाहा ! यह भगवान आत्मा दर्शनज्ञान***

अस्तित्ववाला प्रभु यह राग और पुण्य-पाप के अस्तित्व में एकत्वरूप स्वीकारता, यह एक में दोपना दूसरापना खड़ा हुआ। स्वसमयपना और परसमयपना एक में दोपना (द्वैत) खड़ा हुआ। आहाहा ! इसमें कहीं - ऐसा नहीं कहा कि कर्म के उदय का जोर है उसी के अनुसार यहाँ पर में प्रवतता है, रागमें-द्वेषमें - ऐसा तो कहीं है नहीं। पर को तो निमित्त कहा है। निमित्त के आधीन होकर प्रवर्तता है। यह मोह तथा राग, द्वेष में प्रवर्तते, परसमय में गया वह स्वसमय में रहा नहीं। - ऐसा जाना जाता है। आहाहा ! - ऐसा स्वरूप है।

सोनगढ में - ऐसा है - ऐसा कई लोग कहते हैं किसका है यह ? (अमृतचन्द्राचार्य का) वस्तु का स्वरूप ही - ऐसा है वहाँ तू क्या कहेगा ? प्रभु कहते है। आहाहा ! जिसके स्वरूप में पुण्य और पाप नहीं, परंतु जिसके स्वरूप में दर्शन और ज्ञान है। आहाहा ! जिससे दर्शन-ज्ञान के स्वरूप का अस्तित्ववाला तत्त्व उसमें जो एकत्व हो तो वह उसी समय स्व को एकत्वरूप से जानता और स्व एकत्वपने परिणमता... जिससमय जानता उसीसमय परिणमता है, जिससमय परिणमे उसीसमय जाने। आहाहा !

और दूसरा आत्मा, अविद्यारूपी केले की गांठ जिसका मूल - ऐसा, मोह कर्म-जड़, उसके अनुभाग के अनुसार प्रवर्तता, जितना कर्म उदय आया तो (वह) उसी प्रमाण में प्रवर्ते - ऐसा नहीं कहा। उसके अनुसार स्वयं प्र्वतता। आहाहा ! अपना जो चैतन्य स्वभाव है, दर्शनज्ञानस्वभाव है... उसरूप न प्र्वतता, प्रवर्तता (कहा) तो वह भी प्रवर्तता है और यह भी तो वही भी प्रवर्तता है। वह निमित्त को अनुसरण करके हुये अपने परिणाम उसमें स्थित होता हुआ। आहाहा ! स्वरूप से भ्रष्ट होता हुआ, उसे, परसमय जान उसे परसमय कहें - ऐसा जाना जाता है आहाहाहा ! इसप्रकार जीव नामक पदार्थ को स्वसमय एवं परसमय - ऐसा द्विविधपना दो प्रकार रूप प्रगट होता है।

यह टीका का अर्थ हुआ... संस्कृत भाषा थी बहुत गंभीर... अमृत्तचन्द्राचार्य की टीका बहुत गंभीर !! जैसे मूल श्लोक (गाथा) गंभीर है, वैसी टीका भी गंभीर है। उसे समझने के लिये पक्षपात छोड़कर मध्यस्थ से, उन्हें जो कहना है उस प्रकार समझना। जिसप्रकार कहना है उसप्रकार समझना उसका नाम यथार्थ समझ कहा जाता है। आहाहा ! अपनी कल्पना से उसमें अर्थ निकालना तो बड़ी विपरीतता है। कितना लिया है इसमें !! यह भावार्थ में कहा जाता है।

भावार्थ :- `जीव नाम की वस्तु को पदार्थ कहा है। वस्तु... वस्तु है यह जीव - ऐसा अक्षरों का समूह वह `पद' है' पदार्थ है न ? पदार्थ की व्याख्या की, पदार्थ `जीव' यह अक्षर है यह पद है, यह पद है और उसकी वस्तु है यह जीव है पदार्थ

यह अर्थ है पद+अर्थ `जीव' दो अक्षर का पद है, जीव यह पद है और जीव वस्तु है वह उसका अर्थ (वाच्य) पदार्थ है। वस्तु है। पद का अर्थ वस्तु है पद उसे बताते हैं। आहाहा ! जीव ऐसे अक्षरों का (समूह) क्योंकि अक्षर होता है न... `जीव' अर्थात दो अक्षर है अर्थात बहुवचन है। जीव - ऐसा अक्षरों का समूह इसलिये वह पद है। `और उस पद से वह द्रव्य पर्यायरूप अनेकांतपना'... देखा ? आया था अंदर (टीका में) उत्पादव्यय और ध्रुव, गुणपर्याय जिसने अंगीकार किया है।

उस पद से जो द्रव्यपर्याय रूप... वस्तु और अवस्थारूप `अनेकांतस्वरूपपना' अनेकांत है। द्रव्य भी है और पर्याय भी है। पर्याय नहीं - ऐसा नहीं। ***यह ११ वीं गाथा में है - पर्याय को असत् कही है तो उसे गौण करके, उसका लक्ष्य छोड़ने के लिए कहा है। जब पर्याय नहीं (तो) कार्य क्या ? यह सिद्ध (अवस्था) भी पर्याय है, मोक्षमार्ग पर्याय, मोक्ष पर्याय, संसार पर्याय, बंधमार्ग यह पर्याय है और वेदन पर्याय का है। संसारी को दुःख का वेदन पर्याय में है, मोक्षमार्ग के आनंद का वेदन पर्याय में है सिद्ध को पूर्ण आनंद का वेदन पर्याय में है। आहाहा !***

पर्याय नहीं - ऐसा जो कहा है उसका अर्थ ? गौण करके उसपर से लक्ष्य छुड़ने के लिए और त्रिकाली को मुख्य करके निश्चय कहके, निश्चय कहकर करके - ऐसा नहीं, गौण करके व्यवहार, व्यवहार कहकर गौण किया - ऐसा नहीं... इसप्रकार निश्चय वह मुख्य - ऐसा नहीं, मुख्य वह निश्चय। क्योंकि, निश्चय तो तीनों निश्चय है द्रव्य, गुण और पर्याय-तीनों अपने लिये निश्चय है। `स्वाश्रय वह निश्चय और पराश्रय वह व्यवहार' परंतु यहाँ तीनों अपने होनेपर भी मुख्य द्रव्य को करना है इसलिये मुख्य निश्चय कहा और पर्याय को गौण करना है इसलिये उसे व्यवहार कहा। आहाहा !

- ऐसा द्रव्य-पर्याय का जोड़ा है। वस्तु स्वतंत्र है, जिसे पर के साथ कोई संबंध नहीं। आहा ! वह द्रव्य पर्यायरूप अनेकान्त, अनेक धर्म स्वरूपपना है। ***द्रव्य धर्म भी उसका, पर्याय धर्म भी उसका, दोनों धारण कर रखे है। धर्म अर्थात...? भाव-द्रव्यपना और पर्यायपना - ऐसा अनेकांत अनेक धर्म अर्थात गुण अथवा अनेकपना यह `निश्चय करने में आता है वह पदार्थ है।' द्रव्य और पर्याय दोरूप निश्चय करने में आता है वह पदार्थ है। अकेले द्रव्य का निश्चय करने में आता है और अकेली पर्याय (निश्चित की जाती है) - ऐसा नहीं। आहाहाहा !***

`यह जीव पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रुवमयी सत्तारूप है' इस न्याय से प्रारंभ किया, जीव पदार्थ उत्पाद-व्यय और ध्रुव स्वरूप है, अकेला ध्रुव स्वरूप है - ऐसा नहीं और अकेला उत्पाद-व्यय-पर्याय स्वरूप है - ऐसा नहीं। आहाहा ! उत्पाद-व्यय, उत्पाद पहले लिया, व्यय बाद में ध्रुव बाद में परंतु ऐसी एक सत्ता स्वरूप रहनेवाली वस्तु

है। उत्पाद, व्यय, ध्रुवरूप रहनेवाला पदार्थ है, दर्शन ज्ञानमयी चेतना स्वरूप है, दर्शन ज्ञानमय स्वयं चेतनास्वरूप वह वस्तु। ज्ञातादृष्टामय वस्तु स्वरूप है चेतन पदार्थ।

`अनंतधर्मस्वरूपद्रव्य है।' पहले आगया है न भाई ! अनंत धर्म स्वरूप वस्तु एक है। अनंत धर्म, गुण, पर्याय अनंत होने पर भी वस्तुरूप में द्रव्य एक ही है। अनंतशक्ति स्वरूप पदार्थ है। एक ही शक्ति है, संख्यात-असंख्यात शक्ति है - ऐसा नहीं, अनंत शक्ति स्वरूप वह द्रव्य है।

`द्रव्य होने से वस्तु है'... द्रव्य होने से वस्तु है। यह इस वस्तु की बड़ी चर्चा एक बार चली थी। राजकोट सम्वत् १९८९ में एक वीसाश्रीमाली श्वेताम्बर राणपुर से आये थे। अध्यात्म थोड़ा पढ़ा होगा। फिर आत्मा, वस्तु न कहलाये। आत्मा को कहें। सम्वत् १९८९ की साल राजकोट चौमासा था न। वहाँ वह आये। तब कुछ समझते नहीं थे ! आत्मा को वस्तु न कहलाये। आत्मा को कहें। सम्वत् १९८९ की साल राजकोट चौमासा था न। बाहर वह आये तब कुछ समझ बिना के ! आत्मा तो वस्तु न कहलाय कहे, बड़ी चर्चा हुयी थी। हमने कहा वस्तु कहलाये। वस्तु है, आते थे, व्याख्यान में बैठते थे, लगभग राणपुर के थे देरावासी श्वेताम्बर युवान उसे - ऐसा लगता था कि हम कुछ जानते हैं। आत्मा का ढोंग था।

`द्रव्य होने से वस्तु' वस्तु क्यों ? अंदर शक्तियाँ अंदर बसी हुयी हैं, इसलिये वस्तु कहलाती है, एक ही चीज है तथा एक ही गुण है तथा एक ही पर्याय है - ऐसा नहीं। अनंतगुण अनंती पर्याय जिसमें बसी है। इसलिये उसे द्रव्य, वस्तु कहा जाता है। आहाहाहा !

`गुणपर्यायवाला है' अंगीकार किया है - यह आया था न ? गुणपर्याय जिसने अंगीकार किये हैं। आत्मा में त्रिकाली गुण भी हैं और वर्तमान पर्याय भी है। गुणपर्यायवाला यह तत्त्व है... उसकी पर्याय के लिये अस्तित्व के लिये दूसरे तत्त्वों को लेकर यह पर्याय है - ऐसा नहीं... चाहे अविकारी कि विकारी हो परंतु यह गुणपर्यायवाला पदार्थ स्वयं स्वयं के कारण है, पर के कारण नहीं। आहाहाहा ! गुणपर्यायवाला है।

`उसका स्वपरप्रकाशकज्ञान'... आत्मा का स्वपरप्रकाशकज्ञान... `अनेकाकार रूप एक है' यह ज्ञान... अनेक ज्ञेयों को जाने, फिर भी उसके अनेकरूप में टुकड़े नहीं होते। अनेक को जाने फिर भी एकरूप ज्ञानरूप रहता है। आहाहा ! आगया है उसमें... आकारों का, यह आत्मा जो है, वह ज्ञान स्वरूप प्रभु है। प्रज्ञास्वरूप ज्ञानस्वरूप प्रकाश चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु, यह चैतन्य पर को, अनेक अनंत पदार्थों को जाने, फिर भी वह पर पदार्थरूप होता नहीं। वह अनंत परपदार्थ को जाने इसलिये ज्ञान में अनंतखण्ड हो जाते हैं, अनंत ज्ञेयों को जानने पर यह ज्ञेयाकाररूप अनंत खण्ड

होते हैं - ऐसा नहीं। ज्ञान तो एकरूप ही रहता है, यह अनंत को जानते हुये भी एकरूप रहता है। आहाहा !

`स्वरूप प्रकाशक ज्ञान अनेकाकार रूप एक है' पर आया न उसमें ? अनेक पर को जानने पर भी स्वरूप तो एक ही है, पर्याय का धर्म है स्वपर प्रकाशक, अनंत पर को... अनंत, अपने अनंतगुण आदि दोनों को जानने पर भी एकरूप रहनेवाला है, ज्ञान के खण्ड और भेद नहीं होते। आहाहा ! यह `जीव' नामक पदार्थ की व्याख्या करते हैं।

`और वह जीव पदार्थ आकाशादि से भिन्न...' आकाश, परमाणु जैसे यह भिन्न वस्तु है, भिन्न - ऐसा ही प्रभु `असाधारण चैतन्यगुण स्वरूप है' जिसमें चैतन्यगुण असाधारण अर्थात कि दूसरे द्रव्यों में नहीं, परंतु (स्वयंमें) दूसरा - ऐसा गुण नहीं - ऐसा असाधारण चैतन्यगुण स्वरूप है। उसके साथ अनंत गुण मिले हुये है। परंतु चैतन्य की मुख्यता से... कारण कि चैतन्य अपने को जाने, चैतन्य अन्य गुणों की सत्ता को जाने, दूसरे गुणों के अस्तित्व को दूसरे गुण नहीं जाने, जड़ के अस्तित्व को जड़ नहीं जानता, वह ज्ञान पर के अस्तित्व को जानता है, और पर तथा अपने ज्ञान सिवाय अनंत गुणों को भी जाने, इसलिये इसे मुख्य चैतन्यगुण स्वरूप असाधारण, (कहा है) दूसरा इस जैसा कोई गुण नहीं है। आहाहा ! यह तो जीव कैसा ? कि त्रस की दया पाले और दूसरे को सुख दे और दुःख दे और मारे ओर...जिलाये... यह जीव। यह ध्यान रखकर व्यापार करे, वह जीव, अज्ञानी ने मार डाला (अपने को)। आहाहा ! व्यापार में चतुर होकर होशियारी करके धंधा करे, दुकान को आगे बैठ कर चलाये, पांच पचास नोकर हो तों सब को कब्जे में रखे वह जीव ?

यहाँ कहते हैं यह तुम्हारी सभी बात गलत है। आहाहा ! जीव तो स्व को, पर को जाननेवाला जीव है। पर का कुछ करे कि पर की व्यवस्था करे वह जीव है ही नहीं। आहाहा ! यह होशियार महिलायें हो चावल बनायें, बड़ी पापड़ बनायें सेव बनाये सेव-सेव (सिमंइयाँ), होशियार हो तो पुडला अच्छा बनाये, बराबर तेल डालकर। यहाँ कहते हैं कि परद्रव्य है, उसे प्रकाशे, उसे कर सके नहीं, आहाहा ! आत्मा के अलावा अनंत पदार्थ हैं उसका कुछ कर सके नहीं, परंतु उसे अपने में रहकर अपनी सत्ता से अनेक को जानते हुये भी ज्ञान एकरूप रहे, अनेक खण्ड खण्ड न हो - ऐसा उनका स्वभाव है। आहाहा ! ऐसी बात है।

`और अन्य द्रव्यों के साथ एक क्षेत्र में रहने पर भी अपने स्वरूप को छोड़ता नहीं'। क्षेत्र भले एक है। शरीर यहाँ रहे आत्मा यहाँ मिला हुआ (होने पर) भी यह शरीर शरीर में और आत्मा आत्मा में भिन्न है। यह (शरीर) तो माटी, जड़, धूल

है। आहाहा ! अरे उसे कहाँ खबर है। मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ उसमें एक के बाद एक, अंधों की दौड़ की तरह, जन्मने के बाद बालक और युवान और वृद्ध फिर मर जाय और फिर जाओ दूसरे भव, होगया फिर वहाँ जन्म की लाईन चली। एक के बाद एक, एक के बाद एक जन्म-मरण, जन्म-मरण, जन्म-मरण की लाइन लगी है अनादि से आहाहा !

वस्तु की खबर नहीं। एक क्षेत्र होनेपर भी अपने में स्थित है। (आहा ! है न) `- ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है, जब वह अपने स्वभाव में स्थित हो तब तो स्वसमय है' परस्वभाव-राग, द्वेष, मोह रूप होकर रहे, तब `पुद्‌गल कर्म के प्रदेश कहा' था उसका अर्थ ही राग, द्वेष, मोह किया। टीका में भी आगया है। आहा ! `परस्वभाव, राग-द्वेष-मोह रूप होकर रहे तब पर समय है।

इस प्रकार जीव को द्विविधपना आता है। एक वस्तु को दोपना ऐसे आता है। वह दोपना शोभायमान नहीं है। यह विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - ३

अथैतब्दाध्यते -

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि।।३।।

एकत्वनिश्चयगतः समयः सर्वत्र सुन्दरो लोके।
बंधकथैकत्वे तेन विसंवादिनी भवति।।३।।

अब, समय की द्विविधता में आचार्य बाधा बतलाते हैं :-

एकत्व-निश्चय-गत समय, सर्वत्र सुन्दर लोकमें।
उससे बने बंधनकथा, जु विरोधिनी एकत्वमें।।२।।

गाथार्थ :- [एकत्वनिश्चयगतः] एकत्वनिश्चय को प्राप्त जो [समयः] समय है वह [लोके] लोक में [सर्वत्र] सब जगह [सुन्दर] सुन्दर है [तेन] इसलिये [एकत्वे] एकत्व में [बन्धकथा] दूसरे के साथ बंध की कथा [विसंवादिनी] विसंवाद-विरोध करनेवाली [भवति] है।

टीका :- यहाँ `समय' शब्द से सामान्यतया सभी पदार्थ कहे जाते हैं, क्योंकि व्युत्पत्ति के अनुसार `समयते' अर्थात एकीभाव से (एकत्वपूर्वक अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त होकर जो परिणमन करता है सो समय है। इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गल-जीवद्रव्यस्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने जितने पदार्थ हैं वे सभी निश्चय से (वास्तव में) एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं, क्योंकि अन्य प्रकार से उसमें सर्वसंकर आदि दोष आजायेंगे। वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अंतर्मग्न रहनेवाले अपने अनंत धर्मों के चक्र को (समूह को) चुंबन करते हैं-स्पर्श करते हैं तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते, अत्यंत निकट एकक्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे हैं, तथापि वे सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते, पररूपपरिणमन न करने से अनंत व्यक्तिता नष्ट नहीं होती इसलिये वे टंकोत्कीर्ण की भाँति (शाश्वत) स्थित रहते हैं और समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य दोनों की हेतुता से

वे सदा विश्व का उपकार करते हैं-टिकाये रखते हैं। इसप्रकार सर्व पदार्थों का भिन्न २ एकत्व सिद्ध होने से जीव नामक समय को बंध की कथा से ही विसंवाद की आपत्ति आती है; तो फिर बंध जिसका मूल है - ऐसा जो पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित होना, वह जिसका मूल है - ऐसा परसमयपना, उससे उत्पन्न होनेवाला (परसमय-स्वसमयरूप) द्विविधपना उसको (जीव नाम के समय को) कहाँ से हो ? इसलिये समय के एकत्व का होना ही सिद्ध होता है।

भावार्थ :- निश्चय से सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव में स्थित रहते हुए ही शोभा पाते हैं। परंतु जीव नामक पदार्थ की अनादि काल से पुद्गलकर्म के साथ निमित्तरूप बंध-अवस्था है; उसमें इस जीव में विसंवाद खड़ा होता है, इसलिये वह शोभा को प्राप्त नहीं होता। इसलिये वास्तव में विचार किया जाये तो एकत्व ही सुन्दर है; उससे यह जीव शोभा को प्राप्त होता है।।

प्रवचन नं. १३ गाथा-३ ता. २१-६-७८ बुधवार जेठ वद-१ सं.२५०४

दूसरी गाथा में - ऐसा कहा, प्रत्येक पदार्थ अपने स्वसमय में परिणमे तब वह यथार्थ में आत्मरूप कहलाये। पररूप परिणमे तो यह अनात्मरूप दशा हुई। आत्मा में इस अपेक्षा से द्विविधपना आया। इसके द्वारा अब समय के द्विविधपना में आचार्य विरोध बताते हैं।

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि।।३।।

उसका गाथार्थ :- एकत्व निश्चयनय को प्राप्त जो समय नामक पदार्थ अपने में एकत्वपने को प्राप्त, पर के संबंध बिना... वैसे तो - ऐसा कहते हैं ***विरुद्ध कार्य और अविरुद्ध कार्य से जगत टिक रहा है। वह जो स्वभाव से विरुद्ध स्वतंत्र परिणमन हो कि स्वभाव से अविरुद्ध परिणमन हो, परंतु वस्तु तो ज्यों के त्यों सत्तारूप है।*** परके संबंधवाली बात आये वह दुःखरूप है। यह बात है। बाद में यह बात आयेगी। सूक्ष्मबात है प्रभु.....!

एकत्व निश्चय को प्राप्त जो समय वह लोक में सर्वत्र सुन्दर है। सुन्दर के दो अर्थ हैं। ***प्रथम लोक में प्रत्येक आत्मा एकेन्द्रिय आदि पर्याय में, द्रव्य तो शुद्ध ही है। द्रव्य अपेक्षा सुन्दर, परंतु उसकी सुन्दरता की प्राप्ति हो तब वह सुन्दररूप है - ऐसा कहा जाता है। इसलिये एकत्व निश्चयगत परिणमन कहा,*** क्या कहा ?

कि आत्मा जो है वह एकेन्द्रिय से लेकर चाहे जहाँ हो परंतु द्रव्य अपेक्षा वह शुद्ध ही है। द्रव्य में कहीं न्यूनता, खण्ड, विरुद्धता, अशुद्धता कुछ हुआ ही नहीं। आहाहा ! अन्य प्रकार एकत्वनिश्चयगत, जैसा स्वरूप है प्रभु आत्मा का वैसा अभेद रतनत्रयरूप परिणमे तब सुन्दर है। ***वस्तु सुन्दर है वह तो सामान्य बात कही, द्रव्य की बात कही परंतु यह द्रव्य की सुन्दरता उसके परिणमन में ज्ञात हुये बिना यह सुन्दरता है -*** ऐसा निर्णय अनुभव न हो तब तक सुन्दर है उसे ख्याल नहीं (आता)।

एकत्वनिश्चयगत, भगवान आत्मा... अपना जो अभेद रतनत्रय एकत्व, शुद्ध जो द्रव्य स्वभाव जो ध्रुव उसे ध्येय (बनाकर) जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र अभेदरूप हो वह सुन्दर है। वस्तु अपेक्षा सब जगह सुन्दर है। यह तो एक साधारण बात की परंतु यह सुन्दरता है जिसके ज्ञान में परिणमन मै मान हो उसके लिये सुन्दरता बराबर है। समझ में आया कुछ ? यह ऐसी बात है।

एकत्वनिश्चय को प्राप्त, प्राप्त है न ? अभेदरत्नत्रय को प्राप्त हो, प्रभु आत्मा शुद्ध चिदानंदघन प्रभु, वह अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र दशा को प्राप्त हो, तभी उसकी शोभा है। तब उसका वास्तविक अस्तित्व दृष्टि में आया, अनुभव में आया। समझ में आया ? आहाहा !

`इसलिये एकत्व में दूसरे के साथ बंध की कथा'... भगवान आत्मा को कर्म के निमित्त से बंध के साथ संबंध, यह निंद्य है, विकार उत्पन्न करनेवाला है, यह निंद्य है, बंध कथा, अर्थात बंध भाव, भाव शब्द से बंध कथा है। है न ? बंध कथा। **दूसरे के साथ बंध की कथा शब्द है, परंतु उसका अर्थ यह कि दूसरे के साथ जो बंध का भाव वह निंदनीय है।** यह तो समयसार है। इसके एक-एक शब्द में सर्वज्ञ भगवान की कही हुयी वाणी है। बहुत गंभीरता है। आहाहा ! भगवान आत्मा एकपना पाये तब शोभा है। द्रव्य अपेक्षा एकत्वपना है। परंतु द्रव्य - ऐसा है - ऐसे अभेद रत्नत्रय की परिणति पाये तब वह शोभा को प्राप्त हो, उसमें कर्म के संबंध की बंध की कथा, अर्थात भाव... उससंबंध का भाव वह विरोध है। वह निंदनीय है। आहाहा ! इस आत्मा को अनात्म बनाये ऐसी यह दशा है, इसलिए वह विरोध है। सूक्ष्मबात है। यह कहानी नहीं यह तो भगवान वीतराग सर्वज्ञ की... आहाहा ! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव उनका यह कथन है भाई ! आहाहा ! विसंवाद, विरोध करनेवाली है, यह शब्दार्थ हुआ।

टीका :- यहाँ `समय' शब्द से सामान्यपने अर्थात सभी पदार्थों की श्रृंखला को यहाँ समय कहने में आया है। धर्मास्तिकाय है न ? सर्व पदार्थों में आता है। `कारण कि.....' व्युत्पत्ति की अपेक्षा **`समयते'** अर्थात एक भाव से एकत्वपूर्वक अपने गुण पर्यायों

को प्राप्त होकर जो परिणमन करे वह समय है, इसलिये इसमें सभी पदार्थ आ गये। क्या कहा यह ? सामान्य अपेक्षा `समय' अर्थात अकेला आत्मा - ऐसा नहीं, सभी पदार्थ, सम् + अय स्वयं अपनेरूप परिणमे- ऐसा समय अर्थात छहों द्रव्य। जो एकरूप से अपने गुणपर्याय रूप से प्राप्त होकर परिणमन करे वह समय है।

`इसलिये धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल, पुद्‌गल और जीव द्रव्य (छ द्रव्य) जीवद्रव्यस्वरूप लोक... आहाहा ! सर्वत्र जो कोई, जितने जितने पदार्थ हैं' जितनी जितनी संख्या में अनादि से और अनंतकाल इसी न इसी (प्रकार) जितने पदार्थ हैं उतने ही रहनेवाले हैं। आहाहा ! इससे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल और पुद्‌गल यह जीव द्रव्य स्वरूप लोक सर्वत्र... `जो कोई जितने जितने पदार्थ, वह सभी वास्तव में एकत्व निश्चय को प्राप्त होने से सुन्दरता को पाते है' अपने भाव में अकेले है, परके संबंध रहित, वह सुन्दरता को प्राप्त कहलाते हैं। आहाहा !

`कारण कि अन्य प्रकार से उसमें सर्व संकर आदि दोष आ जाते' है। दूसरी प्रकार कहें तो दो द्रव्य एक होजायें, या एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप हो जाये। जो इसप्रकार न हो तो, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप हो जाय, समझ में आया कुछ ? और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के बीच में संक्रमण हो जाये दोनों (मिलकर) एक हो जाय। दो एक हो जायें यह अलग, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप हो जाय यह दूसरा। ऐसे ऐसे दोष आयेगे, जो इसप्रकार न हो तो। आहाहा ! इसमें एकेन्द्रिय... दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय समय बिताया हो तो उसे यह समझना कठिन पड़े आहा ! सामायिक की, उपवास किया और प्रतिक्रण किया, इसमें धूल भी नहीं... कहाँ सामायिक। आहाहा !

आत्मपदार्थ जैसा है, इसीप्रकार छह द्रव्य, भगवान ने जिनेश्वरदेव ने, केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे, वह छह द्रव्य अपने गुण पर्याय को प्राप्त हो वह उनकी शोभा है। पर के संबंध में कुछ भी हो वह उसकी शोभा नहीं। आहाहा !

अन्य प्रकार शंकरादि दोष आ जाते हैं। कैसे है वह सर्व पदार्थ ? आहाहा !! `अपने द्रव्य में अंतर्मग्न रहे,' प्रत्येक द्रव्य जो वस्तु है... अनंत आत्मा, अनंतपरमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश यह सभी पदार्थ द्रव्य में अंतर-मग्न रहनेवाले... जो अपने में गुण और पर्याय रूप है। `अपने में अंतमर्ग्न रहनेवाले अनंत धर्मो।' धर्म अर्थात गुण पर्याय, द्रव्यने अपने गुण पर्याय को धारण कर रखा है। आहाहा ! है ? अपने अनंत धर्म के चक्र को अर्थात समूह को स्पर्शता है ? प्रत्येक द्रव्य अनंत संख्या में जो है, वह द्रव्य अपने में रहनेवाले गुण अर्थात कायम रही शक्तियाँ और वर्तमान पर्याय, उसे वह द्रव्य, अपने धर्मों को चूमता है- छूता है, उसे स्पर्श करता है। आहाहा ! `**तो भी**' तो भी क्यों कहा ? कि अपने

गुण पर्याय को तो स्पर्शता है न ! वह दूसरे के साथ स्पर्श करे छुये तो क्या तकलीफ है ? आहाहा !

'परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करता' यह एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं... आहाहा ! एक आत्मा... वह कर्म के उदय को, जड़ की दशा को छूता नहीं, स्पर्श करता नहीं। एक परमाणु को आत्मा छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा ! पैर यहाँ चलता है जमीन ऊपर तो यह पैर जमीन को छुये बिना चलता है, अब ऐसी बात !! वीतराग सर्वज्ञ के द्वारा कहा हुआ तत्त्व, स्वतंत्र और पर के अवलम्बन बिना जिसका रहना टिकना... अपने धर्म अर्थात गुण पर्याय को चूम कर रहता है। आहाहा ! यह कहते हैं हाथ है यह यहाँ नाक को छूता नहीं, चाकू से शाक सुधारने पर चाकू वह शाक को छूता नहीं। यह शाक तो उसके परमाणु की उसकी पर्याय, एक एक परमाणु की पर्याय जिससमय होनेवाली वह अपने से होती है। चाकू उसे छुता नहीं और चाकू से टुकड़े होते नहीं। अरे ! ऐसी बात है।

(श्रोता :- शाक पाटिया ऊपर ला कर रखते है न ?) पाटीया को छूती नहीं शाक। यह रोटी जो है उसे बेलन छूता नहीं। (आपकी बात सुनना बहुत कठिन है !) इसमें यह कहते हैं, कोई भी द्रव्य, द्रव्य है अर्थात अपने में रहनेवाले गुण भी हों और पलटती अवस्था भी हो - ऐसा होने पर भी अपने गुण-पर्याय को चूंमते छुये भी, परंतु दूसरे के द्रव्यगुणपर्याय को छूता नहीं, तीनकाल, तीनलोक में। आहाहाहा ! बिच्छु इस शरीर को डंक मारता नहीं, (छूता नहीं तो डंक कहाँ से मारे) छूता नहीं। आहा ! यहाँ तो क्या कहते हैं ? वस्तु स्थिति ही ऐसी है। स्वरूप से है, पररूप से नहीं। नहीं उसे वह क्यों छुये ? आहाहा !

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर उनके द्वारा कहा तत्त्व बहुत सूक्ष्म है बापू ! संप्रदाय में जन्मे, उसे भी उसकी खबर न मिले। वह तो पर की दया पालो और यह करो... यहाँ तो कहते हैं कि पर को छूता नहीं तो दया किस प्रकार पाले ? दया पालना अर्थात क्या ? दूसरे जीव की रक्षा करना। रक्षा अर्थात जो है उसे उसी प्रकार रखना, जब आत्मा उसे छू सकता नहीं तो रक्षा किस प्रकार करे ? रक्षा करने का भाव हो, वह तो उसकी पर्याय में भाव हो, परंतु वह पर्याय पर की रक्षा कर सकती है ? वह पर्याय पर को छूती नहीं। आहाहा ! यहाँ तो सभी (सर्व) मनुष्य को, आगे (आयेगा) मज्जंतु (सारा लोक) सारी दुनियाँ आओ और इसमें स्नान करो। चूल पइ पाउने से निमन्त्रण है। आहाहा !

कहते हैं कि तवा पर जो रोटी होती है, वह रोटी तवा को छूती नहीं, तवा अग्नि को छूता नहीं, अग्नि तवा को छूती नहीं, ऐसी बात है। आहाहा ! वस्तु का

स्वरूप ही इस प्रकार है। इसप्रकार न हो तो खिचड़ी होजाय, पहले आया न ? एक दूसरे में संक्रमण हो जाये अन्यथा एक दूसरे एक हो जायें। आहाहा !

देखो ! इसे (हाथ को) छुये बिना यह कागज ऊंचा होता है। आहाहा ! यह (हाथ) कागज को छूकर इसप्रकार ऊंचा होता है - ऐसा नहीं। अंगुली इसे छूती ही नहीं - ऐसा है। अब इसे दया पालना और दूसरों की हिंसा करना... आहाहा ! सत्य बोलना और झूठ नहीं बोलना और झूठ बोलना... यह सभी जड़ की पर्याय को आत्मा छूता नहीं तो करे कहाँ से ? आहाहाहा ! बहुत कठिन काम है। यह जीभ, ओठ को छूती नहीं। क्योंकि प्रत्येक रजकण अपने गुणपर्याय को छूते हैं परंतु दूसरे के द्रव्यगुण पर्याय को वह चूमता, छूता, स्पर्शता नहीं। आहाहा ! - ऐसा वस्तु का स्वरूप है। वस्तुस्थिति ऐसी है। (ताली बजने पर) इस अंगुली को हाथ छूता नहीं और आवाज होती है उसे यह हाथ छूता नहीं। तथा आवाज अंदर से आयी... भाषा की पर्याय की स्वतंत्रता, भाषा अपने गुण-पर्याय को छूती है। उसमें यह हाथ अपने गुण पर्याय को स्पर्शती है, परंतु इस भाषा की पर्याय को आत्मा स्पर्शे (- ऐसा नहीं) आहाहाहा ! उबलता हुआ गर्म पानी चमड़ी को छूता नहीं और यहाँ फोला पड़ता है। यह किस प्रकार से ? यह तो वीतराग की कोलेज है।

जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा... यह उनका कथन है। आहाहा ! यहाँ (गालपर) थप्पड़ मारे तब कहते हैं कि अंगुली (गाल को) छूती नहीं। कौन करे ? छूती नहीं, स्पर्शता नहीं वह भिन्न रजकण, वह भिन्न रजकण आहाहा ! अतः कोई मारे और - ऐसा कहे कि मैं तो तुम्हें छूता नहीं, परंतु मारने का भाव तुमने किया। उसमें तुम्हें - ऐसा हुआ कि उसे मैं - ऐसा करूं - यही मिथ्यात्वभाव है। आहाहाहा ! एक द्रव्य की पर्याय वर्तमान दशा, दूसरे द्रव्य की पर्याय को तीनों काल में छूती नहीं। स्पर्श करती नहीं। चूमती नहीं। आहाहा ! छुये तो दो पर्याय एक हो जाये, अथवा दो पर्याय है (उसमें से) एक पर्याय दूसरी पर्यायरूप होजाये। आहाहा ! - ऐसा तत्त्व है। है अंदर देखो ! इस एक पंक्ति में सभी समा दिया है `सर्व पदार्थ' - ऐसा आया न ? आहाहा !

सर्वपदार्थ... आहाहा ! जहाँ जीव गति करे वह अपने गुण-पर्याय को स्पर्श कर गति करे, परंतु धर्मास्ति को छूकर गति करे - ऐसा नहीं। इसीप्रकार धर्मास्तिकाय है, इसलिये यहाँ गति करनेवाले को छूता है (- ऐसा नहीं)... आहाहा ! ऐसी बात ! लोहे ऊपर छैनी पड़े, परंतु उस लोहे को छैनी छूती नहीं, क्योंकि छैनी के परमाणु स्वयं अपने गुण पर्याय में रहते हैं छैनी की पर्याय उसे छूती नहीं, छैनी की पर्यायधर्म पर के पर्यायधर्म को छूते नहीं। आहाहाहा ! इसे कितना अहंकार निकालना पड़ेगा ?

जहाँ हो, वहाँ हमने किया हमने किया, हमने किया। यहाँ तो आगे चलके यह कहेंगे कि वस्तु जो है आत्मा... वह व्यवहार को स्पर्शता नहीं, इसीप्रकार निश्चय व्यवहार को स्पर्शता नहीं। तभी वह सुन्दरता को पाता है, अभेद रत्नत्रय कहा है न !

`एकत्व निश्चयगत' अपने में जो ज्ञानदर्शन आदि अनंत गुण हैं और उसका परिणमन है, परिणमन है, विरुद्ध परिणमन है, वह है उसकी अवस्था से, इस प्रकार विश्व टिक रहा है। परंतु वह सुन्दरता को इस तरह नहीं पाता - ऐसा कहते हैं। सुन्दरता को तो विकृति रहित आत्मा अपनी निर्मल अभेद रत्नत्रय को पाए, वह उसकी सुन्दरता है और यह व्यवहार रत्नत्रय को, वह अभेद रत्नत्रय की पर्याय, व्यवहार रत्नत्रय का जो राग... उसे छूता नहीं और व्यवहार रत्नत्रय का राग अभेदरत्नत्रय को छूता नहीं। कि जिससे व्यवहार रत्नत्रय से निश्चय रत्नत्रय हो - ऐसा नहीं। आहाहा ! - ऐसा है लोक में। जैन के संप्रदाय में जन्मे और खबर नहीं होती जैन (धर्म) की, हम जैन हैं, जैन हैं, अरे बापू जैन किसे कहते बापू ?! आहाहा !

समस्त पदार्थ... इसमें कोई पदार्थ शेष नहीं रहा। अनंत अनंत परमाणु... आहाहा ! पानी अग्नि को छूता नहीं और पानी गर्म होता है वह उसका अपना धर्म है इसलिये। आहाहा ! यह तो अपने गुण और पर्याय रूप धर्म को पानी के रजकण छूते है, अग्नि को छूते नहीं और पानी गर्म होता है। आहाहा ! वह गर्म पानी के रजकणों की स्पर्श गुण की पर्याय है। यह पर्याय अग्नि से हुयी नहीं। आहाहाहा ! न ही अग्नि से पानी गर्म हुआ... यह तो प्रत्यक्ष है, पहले पानी ठंडा था।वह अग्नि को छुआ तब गरम हुआ। बापू ! तुम क्या देखते हो ? यह पानी स्वयं ही बदला है - ऐसा तुम देखते हो कि अग्नि का संयोग आया इसलिये बदला, यदि - ऐसा है तो तुम्हारी दृष्टि में फेर है। आहाहा ! पानी स्वयं बदलकर गर्म हुआ है। वह संयोगी चीज से गर्म हुआ है - ऐसा तीनकाल में नहीं। आहाहाहा !

तत्त्व की व्यवस्था ऐसी है - इसप्रकार उसे बताकर निमित्त ऊपर से तो लक्ष्य छुड़ाया है, परंतु निश्चय में जो व्यवहार साथ में होता है, उसका भी लक्ष्य छुड़ाना है, और अभेद रत्नत्रय को करने की बात है। आहाहाहा ! सेंतालीस शक्तियाँ आती हैं न, उसमें कोई शक्ति ऐसी सीधे अपने रूप है तथा पररूप नहीं - ऐसा नहीं, परंतु तत् और अतत् में से यह बात निकलती है। आत्मा ज्ञानरूप है वह ज्ञानरूप रहता है, और ज्ञेय जो रागादिक... ज्ञेयरूप होता नहीं उसमें अस्ति-नास्ति की बात आ जाती है। नयों के तो सात (भंग में) अस्ति का तो भंग अलग हुआ है। द्रव्य, पर्याय अस्ति-नास्ति, अस्ति-नास्ति और स्यात् अवक्तव्य।

परंतु इसमें तो वस्तु-वस्तुरूप से है। आत्मा वह ज्ञेयरूप है, यथार्थ तो राग और

परवस्तु ज्ञेयरूप है, उस ज्ञेयरूप तो वस्तु (आत्मा) होती नहीं। आहाहाहा ! ज्ञान स्वयं को जानते हुए, जानने के समय राग को, व्यवहार को जाने, फिर भी, उस रागरूप ज्ञान हुआ नहीं। आहाहा ! यह राग की पर्याय है इसलिये यहाँ स्वपर प्रकाशक पर्याय हुयी - ऐसा नहीं। वह स्वयं के गुण पर्याय का धर्म उस समय, स्वपर को जानने का स्व से उत्पन्न हुआ है। उसे यह स्पर्शता है। आहाहाहा ! समझ में आया ? परंतु वास्तव में तो वह राग को स्पर्शता भी नहीं। बाहर के (अन्य द्रव्यों के) किसी गुण को तो स्पर्शता नहीं। यह तो एक तरफ रहो, क्योंकि आत्मा में बंध कथा विसंवादी बतायी है न ?

भगवान एक स्वरूप है, उसे राग का संबंध, बंध कथा अर्थात बंध भाव... आहाहाहाहा ! इसमें - ऐसा कहना है कि प्रत्येक पदार्थ विरुद्ध स्वभाव कि अविरुद्ध स्वभाव से रहकर भिन्न टिक रहा है। कोई किसी के कारण है नहीं, इसप्रकार जगत टिक रहा है। परंतु यहाँ बताकर उसमें से भिन्न करना है। पर से तो भिन्न किया। (आत्मा को) परंतु उसकी पर्याय में जो धर्म है उसे भी भिन्न करना है। आहाहा ! इसप्रकार एक तरफ - ऐसा कहा है कि अपने गुण पर्याय को चूमता है। पर को नहीं (परंतु) विकार को वह चूमता है। परंतु अब यहाँ तो एकत्व निश्चयगत सिद्ध करना है।

भगवान आत्मा अकेला चिदानंद ध्रुव, अनाकुल शांतरस का कंद, शांत, रसरूप परिणमे, वह व्यवहार और राग को छूता नहीं, व्यवहार और राग को स्पर्श करता नहीं, व्यवहार का राग... भगवान (आत्मा) शांत रूप, धर्मरूप अभेद रत्नत्रयरूप, परिणमता है, उसमें भी व्यवहार का राग को स्पर्श करता नहीं। आहाहा ! यह तो वीतराग सर्वज्ञ देव उनके द्वारा कहे गये तत्त्व की गंभीरता है। प्रभु ! यह बात सर्वज्ञ के अलावा कहीं, वीतराग जिनेश्वर के अलावा कहीं है नहीं। सभी जगह कम ज्यादा और विपरीत करके, उल्टा कर डाला है। पंथव्यामोहवालों को भी खबर नहीं, अभी कहाँ पड़े हैं, क्या है और कौन है। आहाहा !

यहाँ तो (लोग) कहते है कि निमित्त आये तो कार्य हो, जबकि यहाँ तो - ऐसा कहते हैं कि निमित्त छूता नहीं और कार्य होता है, यह तुम किस प्रकार कहते हो ? आहाहा ! जब अंदर में भेदज्ञान से लेते हैं तब तो `एकत्वगत' अर्थात अभेद रत्नत्रय रूप परिणमे उसे भेदरत्नत्रय छूता नहीं कि भेद रत्नत्रय है, इसलिये अभेद रत्नत्रय हुआ - ऐसा नहीं। आहाहा ! सूक्ष्म है भाई यह। आहाहा ! वह तो सुबह उठे णमो अरहंताणम् करके एक सामायिक करे, होगया धर्म। जाओ अब २३ घण्टे पाप करो। सामायिक किसकी थी ? मिथ्यात्व की थी। आहाहा ! राग मंद करे कदाचित् वहाँ तो वह पुण्य था उसमें इसने धर्म माना था, वह तो इसने मिथ्यात्व

का सेवन किया है। आहाहाहाहा ! ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं सर्व पदार्थ... भगवान सर्वज्ञ देव ने जिनेश्वर देव ने जो अनंत आत्मा कहे... अनंत परमाणु यह रजकण है। यह अंगुली एक चीज नहीं कुछ, इसके टुकड़े करते करते करते आखरी हिस्सा रहे वह परमाणु, एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। आहाहा ! फिर भी शास्त्र में - ऐसा आता कि एक परमाणु में दो गुण चिकनापना है, दूसरे परमाणु में चार गुना चिकनापन है वह एकत्र हो तो चार गुण हों। यह तो इससमय चार गुण होने की योग्यतारूप पर्याय का धर्म अपना है। यह चार गुणवाला निमित्त था अतः चार गुण हुआ- ऐसा नहीं। अरे ! बहुत फर्क, बहुत बातों का फर्क है, आहाहा ! और यह शरीर के रजकण हैं यह जड़, माटी, धूल वह अंदर आत्मा को छूते नहीं और आत्मा भी शरीर को छूता नहीं तीन काल में। एक बात।

कर्म का उदय जड़ है अदंर, परमाणु की सत्ता है उसमें से उदय आता है वह जड़ है, उसे आत्मा छूता नहीं। उसीप्रकार यह कर्म का उदय जड़ है (जड़ की) पर्याय है, वह अपनी पर्याय को छूता है, परंतु वह जड़ पर्याय भी यहाँ राग को छूता है, इसलिये राग होता है - ऐसा है नहीं। आहाहाहा ! कठिन काम है बापू वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म। आहाहा ! यह चश्मा है वह यहाँ (नाक को) छुये बिना यहाँ रहता है, कौन माने ? पागल कहें पागल है ? (श्रोता :- पानी उतर जाय) और यह जो पैर जमीन ऊपर चलते हैं, वह पैर जमीन को छुये बिना चलते हैं - ऐसा यहाँ कहते हैं। पैर जो चलते हैं उसे आत्मा छूता नहीं, पैर ने जमीन को छुआ नहीं पैर ने जमीन को छुआ नहीं, पैर के परमाणुओं को आत्मा छूता नहीं। आत्मा परमाणुओं को छूता नहीं और पैर की गति स्वयंसे होती है। वह रजकणों की अपनी पर्याय के कारण होती है। आहाहाहाहा ! लोगों को कैसे समझायें ? चौबीसों घण्टे यह किया और वह किया, वह किया और यह किया। आहाहा !

पर पदार्थ की व्यवस्था हमने की, दुकान धंधे की व्यवस्था हमने की, उगाही लेने भी मैं गया और बराबर मैं लाया, अरे प्रभु ! क्या कहते हो तुम यह ? यह सभी मिथ्यादृष्टि का मिथ्या पाप का पाखण्ड भाव है। आहाहा ! देखो, यह तीसरी गाथा। (प्रतियोगिता में) एक दो-तीन - ऐसा नहीं करते ? तीन पूरी कर देते है !

तीसरी गाथा में 'एयत्तणिच्छगदो' प्रभु भगवान आत्मा... अपने शुद्धस्वरूप को, पवित्र को... पुण्य-पाप के विकल्प हैं वह राग है उसे प्राप्त हो वह तो बंध कथा, बंध भाव है। आहाहा ! हां, स्वभाव से विरुद्ध कार्य और अविरुद्ध कार्य से जगत टिक रहा है - ऐसा बताया- ऐसा कि यह किसी के कारण कोई है - ऐसा नहीं। परंतु

अभी यहाँ तो आत्मा की बात करते हैं, तो विकार से भी आत्मा भिन्न बताया है। आहाहा ! दया, दान, व्रत और भक्ति को करे तो सम्यग्दर्शन हो, तो धर्मदशा व्यवहार करते करते हो, तथा व्यवहार निश्चय को पहुंचाये, वह बिलकुल मिथ्या शल्य है। आहाहाहा !

मिथ्यादर्शन शल्य महापाप है, अब इस पाप की कुछ खबर नहीं है। जीव मरे तो पाप लगे - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि जीव मरे हैं वह उसकी आयुष्य की पूर्णता हुयी इसलिये मरे, तुम उसे मार सकते हो यह तीन काल में बन सकता नहीं। आहाहा ! क्योंकि (यह) जीव उसे छू सकता नहीं। छूता नहीं तो मारे किस प्रकार ? (अज्ञानी की मान्यता में) बहुत फर्क है ? - ऐसा स्वरूप है बापू। आहाहा ! जिनेश्वरदेव... उनका गहरा कुंआ, अनंतगुण का मालिक प्रभु है, वहाँ इसे ले जाना चाहते हैं। आहाहा ! संयोग से तो भिन्न, परंतु संयोगी (भाव) राग, व्यवहाररत्नत्रय, संयोगीभाव... आहाहाहा ! उसरूप परिणमता है, पर से भिन्नपना माना परंतु उसरूप (रागरूप) परिणमते स्वभाव से भिन्न है। यह नहीं जाना तुमने। आहाहा ! आहाहाहा ! इन दो पंक्तियों में इतना ज्यादा भरा है। यह तो सभी उदाहरण है। आहाहा ! चार पैसे का सेर तो मन का ढाई रूपया फिर साड़े सेंतीस सेर का साड़े सेंतीस आना। दश सेर के दश आना, पच्चीस सेर के पच्चीस आना यह तो सभी उसके जीवन के उदाहरण (हैं)।

यह सभी पदार्थ... कैसे हैं सभी पदार्थ ? - ऐसा कहा है न ? कैसे है सर्व पदार्थ ? सर्व अर्थात अनंत पदार्थ, अनंत अर्थात अनंत आत्मायें और अनंत रजकण और असंख्य कालाणु, कैसे है ? `अपने द्रव्य में अंतर्मग्न रहे हुये' अपने द्रव्य में रहे हुये हैं अंतर्मग्न - `अपने अनंत धर्मों के चक्र' चक्र अर्थात समूह। आहाहा ! आत्मा अपने अनंत गुण अनंती निर्मल पर्याय उसे छूती है चूमती है। आहाहाहा ! `उसमें रहनेवालों को चूमता है, छूता है' आहाहाहा ! निश्चय से तो भगवान आत्मा (जो) व्यवहार दया, दान का विकल्प उठता है उसे यह आत्मा चूमता नहीं, छूता नहीं। आहाहा ! वह भिन्न रहता है। आहाहाहा ! - ऐसा जैन धर्म होगा ! जैन धर्म तो भाई सामायिक करो उपवास करना और प्रतिक्रमण करना यह गिरनार और पालीताना की यात्रा करना... बापा यह सभी बातें है।

यह शरीर की क्रिआयें वह शरीर का धर्म है वह तो उसका, उससे उसकी क्रिया होती है। तुम्हारे में राग होता है वह तो पुण्य है, जैन धर्म नहीं। रात्री को कहा था, ८३ गाथा (भावपाहुड़), पूजा, भक्ति, वंदना, वैयावृत्त, व्रत यह सभी भाव पुण्य है, धर्म नहीं, यह राग है यह आत्मा का वीतरागधर्म नहीं। आहाहाहाहा !

यहाँ तो बंध कथा बताकर राग का संबंध भी झूठा है - ऐसा बताना है। इसप्रकार पूरा जगत टिक रहा है वह स्वयं अपने गुण पर्याय में, चाहे विरुद्धरूप कि अविरुद्धरूप, जगत इस प्रकार टिक रहा है, किसी के संबंध से टिक रहा है - ऐसा नहीं। फिर उसमें से निकलकर अभेद रत्नत्रयरूप परिणमे आत्मा... शुद्धचैतन्य वस्तु, पर को तो छुये नहीं परंतु राग को छुये नहीं और अपने गुण पर्याय को स्पर्श करे द्रव्य अपनी पर्याय को स्पर्श करे। आहाहा ! जो द्रव्य पर्याय को छूता है, चूमता है। वह पर्याय को द्रव्य को चूम करके, स्पर्श करके... आहाहा ! जो निर्मल सम्यग्दर्शनज्ञान होता है उसका नाम (धर्म) शेष तो मजदूरी कर करके मर गया अनंतकाल से। एक तो व्यापार धंधा की मजदूरी, बड़ा मजदूर यह।

जिनेश्वरदेव, इन्द्र और गणधरों की उपस्थिति में - ऐसा कहते थे। वह बात यहाँ आयी है। इन्द्र और गणधर, भगवान के पास विराजते हैं अभी महाविदेह में, सीमंधर प्रभु वहाँ विराजते हैं। वहाँ जो कहते थे वह वाणी यहाँ आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ से आये, आहाहा ! यहाँ से गये थे, वहाँ से वापस आये... तब यह बनाया 'समयसार' आहाहाहा... तब यह कहा कि भगवान तीनलोक के नाथ सीमंधर प्रभु, तुम सामायिक में जिनकी आज्ञा मांगते हो, भगवान ! यह भगवान - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! कि पर की दया तुम पाल सकते नहीं क्योंकि पर को तुम छू सकते नहीं। आहा ! पर को मार सकते नहीं क्योंकि पर को छू सकते नहीं। आहाहा ! झूठ बोलने की भाषा तुम कर सकते नहीं, क्योंकि उसको छूते नहीं। आहाहाहा ! आगे चलकर झूठ बोलने का जो भाव यह विकल्प है उसे निश्चयरत्नत्रय छूता नहीं। आहाहा ! यह तो वीतरागमार्ग बापू सूक्ष्म है। एक (की) कहानी सूक्ष्म हो तो भी साधारण व्यक्ति (नहीं समझें), यह तो जिनेश्वरदेव, त्रिलोकनाथ (की वाणी) उसे (कभी) सुना नहीं। आहाहा ! करे (समझे) तो कहाँ से !

फिर अपने अनंत धर्म लिये हैं। असंख्य कि संख्य नहीं, प्रत्येक परमाणु एक परमाणु हो, (पुद्‌गल का) आखरी अंश पोइन्ट, उसमें भी अनंत धर्म हैं। गुण और पर्याय अनंत हैं। अहाहा !

अनंत धर्मों के समूह को चूमता है। आहाहा ! छोटा बच्चा हो तो उसे चूमते हैं न ! गाल को छूते और चूमते हैं ? नहीं ! नहीं ! तुमने ओंठ को छुआ नहीं, ओंठ उसके शरीर को छुआ नहीं, वह शरीर तुम्हारे ओंठ को छुआ नहीं और मैंने चुम्बन लिया - ऐसा मानना (भ्रम है) आहाहाहा ! यह नया धर्म होगा - ऐसा ? परन्तु अभी तक तो सुना नहीं था तो नया निकाला होगा - ऐसा ? सोनगढ़वालों ने नया निकाला है - ऐसा कहते हैं। (श्रोता :- यहाँ सुनते नहीं थे इसलिये दूसरा

नहीं था ?) सभी था, बहुत जगह, महाविदेह में तो बीस तीर्थंकर प्रभु विराजते हैं वहाँ मूसलाधार धर्म चलता है। आहाहा !

नया निकाला और एकांतवादी हैं - ऐसा (कितने ही) कहते हैं। प्रभु तुम क्या कहते हो भाई ! तुम्हें तुम्हारे स्वभाव की और विभाव की स्वतंत्रता की तुम्हें खबर नहीं। आहाहा ! वे - ऐसा कहते हैं कि निमित्त से भी होता (और) उपादान से भी होता है यह अनेकांत है। यहाँ कहते हैं अपने से हो पर से न हो यह एकांत है। वह कहते है कि निश्चय से भी होता हैं, व्यवहार से भी निश्चय होता है, यह अनेकान्त है। यहाँ कहते हैं कि व्यवहार से निश्चय नहीं होता और निश्चय स्वद्रव्य के आश्रय से होता है यह अनेकांत है। आहाहा ! अर्थात अपना प्रभु जो पूर्ण गुण शक्तिवाला है उसके आश्रय से जब धर्म होता है, वह निश्चयनय सम्यक् एकांत में जाता है, वास्तव में नय यह सम्यक् अनेकांत है और सम्यक् एकांत हुआ ज्ञान। राग और व्यवहार है। - ऐसा साथ में जाने तब उसे प्रमाण ज्ञान कहा जाता है। आहाहा !

और यहाँ तक तो लिया। नय चक्र में (कहा) कि प्रमाण पूज्य नहीं क्योंकि प्रमाण के ज्ञान में पर्याय और राग आता है और इस निश्चय में पर्याय का निषेध वर्तता है इसलिये निश्चयनय पूज्य है, प्रमाण पूज्य नहीं। पर्याय को मिलाकर ज्ञान कहते हैं, परंतु वह पहले का (साथ में) रखकर आहाहा ! स्वभाव जो त्रिकाल है, उसका आश्रय लेकर जो होता है वह निश्चयनय को रखकर पर्याय को मिलाये उसे प्रमाण ज्ञान कहते हैं। अकेले को निश्चयनय कहते हैं, पर्याय को मिलाये उसे प्रमाणज्ञान कहते हैं। परंतु यह प्रमाण ज्ञान पर्याय को जाने यह अलग बात है पर्याय का आश्रय करते हैं वहाँ तो विकल्प उठता है, इसलिये प्रमाण ज्ञान में पर्याय का निषेध नहीं आता, प्रमाण में उसका ज्ञान आता है, निश्चय में तो इस पर्याय का निषेध वर्तता है। अरे ! ऐसी बातें हैं।

यहाँ तो उसे अभेद रत्नत्रय निश्चयगत सिद्ध करना है। `निश्चयगत' है न ? ***एकाग्र निश्चयगत, एकाग्र निश्चय को प्राप्त यह वस्तु है भले उसे, प्राप्त कहो कि वस्तु है उसमें अभेद रत्नत्रय को प्राप्त कहो। यह सुन्दर है।*** (श्रोता :- यहाँ तो छह-द्रव्य की बात करना चाहिए न) यहाँ तो आत्मा में घटित करना है यहाँ अपन को तो छह द्रव्यों में से निकालना है इसमें, अन्तिम निष्कर्ष तो यह लेना है न?

भिन्न-भिन्न सिद्ध होने से जीव नामक समय को... अंत में तो - ऐसा लेना है न ! भले बतलाये सभी की बात पहले कही, इसप्रकार जीव नामके पदार्थ को बंध कथा से विरुद्ध पाते हैं - ऐसा कहना है - ले तो वहाँ जाना है न ? आहाहा

! यह किसप्रकार का धर्म होगा। आहा ! संप्रदाय में तो जहाँ जाओ वहाँ यही बात चलती है, व्रत करो, सामायिक करो, उपवास करो, प्रतिक्रमण करो, छ काय जीव की दया पालो, छह पर्वों में हरी नहीं खाना, छह पर्वों में ब्रह्मचर्य पालन करना, यह किस प्रकार की बात है ? आहाहा !

बापू ! ये सभी बाहर की बाते जड़ की क्रिया, और अंदर में राग का भाव आये तो यह कोई धर्म क्रिया नहीं। आहाहा ! यहाँ तो स्वरूप जो है उसे छह द्रव्यों की स्थिति करके फिर आत्मा में बंधपना है, यह निर्दोष नहीं, सदोष है - ऐसा बतलाकर इसे वस्तु (ज्ञायक भाव) तरफ ले जाना है। आहाहाहा ! अब एक घण्टे में याद कितना रहे ? सभी बात भिन्न जाति की आती है। दान दो, पैसा खरचो, अकेले नहीं खाओ, देखो- ऐसा नहीं आता ? (पैसा मिलेगा पर अवसर नहीं मिलेगा) हा, परंतु अपना `पद्मनंदी पंचवीशति' - ऐसा कहा है अकेले खाओगे तो कौआ (की गति) में जाओंगे। यह आता है वह यहाँ राग की मंदता बताते हैं, फिर भी वह कहीं धर्म नहीं, निश्चय आत्मा के आश्रित धर्म है। जहाँ - ऐसा राग हो तो उसे व्यवहार धर्म का आरोप कहा जाता है। व्यवहार अर्थात कि यह - ऐसा नहीं, निमित्त के आधीन कथन किया जाता है। आहाहाहाहा !

सर्व पदार्थ कैसे हैं ? पदार्थ कैसे हैं... हम कहते हैं इसलिये - ऐसा है - ऐसा नहीं। भगवान - ऐसा कहतें हैं कि हमने कहीं पदार्थ को बनाया है ? भगवान ने कहीं पदार्थ बनाये नहीं। सर्व पदार्थ स्वयं सिद्ध हैं इसका कोई कर्त्ता ईश्वर-वीश्वर है नहीं। भगवान ने देखा है, कहीं भगवान ने किया है, पर-पदार्थों का स्वरूप ? - ऐसा नहीं है इसलिये यहाँ कहते हैं `कैसे है वे सर्व पदार्थ' वे पदार्थ कैसे है ? अपने द्रव्य में अंर्तमग्न रहते हुये, अपने अनंत धर्मों के चक्र को चूमते हैं, स्पर्श करते हैं। ऐसे यह पदार्थ हैं। ऐसे यह पदार्थ हैं। `अपने धर्मों को चूमते हैं फिर भी जो परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करते नहीं'। अरेरे ! यह बात कैसे बैठे ? आहाहा !

पैर चलते है, परन्तु वे जमीन को छूते नहीं और पैर का एक रजकण दूसरे रजकण को ठोकर मार सकता नहीं और छू सकता नहीं। कहो ! ऐसे चलते-चलते बीच में लकड़ी आये तब ठोकर मारते (हैं) ना, उसे छूता नहीं तो फिर ठोकर कैसे मारे ? अरे ! ऐसी बातें वहाँ - ऐसा पत्थर पड़ा हो वहाँ ऐसे मारे तो पत्थर इसप्रकार खिसक जाता है। बापू ! उस समय उसकी अपनी पर्याय धर्म है, उसमें यह रहता है। वह क्या तुम्हारी ठोकर के कारण आगे खिसक गया है - ऐसा नहीं है। आहाहाहाहा !

- ऐसा वीतरागी जैन धर्म, बानियों के हाथ में रह गया, बानिया व्यापार में

उलझ गये, निर्णय करने का समय निकाला नहीं। आहाहा !

ये पदार्थ कैसे हैं ? कि जो परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करते नहीं ऐसे ये पदार्थ हैं। - ऐसा कहा न ? कैसे हैं यह सभी पदार्थ ? अनंत आत्मायें, अनंत रजकण। यह कर्म के उदय को स्पर्शता नहीं और राग कर्म के उदय को राग स्पर्शते नहीं। आहाहाहाहा ! अब यहाँ कहते (है) कर्म का उदय आता है, इसलिये विकार करना पड़े। कर्म का उदय आता है निमित्त होकर इसलिये उसे विकार करना ही पड़े ? आहाहा ! - ऐसा है ही नहीं आहाहा ! प्रत्येक वस्तु अपनी शक्तियों और दशा को स्पर्शती है। आहाहा ! गिरते हुये लड़के का हाथ पकड़कर खड़ा रखा ? कहते हैं कि हाथने उसे छुआ नहीं। यह तो कौन माने ? तालाब में गिरता था तो हाथ पकड़ कर खड़ा रखा ? ना यह हाथ की क्रिया तुम्हारी नहीं और हाथ उसे छुआ नहीं और हाथ को तुमने छुआ नहीं ऐसी बात समझना (कठिन) है आहा ! प्रभु स्पर्श करता नहीं, कैसा है यह ? विशेष कहेंगे..... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. १४ गाथा-३ ता. २२-६-७८ गुरुवार जेठ वद-२ सं.२५०४

समयसार गाथा-३ सर्व पदार्थ जितने जगत में अनंत पदार्थ हैं, अनंत आत्मायें अनंत रजकण यह सभी पदार्थ अपने द्रव्य में अंर्तमग्न रहे हुये, अपने पदार्थ में अंर्तमग्न... गुण और पर्याय यह द्रव्य में अंर्तमग्न है। आहा ! सभी अपने अनंत धर्मों में स्थित है। द्रव्य अर्थात वस्तु, उसमें अंर्तमग्न उसके गुण और पर्याय... उसके अस्तित्व में है, उसे वे चूमते हैं। अपने गुण पर्याय को वह छूता है, स्पर्श करता है, चूमता है, तब भी वह परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करते नहीं। आहाहाहा ! पदार्थों का स्वरूप... वह अपने में अनंतगुण की पर्याय को अवश्य छुए, क्योंकि अपने अस्तित्व (में) है, परंतु दूसरे पदार्थों के अस्तित्ववाले द्रव्य गुण पर्याय को... द्रव्यगुण को तो छूता नहीं, वह तो ध्रुव है, परंतु दूसरे पदार्थों की पर्याय है... उसे इस पदार्थ की पर्याय छूती नहीं। अपना द्रव्य (अन्य के) गुण (को) तो चाहे न छुए परंतु अपनी पर्याय भी दूसरे की पर्याय को छूती नहीं। आहाहाहा !

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय को छूती नहीं। इस शरीर की पर्याय... अवस्था द्रव्यगुण तो ध्रुव है जीव की पर्याय को, जीव की पर्याय ज्ञान की

हो कि राग हो उसे यह शरीर की पर्याय छूती नहीं। आहा ! उसी प्रकार अपनी राग या ज्ञान की पर्याय शरीर की पर्याय को छूती नहीं। आहाहा ! यह टोपी है वह माथे को छूती नहीं - ऐसा कहते हैं। टोपी की जो पर्याय है उसके द्रव्य गुण तो ध्रुव हैं, अब उसकी जो अवस्था है वह इस शरीर की अवस्था है यह इसे छूती नहीं, यह टोपी अपने गुण-पर्याय को स्पर्श करती हुई रहती है। यहाँ तक तो आया था।

`अत्यंत निकट' कितनी ही अनेक प्रत्येक वस्तु अत्यंत नजदीक में हैं। एक क्षेत्र में हैं। आकाश का क्षेत्र है। उसके एक क्षेत्र में अत्यंत निकट रजकण हैं एक प्रदेश में और इन प्रदेशों में अनंत जीवों के अनंत आत्मप्रदेश भी हैं, एक आकाश के प्रदेश में अनंता जीवों के असंख्यात एक जीव के, ऐसे अनंताजीवों के अनंत प्रदेश हैं और उसमें अनंत परमाणु हैं। यह एक जगह रहने पर भी... आहाहा ! एक जगह व्यापे `फिर भी वह अपने स्वरूप से च्युत होते नहीं' आहाहा ! एक आकाश के प्रदेश में, अनंत आत्माओं के प्रदेश और उन्ही प्रदेशों में अनंत परमाणु प्रत्येक अपने अपने स्वरूप में रहता है। है न ?

सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत होते नहीं, हटते नहीं, चाहे एक जगह पर हों, फिर भी वे अपनी पर्याय से हटते नहीं। खिसककर दूसरे को छूते नहीं। एक क्षेत्र में होने पर भी, एक क्षेत्र और अत्यंत निकट... आहाहा ! प्रारम्भ की गाथाओं में बहुत गंभीरता भर दी है आहाहा ! देखो आहा ! अपने स्वरूप से च्युत होता नहीं, पररूप नहीं परिणमने के कारण... एकप्रदेश में अनंत परमाणु और अनंत जीव के प्रदेश रहने पर भी वे अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते और `पररूप नहीं परिणमने के कारण उनकी अनंत व्यक्तता नाश को प्राप्त नहीं होती'। पररूप नहीं परिणमें, परमाणु परमाणु रूप परिणमे (और) आत्मा आत्मा की पर्यायरूप परिणमे एक ही प्रदेश में इकट्ठा रहनेपर भी एक दूसरे के कारण परिणमते नहीं, इसलिये अनंत व्यक्तता नाश को प्राप्त नहीं होती। इसलिये जितनी अनंत चीजें हैं वह एक दूसरे को स्पर्शती नहीं, परिणमित नहीं होती इसलिये अनंत व्यक्तिपने टिक रही हैं। आहाहा !

अनंत व्यक्तता अर्थात प्रगटता, जितने तत्त्व और द्रव्य हैं, उतने वह आहाहा ! नष्ट नहीं होते, व्यक्तियाँ नष्ट नहीं होती जितनी व्यक्तियाँ अनंते अपने द्रव्य, गुण, पर्याय में हैं इतने अनंत द्रव्य, द्रव्य-गुण-पर्याय हैं। एक जगह रहने पर भी अपनी पर्याय से हटकर नष्ट नहीं होते नजदीक होने पर भी स्वरूप से च्युत नहीं होते। आहाहाहा ! एक क्षेत्र में शरीर कर्म, आत्मा रहने पर भी एक दूसरे पदार्थ में प्रवेश नहीं करते, एक जगह होने पर भी पर में नहीं परिणमते। आहाहाहा ! - ऐसा ज्ञान

सूक्ष्म है।

`इसलिये वह टंकोत्कीर्ण जैसे (शाश्वत) स्थित रहता है' शाश्वत रहते हैं भले एक प्रदेश में एक साथ अत्यंत निकट हो फिर भी स्वयं अपनी पर्याय से भिन्न होता नहीं। एक जगह है फिर भी उसमें प्रवेश करता नहीं, एक जगह हैं फिर भी उसरूप परिणमित होता नहीं। इसलिये अनंत वस्तुयें जितनी हैं उतनी टिक रहीं हैं। आहा ! इसलिये... है न ? जैसी स्थित हैं वहाँ के वहाँ पडी रहती हैं। आहाहा ! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय एक प्रदेश में एक साथ रहने पर भी वह पर्याय दूसरे को स्पर्श नहीं करती और यह पर्याय एक जगह रहने पर भी पररूप परिणमे नहीं। आहाहा !

- ऐसा वस्तु का स्वरूप ही है। भगवान ने कुछ किया नहीं, भगवान ने तो जाना है। आहाहा ! पदार्थ स्वयं अपने स्वभाव में रहते हैं। एक जगह रहने पर भी (स्वरूप से) च्युत होते नहीं, और एक दूसरे को छूते नहीं। आहाहाहा ! अफीम और शक्कर जीभ को छूती है, कि नहीं ? तब कड़वी, मीठी लगती है न ? (यहाँ कहते हैं) अफीम और शक्कर जीभ को छूती नहीं। आहाहा ! प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय में रहा हुआ है, गुण तो त्रिकाल ध्रुव ही है। वे एक दूसरे को छूते नहीं, स्पर्श करते नहीं। ओहोहोहो ! शरीर की यह इन्द्रियाँ, दूसरे के शरीर की इन्द्रियों को छूती नहीं... और दूसरे के शरीर की पर्याय इस शरीर की पर्याय को छूती नहीं। आहाहा ! फिर भी यह भ्रम कैसा ? मुझे विषय में सुख होता है, शरीर को मैं स्पर्शता हूँ, आहाहा ! मैं ठंडे पानी को छूता हूँ, जीभ छूती है, इसलिये ठंडा लगने से प्यास बुझ जाती है - ऐसा है नहीं, ठंडा पानी गले को छूता नहीं। गले की पर्याय ठंडे पानी को छूती नहीं। आहाहाहा ! एक जगह रहने पर भी अपने स्वरूप से डिगता नहीं एक जगह रहने पर भी कोई किसी को छूता नहीं। आहाहा !

`और समस्त विरुद्ध कार्य और अविरुद्ध कार्य के हेतुपने से जो हमेशा विश्व का उपकार करते हैं, टिकाये रखते हैं' क्या कहते हैं ? प्रत्येक पदार्थ चाहे स्वभाव रूप परिणमो कि विभावरूप विभाव रूप जीव और पुद्‌गल यह दो, फिर भी विभाव रूप में परिणमे समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य के हेतुपने से जो हमेशा विश्व को... अर्थात विश्व जो अनंत पदार्थरूप है, इस प्रकार अनंत पदार्थरूप में टिक रहे है। आहा ! एक दूसरे के कार्य को करते नहीं और अपना विरुद्ध अविरुद्ध कार्य स्वयं का अपने में है। इसलिये यह विश्व के अनंत पदार्थ जिस प्रकार भिन्न है उस प्रकार टिक रहे हैं। आहाहा ! यह तीसरी गाथा बहुत अच्छी है।

कार्य शब्द है न ! धवल में पाठ है, पर्याय से गुण कथंचित भिन्न हैं। इसलिये पर्याय से गुण विरुद्ध है। समझ में आया कुछ ? ***धवल में पाठ है, जो विरुद्ध है...***

विरुद्ध के दो प्रकार (एक अपेक्षा से)... एक तो उत्पाद व्यय है, यह विरुद्ध है और गुण है वह अविरुद्ध है। क्योंकि उत्पादव्यय, उत्पाद व्यय इस तरह दो प्रकार हुये न ? उपजे और नाश, उत्पन्न और नाश अर्थात विरुद्ध है और वस्तु है उसके गुण है वह अविरुद्ध है, उसमें उत्पादव्यय नहीं एक रूप है। दूसरी तरह उत्पाद और व्यय जो है पर्याय, उससे गुण कथंचित भिन्न है, इसलिये पर्याय से गुण विरुद्ध हैं। समझ में आया ?

प्रत्येक द्रव्य की जो पर्याय है वह उत्पाद-व्ययवाली एक समय में दो (प्रकार) से है। भाव-अभाव, उत्पाद वह भाव, व्यय वह अभाव है और गुण वह भाव स्वरूप, वह एकरूप इसलिये पर्याय से, गुण कथंचित भिन्न है, कारण कि (पर्याय) भाव अभाव स्वरूप है, यह (गुण) भाव स्वरूप (ही) है। कथंचित भिन्न हैं इसलिये पर्याय से गुण विरुद्ध है। समझ में आया ? अंदर के अंदर में अब, तथा गुण है वह ध्रुव से अभिन्न है, इसलिये वह विरुद्ध है। 'उत्पाद, व्यय, ध्रुव युक्त सत्' उत्पाद-व्ययरूप पर्याय गुण से (भी) कथंचित भिन्न है, क्योंकि यह उत्पन्न नष्ट होती है तथा गुण एकरूप रहता है। कथंचित भिन्न है इसलिये विरुद्ध है। पर्याय से गुण विरुद्ध है, यहाँ (पर्याय में) तो कार्य है विरुद्ध-अविरुद्ध और गुण यह कहीं कार्य नहीं, परंतु पर्याय के कार्य से... वही वही द्रव्य, पर्याय के कार्य से वही वही गुण, उत्पाद व्यय स्वरूप नहीं, इसलिये विरुद्ध हैं और स्वयं स्वयं के गुण से ध्रुव से उत्पाद व्यय से गुण कथंचित विरुद्ध हैं और गुण ध्रुव से अविरुद्ध हैं, उत्पाद व्यय और ध्रुव तीन शब्द है न ! उत्पाद व्यय से गुण कथंचित विरुद्ध हैं और गुण ध्रुव से अविरुद्ध हैं - ऐसा स्वरूप है।

ओहोहो ! तीसरी गाथा में कितना समाया है देखो ! अमृतचन्द्राचार्य ! जंगल में बसनेवाले ! आनंद में (लीन)। आहाहा ! थोड़ा विकल्प आया, बाहर आ गये, परंतु जिसकी रचना में निमित्तपना है वह टीकारूप रचना तो परमाणुओं की है, कारण कि परमाणु की पर्याय और उसका विकल्प वह ज्ञान पर्याय को छूता नहीं। टीका के जो रजकण है... यह अक्षर, इन अक्षरों को अमृतचन्द्राचार्य का विकल्प या गुण की पर्याय (स्पर्श करती नहीं) आहाहा !

अमृतचन्द्राचार्य ने - ऐसा कहा कि मैं शुरूआत करूंगा, समझाना (है न) आहाहा ! भाव (गुण) से शुरूआत करेंगे, फिर भी उस गुण की शुरुआत में जो ज्ञान भरा है पर्याय में, वह इस टीका के अक्षरों को छूता नहीं और टीका के अक्षर की पर्याय... (को) हमें जो विकल्प आया वह भी छूता नहीं। तब छूये बिना कैसे रचे ? आहाहा ! फिर भी - ऐसा कहते हैं कि ऐसी टीका के काल में टीका से मुझे विशुद्धि होओ। अनादि का कलुषित भाव मुझे है अभी, मैं मुनि हूँ, लिखते समय छठवें गुणस्थान

में हूँ, फिर भी प्रमत्त-अप्रमत्त दशा वह मैं नहीं - ऐसा द्रव्य हमारी दृष्टि में, (आत्म द्रव्य) तैरता है।

टीका के काल में हमारे ज्ञान का क्षयोपशम कि विकल्प उसे छूता नहीं और टीका की पर्याय परमाणु से होती है। आहाहा ! (जगत की मान्यता में) बहुत बड़ा फर्क है, आहा ! विरुद्धकार्य (अर्थात्) स्वभाविक या वैभाविक पर्याय, अविरुद्धकार्य स्वाभाविक ऐसे हेतुपने से... स्वाभाविक और विभाविक कार्य के कारण... जो कि हमेशा विश्व का उपकार करते हैं विश्व अर्थात अनंतपने जो चीज है वह अनंतपने ही टिक रही है। उस अनंत में कोई कम ज्यादा होता नहीं। क्योंकि अनंत जो है वह, किसी द्रव्य की पर्याय किसी द्रव्य को, चाहे विभाव रूपी कार्य हो... आहाहा ! फिर भी वह परपदार्थ के कारण नहीं, परपदार्थ को, उसकी पर्याय को वह पर्याय छूती नहीं और परपदार्थों की पर्याय, वह विकल्प को छूती नहीं। विरुद्ध कार्य जो विभाव... जो विकल्प आया है, वह विभाव है। आहाहा ! उस विभाव को कर्म के उदय की पर्याय छूती नहीं, उसीप्रकार टीका की पर्याय उस (विकल्प) को छूती नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा स्वरूप है।

- ऐसा यह विरुद्ध कार्य (होनेपर) भी, फिर भी जितना अस्तित्व है उसीप्रकार वह द्रव्य है और उससे अनंत द्रव्य, जिसप्रकार अनंत व्यक्तिरूप भिन्न है वह पूरा विश्वपना जिसप्रकार है, उसप्रकार टिक रहा है आहाहा ! विश्व मात्र अनंत पदार्थों का जो स्वरूप (है) इसमें एक पदार्थ की पर्याय जो दूसरे पदार्थ को छुये और करे, तो विश्व में जो द्रव्यों का अनंतपना है उतना अनंतपना रहता नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा उपदेश दिया।

वह अनंतपना ! विश्व अर्थात अनंत अनंत तत्त्व और द्रव्य जितने और जिस रूप में हैं भले वह विरुद्ध कि अविरुद्धरूप परिणमें, स्वभाव या विभावरूप पर वह अपनी पर्याय में है। आहाहा ! एक क्षेत्र में रहा हुआ कर्मोदय है उसे भी विकार छूता नहीं और कर्म का जो उदय है, वह विकल्प को छूता नहीं। इसलिये अनंत व्यक्तपना, विश्व की अनंत व्यक्तियाँ, जितने तत्त्व है, उस प्रकार रहते हैं। उसमें एक भी तत्त्व का कहीं हीनपना कि अधिकपना होता नहीं। आहाहा ! यह तो सर्वज्ञ भगवान का ज्ञान है, यह तो सूक्ष्म बात है भाई !!

दिव्यज्ञान, प्रवचन है। प्रवचन, दिव्य वचन। ओहोहो ! संतो ने यह भी काम किया न ! - ऐसा निमित्त अपेक्षा कहा जाता है, परंतु उनका क्षयोपशम उस समय... आहाहा ! कहते हैं कि मैं परिभाषण प्रारंभ करता हूँ। वह स्वयं इस रूप में आ गये है न ! उसके कारण पूरा होगा। टीका पूरी होनेरूप रजकणों की पर्याय उसके

कारण होगी। आहाहा ! हमारे क्षयोपशम के ज्ञान से इस टीका की पर्याय होगी, वैसे क्षयोपशम बहुत है, इसलिये टीका में परमाणुओं की एसी पर्याय होगी - `- ऐसा नहीं। कारण कि एक दूसरे द्रव्यों में कार्य कारण का मिश्रण होता नहीं।' आहाहा ! जिससे विश्व नाम अनंत पदार्थ जो जितनी संख्या में हैं उसी का उसी प्रकार विश्व है अनादि। आहाहाहा ! दूसरा द्रव्य उसे छोटा (कमजोर) कर दे। आहाहा ! तब प्रत्येक तत्त्व की शक्ति रहती नहीं। आहाहा !

एक समय की विकारी पर्याय भी, पर के कारण हो तो त्रिकाली पर्यायो का पिण्ड जो गुण है वह भी सिद्ध नहीं होता, वह गुण नहीं रहेगा तो ऐसे अनंत गुणों का एकरूप द्रव्य, वह द्रव्य भी नहीं रहेगा (यदि) पर के कारण हो। आहाहा ! गजब बात है न ! टीका हमारे से हो और कर्म का बंध हमारे से हो और कर्म का उदय मुझे राग कराये, एक समय एक क्षेत्रावगाह होने पर भी; - ऐसा हो तो अनंत अनंत विश्व है, विश्व अर्थात अनंत पदार्थों का समूह है तो वह अनंत नहीं रहे। आहाहाहा ! न्याय समझ में आता है ? आहाहा ! तीसरी गाथा में..... (बहुत गम्भीर भाव भरे हैं)

हमेशा, तीनों कालों में विरुद्ध-अविरुद्ध कार्य के हेतुपने के कारण विश्व को विश्वपना अनंतपना है उसी प्रकार अनंतपना रहेगा। उसे टिकाये रखता है। जो अनंतपना है, जितनी संख्या में अनंतपना है वह अनंता निगोद के जीव विभावरूप भले परिणमे, परंतु उनका विभाव परिणमन यह एक, आहाहा ! एक राई जितना टुकड़ा लहसन का या प्याज का उसमें तो असंख्य शरीर और एक शरीर में अनंत जीव, एक जीव दूसरे जीव को छूता नहीं। उसी समय अनंत कार्माणशरीर अनंत जीव के साथ है फिर भी यह कार्माण शरीर जीव को छूता नहीं... आहाहाहा ! एक क्षेत्रावगाह आ गया न। आहाहा !

लहसन प्याज मूली का सफेद कंद, उसके एक टुकड़े में असंख्य शरीर, एक शरीर दूसरे शरीर को छूये नहीं। एक शरीर में अनंत जीव, एक जीव दूसरे जीव को छूये नहीं उसी समय अनंत जीवों के साथ प्रत्येक को कार्माण और तैजस शरीर अनंत रजकणों का पिण्ड (है) आहाहा ! वह भी आत्मा का विरुद्ध कार्य जो विभाव कार्य, वह अपने से हुआ है वह कर्म के कारण विरुद्ध कार्य हुआ नहीं। आहाहा ! इसलिये जितनी अनंत संख्या है, उतनी यों की यों अनादि से टिक रही है। आहाहा !

भले सिद्ध रूप में हो। वह तो अपनी पर्याय हुयी है उसे पर के कारण हुयी है... (सिद्ध पर्याय) आहाहा ! कर्म के अभाव के कारण केवलज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! और अनंत सिद्ध हुये अतः अनंत द्रव्यों की जितनी संख्या है उसमें

कमी आ गई - ऐसा नहीं। आहाहा ! गजब बात है तथा ऐसी बात कहाँ है ? आहा ! एक राई जितने टुकड़े में अनंत आत्मायें, सभी जीवों का श्वास एक, फिर भी वह जीव दूसरे के श्वास को छूता नहीं, और वह जीव अनंत जीवों की एक श्वास फिर भी एक जीव दूसरे जीव को छूता नहीं। आहाहाहा !

इसप्रकार जितनी संख्या में जितने द्रव्य (है) विश्व, उतना अनंतपने है उसरूप में टिकाये रखा है। ***उपकार किया अर्थात विश्व में कम ज्यादापना होता नहीं अन्यथा विश्व का उपकार किया नहीं कहलाये। उपकार अर्थात जितने अनंत है उनमें फेरफार हो जाये, तो उपकार अर्थात जितना है उतना न रहे।*** आहाहा ! अर्थात अनंत उपकार नहीं किया, जितना है उतने प्रमाण में रहा नहीं। आहाहा ! गजब बात करते है न ! जैन धर्म में ऐसी बात है - ऐसा सुनने को मिले नहीं। दया पालो व्रत करो, सामायिक, उपवास और प्रतिमा करो होगया (धर्म) जाओ। आहाहा ! अरे प्रभु पर तुम्हें अभी अनंत की, समय की, विश्व जितना है उतनी संख्या में है, उतनी संख्या में वह अपने से रहकर विश्व में इतने अनंत है उसे टिका रखा है अर्थात इसप्रकार इतना उपकार किया, उसमें कुछ फेरबदल हुआ नहीं। आहाहाहा ! (परस्पर जिओ और जीने दो) यह सभी निमित्त की बातें, यह सभी लिखते हैं न ? लोक के चित्र में नीचे लिखते हैं। कौन किसका उपकार करे भाई ! आहाहा ! यहाँ तो कहा है न विरुद्ध भाव हो कि अविरुद्धभाव हो, वह स्वयं अपने अस्तित्व में अपने से रहा है, उसने दूसरे को छुआ ही नहीं और दूसरे के कारण हो तो वह पर्याय अल्प कहलाय, उसकी पूरी नहीं हुयी और वह पूरी नहीं हुयी अर्थात वह द्रव्य पूर्ण नहीं हुआ। आहाहाहा !

एक समय में विकार की पर्याय भी जो पर से हो - ऐसा कहो तो उस पर्याय में कमजोरी आ गई। उस द्रव्य की पर्याय नहीं रही, और वह न रही तो उन पर्याय का पिण्ड है गुण वह गुण पूरा नहीं रहा और अनंत गुणों का पिण्ड द्रव्य वह द्रव्य पूरा नहीं रहा देवीलालजी ? आहाहा ! ऐसी बात है। आहाहा ! - ऐसा बाहर नहीं चले। एकदम समझें नहीं न ? आहाहा !

भले (जीव) गृहीतमिथ्यात्वरूप परिणमे, अनंतजीव एक प्रदेश में एकट्ठे रहे हों और मिथ्यात्वरूप परिणमे। ***निगोद का गृहीतमिथ्यात्व तो यहाँ का कोई गया हो उसकी अपेक्षा यह है। शेष तो अगृहीतमिथ्यात्व है। यहाँ से गया हो और तथा उसने ग्रहण किया होता है - ऐसा है शास्त्रों में... (गृहीतमिथ्यात्व) फिर भी पर्याय का जो कार्य है, वह उन उन द्रव्यों के अपने अस्तित्व को बताता है,*** तथा इस प्रकार जितने तत्त्व है उसका अस्तित्व भिन्न भिन्न विश्व को अर्थात अनंत है उसे उसप्रकार उपकार

करते हैं। अर्थात अनंत में कमी आती नहीं, अनंत में अधिकपना होता नहीं। यही विश्व का उपकार अर्थात इसतरह से विश्व टिक रहा है। आहाहाहा ! - ऐसा उपदेश ! अब इसमें पालना क्या, करना क्या इसमें ? आहाहा !

इसके लिये तो बात करते है, विरुद्धभाव है वह जीव में बंध भाव (है) वह निंद्य है, यह विरुद्ध है, एकरूप में है उसका भाव, विरुद्ध, है उसके अस्तित्व में और उससे उसका अनंतपना, जितना है अनंतविरुद्ध भाववाला इसलिये इसप्रकार अनंत रूप से टिक रहा है, परंतु उसका वास्तविक स्वरूप त्रिकाली है उसमें विरुद्धभाव जो बंध भाव राग, यह बंध भाव विसंवाद खड़ा करता है, दुःख उत्पन्न करता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! जो कि दुःख उत्पन्न है यह तो उसकी पर्याय का कार्य है, परंतु अब यहाँ तो द्रव्य स्वभाव बताने को... आहाहाहा !

उसका पर्याय भाव वह तो सिद्ध करके बताया है। अनंत अनंत इसप्रकार... पर इस आत्मा के अंदर बंध भाव वह निमित्त के संबंध (लक्ष्य) से खड़ा हुआ है वह उसका विभाव भाव है, यह बंध भाव है, वस्तु अबंध स्वरूप है। आहाहा ! इस बंध भाव से भले विश्व को विश्वपना जितना अनंत है, वैसा अनंतरूप भले रहे, परंतु यह एकपने से बंधपना विपरीत है, विसंवाद खड़ा करता है। दुःख उत्पन्न करता है। आहाहाहा ! जो कि पहले तो सिद्ध किया कि ***भले दुःख कार्य हो परंतु वह है अपने से उसे पर से कुछ लेना (देना) है (- ऐसा नहीं) इस प्रकार ही अनंत टिक रहे है।*** परंतु अब यहाँ एक को जो बंध का संबंध कहना... आहाहा ! त्रिकाली आनंद के नाथ को एकक्षण के राग का संबंध, बंध का भाव उसे है - ऐसा कहना, जानना यह विसंवाद है, विसंवाद है, विपरीत भाव है, विपरीत कथन है, विपरीत भाव अर्थात दुःखरूप भाव है। आहाहा !

कारण कि जीव और पुद्गल दोनों में - ऐसा विभाव भाव है। फिर भी विभाव भाव हुआ है उससे वह अपना उस समय होने योग्य है, और उससे उस द्रव्य की पूर्णता सिद्ध होती है, यह विभाव पर के कारण हुआ हो तो द्रव्य की पूर्णता (रूप) अस्तित्व की सिद्धि नहीं होती।

परंतु यहाँ तो इसके उपरांत बात आगे ले जाना है। आहाहा ! 'इस प्रकार सभी पदार्थों का भिन्न-भिन्न एकपना सिद्ध होने से'... 'सर्व पदार्थों का भिन्न-भिन्नपना, एकपना सिद्ध होने से... ओहोहोहो ! जीव नामक समय को बंधभाव से ही विसंवाद की आपत्ति आती है'। आहाहा !

अब वहाँ ले गये... क्योंकि वस्तु स्वयं अबंध स्वरूप है। आहाहाहा ! उसमें राग के बंध भाव का संबंध... (से) विसंवाद की आपत्ति आती है। आहाहाहा ! विपरीत

संवाद, विपरीत कथन, विपरीत भाव आनंद से विपरीत दुःख की आपत्ति उसे आती है। आहाहा ! अबन्ध प्रभु को बंध - ऐसा संबंध - ऐसा, दूसरा भाव, आहाहा ! उससे उसे दुःख की उत्पत्ति होती है। यह प्रभु स्वयं त्रिकाल आनंद स्वरूप है (आत्मा) त्रिकाली प्रभु अनाकुल आनंद स्वरूप है उसमें विसंवादनाम दुःख उत्पन्न होता है। द्रव्य को बंध भाव का संबंध कहने से द्वैतपना खड़ा हुआ। एकड़े एक और बगड़े बे (एक अकेला ही ठीक है, दो होने पर बिगड़ जाता है) आहाहा ! अकेला जो रहना चाहिए वह सुखरूप आनंद अभेद रत्नत्रय का उसका परिणमन चाहिए। आहाहाहाहा !

भगवान आत्मा आनंद का सागर प्रभु... उसकी प्रतीति ज्ञान और रमणता निर्विकल्प आनंद सहित, होना चाहिए। तब वह आत्मा का वास्तविक स्वरूप कहलाये। समझ में आया ? आहा ! पहले समुच्चय (रूप से) तत्त्व-द्रव्य का स्वरूप कहा, विभाव सहित द्रव्य का स्वरूप, वह वह अपने से अपने में है, दूसरों से नहीं, इसलिये एक दूसरे का मिलावटपना नहीं और अनंत में जितने तत्त्व हैं उसमें कही भी बिलकुल कमी आती नहीं।

इसप्रकार विभाव कार्य भी उसके द्रव्य को और उसके गुण को परिपूर्ण सिद्ध करने के लिए उसका है - ऐसा सिद्ध किया। आहाहाहा ! अब ऐसी बातें। परंतु यहाँ प्रभु अब एक रूप वस्तु अबंध स्वरूपी प्रभु, मुक्त स्वरूप प्रभु (आत्मा), उसे बंध भाव का संबंध कहना... आहाहा ! अरे जरा शांति से सुने, बापू यह कहीं, यह तो घर के तत्त्व का स्वरूप है - ऐसा इसकी बात है। यह कोई व्यवहारनय से - ऐसा निश्चय नय से - ऐसा... व्यवहारनय का विषय सिद्ध किया, यह विषय है, विरुद्ध कार्य हैं यह सिद्ध तो किया। यह विषय है, विरुद्धकार्य है, यह तो सिद्ध किया। आहाहाहा ! परंतु अभी वस्तु स्वरूप जो है, उससे व्यवहारनय का राग का विषय वह विरुद्ध है। दोनों नयों को विरुद्ध कहा है न ? आहाहा ! गजब बात है। ओहोहो ! दिगम्बर संतों की वाणी और उनका भाव अलौकिक है !! प्रभु !

मूल जैनपना वहाँ खड़ा रहा है, क्योंकि यहाँ राग को जीता नहीं और राग के संबंधवाला प्रभु को (आत्मा को) कहना आहाहा ! यह दुःखरूप है। आहाहा ! `घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन' यह राग की एकता तोड़कर स्वभाव की एकता करे तब उसे जैन कहते हैं। आहाहाहा ! जैनपना जिनस्वरूपपना जीव का स्वरूप है। घट घट अंतर जिन बसे... वीतरागस्वरूप, जो उसका स्वरूप है स्वभाव है त्रिकाल है (जीव) यह तो वीतरागस्वरूप है - ऐसा वीतरागस्वरूप को कायमी असली स्वभाव के साथ नकली राग का संबंध जोड़ना ही इसे बंध भाव है। आहाहा ! यह

विसंवाद है, दुःख है आकुलता है खेद है। आहाहा ! - ऐसा है।

भिन्न-भिन्नपना एकपना सिद्ध होने से ***जीव नामक समय को बंध कथा से, कथा शब्द तो भाषा का प्रयोग है, बंध कथा वाचक है परंतु वहाँ बंध भाव लेना। (समझना) आहाहा ! बंध कथा से कहीं दुःख होता नहीं वह तो भाषा है भाव बंध (से) होता है।*** आहाहाहा ! प्रभु जिनस्वरूपी आत्मा, अरे, उसे छोटे से छोटे राग के रजकण का, राग के रजकण का, संबंध जानना, आहाहा ! यह विसंवाद है।

'तो फिर बंध जिसका मूल है' बंध जिसका मूलकारण है - ऐसा पुद्गल कर्म के प्रदेश में स्थित होना अर्थात भाव-बंध जिसका मूल है - ऐसे पुद्गल कर्म के प्रदेश... ऐसे मोह, राग, द्वेष। पुद्गल, कर्म के प्रदेश अर्थात मोह राग द्वेष। आहाहा ! बंध जिसका मूल है अर्थात कि मोह मिथ्यात्व और रागद्वेष जिसका मूल है वह जिसका मूल पुद्गल कर्म में स्थित होना वह जिसका मूल - ऐसा पर समयपना है। वह स्वसमयपना नहीं रहा। आहाहा !

मोह तथा राग द्वेष का संबंधसे (जीव को) बंध भाव होता है यह अबंध को बंध भाव के संबंध से, आहाहा ! पर समयपना खड़ा होता है, अनात्मपना खड़ा होता है। आहाहाहा ! पहले तत्त्व सिद्ध करने के लिए विरुद्ध और अविरुद्ध से कहा, पर अब वास्तविक आत्मा... आहाहा ! जिसे आत्मा कहा, वह वास्तविक आत्मा अब, आहाहा ! जिसे आत्मा कहें, वह। पुण्य पाप के भाव वह अनात्मा, आहाहाहाहा ! जैसे विरुद्ध और अविरुद्ध कार्य में, कर्म का कोई संबंध के कारण नहीं, वह तो उसका अपना स्वयं सिद्ध स्वरूप है। यह तो साधारण बात की, अब इसमें आत्मतत्त्व जो है... वहाँ तो पुण्य-पाप के भाव सहित विरुद्ध कार्य से भी टिक रहा है तत्त्व, उसे दूसरे कोई, दूसरे कारण (से) कम या अधिकपना हुआ - ऐसा नहीं इतना सिद्ध करके, अब यहाँ (असली) आत्मा सिद्ध करना है। आहाहाहा ! इस आत्मा में जो कुछ पुण्य और पाप... विकल्प जो राग उठता है, वह बंध भाव अबंध भाव के साथ दुःखरूप है, विसंवाद खड़ा होता है, विपरीत भाव खड़ा होता है, उससे विपरीत उपदेश खड़ा होता है कि जीव के रागद्वेष है। आहाहा ! समझ में आया ?

तीसरी गाथा बहुत ऊंची है, यह तो सारी भूमिका बारह गाथाओं में बाँधते है फिर तेरह वीं गाथा से उसका विस्तार करेंगे। आहाहा ! पहले प्रत्येक द्रव्य को विभाव स्वभाव परिणमित होने पर भी अनंतद्रव्य है, उसमें कहीं कमी नहीं आती। दूसरों के कारण होता नहीं, इसलिये वहाँ खामी आती नहीं। अनंत द्रव्यों में कम ज्यादापना होता नहीं, परंतु अब यहाँ आत्मद्रव्य को पुण्यपाप के भाव के साथ... आहाहा ! तत्त्व-आत्मतत्त्व को पुण्यपाप के भाव के संबंध से उसकी पर्याय बुद्धि से बंध भाव खड़ा

होता है। आहाहाहाहा !

वस्तु, जो भगवान आत्मा तो अनाकुलज्ञान और अनाकुल आनंद से भरा हुआ प्रभु है। उसे राग का संबंधवाला, बन्ध भाववाला, दूसरेपनेवाला, द्वैतपनावाला, अद्वैत और द्वैतपनावाला... आहाहाहा ! भगवान अंतर में अनंतगुण स्वरूप शुद्ध स्वरूप अद्वैत है, उसे यह राग का संबंध है वहाँ द्वैतपना दिखता है। आहाहा ! इसलिये यह विसंवाद है। ***विपरीत संवाद नाम कथन परंतु विपरीत है, और उसका भाव भी विपरीत है। जीव को रागवाला कहना, आहाहाहा ! यह सिद्धांत ही विपरीत है। आहाहाहा ! और रागवाला जानना वह दृष्टि ही विपरीत है...*** - ऐसा तत्त्व है आहाहा ! नये व्यक्तियों को, पुराने जैन क्रियाकाण्डवाले हों उन्हें - ऐसा लगे क्या है यह - ऐसा ! यह तो कहीं जैन की बात है ? जैन (धर्म) में तो छःकाय की दया पालना नहीं मारो, नहीं मारो, स्तुति में पहले आता है व्याख्यान के पहले... नहीं मारो, नहीं मारो - ऐसा भगवान का उपदेश है। आहाहा !

पर को मार सकता नहीं, पर को छूता नहीं, पर की दया पाल सकता नहीं, वह तो पर से भिन्न बताया, अब इसके विभाव (भाव) जो क्षणिक हैं और त्रिकाली स्वभाव जो पवित्र आनंद का नाथ प्रभु है उसकी एक समय की क्षणिक दशा, विकृतदशा है भले उसके कार्य में उसकी पर्याय परंतु उस त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को, यह राग का छोटे से छोटा कण, दया का दान का भक्ति का व्रत का... असंबंधी प्रभु को ऐसे राग के संबंधवाला कहना वह दुःख रूप दृष्टि है। आहाहाहा ! यह समयसार !! आहाहाहा !

तो फिर जो बंध का मूल जो भाव हुआ, क्षणिक मोह, राग, द्वेष, त्रिकाली स्वभाव के साथ एक समय का मोह, राग, द्वेष का संबंध हुआ, वह पर समयपना हुआ, आहा ! वह अनात्मपना हुआ, राग स्वयं आत्मा नहीं। आहाहाहा ! ***और उसे राग का संबंधवाला जानना, यह अनात्मपना है। आहाहाहा ! पर की अपेक्षा से हुआ - ऐसा यहाँ नहीं लिखा। वह हुआ तब भी स्वयं से हुआ - ऐसा कहके स्वतंत्र सिद्ध किया; अब यहाँ तो क्षणिक विकृत अवस्था हुयी है, त्रिकाल स्वभावरूप वस्तु जो है यह आत्मा और यह आत्मा के स्वभाव की एक समय की क्षणिक विकृत दशा... आहाहा ! पर्याय बुद्धि छुटाते है।*** उसे राग का, द्वेष का, मिथ्यात्व के, बंध का मूल तो यह है। आहाहा ! इसलिये भगवान आत्मा एकरूप अद्वैत चैतन्यस्वभाव होनेपर भी बंध का दैत्यपना उसे लागू होजाता है, वह शोभा नहीं देता। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है !

लोग तो ऐसी बात करते हैं कि देश की सेवा करो, एक दूसरे को मदद

करो, अहिंसा, दूसरे जीवों की दया पालना, और एक दूसरे का उपकार करना, `परस्पर उपग्रहों जीवानाम्'... उसका यह अर्थ है सर्वार्थसिद्धि वचनिका में, यह अर्थ किया है निमित्त कुछ करता नहीं। सर्वार्थसिद्धि वचनिका में अर्थ किया है जयचन्द्र पण्डितजी ने। आहाहाहाहा !

एक दूसरे को कोई उपकार करता है ऐसे अर्थ में उपकार (शब्द) नहीं जैसे गति करते समय धर्मास्तिकाय का उपकार है अर्थात क्या ? सहायक है अर्थात क्या ? कि यहाँ कार्य के समय वह चीज सामने है - इतना। यह कार्य उससे होता है, और वह विकार पर में होता है - ऐसा नहीं, पर से होता है - ऐसा नहीं, उसकी पर्याय में त्रिकाली स्वभाव का वास्तविक तत्त्व जो त्रिकाल है उसमें एक क्षणिक पर्याय को राग का संबंध कहना... विसंवाद है, दुःखरूप है।

उससे उत्पन्न होनेवाला परसमय स्वसमयरूप दोपना होगया। स्वसमय में राग का संबंध यह परसमय। आहाहा ! स्वरूप स्वयं है, इसप्रकार उसमें ठहरे यह तो स्वसमयपना है। यह तो एकपना हुआ स्वयं एक है उसमें स्वसमय रूप ठहरता है, वह एकरूप ठहरता है। उसमें दूसरों का संबंध है नहीं। ओहोहो ! अरेरे कहाँ जाओगे भाई, तुम्हें क्या करना है ? तुम्हें तुम्हारा करना है कि क्या करना भाई ? ***यहाँ कहते हैं एकपना वह स्वसमय है, अर्थात द्रव्य है वह स्वसमय है। परंतु द्रव्य को स्वीकृत करे उसे स्वसमय कहा जाता है। आहाहाहा ! वस्तु तो वस्तु है, यह तो त्रिकाली समय स्वरूप ही है। परंतु उसका स्वसमयपना और आत्मा - ऐसा पवित्र शुद्ध ध्रुव है... - ऐसा कब कहलाये कि उसकी दृष्टि में अभेद का परिणमन हो, तब उसे स्वसमय हुआ - ऐसा कहा जाता है।*** आहाहाहा !

(इसकी विशेष व्याख्या अब आयेगी.....)

प्रवचन नं. १५ गाथा-३ ता. २३-६-७८ शुक्रवार जेठ वद-३ सं.२५०४

अंत में - ऐसा कहा कि यह आत्मा है उसका मूल कायमी असली स्वभाव शुद्ध अतीन्द्रिय आनंद और ज्ञान है। वह अपने स्वभाव को छोड़कर राग, द्वेष, पुण्य-पाप और मोह... उसमें जाये, उसमें ठहरे, उसमें रहे तो अनात्मा है। आत्मपना न रहा, वहाँ, आया न ? - ऐसा परसमयपना, यह तो परसमय है। आहाहा ! शुद्ध

चैतन्य वस्तु अनाकुल आनंद स्वरूप, वह राग में रहे, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो, परंतु राग में रहे परिणमे तो वह अनात्मा है। वह परसमयपना है।

उससे उत्पन्न होता परसमय, स्वसमयपना, द्विविधपना यह जीव नाम के समय को कहाँ से हो ? यह दोपना क्यों हो ! स्वयं चैतन्य स्वरूप उसके स्वयं के अंदर श्रद्धा... चैतन्य की निर्विकल्प श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसकी रमणता उसका नाम यहाँ स्वसमय, आत्मा है, और धर्मात्मा उसे कहा जाता है। आहा !

'इसलिये समय का एकपना ही सिद्ध होता है'। स्वरूप जो है वह अपने स्वरूप को छोड़कर और पुण्य और पाप के भाव यह मेरा - ऐसा मानकर वहाँ रहे तो मिथ्यादृष्टि परसमय है। एकपने में यह द्विविधपना खड़ा हुआ यह अशोभा है, अशोभनीय है यह चैतन्य की शोभा नहीं। (- ऐसा है।) यहाँ तो अभी दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि करे उसे वह धर्म माने। यहाँ कहते हैं कि इस भाव में आत्मा रहे उसे हम अनात्मा कहते हैं, परसमय कहते हैं। अब इन सबका मेल किस प्रकार करना ? आहाहा !

भावार्थ :- 'निश्चय से' वास्तव में 'सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव में स्थित रहते हुये ही शोभा पाते हैं। परंतु जीव नामक पदार्थ की अनादिकाल से पुद्गल कर्म के साथ निमित्तरूप बंध अवस्था है'। संयोगरूपी बंध अवस्था है। उस बंध अवस्था से इस जीव में विसंवाद खड़ा होता है। वास्तविक तत्त्व यह रहता नहीं। आहाहा ! पुण्य और पाप के भाव यह हमारे - ऐसा मानकर परिणमता है, यह विसंवाद मिथ्यादृष्टि है। आहा ! ऐसी बात बहुत सूक्ष्म है !!

सम्यग्दर्शन के लिये तो यह पुण्य पाप के विकल्प और राग, उससे भिन्न, चैतन्यस्वरूप के सन्मुख होकर उसका आश्रय लेकर जो दर्शनज्ञान होता। उसे यहाँ स्वसमय आत्मा धर्मात्मा कहते हैं - ऐसा है।

'बंध अवस्था से इस जीव में विसंवाद खड़ा होता है'। अबंध स्वरूप प्रभु, मुक्त स्वरूप है उसमें उसे राग के विकल्प के साथ संबंध- ऐसा जो बंध, संबंध - ऐसा जो बंध। आहाहा ! उससे विसंवाद खड़ा होता है। झगड़ा खड़ा होता है, दुःख खड़ा होता है। आहाहा !

'इसलिये वह शोभा पाता नहीं' कौन ? जीव। भगवान आत्मा तो पवित्रता का पिण्ड है, उसमें पुण्य पाप के भाव और मिथ्यात्वभाव यह अपवित्र है। पवित्रवस्तु अपवित्र रूप परिणमे यह अशोभा है। यह इसकी शोभा नहीं। आहाहा ! पवित्र जो वस्तु अंदर जिनस्वरूपी यह पवित्ररूप, वीतरागरूप, अकषायभावरूप वस्तु है - ऐसी अकषाय भावरूप हो, तब उसकी शोभा है (पर्याय में) - ऐसा सूक्ष्म है। लोगों को (कुछ मालुम नहीं)

बेचारे भटककर जिंदगी समाप्तकर देते हैं। आहाहा !

इसलिये वह आत्मा शोभा नहीं पाता। एकरूप जो पवित्र शुद्ध चैतन्य है यह द्विविध नाम अन्यप्रकार से जो रागादिक है उसमें परिणमें और उसमें रहे... यह अशोभा है, यह मिथ्यात्व भाव है, यह दुःखरूप दशा और चौराशी के भाव को उत्पन्न करनेवाला भाव है। आहाहा ! सूक्ष्म बहुत भाई !

इसलिय वास्तविकरूप में विचारने में आये, वास्तव में सत्य स्वरूप, चैतन्य का वास्तविक स्वरूप है, त्रिकाली है उसे जो विचारने में आये 'तो एकपना ही सुन्दर है' यह शुद्धपने में दृष्टि ज्ञान और रमे यही शोभा है। आहाहा ! सुन्दर वस्तु है यह सुन्दररूप परिणमे तब यह शोभा है। यह सुन्दर वस्तु है... (रागरूप परिणमे) यह तो विरुद्ध है। आहाहा ! एकपना सुन्दर है अर्थात कि राग के विकल्प बिना... उसका स्वरूप निर्विकल्प राग बिना है। ऐसे स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता अंतर में यह एकपना शोभता है। 'द्विविधपना' उसे उपाधिभाव (निमित्त से) यह उससे शोभा पाता नहीं। तीसरी गाथा में बहुत कहा है। तीसरी गाथा में यह बहुत कहा है। एक रजकण दूसरे रजकण को छुये नहीं। यह क्या कहते हैं।।

लोग तो कहते हैं कर्म के उदय के कारण जीव को विकार होता है ? तब यहाँ कहते हैं ***कर्म का उदय तो जड़ की अवस्था है और राग विकार होता है यह तो चैतन्य की विकृत अवस्था, परसमयपना है। आहाहा ! और यह भी जीव स्वयं करता है, तब होता है, कर्म के कारण नहीं, क्योंकि एक द्रव्य जहाँ दूसरे द्रव्य को छूता नहीं तो उस द्रव्य से इसमें हुआ यह बात बिलकुल झूठी है।*** आहाहा बहुत कठिन काम। (गले उतरना) यह तीसरी गाथा हुयी अब चौथी....(गाथा)

गाथा - ४

अथैतदसुलभत्वेन विभाव्यते -

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस।।४।।

श्रुतपरिचितानुभूता सर्वस्यापि कामभोगबंधकथा।
एकत्वस्योपलंभः केवलं न सुलभो विभक्तस्य।।४।।

अब, उस एकत्व की असुलभता बताते हैं :-

है सर्व श्रुत-परिचित-अनुभूत, भोगबंधनकी कथा।
परसे जुदा एकत्वकी, उपलब्धि केवल सुलभ ना।।४।।

गाथार्थ :- [सर्वस्य अपि] सर्व लोक को [कामभोगबन्धकथा] कामभोगसंबंधी बन्धकी कथा तो [श्रुतपरिचितानुभूता] सुनने में आ गई है, परिचय में आ गई है, और अनुभव में भी आ गई है, इसलिये सुलभ है; किन्तु [विभक्तस्य] भिन्न आत्माका [एकत्वस्य उपलंभः] एकत्व होना कभी न तो सुना है, न परिचय में आया है, और न अनुभव में आया है, इसलिये [केवलं] एकमात्र वही [न सुलभः] सुलभ नहीं है।

टीका :- इस समस्त जीवलोक को, कामभोगसंबंधी कथा एकत्व से विरुद्ध होने से अत्यंत विसंवाद करानेवाली है (आत्मा का अत्यंत अनिष्ट करनेवाली है) तथापि, पहले अनंत बार सुनने में आई है, अनंत बार परिचय में आई है, और अनंत बार अनुभव में भी आई है। वह जीवलोक, संसाररूपी चक्र के मध्य में स्थित है, निरंतर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप अनंत परावर्तन के कारण भ्रमण को प्राप्त हुआ है, समस्त विश्व को एकछत्र राज्य से वश करनेवाला महा मोहरूपी भूत जिसके पास बैल की भाँति भार वहन करता है, जोर से प्रगट हुए तृष्णारूपी रोग के दाह से अंतरंग में पीड़ा प्रगट हुई है, आकुलित हो होकर मृगजल की भाँति विषयग्राम को (इन्द्रियविषयों के समूह को) जिसने घेरा डाल रखा है, और वह परस्पर आचार्यत्व भी करता है (अर्थात दूसरों से कहकर उसीप्रकार अंगीकार करवाता है)। इसलिये

कामभोग की कथा तो सबके लिये सुलभ है। किन्तु निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखाई देनेवाला यह मात्र भिन्न आत्मा का एकत्व ही है, - जो कि सदा प्रगटरूप से अंतरंग में प्रकाशमान है, तथापि कषायचक्र (-कषायसमूह) के साथ एकरूप जैसा किया जाता है, इसलिये अत्यंत तिरोभाव को प्राप्त हुआ है (-ढक रहा है) वह, अपने में अनात्मज्ञता होने से (स्वयं आत्मा को न जानने से) और अन्य आत्मा को जाननेवालों की संगति-सेवा न करने से, न तो पहले कभी सुना है, न परिचय में आया है और न कभी अनुभव में आया है, इसलिये भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं है।

भावार्थ :- इस लोक में समस्त जीव, संसाररूपी चक्रपर चढ़कर पंच परावर्तनरूप भ्रमण करते हैं। वहाँ उन्हें मोहकर्मोदयरूपी पिशाच के द्वारा जोता जाता है, इसलिये वे विषयों की तृष्णारूपी दाह से पीड़ित होते हैं, और उस दाह का इलाज (उपाय) इन्द्रियों के रूपादि विषयों को जानकर उनकी ओर दौड़ते हैं, तथा परस्पर भी विषयों का ही उपदेश करते हैं। इसप्रकार काम तथा भोग की कथा तो अनंतबार सुनी, परिचय में प्राप्त की और उसीका अनुभव किया, इसलिये वह सुलभ है। किन्तु सर्व परद्रव्यों से भिन्न एक चैतन्यचमत्कारस्वरूप अपने आत्मा की कथा का ज्ञान अपने को अपने से कभी नहीं हुआ, और जिन्हें वह ज्ञान हुआ है उनकी कभी सेवा नहीं की; इसलिये उसकी कथा न तो कभी सुनी, न परिचय किया और न अनुभव किया इसलिये उसकी प्राप्ति सुलभ नहीं, दुर्लभ है।।

गाथा - ४ पर प्रवचन

अब उस एकत्व की असुलभता बताते है।

राग से विभक्त (अर्थात) भिन्न और स्वभाव से एकत्व यह सुलभ नहीं, दुर्लभ है। अनंतकाल से किया नहीं अतः दुर्लभ है। असुलभ है अर्थात सुलभ नहीं। आहाहा !

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस।।४।।

है सर्व श्रुत-परिचित-अनुभूत, भोगबंधनकी कथा।
परसे जुदा एकत्वकी, उपलब्धि केवल सुलभ ना।।४।।

'इस समस्त जीव लोक को'... इसमें सभी आगये, निगोद के जीव, जिन्हें अभी तक त्रसपना मिला नहीं, इतने अनंत जीव पड़े हैं निगोद में, सूक्ष्म निगोद, बादर

निगोद, ऐसे जीव हैं कि जिनने `अभी तक त्रसपना पाया नहीं। तो भी यहाँ तो आचार्य कहते हैं समस्त जीवलोक को राग, काम अर्थात राग और भोग अर्थात उसका भोगना - ऐसी कथा... इच्छा करना और इच्छा को भोगना। इसकी कथा तो तुमने, अनंत बार सुनी है। आहाहा !' राग को करने का और भोगने का उपदेश तो तूने सुना है, और उसका भाव भी सुना है। आहाहा ! एकेन्द्रिय जीव ने भी यह सुना है। सुना है का अर्थ यह है कि वह राग का वेदन करता है अर्थात् उसका अनुभव करता है। सुना था, यह उसका फल मिल गया।

आलू सकरकन्द आदि में रहनेवाले कितने ही जीव तो अभी बाहर नहीं निकले हैं, तो भी उन्हें काम-भोग की कथा का अनुभव है। उसे राग का अनुभव है अर्थात् उसने सुना है, और परिचय तो इसमें आ ही गया। सुनकर परिचय करके अनुभव किया था उसका फल तो यह था। आहाहा !

यह समस्त जीवलोक, एकेन्द्रिय से लेकर नौवीं ग्रैवेयक गये जो मिथ्यादृष्टि साधु... जैन के साधु होकर पंचमहाव्रत पाले, स्त्री-कुटुंब, राज्य छोड़कर अनंतबार मुनिपना लिया,... कारण कि यह राग है, यह राग की बात सुनकर उसने किया और भोगा है। आहाहा! जैसे एकेन्द्रिय जीव को राग का अनुभव है, इसीप्रकार नौवीं ग्रैवेयक जानेवाला द्रव्यलिंगी जैन साधु वह भी द्रव्य लिंगी अर्थात नग्न... वस्त्रवालो को तो द्रव्य लिंगी भी कहा नहीं। कठिन काम है। मोक्षमार्ग प्रकाशक में स्पष्ट कहा है वस्त्र सहित साधुपना माने वह सभी गृहीतमिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! बहुत कठिन काम भाई, स्त्री को साधुपना माने, स्त्री को केवलज्ञान माने, स्त्री को तीर्थंकर माने (`मल्लिनाथ') यह सभी गृहीतमिथ्यात्व है। कठिन काम है बापू ! क्या हो ?

ऐसे राग की बात समस्त जीवलोक, कामभोग संबंधी कथा, काम अर्थात राग भोग अर्थात राग का करना और राग को भोगना, राग का कर्त्तापना और राग का भोक्तापना भाव आहाहा! ***शुभभाव तो निगोद में भी होता है, जो जीव बाहर आये नहीं, उन जीवों को शुभभाव तो है वहाँ, भगवान परमात्मा तो - ऐसा कहते हैं। लहसन, प्याज के जीवों को शुभभाव तो है। क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ, क्षण में शुभ और क्षण में अशुभ (भाव होते है) बाहर साधन नहीं परंतु आत्मा है, इसलिये कर्मधारा में शुभाशुभ धारा तो उनको भी है। यह कोई नई चीज नहीं।*** आहाहा ! एक जीव (निगोद से) बाहर आकर मनुष्य हो एवं मुनि होकर महाव्रतादि पाले तब भी यह शुभभाव राग की क्रिया है। आहाहाहाहा!

ऐसी राग की क्रिया करना - ऐसा सुना है, ग्यारहवीं गाथा में तो आया न भाई ! कि इन भेदरूप भावों का तो अनादि से पक्ष है, और भेद की चर्चा करनेवाले

भी परस्पर बहुत मिलते हैं। हाँ ! बराबर है एकाएक कहीं सम्यग्दर्शन होता होगा ? कुछ भक्ति, भगवान की दया-दान-पूजा भी करे तपस्या करे, कुछ कर्म ढीले हों (इससे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो).... धूल में तपस्या थी किस दिन तुम्हारी, यह अपवास है, यह उपवास नहीं, यह तो अशुभ वास है। स्वरूप में जब तक दृष्टि नहीं और स्थिर हो नहीं वहाँ तक, उपवास उसे हो सके नहीं। उप अर्थात स्वरूप शुद्ध चैतन्य के पास में बसना उसका नाम उपवास है, आत्मज्ञान बिना, सम्यग्दर्शन बिना यह राग की क्रिया उपवास आदि की, यह तो बंध का कारण (है), आहाहा ! यह राग की क्रिया की है और उसे भोगा है।

**`एकत्व से विरुद्ध होने से' आहाहा** ! जो कि राग का करना और राग का भोगना... यह एकरूप जो वस्तु है जिनस्वरूपी प्रभु (आत्मद्रव्य) इसमें यह भाव `विरुद्ध होने से अत्यंत विसंवादवाले हैं' आहाहा ! वीतराग मार्ग है भाई! वीतरागता अंदर जबतक न प्रगटे, वीतरागस्वरूप ही प्रभु है... जिनस्वरूपी ही आत्मा, उसके स्वरूप की वीतरागता, पर्याय में न प्रगटे और इसकी पर्याय में राग की एकता का भाव वर्तता, आहाहा ! यह अत्यंत विसंवाद है, दुःखरूप है आहाहा ! आकुलता को उत्पन्न करनेवाली यह दशा है।

शुद्धस्वरूप... त्रिकाली शुद्धस्वरूप वह आत्मा इसमें (जो) पुण्य-पाप है वह कहीं आत्मा नहीं। इसलिये यह पुण्य-पाप की क्रिया करना और एकरूप में दो-पना करना यह विरुद्ध होने से अत्यंत दुःखरूप है। अथवा अत्यंत बुरा करनेवाली है। आहाहाहा ! भगवानआत्मा वीतराग जिनमूर्ति प्रभु... इसमें यह दया, दान, व्रत, भक्ति का राग, आहाहा ! कहते हैं कि यह बुरा करनेवाली है यह बात। आत्मा को अहित करनेवाली है। यह बात सुनना (दुर्लभ)। आहाहा !

(आजकल) बहुत फेरबदल हो गया है अतः कठिन लगे। परंतु वस्तु तो यह है। तीनोंकाल (के) अनंत तीर्थंकर, वर्तमान में प्रभु (तीर्थंकर) बिराजते हैं वह यही बात कर रहे हैं। आहाहा !

इस समस्त जीवलोक को राग करना, और राग को भोगना एकत्व से विरुद्ध होने से अत्यंत बुरा करनेवाली है। आहाहा ! `वर्तमान (में) राग बुरा करता है और उसके फल (की) अपेक्षा (यह कथा) बुरा करनेवाली है।' आहाहा ! लोग तो - ऐसा कहते हैं कि पहले शुभ राग करो, करते-करते स्वर्ग में जाओगे और वहाँ से भगवान के पास जाकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करोगे। यहाँ तो कहते कि राग तो बुरा करनेवाला है। अब इसका क्या हो? अत्यंत खराब करनेवाला है, बुरा करनेवाला है। आहा ! `अत्यंत' शब्द है न। `घट घट अंतर जिन बसे अने घट घट अंतर जैन,' यह राग

की एकता तोड़कर स्वरूप की एकता करे वह जैन है। सम्प्रदाय में होने से जैन कहलाये परन्तु ये कहीं जैन नहीं। आहाहा!

राग जो विकल्प है दया, दान, व्रत, आदि का उससे भिन्न होकर शुद्धचैतन्य की अंतरदृष्टि का अनुभव, यह जैनपना है। उसे सर्वज्ञ परमात्मा जैन कहते हैं। शेष पक्षधारी जैन रहे उन्हें जैन कहते नहीं। आहाहा ! (जैसे) काली जीरी की थैली हो और ऊपर शक्कर नाम लिखा हो तो कहीं कड़वापना मिट जाये ? आहाहा ! अंदर में जहाँ विकल्प राग है जहर... उसे अपना लाभ करनेवाला माने... आहाहा ! इसलिये वहाँ मिथ्यात्वपना चला जाता (है) ? आहाहा ! इसलिये वहाँ अजैनपना यह मिट जाता (है) ? आहाहा ! राग की एकता तोड़कर स्वरूप की एकता करे उसको यहाँ जैन कहा जाता है। जैन कोई संप्रदाय नहीं, जैन कोई पक्ष नहीं, जैन कोई गच्छ नहीं, वस्तु का स्वरूप जैसा है उसे जैन कहते हैं। आहाहा ! (यह समझना) कठिन बहुत काम है !!

- ऐसा अत्यंत बुरा करनेवाली है तो भी राग करना और राग भोगना... एकरूप से विरुद्ध होने से, `तो भी पहले अनंत बार अनंतबार सुनने में आयी है' कहनेवाले ऐसे ही मिले हैं उसे। राग करो, यह करो, व्रत पालो भक्ति करो, पूजा करो, करते-करते तुम्हारा आगे कल्याण हो जायेगा। ऐसे कहनेवाले मिले और तुमने अनंतबार सुना। आहाहा ! कहा न ? सुनने में आई है इसका अर्थ क्या हुआ कि कहनेवाले ऐसे मिले हैं तब उसने सुना न ? आहाहा !

जहाँ देखो वहाँ यही बात मिलेगी और यह तुमने अनंतबार सुनी है यह बात। आहाहा! पुण्य का भाव, दया-दान का व्रत का राग... यह करना और भोगना ऐसी बात तुमने अनंतबार अपने गुरु के पास, तुम्हारे कुगुरु से तो ऐसी बात अनंतबार सुनी उससे लाभ माननेवाले यह गुरु नहीं कुगुरु हैं। आहाहा ! ऐसी बातें बहुत कठिन लगती हैं।

यह तो सत्य का उद्‌घाटन है किसीकी निंदा की बात नहीं, यह तो वस्तु का स्वभाव है बापू ! आहाहा ! उसका आत्मा भी भगवान है, परंतु वस्तु के खबर विना दुःखी है यह सत्य का उद्‌घाटन प्रसिद्ध होता है। यह किसी व्यक्ति का अनादर कि निंदा नहीं है अरे ! यह भी प्रभु है, आत्मा है भाई ! आहाहा !

पहले अनंतबार सुनने में आयी है। तब समस्त जीवलोक में ऐकेन्द्रिय इसमें आ गये न ? हाँ ! एकेन्द्रिय कभी बाहर निकले नहीं, परंतु अनुभव में है तो सुनने में आ गया है। आहाहा ! ओहोहो ! इतने जीवों का समूह पड़ा है। आहाहा ! एक लहसन की राई जितने टुकड़े में, उसमें असंख्य तो शरीर और एक शरीर में अनंत

जीव। आहाहा ! - ऐसा पूरा लोक सूक्ष्म निगोद से भरा है। चौदह ब्रह्मांड़ यहाँ भी अनंत है, अनंत...अनंत...अनंत सूक्ष्म निगोद। आहाहा ! एक शरीर के अनंतवे भाग में सिद्ध हुये हैं, शेष सभी भटक रहे है यह सभी जीव, ऐसी बात सुनी है चाहे वे मनुष्य नहीं हुये हो, परंतु यह अंदर राग का अनुभव करते हैं, (न) स्वरूप की खबर नहीं तब उन सभी में राग का ही वेदन किया तो यह सुना और परिचय में आ गया। अनुभव में आ गया। आहाहाहा !

पहले अनंतबार सुना है, अनंतबार कहा, अनंतबार... अनंतकाल गया न ? मुनिपना द्रव्यलिंगपना भी अनंतबार लिया है, एकबार नहीं अनंतबार... भाव पाहुड़ में तो लेख है कि द्रव्यलिंग धारण करके भी जैन नग्नरूप, पंच महाव्रत धारण करके, कोई क्षेत्र बाकी नहीं कि जहाँ अनंतबार पुनः उत्पन्न न हुआ हो। भाव पाहुड़ में आया है। आहाहा ! वस्त्र सहित मुनिपना तो है ही नहीं। परंतु नग्नपना है और पंचमहाव्रत पाला है - ऐसे द्रव्यलिंगी भी जिसे आत्म ज्ञान न हो; यह राग से भिन्न चैतन्य है उसकी खबर न मिले ऐसे जीव... आहाहा ! अनंतबार - ऐसा द्रव्यलिंग धारण किया, और फिर भी कोई - ऐसा क्षेत्र शेष नहीं कि द्रव्य लिंग धारण करने के बाद अनंतबार जन्मा और मरा न हो। यह भाव पाहुड़ में लिंगपाहुड़ में पाठ है। आहाहा ! इतनी बार नग्नपना... और पंचमहाव्रत के परिणाम (जो) राग है यह तो राग है, आहाहा ! इतनी बार तुमने सुना और अनुभव में आया है, कि अनंतबार तुमने किया और बाद में भी - ऐसा द्रव्यलिंग धारण किया और स्वर्ग में गया और उसके बाद भी कोई क्षेत्र बाकी नहीं रहा कि जहाँ तुम अनंतबार जन्मे और मरे न हो। आहाहाहाहा ! कितने अवतार हुये यह ? क्या कहा ? समझमें आया ? द्रव्य लिंग धारण करके भी, अनंत जन्म-मरण किसी स्थान में नहीं किया - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा है।

- ऐसा अनंतबार अनंत...अनंत... भव पहले, अनंतबार नग्न मुनि दिगम्बर हुआ, पंचमहाव्रत पाले, हजारों रानी छोड़ी, परंतु सम्यग्दर्शन नहीं (किया), यह राग की क्रिया से धर्म (माना) परंतु राग से भिन्न हमारी चीज प्रभु है, नौ तत्त्वो में राग है यह तो पुण्यतत्त्व है दया, दान... आत्मतत्त्व तो ज्ञायक है, (इनसे) भिन्न है। उसका अनुभव अर्थात् सम्यग्दर्शन किया नहीं। आहाहा ! उसके बिना उसने द्रव्य लिंग धारण करके भी, कितनी बार जन्म-मरण किया हरेक क्षेत्र में ? कि अनंतबार। आहाहा ! समझ में आता है कुछ ? सभी बात बदली हुई लगे बापू। आहाहा !

अनंतबार सुनने में आई है। अनंतबार परिचय में आई है। पुनः परिचय किया है - ऐसा सुनने का एवं राग का, आहाहा ! अनंतबार परिचय अर्थात सुनानेवाले

मिले उनके पास तुमने अनंतबार परिचय किया है। सत् समागम किया, सत् समागम करते है (- ऐसा मानकर) यह असत् समागम भी अनंतबार परिचय किया है तुमने, सत् समागम के नाम पर। आहाहा ! यह राग और पुण्य के भाव से धर्म मनानेवाले, उनका तुमने अनंतबार परिचय किया है। उसने तो अनंत बार किया है। परंतु उसका परिचय तुमने अनंतबार किया है। आहाहा ! सत् समागम करना, सत् समागम करना यह सत् समागम इसे हम मानते नहीं, आहाहा ! द्रव्यलिंग धारण किया हो, नग्न मुनि हो, हजारो रानी छोड़ी हों, परंतु अंदर में राग की एकता से धर्म मानता हो, और उसके पास अनंतबार सुना उसका परिचय किया, सत् समागम किया यहाँ तक आकर सत् समागम माना। बाहर से त्याग हुआ और पंचमहाव्रत यह सत्समागम यह साधु है। बापू यह सत् समागम है ? आहाहा !

इसमें है, इसमें है हो (गाथा में) अनंतबार परिचय में आयी है यह बात। आहाहा ! उसने सत् समागम मानकर असत् समागम अनंतबार किया है। आहाहा ! समझ में आया ? शास्त्र में तो यह आता कि सत् समागम करना, सत् परिचय करना, तब यह साधु हुआ हो, त्यागी हुआ हो और मुनि हुआ हो बाहर, यह सत् समागम ? आहाहाहा ! यह तो असत् है, सत् संग है ही नहीं, असत् संग है। चाहे तो यह नग्नमुनि होकर दया, दान, व्रत, भक्ति से धर्म मनवाता हो, यह सभी असत् समागम है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! इसका भी तुमने अनंतबार परिचय किया है, सत् मानकर, आहाहा ! लोग कहते हैं कि वे - ऐसा परिषह सहन करते हैं।

एक आया था न अभी कुरावड़-कुरावड़... कहाँ गये झमकलालजी ! कुरावड़ से आया था... नहीं वह क्षुल्लक, क्षुल्लक यहाँ आया था। अकेला विद्यार्थी था तब यहाँ आया था, क्षुल्लक हो गया तब घमण्ड हो गया था, बात सुने नहीं। फिर चंदुभाई के साथ बात करे। हमने तो कहा था भाई मैं बात करने लायक नहीं हाँ ? इतने इतने परिषह सहन करे क्या यह सभी समकिति नहीं ? इतना परिषह, इतना उपसर्ग, नग्नपना, वस्त्र नहीं, सर्दी में पानी, ठंड़ी में कपड़ा नहीं - ऐसा इतना सहन करे और यह सभी समकिति नहीं ? अरे प्रभु ! यहाँ तो यह कहा, देखो न ! अनंत बार ऐसे असत् समागम का परिचय (हुआ) अनंत बार तुमने परिचय किया, और उनसे तुम्हें सुनने मिला कि ऐसे राग से धर्म होगा और परम्परा भी राग से कल्याण होगा। आहाहा !

`और अनंतबार अनुभव में भी आ चुका है' तुम्हारे वेदन में, राग का वेदन अनंतबार हो गया है। शुभराग का दया, दान, व्रत, भक्ति का वेदन यह राग है, उसका अनंतबार तुम्हें अनुभव हो गया है, यह कोई नई बात नहीं। आहाहा !

प्रारंभ की गाथाओं में माल-माल भरा है। बाहर में समाहित कर देना है सभी। (कहते हैं) और अनंत बार अनुभव में भी आयी है। क्या कहा यह ? काम भोग की कथा। राग करना और राग भोगना इसका अनुभव भी तुम्हें अनंत बार हो गया है। राग करना और राग भोगना यह बात तुमने अनंत बार सुनी है उसका तुमने परिचय भी तुमने अनंत बार किया (है) और तुम्हारे अनुभव में भी यह बात अनंतबार आ गई है। आहाहाहा ! - ऐसा है।

मध्यस्थ होकर यह शास्त्र का वाचंन करे तो ख्याल में आये। उसप्रकार शास्त्र को कहना है वीतरागता, चारों अनुयोगो में कहने का आशय तो वीतरागता है। तब यह जब वीतरागता इसमें न आये और राग से लाभ हो यह आये, यह कथा विकथा है, धर्म कथा नहीं, पाप कथा है यह। आहाहा ! चाहे दस-दस, बीस-बीस हजार लोग सुनते हों। जिसमें - ऐसा माना जाय कि व्रत और तप एवं उपवास-भक्ति तथा मंदिर बनाना और इससे तुम्हारा कल्याण होगा, यह बात राग की है अनंतबार अनुभव में आ चुकी है। आहाहा ! बहुत कठिन बात है, पहली-दूसरी-तीसरी-चौथी गाथा देखो तो सही। आहाहा ! अमृत का सागर भगवान आत्मा है, इसे सुन, इसका परिचय कर और इसका वेदन कर न। यह कहने के लिये यह बात है। यह इतना (मात्र) कहने मात्र का शास्त्र नहीं,

आत्मा चैतन्यमूर्तिप्रभु है, उसका सम्यग्दर्शन और अनुभव करो उसका ज्ञान करो, और इसमें स्थिर हो। यहाँ कहने का आशय यह है। यहाँ आवो...आवो... कहकर फिर ठहरने को अंदर में ले जाना है। जहाँ-तहाँ रुकने के लिये बात नहीं करते, रुका हुआ तो अनंतकाल से है ही। आहाहा ! परंतु अब यह कह कर प्रभु तुम यहाँ आओ न अंदर, अपने घर में जाओ न, इस घर में जाने के लिये यह बात है। आहाहाहा !

'कैसा है जीवलोक' ? यह जगत में जीव कैसा है ? अनंतजीव हैं न ? एक ही जीव नहीं कहा, अतः जीवलोक (कहा है) आहा ! सभी जीव। अनंता जीव कैसे है ? '**कि जो संसाररूपी चक्र के मध्य में स्थित**' आहाहा ! जैसे चक्की होती है न चक्की उसके मुँह (बीच) में कीला हो तो, गेहूँ डालें तो जो गेहूँ वही के वही स्थिर हो वह पिसते नहीं, दूर जाकर अंदर जाये तो पिस जाये। आहाहा ! इसप्रकार जीव-संसाररूपी चक्र के मध्य में पड़े हैं। आहाहा ! है ? चक्र के बीच में स्थित है। यह जीव बराबर संसार चक्र के राग और पुण्य के भाव में बराबर स्थित हुआ है। आहाहा ! संसाररूपी चक्र अर्थात ? कि शुभ और अशुभभाव दोनों संसाररूपी चक्र है। अकेला शुभ ही नहीं और अकेला अशुभ भी नहीं।

शुभ और अशुभ - ऐसा संसाररूपी चक्र है। कर्म... कर्म, आहाहा ! कर्मधारा अकेली कर्म धारा... शुभ और अशुभ धारा इसके बीच में स्थित है। आहाहाहा ! यह जीवलोक, जगत का प्राणी, अनादि से, आहाहा ! संसाररूपी चक्र, संसरण करना, घूमना, घूमना पुण्य और पाप, पुण्य और पाप, पुण्य एवं पाप में ही घूमता रहता है। आहाहा ! इसके बीच में स्थित होने से... `लगातार' जिसने द्रव्य अर्थात जगत के पदार्थ अनंतबार संबंध में आये, अनंत द्रव्य परावर्तन किये यह जगत के जितने परमाणु हैं यह शरीरादि अनंत, यह इसके संयोग में अनंत बार आ गये, द्रव्य परावर्तन अनंतबार किया है। आहाहा ! ***यह तो सामान्य कथन है। कितने परमाणु ऐसे ही स्थित हैं। परंतु जो (संयोग में आए हैं) उनकी बात करते है कितने तो परमाणु ऐसे है, परिभ्रमण में आये नहीं, छुये नहीं यह बात यहाँ नहीं लेना।*** जैसे वह निगोद का जीव, किसी ने अभी तो सुना नहीं, यह वेदता है, यही सुना है। इसीप्रकार यहाँ कितने जीवो ने बहुत परमाणुओ को छुआ नहीं, यह नहीं लेना, परंतु यह स्पर्श हुये द्रव्य परावर्तन में... कारण कि इतनी इसकी शक्ति मिथ्यात्व की है, इसलिये अनंत द्रव्य-परावर्तन किये है - ऐसा कहना है। आहाहाहा !

जीवलोक... अनंत जीवलोक कैसा है ? अज्ञानियों का जीवलोक, आहाहा ! कि जिसने यह परमाणु अनंत अनंत स्थित हैं लोक... ठसाठस भरा (है), पूरा लोक परमाणुओं से ठसा-ठसा भरा है। यहाँ अनंत अनंत परमाणु ठसा-ठस भरे हैं। आहाहा ! यह सभी परमाणुओं का परावर्तन तुम्हारे संयोगरूप संबंध में अनंतबार द्रव्य परावर्तन हो गया है। आहाहा ! ऐसे पुद्‌गल तुम्हारे पास अनंत बार आकर गये हैं, आकर गये हैं, अनंत परावर्तन किये हैं। आहाहा ! पुण्य और पाप के राग के बीच में स्थित होने से, आहाहा ! संसार के जितने परमाणुओं की संख्या... यह सभी तुम्हारे संबंध में पलट-पलट कर सभी परावर्तन में आ गये हैं। आहाहाहा !

`द्रव्य परावर्तन' अनंत परावर्तन हुये हैं। द्रव्य के अनंत परावर्तन, परावर्तन (अर्थात) पलटकर अनंतबार रजकण पुनः आये हैं। आहाहा ! यह शरीर के रजकण हैं। इसके पहले आत्मा के संबंध में नहीं थे - ऐसा नहीं। ऐसे रजकण जो अनंत हैं यह सभी आत्मा के संबंध में द्रव्य परावर्तन में आ चुके हैं। आहाहा !

`क्षेत्र परावर्तन'... है ? चौदह राजू लोक है, इसका कोई एक अंगुल का असंख्यवाँ भाग भी वहाँ अनंतबार जन्मा-मरा नहीं - ऐसा नहीं। (पूरे) क्षेत्र में अनंतबार परावर्तन किया है। प्रत्येक क्षेत्र में, ***जहाँ सिद्ध भगवान विराजते हैं, उस क्षेत्र में भी अनंतबार जन्मा और मरा है। निगोद का जीव होकर, आहाहा ! सिद्ध भगवान विराजते हैं वहाँ निगोद के जीव है। सूक्ष्म निगोद।*** आहाहा ! तब क्षेत्र के अनंत परावर्तन, आहाहा !

क्योंकि चौदह ब्रह्मांड़ तो असंख्य प्रदेशी ही है लोक, और अनंतकाल से प्रत्येक क्षेत्र में अनंतबार जन्मा और मरा है। आहाहाहा ! सिद्ध भगवान रहते हैं वहाँ भी अनंतबार जन्मा मरा है निगोदरूप से, ऐसे अनंत क्षेत्र परावर्तन किये हैं, आहाहा !

इसीप्रकार `काल परावर्तन'... असंख्य चौबीसी हैं, उसके एक-एक समय में अनंतबार परावर्तन हो गया है। आहाहा ! असंख्य चौबीसी हैं, असंख्य समय की, काल की। (अपेक्षा) उसका पहला समय... इसप्रकार एक-एक समय अनंतबार परावर्तन करके भटक रहा है। इसीप्रकार दूसरे समय, तीसरे समय, चौथा समय इसप्रकार अनंत समय, आहाहाहा ! असंख्य परावर्तनमें असंख्य समय ही होते हैं। अनंत नहीं पुद्‌गल परावर्तन अनंत होते ते हैं उसमें अनंत समय होता हैं। चौबीसी असंख्य हैं, तब एक-एक चौबीसी इसमें समय असंख्य ही हों। आहाहा ! प्रत्येक प्रत्येक समय अनंतबार, क्षेत्र संबंधी परावर्तन किया है, परिभ्रमण किया है इसने। आहाहा ! काल अपेक्षा एक-एक समय में भी अनंतबार आया है परिभ्रमण में आहाहा ! अनंतकाल गया न ? शुरूआत है कहीं यहाँ पूरा हुआ परंतु आदि है ? अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत... इसीप्रकार चले जाते है न। आहाहा ! ऐसे एक-एक समय में अनंतबार परावर्तन करके अनंती चौबीसी और काल के अनंत पुद्‌गल परावर्तन किये। आहाहा ! ये यह राग के बीच में रहा है, शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभ, आहाहा !

भगवानआत्मा राग से भिन्न है, उसकी खबर की नहीं उसे पहचाना नहीं उसे जाना नहीं। प्रभु, सर्वोत्कृष्ट परमात्मा तो तुम्हारे पास ही विराजता है न ! पर्याय के पास, तुम्हारी अर्थात तुम पर्याय को (अपनी) मानते हो, और राग को (अपना) मानते हो, तो इस राग की पर्याय के पास ही प्रभु विद्यमान है पूरा। आहाहा ! समझ में आया ? पास का अर्थ ? कि एक समय की पर्याय और राग ऊपर तुम्हारी दृष्टि है इसलिये तुम्हारे पास ही प्रभु (द्रव्य) विराजमान है। आहाहा ! उसे तुम देखते नहीं, और ऐसे राग वर्तमान पर्याय में अनंत, अनंत काल (से) अनंत परावर्तन किये हैं। आहाहा !

थोड़ा अभ्यास चाहिए भाई ! तो थोड़ा समझ में आये, (जिसे) बिलकुल अभ्यास न हो उसे तो - ऐसा लगे कि यह क्या है ? आहाहा ! अभ्यास नहीं (एवं) बाहर की प्रवृत्ति में रुक गये, आहाहा ! जो बात मूल है उस तक पहुंचने को कुछ सुनने का समय निकालता नहीं। आहाहा ! और इसमें अनंत समय बिताया - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! राग करना और राग भोगना - ऐसा जो अनंती चौबीसी में एक-एक समय में ऐसे अनंतभव किये, काल परावर्तन किया, आहाहा !

`भव' (परावर्तन) एक नरक में भव अनंतबार किये, मनुष्य के भव अनंतबार किये,

स्वर्ग के भव अनंतबार किये, पशु के भव अनंत बार किये (हैं) भव अनंत किये हैं। आहाहा ! द्रव्य-क्षेत्र-काल और भव अनंत परावर्तन किये। अब रहा 'भाव' शुभ और अशुभ भाव भी अनंत परावर्तन किये। आहाहा ! ***चाहे निगोदमें से नहीं निकला, उस जीव ने भी शुभ-अशुभ भाव अनंतबार किये हैं। इसमें आ गया कि नहीं ? आहाहाहा ! शुभ भाव और अशुभ भाव ऐसे अनंतबार पलट-पलट कर भाव अनंतबार किये हैं। आहाहा ! यह (शुभाशुभ भाव) कोई कहीं नयी चीज नहीं।*** आहाहा ! यह कहीं जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा !

जैसे समस्त जीवलोक... जो निकले नहीं (निगोद से) उनने भी सुनी है - ऐसा कहना चाहते हैं। ऐसे अनंत जीव निगोदमें से बाहर निकले नहीं, परंतु फिर भी शुभाशुभ भावरूप अनंतबार परावर्तन किया है इसने, आहाहा ! इसमें से निकला यह ? आहाहा ! यह ? आहाहा ! फूलचन्दजी ने निकाला था न पहले, तो यह इसमें से निकाला (था)। यह अनंतजीव जो हैं उन सभी जीवों ने शुभाशुभ भाव का अनंतबार परावर्तन किया है, आहाहा ! तो इसमें यह निगोद के जीव भी आ गये। आहाहाहाहा ! **पहले फूलचन्दजी ने (यह अर्थ) निकाला था (कहा था) कि एकेन्द्रिय में भी शुभभाव है। शुभ-अशुभ-शुभ (से) अशुभ होते हैं। इससे यह निकलते है (त्रस में आते) आहा !** अनंत जीव जो अभी बाहर नहीं निकले उसने भी शुभाशुभ भाव का अनंतबार परावर्तन किया है। शुभाशुभ भाव का परावर्तन करके अनंत पुद्गल परावर्तन किये हैं। आहाहाहा !

क्या संतो की वाणी गंभीर, गंभीर, गंभीर... अगाध थोड़े में बहुत बहुत भर दिया है। आहाहा ! यह सिद्धांत कहलाये। आहा ! जिसमें अनेक भाव... थोड़े शब्दों में भी अंत न आये, ऐसे भाव भरे हैं, हैं तो यह भाव पुद्गल की पर्याय में, जीव के भाव कहीं वाणी में नहीं। परंतु वाणी में जीव के भावों और अपने भावों को कहने की शक्ति है। इसलिये वाणी - ऐसा कहती हैं कि शुभ-अशुभ भावों का परावर्तन प्रत्येक जीव ने अनंतबार किया है। आहाहा !

कैसा है पूरा जीवलोक - ऐसा कहा न ? पूरा कैसा है जीवलोक इसमें से कोई बाकी नहीं रहा। निगोद के... और पूरा जीवलोक जो है परिभ्रमण के करनेवाले यह सभी पुण्य और पाप के भाव अनंतबार परावर्तन करके, कर चुका है। आहाहा ! जिससे पुण्य बंधे - ऐसा शुभभाव और जिससे पाप बंधे - ऐसा अशुभभाव यह प्रत्येक (जीव) जीवलोक ने अनंतबार किया है। - ऐसा है इसमें देखो, गंभीर बात है प्रभु ! आहाहा ! तीनलोक के नाथ जिनेश्वर देव परमेश्वर, इनकी वाणी का क्या कहना ? आहाहा ! संत ऐसी बात को बताते हैं, छद्मस्थ। आहाहा ! थोड़े में बहुत करके बताया है। तीनलोक के नाथ की बात को क्या कहना। आहाहा ! इसके अल्प शब्दों में

तो चौदह ब्रह्मांड और तीनकाल तीनलोक ज्ञात हो जाता (है) आहाहाहा !

भावरूप अनेक परावर्तनों के कारण जिसने भ्रमण प्राप्त किया है। आहाहा ! द्रव्य के संयोग का, क्षेत्र का-काल का समय, समय उत्पन्न होना, भव का और भाव का शुभभावपने का उसे लेकर शुभ-अशुभभाव के परावर्तन के कारण जिसने भ्रमण प्राप्त हुआ है, भ्रमण प्राप्त हुआ है। आहाहा ! जैसे वह भोंरा-भोंरा नहीं आता ? लट्टू, लट्टू इसप्रकार मारें अर्थात बच्चे कहते हैं सो गया, अर्थात इतनी तेजी से घूमे, इतनी तेजी से घूमे कि घूमना दिखे नहीं। यह भोंरा इस प्रकार (घूमता) हिल जाय तब घूमता दिखता है फिर एकदम घूमने लगे। इस पंखे में क्या है ? यह घूमे तब इसकी पंखड़ी दिखे नहीं। चार पंखड़ी, एकदम घूमे तब पंखड़ी दिखे नहीं, एकदम एकदम फिरे तो दिखे नहीं। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि अनंतपरावर्तन के कारण इसको भ्रमण प्राप्त हुआ है। भ्रमण-भ्रमण चक्कर चढ़ गया है। भटकने के रास्ते चढ़ गया है। आहा ! विशेष कहेंगे..... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. १६ गाथा-४ ता. २४-६-७८ शनिवार जेठ वदि-४ सं.२५०४

समयसार चौथी गाथा `**समस्त जीवलोक को**' यहाँ - ऐसा लेना है जो अनादिकाल से भटक रहे हैं, उनके अतिरिक्त सम्यक्दृष्टि आदि की बात नहीं। समस्त जीवलोक में (कहां भी) भटकनेवाले मिथ्यादृष्टि को यहाँ लिया है। उन्हें राग की बात, राग करना और राग को भोगना... व्यवहार रत्नत्रय यह भी राग है। यह (बात) तो द्रव्यसंग्रह में है। राग करना और भोगना, यह बात तो प्रत्येक जीव ने अनंतबार सुनी है और उसका परिचय भी हो चुका है और अनुभव भी हो चुका है। संपूर्ण लोक को कहा, चाहे निगोद का जीव हो, परंतु उसे(राग का) अनुभव है, अर्थात उसमें सब आगया आहाहा !

`**कैसा है जीव लोक ? संसाररूपी चक्र के मध्य में पड़ा है**'**।** आहाहा ! मिथ्यात्व में स्थित है अर्थात वह कर्म चक्र के मध्य में स्थित है। - ऐसा स्थित..... द्रव्य निरंतररूप, जगत के जितने परमाणुओं का संयोग है - ऐसा हरएक जीव को अनंतबार संयोग हो चुका है। यह अपेक्षित बात है। कितने ही परमाणुओं का इस द्रव्य में संयोग नहीं हुआ, परंतु उसमें शक्ति है इसलिये अनंतबार हुआ - ऐसा कहा जाता है।

वैसे जीव समस्तक्षेत्र में जन्मा है - ऐसा भी नहीं है, परंतु उसमें मिथ्यात्वरूपी

शक्ति है जिसके कारण हर क्षेत्र में अवतरित हुआ - ऐसा भी कह सकते है। इसीप्रकार काल... इसीप्रकार `भव' स्वर्ग के भव अनंत किये - ऐसा कहा जाता है। ***कितने ही जीव अभी भी बाहर नहीं निकले परंतु उनकी श्रद्धा मिथ्या है, मिथ्यात्व के कारण चारों गतियों में भटकने का भाव उनके पास मौजूद है। अतः चार गति में अनंतबार भ्रमण किया, भव किये-*** ऐसा कहा जाता है। इसीप्रकार `भाव' ऐसे अनंत परावर्तन द्रव्य (परावर्तन) अनंत, क्षेत्र अनंत, काल अनंत, भव अनंत तथा भाव, अनंत, अनंत परावर्तन के कारण प्रत्येक (गति) अनंतबार बदलता-बदलता रहा। आहाहा ! जिससे परिभमण हुआ है। आहाहा ! भटकने की स्थिति ही जिसे प्राप्त हुई है। आहाहा ! चोरासी में अवतार लेने की स्थिति जिसे प्राप्त हुई है। यहाँ तक बात हो चुकी है।

`समस्त विश्व पर एकछत्र राज्य से वश करनेवाला बड़ा मोहरूपी भूत' मिथ्यात्व रूपी भूत। आहाहा ! मिथ्यात्वरूपी भूत समस्त विश्व को... समकिती के अतिरिक्त अज्ञानियों पर एकछत्र राज्य... जैसे चक्रवर्तीयों का राज्य होता है जहाँ भी देखो राज्य उसका होता है, ऐसे ही अनंत जीवों पर मिथ्यात्व का शासन है। साधु हुआ फिर भी राग से लाभ होता... यह मिथ्यात्वरूपी भूत उन्हें भी लगा है। आहाहा ! सूक्ष्मबात है भाई ! व्रती हो तो भी उन्हें मिथ्यात्वरूपी भूत इसप्रकार से है कि व्रतादिक के विकल्प मुझे लाभदायक है और वह व्यवहार व्रत मेरा कर्तव्य है - ऐसा मिथ्यात्वरूपी भूत (मिथ्या अभिप्राय) सभी जीवों में पूर्ण शासन एकछत्र-एकछत्र सभी में मिथ्यात्व ही छा रहा है। आहाहा !

जिसके राज्य में जो कानून हो वह कानून सारे राज्य में चलता है। कानून राज्य का नियम (शिक्का)... इसीप्रकार मिथ्यात्व का नियम... आहाहा ! अनंते अज्ञानी जीवों में छा गया है। आहाहा ! एकक्षत्र राज्य उसका है। जहाँ हो वहाँ मिथ्यात्व... मिथ्यात्व... मिथ्यात्व... (अर्थात) कुछ करना, कुछ करिये, कुछ व्यवहार करें तो निश्चय होगा - ऐसे मिथ्यात्वरूपी भूत ने एकछत्र राज्य करके इसे वश में कर लिया है। आहाहा ! कुछ करना तो चाहिए न भाई, कुछ किये बिना चलेगा ? क्या करना ? राग से भिन्न करना, यह करना है। परंतु राग करते-करते सम्यग्दर्शन होगा और यह व्यवहार है यही निश्चय को प्राप्त करायेगा... आहाहा !

- ऐसा एक मिथ्यात्वरूपी भूत पूरे विश्व को एकछत्र राज्य से वश में करनेवाला है। सभी को वश में कर लिया है। ओहोहो ! ऊंची पदवी धारी नग्न मुनि, दिगम्बर मुनि जिसे पंचमहाव्रत है अट्ठाईस मूलगुण है उन्हें भी मिथ्यात्व ने वश में कर लिया है। क्योंकि वह भी मानते हैं कि (व्यवहार) धर्म है, धर्म का कारण है वह सभी साधन है न ? व्रत, तप, भक्ति आदि साधन हैं, उससे मुझे निश्चय - साध्य प्रगट

होगा इसप्रकार के मिथ्यात्व के भाव ने उन्हें भी वश में कर लिया है। आहाहा ! - ऐसा सूक्ष्म है। अभी वह चिल्लाते है कि निश्चय व्यवहार का सुमेल उसे कहते हैं कि व्यवहार से निश्चय हो - यह अनेकान्त है। आहाहा ! राग तो पराश्रित (भाव) है और सम्यग्दर्शन है वह स्व आश्रित (भाव) है। भले ही महाव्रत का राग है। भक्ति का राग हो, परंतु उस परिणामों की दिसा पर तरफ है और सम्यग्दर्शन आदि, धर्मरूप परिणामों की दिशा स्वतरफ है। आहाहा !

कहते हैं कि बड़े पदवी धारियों को भी मिथ्यात्व ने हराया है। (एक) छत्र राज्य उसका अभी चलता है। आहाहा ! उसकी मुद्रा का प्रचलन है, मिथ्यात्वरूपी शिक्का का चलन (है) आहाहा ! साधु हुआ, मुनि हुआ, बाहर का वेश बदला, पंचमहाव्रत पाले उन्हें भी मिथ्यात्व ने घेर लिया है। आहाहा ! ऐसी बात है। बड़ा मिथ्यात्वरूपी भूत मिथ्यात्व... आहाहा ! सारे विश्व को एकछत्र राज्य से वश में करनेवाला। आहाहा ! यहाँ जैसे समस्त जीव लोक कहा था न ? कि अहित करनेवाला (उपदेश) उन्होंने सुना है, ऐसे ही लोक के सभी जीव परिभ्रमण करते है - ऐसा यह जीव लोक है। आहाहा !

`मोहरूपी बड़ा भूत कि जो बैल की तरह बोझा ढुलवाता है' आहाहा ! मिथ्यात्व का राज्य - ऐसा है कि बैल की तरह उसे यह राग करना पड़े, व्यवहार अपना कर्तव्य है, दया, दान, भक्ति, व्रत, तप यह कर्तव्य है - ऐसा मिथ्यात्वरूपी भूत है। आहाहा ! बैल की तरह बोझा ढुलवाता है, सभी भार है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई ! निर्विकल्प चीज है अंदर ज्ञायक वस्तु (ज्ञायकभाव) वह व्यवहार की अपेक्षा बिना प्रगट होता है, ऐसी यह वस्तु है। वह तो स्व की अपेक्षा-त्रिकाली की अपेक्षा से होता है, उसकी जगह ऊंची पदवीधारी, ग्यारह अंग का पाठी दश-दश हजार बीस-बीस हजारों में भाषण देनेवाला, ऐसे सभी को मिथ्यात्व ने घेर लिया है। आहाहा ! यह जो हम सभी परिषहसहन करते हैं, उपसर्ग सहन करते हैं तभी यह सहन करते-करते अंदर धर्म होगा। निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त होगा - इसप्रकार मिथ्यात्वरूपी भूतने बैल की तरह बोझ ढुलाया है। आहाहा !

पाठ में तो `**गोरिव**' है न ? गोगो-इव; गो + इव पाठ में है, बैल की भांति। आहाहा ! इतने इतने काम करना पड़े अपने को, शास्त्रों की रचना करना पड़े, मंदिर बनाना पड़ें (श्रोता :- छपाना पड़े बेचना पड़े) छपाना पड़े। आहाहा ! प्रसिद्धि (होना) अध्यक्ष होना पड़े। इसके बिना हमारा कैसे चले ? चले अवश्य, संसार चले व्यवहार मार्ग चले किस प्रकार ? आहाहा ! उसने राग को मिथ्यात्व के कारण पकड़ रखा है, गजब की बात है बापू ! आहाहा ! मिथ्यात्वरूपी भूत ने इससे बैल की तरह बोझा ढुलवाया है। यह पंचमहाव्रत का परिणाम आदि भार क्लेश है। आहाहा ! और

इसने उसे मिथ्यात्व के कारण धर्म माना है, और कभी धर्म का कारण है, माना है ! आहााह !

अच्छा निमित्त हो तो आत्मा में कार्य हो, इसप्रकार उसे मिथ्यात्वरूपी भूत ने बैल की भांति दूसरे के कार्य में फँसा दिया है। आहाहाहा ! निमित्त चाहे कैसा हो, निमित्त से होता नहीं, तीनों काल में कुछ भी (होता) नहीं। निमित्त, निमित्त की पर्याय को करे। आहाहा ! ऐसी बातें बापू ! कठिन भाई, यह तो भगवान के विरह में विदेह क्षेत्र की बातें है। आहाहा ! वहाँ से लाये है न यह ? कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ प्रभु के पास गये थे। जीवन्त तीर्थयात्रा की थी। आहाहा ! महाविदेह में आठ दिन रहे, थे तो ज्ञानी चारित्रवंत समकिति भी, परंतु वहाँ जाने से निर्मलता बहुत हुयी। यद्यपि हुयी तो अपने कारण... समझ में आया ? परंतु महाविदेह में गये थे वह भी अपनी योग्यता से गये थे न। आहाहा ! वहाँ से, जो स्वयं को अंतर (ज्ञान) प्राप्त हुआ, स्वयं से, वहाँ पर परंतु उसके कारण नहीं परंतु स्वयं से प्राप्त हुआ। आहाहा ! उससे यह बात कह रहे है। आहाहा !

कहते है कि बड़ा मोहरूपी भूत जिसके पास से बैल की तरह बोझा ढुलवाता है। जैसे बैल को बांध कर २५-२५ मन ५० मन ढुलवाता है। इसीप्रकार यह राग की मंदता को क्लेश, क्रिया महाव्रत और समिति गुप्ति की तथा ब्रह्मचर्यरूप क्रिया यह शुभ भाव है यह भार है क्लेश है परंतु अज्ञानी मिथ्यात्व के कारण यह करना चाहिए - ऐसा (मानकर) बोझा ढोता है। नय का विषय है एकांत है। सम्यक् एकांत (शुद्ध) नय का विषय है। उसकी जगह इसप्रकार अनेकान्त - ऐसा होता है कि व्यवहार से भी होता और निश्चय से (भी) होता। आहाहा ! - ऐसा मिथ्यात्व रूपी भूत... - ऐसा काम कर करके बैल की भांति मजदूरी कराता है यह। आहाहा ! है कि नहीं अंदर ? (उपयोग तो पूरे दिन आत्मा में रहता नहीं-फिर बाहर आता) यहाँ यह कहाँ प्रश्न है ? बाहर आता परंतु इससे लाभ नहीं। यह हमारे धर्म का कारण नहीं, ऐसी दृष्टि हो तो उसे मिथ्यात्व का भूत नहीं लगा बाहर आकर यह कर्तव्य करना चाहिए जिससे धर्म की पुष्टी हो, धर्म की वृद्धि हो, धर्म में सहायक हो - ऐसा तो कहा है न ग्यारहवीं गाथा में कि निमित्त की अपेक्षा हस्तावम्बन जानकर जिनागम में भी (व्यवहार का) कथन किया है, परंतु इसका फल संसार है। आहाहा ! ऐसी बात है। वाद-विवाद से वह बैठे - ऐसा नहीं बापू, पूरी दुनियाँ देखी है न। आहाहा !

यह मार्ग ही वीतराग का, आहाहा ! जिसे व्यवहार की भी अपेक्षा नहीं - ऐसा जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, स्व के आश्रय से होता है, पर का आश्रय उसको होता नहीं। उसकी जगह मिथ्यात्वरूपी भूत कि यह व्यवहार करने से निश्चय की

प्राप्ति होगी तथा यह निश्चय तक पहुंचायेगा। आहाहा ! मिथ्यात्वरूप भूत बैल की भांति बोझा ढुलावाता है। भार है सभी बोझा है। आहाहा ! यह राग की विकल्प की क्रिया है वह करने लायक है और इससे लाभ होगा, यह बैल की तरह बोझा ढुलवाता है। आहाहा ! **`एयत्तरस्सुवलंभो'** इसकी टीका है यह है न (गाथा) का तीसरा पद `एयत्तस्सुवलंभो' एकत्व की प्राप्ति इस प्रकार (सुलभ) नहीं। इसकारण इसे एकत्व की प्राप्ति नहीं। आहाहा ! यह द्वेत की प्राप्ति है। आहाहा ! आहाहा !

बैल की तरह बोझा ढुलवाता है। आहाहा ! पच्चीस-पच्चीस उपवास, पचास-पचास उपवास, चारप्रकार के आहार का त्याग पानी बिना, उससे निर्जरा होती है, बिना पानी के उपवास करो तो निर्जरा ज्यादा होती है। आहाहा इस प्रकार उसने मिथ्यात्वरूपी भूत के कारण यह राग की क्रिया के बैल की तरह करता है। आहाहा ! ऐसी बातें सुनना मुश्किल पड़े। आहाहा ! यही तो कहा इसके लिये तो बात चलती है।

फिर जब इस मिथ्यात्वरूपी भूत ने, इसे राग में जोड़ दिया है राग से कुछ लाभ होगा... परन्तु राग ये क्रिया-काण्ड क्लेश है। चाहे तो पंचमहाव्रत हो, बारह व्रत हों, परंतु राग है, क्लेश है, क्लेश का बोझा करना पड़े, इसप्रकार मिथ्यात्वरूपी बैल की भांति जोत दिया है। आहाहा ! काम कठिन लगे।

`**तीव्रता से हुयी तृष्णा**' और यह जो मिथ्यात्व का जोर हुआ उसमें से तृष्णा फट फट निकली। उसका रोग... कुछ करना कुछ करना कुछ करना राग करना कुछ करना, पर का कुछ भला करना तो अपने को कुछ लाभ होगा - ऐसा तृष्णारूपी राग जिसे तीव्रता से हुआ है। आहाहा ! यह नग्न दिगम्बर साधु बने, परंतु अंदर में मिथ्यात्व है इसकारण राग से लाभ मानकर बैल की भांति जुड़ गया है। उसे तृष्णारूपी रोग, अंदर उत्पन्न हुआ है। यह करूं यह करूं यह करूं चाहरूपी दाह है न ? तृष्णारूपी रोग, उसकी अंदर में जलन है। आहाहा ! यह शुभ राग भी जलन है `यह राग आग दहै सदा, तातै समामृत सेहये' आहाहा ! चाहे तो यह शुभ राग हो परंतु कहते हैं कि तृष्णरूपी रोग ने जलन उत्पन्न की है। आहाहा !

जिसके दाह से अंतरंग में पीड़ा प्रगट हुयी है। आहाहा ! यह शुभराग भी दाह (जलन) और पीड़ा (दर्द) है, परंतु मिथ्यात्व का भूत उसके तृष्णा और लोभ के कारण... आहाहा ! यह मुझे ठीक है, यह मुझे ठीक है, हमने ठीक किया इस दाह से जल रहे हैं। आहाहा ! सूक्ष्म बातें बापू ! वीतराग मार्ग की। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह सुन्दर सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु (निजात्मा) (ज्ञानी) उसमें समाना चाहता है। आहाहा ! सर्वज्ञ हुये प्रभु... सर्वज्ञ स्वभावी में जाओ उसमें ठहरो, प्रतीति के द्वारा जाना एवं स्वरूप से ठहरना। आहाहाहा !

- ऐसा करवाना चाहते है, उसे नहीं समझने से... तृष्णारूपी रोग जिसे लगा है, यह करूं, यह करूं, यह करूं, यह करूं... आहाहा ! पण्डिताई करूँ तथा विद्वता करूँ, तथा मैं बहुत पढ़ु और जगत के बहुत (जीवों) को समझाऊं तो मुझे लाभ होगा। दुनिया को कुछ लाभ होगा तो उसका कुछ लाभ उसे नहीं मिले ? उसका कुछ हिस्सा आये कि नहीं थोड़ा ? आहाहा ! परंतु वहाँ तृष्णारूपी अग्नि ने उसे यहाँ जला डाला है और अपने को तथा दूसरे को लाभ होगा। दूसरे लाखों व्यक्ति समझें तो थोड़ा १० और १२ आना सोलहमां भाग कुछ आये कि नहीं ? आहाहा ! धूल में मिले नहीं एक भी हिस्सा। यहाँ तो, अरे बापू ! यह मार्ग अलग है भाई !

यहाँ तो अंदर स्वरूप में, आहाहा ! अंदर स्वभाव में जाना है, वहाँ बाहर के कारणों की सहायता से कैसे जा सके भाई ? आहाहा ! बाहर के कारणों का तो आश्रय छोड़ दे उसका लक्ष्य छोड़दे उनकी रुचि छोड़दे, तब अंदर में जाये तब उसे अंदर के आश्रय से लाभ होगा... परंतु यह बाहर के क्रिया-काण्ड खूब करे, उपवास करे, आजीवन ब्रह्मचर्य पाले, छह काय की हिंसा न करे, कंदमूल न खाये, आजीवन (रात्रि में) चार प्रकार के आहार का त्याग करे, भोजन न करे, बापू ! यह तो सभी राग की क्रिया है भाई ! आहाहा ! परंतु तृष्णारूपी दाहने उसे जला डाला है ? तृष्णारूपी रोग की जलन से अंतर में पीड़ा उत्पन्न हुयी है। भले दूसरों को उपदेश देकर लाभ पहुँचाने का शुभभाव हो, परन्तु यह भी दाह है, अग्नि है। आहाहा !

यहाँ कहा है कि रोग के दाह से जिसे अन्तरंग में पीड़ा प्रगट हुई है... भले शरीर निरोगी हो... पञ्च महाव्रत पालता हो... परन्तु उसे अन्तरंग में पीड़ा उत्पन्न हुई है। यह शुभराग करते करते निश्चय सम्यग्दर्शन होगा। (- ऐसा माननेवाले) अंतरंग में दुःखी है, वे अंतरंग में दुःख को भोगते हैं। आहाहा ! यह बात लोगों को कठिन लगती है परंतु यहां तो स्पष्ट बात है सत्य का उद्‌घाटन है। सत्य यही है इसके अलावा सभी असत्य है। अरे ! प्रभु का मार्ग तो वीतरागता से प्रारंभ होता है, कि राग से प्रारंभ होता है ? (राग) यह वीतरागमार्ग ही नहीं। आहाहा ! आजकल तो राग से शुरूआत कराके वीतराग में ले जाना चाहते है। आहाहा !

तृष्णारूपी रोग... उसकी जलन... देखा ? यह शुभराग की तृष्णा है वह भी जलन है, अग्नि है, कषाय है। आहाहाहा ! अरे लोग जिसे धर्म मान कर बैठे है, यहाँ कहते है वह तो तृष्णारूपी राग की जलन है पीड़ा है। आहाहा ! तथा यह बात अब कहाँ गुप्त रखी है। बाहर में बहुत प्रसिद्धि हो गई है। यहाँ से बीसलाख पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं सभी में यह बात है। हैं। आहाहा ! भाई ! तुम अपने घरमें से निकल कर बाहर में शुभाशुभ भाव में भटकते हो, यह जलन है प्रभु !

आहाहा ! यह मार्ग लोगों को कठिन लगता है। इसलिये - ऐसा ही कहते हैं, एकांत है एकांती है, कहो प्रभु ! आहाहा !

(- ऐसा लगता है कि व्यवहार का लोप होगया) व्यवहार का लोप... उसकी रुचि छोड़े बिना स्वभाव की रुचि हो सकती नहीं। बहुतों को - ऐसा लगे कि छोटे-छोटे बालक भी ऐसे भगवान के दर्शन करे- ऐसा करे, वैसा करे, उसके लिये तुम कहो उससे लाभ नहीं, तब नहीं करे क्या ? भाई ! करे न करे इसका प्रश्न कहाँ है। आहाहा ! सभी करते हैं, यह करते समय राग होता है। आहाहा ! परंतु जाये न जाये इसके साथ संबंध क्या है ? शुभ भाव है वह स्वयं जलन है। उसे करते-करते (क्या) सम्यग्दर्शन (और) शांति मिलेगी। आहाहा ! रोग से निरोगता होगी ? जलन से शांति मिलेगी ? आहाहा ! बहुत संक्षेप में टीका (की है) ऐसी टीका तो... आहाहा ! भरतक्षेत्र में समयसार की यह टीका... दिगम्बरों में दूसरे शास्त्रों की ऐसी टीका, ऐसी यह कोई अद्‌भुत टीका है। आहाहा ! जिसके थोड़े शब्दों में अगाध गंभीर भाव भरे हैं। आहाहा !

प्रभु तुम्हारी प्रभुता प्राप्त करने के लिये पामर स्वरूप रागकी आवश्यकता नहीं नाथ ! आहाहा ! प्रभु तुम्हें यह कलंक है। आहाहा ! ***(राग) हो यह अलग बात है, होता है तो ज्ञान उसे भिन्नरूप जानता है, भले ही इसप्रकार जाने कि हमारी पर्याय में होता है, परंतु राग है दुःखरूप, चाहे परिणमन की अपेक्षा मैं इसका कर्त्ता हूँ, तथापि है तो राग एक जलन।*** आहाहा ! कितना समाया है देखो न ! ओहोहोहो !

अभी मिथ्यात्व का एकछत्र राज्य चलता है, जहाँ पूँछो वहाँ सभी जगह मिथ्यात्व का जोर है, आहाहाहा ! बालक से लगाकर बड़े त्यागी महात्मा लाखों करोड़ों वर्षों तक पंचममहाव्रत पालते हों उसके पास भी मिथ्यात्व का राज्य पड़ा है। (बादशाही शासन। बादशाही शासन। आहाहा ! ऐसी बात कहाँ है भाई ? आहा ! यहाँ तो तुमने जो अनंत जन्म-मरण के अनंत फेरे किये, वह इस मिथ्यात्वभाव से किये। आहाहा ! अब उसे छोड़ने के लिये यह कहते हैं। अपना मान कर रखा है और जन्म-मरण किये है। अब उसे छुड़ाते है। बापू ! अब परिभ्रमण से छूट नाथ। आहाहा ! पशु को भी बंधन से मुक्त करो तो प्रसन्न होता है, छोड़ो तो प्रसन्न होता, वैसे तो बंधता है शाम को, सुबह छोड़े तब खुश होता है। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि राग के भूत की तुम्हें पीड़ा है प्रभु, तुम्हें इससे सम्यग्दर्शन होगा ? स्व का आश्रय मिलेगा, पर का आश्रय करने से स्व का आश्रय मिलेगा ? यह राग को जलन से अंदर में (दर्द) पीड़ा है प्रभु ! आहाहा !

यह जलन बिना की चीज प्रभु अंदर है, वहाँ तुम्हारी नजर जाती नहीं और

यहाँ की नजर से हटता नहीं। आहाहा ! वहाँ निधान पड़ा है अंदर, अकेला शांत रस का कंद है, जिसमें दया, दान के विकल्प की उत्पत्ती का भी स्थान नहीं। आहाहा ! - ऐसा ध्रुव धाम, ध्रुव का विश्राम स्थान स्थित है न नाथ ! आहाहा ! वहाँ जाने के लिये यह बातें करते हैं यह बात तिरस्कार करने के लिये नहीं। आहाहा ! भाई तुम इसप्रकार अनंतकाल से दुःखी हो, क्योंकि तुम्हें मिथ्यात्वरूपी भूत लगा है जिससे तुझ में चाहरूपी ज्वाला फूटी है, तथा यह करूं, यह करूं, यह करूं (कर्त्ता भाव) में तुम्हें लगा देता है। आहाहाहा !

कनुभाई ! - ऐसा है यह ! जजकी पढ़ाई में - ऐसा आया है कहीं ? यह तो वीतराग का न्यायधीशपना है। सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव, वीतरागस्वरूप प्रभु ! उनकी आज्ञा विरूद्ध राग से लाभ माने वह जैन नहीं आहा ! तुम जैन के दास नहीं तुम राग के दास हो। आहाहा ! (श्रोता :- अंतर में जाने के लिए सूक्ष्म विकल्प रोक लेते है जाने नहीं देते) यहाँ तो विकल्प की भी जरूरत नहीं, वहाँ विकल्प काम करता नहीं, विकल्प तो आकुलता है। मिथ्यात्व ने उसे विकल्प में रोक रखा है। वहाँ से हटता नहीं आहाहा !

जिसे अंतरंग में पीड़ा उत्पन्न हुयी है। आहाहा ! यह तो - ऐसा मानता है कि हम सुखी हैं और हमको आनंद है। वह तो अभी अशुभ भाव व्यापार, धंधा, भोग विषय, खानापीने की अनुकूलता में, प्रसन्नता महसूस करता है, वह तो तीव्र पाप के परिणाम (रूपी) ज्वाला में जल गया है न ! शरीर जले (तो क्या) उसे ठीक समझते हैं ? आहाहा ! ऐसे भगवान आत्मा का शांति संतोष वीतराग स्वभाव, अशुभ राग के प्रेम में जल जाता है, तुम्हारे अंग जलते है प्रभु, पर्याय (की वात है) द्रव्य तो जैसा है वैसा है। आहाहा !

यह सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहे है न ? निशंक आदि यह कहीं भेदरूप नहीं। यह आठों मिलकर एकरूप समकित है। भेद है वह वहाँ लाभ करता नहीं वह - ऐसा (लाभदायक) नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! निःशंक निःकांक्ष आदि जो आठ अंग कहे समकिति के अर्थात सम्यग्दर्शन का एक अंग हुआ यह ? यह सभी भाग मिलाकर अकेला समकित है, अकेली वस्तु है यह, अंग अलग-२ है - ऐसा नहीं। आहाहा ! उसके आठ भेद भी जिसमें नहीं, यह अखण्ड वस्तु जो है सम्यग्दर्शन वह शांति का कारण और स्वाश्रय का कारण है। आहाहा ! बाहर की चीजों के भपके में (चमक में) और दिखाने में जितना जाओगे उतनी पीड़ा है। यह तो ठीक है... परन्तु शुभभाव में जाते हो तो इसमें भी पीड़ा है। भाई राग है वह दुःख है, यह अंतरंग रोग की पीड़ा है। आहाहा ! शरीर में रोग हो न हो

उससे कुछ सम्बन्ध नहीं। परंतु अंतरंग में यह बड़ा रोग है। आहाहा ! इस रोग को नाश करने का उपाय स्व का आश्रय लेना। ऐसी बात है।

कलशटीका में कहा है न बारह अंग का (सार)। बारह अंगों में अनुभूति (करने का) कहा है। आहाहाहा ! चाहे जितनी बातें कहीं है, बारह अंग में चरणानुयोग और करणानुयोग तथा प्रथमानुयोग में। बात तो यही है कि स्व के आश्रय में जाओ पर का आश्रय छोड़ दो। आहाहा ! छोड़ दो यह भी नास्ति से है स्व के आश्रय में जाओ वहाँ पर का आश्रय छूट जाता है। आहाहा ! परन्तु इसमें समझना क्या ? आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म-सूक्ष्म बातें, अभी तो यहाँ पूरे दिन संसार के काम में लगा हो। उसे दूसरा रास्ता सरल है कि नहीं ? आहाहा ! आहाहा ! बापू, सरल तुम्हीं हो तथा शुभाशुभ भाव यह तो भार बोझा क्लेश है, पीड़ा है। आहाहाहा ! आहाहा !

`प्यास से आकुलित होकर मृगतृष्णा जैसा' आहाहा ! मिथ्यात्व के जोर से फूट कर निकली तृष्णा, उसमें से निकली चाह, जिससे अंतरंग पीड़ी हुयी है। आहाहा ! आग बन बन के मृगतृष्णा जैसा विषय अर्थात अतीन्द्रिय विषय अपना है उसे छोड़कर। आहाहाहा आचार्य (भगवान) की क्या शैली ! उन्हें सुनना या वीतराग (देव) की वाणी सुनना, आहाहा ! यह मृगतृष्णा जैसा विषय का गांव है समूह है, आहाहा ! छह घड़ी भगवान की वाणी इसप्रकार निकलती है सुबह में, वहाँ तो बंद हो जाती है छह घड़ी में। आहाहा ! सुनने की तृष्णा (प्यास) जो है वह तो ज्यों के त्यों खड़ी रही। आहाहा ! कठिन काम है। आक बन बन के मृगतृष्णा जैसा विषय... (अर्थात) यह निमित्त का संयोग तो मृगतृष्णा जैसा है। आहाहा ! यह पंचेन्द्रिय को विषय सुनना, देखना, रस चखना, गंध स्पर्श... आहाहा ! आहाहाहाहा !

देखो न कल बात नहीं हुयी थी, शादी के समय लड़के का हार्टफैल, हृदय बैठ गया। आहाहा ! शादी पती-पत्नी दोनों बैठे ब्राह्मण मंत्र जपते थे जपते जपते तो वह उड़ गया (मर गया) हृदय बैठ गया, वरराजा का हृदय बैठ गया। - ऐसा लिखा है। `शादी के मण्डप में वरराजा का हृदय बैठ गया' आहाहा ! - ऐसा लिखा है अंदर हों बड़े अक्षरों में। आहाहा ! कितना उत्साह होगा ? आहाहा ! भोग की तृष्णा, स्त्री मिलने की भावना, लोभ और बहुत सामग्री में अब अपन लाभ लेंगे। आहाहा !

यह मृगतृष्णा जैसा विषयग्राम... यह तो स्थूल विषय कहा है। परंतु पांचों इन्द्रियों का जो विषय है... भगवान को सुनना देखना यह सब विषय है। (भगवान स्वयं इन्द्रिय के विषय है) इन्द्रिय है न इन्द्रिय। वह विषय है, वह इन्द्रियों का विषय है। आहाहा ! मृगजल जैसा, आहाहा यह मंदिर यह करोडो रूपयों का मंदिर ऐसे जलहल-जलहल ज्योति हो उसमें बिजली लगे, क्षणभंगुर, नाश होजाये, `परमात्म प्रकाश' में कहा है

यह सभी तीर्थस्थल, मंदिर, सभी कालरूपी अग्नि का ईंधन हैं, कालरूपी अग्नि की लकड़ी हैं यह। आहाहा ! बापू यह चीज कैसे रहेगी तथा कहाँ रहेगी देखो ! आहाहा !

एक क्षण में जल गया न ? घाटकोपरमें सवालाख का मण्डप, व्याख्यान चलता था, पांच-पांच छह-छह हजार व्यक्ति, देखो ठीक समय पर आया आधा घण्टा देरी हुयी (व्याख्यान) तीन बजे शुरू करना था २$^{१}/_{२}$ बजे आग लगी। पूरा मण्डप समाप्त घाटकोपर का। धू धू धू धू अग्नि लगी। आहाहा ! तीन दिन बंद रखना पड़ा तीन दिन बाद दूसरे जगह सर्वोदय में। आहाहा ! नाशवान चीज में स्थायीपना देखेगा तो किस प्रकार स्थाई रहेगा ? कब वह पलट कर राख होगा... आहाहा ! शरीर पलट कर कब यह राख होगी, मुरदा कब बनेगा ? आहाहा ! (मृतक कलेवर) मृतक कलेवर में अमृत सागर मुर्छाया। आहाहा ! ऐसी बाहर की तृष्णा के मृगजल जैसी। आहाहा ! विषय ग्राम, ग्राम समझे न ? ग्राम अर्थात विषयों का समूह पांचों (इन्द्रियों) का समूह रूप, रस, गंध, स्पर्श (शब्द)।

दूसरा एक बार - ऐसा सुना था कि दुल्हा-दुल्हन शादी करने बैठे थे, वहाँ नीचे से सर्प आया, काटा तो वर मर गया वही के वही। यह तो नाशवान वस्तु है। बापू यह तो ठीक परंतु यहाँ तो शुभ भाव को नाशवान गिनकर... आहाहा ! है ? विषय समूह ने घेरा डाला है। क्या कहते हैं यह, क्षणभर में शब्द और क्षण भर में रूप तथा क्षण भर में रंग तथा क्षण में स्पर्श ने घेरा डाला है इसमें। आहाहा ! अंतरंग स्वरूप का देखना छोड़कर पांचों इन्द्रियों के विषय में घेरा डाला है। एक के बाद एक, एक के बाद एक लगातार घेरा डाला है। आहाहा !

क्या समझाते हैं प्रभु, आहाहा ! अल्प भाषा में कितना भरा है। आहाहा ! मृगजल जैसा विषय ग्राम अर्थात समूह है न अंदर ? इन्द्रिय विषयों का समूह। शास्त्रों को पढ़ना, उसे भी विषय कहते हैं। आहाहा ! इस विषय में घेरा डालता है। प्रभु मिथ्यात्व के प्रभाव से तृष्णा फूटी है इसलिये विषयग्राम में, बाहर के विषयग्राम में घेरा डालता है। आहाहा ! एक के बाद एक के बाद एक ग्रहण करता है, जैसे रुई की पोनी पूरी हो तब दूसरी, दूसरी पूरी हो तब तीसरी इसप्रकार एक लक्ष्यमें से छूटे तब दूसरे तथा तीसरा। आहाहा ! पांचों इन्द्रियों के विषय में घेरा डाला है इसने, भगवान के पास जाता नहीं। जहाँ प्रभु ज्ञायक देव विराजते हैं। आहाहा !

और आपस में आचार्यत्व भी करते हैं। आहाहा ! देखा ? एक दूसरे को समझाते है एवं सामनेवाला भी स्वीकार करता है। आहाहा ! शुभ भाव करना चाहिए भगवान की भक्ति करना चाहिए, भगवान का स्मरण करना चाहिए पंचेन्द्रिय के विषयों को छोड़ना चाहिए तभी आत्मा को लाभ होगा... तब सामनेवाला स्वीकृत करे ! इस प्रकार

परस्पर मिथ्यात्व का आचार्यपना करते हैं। जो पांचों इन्द्रियों के माध्यम से शुभ भाव होता है वही ठीक है। क्या एकदम आत्मा में जा सकते है क्या ? आत्मा का निर्विकल्प अनुभव ऐसे ही होता होगा क्या ? पहले बाहर (पाप) से छोड़ें व्यवहार (पुण्य) में आये तब फिर विश्राम मिले तो अंदर ठहर सके।

रजनीश है न रजनीश वह इस प्रकार कहता है न ! पहले खूब हँसों, खूब हँसों, हँसों फिर निर्विकल्प हो जाओगे। आहाहा ! जगत को बरबाद कर दिया (लूट लिया, ठग लिया) रजनीश है न रजनीश (शिखाता है) पहले खूब रोओ, खूब रोओ एक बार खूब रोओ, रोकर फिर रोना बंद कर दो तौ निर्विकल्प हो जावोगे। अति अन्याय कर रहा है और उसे सुननेवाले सौ सौ रूपया देकर सुनते हैं। ऐसे भी व्यक्ति है अभी, आहाहा ! जैनों का पहले प्रोफेसर था, तारणपंथ में फोटो में आया था कि एक व्यक्ति को कुछ इस प्रकार दबाता, जिससे कुछ होजाता, आहाहा ! मुंह फट गया था उसका - ऐसा अखबार में आया है। - ऐसा कहताथा कि इसे फिर अंदर में निर्विकल्पता हो जाती। आहाहा ! (श्रोता :- मानसिक स्थिरता हो जाती अर्थात निर्विकल्पता मानते) अरे ! इससे हो ? यह तो दुःखरूप है। खूब रो... लो फिर विकल्प टूट जायेगा बाद में निर्विकल्प हो जायेगा। आहाहा ! यह तो ज्यादा विकल्प करो... जिस जाति का विकल्प आये उसे तोड़ डालो, लगा दिया काम में। आहाहा ! भोगानंद में भी ब्रह्मानंद है, भोग में भी सुख मिलता है न ? यह आनंद आत्मा का है, अरे ! प्रभु तुम क्या करते हो यह ? अरे ! उसे सुननेवाले मिलते और माननेवाले मिलते हैं। आहाहा !

यहाँ तो संप्रदाय में रहकर भी परस्पर आचार्यत्व भी करते हैं। अर्थात दूसरों को कह कर, उसप्रकार अंगीकार कराते हैं करो इस प्रकार मंदिर बनवाओ, लाईट करो, तुम्हारा इससे कल्याण होगा। अरे प्रभु ! आहाहा ! यह तो एक दूसरे का मिथ्यात्व का पोषण करते हैं। आहाहा ! आपस में एक दूसरे को एक प्रेरणा दे, दूसरा स्वीकृत करे। वह हां कहे, वह कहे बराबर यह बात तुमको बेठी बहुत अच्छी बात है, प्रमाण वचन कहते हैं। आहाहा ! परस्पर आचार्यपना भी करते हैं आचार्यपना अर्थात महानता बतलाते हैं। इस प्रकार हम ठीक कहते हैं। हम ठीक कहते हैं शास्त्रों में - ऐसा आता है। आहाहा ! (समयसार में) आया है न ? विद्वतजन भूतार्थतज व्यवहार में वर्तन करे। तब उस समय बड़े-बड़े पण्डित निश्चय छोड़कर व्यवहार में प्रर्वतन करते थे। कुन्दकुन्दाचार्य के समय में। आहाहा !

विद्वत्जन भूतार्थ तज, अरे ! विद्वानों तुमने पढ़-पढ़ कर क्या पढ़ा ? अंदर जो वस्तु है वहाँ जाना चाहिए, उसका आश्रय छोड़ कर व्यवहार में वर्तन करे परंतु

यह तो संसार में परिभ्रमण करना है। आहाहाहा ! पढ़े-लिखे भी व्यवहाररूप प्रवृत्ति कर ते है। आहाहा ! परस्पर आचार्यपना भी करते हैं, एक दूसरे को अंगीकार कराते है।

इसप्रकार काम भोग की कथा तो सबको सुलभ है। आहाहा ! है न पहले पद में `**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा**' इसका अर्थ किया। आहाहा !

इसप्रकार जगत को ऐसी बात तो सुलभ है बापू ! जहाँ हो वहाँ साधु नाम धरावे, आचार्य नाम-धरावे, त्यागी नाम धरावे, ब्रह्मचारी नाम धरावे, सभी जगह उपदेश - ऐसा चलता है तथा सामनेवाले हाँ कहकर स्वीकृति देते हैं कि बराबर है यह। वह बात करते हैं कि अंदर में जाओ अंदर में क्या है और कहा जाना, इसकी अपेक्षा यह करने का ख्याल आता है न। परमार्थवचनिका में आता है आगम का व्यवहार समझ में आता है। अध्यात्म के व्यवहार की खबर पड़ती नहीं, अध्यात्म का व्यवहार यह कि अंदर आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शनज्ञान प्रगट करना यह, (अध्यात्म) का व्यवहार है इसलिये राग का करना और राग का भोगना यह कहानी अर्थात भाव तो सबको सुलभ है यह सुलभ हो चुका है। आहाहा !

परंतु फिर दूसरी बात करेंगे ! (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. १७ गाथा-४ ता. २५-६-७८ रविवार जेठ वदि-५ सं.२५०४

समयसार चौथी गाथा। पहले तो यह कहा कि अनंत बार इस जीव ने राग करना अर्थात इच्छा करना और इच्छा को भोगना, यह (बात) अनंत बार सुनी है, आत्मा के स्वभाव के अलावा... जिसका स्वरूप सहजात्म स्वरूप चैतन्यस्वरूप जिसका स्वभाव है ऐसे आत्मा को भूलकर पर की इच्छा करके और उसे भोगना... राग को करना एवं राग को भोगना - ऐसा तो अनंत बार किया है, अनंतबार सुना है, यह बात अनंतबार परिचय में आ गई, और अनुभव में भी यह आ गयी है। राग का अनुभव... परंतु आत्मा राग रहित है उसकी बात तो इसने सुनी नहीं, यह बात कहते हैं।

- ऐसा प्राप्त होने पर भी `निर्मल भेदज्ञानरूप प्रकाश से... यहाँ तक आया था। यह प्रभु आत्मा कैसा है ? किसप्रकार जानने में आये ? कैसा है यह बाद में कहेंगे। किसप्रकार जानने में आये यह प्रथम कहेंगे। आहाहा ! निर्मल भेदज्ञानप्रकाश, यह विकल्प जो सूक्ष्म में सूक्ष्मराग... विकल्प होता है, दया, दान, भक्ति व्रत, तप आदि

अथवा गुण-गुणी के भेद का जो राग होता है, वह भी विकल्प है उससे भिन्न निर्मल भेदज्ञान अर्थात राग से भिन्न है ऐसी धारणा तो इसने अनंतबार की है। शास्त्र पढ़े... उसमें भी यह बात आयी है। आहाहा ! परंतु निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश... यह राग जो पर तरफ की दशा जो वृत्ति पर तरफ की उठती है, उससे भिन्न करना, यह राग से भिन्न भगवान स्वरूप चैतन्य चमत्कारी सहजात्म स्वरूप, उसे निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश... आहाहा ! उसमें पर का कोई प्रकाश कि पर का जानपना काम करता नहीं वहाँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश, राग से भिन्न और अंतरंग में चैतन्यस्वरूप, चैतन्य के प्रकाश से भरपूर प्रभु... सहजात्म स्वरूप अनंत आनंद स्वरूप (निजात्मा) उसे निर्मल भेदज्ञान रूपी प्रकाश से वह स्पष्ट भिन्न देखने में आता है। आहाहा ! जैसे यह जाननेवाला राग को, शरीर को, वाणी को जानता है, परंतु यह जाननेवाला राग से भिन्न निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखने में आता है प्रत्यक्ष भिन्न देखने में आता है। ओहोहो ! - ऐसा जो चैतन्यप्रकाश की मूर्ति प्रभु यह निर्मल भेदज्ञान... पर से लक्ष्य छोड़कर पर को भी मैं जाननेवाला हूँ यह भी लक्ष्य छोड़कर, आहाहा ! निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश... जिस विकल्प से पर का जानना है उसे भी छोड़ कर, उसे भी निर्मल भेदज्ञान के प्रकाश से स्पष्ट प्रत्यक्ष भिन्न देखने में आता है यह आनंद स्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनंद के वेदन में भिन्न दिखता है। आहाहाहाहा !

पर से पृथक, भिन्न, अंदर जो दया, दान के विकल्प उठते हैं, उससे भी भिन्न ऐसा जो निर्मल भेदज्ञान... जो धारणा ज्ञान किया है वह निर्मल भेदज्ञान नहीं है। आहाहा ! शास्त्र (बढ़कर) धारणा की, सुना कि आत्मा भिन्न है - यह निर्मल भेदज्ञान नहीं है। इसने राग मिश्रति ज्ञान को भेदज्ञान माना है, परन्तु इसे यह जिसने भेदज्ञान को जाना है (वह) राग मिश्रित (ज्ञान) को वास्तविक भेदज्ञान नहीं कहते। आहाहाहा ! निर्मल भेदज्ञानरूप, निर्मल भेदज्ञानरूप, प्रकाश से, उसके प्रकाश से। आहाहा ! परलक्षी ज्ञान से भी भिन्न किया, संक्षेप में बहुत समा दिया है। आत्मा कैसे जानने में आता है ? अनंतकाल से जाना नहीं, यह वस्तु अंदर चैतन्य, चमत्कार से भरा हुआ पदार्थ, परमानंद की गाँठ, परमानंद स्वभाव जिसका पूरा भरा है। आहाहा ! वस्तु है वह स्वयं दुःख रूप न हो सके, दुःख तो विकार है। इसलिये तो अंदर में अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप में आत्मा विराजमान है। प्रत्येक (आत्मा) आहाहा !

उसे भेदज्ञानरूपी निर्मलप्रकाश (ज्ञान) से, भिन्न करनेरूप भेदज्ञानरूपी निर्मलप्रकाश से... स्पष्ट प्रगट भिन्न देखने में आता है। आहाहाहा ! - ऐसा मात्र भिन्न आत्मा का एकत्वपना ही... - ऐसा (है) मात्र यही। आहाहा ! यह भिन्न आत्मा का एकत्वपना,

राग से भिन्न, पर को जाननेरूप लक्ष्य से भी भिन्न, आहाहा ! कहते हैं ऐसे भिन्न आत्मा का भिन्नपना (करना) यही मात्र एक शेष रह गया। आहाहाहा ! अन्य तो बहुत किया (बहुत) सुना, (बहुत) धारण किया... आहाहा ! मात्र इस भिन्न आत्मा का... आहाहा ! अकेला निर्मल आनंद प्रभु अंदर है, चैतन्यसूर्य, चैतन्य के प्रकाश का पुंज प्रभु अंदर है, भाई ! तुझे खबर नहीं। - ऐसा मात्र, इस भिन्न आत्मा का एकपना, यह भगवान आत्मा इसके पर से भिन्नपना, जो सदाप्रगटरूप अंदर में प्रकाशमान है - इसका यह अर्थ किया। तो अब है कैसा अंतर में प्रभु ? आहाहा ! जो सदा प्रगटरूप, व्यक्तरूप, जो अंतर में, चैतन्यस्वरूप अंतर में प्रगटरूप प्रकाशमान ज्योति है। आहाहा !

यह चैतन्य के प्रकाश की ज्योति है, अन्तरंग में यह चीज भरी है। आहाहा ! प्रगटरूप से अंदर में सदा, हमेश प्रगटरूप अंतर में, भगवान आत्मा का त्रिकाल स्वरूप सदा अंतर में, भगवान आत्मा का त्रिकाल स्वरूप सदा अंतर में प्रकाशमान है... प्रकाशमान चैतन्य प्रकाश ज्योति है। जैसे चन्द्रप्रकाश शीतलता का पिण्ड है इसीप्रकार यह आत्मा शीतल प्रकाश, शीतल अर्थात अकषाय; अकषाय स्वभाव का पिण्ड है, अब ऐसी बातें, अंतरंग में प्रकाश है, अंदर में प्रकाशमान कहते हैं, और भेदविज्ञान से प्रत्यक्ष जानने में आये - ऐसा है, इसप्रकार दो बातें कहीं है। अंदर अंतरंग में चैतन्य चकचकाट वस्तु है, तत्त्व है अस्ति है, तो यह चैतन्य के आनंद के चमत्कार से प्रकाशमान प्रभु अंदर में विराजता है। आहाहा ! वह भेदविज्ञान की निर्मल ज्योति से स्पष्ट जानने में आता है, परंतु इसने उसे किसी दिन जाना नहीं। आहाहा ! है ?

`तो भी कषायचक्र के साथ'... शुभ और अशुभ राग उसके साथ, एकरूप जैसा करने में आता होने से। आहाहा ! एक होता नहीं। चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु, यह पुण्य-पाप, शुभाशुभ राग-कषाय, यह दया, दान व्रत भक्ति, पूजा आदि का राग, यह (सभी) राग कषाय है। आहाहा ! उसके साथ एकरूप जैसा करने में आता हुआ, एकरूप जैसा करने में आता हुआ होने से, कषाय चक्र... चक्र क्यों कहा ? पुण्य-पाप शुभ और अशुभ यह कषाय चक्र, वृत्ति उठती है एक के बाद एक शुभ-अशुभ शुभ-अशुभ, आहाहा ! ऐसे कषाय चक्र के साथ एकरूप जैसा करने में आता होने से माना जाता होने से यहाँ - ऐसा कहते हैं, तो प्रकाशमान ज्योति प्रगट भिन्न, परंतु राग के कषाय के कण के साथ एकरूप जैसा, एक रूप हुआ नहीं, एकरूप होता नहीं परंतु एकरूप जैसा करने में आया, विपरीत पुरुषार्थ से, आहाहाहा ! बापू यह अलौकिक बातें हैं।

अतीन्द्रिय आनंद का कंद प्रभु... सदा अंतर में प्रगट प्रकाशमान है और वह वस्तु निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट देखने में आये - ऐसा है... आहाहा ! बहुत

कठिन काम, व्यक्तियों को अभ्यास नहीं। पूरी मूलवस्तु अंतर में क्या है ? - ऐसा होनेपर भी, अंतर में प्रकाशमान ज्योति और भेदविज्ञान से स्पष्ट प्रकाशमान, स्पष्टदेखने में आये - ऐसा होनेपर भी। आहाहा ! कषाय अर्थात शुभ-अशुभभाव उसके ऊपर दृष्टि (एकत्व) होने से, जाने कि मैं कषाय रागवाला हूँ - ऐसे कषायचक्र के भाव के साथ एकरूप जैसा करने में आया (क्या कहा) एकरूप जैसा, एकरूप हुआ नहीं परंतु उसकी मान्यता में (एकरूप माना)। वस्तु स्थिति यह है अंतरंग में प्रकाशमान (आत्मा) उसकी खबर न मिले। इसप्रकार भेदविज्ञान से स्पष्ट देखने में आता है - ऐसा उपाय नहीं करे। आहाहा !

इसलिये राग के चक्र के साथ... पुण्य और पाप शुभाशुभ भाव - ऐसे कषाय चक्र के साथ पुण्य और पाप शुभाशुभ भाव ऐसे कषाय चक्र के समूह के साथ, आहाहा ! एकरूप जैसा करने पर, क्यों नहीं जानने में आता ? भेदज्ञान से जानने में आये - ऐसा है, अंदर में प्रकाशमान है, फिर भी क्यों जानने में नहीं आता क्योंकि कषाय के साथ एकरूप जैसा माना है उसने। आहाहा ! शुभ और अशुभराग वह कषाय है। कषाय अर्थात् कष अर्थात् संसार तथा आय अर्थात लाभ जिससे परिभ्रमण का लाभ मिले। आहाहा ! उसके साथ एकरूप एकत्वपना किया है - ऐसा नहीं। इसने एक जैसा माना है। आहाहाहा !

अन्दर में विराजमान चैतन्य ज्योति स्वरूप भगवान आत्मा निर्मल भेदज्ञान द्वारा रागादि से भिन्न देखा जाए - ऐसी वस्तु है; तो भी कषाय/राग के साथ एक जैसा किया (माना) गया है। जाने कि मैं ओर राग एक हूँ - ऐसा माना है। अरे ! (यह बात) कहीं सुनने नहीं मिलती। आहाहा ! यही गाथा तो चल रही है कि इसने यह बात सुनी नहीं। सुनी होती तो अन्दर प्रयोग किया होता। आहाहा !

एकरूप जैसा किया जाता होने से... आहाहा ! गजब भाषा है न ! द्रव्य चैतना ज्योति स्वरूप वस्तु है। वह तो चैतन्य के सहजात्मस्वरूप प्रकाश और आनन्द की मूर्ति है। इसे राग के साथ कभी एकत्व नहीं होता। भले शुभरागरूप विकल्प हो, (परन्तु) अन्तरंग में सदा प्रकाशमान ज्योति स्वरूप आत्मा और राग के बीच में साँध है, संधि है, बीच में दरार है... ये एक नहीं हुए आहाहा ! ऐसी बातें है।

यह किस जाति का धर्म... अरे बापू ! आहाहा ! वर को छोड़कर बारात इकट्ठी कर ली। वर जैसे मूल मुख्य है। इसीप्रकार आत्मा मुख्य चीज कितनी और कैसी है, उसके ज्ञान और भान बिना इसे क्रिया-काण्ड में लगा दिया है। आहाहा ! यह दूल्हा बिना की बारात है। आहाहा ! (श्रोता :- यह बारात कहलाये ?) लोग कहे वैसे तो आदमियों की भीड़ कहलाये, बारात तो जब कहलाये वर हो साथ में, दूल्हा

दूल्हा कहते हैं हिन्दी में, दूल्हा साथ में हो (वर) तो उसे बारात कहते है। इसीप्रकार राग से भिन्न चैतन्य का ज्ञान हो तब फिर राग आये अवश्य, तो उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा ! अब - ऐसा सूक्ष्म उपदेश... आहाहा !

- ऐसा होने से `अत्यंत तिरोभाव को प्राप्त हुआ है'। वस्तु तो वस्तु है, परंतु राग और कषाय तथा पुण्य के साथ एकत्व किया जाने से आहाहा ! अत्यंत तिरोभाव (अर्थात) इस जीव को ढक दिया है। जिसने राग और कषाय के साथ, एकपना किया (माना) है उसे यह (ज्ञायक) ढक गया है। वस्तु तो वस्तु है अंदर, ज्ञायक चैतन्य ज्योति, परंतु राग और कषाय के साथ एकत्वपना करने से उसे यह ज्ञायकपना लक्ष्य में आता नहीं, उसे ढक गया है। समझ में आया ? ज्ञायकपनेरूप जो वस्तु है वह ढकती नहीं इसीप्रकार प्रगट नहीं होती, वह तो है सो है। परंतु अज्ञानी को यह स्वरूप कैसा है उसका पता नहीं, इसलिये दया, दानरूप विकल्प की वृत्ति के साथ में एकपना मानकर रुक गया है, उसे यह ज्ञायक भाव ढक गया है। उसे यह ज्ञायक भाव दृष्टि में आता नहीं। आहाहाहा ! ऐसी बात है।

फिर अत्यंत तिरोभाव को प्राप्त हुआ। आहाहाहा ! एकरूप जैसा करने में आता होने से यह कषाय का भाव है, शुभ-अशुभ उसके साथ... मूल में तो यह कहना है कि पर्याय बुद्धि होने से... आहाहा ! द्रव्य स्वभाव उसे अत्यंत ढक गया है। आहाहा ! समझ में आया ? पुस्तक है न सामने किसका अर्थ चलता है यह ? आहाहा ! सूक्ष्मबात है भाई ! आहाहा ! अभी तो लोग संप्रदाय का नाम सुनकर भड़कते हैं। आहाहा ! यह तो दिगम्बर सम्प्रदाय है, यह तो सनातन दिगम्बर है, दूसरा यह सभी.... अरे भाई सुनो न बापू ! इसे देखकर भड़कते है भागते है, अरेरे इसमें - ऐसा क्या ?

अंदर विकल्प के साथ एक जैसा करने (मानने) में आया होने से... अर्थात स्वभाव के साथ विभाव एकरूप है - ऐसा मानने में आया होने से... आहाहा ! - ऐसा ज्ञायक भाव भगवान सहजात्म स्वरूप, चैतन्य के प्रकाश का आनंद का पूर यह उसकी दृष्टि में ढ़क गया है। प्रगट प्रकाशमान है यह तो कहा न ? आहाहाहा ! मार्ग सूक्ष्म प्रभु। तुम महान और मार्ग सूक्ष्म। आहाहा ! कहते हैं तुम्हारी महानता की क्या बात करना, तुम राग से भिन्न करो तब भेदज्ञान से जानने में आये - ऐसी तुम्हारी महानता है। कहीं राग से गुरु से (एवं) केवली (परमात्मा) से जानने में आये, शास्त्रों के ज्ञान से जानने में आये - ऐसा नहीं प्रभु ! आहाहाहा ! तुम्हारी महानता बड़ी है प्रभु ! आहाहा ! कि तुम स्वयं के ऊपर लक्ष्य करके राग से भिन्न करे तो तुम जानने में आओ। तुम्हारी महानता को दृष्टि में लेकर और राग से भिन्न करे तब तुम जानने में आओ - ऐसे है आहाहा ! ऐसी वस्तु है।

`तिरोभूत हुआ है, ढक रहा है आहा ! वह स्वयं में अनात्मज्ञपना होने से'... स्वयं ने राग (के साथ) एकता मानी है, इसलिये वह अनात्मज्ञपना है। आहाहा ! अनात्मज्ञ, अनात्मज्ञ जो आत्मा नहीं उसे अपना मान कर पकड़ रखा है। अहाहाहा ! अपने में अनात्मज्ञ, राग है वह अनात्म है। आहाहा ! उसके साध एकपना मान कर अपने में अनात्मज्ञपना होने से, `स्वयं आत्मा को जाननेवाला नहीं होने से,' आहाहा ! पर्याय में जो राग का अंश आया चाहे शुभ आचरण का हो, उसका आत्मा के साथ एकपना माना इसलिये उसे... आहाहा ! है ? आहाहा ! अनात्मज्ञपना होने से जानने में नहीं आता - ऐसा कहते हैं। राग की एकता में अनात्मज्ञपना होने से, **अंदर आत्मा प्रकाशमान ज्योति विद्यमान होने पर भी उसने उसे जाना नहीं ? आहाहा** ! स्वयं आत्मा को नहीं जानता होने से, एक बात, दूसरे आत्मा को जाननेवालों की संगति, सेवा नहीं की होने से, तब फिर क्या (हो) भला ? ***वैसे तो अनंत बार तीर्थंकरों के समवसरण में गया, अनंत बार सच्चे संतो (गुरुओं) का शिष्य हुआ, उनका परिचय किया है, परंतु यहाँ कहते हैं कि आत्मा को जाननेवालों की सेवा नहीं की - ऐसा कहा है न ?*** तब आत्मा जो जाननेवाला है, आत्मा किसे कहना ? कि रागरहित जो आत्मा है - ऐसा जिसने जाना है, उसे आत्मा कहना, इसप्रकार आत्मा की तुमने सेवा की नहीं। उन आत्माओं ने तो आत्मा बताया है। आहाहाहा !

- ऐसा कहना है कि अनंत बार गुरु मिले, अनंत बार तीर्थंकर मिले समोशरण में गया, फिर भी अज्ञानी रहा, इसका मतलब ? कि जाननेवाले की आज्ञा क्या है ? जाननेवाले आत्मा की सेवा क्या है ? कि इसे जाननेवाले आत्माने - ऐसा कहा कि तुम्हारा आत्मा राग से भिन्न है - ऐसा देखो, भेदज्ञान से तुम्हें मिलेगा। ऐसी आज्ञा उनकी थी यह आज्ञा उसने मानी नहीं। इसलिये इसने गुरु की सेवा की नहीं - ऐसा कहा जाता है। ***गुरु कहीं शरीर नहीं कि उसकी सेवा करना, गुरु वाणी भी नहीं कि उस वाणी की सेवा करना। आहाहाहा ! गुरु तो वीतरागस्वरूप मूर्ति प्रभु है, उसकी सेवा नहीं की अर्थात कि उन्होंने जो कहा कि ? तुम्हारा स्वरूप वीतराग है और हमारे कहने का तात्पर्य भी वीतरागता प्रगट करना है, यह वीतराग (की) प्रगटता तुम्हारे वीतरागस्वरूप के आश्रय से होगी- ऐसा उन्होंने कहा - यह माना नहीं। समझ में आया ?***

प्रारंभ की गाथायें सभी सूक्ष्म है। बारह गाथाओं में तो मूल भूमिका है, फिर तेरह से उसी का विस्तार होता है। आहाहा ! अभी तो उसे क्या समझना क्या बात कहते हैं, यह समझना मुश्किल है, इसका मतबल यह हुआ कि आत्मा को जाननेवालों की सेवा करें तो कल्याण हो। परंतु सेवा की परिभाषा क्या ? गुरु की

सेवा अर्थात क्या ? गुरु अर्थात क्या ? वीतरागस्वरूपी प्रभु, वीतरागस्वरूपी गुरु, यह वीतरागस्वरूप को बतानेवाले ऐसे वीतरागस्वरूप को जाना नहीं अर्थात वीतराग की सेवा की नहीं। आहाहाहा ! ऐसी बात है।

(आत्मा को) जाननेवालों की सेवा नहीं की अर्थात ? जाननेवाले कौन ? जाननेवाला शरीर है ? जाननेवाला राग है ? आहाहा ! उसका जो ज्ञान और ज्ञातापना वही गुरु है; उनकी सेवा नहीं की, अर्थात उन्होंने ज्ञान स्वरूपी आत्मा को बताया - ऐसा उसने - ऐसा नहीं माना, किसी न किसी तरह राग और पर से लाभ होता है, ऐसी मान्यता में उसने गुरु की सेवा (नहीं की) अर्थात गुरु ने कहा वह माना नहीं। आहाहा ! कितना भर दिया है ? एक तो स्वयं अनात्मज्ञ है अर्थात राग को अपना मानकर, जो नहीं वह मानकर बैठा है इसलिये अनात्मज्ञ है और जिसने राग से भिन्न जाना है उसे यह राग से भिन्न करने को कहते हैं। वह उनकी आज्ञा है। आहाहा ! ***गुरु और देव की आज्ञा का निचोड़ वीतरागता है। वीतरागता उन्होंने बताई उसने वीतरागता प्रगट नहीं की, राग का आश्रय लेने से, जो वीतरागस्वरूप आत्मा उसका ज्ञान नहीं किया, अर्थात उसकी सेवा नहीं की- ऐसा कहा जाता है।*** आहाहाहा !

दूसरे आत्मा को जाननेवालों की संगति (अर्थात) सेवा नहीं करने से आहाहाहा ! है न ! `**परेषामात्मज्ञामनुपासनाच**' आहाहा ! सेवा नहीं कि - ऐसा है न ? उपासना अर्थात सेवा नहीं की सेवा का अर्थ स-ऐव उन्होंने जो कहा कि तुम्हारा स्वरूप वीतराग है और वह राग से भिन्न करके जानने में आये - ऐसा है। - ऐसा कहा कि ऐसी आज्ञा मानी नहीं। इसप्रकार इसने सेवा की नहीं - ऐसा कहा जाता है। ***सेवा अर्थात कहीं पकवान खिलाना तथा उनके पैर दबाना वह गुरु की सेवा है ? परंतु यह तो जड़ है माटी है, यह शरीर तो जड़ है। (क्या) इसको गुरु कहें ? वाणी है वह गुरु कहलाये ?*** आहाहा !

इसलिये इस कारण... एक तो स्वयं राग के सूक्ष्म विकल्पों को वे जाने, आत्मा के हों - ऐसा मानकर अनात्मज्ञरूप रहा और आत्मज्ञानियों के द्वारा कही हुये भावों को जाना नहीं। आहाहाहा ! शास्त्र बारह अंग (रूप) है, परंतु बारह अंग क्या कहते हैं, गुरु और केवली बारह अंगों में क्या कहते हैं ? कि वीतरागता। वीतरागता हो कैसे ? कि स्व के आश्रय से। ऐसी गुरु की आज्ञा थी उस प्रकार इसने नहीं किया। समझ में आया ? पहले कभी सुनने में नहीं आया। आहाहाहा ! इस कारण राग को एकरूप मानने से आत्मज्ञान शून्य रहा, आत्मज्ञान की आत्मज्ञानी करने की जो आज्ञा उसका तो सेवन किया नहीं।

`पहले कभी सुनने में नहीं आया' कभी सुनने में नहीं आया कि राग से भिन्न वस्तु है, वह वीतरागस्वरूप है और भिन्न करे तो वीतरागता प्रगट होगी, यह बात उसने कभी सुनी नहीं, आहाहाहा ! सुनने का फल आया नहीं, आहाहा ! इसलिये सुना नहीं। समझ में आया ? यह प्रभु अंदर राग के अंश से भी भिन्न प्रभु... वस्तु हो वह विकारी क्यों हो ? वस्तु में अल्पज्ञपना होजाये ऐसी वस्तु क्यों हो ? आहाहा ! वह तो पर्याय रूके और पर्याय में अल्पज्ञपना हों, वस्तु तो पूर्ण है। आहाहा !

चैतन्य चमत्काररूप समाधि से भरा हुआ भगवान, शान्त रस से भरा प्रभु, उसका ज्ञान नहीं किया, राग की एकता बुद्धि के कारण, है तो राग से भिन्न, तुम मानों तो भी भिन्न, नहीं मानों तो भी भिन्न। आहाहा ! और गुरु की आज्ञा अर्थात यह, गुरु स्वयं राग की आज्ञा करें नहीं, कारण कि राग की आज्ञा यह तो विकार की (आज्ञा) है। आहाहा ! यह प्रभु अंदर तो तुम्हारा स्वरूप वीतराग है, तुम सच्चिदानंद प्रभु हो। आहाहा ! चैतन्य की चमत्कारी ज्योति से भरपूर वीतराग मूर्ति तुम्हारा स्वरूप और उसके आश्रय से ही वीतरागता अर्थात धर्म होता है यह बात इसने ग्रहण की नहीं। इसलिये पूर्व में कभी सुना नहीं। आहाहाहा !

`नहीं पहले कभी सुनने में आया' एक तरफ कहे कि समोवशरण में अनंत बार गया, केवली के सामने भी कोरा रह गया। सर्वज्ञ परमात्मा विराजते हैं, महाविदेहक्षेत्र में तो सदा रहते हैं, मनुष्यक्षेत्र है हों, मनुष्य क्षेत्र (ढ़ाईद्वीप) में है, वहाँ अनंतबार जन्मा है, पुद्गल परावर्तन के अनंतो भव किये, सुनने अनंतबार गया है। तुमने सुना नहीं। सुनने का फल जो राग से भिन्न करना चाहिए वह हुआ नहीं, इसलिये तुमने सुना नहीं। आहाहाहा !

`पहले कभी परिचय में आया नहीं', सुनने में आया नहीं तो परिचय में कहाँ से आये ? राग बिना का हमारा प्रभु - ऐसा परिचय कब करे यह। आहाहाहा ! निर्विकल्प वस्तु है प्रभु, राग बिना की (आत्मवस्तु), उसका इसने परिचय किया नहीं क्योंकि सुनने में आया- ऐसा इसने सुना नहीं। - ऐसा इसने किया नहीं तो फिर परिचय में आया नहीं। आहाहा ! ना ही पहले कभी अनुभव में आया, राग से भिन्न प्रभु, क्योंकि राग है यह तो पुण्य (पाप) तत्त्व है, वह कहीं आत्मतत्त्व नहीं। आहाहा ! नौ तत्त्व हैं। इसलिये अजीव शरीर वाणी मिट्टी यह तो अजीव है पापरूप हिंसा, चोरी, झूठ के भाव यह पाप तत्त्व है, दया, दान, भक्ति आदि के परिणाम पुण्य तत्त्व हैं। प्रभु तो उससे भिन्न ज्ञायक तत्त्व है। आहाहाहा ! ***नौ तत्त्वों को जाने तो उसमें आत्मा ज्ञायकतत्त्व है - ऐसा आता है। यह आत्मा राग तत्त्व है - ऐसा नहीं आता वहाँ।*** आहाहाहा !

`इस कारण इसे अनुभव में आया नहीं, इसलिये भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं'। आहाहा राग से विकल्प से शुभभावरूप कषाय के अंश से भी भिन्न- ऐसा आत्मा इसे सुनने में आया नहीं, इसलिये सुलभ नहीं। यह बात कही सुलभ नहीं, यह सुनना सुलभ नहीं, परिचय में आना सुलभ नहीं तथा अनुभव में आना सुलभ नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा ! सुनना सुलभ नहीं। (श्रोता :- उपदेश भी कहीं कहीं है, ११ वीं गाथा में आता है) बाहर के आश्रय और पर की अपेक्षा से आत्मा को लाभ हो तब वह चीज जिससे लाभ माना वह वस्तु अपनी मानी। आहाहाहा ! जिससे लाभ हो वह वस्तु ही अपनी मानी राग से लाभ हो अथवा निमित्त से लाभ हो आहाहा ! तब निमित्त रूप परवस्तु को अपना माना, परंतु स्वयं ही स्वभाव है और उसी से लाभ हो स्वभाव से स्वभाव का लाभ होता है। आहाहा !

शुद्धोपयोग से आत्मा को लाभ होगा। आहाहा ! ऐसी बात इसने (सुनी नहीं) भिन्न आत्मा का एकत्वपना सुलभ नहीं है यह राग से नहीं (अपितु) शुद्धोपयोग से प्राप्त होगा - ऐसा इसका स्वरूप है - ऐसा भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं। यह बात कहीं सुलभ नहीं बापू ! सुनना भी सुलभ नहीं, परिचय सुलभ नहीं, अनुभव सुलभ नहीं, आहाहा ! इस इस कारण कहा है न ? राग से एकत्व करके बैठा, स्वयं अनात्मज्ञ है, आत्मज्ञानी की आज्ञा मानी नहीं, भेदज्ञान करके जानने में आये, ऐसी प्रकाशमान ज्योति है - ऐसा लक्ष्य में लिया नहीं, इसलिये यह बात सुलभ नहीं। आहाहाहा ! कहां जयंती भाई ? तुम रविवार को आये तो अच्छी बात आयी। आहा !

ओहोहो ! क्या गजब बात की है न ? कहते हैं प्रभु तुमने हमको सुना, यह भी विकल्प है और इससे लाभ माने तो तुमने आत्मा को कषाय जैसा किया। आहाहाहा ! तीनलोक के नाथ - ऐसा कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर संत - ऐसा कहते हैं... हमने कहा वह तुमने सुना नहीं। आहाहा ! हमारी सेवा तुमने की नहीं, अर्थात कि हमारे कहने का आशय राग से भिन्न करके आत्मा को जानना है, भेदज्ञान से जानने में आये - ऐसा आत्मा है - ऐसा जानों यह हम कहना चाहते हैं। आहाहा ! इस की जगह किसी भी तरह - `पर की अपेक्षा से, राग से निमित्त से भेद का ज्ञान करने से अभेद हो, व्यवहार से परमार्थ जानने आता है कि नहीं ? - ऐसा पाठ (शास्त्रो में) है कि नहीं ? वह तो - ऐसा कहते हैं कि उसके द्वारा (व्यवहार द्वारा) वह जानने में आता है।' परंतु वह जाननेवाला भेद का अनुसरण करता नहीं। कहनेवाला और जाननेवाला भेदों का अनुसरण करता नहीं। उसे जानने का कोई दूसरा उपाय नहीं, `ज्ञान वह आत्मा' ल्यो ! इतना भेद किये बिन किस तरह समझायें ? आहाहा !

अंदर में चैतन्य का प्रकाश है वह आत्मा, लो यह भी इतना भेद करके समझाया।

परंतु समझाया क्या ? आत्मा वहाँ दृष्टि करे तो भेद से समझाया - ऐसा निमित्त अपेक्षा कहा जाता है, फिर भी निमित्त का तथा भेद का अनुसरण करने लायक नहीं। आहाहाहा ! ऐसी बातें हैं। अरे ! चौराशी लाख का जन्ममरण कर करके अनंतकाल से (भ्रमा है) अनादि का है, यह कोई नया है ? तब कहां रहा ? इन भवों में रहा, चिंटी, कौआ, कुत्ता, समूर्च्छन जीव एवं नारकी पशु, ढोर में आहा ! मनुष्य हुआ तथा देव हुआ यह तो अल्पभव, वह बहुत भव। आहाहा ! देवों से भी निगोद के भव बहुत किये न ? आहाहा !

एक भी बात जो इसे यथार्थरूप में ख्याल में आ जाये तो दूसरे सभी भावों की सुलभता होजाये... कि अनादि से यह हूँ। जो है उसकी शुरूआत नहीं होती है, - उसकी शुरूआत क्या ? और है उसकी उत्पत्ती कैसी ? है वह रहा कहाँ ? परिभ्रमण में, प्रत्यक्ष दिखता है कि मनुष्यपना तुम्हें मिला है तो भव मिला तुम्हें। आहाहा ! और उस भव के कारणों का तुमने सेवन किया है ? तो यह भव आनेवाले भवों का कारण, यह भव अगले भव का कारण, उस प्रकार सभी, सेवन करके भव किये। आहाहा ! अंतर बात की - ऐसा कहा है न ! अंदर में कहा, तुम प्रकाशमान ज्योति हो, सदा अंतर में प्रगट प्रकाशमान ज्योति है, देखो ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। है न ?

सदा... त्रिकाल, प्रगटरूप... प्रत्यक्ष होसकता है अंतरंग में अन्तर में, ऐसे बाह्य में नहीं प्रकाशमान ज्योति पूर्ण है। आहाहा ! - ऐसा तो प्रभु है उसे भेदज्ञान की ज्योति द्वारा देखा और जाना नहीं। आहाहा ! यह बाह्य को जाननेवाला मैं, राग को करनेवाला मैं, परंतु बाहर का जाननेवाला नहीं परंतु जाननेवाले का जाननेवाला मैं आहा ! जिसकी भूमिका में जानना होता है उसको जाना वह मैं, पर को जाना वह (मैं) नहीं। आहाहा ! इसप्रकार पर से भिन्न आत्मा का पाना सुलभ नहीं। आहाहा ! दुर्लभ है भाई ! आया न ? `**एयतस्सुवलंभो णवरि न सुलहो विहत्तस्स**' पर से विभक्त... भिन्न, स्व से एकत्व यह सुलभ नहीं। आहाहा ! अरे भाई यह बात दुर्लभ है। इसलिये भिन्न आत्मा का एकपना सुलभ नहीं। आहाहा ! फिर सुलभ नहीं इसका अर्थ किया कि यह तो दुर्लभ है। भावार्थ इसप्रकार कि सुलभ नहीं अर्थात दुर्लभ है। आहाहा !

भावार्थ :- इस लोक में... प्रथम तो यह लोक सिद्ध किया, लोक जगत है। आहाहा ! `उसमें सभी जीवों ने संसाररूपी चक्र ऊपर चढ़कर' पुण्य-पाप के रागरूप चक्र में चढ़े... यहाँ यह संसाररूपी चक्र, कषाय भाव वह संसार है और पुण्य तथा पाप, पुण्य और पाप, शुभ एवं अशुभ शुभ और अशुभ, ऐसे चक्र में पढ़कर `पंचपरावर्तरूप

परिभ्रमण किया जगत के जितने संयोगी पदार्थ है उनके संयोग में आगया है, जगत का जितना क्षेत्र है, प्रत्येक क्षेत्र में जन्म-मरण कर चुका है, काल जितना है प्रत्येक काल में जन्म-मरण (रूप) परावर्तन कर चुका, भव जितना है उतने भव भी कर चुका है और भाव जितने है पुण्य-पाप के भाव अनंतबार कर चुका। आहाहाहा !

`वहाँ उसको मोहकर्म का उदयरूप पिशाच घानी की ज्वार में जोड़ता है' मोह कर्म का उदय अर्थात, मिथ्यात्वभाव, विपरीत मान्यता, आहाहा ! यह रागांश हमारा है -ऐसी मान्यता (वह) मिथ्यात्वरूपी पिशाच अर्थात् भूत घानी की ज्वार में फसाता है। आहाहा ! पशुओं को ज्वार में बांधते हैं न। आहाहा गले के ऊपर (गाड़ी तथा धानी) की ज्वार नहीं रखते है ? गले के ऊपर यहाँ कंधे पर ज्वार रखते है। ज्वारी ऊंची करें तो वह मुंह डालता है इसप्रकार यहाँ भी मिथ्यात्वरूपी पिशाच, विपरीत श्रद्धा - ऐसा भूत ज्वार में (कर्त्ता-भोक्तापने में) जोड़ता है। आहाहाहाहा ! संसारिक मजदूरी के काम में जुड़ गया यह, मिथ्यात्वरूपी भूत की भांति, यह करना तथा यह करना एवं यह कहना। आहाहा ! एवं मिथ्यात्वरूपी पिशाच ने जैसे ज्वारा ऊंचा किया तथा बैल उसमें मुंह फसांता है, इसीप्रकार यह फस जाता है। अनादि से। आहाहा ! पहले बैल जब छोटा होता है तब ज्वारा में लगाना हो तो बहुत सिखाना पड़ता है। जबरजस्ती लगाना पड़ता है, बैलगाड़ी के ज्वारों में नये बछड़ें को खींचना पड़े बड़ी मुश्किल से नीचे आता है, और फिर बाद में आदत हो जाती है, फिर लकड़ी का ज्वारा ऊंचा करे तब वह सिर नीचे डाल देता है। इसीप्रकार छोटे बच्चे को व्यापार धंधा में जबरजस्ती लगाना पड़ता है अन्यथा भाग जाये, (गादीपर) बैठे फिर तैयार होजाता है-अर्थात जुड़ गया अंदर फस गया। आहाहा !

जगत को सुधार दें, लोक को सुधारें, ऐसे काम में फिर ज्वारा में लग गया मिथ्यात्व के कारण। आहाहा ! जो कर सकता नहीं, किसे सुधारे ? किसे बिगाड़े ? आहाहा ! परंतु मिथ्यात्व श्रद्धारूपी भूत ने इसे उल्टे काम में जोड़ दिया, अरे, शुभ में जोड़ दिया और मिथ्यात्व के (कारण) यह करना पड़े यह करना चाहिए। आहाहा !

`इसलिये वह विषयों की तृष्णारूपी दाह से पीड़ित होता है' अर्थात क्या कहते हैं ? कि विपरीतश्रद्धा जो राग को अपना माना - ऐसा भूतने इसे ज्वारा में फंसा दिया है (कार्य में) क्योकि मिथ्यात्वमें से पर की तृष्णा उत्पन्न हुयी, सम्यग्दर्शन में अंदर की भावना आये, और मिथ्यात्व में भावना पर की आये। इसका करूं, इसका करूं, बच्चों का करूं, पत्नी का करूं। आहाहा ! तृष्णारूपी दाह, यह अनंतानुबंधी कषाय की रागरूपी तृष्णा मिथ्यात्वमें से निकलती, आहाहा ! दाह से पीड़ित होता है जलन होती अंदर, तो भी उसमें काम किया करे और ख्याल नहीं कि यह क्या

है ? विषय तृष्णा रूपी दाह से पीड़ित है। आहाहा ! और उस दाह का इलाज इन्द्रियों के रूपादिक विषयों को जानकर। आहाहा ! इच्छा हो उसका उपाय क्या? कि इसे भोग लूँ, इसे खालूँ इसे पी लूँ, और देख लूँ, यह उसका उपाय मानता है। आहाहाहा ! जलन का इलाज इन्द्रियों के रूपादिक रूप को देख लूँ तो मेरी इच्छा पूरी होजाय। इसप्रकार खूब खा लें, खूब भोग लें, तो फिर शांति होगी, आहाहा ! इसप्रकार कि भोगों में लग गया है। आहा ! तृष्णा में लग गया... स्वयं का संतोष आनंद स्वभाव उसमें न आकर राग के अंश में एकता करने से मिथ्यात्वमें से तृष्णा उत्पन्न होती है, उस तृष्णा ने पांच इन्द्रियों के विषय में लगा दिया, अतीन्द्रिय भगवान रह गया। आहाहा !

है न इन्द्रियों के रूपादिक विषयों को जानकर, उन पर दौड़ता है, उन पर दौड़ता है। आहाहाहा ! सभी इन्द्रियों के विषयों को देखता है, स्त्रियों का शरीर, अपना शरीर, लड्डू, दाल-भात तथा उसमें ऊंची ऊंची चीजें, मैशूरपाक को देखकर वहाँ ललचा जाता है, जुड़ जाता है, परंतु यह सभी धूल है। भगवान आनंद का नाथ अंदर है वहाँ न जाकर यह बाहर की तृष्णा में दौड़ता है। दौड़ता है एक के बाद एक-यह लूँ, यह लूँ, यह लूँ। एक राजा की कहानी आती है कि भोजन करते समय अच्छा-अच्छा रवाने को हो, उसी समय दासियों को नचवाये, उसी समय बाग-बगीचे में बैठे- ऐसा माने कि पांचों इन्द्रियों को एक साथ भोगूं- ऐसा। अपने हीराभाई कहते थे, हीराचन्द्रमास्टर। आता है न कहानियों में आता है खाने-पीने में मैसूर आदि खाये। फूल आदि के वृक्षों के पास बैठे, वह सूंघे, खाये, दासियों में जो सुन्दर स्त्रियाँ हों उसको नचाये अर्थात सभी एक साथ पांचों इन्द्रियों के विषय, आहाहा ! यह पर की तरफ झपट्टे मारे। अंतर तरफ झुकने की बात को सुनता नहीं। आहाहा ! जानकर पर (तरफ) दौड़ता है ! फिर विशेष... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. १८ गाथा-४ ता. २६-६-७८ सोमवार जेठ वदि-६ सं.२५०४

`**सभी परद्रव्यों से भिन्न एक चैतन्य चमत्कार मात्र**'... (भावार्थ की अंतिम चार पंक्ति) सभी शास्त्र पढ़ें, सुने भी (परन्तु) करना क्या ? उसका निचोड़ क्या ? परद्रव्यों से भिन्न एक चैतन्य चमत्कार स्वरूप वह भी अपना आत्मा, उसे (अपना) मानना यह (करना) `कथा का ज्ञान स्वयं को तो स्वयं से कभी हुआ नहीं', यह जो करना था,

वह तो ज्ञान कभी हुआ नहीं, `और जिसको वह ज्ञान हुआ था उसकी सेवा तो कभी की नही' अर्थात इनकी आज्ञा जो है वीतरागभाव की, स्वाश्रय लेने की - यह तो किया नहीं। इसलिये सेवा नहीं की - ऐसा कहा जाता है। आहाहा ! कारण कि अनंत ज्ञानियों का कहने का सार तो यह है। चैतन्य स्वरूप चमत्कारी पदार्थ प्रभु ! उसका अनुभव करना, उसकी दृष्टि करके उसका अनुभव करना - यह उनका कहने का सार और आज्ञा है। वह आज्ञा प्रमाण किया नहीं एवं सेवा की नहीं, इसप्रकार सेवा दूसरी क्या सेवा थी। आहाहा !

`इसलिये उसकी कथा न कभी सुनी... आहाहा ! न उसका परिचय किया, एवं न ही अनुभव हुआ, इसलिये उसकी प्राप्ति सुलभ नहीं'। मूल में तो यह है। फिर अर्थ किया कि सुलभ नहीं अर्थात दुलर्भ है इसप्रकार, शेष सभी सुलभ है, आहाहा ! परंतु यह एक सुलभ नहीं, दुर्लभ है। बाहर के सभी (विषय) सुलभ हैं, अनंतबार मिला, यह वाणी अनंतबार मिली, पैसा भी अनंतबार मिला, देवदर्शन अनंतबार हुआ, समवशरण में अनंतबार गया, यह कोई दुर्लभ नहीं। आहाहा ! सुलभ नहीं तो एक यह, चैतन्य चमत्कारी वस्तु जो अंदर है, भले उसका कद शरीर प्रमाण हो, और बाहर में भले पुण्य और पाप की विकल्पवाली दशा दिखे, परंतु वस्तु तो उससे भिन्न है। आहाहा ! यह पुण्य और पाप के विकल्प, राग, उससे भी भिन्न, यह सभी शास्त्रों में (कहा) एवं ज्ञानियों को कहना तो यह है उसका अनुभव करो। उससे तुम्हारा जन्म-मरण का अंत आयेगा। आहाहा !

अब आचार्य कहते हैं... है न ऊपर `अतएव एवैतदुपदर्श्यते' इसलिये ही जीवों को वह भिन्न आत्मा का एकत्व हम दिखलाते है भगवान आत्मा राग से भिन्न और स्वरूप से अभिन्न ऐसी चीज दर्शाते हैं, कारण कि सुनकर करना तो यह है। अतः यह हम दिखायेंगे। (अब) पांचवी गाथा।

गाथा - ५

अत एवैतदुपदर्श्यते -

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं।।५।।

तमेकत्वविभक्तं दर्शयेऽहमात्मनः स्वविभवेन।
यदि दर्शयेयं प्रमाणं स्खलेयं छलं न गृहीतव्यम्।।५।।

अब आचार्य कहते हैं कि इसीलिये जीवों को उस भिन्न आत्मा का एकत्व बतलाते हैं :-

दर्शाउँ एक विभक्तको, आत्मातने निज विभवसे।
दर्शाउँ तो करना प्रमाण, न छल ग्रहो स्खलना बने।।५।।

गाथार्थ :- [तं] उस [एकत्वविभक्तं] एकत्वविभक्त आत्मा को [अहं] मैं [आत्मनः] आत्मा के [स्वविभवेन] निज वैभव से [दर्शये] दिखाता हूँ; [यदि] यदि मैं [दर्शयेयं] दिखाऊँ तो [प्रमाण] प्रमाण (स्वीकार) करना, [स्खलेयं] और यदि कहीं चूक जाऊँ तो [छलं] छल [न] नहीं [गृहीतव्यं] ग्रहण करना।

टीका :- आचार्य कहते हैं कि जो कुछ मेरे आत्मा का निजवैभव है, उस सबसे मैं इस एकत्व-विभक्त आत्मा को दिखाऊँगा- ऐसा मैंने व्यवसाय (उद्यम, निर्णय) किया है। मेरे आत्मा का वह निज वैभव इस लोक में प्रगट समस्त वस्तुओं का प्रकाशक है, और `स्यात्' पद की मुद्रावाला जो शब्दब्रह्म-अर्हन्त का परमागम है, उसकी उपासना से उसका जन्म हुआ है। (`स्यात्' का अर्थ `कथंचित्' है अर्थात किसी प्रकार से किसी अपेक्षा से कहना। परमागम को शब्दब्रह्म कहने का कारण यह है कि-अर्हंत के परमागम में सामान्य धर्मों के-वचनगोचर समस्त धर्मों के नाम आते हैं और वचन से अगोचर जो विशेषधर्म हैं उनका अनुमान कराया जाता है; इसप्रकार वह सर्व वस्तुओं का प्रकाशक है, इसलिये उसे सर्वव्यापी कहा जाता है, और इसीलिये उसे शब्दब्रह्म कहते हैं।) समस्त विपक्ष-अन्यवादियों के द्वारा गृहीत

सर्वथा एकान्तरूप नयपक्ष के निराकरण में समर्थ अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति के अवलम्बन से उस निज वैभव का जन्म हुआ है और निर्मल विज्ञानघन आत्मा में अन्तर्निमग्न (अन्तर्लीन) परमगुरु-सर्वज्ञदेव और अपरगुरु-गणधरादिक से लेकर हमारे गुरुपर्यंत,- उनके प्रसादरूप से दिया गया जो शुद्धात्मा तत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश तथा पूर्वाचार्यों के अनुसार जो उपदेश है उससे निज वैभव का जन्म हुआ है। निरंतर झरता हुआ-स्वाद में आता हुआ जो सुन्दर आनंद है, उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुरसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन से निज वैभव का जन्म हुआ है। यों जिस जिस प्रकार से मेरे ज्ञान का वैभव है उस समस्त वैभव से दिखाता हूँ। मैं जो यह दिखाऊँ तो उसे स्वयमेव अपने अनुभव-प्रत्यक्ष से परीक्षा करके प्रमाण करना; और यदि कहीं अक्षर, मात्रा, अलंकार, युक्ति आदि प्रकरणों में चूक जाऊँ तो छल (दोष) ग्रहण करने में सावधान मत होना। शास्त्र समुद्र के बहुत से प्रकरण हैं, इसलिए स्वसंवेदनरूप अर्थ प्रधान है; इसलिये अर्थ की परीक्षा करनी चाहिये।

भावार्थ :- आचार्य आगम का सेवन, युक्ति का अवलंबन, पर और अपर गुरु का उपदेश और स्वसंवेदन-यों चार प्रकार से उत्पन्न हुए अपने ज्ञान के वैभव से एकत्व-विभक्त शुद्ध आत्मा का स्वरूप दिखाते हैं। हे श्रोताओ ! उसे अपने स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष से प्रमाण करो; यदि कहीं किसी प्रकरण में भूल जाऊँ तो उतने दोष को ग्रहण मत करना। कहने का आशय यह है कि यहाँ अपना अनुभव प्रधान है; उससे शुद्ध स्वरूप का निश्चय करो।।

गाथा - ५ पर प्रवचन

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं।।५।।

दशाउँ एक विभक्तको, आत्मातने निज विभवसे।
दर्शाउँ तो करना प्रमाण, न छल ग्रहो स्खलना बने।।५।।

गाथार्थ :- `**तं**' शब्द है न पहला तं, उस एकत्व विभक्त आत्मा को, राग से भिन्न और स्वभाव से अभिन्न- ऐसा जो उसका स्वरूप है उसे मैं, `अहम्' आहाहा ! भगवान ने कहा है इसलिये मैं उसे दिखाता हूँ - ऐसा नहीं। आहाहा ! मैं स्वयं कहूँगा। आहाहा ! मैं आत्मा के निज वैभव से दिखाऊंगा। आहाहाहा ! हमारा निज वैभव... जगत का वैभव... यह धूल तथा बाहर की सामग्री सभी वैभव... हमारा निज वैभव अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव, अतीन्द्रियज्ञान के परिणमन का ज्ञान, अतीन्द्रिय

वीर्य की प्रगट दशा, अनंत अनंत दर्शन की अंशरूप प्रगटदशा - ऐसा जो मेरा निज वैभव... उसमें - ऐसा नहीं कहा कि पुण्य हमारा निज वैभव है, शुभ भाव हमारा निज वैभव है।

कहने में विकल्प होता है, वह विकल्प हमारा वैभव नहीं। आहाहा ! आत्मा की अपनी संपत्ति द्वारा `स्वविभवेन' दिखाता हूँ। आहाहाहा ! क्या आचार्यों की शैली, दिखाता हूँ... परंतु मैं तो छद्मस्थ हूँ इसलिये दिखाता हूँ और उसमें जो दिखाया... आहाहाहा ! दिखाता हूँ, जो मैं दिखाता हूँ आहाहा ! दिखलाने की वाणी आ गई और दिखाऊं उसमें तो। आहाहाहा ! (तुम) प्रमाण करना हो, आहाहाहा ! स्वीकार करना हो, अकेला हाँ करके नहीं, मात्र बात को धारणा में लेकर नहीं। आहाहाहाहा ! परंतु अनुभव से प्रमाण करना। आहाहाहा !

दिखलाता हूँ, दिखलाऊं तो... आहाहाहा ! दिखाने का भाव आया है, परंतु दिखाना प्रारंभ कैसे हो, आहाहा ! मैं जो दिखाऊं, तब - ऐसा निमित्त है तब तुम्हारा उपादान भी स्वीकार करे - ऐसा होना चाहिए। आहाहा ! ऐसी बात कहाँ है यह तो देखो ! वीतरागी संत। वीतरागी अरहंत एवं (वीतरागी) गुरु तथा वीतरागी शास्त्रों को जिसने स्वीकारा है माना है... आहाहा ! इसके अतिरिक्त जिन्होंने आत्मा का वीतरागभाव से अनुभव किया है... आगे कहेंगे, स्वीकार करना। जिसप्रकार हम कहेंगें उसप्रकार वस्तु है कि नहीं - इसप्रकार तुम स्वयं के अनुभव से, इसे स्वीकार करना हो। आहाहाहा ! जिसप्रकार हम कहना चाहते हैं कि ***राग से प्रभु भिन्न है तथा अपनी पूर्णसंपदा से अभिन्न है, इसप्रकार दिखलाऊं तो हमारा दिखलाना निष्फल नहीं जाये। आहाहाहा ! तब स्वीकार करना... ऐसे जीव के लिये कहते हैं इस प्रकार बतलाते हैं। आहाहा ! प्रभु इस प्रकार वहाँ दृष्टि करना मैं जो बतलाता हूँ कि राग से भिन्न और स्वरूप संपदा से एकत्व दिखलाऊँ तब उसको स्वीकार करना, किसप्रकार ? जिस तरह है वैसा कहता हूँ वह तुम्हें भासित होता है कि नहीं ? तुम्हें भाव भासन होता है कि नहीं, भासित हो तब स्वीकार करना।*** आहाहा ! समयसार। आहाहा ! भरतक्षेत्र के प्रवचनों का सर्वोत्कृष्ट बादशाह है। आहाहा ! - ऐसा कहना चाहते हैं कि तुम भाग्यशाली हो कि ऐसी वाणी तुम्हें सुनने मिली। इसलिये अब तुम अपना पुरुषार्थ करके जिसप्रकार मैं कहना चाहता हूँ वह समझकर स्वीकार करना, आहाहाहा ! उसका भावभासन करके प्रमाण करना। ऐसी बातें है। आहाहाहा !

इसप्रकार प्रभु आत्मा राग से (एवं) विकल्प से भिन्न है... वीतरागी संत एवं वीतरागी देव, वीतराग भाव प्रगट करने की बात करते हैं। (स्वीकारोगे) तभी यह वीतरागी पर्याय प्रगट होगी। आहाहा ! ***मैं कहता हूँ उस प्रकार वस्तु है कि नहीं, इसतरह***

अपने अनुभव से प्रमाण करना। आहाहाहा ! अकेला स्वीकार करके क्षयोपशम मात्र का विषय नहीं बनाना। आहाहाहा ! देखो तो सही मात्र पुरुषार्थ प्रेरक (बात है)।

अंदर में भगवान... आनंद का नाथ परमात्मा, तुम्हारे पास में स्थित है न प्रभु ! आहाहा ! उसीकी तो हम बात करते हैं, है उसीकी मैं बात करता हूँ। आहाहा ! और जो है उसे तुम्हें सुनाना है और तुम सुनने आये हो। आहाहा ! जो है उसे तुम प्राप्त करना। आहाहाहा ! उसका अस्तित्व जितना और जैसा है, उसीप्रकार अनुभव द्वारा उसके अस्तित्व को स्वीकार करना अनुभव से आहाहा ! गजब बात है !! यह शास्त्र सार कहलाता (है)। आहाहा ! लोग तो कहते कि हमें तुम मानना, हमारे देव-गुरु-शास्त्र को मानना तो तुमको सम्यग्दर्शन होगा। ***आहाहा ! यहाँ तो कहा जाता है कि हम तुम्हें जो कहते हैं उसे तुम अपने अनुभव से स्वीकार करके मानना, हमने कहा इसलिए मानना - ऐसा नहीं।*** आहाहा ! ज्ञान स्वरूपी प्रभु, चैतन्य चमत्कारी, चिंतामणि रतन `प्रभु तुम हो न', चैतन्य चमत्कारी चिंतामणि, आहाहा ! महारतन प्रभु मैं तुम्हें दिखाता हूँ न ? आहाहा ! तब तुम देख लेना, कि (जैसा बतलाया) वैसा है कि नहीं ? आहाहा !

देखो ! यह सैद्धांतिक कथन और यह वाणी ! लोग कहते हैं कि अरहंत महादेव हैं (और) मुझे गुरु मानों तो यही सम्यग्दर्शन है। यह वीतरागी वाणी नहीं। आहाहा ! यह वीतरागी संतों की वाणी नहीं। आहाहाहा ! अभ्यास न होने से (मार्ग) कठिन लगता (है) वस्तु तो है। है उसे प्राप्त करना है न ? न हो और उसे प्राप्त करना हो तब तो कठिन है ? मौजूद वस्तु अंदर विद्यमान है न। आहाहा ! कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु - ऐसा यह भगवान स्वयं ही है। आहा ! उसके अंदर तुम जाकर अनुभव करके उसका अनुसरण करके `स्वीकार' करना। आहाहाहाहा !

वह (संबोधन) मात्र शब्दों का नहीं आया। कलशटीकाकार ने उसका अर्थ बहुत अच्छा `अनुभवशील' किया है न ! सर्वज्ञ का अनुसरण करके निकली वाणी... निकली तो अपने उपादान से, परंतु उसके निमित्तरूप में सर्वज्ञ हैं। आहाहा ! इसकारण इस वाणी को अनुभवशीली कहा जाता है। क्योंकि ? सर्वज्ञदशा प्रगटी उसके अनुसार वाणी निकलेगी। आहाहा ! वाणी तो उपादान से आयेगी, पर उस वाणी की उपादान रूप योग्यता ही ऐसी है, जैसी सर्वज्ञदशा है उसके अनुसार वाणीकी पर्याय भी परिणमित होगी। आहाहाहाहा ! यहाँ कहते हैं कि मैं वाणी द्वारा दिखाऊंगा। आहाहा ! वस्तुतः दिखानेवाली भाषा हमारे स्वभाव के वैभव को अनुसरण करती हुयी परिणमती है। आहाहाहा ! यहाँ तो - ऐसा कहा है कि दिखलाऊँगा। वाणी द्वारा बतलायेंगे, वाणी के माध्यम से बतलायें, दूसरा तो अन्य उपाय नहीं। परंतु यह वाणी निज वैभव को

अनुकरण करके... वाणी तो निमित्त है, आयेगा। आहाहाहा ! समझ में आया... ऐसी बात है।

स्वीकार करना, यदि `कहीं भूल हो जाये' अनुभव में भूल हो जाये - ऐसा नहीं परंतु भाषा में, कहीं संस्कृत व्याकरण विभक्ति में, कहीं वाणी में अंतर आ सकता, वस्तु में फर्क नहीं हो सकता। आहाहाहा ! वस्तु में तो जैसा है वैसा ही आयेगा। आहा ! यदि वाणी में कोई विभक्ति, काल, भूतकाल के स्थान पर वर्तमान कहने में आये न - ऐसा कोई शब्द तुम्हें समझ में आये, तुम्हें इस प्रकार का ज्ञान हो, जिससे तुम्हें समझ में आये कि इस की जगह (यह लिख सकते) परंतु तुम वहाँ नहीं अटकना। इस वाणी में कुछ फर्क है और तुम्हें समझ में आये तब भी तुम वहाँ नहीं उलझना। आहाहाहा !

हम तो अंदर में चैतन्यभगवान... अनंतगुणोंरूपी हीरा प्रभु, उसमें जाने के लिये हम दिखलायेंगे तब तुम वहाँ जाना प्रभु ! आहाहाहा ! ***पंचमकाल के मुनि और पंचमकाल के श्रोता को यह बात कहते हैं। आहाहा ! अभी सर्वज्ञ का विरह होनेपर भी इतनी दृढ़ता से यह बात करते हैं कि हमारे श्रोता ऐसे होते हैं। आहाहा ! आहाहा ! जिसप्रकार निज-वैभव से वाणी आयेगी उसीप्रकार तुम भी निज-वैभव का अनुभव (करना)... आहाहाहा ! तुम्हारा वैभव तो अंदर में है। हमारा वैभव तो पर्याय में प्रगट होने से उससे कहते हैं।*** परंतु तुम्हारा जो वैभव अंदर पूर्ण है, पूर्ण संपत्ति अतीन्द्रिय आनंद आनंद आनंद आनंद... अतीन्द्रिय आनंद का पिण्ड बर्फ की तरह जमा हुआ है न वहाँ। आहाहा ! जिसमें (ध्रुव) में शुभ विकल्पों को भी प्रवेश करने का अवकाश नहीं। ***अरे ! उसके अनुभव की पर्याय हो उसका भी ध्रुव घन में प्रवेश पाने का अवकाश नहीं। आहाहा !***

यह तो सिद्धांत है भाई, वीतराग की वाणी ! इस वीतराग वाणी का पार नहीं प्रभु ! उसकी गंभीरता, उसकी गहराई, आहाहा ! साधारण व्यक्ति तो पार नहीं पा सके - ऐसा एक-एक गाथा का - ऐसा भाव है।

ओहोहोहो ! एक गाथा निहाल कर दे, आहाहा ! प्रभु सब अवसर आ गया है, आहाहा ! ***मोक्षमार्ग प्रकाशक में - ऐसा कहा है, कि `सब अवसर आ गया' यहाँ पर तो सब अवसर आ गया - ऐसा भी नहीं, तुम ऐसे ही हो...*** आहाहाहा ! प्रभु तुम सब भूल जाओ एवं तुम (निज) भगवान को भूल गये हो उसे अब याद करो। आहाहा ! तुमने भूलने जैसी वस्तु को बहुत याद किया है प्रभु ! आहाहा ! भूलने जैसी वस्तु को बहुत याद किया है, बहुत याद किया है बापा, तथा नहीं भुलाने जैसा भगवान है, उसे भुला कर पूरा भूल गया है। उसे किसी दिन तुमने याद ही नहीं किया, अब यह समय आया है, तुमसे कह रहे, प्रभु तुमसे। तुम्हें वाणी द्वारा

इशारा करके, आहा ! वह तुम्हारा नाथ अंदर... हमारी ओर की भक्ति का विकल्प जो राग है, सुनने का जो तुम्हारा विकल्प है, आहाहा ! उससे भिन्न प्रभु अंदर है। आहाहा ! - ऐसा उपदेश है कि जिस उपदेश को पाकर अनुभव से प्रमाण ही करे - ऐसा उपदेश है। आहाहा !

वर्तमान में केवलज्ञान पर्याय के धारक भगवान नहीं हैं, उन्हें अभी याद न करो, आहाहा ! तुम्हारे भगवान में तो अनंत केवलज्ञान की पर्याय भरी हैं। आहाहा ! भगवान का विरह है उसे भी भूल जाओ। आहाहा ! वर्तमान में केवलज्ञान की पर्याय का विरह है, यह भी भूल जाओ। पूर्ण भगवान अंदर है। आहाहा ! एवं हमें वही दर्शाना है, आहाहाहा ! उसी का अनुभव करना । बाकी शास्त्रों के कथन में एवं वाणी में तो अनेक अपेक्षायें होती हैं, उसमें कहीं संस्कृत धातु व्याकरण आदि में कुछ फर्क लगे तो उसका कुछ हमें आग्रह नहीं, यहाँ तो अंदर का अनुभव करना तथा कराना - इसी बात पर वजन है।

चूक जाऊँ तो क्या ? अनुभव में चूक जाऊँ - ऐसा नहीं, वस्तु व्यवस्था में चूक जाऊँ तो ध्यान रखना - ऐसा नहीं। आहाहा ! वस्तु तो जिसप्रकार है उसीप्रकार कही जायेगी। उसमें कहीं कम, ज्यादा, विपरीत है ही नहीं। आहाहा ! परंतु वाणी में कुछ फर्क हो सकता है, वाणी पर वस्तु है। आहाहा ! इसमें कुछ शब्दों की शैली में, कथन पद्धति में, व्याकरणादि के नियमों में फर्क हो सकता है, वस्तु में अंतर नहीं हो सकता। वाणी भी वस्तु को बतायेगी उसमें फर्क नहीं, आहाहा ! कहते हैं कि वाणी ही ऐसी निकलती है। परंतु उसमें व्याकरण के नियम बहुत होते हैं उन नियमों में कहीं अंतर आ जाये और तुम उसके जानकार हो वहाँ तुम्हें कुछ समझ में आये कि यहाँ (कुछ फर्क है) तब वहाँ अटकना नहीं, वहाँ ध्यान देना नहीं। हम जो कहना चाहते हैं वहाँ जा न प्रभु ! आहाहा गजब गाथायें है। प्रथम बारह गाथाओं में पीठिका (भूमिका) है न ? यह चबूतरा, विशाल चबूतरा फिर फलता फूलता वृक्ष ! मूल सामान्य बात तो पूरी की पूरी संपूर्ण इन बारह गाथाओं में अखण्डरूप से आ जाती है। आहाहा !

अब टीका :- आचार्यदेव कहते हैं, आचार्य भगवान बतलाते हैं... देखो ! एक तरफ - ऐसा कहते हैं कि आत्मा वाणी बोल सकती नहीं, परंतु - ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध द्वारा, आचार्य कहते हैं - ऐसा कहा जाता है न ? आहाहा ! आचार्य कहते हैं कि जो कुछ मेरा - जो कुछ अर्थात जितना है उतना... पूर्ण है - ऐसा कुछ मैं कहता नहीं। पूर्ण वैभव तो परमात्मा के पास है। आहाहा ! जो कुछ। आहाहा ! 'इह किल' है न हमारा आत्मा का निज वैभव है हमारी आत्मा का निज वैभव पर्याय

में है। आहाहा ! शुद्धचैतन्यपरमात्मा उसकी सम्यक्‌श्रद्धा, उसका (सम्यक्)ज्ञान उसीकी लीनता एवं उसके आनंद के स्वादरूप दशा का जो हमारा वैभव है... आहाहा ! देखो यह आत्मा का वैभव ! राग एवं दयादान का विकल्प वह आत्मा का वैभव नहीं, तब फिर यह पैसा (धूल) पांच-पच्चीस लाख, बाहर से आकर बड़ा घर, मकान बनाते हैं न, आहाहा ! यह हमारा वैभव, यह हमारा फरनीचर एवं हमारा वैभव देखो ! दरवाजे के सामने दोनों तरफ हाथी बनाते है न ? यह मंदिर के बाहर नहीं बनाते ? वहाँ पालीताना में बनायें है न बड़े-बड़े हाथी, आहाहा ! यह भगवान का वैभव। (लोग - ऐसा मानते हैं)

यहाँ पर तो प्रभु भगवान (निजात्मा) का वैभव तो जो कुछ मुझे प्रगट हुआ है उसी से मैं कहूँगा। पूरा तो परमात्मा को प्रगट हुआ है। वह हमारी श्रद्धा में है। उनकी वाणी में जो आया है वह भी हमारी प्रतीति में है, परंतु यह व्यवहाररूप श्रद्धान है। आहाहा ! ***जो कुछ हमारे आत्मा का निजवैभव है, वह पर्याय की बात है समझे, यह द्रव्य-गुण की बात नहीं, प्रगट हुए वैभवरूप दशा की बात है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव वह जीव की पर्याय का निजवैभव है। आहाहाहाहा !***

वह वैभव है, हमारी आत्मा का निजवैभव है। प्रभु के आत्मा का जो वैभव है उससे अभी कुछ मतलब नहीं। आहाहा ! वह हमारी व्यवहार श्रद्धा में है, परंतु यह हमारा स्वामी अंदर प्रभु ! (निजात्मा) आहाहा ! चैतन्यरत्नाकर से भरा... इसका जो पर्याय का वैभव है, संपत्ति, हमारी संपत्ति यह है। आहाहा ! हमारी लक्ष्मी यह है। उस पूर्ण स्वरूप की निर्विकल्प श्रद्धा पूर्णस्वरूप का ज्ञान एवं पूर्णस्वरूप में रमणता इत्यादि। अनंत गुणों की वर्तमान में व्यक्त अवस्था हमारा निज वैभव है। आहाहा ! यह बात तो गंभीर है बापू ! समयसार वह क्या है !! आहाहा ! गजब काम किया है, एक-एक शब्द में छुपा हुआ इसका वाच्य कितना जोरदार है। आहाहा !

वह वैभव है जो है न ? `तम्' है न पहले ? उस एकत्व विभक्त आत्मा को आहाहा ! वह सर्वथा वह सभी से, वह सभी से। आहाहा ! हमारा निज वैभव जितना प्रगट हुआ है न ! उस सभी से, आहाहा ! दर्शन-ज्ञान-चारित्र आनंदादि जितना वैभव है उस सभी से मैं कहूँगा। आहाहा ! कैसे शब्द, अमृतझर रहा है। आहाहा ! जगत का भाग्य है जो यह समयसार सुरक्षित रह गया। यह भेट दी है। तुम स्वयं से मिलो तब तुम्हें यह भेट हम तुम्हें देते है। अंतिमशब्द है, जयसेनाचार्य के (उनकी टीका में) आहाहा !

उस वैभव से, उस संपूर्ण से... आहाहा ! जितना मुझे ज्ञान प्रगट हुआ, समकित

प्रगट हुआ, आनंद आया, वीतरागतारूप चारित्र की शांति उन सभी से, आहाहा ! उसका अर्थ यह कि वाणी में कहीं भी कमी और अधूरापना नहीं आये। अपने पूरे वैभव से मैं कहूँगा। आहाहा ! परंतु प्रभु ! वैभव से कहोगे, उसमें तो विकल्प होता है, जिसप्रकार है उसी प्रकार बताना है, वह है तो विकल्प परंतु हमारा लक्ष्य विकल्प पर नहीं, सर्वथा विकल्प से ही कहेंगे - ऐसा यहाँ नहीं है। आहाहा ! हमारा जो वैभव आनंद, ज्ञान और जो यह शांति, अनंत गुणों व्यक्त दशा जितनी प्रगटी है, उस सभी से मैं कहूँगा। आहाहा ! मैं उन सभी से... आहाहा ! `**यह**' एकत्व विभक्त `**यह**' **प्रत्यक्ष आत्मा** एकत्व अपने स्वरूप में एकत्व है और राग से पृथक् अर्थात भिन्न है, अस्ति-नास्ति से कहा। आहाहा !

हमारा अस्तित्व परिपूर्ण एकत्व है, और जिसमें पर का संपूर्ण अभाव अर्थात भिन्न है। आहाहा ! `- ऐसा जो एकत्व विभक्त आत्मा' आहाहा ! उस एकत्व विभक्त आत्मा को (बतायेंगे), छ द्रव्यों को बताऊँगा और भगवान (अर्हन्त) ऐसे हैं, वह तुम्हें दिखाऊँगा- ऐसा कुछ नहीं कहा। आहाहा ! प्रयोजनभूत मूल चीज है वह मैं बतलाऊंगा। आहाहा ! और उसमें सभी आ जायेगा। `एकत्व विभक्त आत्मा को दिखलायेंगे' बस, छह द्रव्य और उनके अनंतगुण और उनकी पर्याय एव दूसरे सिद्ध तथा अरहंत उनकी यहाँ बात नहीं। मैं तो अपने निजवैभव से सर्वथा आत्मा को दिखालायेंगे। आहाहा !

यह..... यह..... अस्तित्व बतलाते हैं, कैसा ? एकत्व-विभक्त - ऐसा जो आत्मा उसे दिखालायेंगे, आत्मा को दिखलायेंगे, अरहंत कैसे हैं तथा गुरु कैसें है, वह नहीं। आहाहा ! शास्त्र का लक्षण क्या है एवं यह सभी... आहाहा ! एकत्व-विभक्त यह..... उसे मैं दिखलाऊंगा। `हमने पुरुषार्थपूर्वक व्यापार करके यह निर्णय किया है' आहाहा ! - ऐसा निर्णय किया है। आहा ! इस आत्मा के एकत्व-विभक्त को अपने वैभव से दिखायेंगे - ऐसा हमने निर्णय लिया है। अब दिखलाना प्रारंभ करें तब ध्यान रखना। आहाहा ! यह तो टीका में सहज वाणी निकली है कुन्दकुन्दआचार्य की गाथाओं में तो गंभीरता है, और अमृतचन्द्राचार्य ने उनके हृदय को खोल कर बात की है। आहाहा !

हमने - ऐसा व्यवसाय, उद्यम निर्णय किया है। आहाहा ! अपने ज्ञान में हमने निर्णय - ऐसा किया है कि मैं अपने निज ज्ञान वैभव से यह आत्मा जो एकत्व-विभक्त है उसे दिखाने का व्यापार करने का ही निश्चय किया है। ऐसे व्यवसाय का निश्चय किया है। आहाहा !

अब निज वैभव कैसा है, यह बतलाते हैं। निज वैभव से कहेंगे, परंतु वह पर्याय का निज वैभव कैसा है ? आहाहा ! `कैसा है हमारे आत्मा का निज वैभव' `कैसा

है हमारे आत्मा का निज वैभव' ? आहाहा !

`**इस लोक में**'... लोक (संसार) को सिद्ध किया। `लोकंति इति लोक' जिसमें छह द्रव्य रहें - ऐसा यह लोक है `उसमें प्रगट, समस्त पदार्थों को जाननेवाला' आहाहा ! वाणी, भगवान की वाणी इस लोक में समस्त वस्तुओं का, प्रगट सभी पदार्थों का, जितने पदार्थ हैं उन सभी को बतानेवाली है, आहाहा ! एवं `स्यात्' पद के चिन्हवाला - अपेक्षित कहना हो ऐसे चिन्हवाला, `कथंचित' कथन की अपेक्षा है, नित्य-अनित्य वगैरह शुद्ध-अशुद्ध ऐसे स्यात् पद के चिन्हवाला कथंचित की पहचानवाला जो शब्दब्रह्म है। आहाहाहा ! - ऐसा जो शब्दब्रह्म, भगवान की वाणी शब्दब्रह्म, आहाहा ! अरहंत का परमागम जो शब्दब्रह्म अर्थात क्या ? कि अरहंत का परमागम, भगवान के द्वारा कहा हुआ परमागम। आहाहाहा ! अरहंत (भगवान) के श्रीमुख से ओम ध्वनि निकली एवं जो परमागमों की रचना हुयी... आहाहा ! `- ऐसा जो शब्दब्रह्म अरहंत का परमागम, जिसकी आराधना से जिसकी उत्पत्ति हुयी।' आहाहाहा !

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा... आहाहा ! अरहंत का परमागम, उनका जो परमागम, शब्दब्रह्म, जो कि सर्वज्ञ से कहा हुआ, अरहंत परमात्मा के द्वारा कहा हुआ साक्षात शब्दब्रह्म। आहाहाहाहा ! - ऐसा होने से किसी ने कुछ शास्त्र भगवान के नाम पर रच दिये हैं, उनके अध्ययन से आत्मा प्रगट नहीं होगा। आहाहा ! - ऐसा कहते हैं कि वह निमित्त भी नहीं होगा। आहाहा ! तीनलोक के नाथ अरहंत परमात्मा की वाणी जो शब्दब्रह्म... आहाहा ! उसकी उपासना। उस परमागम को हमने सेवा की अर्थात उसमें जो कहा वह हमने जाना। परमागम में कहा वह हमने जाना। आहाहा ! - ऐसा कहने का आशय सर्वज्ञ की वाणी के अतिरिक्त अन्य कल्पना से रचे हुये शास्त्रों का निषेध कर दिया है। आहाहा ! कुछ समझ में आया ?

हमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप जो वैभव (प्रगटा है वह) वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की दिव्यध्वनिरूप परमागम, उसके लक्ष्य से अर्थात उसकी सेवा से... उन्होंने कहा वह हमने माना (और) जाना। आहाहा ! ऐसी वाणी अरहंत के मुख से निकली। इसके अतिरिक्त अन्य वाणी समकित में निमित्त भी हो नहीं सकती। समझ में आया ? इसमें बहुत भरा है। आहाहा ! अब इससे होगा, एवं इससे होगा, तथा इससे होगा, निमित्त ही जहाँ गलत है... आहाहा ! प्रथम तो अरहंत सर्वज्ञ को पहचानना और उनकी वाणी कैसी होती है, उसको पहचानना। आहाहाहा ! ***तथा उस वाणी की सेवा से, उन्होंने जो कहा उसकी उपासना से... आहाहा ! यह निमित्त से कथन है। यह आशय है कि निमित्त - ऐसा हो, निमित्त से होता नहीं... आहाहा ! परंतु होगा निमित्त - ऐसा, अन्य निमित्त हो तथा अंदर का निज वैभव प्रगटे- ऐसा नहीं***

होता। आहाहाहा ! गंभीर वाणी, अकेला अमृत परोसा है, अमृतचन्द्र आचार्य ने अमृत का समुद्र बहाया है। आहाहा !

उसकी उसापना से हमारी उत्पत्ति है 'जन्म है' यह तो पर्याय की बात है न ! हमारी पर्याय की उत्पत्ति अरहंत के शब्दब्रह्म की सेवा से हुई है। निमित्त यह ही है। आहाहा ! अज्ञानी के वचनों को सर्वज्ञ के नाम से लिख दिया... सम्यक् निज वैभव (की उत्पत्ति में) वह निमित्त होते नहीं। समझ में आया ? जगत के लिए कठिन काम है। इसका नाम अरहंत का परमागम... (परमाम मंदिर की तरफ इसारा करते हुये) यह भी परमागम है न ? इस् मकान (मंदिर) का नाम परमागम है, अरहंत की वाणीमें से आयी हुयी यह सभी बातें हैं। आहाहा ! वैसे कहा है कि वाणी की सेवा से वैभव प्रगटा... देखो आया कि नहीं इसमें बापू ! यह निमित्त का कथन है। निमित्त कैसा हो... आहाहा ! सर्वज्ञ अरहंत त्रिलोकनाथ की ओम ध्वनि से रचित आगम, उसका कारण कि उस समय वह भगवान तो थे नहीं, वह तो वाद में गये थे परंतु अरहंत का जो परमागम, उनके द्वारा कहा हुआ प्रवर्तता था, हमारे अंतर के अनुभव में यह वाणी निमित्त हुयी। दूसरा कोई निमित्त हो सके नहीं - ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा !

यहाँ तो यह कहते हैं कि अरहंत की वाणी के अतिरिक्त (जो) कल्पित शास्त्र बनाये एवं नाम दिया हो अरहंत का, वह निज वैभव में निमित्त नहीं होता।

वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। वहाँ अन्य क्या ? आहाहा ! चाहे पंचमकाल हो, एवं अभी तो ढाई हजार वर्ष ही बीते हैं, अभी तो बहुत ज्यादा समय शेष है, यह तो पंचमकाल की शुरूआत है, आहाहा ! फिर भी भाव तो जो है अंत तक वैसा ही रहेगा, पंचम काल के अंत तक जो सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त करेंगे, उन्हें यह वीतराग की वाणी निमित्त होगी। इस सर्वज्ञवीतराग के अतिरिक्त अन्य वाणी... उसके निमित्त से उसे समकित नहीं होगा। आहाहा ! कठिन बात है बापू ! आहाहा

श्रीमद रायचन्द्रग्रंथ के अंत में रत्नकरण्डश्रावकाचार ग्रंथमें से एक लेख है, अरहंतदेव कैसे हों ? अष्टादश दोषरहित, आठारह दोष रहित... इस प्रकार स्पष्ट उल्लेख है। अंतिम पाठ है न ! भूख प्यास रहित हो, क्षुधा तृष्া रहित हो वह देव 'यहाँ तो (श्वेतम्बरों में) अरहंत को भूख लगती हैं, एवं आहार लेते हैं, एवं रोग होता हैं, एवं दवाई लेते हैं।' (इसप्रकार गलत प्ररूपणा चलती हैं)

वहाँ तो उनकी (अर्थात) त्रिलोकीनाथ की उपासना की मुख्यता है, बनारसीदास जी ने लिखा है न ! नमो केवल नमो केवलरूप भगवान, 'ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश, भविक जीव संशय निवारे।' आहाहा ! - ऐसा

मार्ग है बापू ! यहँ तो सत्य है उसीका उद्घाटन करते हैं। उसकी प्रसिद्धि करते हैं। किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, किसी जीव के लिये नहीं, अरे ! वह भी भगवान है, वह भी सुखी होना चाहता है, परंतु..... आहाहा ! भूल के कारण पर्याय अपेक्षा दु:खी है। भगवान कहते है वह भी पूर्णानंदमय है। आहाहा। चाहे जितना विपरीत कथन करनेवाला हो। श्रद्धावाला हो, परंतु उसकी आत्मा प्रति का प्रेम नष्ट नहीं होता, विरोध नहीं होता। आहाहा ! किसका विरोध करें ? वस्तु का विरोध नहीं, पर्याय में फर्क हो उसका स्पष्टीकरण ३६३ पाखण्डों का बारह अंगों में वर्णन करते हैं ३६३ भेदों का वर्णन। बहुधा मतावलम्बियों को खेद होता कि यह खण्डन करते हैं। वस्तु का स्वरूप - ऐसा है।

`स्यात्' अर्थात क्या ? - ऐसा कहते हैं कि स्यात् अर्थात कथंचित किसी अपेक्षा से कहना, आत्मा को किसी अपेक्षा से नित्य कहंना, किसी अपेक्षा से अनित्य कहना, स्थाई रहने की अपेक्षा नित्य है, पलटने की अपेक्षा अनित्य है - ऐसा `स्यात्' (अर्थात) अपेक्षा से कहा जाता। उसमें इस प्रकार के धर्म होते हैं (अपेक्षा से)

`परमागम को शब्दब्रह्म कहा' परमागम को व्यापक शब्दब्रह्म कहा। उसका कारण अरहंत के परमागम में सामान्य धर्म वचनगोचर हैं। कितने ही सामान्य धर्म (गुण) वचनों से कहे जा सकते हैं। कितने ही सामान्य धर्मों को वचनों से कहा जाता है। सभी धर्मों का नाम आता है। एवं वचन अगोचर जितने विशेष धर्म है, उनका अनुमान किया जाता है, अनुमान करने में आता है अर्थात कहे जाते, जैसे कि भाई एक द्रव्य का दूसरा द्रव्य नहीं तब ऐसे अनंत द्रव्य हैं, उसे चाहे न दिखे। इस प्रकार अनुमान किया जाता है। इसप्रकार वह सभी वस्तुओं का प्रकाशक है। वीतराग की वाणी सर्व वस्तुओं को बतलानेवाली है। आहाहा ! अतः सर्वव्यापी कहलाती है। उस वाणी को सर्व व्यापी कहा जाता है। संपूर्ण दर्शानेवाली है। सर्वव्यापी अर्थात पूरी कहनेवाली है आहाहा ! श्रीमद जी कहते हैं न, जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं फिर भी श्रीभगवान जी, वह तो अपेक्षित बात है परंतु यहाँ तो सर्वव्यापी पूर्ण कह सकते हैं - ऐसा कहा जाता है। समझे न ! सर्वव्यापी शब्द कहा है न ? शब्दब्रह्म अर्थात व्यापक सभी (पूर्ण) को कहनेवाली है इसलिये उसे शब्दब्रह्म कहा जाता है, देखो यह तो शब्दब्रह्म की परिभाषा बतलाई।

विशेष कहेंगे - प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. १९ गाथा-५ ता. २७-६-७८ मंगलवार जेठ वदि-७ सं.२५०४

यहाँ तो - ऐसा कहा कि मैं अपने निज वैभव से बात कहूँगा - परंतु निज वैभव में निमित्त कौन था ? - ऐसा कहा कि वीतराग की वाणी शब्दब्रह्म है। सभी पदार्थों को प्रकाशित करनेवाली - ऐसा कहा जाता है, कहा है न ? समस्त वस्तुओं को बतलानेवाले, यहाँ यह नहीं कि सर्वज्ञ कुछ बोल नहीं सकते, वह बात यहाँ नहीं है, वह तो अपेक्षित बात हुयी, गोम्मटसार में लिखा (है) न ? कि अनंतवाँ भाग कहते हैं। यहाँ तो कहा जाता है कि वस्तु स्वरूप के प्रकाशक हैं। शास्त्र वह शब्दब्रह्म है। समस्त वस्तुओं को दिखलानेवाले। एवं अंतिमगाथा में - ऐसा आया कि ४१५ (गाथा में) कि आत्मा है वह विश्वसमय है, अर्थात कि विश्व को जाननेवाला है। अंतिम ४१५ में संपूर्ण जाननेवाला आत्मा है। उसे प्रकाशित करनेवाली वाणी यह शब्दब्रह्म पूरी दिखलानेवाली है, अंत में ४१५ गाथा में आया है, समझ में आया ?

संपूर्ण-सभी वस्तुयें, गाथा में है न ! `सकल उद्भासि, सकलोद्भासि,' तीनकाल ***तीनलोक के जो पदार्थ हैं, वाणी उन सभी को कहनेवाली है। ऐसी बात ली है। चाहे अनंतवां भाग आया हो - ऐसा कहा, परंतु उसमें आया, सभी का संकेत सभी आया है। समझ में आया ? इसमें सभी आने पर भी पंचाध्यायी में इसप्रकार आता कि बारह अंगों में स्थूल कथन है परंतु उस कथन में कहने योग्य जितना सूक्ष्म कहा है*** वह सभी कथन आया है। प्रथम बात समस्त पदार्थो एवं वस्तुओं को प्रकाशित करनेवाला है। अतः ४१५ वीं (गाथा) में - ऐसा कहा है कि आत्मा विश्वसमय है। भगवान आत्मा विश्वसमय है - ऐसा कहा है। तीनकाल तीनलोक सभी को जाने, (वह) आत्मा और उसे कहनेवाली वाणी, भी शब्दब्रह्म है। आत्मा जो विश्वसमय है सभी को जाननेवाला है। उसी प्रकार वाणी भी सभी को कहनेवाली है। आहाहा ! उस वाणी में भी कहने की ऐसी शक्ति है। आत्मा में सभी को जानने की शक्ति है। आहाहा !

विश्व समय (अर्थात) सभी को जाननेवाला आत्मा, उसीप्रकार सभी को कहनेवाली वाणी को शब्दब्रह्म कहा क्योंकि वह सभी को बतलाती है। आहाहा ! और उसकी मुद्रा स्यात्पद है। `स्यात्' पद की मुद्रावाला - ऐसा कहा है न ? छाप है `स्यात्' छाप उसकी छाप है। आहाहा ! जैसे आत्मानुभव की मुहर-छाप अतीन्द्रिय (आनंद) है। आहाहा ! आत्मा के अतीन्द्रिय अनुभव में अतीन्द्रिय आनंद की मुहर छाप है उसी प्रकार वीतराग की वाणी में `स्यात्' पद की मुहर छाप है। समझ में आया कुछ ? कथंचित किस अपेक्षा से कहना चाहते है वह सभी इसमें आ जाता है। `स्यात्'

पद की मुद्रावाला शब्दब्रह्म अर्थात ? अरहंत का परमागम, अरहंत का परमागम शब्दब्रह्म है। क्योंकि सभी पदार्थों को कहनेवाला है। आहाहाहा ! तीनकाल तीनलोक अनंत गुण, अनंत द्रव्य, अनंत पर्याय सिद्धों की एवं केवलियों की भी सभी को प्रकाशित करनेवाली वाणी है। वाणी में कुछ कहने से रह जाये - ऐसा नहीं। आहाहा ! उसीप्रकार भगवान आत्मा कम जाने - ऐसा नहीं। ***(आत्मा) विश्वसमय है। सभी को जाननेवाला प्रभु है। आहाहा ! श्रुतज्ञान में भी वह सभी को जाननेवाला है।*** आहाहा !

'स्यात्' अर्थात किसी अपेक्षा कहना। परमागम को शब्दब्रह्म कहा, उसका कारण **अरहंत के परमागम में जो कहे जा सकें ऐसे सामान्य धर्म, वचन गोचर सर्व धर्मों का वर्णन आता है।** एवं वचनों से अगम्य ऐसे विशेष धर्मों का अनुमान कराया जाता है। तो भी - ऐसा कहा जाता कि कहने में सभी आता है। आहाहा ! जो कुछ सामान्य है, सामान्य का अर्थ, जो (सीधे) कहे जा सकें, वे सामान्य धर्म (गुण) कहलाते हैं। एवं अनुमान द्वारा सिद्ध किया जाता है कि यह वस्तु है जो अनंत धर्म स्वरूप ही है। आहा ! आता है न अनंतधर्म शक्ति ? इसी में ? अनंत धर्म अर्थात अनंत गुण जिसमें है। वह अनंत धर्म स्वरूप ही है। आहाहा ! इसे (परमागम को) उसकी प्राप्ति में निमित्त कहा। परंतु वहाँ तो - ऐसा कहा कि उसकी प्राप्ति के लिये अन्य कोई कारण ही नहीं।

इस द्रव्य का जब (वचनामृत में) वर्णन किया तो, यह द्रव्य - ऐसा है कि उसके कार्य के लिये अन्य कारण की आवश्यकता नहीं और किसी के कार्य का वह कारण नहीं। रागादिक या परद्रव्य की पर्याय का वह कारण नहीं। इसमें - ऐसा गुण है, शब्दब्रह्म उसे भी प्रकाशित करनेवाला है। वाणी द्वारा वह आया है - ऐसा कहा है। आहाहाहा ! कुछ समझ में आया ? वीतराग की शब्दब्रह्म अर्थात व्यापक वाणी उसमें - ऐसा आया है, कि तुम्हारा प्रभु आनंद का नाथ है। आहाहा ! उसके कार्य के लिये किसी अन्य कारण की अपेक्षा नहीं, एवं पर के कार्य के लिये इस द्रव्य के कारण की अपेक्षा नहीं, आहाहा ! - ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। - ऐसा शब्दब्रह्म में आया है एवं विश्वसमय ऐसे भगवान ने उसीप्रकार जाना है, आत्मा ने भी उसीतरह जाना। आहाहा ! मैं किसी का कारण नहीं, मैं किसी का कार्य नहीं। आहाहा ! देखो न इसकी शैली तो देखो ! ओहोहोहो ! गजब शैली है न !! गहराई से विचार करे तो उसे वाणी द्वारा पूरा कहने की ताकत सिद्ध की है। अतः पूरण जाननेवाला है इसलिये उसे विश्वसमय, विश्वब्रह्म (कहा जाता है) आहाहा ! एवं वाणी सभी को कहनेवाली अतः शब्दब्रह्म है यह आत्मब्रह्म, वह शब्दब्रह्म, दोनों पूरण है। आहाहा !

भगवान पूरण जाननेवाले है, वाणी पूरण कहनेवाली है। श्रीमद्जी कहते हैं ***'जो***

स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह न सके उसको वह भगवान जो, वह तो उसकी (ज्ञायककी) महिमा बताने को कि वाणी द्वारा कितना कहा जा सके - ऐसा (भगवान की) वाणी में सभी आया है - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अतः भगवान को आत्म-ब्रह्म कहा, वाणी को शब्दब्रह्म कहा आत्मा सभी को जाने इसलिये सर्वब्रह्म कहा एवं वाणी सभी को कहती है, अतः शब्दब्रह्म कहलाती है। आहाहा !

इसप्रकार सामान्य कथन में वह पूर्ण कही जाती है शेष अन्य सभी वचन अचोगरों को अनुमान से कहा गया। वह सभी वस्तुओं को प्रकाशित करनेवाली है। शब्दब्रह्म सभी वस्तुओं को कहनेवाला है। आहाहा ! है ! आचार्य अमृतचन्द्र की तो टीका है 'किल सकलोद्भासिस्यात्यःमुद्रितशब्दब्रह्म... पदमुद्रित शब्दब्रह्म' आहाहा ! अतः सर्वव्यापी कहा जाता है, इसलिये वाणी को शब्दब्रह्म कहते हैं। आहाहा ! उसीकी उपासना से हमारा निज वैभव प्रगटा है। हमारा आनंद स्वरूपी निज वैभव, सर्वज्ञ की शब्दब्रह्म वाणी वह इसमें निमित्त थी - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य किसी की वाणी आत्म के धर्म को प्रगट करने में निमित्त भी नहीं हो सकती, निमित्त से होता तो नहीं। परंतु वीतराग की वाणी के अतिरिक्त अन्य वाणी निमित्त भी नहीं हो सकता - ऐसा कहते हैं। यहाँ वीतराग की वाणी को निमित्त कहा परन्तु उससे (कार्य) होता नहीं, परंतु निमित्त हो तो यही हो। समझ में आया ? आहाहा !

यह एक बात कही। कैसा है मेरा निज वैभव, है न ! कैसा है मेरे आत्मा का निज वैभव। यह एक बात कही - इस वैभव को प्रगट करने में, (अर्थात) विश्वब्रह्म को प्रगट करने में निमित्त शब्दब्रह्म है, वह शब्दब्रह्म भगवान की वाणी है। आहाहाहा ! ***इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान की वाणी के अतिरिक्त कोई अन्य कल्पित वाणी बोले जो आत्मधर्म को प्रगट करने में निमित्त भी नहीं।*** आहाहा ! बहुत भरा है। अल्प भाषा में भाव बहुत है। आहाहा ! और पूरा कहनेवाली सर्वज्ञ की वाणी निमित्त - ऐसा ही पूर्ण जाननेवाला भगवान (आत्मा) शब्दब्रह्म (निमित्त) आत्मब्रह्म, वह उपादान। आहाहाहा ! वह दशा प्रगटी अपने आत्मब्रह्ममें से परंतु उसे शब्दब्रह्म निमित्त है, आत्मब्रह्ममें से प्रगटा है परंतु है निमित्त यह (शब्दब्रह्म), आहाहा !

गुरु की वाणी भी केवली का अनुसरण करनेवाली है, इसलिये वह निमित्त हो सकती है परंतु अज्ञानी की वाणी निमित्त नहीं हो सकती। समझ में आया कुछ ? (श्रोता :- बहिन श्री ने भी गुरु की (आपकी) वाणी की बहुत महिमा की है। आहाहा ! उसमें तो बहुत आ गया। समझ में आया ? दो, दो अर्थात एक विश्वब्रह्म एक शब्दब्रह्म उपादान और निमित्त है, उसके निज वैभव में निमित्त - यहाँ इतनी बाते कहीं। आहाहा !

'पुनश्च वह निज वैभव कैसा है ?' आहाहाहा ! 'समस्त जो विपक्ष' समस्त विपक्ष,

(अर्थात) सत्य से विरुद्ध कहनेवाली सभी, जितने विपक्ष हैं... आहाहा ! `अन्यवादियों द्वारा ग्रहण किये गये सर्वथा एकांतरूप नयपक्ष के निराकरण में समर्थ,' आहाहा ! वह झूठा है, एकांत है - ऐसा निराकरण करने में समर्थ कौन ? `जो अति निस्तुष निर्बाध युक्ति,' सर्वज्ञ की वाणी के अतिरिक्त सभी अन्यवादी, जितने अन्यवादियों के कथन हैं। वे सर्वथा एकांत नयपक्ष हैं। झूठे है उनका निराकरण करने में, निर्णय करने में, कौन निर्णय लेने में समर्थ, अति निस्तुष निर्बाधयुक्ति। आहाहा ! `अति' है न ? निस्तुष, छिलके बिना का अखण्ड दिखलाये ऐसी। आहाहा ! अति निस्तुष, निर्बाधयुक्ति, अंदर से ऐसी युक्ति आये कि जिसमें बिलकुल छिलका (मलिनता) नहीं, खण्ड नहीं, अखण्ड जिस प्रकार है, उसी प्रकार आहाहा ! `उसके अवलम्बन से जिसका जन्म हुआ है', अति निस्तुष निर्बाध युक्ति, निराकरण में समर्थ, अन्य (दूसरे) असत्य है इसप्रकार के निराकरण में जो समर्थ है, ऐसी अति निस्तुष युक्ति। आहाहाहा ! बहुत समाया है।

अमृतचन्द्राचार्य की इस टीका काल में श्वेताम्बर पंथ तो था, कुन्दकुन्दाचार्य के समय में भी था। यहाँ तो स्पष्ट कहते हैं। अरहंत के मुख से जो वाणी निकली शब्दब्रह्म, वह निमित्त है। और उनसे जितने विपक्ष हैं, वह सभी झूठे हैं - ऐसा निर्णय करने में, अति निस्तुषयुक्ति, न्याय उससे मेरा जन्म है। आहाहा ! है न ? उसके अवलम्बन से जिसका जन्म है। आहाहा ! यों ही नहीं माना, अति निस्तुष-अखण्डयुक्ति के न्याय से, दूसरे सभी पदार्थ कहनेवाले एकांती हैं। आहाहाहाहा ! क्या वाणी !! इसप्रकार निराकरण करके यह मेरा निज वैभव उत्पन्न हुआ है। आहाहा ! एक सर्वज्ञ परमेश्वर उनकी यह वाणी शब्दब्रह्म उसमें निमित्त थी, हमारा स्वरूप उपादान में और वह निमित्त में अन्यमति के जितने भी विपरीत रास्ते हैं, उन सभी का निराकरण अति अखण्डयुक्ति से करके, हमें हमारे निज वैभव... वह उसका निराकरण करना है कि वे सभी झूठे है। आहाहा ! बहुत भर दिया है, ... कठिन लगे अभी तो जगत को।

यहाँ तो अमृतचन्द्राचार्यदेव एक हजार वर्ष पहले हुये, यह गाथा तो दो हजार वर्ष पहले की है और यह आशय तो अनंत काल से चला ही आता है। इसमें अमृतचन्द्राचार्य - ऐसा कहते हैं। आहा ! और वह स्वयं कहेंगे न (कुन्दकुन्दाचार्यदेव के लिये कहेंगे) उनकी बात ही है। उनकी भाषा में जो भाव हैं, और उसी भाव का ही स्पष्टीकरण है उसी भावका ही उद्घाटन है। आहाहा ! अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति, उसके अवलम्बन से... यह (जो) लोग अज्ञानी एकांत कहनेवाले हैं - इसप्रकार अखण्डयुक्ति से, न्याय से, निर्बाध रीति से निराकरण करके... और मेरा इसमें जन्म है। मेरे निज वैभव

का इसमें जन्म है। उसे झूठा सिद्ध करके अति निस्तुष युक्ति से... उसमें मेरा (जन्म है) निज वैभव है। आहाहा ! बहुत अधिक समाया है !

मुनियों ने - ऐसा कहा है कि वस्त्र का एक टुकड़ा रखे और मुनि मनवाये (तो) निगोद जाये। यह शब्दब्रह्म की वाणी है, वाणी में इसप्रकार आया था। वैसे भाव में आकर वाणी निकली है। आहाहा ! मेरे मुनिपनेरूप अनुभव की दशा में एकांत कहनेवाले... सर्वज्ञ की वाणी के अलावा, उसका अखण्ड युक्ति से, न्याय से सिद्ध करके, मेरा वैभव प्रगट हुआ है। आहाहाहा ! कठिन काम है इसमें तो श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों को मिलाने जायें तब एकत्र हो जायें - ऐसा नहीं इस प्रकार आवाज उठाते है। उनके कहे हुये देव-गुरु-शास्त्र... आहाहा ! अखण्ड न्याय युक्ति से सिद्ध करके कि यह बात झूठी है, इसप्रकार मेरे निज वैभव का जन्म हुआ है। आहाहा ! कठिन काम है। अधिकांशतः तो सभी वेदांतादिकों का निराकरण है, `समस्त' शब्द (लिखा) है न ? समस्त शब्द है न ? समस्त विपक्ष जितने विपक्ष हैं... आहाहा ! वीतराग के शब्दब्रह्म द्वारा अनेकांतमयी जो कहा गया पूरा स्वरूप, उससे (भिन्न) विपक्ष है। आहाहा ! उनका एकांत है - इसप्रकार निराकरण करने में समर्थ है। अति अखण्ड न्याय, मेरी निर्बाध युक्ति, जिस युक्ति को कोई विघ्न कर सके नहीं, उस युक्ति का कोई खण्डन कर सके नहीं।

निर्बाध युक्ति... उसके अवलम्बन से जिसका जन्म हुआ है। आहाहाहाहा ! टीका, टीका बहुत गजब (की) है न ! यह सनातन जैन धर्म की व्याख्या है। आहाहा ! दो (बोल हुए) सर्वज्ञ की वाणी वह निमित्त और उसके विरोध का खण्डन करके निर्बाध युक्ति से निराकरण किया वह इसका निमित्त, अभाव। आहाहा !

`पुनश्च वह कैसा वैभव है ?' निज वैभव कैसा है ? `निर्मल विज्ञानघन जो आत्मा'... आत्मा की व्याख्या की, आत्मा कैसा है ? कि निर्मल विज्ञानघन। आहाहा ! यह आत्मा की व्याख्या की। निर्मल विज्ञानघन... अकेले ज्ञान का पिण्ड, ज्ञान का समुद्र, अपरिमित ज्ञान स्वरूप जिसका... आहाहा ! - ऐसा विज्ञानघन प्रभु। विज्ञानघन कहा है न पीछे देखो ! वह भी निर्मलविज्ञानघन, निर्मल ज्ञानघन नहीं कहा, अकेले विज्ञान घन (भी) नहीं कहा, निर्मल विज्ञानघन, त्रिकाल - ऐसा जो आत्मा, आहाहा ! उसमें अंतर्निमग्न... उसमें अन्तर्निमग्न। विज्ञानघन भगवान इसमें अंतर्निमग्न... अंतर्मग्न नहीं अंतर्निमग्न मुनि की बात है न ! आहाहा ! उसमें, अंतर्निमग्न... मुनि एवं अरहंत सभी लेना है इसमें। आहाहा ! निर्मल विज्ञानघन प्रभु आत्मा... अकेले विज्ञान का समूह पिण्ड प्रभु आत्मा, आहाहा ! जिसमें विकल्प का अभाव - ऐसा न लेकर अस्ति से बात ली है। निर्मल विज्ञानघन भगवान... उसमें अंतर्निमग्न - यह पर्याय ली है। आहाहा !

निर्मलविज्ञानघन जो आत्मा, उसमें अंतर्निमग्न, उस द्रव्य में निमग्न, निमग्न, अंतर्निमग्न, अंतर में नि...मग्न विशेष मग्न (लीन)। आहाहा ! परमगुरु सर्वज्ञदेव। है ! आहा ! श्रीमद् (राजचन्द्र) में भी आता है सर्वज्ञदेव परमगुरु, सर्वज्ञदेव परमगुरु, सर्वज्ञदेव परमगुरु, यह विज्ञानघन - ऐसा आत्मा, उसमें अंतर्निमग्न थे। आहाहा ! चाहे भले (ही) भगवान से मिले नहीं, तो अभी साक्षात्, भी हम निश्चित कर रहे हैं... आहाहा ! निर्मल विज्ञानघन आत्मा। एक शब्द पर्याप्त है, निर्मल विज्ञानघन... आहाहा ! उसमें अंतर्निमग्न परमगुरु सर्वज्ञदेव और अपरगुरु गणधर... गणधर भी निर्मल विज्ञानघन जो आत्मा उसमें अंतर्निमग्न हैं, यह भी अंतर्निमग्न सर्वज्ञ के समकक्ष इन्हें रखा (है) आहाहा !

अंतर्निमग्न परमगुरुसर्वज्ञदेव, 'और अपरगुरु गणधर'... यह भी विज्ञानघन आत्मा उसमें अंतर्निमग्न थे। वहाँ से लेकर हमारे गुरु पर्यंत। आहाहा ! वह महाव्रत पालते थे एवं नग्न थे न, यह बात (कारण) नहीं। आहाहाहाहा ! गणधरादि से लगाकर, ओहोहो ! दो हजार वर्ष हुये प्रभु, कुन्दकुन्दाचार्य को इतने वर्ष हुये। यहाँ तो अमृतचन्द्राचार्य - ऐसा कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य तो प्रभु (भगवान महावीर) के लगभग पाँचसौ वर्ष (बाद हुये) वह भी - ऐसा कहते हैं, कि गणधर से लगाकर हमारे गुरु पर्यंत सभी विज्ञानघन - ऐसा प्रभु, उसमें अंतर निमग्न थे। आहाहाहा प्रभु आप तो छद्मस्थ हो न ? सर्वज्ञ से लेकर अपने गुरु पर्यंत का आपने निश्चित (निर्णय) कर लिया ? आहाहा !

यह सिद्धांत... यह सत् का उद्घाटन है यह। आहाहा ! गुरु कैसे हो ? कि सर्वज्ञगुरु ऐसे... कि विज्ञानघन आत्मा में अंतर्निमग्न, ऐसे ही गणधर विज्ञानघन आत्मा में अंतर्निमग्न... ऐसे हमारे गुरु, अरेरेरे ! पंचमकाल में भगवान के पांचसौ वर्ष बाद हो गये तथा उसके बाद (भ. महावीर) के बाद पन्द्रहसौ वर्ष हो गये अमृतचन्द्राचार्य को तो ? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य के प्रति कहते हैं, परंतु हमारे गुरु परंपरा की परिपाटी यह... वह पंचमहाव्रत पालते तथा पांच समिति (रूप) व्यवहार था एवं निर्दोष आहार लेते थे, यह (क्रिया) कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा ! जो वंदन करने योग्य हो वह वस्तु नहीं। व्यवहार में नमस्कार (योग्य)... निश्चय से वंदन योग्य तो अपने (को) अपना स्वरूप है। आहाहा !

'अपरगुरु गणधर आदि से लेकर' हमारे गुरु... कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमारे गुरु... वास्तव में तो अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि हमारे गुरु पर्यंत... चाहे कुन्दकुन्दाचार्य - ऐसा कहते हैं परंतु मैं सत्युगुरु की परंपरा में आया हूँ। आहाहा ! मैं भी विज्ञानघन - ऐसा प्रभु, उसमें अंतर्निमग्न हूँ। आहाहा ! चाहे इस टीका का विकल्प उठा है (परंतु) उसमें मैं नहीं। आहाहा ! वाणी निकली उसमें मैं नहीं। टीका हो उसमें मैं

नहीं। ***आहाहा ! मैं तो विज्ञानघन भगवान आत्मा... उसमें अंतर्निमग्न, अंतर में 'निः विशेष मग्न' आहाहाहा ! कारण कि सम्यग्दृष्टि भी अंतर में मग्न है, परंतु निमग्न (विशेष) नहीं।*** आहाहा ! हमारे गुरु पर्यंत... प्रभु आपने सभी जान लिया ? सर्वज्ञ केवली के अतिरिक्त - ऐसा लोग कहते हैं न कि केवली के अतिरिक्त यह समकिती है कि नहीं, यह कौन जाने ? अभी तो - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! निश्चय समकित है कि व्यवहार यह केवली सिवाय कौन जाने - ऐसा कहते हैं। आहा ! वह तो कहते हैं कि हम जानते हैं। आहाहाहा ! हमारे गुरु थे, हमसे भिन्न वह भी विज्ञानघन आत्मा में अंतर्निमग्न थे। - ऐसा हम जानते हैं आहाहा ! (जो) पंचमहाव्रत का विकल्प है उसमें यह सत्य धर्म आता है। आहाहा ! सत्यवाणी में यह आया है कि वे अंतर्निमग्न हैं यह हम बराबर जानते हैं। आहाहाहा !

कहाँ है, ऐसी बात ? दास। आहाहाहा ! विरोध करनेवाले लोगों को - ऐसा लगता कि देखो तो विदेह (क्षेत्र) का नाम लेकर विदेह से आये हैं - ऐसा कह कर बाहर में प्रसिद्धि (चाहते हैं) और बहिन को जातिस्मरण है न, कल ही आया है, इस प्रकार दोनों प्रसिद्ध होना चाहते हैं। हमारे गुरु हैं वह बस शांत, मुनिपने में प्रसिद्ध हैं, मुनिपना है - ऐसा कहते हैं, भाई अवश्य हो परंतु बापू इसके बिना उसका कल्याण नहीं। आहाहा ! मुनि तो उसको कहते हैं, आचार्य उनको कहते हैं, उपाध्याय उनको कहते है, कि जैसे अरहंत विज्ञानघन में निमग्न हैं उसी प्रकार निमग्न हैं। आहाहा ! दोनों की एक जैसी तुलना की है इसलिए नियमसार में कहा है न एक जगह श्लोक में (सिद्ध में और मुनि में) थोड़ा फर्क है। फिर दूसरे श्लोक (में कहा) (सिद्ध और मुनि में) फर्क माने वह झूठा है। आहाहा !

भाव लिंगी संत, भले द्रव्य लिंगी हों वैसा ही उन्हें विकल्प हो, नग्नपना हो वह कहीं मुनिपना नहीं। वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं। आहाहा ! उसे व्यवहार मोक्षमार्ग तो कहते हैं। यह तो राग को व्यवहार उसे आरोपित (किया), नहीं उसे कहना उसका नाम व्यवहार। आहाहा ! यह तो गजब काम क्रिया है न ! हजार वर्ष पूर्व अमृतचन्द्राचार्य टीका करते हैं। आहाहा ! एकत्वविभक्त को दिखलायेंगे, अपने वैभव से। उस वैभव की परिभाषा स्वयं करते हैं, आहाहा ! भगवान के बाद कितने ? पांचसौ वर्ष बाद तो कुन्दकुन्द आचार्य हुये पंचमकाल में, तब उनके पंचमकाल के गुरु भी कहते हैं कि जैसे अरहंत अंतर्निमग्न थे वैसे ही हमारे गुरु अंतर्निमग्न थे। एक प्रवाह चला आता है। अरहंत से गणधर एवं हमारे गुरु पर्यंत वह विज्ञानघन (आत्मा) में अंतर्निमग्न हैं, ऐसी परंपरा चली आती है। उन्होंने हमसे कहा है - ऐसा कहना है। फिर यहाँ भी यही कहना है न ? उन्होंने हमारे ऊपर कृपा करके (कहा), अनुग्रह करके...

थोड़ा परंतु सत्य होना चाहिए बापू, कि जो सत्य तीनों कालों में पलटे नहीं - ऐसा होना चाहिए न ?

हमारे गुरु तक... अरहंत से लगाकर वर्तमान गुरु एक प्रवाह में लिये ? सभी एक जैसे अंतर्निमग्न लिये। फरक कहीं नहीं कि भाई अंतर्मग्न यहाँ कम है तथा केवली ज्यादा है। (अनुभव में पूरे) उनकी अवस्था में भले अंतर हो, पूर्णता (न हो) परंतु वहाँ भी आत्मा के स्वभाव का पूरा अंदर में लक्ष्य है, आहाहा ! दोनों सभी अरहंत से गणधर आचार्य परंपरा, जितने आचार्यों ने शास्त्र लिखे वह सभी आचार्य ऐसे थे। आहाहाहा ! प्रभु तुम पंचमहाव्रत धारी हो न ? छद्मस्थ हो न अतः असत्य न आजाये ? तब सत्यमहाव्रत न रहे। कहते हैं अरे सुनो, आहाहा ! हमसे जो कहा जाता है वह पूरा सत्य ही है। हमारे गुरु ऐसे अंतर्निमग्न थे जो कहा वह हमारा पूरा सत्य ही है। आहाहा !

`उनके प्रसादरूप से दिया गया' आहाहा ! ऐसे जो विज्ञानघन में अंतर्निमग्न थे उनसे प्रसादरूप में... प्रसादी हमको मिली। आहाहा ! `शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश'... आहाहाहा ! ***हम पात्र थे इसलिये हमें दिया - ऐसा न कह कर... आहाहा ! उनका प्रसाद... उनकी महेरबानी हुयी, आहा ! उनकी महेरबानी से मिला हुआ*** शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश... आहाहा ! कृपापूर्वक उपदेश महेरबानीपूर्वक कृपा करके हमारे गुरु ने हमको यह उपदेश दिया है। आहाहा ! देखो संतों की सन्त (गुरु) के प्रति विनय भक्ति। आहाहा ! उनके द्वारा प्रसाद रूप में दिया गया... आहाहा ! महेरबानी से दिया गया... क्या ? शुद्धात्मतत्त्व का... बस एक ही आत्मा का उपदेश दिया उन्होंने ? छह द्रव्य-गुण-पर्याय का यह सभी कुछ नहीं ? यह उपदेश उस अनुभूति के लिये ही है। दूसरा सभी उपदेश भी शुद्धात्मा के लिये ही है। आहाहा ! अन्य को जानने के लिये रूकना... इसके लिये नहीं। आहाहाहाहा ! दो बातें, उनकी महेरबानी से दिया गया। आहाहाहा ! गुरु ने महेरबानी की और अनुग्रहपूर्वक शुद्धात्मा का उपदेश (दिया)। आहाहाहा ! `उससे जिसका जन्म हुआ है' यह निमित्त अपेक्षा बात है यह।

हमारे आत्मा के आनंद का वैभव... उसमें प्रारंभ से ऐसे जो हमारे गुरु, वह हमको वाणी में निमित्त थे, उनकी वाणी यहाँ निमित्त (थी)। उन्होंने महेरबानी करके, कृपा करके उपदेश दिया, आहाहा ! उस शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया, कारण कि सभी कह कहकर, लाख करोड़ बात हो, (आशय) तो स्व का आश्रय करना है। यह एक बात है। हाँ। चाहे जैसी कथा हो कोई भी अनुयोग हो, स्व का आश्रय करना, इसलिये स्व के आश्रय की ही बात हमने की। आहाहा ! देखो यह वीतराग

कथा ! वीतराग जिनेश्वर देव की यह वाणी (एवं) संत उस वाणी को कहते हैं। आहा ! हमारे ऐसे आनंद का अनुभव... - ऐसा हमारी पर्याय का वैभव, वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी आनंद, आहाहा ! और जितने गुण हैं वह सभी हमारी जो भूमिका है (उसमें) व्यक्तरूप से... व्यक्तरूप अंश तो चौथे (गुणस्थान) में भी है, परंतु हमारी भूमिका में जितने व्यक्तरूप विशेषण हैं, आहाहा ! उसमें हमारे गुरु का शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश निमित्त था।

अब अपनी बात करते हैं।

पुनश्च, वह कैसा है वैभव ? `निरंतर झरता हुआ'... आहाहा ! कैसा आनंद। अंदरमें से निरंतर झरता... पहाड़में से जैसे पानी झरता है, उसीप्रकार भगवान आत्मामें से निरंतर (आनंद) झरता, `आस्वाद में आता,' वेदन में आता... आहाहा ! `सुन्दर जो आनंद,'... सुन्दर आनंद, अतीन्द्रिय आनंद... आहाहा ! निरंतर झरता, लगातार आता, एक तो यह बात, निरंतर अतीन्द्रिय आनंद आता है, किसी समय आया एवं किसी समय (नहीं आये) - ऐसा नहीं। आहाहा ! ***जितना आनंद तथा जितना सुख, जो अतीन्द्रिय ज्ञान और अंतर प्रतीति अर्थात सम्यग्दर्शन की जो निर्मल दशा प्रगटी (वह) निरंतर है, निरंतर वर्तती है।*** आहाहाहा ! प्रभु (कुन्दकुन्दआचार्य) आप छद्मस्थ हैं न ? पंचम काल के साधु... तब भी ऐसी बात जान गये ? आहाहा ! निरंतर, अंतर बिना आनंद अतीन्द्रिय आनंद, आनंद झरता है, आस्वाद में आता है, वह हमारे वेदन में आता है, आहाहाहा ! सुन्दर जो आनंद... आनंद को भी, उपमादी `सुन्दर'। जगत के विषयानंद में (जो) आनंद आता है वह तो दुःखरूप, आहाहाहा ! `सुन्दर' लालचन्द्रभाई कई बार बोलते हैं। यह सुन्दर शब्द, सुन्दर बात है, यह सुन्दर आयी - ऐसा कहते हैं।

`सुन्दर जो आनंद... उसकी मुद्रा से युक्त है' आहाहा ! भगवान की वाणी जिसप्रकार `स्यात्' मुद्रा से युक्त है, उसीप्रकार हमारा अनुभव भी अतीन्द्रिय आनंद की मुद्रा से युक्त है। आहाहा ! अकेला चारित्र ही प्रगटा है तथा अकेला ज्ञान प्रगटा है, वीर्य से ज्ञान की रचना अकेली हुयी है - ऐसा नहीं, उसके साथ अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। कहते हैं वह उसकी मुद्रा सें युक्ता है, आहाहा ! इसमें ज्ञान का इतना क्षयोपशम हो तो ही मुहर छाप है - ऐसा नहीं, उसी प्रकार क्षायिक सम्यक्‌दृष्टि हो तब ही वह मुद्रा संयुक्तता है एवं क्षयोपशम (सम्यक्त्व) हो तो मुद्रासंयुक्तता नहीं - ऐसा नहीं, आहाहा ! क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि (दोनों) आहाहा !

सुन्दर आनंद युक्त, मुहर छाप है, आहाहा ! जैसे पत्र में लगाते है न मुद्रा फिर आगे जाता है न, इस विधि से पत्र ले जाया जाता है, इसीप्रकार यह हमारे आनंद के अनुभव की मुद्रासंयुक्ता है। आहाहा ! हमारे मुनिपने में आनंद की मुद्रा

छाप आनंद की है। पंचमहाव्रत के विकल्प हैं, वह उसकी मुद्रा है, नग्नपना वह उसकी मुद्रा है - ऐसा नहीं, अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं वह उसकी मुद्रा छाप है, (- ऐसा नहीं) आहाहा ! अब ऐसी बात हो तब कहते हैं एकांत कहते हैं, पंच महाव्रतों को पालते-पालते शुभ से होगा - ऐसा नहीं कहते, (इस प्रकार लोग) कहते हैं, यह तो पंचम काल के मुनि - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! काल अनुकूल होता ही नहीं उसे, अनुभव से - ऐसा कहते हैं। अरहंतो का काल था और ऐसी उनकी दशा थी अंतर्मग्न... ऐसी ही हमारी अंतर्मग्नता है। आहाहाहा ! पंचम काल होने पर भी। आहाहा ! काल (पंचम) है इसलिये कहीं हीन दशा हो गई है। - ऐसा नहीं है। आहाहा !

सुन्दर जो आनंद, उसकी मुद्रा... है न ? अनवरत सुन्दर आनंद मुद्रित, आहाहा ! वह भी प्रचुर स्वसंवेदन रूप। आहाहा ! `प्रचुरस्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन' आहाहाहा ! मुनि है न ! प्रचुर अर्थात बहुत (अधिक) ही संवेदनस्वरूप, स्वयं को अपना वेदन हो - ऐसा प्रचुरसंवेदनरूप स्वसंवेदन, उससे इसका जन्म है। यह उपादान लिया, वह निमित्त से बात की थी। आहाहा ! निमित्त हो (परंतु) उससे हो - ऐसा नहीं, परंतु - ऐसा निमित्त होता है, गमन करते हुये (पदार्थों को) धर्मास्तिकाय ही निमित्त हो, दूसरा निमित्त न हो, फिर भी निमित्त, उसे गमन कराता नहीं। आहाहा ! इसीप्रकार यहाँ अनुभव में निज वैभव में निमित्त हो तो वीतराग की वाणी ही, हमारे गुरु पर्यंत कहनेवाले साधुओं का उपदेश कहा है न ? यह हमको उपदेश मिला है। आहाहा ! उससे हमारा जन्म... यहाँ निमित्त - ऐसा ही हो - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ***फिर भी निमित्त से वहाँ होता नहीं, भाषा तो ऐसी है, उससे जिसका जन्म है। हाँ ? जिससे उसका जन्म है, ऐसे निमित्त से ही जिसकी उत्पत्ति है, उसका अर्थ यह कि उत्पत्ति काल में - ऐसा निमित्त हो - इसप्रकार।*** आहाहा !

वाणी से, निमित्त से हो तब तो सभी वाणी सुनते हैं। तब निमित्त कहाँ है ? आहाहा ! यहाँ तो मुद्रावाला प्रचुरस्वसंवेदनरूप... बहुत अधिक आत्मा का आनंद स्वरूप, प्रचुरस्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन आहाहा ! एक पांचमी गाथा, यदि (यह) अच्छीतरह से सुने और विचारे तो सभी झगड़े निकल जायें - ऐसा भाग्य कहाँ है बापा ! आहाहा ! अरे इस आत्मा को सुखी करना चाहते हैं न ? आहाहा ! परंतु सुखी कैसे हों उसका पता नहीं, इसलिये कैसे हो ? अरेरे ! कोई दुःखी रहना चाहे ? परंतु पता नहीं है। आहाहा ! पंचम काल के मुनि ऐसे होते हैं ? कि चौथे काल के अथवा पंचमकाल के, मुनि ऐसे ही होते हैं। आहाहा !

पुलाक का उदाहरण देते हैं, जो वह ऐसे दोषवाले हो तो भी मुनि हैं। परंतु

जो दोष है वह मुनिपना नहीं, मुनिपना तो यह है। आहाहा ! पुलाक बकुश हैं उन्हें भी मुनिपना... तो यह (प्रचुरस्वसंवेदना) है। समझ में आया ? आहाहा !

स्वसंवेदन... उससे जिसका जन्म है। हमारे आनंद के प्रचुर वेदन से हमारे वैभव का जन्म है, यह उपादान कहा, आहाहा ! उससे, उससे आया न सभी में निमित्त में भी उससे आया था। उपादान में भी उससे आया है। व्यवहार निमित्त है, उसका ज्ञान कराया... यही वस्तु निमित्त हो। ***गमन करे तब धर्मास्तिकाय ही निमित्त हो, चाहे अन्य, लाख करोड़ दूसरे द्रव्य हों अनंत परमाणु हों, परंतु वह कहीं गमन में निमित्त नहीं, निमित्त भी इतना सिद्ध करना, आहाहा ! परंतु हमारे निज वैभव में - ऐसा ही निमित्त होता है। उस निमित्त से यहाँ (कार्य) होता है - ऐसा नहीं।*** आहाहा ! होता है तो हमारे अनुभव की सुन्दर मुद्रारूप वेदन से जिसका जन्म हुआ है। है न ? आहाहाहा !

इसप्रकार, जिस-जिस प्रकार हमारा ज्ञान का वैभव है... यह ज्ञान का वैभव कहलाये। आहाहा ! ***उसकी श्रद्धा, उसका आनंद, उसके वीर्य की स्फूर्ति, स्वरूप की रचना, यह सभी ज्ञान का वैभव है, आत्मा का वैभव है।*** आहाहा ! उस सभी वैभव से... देखा ? जिस-जिस प्रकार मेरे ज्ञान का वैभव वह, उस समस्त वैभव से... आहाहा ! 'दर्शाता हूँ' समस्त वैभव से मैं दर्शाता हूँ। आहाहा ! यहाँ तक तो अभी सामान्य बात की... दिखाता हूँ, अब कहते हैं '***दिखायेंगे तो***' यह विशेष बात कही जायेगी।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. २० गाथा-५ ता. २९-६-७८ गुरुवार जेठ वदि-९ सं.२५०४

समयसार गाथा पांच। बद्ध व्यवसाय... इतना कहा, बद्ध इतना कहा है संस्कृत में बद्ध है। बद्ध व्यवसाय... आचार्य क्या कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य कि मैं इस समयसार को अपने निज वैभव से कहूँगा। निज वैभव अर्थात आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद का प्रचुर स्वभाव का वेदन, वह निज वैभव आत्मा का प्रचुर स्वसंवेदन अतीन्द्रिय आनंद का वह निज वैभव। उस निज वैभव से मैं कहूँगा समयसार - ऐसा कहते हैं। यह निज वैभव कैसे उत्पन्न हुआ ? तीन निमित्त तथा चौथा उपादान मेरा, प्रथम तो सर्वज्ञ की वाणी उसकी उपासना से हमारे निज वैभव का उद्भव... प्रगट हुआ है, निमित्त अरहंत सर्वज्ञ की वाणी, इसके अतिरिक्त अन्य कोई निमित्त हो सके (नहीं)। अन्यमत

के एकांत का निराकरण करने (वाली) अतिनिस्तुष युक्ति से निर्णय करके हमारा निज वैभव प्रगटा है। समझ में आया ? तीसरा-अरहंत सर्वज्ञ परमात्मा जो निर्मल विज्ञानघन में निमग्न अंतर्निमग्न थे, वहाँ से वह हमारे गुरु पर्यंत निर्मल विज्ञानघन में अंतर्निमग्न थे। आहाहा ! उन संतो ने मुझ पर महेरबानी करके कृपा की... प्रसादरूप शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया। यहाँ तक आ गया है, परसों के दिन, आहाहा !

उससे हमारा जन्म, निज वैभव का। यह तीननिमित्त हुये, चौथा अतीन्द्रिय आनंद का प्रचुर स्वसंवेदन यह हमारे अनुभव की मुद्रा, छाप, मुहर छाप, मुद्रा। आहाहा ! ***प्रचुर अतीन्द्रिय आनंद का वेदन... अभी राग है, वीतरागी नहीं। परंतु उस राग को भिन्न करके एवं अपने स्वरूप का स्वसंवेदन, स्व अर्थात अपना अपने से प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय आनंद की मुहरछापवाला अनुभव है। - ऐसा हमारा वैभव इसप्रकार प्रगटा है।*** उससे मैं अपने निज वैभव को अनुभव करके यह समयसार कहूँगा - ऐसा कहा। यहाँ तक आया है, समस्त वैभव से दिखलाता हूँ। वहाँ तक आया है। आहाहाहा !

'जो दिखलाऊँ (तो)' क्या कहते हैं। मुझे - ऐसा व्यापार, पुरुषार्थ निर्णय हुआ कि मैं अब इस मेरे निज वैभव से इस समयसार को कहूँ। परंतु जो दर्शाऊं, दिखाऊं यह शर्त रखते हैं, आहाहा ! है ? 'दिखाऊँ तो... स्वयं अपने ही, आहाहाहा ! अपने अनुभव-प्रत्यक्ष से परीक्षा करके प्रमाण करना'... ओहोहो ! कितने शब्द प्रयोग किये है ? मैं इस आत्मा को राग से भिन्न, और स्वभाव से एकत्व, एकत्व-विभक्त, दिखालऊं परंतु दिखलाऊं तो तुमसे शर्त इतनी है... आहाहा ! तुम्हें स्वयं बतलाऊं तो प्रथम तो दिखलाऊं यह पहले आ गया है, दिखलाऊं परंतु दिखलाऊं तो, आहाहा ! आहाहा ! स्वयमेव, स्वयं एव तुम अपने से ही स्वयं शब्द है न ? स्वयं अर्थात खुद को एव अर्थात 'ही' स्वयमेव तुम्हारे अपने से ही, आत्मा से ही... आहाहा ! अपने अनुभव प्रत्यक्ष से आहाहा ! हम कहते हैं कि तुम्हारा आत्मा राग से भिन्न है, और स्वरूप से एकत्व है, उसका अपने स्वयं के अनुभव में अंतर्मुख करके, अनुभव की परीक्षा का, आहाहा ! प्रत्यक्ष अनुभव... ऐसी बात है, स्वयं से तुम अनुभवो (कि) आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंद स्वरूप है। उसका खुद से ही, स्वयं ही अनुभव से प्रत्यक्ष करके... इतनी शर्त है। तुम्हारे आनंद का प्रत्यक्षरूप तुम्हें वेदन हो, इसप्रकार अनुभव प्रत्यक्ष से, यह परीक्षा... परीक्षा द्वारा अनुभव करके... आहाहा ! ऐसी बात है, कहते हैं (कि) भले राग हो, परंतु राग से भिन्न और स्वभाव से अभिन्न एकत्व-विभक्त - ऐसा शब्द लिखा है न ! '**एयत्तविहत्तं दर्शयेहमात्मनः**' पहला पद यही है, एकत्वं विभक्तं यह दिखायेंगे। आहाहा ! यह रागादि भले शुभ हों परंतु यह शुभ राग से विभक्त - भिन्न और अंतर स्वरूप चैतन्यमूर्ति एकत्व है। आहाहा ! उसे मैं दिखलाऊं एवं दिखलाऊं तो

तुम स्वयं के अनुभव प्रत्यक्ष से... कितने (कैसे) शब्द प्रयोग किये है ? एक तो स्वयं अपने अनुभव प्रत्यक्ष से परीक्षा करके... आहाहा !

यह आत्मा अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप है, और राग से भिन्न है इसप्रकार हमने जो कहा उसका ***तुम अनुभव की परीक्षा से प्रत्यक्ष प्रगट करके प्रमाण करना।*** आहाहा ! अनुभव करके प्रमाण करना। आहाहा ! देखो ! ***पंचमकाल के श्रोताओं को इसप्रकार कहते हैं। स्वयं पंचमकाल के साधु हैं आहाहा ! अंदर वस्तु है वह अतीन्द्रिय ज्ञान एवं अतीन्द्रिय आनंद उससे एकत्व है,*** वस्तु एवं राग चाहे तीर्थंकरगोत्र का विकल्प हो कि किसी भी प्रकार के राग से विभक्त अर्थात भिन्न है। वह तुम्हें दिखाऊँ और जो दिखाऊँ तो, आहाहाहा ! स्वयं अपने से स्वमेव अनुभव से, अनुभव में प्रत्यक्ष परीक्षा करके प्रमाण करना। आहाहाहा ! तुम्हें - ऐसा विश्वास होना चाहिए कि हम कहते हैं - ऐसा ही आत्मा है। आहाहा ! हम कहते हैं और कहा वैसा तुम्हें अनुभव में आये कि जैसा इन्होंने कहा, तो - ऐसा ही यह स्वरूप है - ऐसा अनुभवमें से प्रमाण करना। इसका अर्थ इतना कि हमने कहा, तुमने सुना, अब सुनने का लक्ष्य छोड़कर। आहाहाहा !

खुद अपने से स्वमेव तथा अपने अनुभव प्रत्यक्ष से परीक्षा करके प्रमाण करना। आहाहा ! इतनी शर्त रखी है। आहाहा ! (श्रोता :- अंतर अनुभव करने में कुछ भूल हो जाये तो उसका निर्णय कैसे हो) भूल नहीं होगी - ऐसा यहाँ कहते हैं। यह मैंने कहा है उसी रीति से स्वयं, स्वयं अपने से अनुभव प्रत्यक्ष से प्रमाण कर तो हमने तुमको जैसा कहा है - ऐसा ही अनुभव होगा और उस अनुभव से परीक्षा करके प्रमाण करना। आहाहा ! सूक्ष्मबात है भाई ! यहाँ से प्रारंभ होता है। यहाँ करते हैं फिर छठवीं गाथा में उसका जोड़ करेंगे। आहाहाहा !

ऐसी बात दिगम्बर संतों के अतिरिक्त कहीं सुनने को मिले - ऐसा नहीं। आहाहा ! संप्रदाय में लीन लोगो को खबर नहीं, कि किस विधी से अनुभव होता है, तब क्या करे ? यहाँ कहते हैं कि साक्षात् स्वयं-स्वयं से... अपने में दो बातें स्वमेव खुद ही अपने अनुभव प्रत्यक्ष से परीक्षा करके प्रमाण करना। आहाहा ! ***गृहस्थ आश्रम में रहता हो उसे भी कहते हैं कि तुम, (सुनों) मैं कह रहा हूँ। उसे इस तरह अनुभव से प्रमाण करना, चाहे उसे राग हो, आहाहा ! गृहस्थ, मुनि न हुआ हो उसे अशुभ राग भी आये, और उस राग से पृथक् है - ऐसा अनुभव करना।*** आहाहाहा !

'जो कहीं' अंतिम शब्द है न ? अक्षर, मात्रा, ह्रस्वई, दीर्घई आदि... अलंकार युक्ति आदि प्रमाणों में चूक जाऊँ तो दोष ग्रहण करने में, सावधान नहीं होना। दोष तुझे यदि ख्याल में आ जाये परंतु उसमें सावधान नहीं होना। आहाहा ! तुम्हें जानते

समय ख्याल में आ जाये कि इसमें इस जगह भूल है यह अक्षर की, मात्रा की, युक्ति की, अलंकार की, आहा ! तो सावधान नहीं होना। ख्याल में तुझे आये परंतु हम तुम से कहते हैं वह वस्तु का अनुभव है, वह राग से भिन्न (स्वभाव का) अनुभव कराना है, उसमें फर्क नहीं। आहाहा !

क्योंकि शास्त्र (रूपी) समुद्र के प्रकरण बहुत हैं। बहुत जाति, युक्ति, धातु, अलंकार, मात्रा, अक्षर बहुत प्रकार हैं, इसलिये यहाँ स्वसंवेदन रूप अर्थ प्रधान है। यहाँ तो स्व नाम अपने में आनंद का वेदन - ऐसा जो पदार्थ, वस्तु वह मुख्य है। आहाहा ! यदि कोई संस्कृत व्याकरण उसमें कहीं फर्क हो तो उसे तुम पकड़ना नहीं। आहाहा ! `उसके अर्थ की परीक्षा करना' अर्थ अर्थात वस्तु, आत्मा आनंदस्वरूप का अनुभव करना यह अर्थ की परीक्षा। आहाहा ! अर्थ की परीक्षा, आहा ! कि जो वस्तु है, उसका अनुभव करना वह अर्थ अंत में तो आता है न ? तत्त्वार्थ - तत्त्व के अर्थ को जानकर, आहाहा ! तत्त्व का अर्थ जो है उसे जानकर अर्थ (पदार्थ) में स्थिर होगा। आहाहा !

भावार्थ :- `आचार्य आगम का सेवन'... वह भी आगम उसे कहते हैं कि जो अरहंत सर्वज्ञ के मुख (से) निकली हुयी बात... कल्पित आगम जो है लोगों द्वारा किये गये वह नहीं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा उनके मुख से निकली हुयी वाणी। `**मुख ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे**', उस वाणी को यहाँ आगम कहा जाता है। है ? आहाहा ! उस आगम का सेवन...कठिन बात है। वास्तव में तो श्वेताम्बर के आगम भी आगम नहीं - ऐसा यहाँ निषेध करते हैं तब उनका सेवन अनुभव में निमित्त हो - ऐसा है नहीं। आहाहा ! यह जो आगम सर्वज्ञ की कही हुयी वाणी जिसे गणधर ने गूँथा हो, वह वाणी आगम। आहाहा !

उस आगम का सेवन एक बात, युक्ति का अवलम्बन... अन्यमति जितने एकांत वादी हैं, उनका निस्तुषयुक्ति से उसका हमने खण्ड किया है, निराकरण करके हमको अनुभव हुआ है। आहाहाहा ! जितने ३६३ पाखण्ड हैं उन सभी का हमने युक्ति से निराकरण किया है कि यह वस्तु झूठी है। आहाहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात... - ऐसा समय। आहाहा ! दूसरी बात।

`***अपरगुरुओं का उपदेश***... आहाहा ! अरहंत से लगाकर हमारे गुरु उनकी परंपरा से मिला हुआ उपदेश। आहाहा ! ***और चौथा स्वसंवेदन यह तीन निमित्त और चौथा यह स्वसंवेदन उपादन।*** आहाहा !

`यों चार प्रकार से उत्पन्न हुये अपने ज्ञान के वैभव से', हमारे निज ज्ञान के वैभव से एकत्व विभक्त;... एकत्व-विभक्त कहना है न ? अंदर (में) पूरण अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंद से एकत्व है और रागादि विकल्प से पृथक् है, है अवश्य रागादिक,

परंतु हैं पृथक्। आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय का जो विकल्प उठता है, उस राग से भी पृथक् आत्मा है, आहाहा ! समझ में आया ? `स्वसंवेदन..... इन चार बातों से (उत्पन्न हुआ अपना) ज्ञान के वैभव से एकत्व-विभक्त ऐसे शुद्धात्मा उसका स्वरूप दिखाते हैं।' आहाहाहा ! चाहे जिस प्रकार का शुभ राग हो परंतु उससे तो प्रभु आत्मतत्त्व भिन्न है, क्योंकि जो राग है वह तो आस्रव तत्त्व में जाता है, और आत्मा है वह तो ज्ञायक तत्त्व है, दोनों तत्त्व बिलकुल, नवतत्त्वों से भिन्न हैं। आहाहाहा !

एकत्व विभक्त शुद्धात्मा का स्वरूप दिखाते हैं। आहाहा ! और `सुननेवाले' हे श्रोताओ। आहाहा ! `अपने स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से प्रमाण करो'। आहाहा ! उसमें मात्र मुनि को... - ऐसा कहीं नहीं कहा, जो श्रोता है। आहाहा ! बापू ! करने जैसा तो यह है। जो कुछ कर्तव्य है मोक्ष के मार्ग का वह तो राग से भिन्न स्वभाव से अभिन्न यह कर्तव्य है। आहाहाहा ! सुननेवाले हे श्रोताओ ! अपने स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से प्रमाण करो ! अपनी जाति को अनुभव में प्रत्यक्ष (लो) स्व का **सं** (अर्थात) प्रत्यक्ष उसको वेदन से प्रमाण करो (आहाहा ! अर्थात कि अनुभव करो। आहाहा ! प्रथम तो यह करना है, फिर आगे शांति बढ़े स्व के आश्रय से व्रत के विकल्प आयें, पांचमें गुणस्थान में, छठवें गुणस्थान में भी, यह सभी विकल्प आस्रव हैं। आहाहा !

करना तो यह है। उस समय भी विभक्तपना (तो) है यह तुम्हें करना है, व्रत (के परिणाम) आते हैं छठवें गुणस्थान में पंचमहाव्रत आदि, पांचमें में बारहव्रत परंतु उस समय भी उनसे विभक्त करना है। आहाहा ! उसके एकत्व से, उसीसे विभक्त हो सकें - ऐसा नहीं। शुभ राग के एकत्व से उससे भिन्न हुये - ऐसा नहीं उससे भिन्न करो तो भिन्न होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

स्वयं के स्वसंवेदन (से) `स्व' अर्थात स्वयं का वेदन `सं' अर्थात प्रत्यक्ष प्रमाण करके, `कहीं कोई प्रकरण' अर्थात अध्यायों में, अनुभव के अतिरिक्त अध्यायों में भूल जाऊँ तो इतना दोष ग्रहण नहीं करना - ऐसा कहा, उन दोषों पर ध्यान नहीं देना। `यहाँ स्वयं के अनुभव की प्रधानता है' अनुभव की मुख्यता है, यहाँ तो। आहाहाहा ! उससे शुद्ध स्वरूप का निश्चय करो, कहने का यह आशय है। यह पं. जयचन्द्रजी ने भावार्थ में लिखा (है)। पहले के पण्डित ऐसे थे दिगम्बर पण्डित लोग जयचन्द्रजी पण्डित टोडरमल, बनारसीदास, भागचन्द्रजी आदि। ओहोहो ! जयचन्द्र पण्डितजी ने यह भावार्थ भरा है कि आचार्यों का यह कहना है, आहाहा ! प्रचलित भाषा में।

तो अब शिष्य को प्रश्न उठता है, यह प्रश्न उठता है कि - ऐसा शुद्धात्मा कौन है ? है ऊपर (शीर्षक में) `कोऽसौ शुद्धात्मेतिचेत' जो एकत्व है और पर से विभक्त है - ऐसा शुद्धात्मा है कैसा ? कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए ? शिष्य

का यह अंदर से आया है कि - ऐसा वह शुद्धात्मा स्वभाव से अभेद और राग से भिन्न - ऐसा शुद्धात्मा कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए - ऐसा है न? चेत का अर्थ हुआ न ? - ऐसा जिसको अंतर जिज्ञासा से प्रश्न उठा है ऐसे श्रोता को उत्तर दिया जाता है। सुनने के लिये आये इसलिये अपने को सुनना चाहिए - ऐसों के लिये नहीं कहते हैं। जिसे अंतर से प्रश्न उठा है, वह शुद्धात्मा वह कौन है यह ? क्या है यह वह वस्तु और कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए, दूसरे द्रव्य को जानना चाहिए - यह प्रश्न उसे उठा ही नहीं। छहद्रव्य को, छह द्रव्य के गुणों को, यह बात तो साधारणतय गौणरूप से अंदर आयी। - ऐसा जो भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप स्वभाव से एकत्व एवं राग से विभक्त - ऐसा जो शुद्ध - ऐसा वह आत्मा कौन है ? कैसा है ? कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए। - ऐसा शुद्धात्मा कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए ? आहाहाहा ! है ? इस प्रश्न के उत्तरस्वरूप गाथा है। - ऐसा जिसको प्रश्न अंदरमें से उठा है कि यह शुद्ध है वस्तु अंदर पूर्णानंद का नाथ प्रभु - ऐसे विकल्प के विकार से बिलकुल भिन्न और अपने परिपूर्ण स्वभाव से एकत्व अभेद - ऐसा वह शुद्धात्मा है कौन ? कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए ? आहाहाहाहा ! - ऐसा जिसका प्रश्न अंतरमें से उठा है - ऐसे श्रोताओं को यह उत्तर देने में आता है, आहाहा ! क्या शैली !

गाथा - ६

कोऽसौ शुद्ध आत्मेति चेत् -

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव।।६।।

नापि भवत्यप्रमत्तो न प्रमत्तो ज्ञायकस्तु यो भावः।
एवं भणंति शुद्धं ज्ञातो यः स तु स चैव।।६।।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि - ऐसा शुद्ध आत्मा कौन है जिसका स्वरूप जानना चाहिए ? इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं :-

नहिं अप्रमत्त प्रमत्त नहिं, जो एक ज्ञायक भाव है।
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात वो तो वो हि है।।६।।

गाथार्थ :- [यः तु] जो [ज्ञायकः भावः] ज्ञायक भाव है वह [अप्रमत्तः अपि] अप्रमत्त भी [न भवति] नहीं और [न प्रमत्तः] प्रमत्त भी नहीं है; [एवं] इसप्रकार [शुद्धं] इसे शुद्ध [भणंति] कहते हैं; [च यः] और जो [ज्ञातः] ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ [सः तु] वह तो [स एव] वही है, अन्य कोई नहीं।

टीका :- जो स्वयं अपने से ही सिद्ध होने से (किसी से उत्पन्न हुआ न होने से), अनादि सत्तारूप है, कभी विनाश को प्राप्त न होने से अनंत है, नित्यउद्योतरूप होने से क्षणिक नहीं है और स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है - ऐसा जो ज्ञायक एक `भाव' है, वह संसार की अवस्था में अनादि बन्धपर्याय की निरूपणा से (अपेक्षा से) क्षीरनीर की भाँति कर्मपुद्‌गलों के साथ एकरूप होने पर भी द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से देखा जाय तो दुरंत कषायचक्र के उदय की (-कषायसमूह के अपार उदयों की) विचित्रता के वश से प्रवर्त्तमान पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले समस्त अनेकरूप शुभाशुभ भाव, उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता (ज्ञायकभाव से जड़भावरूप नहीं होता) इसलिये वह प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है; वही समस्त अन्यद्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ `शुद्ध' कहलाता है।

और जैसे दाह (-जलने योग्य पदार्थ) के आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं तथापि उसके दाहकृत अशुद्धता नहीं होती, उसीप्रकार ज्ञेयाकार होने से उस `भाव'

के ज्ञायकता प्रसिद्ध है, तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है; क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ वह स्वरूपप्रकाशनकी (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी, दीपककी भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व (एकता) होने से ज्ञायक ही है, स्वयं जाननेवाला है - इसलिये स्वयं कर्ता और अपने को जाना इसलिये स्वयं ही कर्म है। (जैसे दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है, और अपने को-अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है, अन्य कुछ नहीं; उसीप्रकार ज्ञायक को समझना चाहिये।

भावार्थ :- अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। उसमें मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप नहीं होता, मात्र परद्रव्य के निमित्त से अवस्था मलिन हो जाती है। द्रव्य-दृष्टि से तो द्रव्य जो है वही है, और पर्याय (अवस्था)-दृष्टि से देखा जाये तो मलिन ही दिखाई देता है। इसीप्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्वमात्र है; और उसकी अवस्था पुद्‌गलकर्म के निमित्त से रागादिरूप मलिन है, वह पर्याय है। पर्यायदृष्टि से देखा जाये तो वह मलिन ही दिखाई देता है और द्रव्यदृष्टि से देखा जाय तो ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है; यह कहीं जड़त्व नहीं हुआ। यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है। जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं वे परद्रव्य की संयोगजनित पर्याय हैं। यह अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है, व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, उपचार है। द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, अभेद है, निश्चय है, भूतार्थ है सत्यार्थ है, परमार्थ है। इसलिये आत्मा ज्ञायक ही है; उसमें भेद नहीं हैं इसलिये वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। `ज्ञायक' नाम भी उसे ज्ञेय को जानने से दिया जाता है; क्योंकि ज्ञेय का प्रतिबिम्ब जब झलकता है तब ज्ञान में वैसा ही अनुभव होता है। तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है, क्योंकि जैसा ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ वैसा ज्ञायक का ही अनुभव करने पर ज्ञायक ही है। `यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ, अन्य कोई नहीं' - ऐसा अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ तब इस जाननेरूप क्रिया का कर्ता स्वयं ही है, और जिसे जाना वह कर्म भी स्वयं ही है। - ऐसा एक ज्ञायकत्वमात्र स्वयं शुद्ध है - यह शुद्धनय का विषय है। अन्य जो परसंयोगजनित भेद हैं वे सब भेदरूप अशुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषय हैं। अशुद्धद्रव्यार्थिकनय भी शुद्ध द्रव्य की दृष्टि में पर्यायार्थिक ही है इसलिये व्यवहारनय ही है - ऐसा आशय समझना चाहिये।

यहाँ यह भी जानना चाहिये कि जिनमत का कथन स्याद्वादरूप है, इसलिये अशुद्धनय को सर्वथा असत्यार्थ न माना जाये; क्योंकि स्याद्वादप्रमाण से शुद्धता और अशुद्धता, दोनों वस्तु के धर्म हैं और वस्तुधर्म वस्तु का सत्त्व है; अंतर मात्र इतना ही है कि अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से होती है। अशुद्धनय को यहाँ हेय कहा

है क्योंकि, अशुद्धनय का विषय संसार है और संसार में आत्मा क्लेश भोगता है; जब स्वयं परद्रव्य से भिन्न होता है तब संसार छूटता है और क्लेश दूर होता है। इसप्रकार दु:ख मिटाने के लिये शुद्धनय का उपदेश प्रधान है। अशुद्धनय को असत्यार्थ कहने से यह न समझना चाहिये कि आकाश के फूल की भाँति वह वस्तुधर्म सर्वथा ही नहीं है - ऐसा सर्वथा एकांत समझने से मिथ्यात्व होता है; इसलिये स्याद्वाद की शरण लेकर शुद्धनय का आलम्बन लेना चाहिये। स्वरूपकी प्राप्ति होने से बाद शुद्धनय का भी आलम्बन नहीं रहता। जो वस्तुस्वरूप है वह है-यह प्रमाणदृष्टि है। इसका फल वीतरागता है। इसप्रकार निश्चय करना योग्य है।

यहाँ, (ज्ञायकभाव) प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है - ऐसा कहा है। वह गुणस्थानों की परिपाटी में छट्ठा गुणस्थान तक प्रमत्त और सातवें से लेकर अप्रमत्त कहलाता है। किन्तु यह सब गुणस्थान अशुद्धनय की कथनी में है; शुद्धनय से तो आत्मा ज्ञायक ही है।

गाथा - ६ पर प्रवचन

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव।।६।।

नहिं अप्रमत्त प्रमत्त नहिं, जो एक ज्ञायक भाव है।
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात वो तो वो हि है।।६।।

इसका गाथार्थ :- जो ज्ञायक भाव है वह अप्रमत्त भी नहीं और प्रमत्त भी नहीं `इसप्रकार इसे शुद्ध कहते हैं'। आहा ! टीका में कहेंगे। यह वस्तु जो स्वयं शुद्ध (है), पर से भिन्न एवं स्व से अभिन्न वह शुभ अशुभ भावरूप हुयी ही नहीं। ***ज्ञायकभाव जो है, जो वस्तुस्वरूप है, वह शुभाशुभ भावरूप हुयी नहीं। क्योंकि शुभाशुभ भाव तो जड़ है, उसमें चेतन का अभाव है। आहाहाहा ! यह ज्ञायक स्वरूप शुभाशुभ भावरूप हो तो जड़ हो जाये।*** देखो ! यह विभक्त और एकत्व को सिद्ध करता है। यह शुभाशुभ भाव से भिन्न है अर्थात ? शुभाशुभ भावरूप पर्याय हुयी ही नहीं उसकी पर्याय, ज्ञायक तो शुभाशुभ भावरूप ज्ञायक हुआ ही नहीं। आहाहा यदि यह शुभाशुभ भावरूप हो तब प्रमत्त अप्रमत्त ऐसी दशा उत्पन्न हो। समझ में आया कुछ ? समझ में आया ? आहाहाहाहा ! बहुत सूक्ष्म बापू !

यह ज्ञायक भाव है। बहिन (श्री) की भाषा में आया है न.....! `जागता जीव

विद्यमान है वह कहाँ जाये ?' वह यह वचनामृत पढ़ा है न ! पण्डित जी इसमें पहला बोल है, जागता जीव, प्रथम उसमें न रुचे तो आत्मा में रुचे - ऐसा है। फिर बोल है छोटी पुस्तक में पहले ऊपर बोल है। जागता अर्थात ज्ञायक, ज्ञायक अर्थात कि ध्रुव, जो शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं क्योंकि ज्ञानस्वरूपी प्रभु ! (चेतन) है वह शुभ-अशुभ (भाव) अचेतन है, उसमें ज्ञान का (चैतन्य) अंश नहीं उस स्वरूप वह क्यों हो ? आहाहा ! शुभाशुभ भाव ज्ञायक भाव (रूप) स्वयं हुआ नहीं अर्थात उससे पृथक् ही रहा है। आहाहाहा !

`इसप्रकार इसे शुद्ध कहते हैं' शुभाशुभ भावरूप ज्ञायकभाव हुआ नहीं इसलिये वह अप्रमत्त प्रमत्त नहीं। इसप्रकार (गाथा) में पहले अप्रमत्त लिया है न ? आहाहा ! अप्रमत्त भी नहीं। सातमें (गुणस्थान से) चौदहवें तक अप्रमत्त, एक से छह (गुणस्थान) प्रमत्त, चौदहगुणस्थान (हैं)। पहले अप्रमत्त से लिया है। क्योंकि ज्ञायकभाव एकरूप वस्तु है। यह शुभ-अशुभ भावरूप हुयी नहीं। इसलिये वह अप्रमत्त प्रमत्त ऐसे गुणस्थान भेद, ज्ञायकभाव में नहीं। आहाहाहा ! अर्थात ? चैतन्य का एकरूप रस, जानना स्वभाव का एकरूप रस, उसमें दूसरे रूप (अर्थात) शुभाशुभ भावरूप वह हुआ ही नहीं। आहाहा ! यह तो ज्ञायकरूप - एकरूप रस में रहा है।

(श्रोता :- इसमें कुछ समझ में नहीं आता) कुछ समझ में नहीं आता ? यह तो चैतन्यस्वभाव के रसरूप ही रहा है। उसमें अचेतन का अंश छुआ ही नहीं। अचेतन के शुभाशुभ भावरूप... चैतन्यरस, ज्ञायकरस, ज्ञायक अस्तित्वरस जिसकी मौजूदगी ज्ञायक स्वभाव रूप है। वह शुभाशुभ भावरूप हुआ नहीं, उससे भिन्न है, वह ज्ञायक भावरूप रहा है। इसलिये उसे प्रमत्त-अप्रमत्त ऐसे भेद लागू होते नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ?

(श्रोता :- अप्रमत्त अर्थात शुद्ध परिणाम ?) हाँ, मात्र शुद्ध नहीं अशुद्ध (भी) भेद है न ? ***आत्मा में चौदहवां गुणस्थान भी नहीं। तेरहवां केवलज्ञान भी नहीं, भेद है न ! सभी में उदयभाव है न ! - ऐसा भेद है। यह शुभाशुभ भावरूप हुआ नहीं, इसलिये वह अप्रमत्त-प्रमत्त नहीं, इसलिये वह गुणस्थान के भेदरूप हुआ नहीं।*** आहाहाहा !

(श्रोता :- गुणस्थान पुद्गल की पर्याय है।) उसे तो अचेतन पर्याय कही है। अंतिम ६८ गाथा और ३८ गाथा में। आहाहा !

भाई यह तो अलौकिक बात है !! इसने अनंतकाल में, भव का अंत आये ऐसी बात जानी नहीं। आहाहा ! कहते हैं कि भव के अनंतवाली चीज है। भव तथा भव का भाव जिसमें नहीं... आहाहाहा ! क्योंकि शुभ-अशुभरूप ज्ञानरस चैतन्यधाम चैतन्यरसकंद प्रभु अनादिअनंत एकरूप। आहाहा ! यह कभी भी शुभाशुभ भावरूप हुआ नहीं। इसलिये

प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानभेद इसमें नहीं। आहाहा ! ***ज्ञायकभाव एकरूप है, उसमें भेद नहीं। गुणस्थान के भेद उसमें हैं नहीं। आहाहाहा ! यह दृष्टि का विषय है।*** उस ज्ञायक को यहाँ भूतार्थ कहा है। विद्यमान पदार्थ वस्तु एकरूप नित्य आनंद ज्ञायकभाव-ज्ञायकभाव-ज्ञायकभाव, ध्रुवप्रवाह, चैतन्य की बाढ़ का ध्रुवप्रवाह। पानी की बाढ़ इसप्रकार चलती (है), यहाँ बाढ़ ध्रुव = ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव। आहाहाहा ! यह ज्ञायकरूप जानने में आया फिर उसे शुद्ध कहते हैं।

`पुनश्च जो ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ वह तो वह ही है' अर्थात ? जाननेवाला ज्ञात हुआ - यह जाननेवाली पर्याय स्वयं की है। ***जाननेवाली जो वस्तु है वह ज्ञातहुई, परंतु जो ज्ञात हुयी पर्याय वह तो अपनी है। वह पर्याय अपना कार्य है और आत्मा उसका कर्त्ता है।*** आहाहा ! जाननेवाला - ऐसी ध्वनि है न ? अर्थात जाननेवाला इसलिये जाने, पर को जाने ? जाननेवाला है न ? ***जाननेवाला है, तब वह पर को जानता है ? तब कहते `नहीं' यह तो पर के संबंधवाला ज्ञान स्वयं से, स्वयं में स्वपरप्रकाशक होता है, वह पर्याय ज्ञायक की है।*** यह ज्ञायकरूप में अवस्थित है। ज्ञायक को जाननेवाली पर्याय, वह तुम्हारा कार्य है। जानने योग्य (जो बाह्य) वस्तु है वह जानना उसका कार्य नहीं और जानने योग्य जो वस्तु है वह जाननेवाले का कार्य नहीं। आहाहा ! - ऐसा है !

`ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ' कहा न ? ज्ञातः `ज्ञात हुआ वह तो वही है' `जाननेवाला' है इसलिये उसमें **दूसरा (पदार्थ) ज्ञात हुआ - ऐसा नहीं।** `जाननेवाला' है तब `जाननेवाला' तब दूसरा ज्ञात हुआ है इसमें ? (कहते हैं कि) ना, (- ऐसा नहीं) यह जानने में स्वयं आता है (स्वयं अपनी) पर्याय जानने में आती है। जाननेवाले की पर्याय ज्ञात हुयी है। आहाहा ! रागादिक हों परंतु राग संबंधी जो ज्ञान है न ? यह ज्ञान तो स्वयं से प्रगटा है। यह राग है इसलिये यहाँ स्वपर प्रकाशक ज्ञान की पर्याय प्रगटी है - ऐसा नहीं। आहाहाहाहा !

`ज्ञात हुआ वह स्वयं ही है'

जो ज्ञान की पर्याय में, `ज्ञात हुआ' जाननेवाला ऐसी ध्वनि आती है तो (- ऐसा लगता है कि) मैंने `दूसरे को जाना' यह उसका कार्य है ? नहीं। उसे दूसरे को जानते समय स्वयं की पर्याय स्वयं को ज्ञात हुयी है, उसे वह जानता है। आहाहाहा ! क्या कहा ?

(श्रोता :- दूसरा नहीं - ऐसा क्यों कहा) दूसरा अर्थात राग नहीं, राग का ज्ञान नहीं, वह राग का ज्ञान नहीं, वह ज्ञान का ज्ञान है। `**व्यवहार जानने के लिये प्रयोजनवान**' इसमें आयेगा, परंतु कहते हैं कि राग है तो राग का यहाँ ज्ञान हुआ है - ऐसा

नहीं है, और यह राग को जानता है - ऐसा नहीं है। यह तो राग सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने को हुआ है, उसे जानता है। आहाहा ! ऐसी बात है।

(श्रोता :- ज्ञायक भी आत्मा एवं ज्ञेय भी आत्मा।) पर्याय, यहाँ तो उसकी पर्याय लेना है यहाँ तो, यह ज्ञात हुआ जिसमें वह पर्याय अपनी है उसे जानता है। पर को जानता है - ऐसा नहीं। आहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई ! अभ्यास नहीं न `इस' अनंतकाल की मूल वस्तु का। आहा !

`वह ही है' इसतरह है न आहा ! `दूसरा नहीं' अर्थात ? यह राग का ज्ञान नहीं। यह पर को जाननेवाला ज्ञात हुआ, इसलिये यह जाननेवाले ने दूसरे को जाना, इसलिये पर को जाननेवाला ज्ञान है - ऐसा नहीं। आहाहा !

शब्द-शब्द में गूढ़ता है। यह तो समयसार है। आहाहा ! इसमें कुन्दकुन्दाचार्य ! (मांगलिक में) तीसरे नम्बर पर आये हैं न ! **मंगलम् भगवानवीरो, मंगलम् गौतमो गणी, मंगलम् कुन्दकुन्दार्यो।** आहाहा ! प्रथम भगवान, दूसरे गणधर, तीसरे कुन्दकुन्दाचार्य। **जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्।** आहाहा ! बात बहुत कठिन (है,) पुरुषार्थ बहुत चाहिए भाई `और यह ज्ञायकपने ज्ञात हुआ' - ऐसा आया न ? पर्याय है यह !

**टीका :- `जो स्वयं अपने से ही सिद्ध होने से' स्वयं स्वयं से सत्तारूप वस्तु होने से,** `किसी से उत्पन्न न हुआ होने से अनादि है अनादि सत्तारूप है' उसकी सत्ता, स्वयं स्वयं से ही सत्तारूप होने से, किसी से उत्पन्न हुआ नहीं, इसलिये भगवान आत्मा, जिसे हम शुद्ध कहना चाहते हैं, वह अनादि सत्तारूप है, अनादि सत्तारूप है। आहाहा ! पर्याय तो होती एवं जाती है। वस्तु जो है वह तो राग से पृथक् यह तो अनादि सत्तारूप है। अनादि से टिकनेवाली चीज है, क्योंकि किसी से उत्पन्न हुआ नहीं। ईश्वर ने उसे उत्पन्न किया है, (कि) ईश्वर आत्मा का कर्त्ता है आत्मा का - ऐसा नहीं। आहाहा ! `जो स्वयं स्वयं से ही। कथंचित स्वयं से कथंचित पर से तब अनेकांत हो न ?' स्वयं स्वयं से है पर से नहीं उसका नाम अनेकांत है। आहाहा ! अपनी सत्ता अपने से है एवं अपनी सत्ता पर से नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा अनादि सत्तारूप है।

**`कभी विनाश को प्राप्त न होने से अनंत है'** कभी विनाश को प्राप्त होता नहीं। `है' अनादि सत्ता (रूप) वस्तु है, है, है, है, भूतकाल में है, वर्तमानकाल में है, भविष्यकाल में है। है यह है बस। आहाहा !! `है' अनादि सत्ता रहनेवाली वस्तु कभी विनाश को प्राप्त करती नहीं, किसी भी समय विनाश होती नहीं। `कभी' शब्द है न ? आहाहा ! इसलिये वह अनंत है। भविष्य में कायम रहनेवाली है, इसलिये अनंत है इसप्रकार। आहाहा ! जिसका कभी अंत नहीं, जिसकी शुरूआत नहीं जिसका अंत नहीं, ऐसी

अनादि-अनंत यह वस्तु है। आहाहाहाहा ! भाषा तो सरल है परंतु भाव तो देखो भाई कठिन है, आहाहा !

`**नित्य उद्योतरूप होने से**' पुनः वर्तमान रहनेवाला होने से `क्षणिक नहीं' है न? कोई वस्तु क्षणिक हो - ऐसा नहीं। नित्य उद्योतरूप है कायम - ऐसा का - ऐसा वर्तमान में भी कायम - ऐसा का - ऐसा ध्रुव अनादि-अनंत सत्तास्वरूप वस्तु कायम उद्योतरूप है। वर्तमान में भी उद्योतरूप प्रगट है। आहाहा ! शुद्ध वस्तु, राग से भिन्न स्वभाव से अभिन्न, ऐसी चीज (आत्मा) वर्तमान में प्रगटरूप होने से क्षणिक नहीं, यह क्षणिकवस्तु नहीं, यह तो ध्रुव है। आहाहा ! एक एक शब्द तथा एक एक पद बराबर समझे तो, सभी न्याय आ जायें... आहाहा !

`और स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है - ऐसा जो ज्ञायक'... आहाहा ! कैसा है ? यह तो स्पष्ट प्रगट प्रत्यक्ष प्रकाशमान प्रत्यक्ष प्रकाशमान (है) आहाहा ! वर्तमान में प्रत्यक्ष ज्ञात हो ऐसी यह ज्योति है। आहाहा ! स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति, चैतन्यज्योति, चैतन्यज्योति, चेतन, चेतन, चेतन, चेतन, चेतन, चेतन्य-प्रत्यक्ष स्पष्ट, प्रकाशमान ज्योति है। आहाहा ! - ऐसा जो ज्ञायक `एकभाव है' देखा ? ज्ञायक - ऐसा एक भाव है। आहाहा !

`वह संसार की अवस्था में'... अब अवस्था की बात कहते हैं। वस्तु तो ऐसी ही है, अनादि सत्तास्वरूप अनादि ज्ञायकभाव जो अनादि अनंत, नित्य, स्पष्ट, वर्तमान उद्योतरूप स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति चीज है। आहाहा ! अब उसकी अवस्था में अनादि की जो भूल पर्याय की है उसकी बात करते हैं।

जो संसार की अवस्था में... अनादि बंध पदार्थ की कथन की अपेक्षा बंध की अवस्था की अपेक्षा देखें तो ? `क्षीरनीर की भांति कर्म-पुद्‌गलों के साथ एकरूप होने पर भी' दूध और पानी दिखने पर भी, दूध-दूध रूप में है पानी-पानी रूप में है। `इसप्रकार क्षीर-नीर की भांति' क्षीर अर्थात दूध और नीर अर्थात पानी जैसे। कर्म पुद्‌गलों के साथ एकरूप होने पर भी आत्मा दूध समान है। सब पुद्‌गल कर्म पानी समान है, पानी पानी स्वरूप है एवं दूध दूध स्वरूप है। `पानी का पानी दूध का दूध' कहावत है न ? आहाहा ! यह (जो) दूध में पानी डालकर देते है न ? धोखा करके, फिर बोलते भी है, `दूध का दूध पानी का पानी' रहेगा। दूध में पानी डालकर देते हैं, अतः अनर्थ का पैसा नहीं रहता। आहाहा !

जिसप्रकार पानी और दूध भिन्न हैं, इसतरह भगवान आत्मा और पुद्‌गल भिन्न है, साथ में एकरूप होने पर भी... है स्वरूप साथ में। परंतु `द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से देखा जाय तो'... उस पर्याय के संबंध से देखने में आये तो ऐसे एक

दिखता है परंतु वस्तु के स्वभाव से देखने में आये तो... यह समझ में आया ?

संसार की अवस्था में अनादि बंध-पर्याय की अपेक्षा से दूध पानी की तरह एकरूप होने पर भी, पर्याय में, पर्याय पर्याय के साथ पुद्गल कर्म साथ में दिखते है। परंतु द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से देखने में आये... आहाहा ! वस्तु को जो कायमी स्वभाव है, असली अनादि अनंत, नित्य उद्योतरूप, स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति - ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, उसकी अपेक्षा से देखने में आये तो ? यहाँ तक बात...

अब कहते हैं `**तब दुरन्त कषायचक्र उदय की विचित्रता के वश**' कषाय के चक्र का अंत लाना, महापुरुषार्थ है, अनंत `दूर... अंत.,' जिसका महापुरुषार्थ से अंत आये - ऐसा कषाय चक्र पुण्य और पाप... कषायचक्र के उदय की, कषाय समूह के अपार उदय की विचित्रता। कषाय चक्र है न ? `कषायचक्र के उदय की विचित्रता के वश प्रवर्तमान जो पुण्य पाप को उत्पन्न करनेवाले' कर्म के निमित्त के संबंध से जुड़ते, जो कहीं विचित्रता के वश प्रवर्तमान पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले सभी अनेकरूप शुभाशुभ भाव, पुण्य-पाप रूप जो परमाणु बंधते हैं उनकी बात है, उसको उत्पन्न करनेवाले वर्तमान शुभाशुभ भाव - वह पुण्य-पाप, यह कर्म, उसे उत्पन्न करनेवाले शुभाशुभ भाव `उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता' आहाहा !

क्या कहा ? `द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से देखा जाय **तो** ?' दुरंत कषायचक्र की उदय की विचित्रता के वश प्रवर्तमान (जो) सभी पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले अनेकरूप... देखा ? शुभ-अशुभभाव एकरूप नहीं अनेकरूप हैं, सभी अनेकरूप शुभ भी अनेकरूप असंख्य प्रकार, अशुभ भी अनेकरूप असंख्य प्रकार। इस रूप द्रव्य के स्वभाव से देखने में आये तो... आहाहा ! पुण्य-पाप को उत्पन्न, करनेवाले ऐसे शुभाशुभ भावों `उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता' आहाहा ! भगवान जो (ज्ञायक) शुद्ध चैतन्य, वस्तु स्वभाव को देखें तो... वस्तुतः देखें तो पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाला जो शुभाशुभ भाव... उस भावरूप स्वभाव अपेक्षा देखें तो द्रव्य उसरूप हुआ ही नहीं। शुभ-अशुभ भावरूप द्रव्यस्वभाव कभी भी हुआ ही नहीं। आहाहा ! क्योंकि यह तो ज्ञायक स्वरूप है और उत्पन्न करनेवाले जो पुण्य-पाप के शुभाशुभ भाव है, वह तो अचेतन हैं। इसमें चैतन्य के स्वभाव का अंश भी नहीं है। आहाहा !

`उनके स्वभावरूप नहीं होता'... आहाहा ! पण्डित जयचन्द्रजी स्पष्टीकरण करते हैं। ज्ञायकभाव से जड़भावरूप होता नहीं'... भाषा देखो ! शुभ-अशुभ भावरूप हो तो जड़ हो जाये, क्योंकि शुभाशुभ भाव तो अचेतन अजीव हैं। आहाहा !

यह जीव ज्ञायक है, वह शुभाशुभ अजीव जड़रूप कैसे हो ? आहाहाहा ! द्रव्यस्वभाव से देखें तो जिस कषाय का अंत लाना मुश्किल, ऐसी विचित्रता के वश उत्पन्न हुये

शुभाशुभ भाव जो पुण्य-पाप के कारण है, उनरूप यह आत्मा नहीं होता। आहाहा ! - ऐसा है।

`वोच्छामि समयपाहुड़' - ऐसा कहा है न ? मैं कहूँगा, कहूँगा तो इसका अर्थ यह कि उसके सुननेवाले कोई हैं उनसे कहते हैं न ? `वोच्छामि' कहेंगें तब इसका अर्थ कि इसके सुननेवाले हैं उनसे कहते हैं। तुम्हारानाथ अंदर जो ध्रुव चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभाव स्थित है `इन कर्मो के चक्र का अंत लाना शुभाशुभ भाव का। मुश्किल है' फिर भी वह पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले शुभ एवं अशुभ भावरूप वह द्रव्य स्वभाव, कभी हुआ ही नहीं। है न ?

`ज्ञायकभाव से जड़भाव (रूप) नहीं होता' देखो ! - ऐसा कहा, इन शुभाशुभ भाव को जड़ कहा। ज्ञायक... तो चैतन्यस्वरूप चैतन्यप्रकाश का पुन्ज है और शुभाशुभ भाव तो अंधेरा है, आहाहा ! चैतन्य के प्रकाश का शुभाशुभ भाव में अभाव है। आहाहा ! यह प्रकाश अंधकार रूप कैसे हो ? इसप्रकार ज्ञायक, शुभाशुभ रूप कैसे हो ? आहाहा ! इसलिये प्रमत्त भी नहीं एव अप्रमत्त भी नहीं। इस कारण भगवान आत्मा ज्ञायकभाव, शुभाशुभरूप हुआ नहीं, इसलिये इसे गुणस्थान के भेद भी होते नहीं। आहाहा ! अब एक अंतिम लाइन शेष है।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. २१ गाथा-६ ता. ३०-६-७८ शुक्रवार जेठ वदी-१० सं.२५०४

शिष्य का - ऐसा प्रश्न था कि `शुद्धात्मा' जो तुम कहते हो, वह कौन है ? कैसा है ? कि जिसका `स्वरूप' जानना चाहिए, और जिसे जानने से हित हो और अहित टले, वह क्या चीज है ?

तब कहा कि यह आत्मा अनादि-अनंत, नित्य उद्योतरूप, स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है। यह संसार अवस्था में पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले, दुरंत कषायचक्र (अर्थात) उसका जो शुभाशुभ भाव होता है, परंतु यह ज्ञायक शुभाशुभरूप नहीं होता, (ये तो) उसकी अवस्था में होते हैं।

ज्ञायकभाव जो वस्तु है, यह शुभाशुभरूप नहीं होती। जो इसरूप हो तो... वस्तु है जो ज्ञानरस, ज्ञानप्रकाश स्वरूप तथा शुभाशुभ (भाव) है अचेतन, अंधकार स्वरूप, इसरूप आत्मा हो तो आत्मा जड़ हो जाये, आहाहा ! इसलिये यह शुभ एवं अशुभभावरूप

ज्ञायक वस्तु जो है पदार्थ, इसरूप नहीं होने से-शुभाशुभ रूप नहीं परिणमने से, इसमें प्रमत्त-अप्रमत्त के पर्यायरूप भेद इसमें नहीं हैं। आहाहा !

मूलगाथा है, छट्ठी का लेख कहते हैं न। आहाहा ! ज्ञायक वस्तु चैतन्य, आहा ! जो अकेला ज्ञानरस, आनंदरस, शांतरस, वीतरागरस स्वरूप विराजमान, यह रागरूप कैसे हो ? आत्मा जिनस्वरूपी, वीतरागस्वरूपमें विराजमान ज्ञायकभाव यह रागरूप कैसे हो ? आहाहाहा !

(श्रोता :- तब राग रूप कौन होता है ?) पर्याय में राग होता (है), वस्तु में राग नहीं। आहा ! चैतन्यप्रकाश का चन्द्र शीतल, शीतल, शीतल - ऐसा चैतन्यप्रकाश का पुण्ज प्रभु (ज्ञायक) यह अशीतल - ऐसा जो विकार एवं आकुलता, उसरूप कैसे हो ? आहाहा ! भगवान जिनचन्द्र स्वरूप प्रभु ! आहा ! वस्तु क्या हैं ? चैतन्य के रस से भरपूर प्रभु, वह अचेतन ऐसे शुभाशुभ परिणामों के भावरूप यह ज्ञायकभाव - वस्तुस्वभाव कैसे हो ? इसलिये वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। यहाँ तक तो आया है, अंतिम एक पंक्ति रही है, महत्वपूर्ण।

उसे शुद्ध क्यों कहा ? ज्ञायकभाव यह शुभाशुभ भावरूप परिणमता नहीं उस वस्तु को आपने शुद्ध क्यों कहा ? तब कहते हैं, वह शुद्ध तो है ही। परंतु (अन्यद्रव्य से) भिन्न उपासना की जाए तो उसे शुद्ध जाना जाता है। क्या कहा ? वस्तु तो त्रिकाल शुद्ध है। वह तो है, परंतु है किसको ? आहाहाहा ! वही समस्त अन्य द्रव्यों के भाव, ***अन्य द्रव्य के भाव अर्थात कर्म के रस आदि, आहाहा ! इसमें विकार नहीं लेना। यहाँ तो अन्य द्रव्य के भाव लेना। यह अन्य द्रव्य के भावों से भिन्न होने पर, विकार से भिन्न हो जाता है।*** `भाव' - ऐसा कहना है न ! अन्यद्रव्य के भाव अर्थात अभी पुण्य-पाप के भाव वह यहाँ नहीं, अन्य द्रव्यों का जो `भाव' अनुभाग, उसकी शक्ति, `**भाव**' उससे भिन्न उसका लक्ष्य छोड़कर उससे भिन्न, जब उसका लक्ष्य छोड़े तब विकार का लक्ष्य भी साथ में छूट जाता है। आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग है!

`वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से'... अन्यद्रव्य के भाव से... यह अर्थ किया है। उसमें `मोक्षमार्ग प्रकाशक' में भिन्नरूप उपासित होता हुआ, स्वयं अर्थ यह किया है। क्या कहा ? यहाँ आत्मा ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्य स्वभावभाव त्रिकाल, स्वयं शुभाशुभ रूप नहीं हुआ, ऐसे शुद्ध स्वभाव को `शुद्ध' क्यों कहा ? ***है तो यह त्रिकालशुद्ध परंतु जिसने अन्य द्रव्य के भाव का लक्ष्य छोड़ा, और स्वद्रव्य की पर्याय में उसका सेवन किया... आहाहा ! उसका अर्थ यह हुआ कि अन्य द्रव्य के भावों से लक्ष्य छूटा, अर्थात स्वद्रव्य के भाव तरफ की उपासना हुयी, अर्थात विकार का लक्ष्य भी***

इसके साथ में छूट गया। आहाहा !

मूलमार्ग - ऐसा है भाई ! `दर्शनशुद्धि' की परिभाषा है यह तो... आहाहा ! मूल रकम, मूल रकम है यह पवित्र शुद्धज्ञायक है। परंतु `**है**' वह किसे ख्याल में आये ? `**है**' यह किसकी प्रतीति में आये ? `**है**' उसका ज्ञान किसको हो ? है तो है। आहाहाहा !

अन्य द्रव्य एवं अन्य द्रव्य के भाव का लक्ष्य छोड़कर जो अन्य द्रव्य के भाव में अस्तित्वपने का जोर है, वह छोड़कर और उससे छूटा अर्थात अंतर चैतन्य ज्ञायकभाव, की और उसकी पर्याय गई, आहाहा ! यह पर्याय ने उसका सेवन किया। आहाहा ! यह पर्याय जो वर्तमान ज्ञान और श्रद्धान की पर्याय है, यह पर के लक्ष्य को छोड़कर अपने चैतन्य के ज्ञायकभाव के लक्ष्य में जहाँ आया तब उसकी पर्याय में शुद्धता का सेवन हुआ, अर्थात शुद्धता में एकाग्रता हुयी, एकाग्रता हुयी इससे ज्ञात हुआ कि `यह' शुद्ध है। सूक्ष्मबात है बापू ! आहाहाहा !

चैतन्यधाम प्रभु स्वयं ज्योति सुखधाम... उसका सेवन अर्थात पर के आश्रय का लक्ष्य छोड़कर, एवं स्व चैतन्य ज्ञायकभाव, उसका लक्ष्य करने पर... यह लक्ष्य कब हो ? कि उसकी पर्याय में उस तरफ का झुकाव हो तब, तो उस पर्याय में द्रव्य का सेवन हुआ है ? `वह समस्त द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ,' वस्तु तो शुद्ध है, परंतु भिन्नरूपसे उपासित होता हुआ, उसे शुद्ध कहते हैं। उसे शुद्धपना ज्ञात हुआ। पर्याय में - शुद्ध दशा में यह शुद्ध है - - ऐसा ज्ञात हुआ। आहाहा ! समझ में आता है ? है सामने ?

एक और भगवान ज्ञायकभाव और एक तरफ, दूसरे सभी अनंता द्रव्य। यहाँ कर्म का मुख्यपना है, उसके तरफ का जो लक्ष्य है, आहाहा ! यहाँ से (त्रिकाली से) लक्ष्य तो अनादि से छूट गया है। इसलिये उसकी पर्याय में `***यह शुद्ध है ऐसी तो दृष्टि हुई नहीं। इसलिये भिन्न रूप से सेवन करता हुआ', अन्यद्रव्यों के भावों को (अपने) द्रव्य से जुदा करने पर जुदा करते हुए इसका अर्थ यह कि द्रव्य ऊपर लक्ष्य जाने पर, यह लक्ष्य गया यह वर्तमान में पर्याय में शुद्धता हुयी, उस शुद्धता द्वारा `यह शुद्ध है' - ऐसा ज्ञात हुआ। आहाहा ! उसे शुद्ध है।***

जिसे शुद्ध है, उसे पर्यायमें अशुद्धता ज्ञात होती है और अशुद्धता ऊपर ही जिसका अनुभव और पर्याय ऊपर जिसकी रुचि, दृष्टि है, उसे तो शुद्ध है ही नहीं। वस्तु भले शुद्ध है, परंतु उसे शुद्ध है ही नहीं। आहाहा ! गजब बात है, समयसार (में) !! उसकी एक एक गाथा, एक एक पद, सर्वज्ञ अनुसार भाषा है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर के द्वारा कही हुई वस्तु ही यह संत कहते हैं। आहाहा ! और उस

न्याय से उनके ख्याल में आ सकता है। न्याय से ख्याल में आए, फिर अंदर जाय तो अनुभव हो। आहाहाहा ! एक पद शेष था न कल, कारण कि उसका कहीं स्पष्टीकरण शीघ्र नहीं हो सकता। आहाहा !

यह ही ज्ञायक है वह... ही... वह... ही अर्थात वह... ही... वह... ही... अर्थात ज्ञायक है वही है। तेज (प्रकाश) नहीं, वही। यह त्रिकाल ज्ञायक स्वरूप, जिसमें पर्याय नहीं, जिसमें शुभाशुभ भाव नहीं, जिसमें प्रमत्त-अप्रमत्त भेद नहीं। आहाहाहा ! ऐसी वस्तु है न, आहाहा ! `समस्त अन्यद्रव्य के भावों से भिन्न अन्य, आहाहा ! तीर्थंकर भी यहाँ तो नोकर्म में है, वास्तव में तो कर्म जो अंदर है, उसके तरफ का उदय भाव जो है उसके तरफ का लक्ष्य छोड़ करके, आहाहा ! स्वयं ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु है। आहाहाहाहा ! चैतन्यचन्द्र है प्रभु तो, आहाहाहाहा ! वस्तु जिन (स्वरूप) ***`घट घट अंतर जिन वसे, घट घट अंतर जैन,*** आहाहा ! परंतु ***मत मदिरा के पान सों मतवाला समझे न*** जिसका राग (करने को) अभिप्राय एवं पर की रुचि ऐसी (रूचि)वालों को, यह वस्तु है तो जिनस्वरूप। ***है तो शुद्ध, शुद्ध कहो, जिनस्वरूप कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुव कहो, अभेद कहो, सामान्य कहो (एक ही बात है)*** आहाहाहा ! ऐसी वस्तु होने पर भी अज्ञानी का पर के ऊपर लक्ष्य है, इसलिए उसके पास यह द्रव्य मौजूद है, उसकी उसको खबर नहीं। आहाहाहाहा ! एक समय की पर्याय के समीप प्रभु मौजूद है, भगवान अनाकुल आनंद का नाथ, एक समय की पर्याय जो है ज्ञान की जाननेरूप, इस पर्याय के नजदीक ही प्रभु है। पूरा ध्रुव चिदानंद प्रभु पास में मौजूद है, परंतु वहाँ उसकी नजर न होने से... आहाहा ! `समयसार' १७-१८ गाथा में तो - ऐसा कहा कि उसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय... सूक्ष्म बात है बापा ! आहाहा ! प्रभु ! तुम्हारी प्रभुता का अंत न मिले। आहाहा ! उसकी प्रभुता की पूर्णता का कथन करना मुश्किल है। आहाहा ! - ऐसा तूं सर्वोत्कृष्टनाथ अंदर बिराजमान है। आहा ! उसे एक समय की पर्याय के एकत्ववाले को वह नजदीक है वह नजर में (आता नहीं)। पर्याय का स्वभाव तो - ऐसा है, क्या कहा ? ज्ञान की एक समय की पर्याय का स्वभाव तो - ऐसा है, कि पूरे द्रव्य (को) यह जानता है। समझ में आया ? आहाहाहा ! ***एक समय की प्रगट जो पर्याय है ज्ञान की, वर्तमान, उसमें यह द्रव्य ही जानने में आता है, परंतु अज्ञानी की दृष्टि वहाँ नहीं, आहाहाहा !*** अनादि की अज्ञानी की दृष्टि दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के परिणामों पर है, अथवा उसे जाननेवाली एक समय की पर्याय... बस यह वहीं खड़ा हुआ है। आहाहा ! वह मिथ्यादृष्टि है, सत्यदृष्टि से विरुद्ध दृष्टि है।

सत्य जो प्रभु ज्ञायकभाव कहो, सत्यार्थ कहो, भूतार्थ कहो, सत्साहेब पूर्णानंदप्रभु,

आहाहा ! उसके ऊपर इसकी नजर नहीं, है तो ऐसी यह वस्तु है, ज्ञात होती ही है। क्या कहा ? ज्ञान की पर्याय में जानने में तो आती है, यही परमात्मा कहते हैं, प्रभु - ऐसा कहते हैं। त्रिलोकनाथ, जिनेश्वरदेव, उनका अनुसरण करनेवाले संतो - ऐसा कहते हैं कि प्रभु - ऐसा कहते हैं। ***प्रभु एकबार सुनो। तुम्हारी ज्ञान की वर्तमान एकसमय की दशा, उसका स्वपर प्रकाशक स्वभाव होने से, चाहे तुम्हारी नजर वहाँ न हो, परंतु पर्याय में द्रव्य ही ज्ञात होता है।*** आहाहाहाहा ! अरेरे ! ऐसी बात कहां है ? कहाँ जाना है कौन है, (जीव को) उसका पता नहीं लगे। आहाहा !

भगवान आत्मा... त्रिलोकनाथ - ऐसा कहते हैं, प्रभु तुम जितने महान प्रभु हो, इतना तुम्हारी एक समय की पर्याय में, ***अज्ञानदशा में भी पर्याय में ज्ञात होता है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है स्वपरप्रकाशक, तो इस पर्याय में स्व प्रकाशित तो है। परंतु तुम्हारी नजर वहाँ नहीं।*** आहाहाहा ! तुम्हारी नजर (अभिप्राय) कहीं दया की... भक्ति की... व्रतपाले... पूजा वगैरह की - ऐसा जो राग, उसके ऊपर तुम्हारी नजर है। उस नजर के कारण राग से भिन्न जो राग को जाननेवाली, ज्ञान पर्याय है वही पर्याय स्व को जाननेवाली है, परंतु उसमें तुम्हारी नजर नहीं होने से, तुम्हें राग और पर्याय जानने में आती है, वह मिथ्याबुद्धि है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

परंतु जिसकी दृष्टि परद्रव्य और पर भाव से हट गई, आहाहाहा ! एवं पर्याय के भेद... पर्याय इसमें नहीं, इसलिये पर्यायमें से लक्ष्य छूट कर... आहाहा ! अन्य द्रव्यों के भाव से लक्ष्य छूटा, तो राग से भी छूटा और राग से छूटने से पर्याय पर से भी लक्ष्य छूट गया। आहाहाहाहा ! ऐसी बात है बापू ! सम्यग्दर्शन की, धर्म की पहली वस्तु। ऐसी वस्तु है, अधिकतर लोग यों ही जिंदगी बिताकर तत्त्व की दृष्टि किये बिना चले जायेंगे। वह तो चौराशी के अवतार करेंगे बापा ! चौराशी के अवतार ! वह कोई तुम्हारा नहीं और तुम उसके नहीं। वहाँ जाकर जन्मोगे ! आहाहा !

तो एकबार जहाँ प्रभु है वहाँ नजर करो न ! जहाँ भगवान चैतन्य स्वरूप है प्रभु, अकेला अखण्ड आनंदकंद पूर्णानंद चैतन्यरस से भरपूर जिनस्वरूप आत्मा है। यह त्रिकाल जिनस्वरूपी प्रभु वीतराग है। उसे पर का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य छोड़कर... राग को जाननेवाली पर्याय (का) लक्ष्य छोड़ा तो उससे भी लक्ष्य छूट गया। आहाहाहा ! और उसका लक्ष्य जब आत्मा ऊपर गया तब पर्याय में शुद्धता प्रगटी। छठवीं गाथा बहुत महत्वपूर्ण पूंजी है। आहाहा !

'अन्य द्रव्यों (के) समस्त'... समस्त लिया न ? उसमें तीर्थंकर आये एवं तीर्थंकर

की वाणी आई-उसके ऊपर से भी लक्ष्य छोड़ दो। आहा ! `समस्त अन्य द्रव्य' और उसके `भाव' आहाहाहा ! भगवान का भाव तो केवलज्ञान, कर्म का भाव पुण्य-पाप का रस, इन सभी से लक्ष्य छोड़ दो। आहाहा ! अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप उपासित होता हुआ, इसे राग से, निमित्त से भिन्न, आत्मा ज्ञायक भगवान पूर्णस्वभाव से भरपूर जिनचन्द्र वीतरागी शीतल स्वभाव से पूरा भरा हुआ भगवान उसके ऊपर लक्ष्य जाने पर, अर्थात कि उसकी पर्याय में उसका लक्ष्य होने पर, अर्थात कि उसकी पर्याय में द्रव्य का लक्ष्य होना, वह उसकी सेवा है। आहाहा ! यह द्रव्य की सेवा। आहाहा ! कितना भरा है इसमें, हाँ ? आहाहा ! अरेरे ! जगत कहाँ रहा है किस ओर चला जा रहा है; अनादि से भटकता, चौराशी के अवतार कर करके कौआ-कुत्ता निगोद के भव करके मिथ्यात्व में भटकते हुए मरा है, साधु भी हुआ अनंतबार, दिगम्बर साधु अनंतबार हुआ, परंतु दृष्टि राग और पर्याय ऊपर है। आहाहा ! जहाँ भगवान पूर्णस्वरूप है उसकी उपासना... उसका अर्थ कि उसका स्वीकार, उसका सत्कार, अर्थात कि उसका आश्रय।

`यह भिन्नरूप उपासित होता हुआ' शुद्ध कहलाता है। यह राग और पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, स्वरूप की सेवा करनेवाले, अर्थात कि स्वरूप का लक्ष्य होने पर उसकी पर्याय में जो शुद्धता होती है, उस शुद्धता ने द्रव्य का सेवन किया, अर्थात शुद्धता ने द्रव्य को स्वीकारा, यह शुद्धता की पर्याय से शुद्धद्रव्य को स्वीकार किया। इसलिये शुद्ध की पर्याय में शुद्ध ज्ञात हुआ, उसे शुद्ध कहा जाता है। आहाहाहा ! भाई यह तो गंभीर भाषा है !!

यह तो उन्नीसवीं बार पढ़ा जाता है। समयसार पहले से अंत (तक) कभी डेढ वर्ष, कोई बार दो वर्ष, किसी बार ढाईवर्ष, इसप्रकार अठारह-अठारह बार चल चुका है। यह उन्नीसवीं वार प्रारंभ होता है। आहाहाहा ! गजब बात है।

वीतराग त्रिलोकनाथ उनकी वाणी... यह संत आड़तिया होकर घोषणा करते हैं। प्रभु ! तुम कौन हो ? यह तुम्हें कब ख्याल आये ? तुम हो ज्ञायक, जिसमें शुभाशुभ भाव है ही नहीं, इसलिये इसमें पर्याय भेद है ही नहीं, परंतु यह तुम्हें कब ख्याल में आये ? है तो है, शुद्ध। तुम जब पर का लक्ष्य छोड़कर और द्रव्य को ध्येय बनाओ, द्रव्य को ध्येय बनाकर जिस पर्याय में इसका सत्कार हुआ, उपासना हुई, शुद्धता प्रगटी, उस सम्यग्दर्शन ज्ञान की पर्याय में यह शुद्ध है - ऐसा जानने में आता है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है, कठिन बात है, बापू ! लोगों को वीतरागमार्ग मिला नहीं, बाहर की प्रवृत्ति, यह राग मार्ग, संसार मार्ग है, उसमें पड़ा है, (रचा) पचा है, अभी तो पूजा, भक्ति, व्रत और तप उपवास यह सभी रागमार्ग

है, अन्यमार्ग है, वह जैनमार्ग नहीं। आहाहाहाहा !

यहाँ प्रभु - ऐसा कहते हैं तुम्हारी प्रभुता कैसी है यह तुमने पूंछा था और उसका `स्वरूप' जानना चाहिए - ऐसा तुमने पूंछा था तब इसका उत्तर यह है कि इस वस्तु को पर (द्रव्य) का संपूर्ण लक्ष्य, संपूर्ण परद्रव्य और (पर) भाव का लक्ष्य छोड़कर, पूरणज्ञायक भाव शुद्धात्मा ऊपर (लक्ष्य) जाने पर जो पर्याय में शुद्धता होती है, सम्यग्दर्शन होता है, उस जीव को यह शुद्ध है - ऐसा कहा जाता है। पर्याय की शुद्धता का भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ यह अंतरका लक्ष्य करके, आश्रय करके, सत्कार एवं स्वभावका सन्मान करके, तब उस जीवको यह शुद्ध है - ऐसा कहा जाता है। कठिन बात है बापा ! आहाहा ! क्या हो ?

यह अनंतकाल यों का यों चला गया, जैन (कुल) में अनंतबार जन्मा, अनंतबार भगवान के समवसरण में भी गया। आहाहा ! परंतु यहाँ (ज्ञायक तरफ) जहाँ जाना है वहाँ नहीं गया, और उसकी विधि क्या है उसकी खबर नहीं हुई। आहाहा ! इस एक पंक्ति में - ऐसा भाव भरा है, इसका तो अंत आवे - ऐसा नहीं (लगता) बापा ! आहाहा ! यह भगवान की वाणी और उसका भाव, जो अंतर में भाषित होता है उतना तो भाषा में आये नहीं। आहाहाहा ! साक्षात् ऐसी वाणी मौजूद है देखो न। आहाहा ! वह ज्ञायकभाव, पुण्य-पापरूप हुआ नहीं। अर्थात पुण्य-पाप के होनेवाले, उसका कारण जो शुभाशुभ भाव, उसरूप प्रभु ज्ञायकभाव तो हुआ ही नहीं। इसलिये वह प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय उसमें नहीं। आहाहा ! चौदह गुणस्थानों के भेद भी इसमें नहीं।

- ऐसा जो अभेद भगवान ज्ञायकशुद्ध, एकरूप प्रभु वह, किसे शुद्ध कहलाये ? कौन उसे कहे कि जो शुद्ध तरफ का सत्कार करके और परद्रव्य का जिसे आश्रय और सत्कार छूट गया है... आहाहा ! भगवान पूर्णानंद के सिवाय, परवस्तु की कोई भी महानता, विशेषता, अचिंत्यता, चमत्कार सब छूट गया है, आहा ! महान हूँ तो मैं, शुद्ध हो तो भी मैं चमत्कारिक वस्तु हो तो भी मैं, प्रभु होय तो मैं। समझ में आया ? आहाहा !

- ऐसा है, अरेरे ! जिंदगी संसार में मजदूरी करके चली जाती है। सभी मजदूरी हैं यह पत्नी, बच्चे और धंधा, राग का बड़ा मजदूर है। आहाहा ! और कदाचित शुभभाव में आया तथा शुभ करे तो भी यह राग की मजदूरी है। मजदूर आहाहा ! शुभराग यह मजदूरी है, यह तुम्हारी चीज नहीं प्रभु ! तुम्हारी चीज में तो पर्याय भी नहीं - ऐसी चीज को ग्रहण करने से जो पर्याय होती है यह पर्याय (की) शुद्धता में यह शुद्ध है - ऐसा ज्ञात होता है। आहाहा !

यह दया-दान के विकल्प एवं व्रत के भावों से यह ज्ञात हो - ऐसा नहीं।

कारण कि यह तो राग है। यह तो दुःख है, राग है। यह व्रत, तप, भक्ति, पूजा, राग तो दुःख है, आहाहा ! और भगवान तो आनंद स्वरूप है, अतीन्द्रिय आनंद की गठान है। आहाहा ! उसकी सेवा अर्थात उसका सत्कार उसका आदर, अन्य सभी वस्तुओं से उसकी महानता भासने पर जो पर्यायमें निर्मलता प्रगट हो, उसको यह आत्मा शुद्ध है - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहा ! गजब बात है न ? यह प्रभु के वचन है बापू शेष सभी निःसार है। आहाहाहा ! समझ में आया ? कुछ अर्थात समझ जाये तब तो प्रभु अलौकिक बात है। परंतु कुछ समझ में आया ? अर्थात किस रीति (पद्धति) से कहा जाता है ? किस रीति से कहते हैं इसकी गंध आती है (समझ आती है) ? इसप्रकार। आहाहा !

अरे रे ! इसने मूलबात छोड़कर अन्य बात पकड़कर अनादि से बैठा (है) आहाहा ! मूल भगवान स्थित है वहाँ जाता नहीं, गरीब, पामर होकर पुण्य और पाप के भाव का भूखा है, दीन है, दीनता को पकड़कर बैठा हैं, एक समय की पर्याय भी पामर है। आहा... हाहा ! ***सम्यग्दृष्टि जीव को पूर्णता का ज्ञान पर्याय में होने पर भी यह पर्याय, केवलज्ञान के समक्ष भी पामर है। तब जहाँ अभी पर्याय में क्या वस्तु है, ज्ञात हुयी नहीं एवं पर को जानकर (पर्याय में) स्थित है, यह तो भिखारी में भिखारी पर्याय है दीन पर्याय है।*** जिसमें भगवान आया नहीं। जिस पर्याय मैं दीन पुण्य एवं पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, राग जिसमें आता है यह पर्याय तो भिखारी, आहाहा ! पामर है।

यहाँ तो ऐसी पर्याय में, जिसे शुद्ध अन्य द्रव्य की सेवा से भिन्न हुयी और शुद्ध चैतन्य मूर्ति प्रभु, पर्याय में उसका आदर हुआ उसका सत्कार हुआ, तब पर्याय में सम्यग्दर्शन हुआ, उस सम्यग्दर्शन ने यह शुद्ध है - ऐसा जाना। आहाहा ! यह ***सम्यग्दर्शन भी केवलज्ञानके पास पामर है और त्रिकाली वस्तु की तुलना में भी पामर है।*** आहाहाहा !

नित्यप्रभु, शुद्ध चैतन्यधातु, चैतन्यधातु चैतन्यपना ही जिसने धारण कर रखा है, जिसमें पुण्य एवं पाप, दया-दान, व्रत, विकल्प की गंध नहीं। चौदह गुणस्थान (रूप) पर्यायों की जिसमें गंध नहीं। आहाहा ! अरे तेरहवां गुणस्थान 'सयोगीकेवली' यह भी जिस वस्तु में नहीं, कारण कि वह पर्याय है। आहाहा ! ऐसे भगवान को जिसने शोधा, साधा और शुद्ध है इसप्रकार पर्याय में अनुभव हुआ, उसे यह आत्मा ज्ञायक एवं शुद्ध है, भूतार्थ है - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहा ! ऐसी बात है बापू, अभी तो मुश्किल लगे - ऐसा है। अभी तो श्रद्धा के नाम पर बड़ा घोटाला है। चाहे महाव्रत पाले एवं भक्ति करे तथा व्रत करे और मंदिर में करोड़ रूपया खर्च करे

यह सभी घोटाला है (श्रोता :- छिलका कूटते है !) छिलका कूटते है। कदाचित राग की मंदता हो तो यह थोथा पुण्य है। आहाहा ! इसमें जन्म-मरण का अंत नहीं प्रभु। यह तो सभी जन्ममरण का बीज है, आहाहा !

यह शुभ भाव भी हमारा है एवं मैं करता हूँ - ऐसा मिथ्यात्वभाव... आहाहा ! यह अनंत चौराशी के अवतारों का गर्भ है, इसमें से अनंत अवतार निगोद के नरक के पशु के ढोर के अवतार होंगे। आहाहाहा ! वहाँ किसी की सिफारिस काम नहीं आये कि हमने बहुतों को समझाया था न... बहुतों कों जैन बनाया था न... आहाहा ! बापू यह वस्तु भिन्न है। आहाहा ! यहाँ तो बोलने का विकल्प भी जहाँ हमारा नहीं। आहाहा ! भगवान तीनलोक के नाथ आत्मा एवं उनकी वाणी भी हमारी नहीं, आहा ! उसके लक्ष्य में जाऊं तो मुझे राग हो, यह लक्ष्य छोड़कर चैतन्यभगवान ज्ञायक भाव परमपिंड प्रभु विद्यमान है, एक समय की पर्याय के पास ही विद्यमान है, वहाँ नजर, करने से, जिस नजर में सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, उसे यह आत्मा शुद्ध है - ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ?

छठवीं एवं ग्यारहवीं गाथा तो अलौकिक है। यह तो अंतिम एक पद की व्याख्या चलती है। आहाहा ! इसका पार नहीं, आहाहा ! सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी संत, आत्मा के आनंद का अनुभव करनेवाले। आहाहाहा ! ऐसे संतों की वाणी का क्या कहना ?

`वह ही' अर्थात ज्ञायक, वह पुण्य-पापरूप हुआ नहीं, प्रमत्त-अप्रमत्तरूप हुआ नहीं। प्रभु द्रव्य वह ही, उसी वस्तु को। `समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप उपासित होता हुआ' उसकी सेवा करे तो उसको सेवा अर्थात, दृष्टि में सत्कार एवं आदर करे तब उसे यह द्रव्य शुद्ध है। आहाहा ! देखो इतना चला।

अब चौथे पद की व्याख्या, सूक्ष्म है प्रभु ! क्या हो सकता है ?

`**प्रभु का मार्ग है वीरों का कायरों का काम नहीं वहाँ**' आहाहा ! यह पुण्य-पाप में, पुण्य में धर्म एवं पाप में अधर्म माननेवाले पामर मिथ्यादृष्टि... कहते हैं, ऐसे जीवों का यहाँ काम नहीं। आहाहा ! यहाँ तो पुरुषार्थी... आहाहा !! अंतर स्वरूप का स्वीकार करनेवाला पुरुषार्थी है, यह तो ऐसे पुरुषार्थवालों की बातें है। आहाहा ! अब चौथे पद की व्याख्या चलती है।

`**दाह्य के आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं**' क्या कहते हैं ? अग्नि को `जलानेवाली' कहा जाता है। यह जलने योग्य पदार्थ के आकारवाली होने से, यह लकड़ी को कण्डे को जलाये तब, आकार तो वैसा होता न...? जैसा कण्डा और लकड़ी है उसका - ऐसा आकार होता है। परंतु यह आकार कहीं उसके कारण नहीं हुआ, वह तो अग्नि का आकार है। सूखा हुआ गोबर हो `सुखा हुआ'

समझे ? जो यों ही गोबर पड़ा हो, एवं सूख गया हो और गोबर इकट्ठा करके थापें वह कण्डा वह गोबर पड़ा हो एवं सूख गया हो उसे काठियावाड़ में `अड़ायुछाणु' कहते हैं। तुम्हारे यहाँ कुछ कहा जाता होगा। तो वह गोबर जैसा सूखा हो उसे अग्नि जलाये तो आकार तो वैसा ही हो परंतु वह आकार तो अग्नि का है। इसका (गोबर का) नहीं। जलने योग्य वस्तु के आकार की हुयी इसलिये दाह्य के आकाररूप अग्नि, पराधीन हुयी - वह जलने योग्य के आकार हुयी पराधीन - ऐसा नहीं। आहाहा ! अभी तो यह दृष्टांत है हो ? आत्मा में तो बाद में घटायेंगे। आहाहाहा ! अरे !

`दाह्य के जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप' अर्थात ? कण्डा, लकड़ी, कोयला उनके आकाररूप अग्नि होने से दहन-जलानेवाली कहलाती है। है न दहन अर्थात जलानेवाली। `तब भी दाह्यकृत अशुद्धता उसे नहीं'। जलने योग्य पदार्थ का जैसा आकार यहाँ हुआ, इसलिये उसकी अपेक्षा से वहाँ आकार हुआ है, ऐसी अशुद्धता पराधीनता उसको नहीं। यह अग्नि का आकार हुआ है वह स्वयं से हुआ है। ऐसे आकाररूप अग्नि स्वयं से हुयी है। यह कण्डा और लकड़ी और कोयला के आकाररूप अग्नि हुयी इसलिये वह जलने योग्य आकाररूप हुई, तो जलाने योग्य अग्नि को पर की पराधीनता है - ऐसा नहीं। आहाहाहाहा ! है ?

`जलने योग्य पदार्थों के आकाररूप होने से' अग्नि को `दहन' कहा जाता है तब... `दहन' तो आवाज ऐसी आयी कि जलने योग्य हो उसे जलाती है अर्थात कि उस आकाररूप हुयी - ऐसा नही है। उस समय अग्नि अपने आकाररूप हुई है। आहाहा ! जलने योग्य पदार्थ के आकारूप अग्नि हुई वो अग्नि अपने आकारूप स्वयं अपने से हुई है। आहाहा ! समझ में आया ?

अभी तो दृष्टांत है। फिर, सिद्धांत तो अंदर उतरेगा।

तब यह दाह्य कृत जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप होने से, अशुद्धता अग्नि को नहीं। यह अशुद्धता अग्नि को, उसके कारण नहीं। वह तो अग्नि अपने आकाररूप हुयी है, जो आकार है वह अग्नि का आकार है, जलने योग्य पदार्थ का यह आकार नहीं। आहाहाहा ! `उसीप्रकार ज्ञेयाकार होने से'... ज्ञानस्वरूपी प्रभु, ज्ञेय जनाने योग्य, पदार्थों का आकार यहाँ आने से, जाने कि यह ज्ञेयकृत आकार है - ऐसा नहीं। वह तो ज्ञान का अपना आकार इसप्रकार परिणमा है। आहाहा !

फिर से... शीघ्र समझ में आये यह - ऐसा नहीं, आहाहा ! जैसे जलने योग्य के आकाररूप अग्नि होने से, अग्नि को जलने योग्य पदार्थ की अशुद्धता अर्थात पराधीनता उसे नहीं। अग्नि स्वयं ही उस आकाररूप हुयी है। उसीप्रकार ज्ञेयाकार ज्ञान में, शरीर, वाणी, मन, मकान, पैसा - ऐसा आकार दिखे... उसके आकाररूप

यहाँ ज्ञान हुआ इसलिये वह ज्ञेयाकार की अपेक्षा से हुआ - ऐसा ज्ञान के आकार को पराधीनता नहीं। ज्ञान स्वयं, खुद उसरूप उस आकाररूप हुआ है। ***पर को जानने के समय, पर वस्तु जैसी है उस आकाररूप ज्ञान हुआ, परंतु वह ज्ञान,*** (जो) ***जानने लायक है उसके कारण हुआ है - ऐसा नहीं। वह ज्ञान ही स्वयं उस आकाररूप (खुद) परिणमा है स्वयं से स्वतंत्र।*** आहाहा !

`ज्ञेयाकार होने से'... अर्थात् अब क्या यह जरा सूक्ष्म लेते हैं। सम्यग्ज्ञानी को जो राग होता है, ज्ञानी को भी राग होता है, तब राग जैसा ज्ञेयाकार होता है राग के जैसी यहाँ ज्ञान की पर्याय हो, परंतु इसलिये ज्ञान की पर्याय राग के कारण हुयी है - ऐसा नहीं। आहाहा ! यह ज्ञान की पर्याय उस आकाररूप परिणमे - ऐसी स्वतंत्र अपने से हुयी है। आहाहा ! धर्मी जीव को आत्मज्ञान हुआ है उसे, अभी राग आता, तब राग के आकाररूप यहाँ ज्ञान होता है, पर्याय में जैसा राग है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है परंतु उससे वह ज्ञानाकार राग के आकाररूप हुआ इसलिये पराधीनता है - ऐसा नहीं। यह ज्ञानाकार राग का ज्ञान होकर, ज्ञानाकार ज्ञान स्वयं स्वयं से परिणमा है। यह ज्ञेय-राग के कारण नहीं।

किसे यह चिंता है ? पूरी दुनियाँ, आहाहाहा ! बाईस घण्टे, तेईस घण्टे पत्नी, बच्चे, व्यापार पाप, अकेला पाप बापू, एकाद घण्टे का समय मिले, सुनने जाये, वहाँ सभी उल्टा कहें, पूरा उसका घण्टा लूट लेते, तुम्हें ऐसे धरम होगा न... तुम्हें ऐसे होगा। तुम्हें इससे होगा न, आहाहा ! अरे... जिंदगी चली जाती है। परमात्मा की पुकार है प्रभु ! उसको तुमने तुम्हारे स्वभाव से स्वभाव को स्वीकार करके शुद्धता जानी, अब यह शुद्धता जो पर्याय में आयी, हुयी यह ज्ञान, उसमें अभी भी रागादित होता है यह राग का ज्ञान यहाँ होता है, इसलिये वह राग जैसा है वैसा ही ज्ञान यहाँ होता है, इसलिये ज्ञेयकृत अशुद्धता यहाँ हुई-ज्ञान उस आकाररूप हुआ इसलिये ज्ञेयकृत अशुद्धता हुयी - ऐसा नहीं।

यह ज्ञान का स्वभाव ही, उसप्रकार राग संबंधी ज्ञान, अपना स्वयं से हुआ है, ऐसी उसकी स्वाधीनता है। आहाहा ! वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है बापू ! अरे अभी तो कहीं मिलता नहीं भाई ! क्या कहें ? सुनने मिलता नहीं, करे तो कहाँ से। आहाहाहा !

क्या कहते हैं ? कि सम्यग्दृष्टि को अपनी पर्याय में शुद्ध त्रिकाली (वस्तु) है - ऐसा ज्ञात हुआ, इसलिये उसे शुद्ध कहा। अब इसतरफ इसतरफ जाने पर शुद्ध की पर्याय प्रगटी, उसमें शुद्ध ज्ञात हुआ, इसलिये इसे शुद्ध कहा। अब दूसरी तरफ रागादिक जानने में आते हैं, अभी राग शेष है, यह राग ज्ञात होता है, इसलिये

वह `राग का ज्ञाता है' वैसा ज्ञान है ? तो कहते है `ना'। यह राग संबंधी ज्ञान, रागाकारे हुआ, वह ज्ञान अपने आकाररूप हुआ है। यह राग के कारण हुआ नहीं, अपने स्वपर प्रकाशक स्वभाव के कारण यह पर प्रकाशरूप ज्ञान हुआ है। आहाहाहाहा ! समझ में आया कुछ ? भाषा समझ में आती है न ? - ऐसा मार्ग है भाई क्या करें ? आहाहा !

यहाँ तो समकिती को ज्ञानी को आत्मा का ज्ञान हुआ कि त्रिकाल शुद्ध है। - ऐसा पर्याय में ज्ञान हुआ, इसलिये उसे शुद्ध कहा जाता है। अब, इसकी पर्याय में राग होता है और उसकी पर्याय में यह शरीर मकान आदि ज्ञात होता है। वह ज्ञान, वह जैसा ज्ञेय है उस आकाररूप यहाँ ज्ञान होता है, इसलिये वह ज्ञान की पर्याय ज्ञेय के कारण (हुयी) इतनी पराधीनता है ? तब कहते `ना'। यह ज्ञेयकृत ज्ञान हुआ नहीं, यह ज्ञान का अपना स्वभाव ही परप्रकाश का उसप्रकार का उसरूप हुआ है। आहाहाहा ! गहन विषय है बापू !

अरेरे ! सत्यस्वरूप हाथ न आये तब तक मर जाना है बिचारा, चौराशी के अवतार में भटक-भटक करके कचूमर निकल गया है बापू ! प्रभु तो कहते हैं, कि तुम्हारे दुःख का एक-क्षण, तुम्हारे एक क्षण का नर्क का दुःख प्रभु करोड़ों भवों एवं करोड़ों जीभों से न कह सकें। ऐसे दुःख तुमने एक क्षण में भोगे हैं। ऐसे ऐसे तेंतीस सागर एवं - ऐसा अनंत काल... आहाहा ! भाई यह मिथ्यात्व के कारण यह सब हुआ बापू ! आहाहा ! तब सम्यग्दर्शन बिना यह चौराशी के अवतार में मर जायेगा बापा ! भटकने का कहीं अंत नहीं आयेगा भाई। आहाहा !

- ऐसा जो सम्यग्दर्शन, आहाहा ! जिसने त्रिकाली शुद्ध को पकड़ा और ज्ञान की पर्याय में शुद्धता एवं आनंद का स्वाद आया और `स्वप्रकाशक' पर्याय ज्ञान की हुयी, अब उसको भी अभी थोड़ा-पूरा केवलज्ञान नहीं इसलिये उसे राग आता है, तो इस राग का यहाँ ज्ञान होता है। ***जैसा राग हो मंदराग तो मंद का, तीव्र होय तो तीव्र का, जो यह राग है, जो रागकृत राग के आकाररूप ज्ञान हुआ है ? या ज्ञान की स्वयं की ज्ञानकृत, स्वयं का आकार इसप्रकार होने के कारण हुआ है ?*** आहाहा !

अरे- ऐसा सभी व्यापारियों को धंधे के कारण सूझे कहाँ। आहाहा ! बानियों को जैन धर्म मिला। आहाहा ! मार्ग सूक्ष्म है भाई ! ओहोहो ! गजब बात करते है न !!

प्रभु तुझे कहते हैं कि आत्मा का ज्ञान हुआ, परंतु अब यह शुद्ध चैतन्य का ज्ञान हुआ, पर्याय में शुद्ध है - ऐसा भासित हुआ, परंतु अभी इस पर्याय में जो

राग होता है और उस पर्याय का ज्ञान अभी है, इसमें पर का ज्ञान शरीर का, स्त्री का, कुटुंब का जिसप्रकार से (ज्ञेय होता) इसीप्रकार यहाँ ज्ञान होता है। तो यह ज्ञेय है उसकी अपेक्षा से वैसा ज्ञान हुआ है ? कि यह ज्ञान का परप्रकाशक का स्वतः स्वभाव होने से, पर की अपेक्षा बिना स्वयं ज्ञानकृत, पर का जानने का भाव (कार्य) हुआ यह ज्ञाता का कार्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

फिर से... यहाँ तो (ज्ञायक) ज्ञात हुआ और अब पर ज्ञात होता है यह बात चलती है। (साधक की) आहाहा ! जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं, उसकी तो बात ही नहीं। यह तो पराधीन होकर, मिथ्यात्व में पड़ा भटककर मरनेवाला है। आहाहाहा ! जिसे यह आत्मा ज्ञान स्वरूपी प्रभु ! यह जिनस्वरूपी वस्तु, यह जिन के परिणाम में जिनस्वरूपी जानने में आया, शुद्ध परिणाम में शुद्धवस्तु ज्ञात हुयी, उसे शुद्ध कहा।

अब, इस तरफ (दूसरी तरफ) ? आहाहा ! कि इस तरफ ज्ञान की पर्याय अभी जैसा राग होता, द्वेष होता उसीप्रकार वह ज्ञान वैसा ही जाने, इसलिये वह ज्ञान, वह ज्ञेय कृतता के कारण अशुद्ध है ? अर्थात पराधीन है ? कि, नहीं। ***यह ज्ञान का उस समय का स्वभाव ही, स्व को प्रकाशने के समय, पर को प्रकाशने का स्वभाव स्वतः है, यह स्वतःरूप ज्ञान, राग को जानता हुआ परिणमता है। आहाहा ! `वह ज्ञायक का ज्ञान है, वह राग का ज्ञान नहीं' - ऐसा कहते हैं।*** आहाहा ! अरेरे ! यह वस्तु मिले नहीं वहाँ (तक) अभी क्या करे ? आहा ! अरे ! अनंत भव हुये, आहाहा ! जैन साधु हुआ, दिगम्बर साधु अनंतबार हुआ, परंतु वह राग की एकता तोड़कर स्वभाव का ज्ञान किया नहीं, और स्वभाव का ज्ञान होने में पर की कोई अपेक्षा है ही नहीं।

यहाँ तो पर का ज्ञान करने में भी पर की अपेक्षा नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ? समझ में आये उतना समझना प्रभु ! यह तो... तीनलोक के नाथ की बातें है बापा ! जिसे इन्द्र और गणधर सुनते (है), आहाहा ! यह बात बापू कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा !

`ज्ञेयाकार होने से उस भाव को'** उस भाव को अर्थात **ज्ञेयाकार हुआ जो ज्ञान उस भाव को `ज्ञायकपना' यह प्रसिद्ध है। `ज्ञायकता'** है यह प्रसिद्ध है, परंतु यह **`ज्ञायकता' है यह क्या ? `तथापि ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं', राग ज्ञात होता है एवं उसका यहाँ ज्ञान होता है इसलिये राग की अपेक्षा रखकर ज्ञान हुआ है यहाँ, ऐसा नहीं। आहाहाहाहा !

विशेष कहने में आयेगा... समय हो गया।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. २२ गाथा-६ ता. १-७-७८ शनिवार जेठ वदि-११ सं.२५०४

जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप होने से अग्नि को दहन अर्थात जलानेवाली कहा जाता। अग्नि, जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप होने से, अग्नि को `दहन' - ऐसा कहा जाता है, (- ऐसा) लगे कि पर को जलाती हो - ऐसा कहने में आता (है) (क्या कहा ?) कहा जाता है, तो भी दाहकृत अशुद्धता उसे नहीं। यह अग्नि जो दाहरूप हुई, परंतु यह कहीं जलने योग्य पदार्थ के कारण, अग्नि उस आकाररूप हुई - ऐसा नहीं। आहाहा ! - ऐसा है !

यह अग्नि स्वयं ही अपने स्वभाव से, स्वयं को प्रकाशित करती हुई और पर को प्रकाशित करती हुई स्वयं ही परिणमती है, अग्नि, अग्निरूप। यह जलाती है, उसके आकाररूप हुई अग्नि, इसलिये इतनी पराधीनता हुयी - ऐसा नहीं। अग्नि, स्वयं ही स्वयं के आकाररूप परिणमित हुई है।

***`ज्ञेयाकार हुआ, यह ज्ञानाकार स्वयं का है'***। - ऐसा है न ? तो भी दाहकृत अशुद्धता उसे नहीं `इसीप्रकार, ज्ञेयाकार होने से, ज्ञायक जाननेवाले स्वभाव (ने) स्वयं को जाना और दूसरे पदार्थों के आकाररूप ज्ञान परिणमा ज्ञेयाकार होने से उस भाव को, उस जाननेवाले भाव को ज्ञायकपना प्रसिद्ध है। `जाननेवाला' है - ऐसा प्रसिद्ध है।' **`तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं'** `जाननेवाला' जानने योग्य के आकाररूप हुआ ज्ञान, फिर भी ज्ञेयपदार्थों के कारण यह ज्ञान की पर्याय हुई - ऐसा नहीं है। आहाहा ! यह तो ज्ञानाकाररूप परिणमन ही स्वयं का इस जाति का है। स्व को जानता है और को जानने की पर्याय हुई, यह स्वयं से हुई है, रागादिक परवस्तु है इसलिये यहाँ राग का ज्ञान उसरूप हुआ - ऐसा नहीं है। आहाहा ! यहाँ तक तो आया था।

`कारण कि ज्ञेयाकार अवस्था में'... जो ज्ञान है यह जो ज्ञेय जानने योग्य पदार्थ के आकाररूप अवस्था में... यह ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप जो ज्ञात हुआ, यह तो ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ है, पररूप ज्ञात हुआ है - ऐसा नहीं। आहाहा ! जाननेरूप क्रिया के समय, ज्ञेय को राग को जानने पर भी यह राग के आकाररूप ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं, उसके कारण नहीं। यह तो स्वयं का स्वपर प्रकाशक स्वभाव है, स्व को प्रकाशित किया है और राग को प्रकाशता है, यह स्व की प्रकाशशक्ति के कारण प्रकाशित करता है। यह राग के कारण पर को प्रकाशता है ? - ऐसा ज्ञेयाकार ज्ञेय के कारण अशुद्धता या पराधीनता हुयी - ऐसा नहीं है। आहाहा !

- ऐसा है। न्याय का तत्त्व सूक्ष्मबहुत। आहाहा ! है ?

`**ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ**' देखो ? यह राग का ज्ञान हुआ - ऐसा कहना यह व्यवहार है। यह राग संबंधी का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान अपना हुआ है। आहाहा !

(श्रोता :- अपना ज्ञान कहना यह भेद हुआ न ?) भेद है, इतना कर्त्ता, कर्म सिद्ध करना है न ? क्योंकि यहाँ तो पर्याय को कर्त्ता सिद्ध करना है। स्व को जाननेवाला ज्ञान और पर को जाननेवाला, ज्ञान - ऐसा स्वपर प्रकाशक ज्ञान, वह इस ज्ञायक का कार्य है, कर्म है, आत्मा उसका कर्त्ता है। राग है... उसका यहाँ ज्ञान हुआ इसलिए राग कर्ता है और ज्ञानकार या राग के आकाररूप ज्ञान वह राग का कार्य है - ऐसा नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात है बापू ! आहाहा ! शुकनलालजी ! यह शुकन की बात चलती है। आहाहा !

आचार्यों ने - ऐसा कहा था न ? कि हमारा और पर का मोह नष्ट करने के लिये मैं कहूँगा। आहाहाहा ! - ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने उसमें से निकाला (कहा) जैसे स्वयं निकाला तीसरे श्लोक में, कि मैं यह टीका करता हूँ, आचार्य हूँ, परंतु अभी अशुद्धता का अंश अनादि का है, आहाहा ! तब इस टीका के समय... लिखा - ऐसा है कि टीका से... परंतु उसका अर्थ यह है कि टीका के काल में हमारा लक्ष्य (जोर) द्रव्य ऊपर है, उसके जोर से अशुद्धता टलेगी - ऐसा आचार्य स्वयं कहते हैं कि मैं जो यह समयसार कहूँगा, वह अपने भाव और द्रव्य स्तुति से कहूँगा और भाववचन एवं द्रव्यवचन से कहूँगा। आहाहा ! सामनेवाले के द्रव्यवचन और द्रव्य स्तुति नहीं कही, सामनेवालों में तो अनंत सिद्धों की स्थापना की है। यह स्थापित किया है (अर्थात कि) जो स्थापित करता है, उसने वह स्थापा है - इसतरह कहने में आया है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि मैं यह `वंदितु सव्वसिद्धे' सर्व सिद्धों को अपनी पर्याय में स्थापा है, हमने उसका अर्थ `वंदितु सव्वसिद्धे' क्योंकि ध्येय जो साध्य जो आत्मा उसके स्थानपर सिद्ध है, इसलिये सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ, अर्थात कि सिद्धों को (जो) मेरी पर्याय में स्थापित करता हूँ, यह हमारी पर्याय, स्वयं सिद्ध दशा को प्राप्त होगी और सिद्ध - ऐसा मेरा स्वरूप, पर्याय उस तरफ जायेगी ही, इसलिये मैं उसे वंदन करता हूँ। इसलिये हमने हमारी पर्याय में उसे स्थापित किया है। आहाहा !

और श्रोताओं भी... सभी श्रोता नहीं (परंतु) जिसने अपनी ज्ञान की पर्याय में अनंता सिद्धों को स्थापित किया - ऐसा कहा, परंतु यह (श्रोता स्वयं) स्थापित करे

जब, आहाहा ! उसकी एक समय की अल्पज्ञ अवस्था में, इसमें मैंने कहा, यह उसने सुना, सुनकर के उसकी पर्याय में अनंत सिद्धों को स्थापित करे, अर्थात कि राग से भिन्न होकर ज्ञान की पर्याय में स्थापित करे, उसका लक्ष्य जिसप्रकार अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाननेवाला, स्वयं को जाने - ऐसा कहा, इसप्रकार अनंता सिद्धों को जिसने पर्याय में स्थापित किया, उसने अनंता सिद्धों को पर्याय में जाना। आहाहा !

एक समय की ज्ञान की पर्याय ते अनंत सिद्धों को जाना यह तो एक अरहंत को जाना कहो कि अनंत अरहंत को जाना कहो, अनंत सिद्ध को जाना कहो कि एक सिद्ध को जाना कहो, सभी एक ही है। आहाहा ! यह अनंत सिद्ध जो (हमारी) अल्पज्ञ दशा में, अनंत जो सर्वज्ञ है, यह स्थापे हमने अपने में यह तो हमारी बात रही, हमने स्थापित किया परमें परंतु यह (स्वयंमें) स्थापे तब परमें स्थापे - इसप्रकार व्यवहार कहा जाता है। आहाहा !

उसकी अल्पज्ञदशा में अनंतसर्वज्ञों को वन्दन किया है अर्थात स्थापित किया है। आहाहा ! आहाहा ! यह अनंत सिद्धों को जो पर्याय जाने एवं स्थापित करे वह पर्याय विवेक करके द्रव्य तरफ ढ़ले बिना रहे नहीं। आहाहाहा ! ऐसी बातें हैं बहुत गंभीर। गाथायें जैसे जैसे गहराई में जाते हैं उसका भाव बहुत सूक्ष्म (भासित होता है) बहुत !

- ऐसा श्रोता जो है कि जिसने पर्याय में अनंत सिद्धों को स्वयं स्वयं से स्थापित किया है। `हमने स्थापा है' यह तो निमित्त से (कथन) है। आहाहाहाहा ! ऐसे श्रोताओं को सिद्धपना... अपना स्वरूप है उसकी दृष्टि होती है, और वह श्रुतकेवली एवं केवली के द्वारा कहा हुआ है, तब वह जीव भी श्रुतकेवली होगा ही, श्रुतकेवली अर्थात समकिति। जिसने अनंत सिद्धों को अपनी अल्पज्ञ पर्याय में स्थापित किया है... अरे ! बापू यह कैसी बात है ? आहाहा !

जिसकी एक समय की अल्पज्ञ पर्याय, (छद्मस्थ की) भले असंख्य समय उपयोग हो, इसमें अनंत सिद्धों का ज्ञान करे और पर्याय में स्थापे अर्थात कि रखे, आहाहा ! जिसकी पर्याय में अनंता सिद्धों रहे... आहाहाहाहा ! - ऐसा जिसने स्वयं को (स्थापित) किया ऐसे श्रोताओं को यहाँ लिया है। आहाहाहा ! वैसे तो अनंतबार भगवान (अरहंत) के पास सुना, यह बात नहीं है। भगवान के पास तो अनंतबार सुना है। आहाहा ! परंतु जो श्रोता, अपनी एक समय की अल्पज्ञ अवस्था होनेपर भी अनंत सर्वज्ञों सिद्धों को अल्पज्ञान में स्थापा, रखा है। आहाहाहा ! उसका लक्ष्य और दृष्टि द्रव्य ऊपर जायेगी और उसके लक्ष्य के कारण सुनेगा तो उसकी अशुद्धता ढल जाएगी, सुनने

के कारण नहीं। समझ में आया कुछ?

और मेरा मोह भी - ऐसा लिखा है भाई, अनादि का मेरा मोह - ऐसा लिखा है प्रथम गाथा में उसप्रकार लिखा है, ***जिसप्रकार तीसरे श्लोक में उस प्रकार लिखा है कि अनादि से कलुषित परिणाम हमारे में है। आहाहा ! आचार्य हूँ परंतु है। आहाहा ! एक तरफ - ऐसा कहना कि सम्यग्दृष्टि को राग है ही नहीं दुःख है ही नहीं - वह तो किस अपेक्षा से ? अनंतानुबंधी एवं मिथ्यात्व की अपेक्षा से (सम्यग्दृष्टि को) दुःख और राग नहीं। आहाहा !***

यहाँ तो आचार्य स्वयं कहते हैं, अरे ! कुन्दकुन्दाचार्य इस गाथा के अर्थ की टीका करते (अमृतचन्द्राचार्य) स्वयं कहते हैं। यह मोह कितने समय का है ? अनादि का है। हे भाई ! पहली गाथा में कहा है कि हमारा मोह अनादि का है। आहाहाहाहा ! यह बात तीसरे कलश में अमृतचन्द्राचार्य ने ली है, आहाहा ! यह मोह... हमारे में आनंद का अनुभव है, परंतु उसके साथ कुछ राग, अनादि का है, यह अनादि का है, गया था फिर हुआ है - ऐसा नहीं। आहाहा ! श्रीकुन्दकुन्दाचार्य की गाथा की टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य इसतरह कहते हैं, कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य - ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा ! प्रभु क्या तुम इनके ज्ञान में, हृदय में बैठ गये हो? (क्यों)कि ऐसी वस्तु की स्थिति है - ऐसा हम कहते हैं। आहाहाहा ! अपना (आत्मा) भगवान अरहंत के एक के द्रव्यगुणपर्याय को जाने, तब वह जाननेवाले आत्मा को जाने - ऐसा कहा, तब यह तो अनंत सिद्धों को पर्याय में जाने, अर्थात कि स्थापित करे, उसे स्व के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन हुये बिना रहे नहीं। आहाहाहा ! और वह श्रुतकेवली... अर्थात समकिति। श्रुतकेवली अर्थात वह विशेष ज्ञान नहीं परंतु यह श्रुतकेवली होगा और फिर केवली होगा। आहाहाहाहा ! गजब बात है न !!

यह सिद्धांत कहलाये, एक-एक श्लोक की थाह आये नहीं, उसकी गंभीरता संतो की दिगम्बर मुनी... आहाहाहा ! उनकी वाणी उस वाणी में गंभीरता और गहराई का... अंत न मिले !

यहाँ कहते हैं, ***जब अपने आत्मा को हमने 'ज्ञायक' कहा और ज्ञायकरूप से 'ज्ञायक' ज्ञात हुआ, तब 'जाननेवाले' को तो जाना परंतु 'जाननेवाला' कहते है तो दूसरों को भी जानता है - ऐसा हुआ। पर को जानता है भले - ऐसा कहें, परंतु वास्तव में तो पर है तो उसे जानते हैं - ऐसा नहीं।*** पर अर्थात् रागादिक हुआ उसे जानता है, यह रागादिक के कारण जानता है - ऐसा नहीं परंतु यह ज्ञान की पर्याय का स्वपरप्रकाशक सामर्थ ही ऐसा है कि स्वयं स्वयं को जानता है ज्ञायक ज्ञायक को..., यहाँ पर्याय की बात है हो ! द्रव्य को तो जानता है। आहाहाहा !

गजब बात है। वस्तु स्वरूप चिदानंदप्रभु `ज्ञायकरूप से तो ज्ञात हुआ' लक्ष्य में आया, दृष्टि में आया, ***परंतु उसे `जाननेवाला' कहते हैं तो स्वपरप्रकाशक (होने से) पर को जाननेवाला इसमें आया, इसमें तो स्व का जानना और पर का भी जानना इसमें आया ? तब कहते हैं `पर को जानना यह इसमें नहीं आया (परंतु) परसंबंधी का ज्ञान स्वयं को स्वयं से हुआ है, ऐसे `ज्ञायक' को ज्ञानपर्याय ने, ज्ञान से जाना, यह जाननेवाले की पर्याय उसने जानी।*** समझ में आया ? बहुत कठिन काम बापू ! मार्ग - ऐसा मार्ग है वीतराग सर्वज्ञ का। **`सर्वज्ञ नो धर्म सुसर्ण जाणी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी, अनाथ एकांत सनाथ थाशे, ऐना विना कोई न बाह्य स्हाशे।** आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि हमारा और तुम्हारे मोह के नाश के लिये, अहाहाहाहा ! प्रतिज्ञा बद्ध ! इतना बड़ा प्रभु, अपने मोह के नाश के लिये तो भले... अस्थिरता है (अतः कहो) परंतु... श्रोता के ? परंतु श्रोता को हमने सिद्ध कहा है न ? अनंत सिद्धो को इन्होंने पर्याय में स्थापित किया है एवं स्वयं (को भी)। आहाहा ! (श्रोता :- स्वयं को स्थापित किया है) हमने स्थापित किया यह बात तो हमने की। आहाहा ! एक समय की अल्पज्ञ पर्याय में अनंत सिद्धों को स्थापित किया। यह पर्याय अंदर झुककर द्रव्य तरफ ही जाती (है)। इतनी पर्याय में अनंत सर्वज्ञों को स्थापित किया..., रखा..., आदर किया, सत्कार्य किया..., स्वीकार किया और वह एक समय में, अनंतसर्वज्ञों को जाना। उस समय की पर्याय को जानकर उसे जानता है न ! आहाहा !

उसका आत्मा उसे ज्ञायकरूप तो ज्ञात हुआ, परंतु यह `ज्ञायक' है अर्थात कि `जाननेवाला' है - ऐसा कहकर पर को जानता है - ऐसा जो आता है, तब पर के आकाररूप ज्ञान हुआ वह पर के कारण हुआ - ऐसा नहीं। धर्मी को भी अभी राग आता है न राग का ज्ञान होता है,... बारहवीं गाथा में कहेंगे, **`जाना हुआ प्रयोजनवान'** भाषा तो चारों तरफ से एक अविरोध बात को सिद्ध करती है। आहाहा !

इस ज्ञायकता में जो राग-व्यवहार आया और ज्ञात हुआ, वह राग है उसे यह जानता है, एवं राग है इसलिये यहाँ राग का ज्ञान, ज्ञेयाकाररूप से ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग अर्थात साधारण व्यक्ति बिचारा क्या करे ? वीतराग परमेश्वर, त्रिलोकनाथ अनंत जैन परमेश्वरों का यह सभी कथन है। एक मुनि का कहो कि अनंत तीर्थंकरो का कहो कि अनंत संतों का कहो, आहाहा ! और मुनि तो जिन, जिनको पर्याय में तीन कषाय का अभाव होकर जिनदशा प्रगटी है, आहाहा ! उसे मुनि कहते हैं। वह मुनि कहते हैं कि `मैं इस समयसर को कहूँगा' यह `कहूँगा' इसमें तो विकल्प है न ? विकल्प है परंतु हमारा वजन वहाँ नहीं हमारा तो यहाँ स्वतरफ जोर (है) एवं उसके लक्ष्य से बात वहाँ कहेंगे, हमारा वजन वहाँ

स्वभाव ऊपर बढ़ेगा एवं अशुद्धता टल जायेगी, इसीप्रकार सुननेवालों को भी अनंत सिद्धों को जिसने स्थापित किया, उनको... स्व के लक्ष्यपूर्वक सुनते हैं और पूरी बात आयेगी इसमें, इसलिये उसको भी स्वलक्ष्य होकर मोह टलेगा और अस्थिरता भी उसकी टलकर और प्रथम श्रुतकेवली होगा अर्थात समकिति होगा। श्रुतकेवली द्वारा कहा हुआ है, और यह श्रुतकेवली स्वयं होंगे अर्थात सम्यग्दृष्टि होंगे और बाद में केवली होंगे। आहाहा ! कहो शकुनलालजी ! इस गाथा का - ऐसा अर्थ है। अंत आये नहीं - ऐसा है। आहाहा ! दिगम्बर संत अर्थात केवली के मार्ग पर चलनेवाले, शेष सभीने कल्पना से बातें की है। आहा ! इसके तो एक-एक शब्द के पीछे भावों में कितनी गंभीरता है।

कहते हैं कि भले हम 'ज्ञायक' कहते हैं और हमने ज्ञायक को जाना और 'जाननेवाले' को भी जाना अब उसे जाननेवाला है तो पर का भी जाननेवाला है - ऐसा साथ में आया, स्वपर प्रकाशक है न ? तब पर का जाननेवाला है अतः पर को जानता है ! यह पर है उसके आकार का ज्ञान हुआ (तो) जैसा पर है उस स्वरूप में ज्ञान हुआ, तब इतनी तो ज्ञेयकृत अशुद्धता आयी कि नहीं ? इतनी ज्ञेयकृत प्रमेयकृत पराधीनता आयी कि नहीं ? तो कहते है कि नहीं। आहाहाहा ! **यह तो राग के ज्ञान के समय, शरीर के ज्ञान के समय, वह ज्ञान ज्ञायकपने की पर्यायरूप ही ज्ञात हुआ है,** यह राग की पर्याय एवं राग से ज्ञान हुआ है - ऐसा जाना नहीं। आहाहा ! कहो, सुरेन्द्रजी ! है ऐसी बातें ? आहाहा ! अरे प्रभु ! तुम्हें खबर नहीं भाई ! आहाहा ! तुम्हारा द्रव्य और उसकी पर्याय इसका सामर्थ्य कैसा है, आहाहा ! देवीलालजी ! कहाँ बैठे वहाँ, आओ यहाँ आओ। समझ में आया ? आहाहा !

हम तो कहते हैं कि राग और शरीर एवं जो कुछ दिखता है उस समय उनके आकाररूप ज्ञान हुआ, अतः उसके कारण हुआ - ऐसा नहीं। हमारे ज्ञान का स्वभाव ही - ऐसा है कि स्व को जानते समय पर को जानने की पर्याय स्वयं से अपने में होती है, उसे हम जानते (है)। आहाहाहा ! अरे प्रभु उसकी वाणी तो देखो ! आहाहा ! यह संतो की वाणी साक्षात मिले और यह आहा..हा ! गजब बातें है न !! यह ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप में जो ज्ञात हुआ देखा! ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप यह ज्ञान की पर्यायरूप ज्ञात हुआ है, ज्ञान की पर्यायरूप से यह ज्ञात हुआ है, पर की पर्याय अपेक्षा ज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं है। आहाहा !

भाई ! मार्ग बहुत सूक्ष्म है बापू और जिसका फल में अनंत संसार का अंत। आहाहा ! अनंत संसार का अंत और अंत बिना की पर्याय सादि अनंत प्रगटे। आहाहा ! बापू ! मार्ग कोई अलौकिक होता है। ***आहाहा ! यह ज्ञेयाकार अवस्था में, है ? यह***

ज्ञेय-राग को जानने की अवस्था में भी ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ है, यह ज्ञान की पर्यायरूप से यह ज्ञात हुआ है, राग की पर्यायरूप से ज्ञात हुआ है - ऐसा है नहीं। आहाहाहा !

है न सामने पुस्तक है ? आहाहा ! ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं अर्थात ? राग को एवं उस समय जो शरीर की क्रिया हो, उसप्रकार ज्ञान स्वयं परिणमे एवं जाने, फिर भी यह ज्ञेयकृत की अशुद्धता पराधीनता ज्ञान के परिणमन में नहीं। आहाहा ! ***यह ज्ञान का परिणमन जो हुआ वह ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप जो ज्ञात हुआ, `यह जाननेवाला ज्ञात हुआ है' इसमें जानी गई ऐसी वस्तु ज्ञेय नहीं हुयी। जो ज्ञात हुई है यह वस्तु, ज्ञात नहीं हुई। यह `जाननेवाला ज्ञात हुआ है' वहाँ आहाहाहा ! गूढ़ बातें है भाई !*** आहाहा ! ***अलौकिक चेतनस्वरूप ही अलौकिक है बापू !*** आहाहा !

उसकी एक समय की पर्याय में सर्वज्ञ को स्थाप कर... आहाहा ! गजब काम किया है न ? (संसार से) उठा लिया है, जिसने अनंत सिद्धों को स्थापा, उसे संसार से उठा लिया है, आहाहा ! उसे हाँ ? अकेला श्रोता को नहीं। आहाहा !

जिसने अनंता सिद्धों को अपनी पर्याय में स्थापित किया और उसको ज्ञान का, ज्ञायक का ज्ञान हुआ वह ज्ञान राग को जो शरीर को जाने इसलिये उसे ज्ञेयकृत, प्रमेयकृत अशुद्धता नहीं हुई, यह तो ज्ञायक की ही पर्याय, उसे यह जानता है, यह राग के जानने के समय राग के आकार ज्ञान हुआ राग के कारण ज्ञान उस आकार रूप हुआ - ऐसा नहीं। उस समय ज्ञान ही अपने ज्ञानाकार होना पर्याय का स्वभाव था, इसप्रकार हुआ। तब उस समय राग ज्ञात हुआ नहीं, जाननेवाले की पर्याय, उसने जाना है, समझ में आया ? आहाहाहा !

वह `**ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ**' `वह' स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी स्वयं ज्ञात हुआ है क्या कहा यह ? (फरमाओ) कि, यह ज्ञायक प्रभु स्वयं को ज्ञायकरूप से जब जाना, सम्यग्दर्शन-ज्ञान में ज्ञात हुआ, उस समय जो ज्ञान में रागादिक परज्ञेय ज्ञात हो, उसी समय भी उसने राग को जाना है - ऐसा नहीं राग संबंधी का अपना ज्ञान, स्वयं से हुआ है उसे वह जानता है, ज्ञेयाकार के समय में भी अपनी पर्याय को जानता है और स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी दो बातें ली है न ? क्या कहा ? ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ `वही' स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी दीपक की भांति स्वयं ज्ञात हुआ है `आहाहा !' स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी जिसप्रकार ज्ञेयाकार के ज्ञान के समय भी ज्ञान की पर्याय (रूप) ज्ञात हुई है यह पर्याय उसकी `जाननेवाला जो है' उसकी पर्याय ज्ञात हुई है, इसीप्रकार स्वरूप प्रकाशन की अपेक्षा से भी, आहाहा ! उदाहरण

दिया है। `दीपक की भांति', कर्त्ता-कर्म का अनन्यपना होने से... ज्ञायक ही है।

अर्थात ? स्वयं जाननेवाला अतः स्वयं कर्त्ता और अपने को जाना इसलिये स्वयं ही `कर्म' आहाहा ! यह पर्याय की बात है हो ! जाननेवाले को जाना और ज्ञेय को जाना यह जानना पर्याय का कार्य (है), ज्ञायक कर्त्ता, उसका यह कार्य है। यह राग-व्यवहार (को) जाना अतः व्यवहार कर्त्ता और जानने की पर्याय कर्म- - ऐसा कार्य नहीं। आहाहाहा ! कितना समाया है ?

वह कहता था कि हमने पन्द्रह दिन में समयसार पढ़ डाला ! बापा भाई, तुम्हारा प्रभु कौन है ? अरे ! उसे जानने के लिए भाई, आहाहा ! अरे ! अनंतकाल के परिभ्रमण में किसी दिन यह सच्चा प्रयत्न इसने किया ही नहीं। उलटे प्रयत्न को उसने माना कि हम कुछ कर रहे हैं, धर्म कर रहे हैं, हैरान होकर चार गतियों में भटकता है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा जब सर्वज्ञरूप से स्थापा और जब उसे सर्वज्ञ स्वभाव का भान हुआ, आहाहा ! तब उसने स्व-जाननेवाले को तो जाना, **परंतु उसी समय पर को जाना है उस समय भी, जाननेवाले की पर्याय को ही यह जाना है।** `जाननेवाले की पर्याय रूपसे यह ज्ञात हुआ है' राग की पर्याय के रूप में जाना है - ऐसा नहीं। आहाहा !!

यह तो ग्रंथ सामने है, किस शब्द का अर्थ होता है ? आहाहा ! भगवान परमात्मा, उनकी वाणी और मुनियों की वाणी दोनों में फर्क नहीं। आहाहा ! मुनि तो आड़तिया होकर सर्वज्ञ की वाणी कहते हैं। भाई ! तुमने सुनी नहीं। आहाहा ! तुम कौन हो और तुम किसे जाननेवाले हो ? कि मैं ज्ञायक हूँ और मैं अपनी पर्याय को जाननेवाला हूँ। आहाहा ! ***यह ज्ञान की पर्याय वह हमारा कार्य है `कर्म', कर्म अर्थात कार्य और `कर्त्ता' मैं (हूँ)। वास्तव में तो, पर्याय `कर्त्ता' और पर्याय ही `कर्म' है। परंतु यहाँ ज्ञायक भाव कर्त्ता रूप सिद्ध करके, ज्ञान पर्याय उसका कार्य है - ऐसा सिद्ध किया है। आहाहा ! वास्तव में तो वह ज्ञान की पर्याय उसका `कार्य' है और उस समय की पर्याय जो है वही उस पर्याय का कर्त्ता है। आहाहा ! पूरा द्रव्य है वह तो ध्रुव है उसे कर्त्ता कहना यह तो उपचार से है। आहाहा ! समझ में आया ? ध्रुव है वह तो परिणमता नहीं बदलता नहीं।***

बदलनेवाले की पर्याय जो ज्ञायक को जाननेवाली हुई वह पर को जानने के समय भी, स्वयं के ज्ञानरूप परिणमी (अतः) वह स्वयं ही `कर्त्ता' और स्वयं ही स्वयं का `कर्म' है राग `कर्त्ता' और यह ज्ञान की पर्याय उसका `कार्य' हो - ऐसा है नहीं। आहाहाहाहा ! इसके एक पदमें से बाहर आना कठिन लगे इतनी तो गंभीरता

है इसमें। आहाहा ! बापू ! तुम महाप्रभु हो भाई ! तुम महाप्रभु हो... और तुम्हारी पर्याय भी महाप्रभु की है जो ज्ञात हुआ है, उसकी यह पर्याय है, आहाहा ! यह प्रभु की (स्वद्रव्यकी) पर्याय है। यह राग की नहीं। आहाहाहा !

इस ज्ञान में स्व जहाँ ज्ञात हुआ और जहाँ जाना, उसी समय यह पर का जानना वहाँ होता है न ? कहते हैं कि यह पर का जानना हुआ यह पर के कारण जानना हुआ - ऐसा नहीं। यह जानने की पर्याय ही स्वयं, स्वयं के स्वपरप्रकाशकरूप परिणमने की ताकत से वह परिणमा है। इसलिये वह पर्याय कर्म है और वही पर्याय 'कर्त्ता' अथवा तो भी जीव कर्त्ता कहा जाता है। आहाहा ! ***वास्तव में षट्कारक का परिणमन पर्याय में है, द्रव्य में षट्कारक की शक्ति है परंतु परिणमन नहीं। समझ में आया कुछ ?*** आहाहा !

इसलिये जिस ज्ञान की पर्यायने स्वयं को जाना, उस पर्यायने राग संबंधी स्वयं के ज्ञान के परिणमन को उसने जाना। व्यवहार का विकल्प उठता है, उसका जो ज्ञान होता है उस ज्ञान की पर्याय को स्वयं स्वयं से जानता है और वह स्वयं स्वयं से होती है। उसे जाननेवाली पर्याय व्यवहार से हुई नहीं, व्यवहार आया रागादिक उसका ज्ञान इसलिये उससे हुआ है ज्ञान ! उसमें ज्ञान कहाँ था ? राग में कहाँ ज्ञान था कि राग (जाने) आहाहा ! जिस ज्ञायक में ज्ञान भरा है प्रभु में, आहाहा ! उसका जब अंदर से जाननेवाला जागता है, तब जागनेवाला स्वयं और स्वयं को जानता है और जागनेवाला स्वयं की पर्याय को जानता है। 'राग को जानता है' यह भी बात व्यवहार से कथन है। आहाहाहा ! कहो समझ में आया ?

'लो ! दीपक की भाँति' 'कर्त्ता कर्म का अनन्यपना है' अन्यपना नहीं। कर्त्ता है वही कर्म है और कर्म है वही उसका कर्त्ता है। समझ में आया ? 'होने योग्य' और 'हुआ' दोनों अनन्य हैं। भिन्न-भिन्न नहीं। आहाहा ! कर्त्ता होनेवाला और कर्म हुआ, वह अनन्य है, वह दोनों एक ही वस्तु है। आहाहाहाहा ! 'अनन्यपना होने से ज्ञायक ही है' स्वयं जाननेवाला, यह 'कर्त्ता' इसलिये स्वयं कर्त्ता, आहाहा ! रागसंबंधी ज्ञान हुआ यह ज्ञान की पर्याय का कर्त्ता स्वयं है और उसका कर्म भी अनन्य उसमें है। आहाहा ! यह ज्ञान, राग को जानता है - ऐसा नहीं, और राग के कारण ज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं। आहाहा !

ऐसी व्याख्या है अब, साधारण लोग बिचारे सम्प्रदाय (के पक्ष) में रुके हों, एवं समय मिले नहीं कभी पूरे दिन (में), दो घड़ी मिले वहाँ शेष बाईस घण्टे तो पत्नी, बच्चे और धंधा तथा पाप में पूरी जिंदगी जाये, आहाहा ! अरेरे ! उसमें दो घड़ी सुनने जाये, वहाँ मिले - ऐसा कि ठिकाने बिना का, सत्य के विरुद्ध बातें मिलें।

आहाहा !

`यह ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ,' वह स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, ज्ञायक ही है। है न अंतिम शब्द ? बीच में इतना छोड़ दो थोड़ा... `दीपक की भांति कर्त्ता-कर्म का अनन्यपना होने से,' परंतु स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी ज्ञायक ही है। वह तो दृष्टांत है। आहाहाहा !

किसी ने - ऐसा जाना हो कि हमने समयसार सुना है, इसलिये इसमें कुछ नवीनता न हो - ऐसा नहीं प्रभु। आहाहा ! यह नयी वस्तु है बापू, भगवान। आहाहा !

क्या कहा? `स्वयं जाननेवाला अतः स्वयं कर्त्ता', राग की, शरीर की क्रिया हुई उसका यहाँ ज्ञान हुआ, यह ज्ञान का कार्य स्वयं का है। यह (ज्ञान) कार्य राग और शरीर का नहीं। इसलिए वह कार्य स्वयं ज्ञान की पर्याय का, ज्ञान का है, वह कर्त्ता और स्वयं को जाना अतः स्वयं कर्म। आहाहा ! पर्याय की बात है हो यहाँ। जानने में आयी है पर्याय, यह पर्याय उसका कार्य... राग जानने में आया है - ऐसा नहीं, उसीप्रकार राग से यहाँ ज्ञानरूप कार्य हुआ - ऐसा नहीं, यह राग का कार्य नहीं, यह ज्ञायक का कार्य है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

एक साधारण सरकार के नियम गहन होते है, यह तो तीनलोक के नाथ (का कानून है) आहाहा ! सर्वज्ञस्वरूप ! उसके नियम तो कैसे हों बापा ! आहाहा ! एक-एक गाथा में कितनी गंभीरता है।

स्वयं जाननेवाला अतः स्वयं कर्त्ता, किसका जाननेवाला ? स्वयं की पर्याय का। केवली लोकालोक को जानते हैं - ऐसा भी यह नहीं। केवली अपनी पर्याय को जानते हैं। आहाहा ! पर्याय उसका कार्य है और कर्त्ता उसका ज्ञान स्वरूप है, अथवा भले पर्याय है। आहाहाहा ! यह लोकालोक है, इसलिये यहाँ केवलज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं। समझ में आया ?

यह प्रश्न तो तिरासी में उठा था। ... सम्वत् १९८३, कितने वर्ष हुये ? इक्यावन, इक्यावन वर्ष पहले प्रश्न उठा था, पचास और एक, कि यह लोकालोक है, अतः केवलज्ञान है कि केवलज्ञान स्वयं से है, लोकालोक के कारण नहीं। यह एक प्रश्न था। सेठ (जी) ने - ऐसा कहा कि लोकालोक है तब इसका यहाँ ज्ञान हुआ है। तब उसे वीरजीभाई ने मना किया कि - ऐसा नहीं है। फिर दोनों नीचे आये, और हमसे पूंछा। हमने कहा बापू - ऐसा नहीं है। केवलज्ञान तो ज्ञान स्वयं से होता है। केवलज्ञान के कार्य का कर्त्ता आत्मा एवं कर्म केवलज्ञान, लोकालोक कर्त्ता तथा केवलज्ञान `कर्म' (- ऐसा नहीं) इतने अधिक शब्द तब नहीं थे उस समय, परंतु लोकालोक है अतः ज्ञान की पर्याय हुई है - ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

अरेरे ! एक भी बात को सर्वज्ञ के न्याय से बराबर जाने तो... एक `भाव' जाने तो सभी `भाव' यथार्थ ज्ञात हो जायें, परन्तु एक भी भाव को समझने का ठिकाना नहीं है। आहाहा ! अरेरे जिंदगी पूरी होने को आयी तब इसमें क्या करना वह रह गया, किया... ढेर अकेला पाप का। ***पुण्य का पता न मिले कि भाई चार-चार घण्टे तक सच्चा सत् समागम करना। सत्समागम भी किसे कहना उसकी भी अभी समझ नहीं की। आहाहा ! और सत्शास्त्रों का चार-चार घण्टे बांचन करना हमेशा, तब पुण्य तो बंधे, उसका भी ठिकाना नहीं धरम तो करे नहीं।*** आहाहाहा ! सत्शास्त्र और सत्समागम, दोनों का परिचय रहे, चौबीस घण्टे में चार घण्टे तो भी पुण्य बंधे, यह धरम नहीं। धरम तो राग से भिन्न होकर सर्वज्ञता स्वरूप मेरा है - ऐसा अंतर में दृष्टि करके अनुभव करे तब उसे सम्यग्दर्शन हो। आहाहा ! समझ में आया ?

`जैसे दीपक घट पट आदि को प्रकाशित करने की अवस्था में दीपक है' दीपक जो है न ? यह घट और पट अर्थात वस्त्र उसे प्रकाशते समय भी दीपक तो दीपक ही है। यह दीपक जिन्हें प्रकाशता है उसरूप हुआ है ? आहाहाहा ! दीपक घट-पटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है क्या कहा यह ? दीपक घट पटादि की अवस्था को प्रकाशित करते समय दीपक तो दीपकरूप है। यह घट पट को प्रकाशित करते समय भी घट पटादिकी अवस्थारूप कहीं दीपक नहीं हुआ। आहाहा ! और घट पट के कारण प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं। दीपक के प्रकाश के कारण प्रकाशित करता है। आहाहाहा ! दीपक घट-पट आदि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है और स्वयं को, अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है। इसप्रकार `ज्ञायक' ***राग और पर को जानने के समय भी ज्ञायक की पर्याय तो ज्ञानकी ही है, और स्वयं को प्रकाशने के समय भी यह ज्ञान की ही पर्याय है।*** आहा !

पर को जानते समय यह पर्याय पर को कारण हुई है - ऐसा नहीं। घट पट को प्रकाशता है प्रकाश, अतः प्रकाश घट-पट के कारण प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं। दीपक का स्वयं का प्रकाशक स्वभाव है, घट पट को प्रकाशित करते समय भी दीपक तो दीपक ही है, और अपनी ज्योति को प्रकाशने के समय भी दीपक तो दीपक ही है।

बहुत सूक्ष्म है बापू ! एक घण्टे में कितना आया, फुरसत न मिले, अवकाश न मिले, पूरे दिन पाप के कारण और ***शरीर की सुरक्षा के लिये करना हो तो पूरे दिन, उलझा रहे ? उसका - ऐसा करना... इसका - ऐसा करना... उसका***

- ऐसा करना... फिर भी (जो) होना होता है वह होता इसके करने से कुछ नहीं होता। आहाहा ! और यह तो (सम्यग्दर्शन) तो पुरुषार्थ से होता ही है। आहाहा !

दीपक, घट अर्थात घड़ा और पट वस्त्रादिक कोयला कि नाग उसे प्रकाशने के समय भी दीपक तो दीपकरूप रह कर प्रकाशित करता है। पररूप होकर वह प्रकाशित करता है ? और पर को प्रकाशता है ? यह तो दीपक दीपक को प्रकाशित करता है और अपने प्रकाश को भी प्रकाशित करते समय स्वयं दीपक दीपक को प्रकाशित करता है।

इसप्रकार भगवानआत्मा जाननेवाला जानने में आता है उस अवस्था में भी ज्ञायकरूप से ही स्वयं रहा है। पररूप हुआ नहीं और (वह) अवस्था पर के कारण हुई नहीं। आहाहा ! और स्वयं जानते समय यह तो स्वयं ही अपनी पर्याय हुई। आहाहा ! अब - ऐसा सभी याद रखना ? - ऐसा मार्ग प्रभु का बापू और यह मार्ग जिनेश्वरदेव के अलावा कहीं है नहीं। तीनलोकके नाथ तीर्थंकरदेव... आहाहा !

परंतु बातें बहुत सूक्ष्म हैं प्रभु, यह कहीं पैसा खर्च कर डाले करोड़ दो करोड़ पांच करोड़, अतः धरम हो जाये, (- ऐसा नहीं) आहाहा ! शरीर की क्रिया कर डाले छह-छह महीना उपवास, शरीर सूखे (- ऐसा) उपवासादि करे, और धारणारूप अकेला क्षयोपशम पर को प्रभावित करनेवाली बुद्धि की बातें करे, परंतु अंतर क्या वस्तु है ? आहाहा ! उसे खोजने (पहचानने) यह नहीं जाता।

'अन्य कुछ नहीं' उसमें 'ज्ञायक को समझना' अर्थात ? 'जाननेवाला' भगवान ***स्व को जानते समय पर्याय में स्व को जाना, वैसी ही पर्याय में पर को भी जाना। यह पर को जाननेवाली पर्याय हुई, यह स्वयं से ही हुई है अर्थात वास्तव में तो अपनी पर्याय को उसने जाना है। आहाहा ! कारण कि पर्याय में कुछ ज्ञेय आया नहीं,*** घट-पट को दीपक प्रकाशित करता है इसलिये दीपक के प्रकाश में घट-पट कहीं आ गये नहीं कि दीपक के प्रकाश में वह कहीं प्रवेश किये नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ? इसप्रकार भगवान चैतन्य दीपक चैतन्य चन्द्र प्रभु... - ऐसा जिसको अंतर में ज्ञान हुआ, राग से भिन्न होकर, ***सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा है - ऐसा जहाँ ज्ञान हुआ, वहाँ अल्पज्ञ पर्याय में सर्वज्ञ स्वभाव का भान हुआ, यह अल्पज्ञ पर्याय हुई वह सर्वज्ञ स्वभाव की है, यह ज्ञायक की पर्याय है उसे जाने और यह पर्याय पर को जाने, यह पर्याय भी ज्ञायक की पर्याय है। यह पर की पर्याय है और पर के कारण हुई है - ऐसा है नहीं।*** आहाहा ! एक बार मध्यस्थ होकर सुने तो..! सभी लोग आग्रह रखकर रुके हैं कि 'इससे - ऐसा हो और इससे - ऐसा हो'... आहाहा ! व्रत करने से संवर हो एवं तपस्या करने से निर्जरा हो न ! आहाहा !

परंतु यह व्रत किसे कहना। निश्चय व्रत किसे कहना उसकी खबर न लगे। व्रत करे तो संवर हो और उपवास करें तो निर्जरा हो अरे भगवान ! यह व्रत रूप विकल्प व्यवहार के हैं यह तो पुण्य-बंध का कारण हैं और उपवास आदि जो विकल्प हैं (व्यवहाररूप) यह भी पुण्य-बंध का कारण है, यदि राग मंद किया हो तो ? वहाँ संवर-निर्जरा नहीं। आहा !

वहाँ तो - ऐसा भी कहा है न ? ३२० गाथा में, कि ***उदय को जानने के समय भी ज्ञान की पर्याय को जाने, निर्जरा के समय भी निर्जरा की पर्याय को जानता है यह निर्जरा करता नहीं।*** उदय को जानता है - ऐसा कहना, परंतु फिर भी यह राग को जानता है, वह ज्ञान की पर्याय हुई है वह तो उसे स्वयं को जानता है। निर्जरा के समय जानता है, यह भी निर्जरा की पर्याय जो ज्ञानरूप हुई है उसे यह जानता है बंध को जानता (है) बंध का जो ज्ञान हुआ है उस ज्ञान की पर्याय को जानते, मोक्ष की पर्याय को जाने, विपाक-सविपाक एवं अविपाक को जाने। आहाहा ! चार बोल लिए है न ? सविपाक-अविपाक, सकाम-अकाम। आहाहाहा !

दिगम्बर संतों ने तो गजब काम किया है उन्हें समझनेवाले विरले होते हैं। ऐसी बात अन्य कहीं नहीं है भाई! आहाहा ! उनकी गहराई की बातें... आहाहा ! - ऐसा यहाँ कहा है आहाहा !

और कर्त्ता-कर्म का अनन्यपना है - ऐसा कहा अर्थात क्या ? कि `कर्त्ता' अन्य और `कार्य' अन्य - ऐसा हो सके नहीं। `कर्त्ता' ज्ञान की पर्याय या आत्मा और उस पर्याय का कार्य रागादिक को जानना यह उसका कार्य - ऐसा नहीं। कर्त्ता-कर्म अनन्य होता है। अन्य-अन्य नहीं, वही कर्त्ता और वही कर्म होता है। आहाहा ! वही कर्त्ता और वही कार्य होता है। आहाहा ! राग को जानते समय, ज्ञान ज्ञानरूप हुआ उसका `कर्त्ता' भी ज्ञान और कर्म भी ज्ञान। यह राग का ज्ञान, यह राग कर्त्ता एवं राग का ज्ञान कार्य - ऐसा नहीं। आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प उठा, तो उसका जो यहाँ ज्ञान हुआ वह उसके कारण (ज्ञान) हुआ, उसमें कहाँ ज्ञान था तो हुआ। ज्ञान तो यहाँ है। (आत्मा में) आहाहा !

स्वप्रकाशक ज्ञान... आता है न ? **स्वपर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारी, *स्व प्रकाशक ज्ञेय और परप्रकाशक ज्ञेय, दोनों वस्तु ज्ञेय, ज्ञेय स्व और पर दोनों, फिर भी पर को जानते समय वह पर्याय स्वयं स्वयं से जानती है। (स्वयं को) आहाहा !*** यह यहाँ सिद्ध करना है। विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. २३ गाथा-६ ता. २-७-७८ रविवार जेठ वदि-१२ सं.२५०४

'समयसार' छठवीं गाथा का भावार्थ। छठवीं गाथा हो गई। उसका भावार्थ। क्या कहना चाहते हैं ? कि यह वस्तु जो है आत्मा, वह द्रव्य अपेक्षा शुद्ध है। वस्तु के स्वभाव अपेक्षा वस्तु स्वयं शुद्ध है, पवित्र है, निर्मल है, अतीन्द्रियआनंद स्वरूप है, उसकी दृष्टि करने पर... उसकी दृष्टि करने पर अर्थात उसका आदर करनेपर उसे यह शुद्ध है - ऐसा ज्ञान में, ख्याल में आता है !

वस्तु तो शुद्ध है, यह त्रिकाल शुद्ध चैतन्यघन आनंदकंद है। मलिनता तो एक समय की पर्याय में दिखती है, वस्तु मलिन नहीं। वस्तु निर्मल, शुद्ध, पूर्ण, अखण्ड, अभेद, एकरूप वस्तु त्रिकाल है, यह तो शुद्ध है, पवित्र है अखण्ड है। परंतु किसे ? (जो) उसे जाने उसको जिसके ज्ञान में यह वस्तु आयी नहीं... यह चैतन्य प्रभु है पूर्णानंद, परंतु जिसके ख्याल में आई नहीं, उसे तो है ही नहीं, उसे है नहीं, अपितु वस्तु है, परंतु उसे यह शुद्ध है - ऐसा तो उसे है ही नहीं, क्योंकि दृष्टि में जिसे राग और पुण्य एवं पाप तथा दया-दान - ऐसा विकल्प जिसकी दृष्टि में वर्तता है उसे वस्तु शुद्ध है, यह तो श्रद्धा-ज्ञान में आयी नहीं। उसके श्रद्धाज्ञान में तो अशुद्धता आयी है पर्याय आई है और ***यह अशुद्धता पर्याय में आई है वह यथार्थ है, यथार्थ अर्थात अशुद्धपना है, पर्यायदृष्टि से अशुद्धता है, परंतु यह वास्तविक वस्तु नहीं। वास्तविक वस्तु तो, त्रिकाली ज्ञायक शुद्धचैतन्य मूर्ति, यह सत्य है।***

उसकी अपेक्षा से पर्याय है अवश्य, परंतु त्रिकाली की अपेक्षा से उस वस्तु को गौण करके, नहीं - ऐसा कहने में आया है। परंतु पर्याय है, राग है, अस्ति है यह, नहीं - ऐसा नहीं। परंतु उस पर्याय ऊपर दृष्टि करने से मिथ्यात्व होता है और भ्रमण चालू रहता है। इसलिये यह पर्याय ऊपर की दृष्टि... पर्याय होने पर भी रागादिक होने पर भी, उसकी दृष्टि का निषेध करके, वह वस्तु मुझ में नहीं - ऐसा निषेध करके... आहाहा ! वस्तु ज्ञायक, चैतन्यप्रभु सच्चिदानंद स्वरूप उसका है। आहाहा ! उसकी दृष्टि करने पर, उसको दृष्टि में यह आया, दृष्टि की तब यह ख्याल में आया, उसके लिये यह शुद्ध एवं पवित्र है। आहाहा ! जिसके ख्याल में यह वस्तु आई नहीं उसे है यह कहाँ से आया ? समझ में आया ? सूक्ष्मबात है मुख्यबात है यह... आहा ! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकीनाथ से कही हुयी और देखी हुई और जगत को दिखाने के लिए यह बात है। आहाहा ! प्रभु ! तुमने स्वयं अपने को देखा नहीं, तुम जो नहीं उसको देखा ! आहाहा !

पर्याय में राग और पुण्य एवं पाप का भाव, जो वस्तु में नहीं, उसको तुमने देखा और माना, यह तो परिभ्रमण का कारण है। आहाहा ! इस परिभ्रमण का अंत अर्थात कि जिसमें परिभ्रमण और परिभ्रमण का भाव (जिसमें) नहीं ऐसी यह चीज है प्रभु, तुम पूर्णानंद के नाथ सच्चिदानंद सत् हो। चिद्... आनंद, ज्ञानानंद प्रभु आत्मा। परंतु उसकी दृष्टि करे, उसे यह ज्ञानानंद है। उसकी दृष्टि नहीं करे उसे दृष्टि में वस्तु आयी नहीं, उसे तो यह सच्चिदानंद ध्रुव है ही नहीं। आहाहा ! कठिन काम बापू !

इसलिये यहाँ भावार्थ में कहते हैं कि **अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है वस्तु में नहीं।** समझ में आया ?

वस्तु जो त्रिकाली चैतन्यध्रुव, सच्चिदानंद स्वरूप जो शुद्ध है अखण्ड, इसमें उसे मलिनता नहीं, परंतु जो पर्याय में मलिनता होती है, यह अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। संयोगी चीज के लक्ष्य से वह संयोगी भाव उत्पन्न होता है। स्वभावभाव की दृष्टि से उसको स्वभाव दृष्टि में आता है, और संयोगी भाव के लक्ष्य से उसे संयोगी भाव लक्ष्य में आते हैं। अशुद्धता उसको दृष्टि में आती है, यह परद्रव्य के संयोग से **आती है, है ?** आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बातें बापू, यह मार्ग तो वीतरागस्वरूप है प्रभु ! यदि यह वीतरागस्वरूप न हो तब वीतरागता और सर्वज्ञता कहाँ से आयेगी ? वह कहीं बाहर से आये - ऐसा है ? आहाहा ! वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा है। परंतु उसे यह राग जो दिखता है वह संयोग जनित पर्याय अशुद्ध मलिन है। आहाहा ! वहाँ देखा ? **`अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है'** है। पर्याय में, अवस्था में बिलकुलराग है ही नहीं - ऐसा नहीं है राग भी है इस अपेक्षा से यह सत्य है, सत्य है अर्थात कि है। नहीं है - ऐसा नहीं है। असत् है - ऐसा नहीं। आहाहा !

(श्रोता :- राग भ्रम से उत्पन्न किया है ?) हाँ ? भ्रम, यह राग स्वयं उत्पन्न किया यही भ्रम है, स्वरूप में राग नहीं परंतु संयोग के लक्ष्य से उत्पन्न किया यह ही मिथ्यात्व और भ्रम है। आहाहा ! परंतु भ्रम भी है, भ्रम नहीं - ऐसा नहीं। आहाहा ! पर्याय में यह अशुद्धता की अवस्था है इसलिये भ्रम भी है। यह (रागादि) मैं हूँ - ऐसा भ्रम भी है और है इस अपेक्षा से भ्रम सत्य है। (वह) भ्रम त्रिकाल नहीं इसलिये असत् है। परंतु वर्तमान में है। बिलकुल नहीं है - ऐसा कोई कहे तब यह तो वस्तु की पर्याय को जानता नहीं, द्रव्य को तो जानता नहीं, आहाहा ! परंतु पर्याय को भी वह जानता नहीं।

अशुद्धता पर द्रव्य के संबंध से आती है संयोग अर्थात संबंध, संयोग (अशुद्धता) कराता नहीं। पर-द्रव्य का संयोग अशुद्धता करता नहीं, परंतु पर-द्रव्य के संयोग से

अशुद्धता स्वयं उत्पन्न करता है। समझ में आया ? ऐसी बात है बापू ! बहुत सूक्ष्म बात है। अनंत काल में आत्मा क्या वस्तु है, इसने वास्तविक जानने का प्रयत्न किया ही नहीं, शेष सभी बाहर से प्रयत्न कर-करके मर गया। आहाहा !

`वहाँ मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप होता ही नहीं' अर्थात क्या कहते हैं ? अशुद्धता परद्रव्य के संबंध से आती है, संबंध करता है इसलिये, हाँ ? परके कारण विकार होता है - ऐसा नहीं।

अब, `मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप अर्थात् विकाररूप होता ही नहीं' अर्थात राग अन्यद्रव्य (है) वह वास्तव में वस्तु नहीं। आहाहा ! अदंर भगवान आत्मा में जो कुछ पुण्य एवं पाप का भाव होता (है) निश्चय से वह अन्य द्रव्य है। तब स्वद्रव्य अन्य द्रव्यरूप होता नहीं। आहाहा ! वस्तु है वह तीनकाल में विकाररूप होती ही नहीं। आहाहा !

`वहाँ मूलद्रव्य तो' मूलद्रव्य लिया है न ? यह तो उत्पन्न हुई पर्याय कही, यह संयोग के संबंध से उत्पन्न हुआ अशुद्ध भाव है, परंतु मूलद्रव्य जो है, यह तो अन्यद्रव्यरूप मलिनता रूप होता ही नहीं। अन्यद्रव्य के संयोग से होनेवाला (भाव), भी यह वास्तव में तो अन्यद्रव्य है। वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा ! अब - ऐसा समझना (मुश्किल है)।

`मूलद्रव्य' जो मूल वस्तु है सत्, अनादि अनंत वस्तु के रूप में द्रव्य के रूप में, पदार्थ के रूप में, तत्त्व के रूप में, जो है यह भिन्नतत्त्वरूप होता नहीं। भिन्न तत्त्व अर्थात रागरूप यह (राग) अन्य द्रव्य है, यह भिन्न तत्त्व है। दया, दान, व्रत का विकल्प है, यह राग है, यह अन्य तत्त्व है, यह जीव तत्त्व नहीं। आहाहा ! वहाँ मूलद्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप अर्थात भिन्न तत्त्वरूप होता ही नहीं। आहाहा !

`मात्र परद्रव्य के निमित्त से निमित्त से अर्थात ? निमित्त से होता नहीं। परंतु निमित्त है' उसके लक्ष्य से हुयी है, इसलिये निमित्त से - ऐसा कहा है, परद्रव्य के निमित्त से अवस्था मलिन हो जाती है। अवस्था में मलिनता है, पर्याय में मलिनता है। वस्तु है तो निर्मलानंद प्रभु है। आहाहाहाहा ! वीतराग मूर्ति प्रभु चैतन्य तो अनादिअनंत यह वस्तु है, उसकी पर्याय में, परद्रव्य के निमित्त से अवस्था, उसकी हालत, वर्तमान दशा, मलिन हो जाती है। वस्तु नहीं। आहाहा ! उसकी वर्तमान दशा मलिन हो जाती है।

**`द्रव्यदृष्टि से तो द्रव्य जो है वही है'**, द्रव्यदृष्टि से हाँ। जो दृष्टि द्रव्य को देखे, उस दृष्टि से देखें तो, द्रव्य `जो है वही है' वह तो जो है वही है। आहाहाहा ! भाव सूक्ष्म है परंतु भाषा सरल है, कहीं बहुत कठिन नहीं। आहाहा !

इसे अनंत अनंतकाल हुआ, तत्त्व क्या है मूलस्थाई असली वस्तु क्या है ? आहाहा !

उस दृष्टि से तो द्रव्य **'जो है वही'** है **'जो है वही ही'** है, उसमें मलिता है ही नहीं जो है वही है, अनादि से। आहाहा ! द्रव्यदृष्टि से तो द्रव्य अर्थात वस्तु, द्रव्य अर्थात वस्तु, द्रव्य अर्थात यह पैसा नहीं हाँ ! आहाहा ! भगवान आत्मा वस्तु है न ? है न ? यह भूतकाल में नहीं थी - ऐसा है ? यह तो पहले से ही है वह तो अनादि से है, और वर्तमान (में) है और अनादि से है तथा भविष्य में है, है वह यह तो त्रिकाल है, आहा ! - ऐसा जो 'द्रव्यदृष्टि से तो द्रव्य,' 'जो है वही है, वह ही है' !

'पर्यायदृष्टि से देखा जाय' देखने में आये देखा ? पर्यायदृष्टि से - ऐसा देखने में आये **'तो मलिन ही दिखाई देता है'** मलिन है - ऐसा दिखता है। पर्याय से देखो तो मलिन है - ऐसा दिखता है। आहाहा ! यहाँ पर की दया पालना कि पर की हिंसा, यह बात तो इसमें है ही नहीं, कारण कि जो कर (नहीं) सकता उसकी बात क्या करना ? इसमें जो यह कर सकता है (तो) पर्यायदृष्टि (से) और द्रव्यदृष्टि (से), यह बात करते हैं। समझ में आया ?

मलिनपर्याय कर सकता है अज्ञानता से, पर्यायदृष्टि से, परंतु इससे पर का कुछ कर सकता है, यह बात तो यहाँ ली ही नहीं, कारण कि पर तो पररूप है उसे करे क्या ?

तुममें अब दो बातें है। यदि पर्यायदृष्टि से देखे तो मलिन है, यह भी ठीक है, द्रव्यदृष्टि से देखें तो यह तो शुद्ध जो है वह भी ठीक है। परंतु अब ठीक जो त्रिकाली वस्तु है यह दृष्टि में लेना... यह मलिनता पर्याय में जो है वह है फिर भी उसे गौण करके वह नहीं है - ऐसा कहकर और त्रिकाली जो (वस्तु) है उसे मुख्य करके निश्चय कहकर सत्य कहकर उसका आश्रय कराया है। आहाहाहा ! कहो आहाहा ! पर्यायदृष्टि से देखने में आये तो मलिन दिखता है।

'इसप्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्व मात्र है' देखा ? द्रव्य जो है वही है तो 'द्रव्य' क्या है अब ? आत्म में अब लेना है न द्रव्य ? अन्यथा दूसरे द्रव्य तो है, परंतु यहाँ 'द्रव्य' जो है वह क्या ? उसका स्वभाव ज्ञायकपना मात्र है द्रव्य। आहाहाहा ! जाननेवाला स्वभाव ध्रुवमात्र यह आत्मा प्रभु है। अनादि अनंत यह वस्तु है। द्रव्य से कहो कि ज्ञायकरूप से कहो, सभी एक वस्तु है। आहाहा ! परंतु 'द्रव्य' है यह सामान्य हो गया इसलिए जब इसे 'आत्मा' कहना है। तब उसे कहा कि यह तो आत्मा का स्वभाव 'ज्ञायकत्व मात्र है'। द्रव्य तो है यह है, यह तो सामान्य बात कही। परंतु अब द्रव्य है यह वस्तु क्या चीज है ? तब कहते हैं कि द्रव्य तो परमाणु भी है, आकाश भी है, हाँ ? परंतु यह ज्ञायक मात्र है। ज्ञायक प्रभु

है यह। आहा ! जानने स्वभावरूप वह द्रव्य है। द्रव्य तो परमाणु है आकाश है, परंतु वह कहीं ज्ञायक स्वभाव स्वरूप नहीं, वह तो जड़स्वरूप है। आहाहा !

`इसीप्रकार आत्मा का स्वभाव'... जब द्रव्य जो है वही है, यह तो ज्ञायकता मात्र है। आहाहाहा ! जाननस्वभाव की मूर्ति... प्रभु है। जानन स्वभाव की पोटली स्वयं है। अकेला ज्ञायकभाव यह द्रव्य। समझ में आया ? मार्ग बहुत अलौकिक है बापू ! आहाहा ! प्रथम तो - ऐसा सत्य सुनने मिले नहीं (तब) किस दिन विचारे और करने जैसा वास्तविक है वह किस दिन करे ? हाँ ! आहाहा ! यह द्रव्य आत्मा का स्वभाव, त्रिकाली द्रव्य लेना है न ? इस द्रव्य का स्वभाव ज्ञायकता मात्र, बिलकुल राग और पुण्य तथा संसार अथवा उदयभाव उसमें बिलकुल है ही नहीं। आहाहा ! यह तो ज्ञायक मात्र प्रभु ध्रुव, जानन स्वभाव का कंद प्रभु, जानन स्वभाव का वज्रबिम्ब। आहाहाहा ! वह तो `ज्ञायकमात्र' ही प्रभु है।

`जिसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता' यह ज्ञायक की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता (है)। आहाहा ! क्योंकि सम्यक् अर्थात सत्य दर्शन, यह ज्ञायक त्रिकाली सत् है उसका दर्शन करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ?

`और उसकी अवस्था पुद्गल कर्म के निमित्त से,** आहाहा ! **रागादिकरूप मलिन है'...** वह पर्याय है। पहले साधारण बात की थी, फिर द्रव्य ज्ञायक भावरूप बताकर, यह वस्तु ज्ञायकभाव द्रव्य है और उसकी पर्याय में... आहाहा ! **`उसकी अवस्था पुद्गलकर्म के निमित्त से' ***निमित्त से अर्थात उससे - ऐसा नहीं। निमित्त है पर उससे हुआ नहीं आहाहा ! मात्र स्वभाव से नहीं हुआ अतः वह निमित्त से हुआ है - ऐसा कहा जाता है।*** आहाहा !

`पुद्गल कर्म के निमित्त से रागादिकरूप मलिन...' यह राग-द्वेष विषयकषाय के भाव, ये सभी मलिन है। यह तो पर्याय है यह वस्तु नहीं कहीं। आहाहा ! मलिन जो कुछ पुण्य-पाप के भाव दिखते है, यह तो पर्याय है। ***द्रव्य ज्ञायक है, वह कहीं मलिन पर्याय में आया नहीं। आहाहा ! उसीप्रकार मलिन पर्याय, पर्याय (में) है वह ज्ञायक भाव में गई नहीं। आहाहा ! उसकी `मौजूदगी' पर्याय में पर्याय की पर्याय में रही हुई है*** और ज्ञायकता का `अस्तित्व' ज्ञायकरूप से स्वयं के कारण ज्ञायकता रही हुई है। आहाहाहाहा ! दोनों अस्तित्वरूप तो है। कहीं आकाश के फूल नहीं इसीप्रकार अशुद्धता है ही नहीं (- ऐसा नहीं) परंतु यह पर्याय में है, वस्तु में नहीं। आहाहा ! व्यापारियों को धंधे के कारण, फुरसत नहीं मिलती। प्रवीणभाई ! तुम्हारे बड़े भाई वगैरह सभी लोहे के धंधे में लग गये है।

यह वस्तु तो देखो, यह व्यक्तिगत बात नहीं, सभी की है। आहाहा ! क्या कहते

हैं भी ? प्रभु जो चैतन्य द्रव्य है, यह ज्ञायकरूप द्रव्य है - ऐसा कहते हैं। द्रव्य तो दूसरे हैं परमाणु आदि, यह तो चैतन्य ज्योति ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव ध्रुव ज्ञायकभाव इसरूप प्रभु है और उसकी अवस्था में संयोग जनित मलिनता भी है। परंतु यह मलिनता ज्ञायकभाव में गई नहीं, ज्ञायकभाव मलिनरूप हुआ नहीं। आहाहा !

`पर्यायदृष्टि से देखा जाय तो'** देखो ? पर्याय है - ऐसा सिद्ध किया। **`पर्यायदृष्टि से देखा जाय तो मलिन दिखता है' आहाहा ! वर्तमान में राग एवं पुण्य और पाप के भाव संयोग जनित हैं। यह हैं और पर्यायदृष्टि से देखा जाय तो यह हैं। आहाहा ! मलिन ही दिखता है। आहाहा !

अब, आया देखो !

**`द्रव्यदृष्टि से देखा जाय तो'** देखा जाय तो - ऐसा कहा। आहाहा ! उसमें भी पर्यायदृष्टि से देखा जाये तो... वर्तमान पर्याय से देखे तो मलिनता तो ज्ञानी को भी मलिनता पर्याय में दिखती है, इसलिये कहा, न कि `स्वयं का मोह और पर के मोह के नाश के लिये'... पर्याय में मोह है... मोह अर्थात् यहाँ राग का अंश भी है, अस्ति है। पर्याय अपेक्षा देखे तो मलिनता का अस्तित्त्व है। वस्तु अपेक्षा देखें तो वस्तु में यह है ही नहीं। आहाहा ! भाषा तो सरल है, भाव तो जो है सो है। आहाहा ! मूल बिना, अभी (तो) दूल्हा बिना बारात इकट्ठी कर ली, दूल्हा नहीं फिर भी एकत्र कर ली। आत्मा, कौन द्रव्य है, पदार्थ, उसके ज्ञान और भान बिना... सभी करो व्रत एवं तप तथा भक्ति और मंदिर... तथा... आहाहा !

यहाँ कहते हैं, द्रव्य जो है वह तो ज्ञायकस्वरूप है, पर्याय से देखें तो मलिनता है। द्रव्यदृष्टि से देखने में आये, आहाहा ! उसे... द्रव्य जो ज्ञायकभाव है, उसकी दृष्टि से देखने में आये... उसकी दृष्टि से देखने में आये, आहाहाहा ! तब ज्ञायकता तो ज्ञायकता ही है। यह मलिन हुआ ही नहीं, वस्तु मलिन हुई ही नहीं। आहाहाहा !

(यह बात) कैसे बैठे ? यह मलिन पर्याय जो है तो पर्याय तो उसी द्रव्य की है, द्रव्य की है तब द्रव्य मलिन नहीं हुआ ? - ऐसा कहते हैं। वह रतनलालजी... पण्डितजी ? वह रतनलाल जी हैं न वे कहते हैं पर्याय अशुद्धता हुई तो द्रव्य भी अशुद्ध हो गया है। पर्याय अशुद्ध हुई है तब द्रव्य भी अशुद्ध हुआ है। - ऐसा कहते हैं समाचारपत्र में आता है। रतनलाल मुख्यतार। मुख्यतार, अरे ! भगवान ! ***प्रवचनसार की नौवीं गाथा में आता है न-शुभ के समय शुभ से तन्मय है, अशुभ के समय अशुभ से तन्मय है, शुद्ध के समय शुद्ध से तन्मय। पर्याय दूसरे की है और इसकी कहना है - ऐसा नहीं।*** आहाहा ! इतना बताना है। इससे द्रव्य तन्मय हो गया है अशुद्ध परिणामों के समय अर्थात् अशुद्धता के काल में ! तीनों काल में नहीं। आहाहा !

भगवान तो ज्ञायकरूपसे त्रिकाल स्थित है, इसलिये तुम्हें अवकाश है, यह है - उसे मानना और दृष्टि करने का तुम्हें अवकाश है, आहाहा ! - ऐसा जो ज्ञायक भाव त्रिकाल प्रभु है, तब तुम्हें अवकाश है उसे मानने का। हाँ - परंतु स्वयं शुद्ध त्रिकाली शुद्ध है - ***द्रव्य कभी भी अशुद्ध होता ही नहीं तीनों काल में, शुद्धरूप सिद्धरूप परिणमे वह पर्याय, अशुद्धरूप परिणमे यह भी पर्याय, शुद्धरूप पर्याय कहीं द्रव्य में प्रवेश नहीं हुई।*** आहाहाहा ! समझ में आता है ? - ऐसा स्वरूप है भाई, तुम्हारास्वरूप ही - ऐसा है प्रभु तुम्हें खबर नहीं। आहाहा !

`और तुझे दृष्टि करने को अवकाश है' क्यों ? यह तो ज्ञायकरूप रहा है, उसे मानना उसका तुम्हें अवकाश है। आहाहाहाहा ! यह तो ज्ञायकरूप प्रभु तो त्रिकालस्थित है। आहाहाहा ! इसलिये दृष्टि का विषय है यह तो यों का यों रहा हुआ है, रहा है इसलिये तुम दृष्टि कर सकते हो। आहाहाहाहा ! मलिन हो गया हो और शुद्ध मानना हो तो मुश्किल हो। यह तो पर्याय में मलिन है। आहाहाहाहा ! पहली बात में, सम्यग्दर्शन का ही ठिकाना नहीं जहाँ। आहाहा ! जिसकी भूमिका... सम्यग्दर्शन से धर्म की भूमिका उत्पन्न होती है, यह वस्तु ही जहाँ नहीं उसे यह सभी व्रत और तप करे उपसर्ग सहन करे एवं परिषह सहन करे परंतु यह सभी थोथा है, संसार का कारण है प्रभु ! आहाहा !

`द्रव्यदृष्टि से देखने में आये' यह द्रव्य तो ज्ञायकरूप है, इस दृष्टि से देखने में आये तो ज्ञायकता तो तुम्हें ज्ञायकता नजर आयेगी। आहाहाहा ! देखो ! यह ही आया ? (होमियोपेथी के डॉक्टर है) डॉक्टर होमियोपेथी समझ में आया ? क्या कहा ? कि जो आत्मा है यह ज्ञायकभाव, ज्ञायकस्वभाव, तो त्रिकाल है। उसकी वर्तमान दशा में मलिनता है वह तो अवस्थारूप पर्याय में मलिनता है वस्तु है तो ज्ञायकरूप त्रिकाल स्थित है। यह ज्ञायकभाव किसी दिन मलिन हुआ नहीं, ज्ञायकभाव किसी दिन अपूर्ण रहा नहीं, ज्ञायकभाव कभी भी पररूप होने से उसे अशुद्धता - ऐसा होता ही नहीं। आहाहा ! यह ज्ञायक भाव त्रिकाल है, उसे आवरण नहीं। आहाहाहा ! यह तो, ज्ञायकप्रभु है, वस्तु है न ? चैतन्यवस्तु है न ? ज्ञायकत्व स्वभाव, ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायक स्वभाव ऐसी नित्यानंद प्रभु ध्रुव अनुत्पन्न एवं अविनाशी ऐसी वस्तु है न ? आहाहा ! इसलिये तुम्हें अवकाश है। क्योंकि ज्ञायकभाव, ज्ञायकरूप स्थित है, अतः उसकी दृष्टि करने का तुम्हें अवकाश है, ***उस ज्ञायक की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! यह मलिन हो गया हो तथा ज्ञायकरूप मानना हो, तो उसे सम्यग्दर्शन का अवकाश न रहे।*** आहाहा !

प्रभु तो अंदर चैतन्यस्वरूप जो नित्यानंद प्रभु, यह तो ज्ञायकरूप, तत्त्व अपेक्षा

ज्ञायकत्वरूप त्रिकाल है। इसकी वर्तमान दशा, हालत पर्याय उसमें मलिनपना यह पुण्यपाप का दिखता है। यह पुण्य-पाप की मलिनतारूप त्रिकालज्ञायक कभी भी हुआ ही नहीं है आहाहा ! क्योंकि इसमें पर्याय (की) मलिनता का प्रवेश नहीं, इसप्रकार वह मलिन पर्याय को ज्ञायकभाव छूता ही नहीं। आहाहा ! यह तो क्या बात, कठिन बात है। बापू !

यह ज्ञायकपना... द्रव्य दृष्टि से देखने में आये तो 'ज्ञायकपना तो ज्ञायकपना ही है' 'ज्ञायकपना' देखा ? आहाहा ! उसका स्वभाव जानना, स्वभावरूप है यह। सत्प्रभु जो आत्मा सच्चिदानंद। चिद् अर्थात ज्ञान और आनंद का सत् यह तो त्रिकाली ज्ञान एवं आनंद स्वरूप से ही विराजमान है। आहाहा !

द्रव्यदृष्टि से देखने में आये तो, यह कायम रहनेवाली वस्तु है। वर्तमानदशा में मलिनता है उसे न देखने में आये और कायम स्थिर तत्त्व जो है वस्तु ज्ञायक ध्रुव, उसे देखने में आये तो ज्ञायकभाव तो ज्ञायकरूप ही है। भाव लेना है न ? सत् का सत्पना, सत्प्रभु, उसका सत्पना ज्ञायकरूप उसका है। आहाहाहा ! सत् है - ऐसा जो भगवान आत्मा उसका ज्ञायकरूप वह इसका सत्त्व है भाव है। आहा ! उसका सत्त्व और यह इसका भाव... पुण्य-पाप के भाव दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध यह इसका सत्त्व नहीं, यह सत् का सत्त्व नहीं, सत् का यह कस (सार) नहीं। आहाहा !

सत् प्रभु है इसका कस तो ज्ञायकभाव है। अरे... अरे... अब ऐसी बातें... फुरसत नहीं मिले, फुरसत मिले नहीं। बापू ! यह करना पड़ेगा भाई ! यह निवृत्ति स्वरूप मौजूद है। आहाहा ! आहा !

उसमें आता है न ? 'नयन के आलस से मैं देखा न नयन से हरि,' हमारी आंख की आलस से हमने भगवान को नहीं निहारा। हरि (अर्थात) आत्मा जो राग और द्वेष को हरण करनेवाला - ऐसा हरि प्रभु ! यह आंखों की आलस के कारण उसने देखा नहीं। आहाहाहा ! यह पूर्ण ज्ञायक प्रभु पर्याय एवं मलिनता के नजदीक स्थित है। आहाहा ! परंतु उसे देखने की फुरसत नहीं निकाली। आहाहा ! देखनेवाले को ज्ञेय मिले तब बाहर का देखने में रुक गया। आहाहा ! परंतु जिसकी सत्ता में दिखाई देता है, उसकी सत्ता देखने के लिये समय नहीं निकाला। समझ में आया ? आहाहाहा ! अब - ऐसा मार्ग !

इसमें करना क्या ? कुछ समझ नहीं पड़ती। आगम प्रमाण से कहो कि व्रत करो और दया पालों तथा पैसा दान में दो... मंदिर बनाओ - ऐसा कहो तो समझमें तो आये सही ? क्या समझना। यह तो राग है। इसमें क्या समझना ? और रागरूप

प्रभु किसी दिन हुआ नहीं, ज्ञायक। तो यह पर्यायरूप हुआ है ? आहाहाहा ! जो द्रव्य स्वयं रागरूप हो जाये तो द्रव्य अशुद्ध हो जाये अर्थात कि द्रव्य स्वयं रहे नहीं। आहाहा ! यह तो वस्तु जो है यह है।

ज्ञायकरूप प्रभु आत्मा... सभी आत्माओं के अंदर में विराजमान, ज्ञायकभाव है वह है अंदर ! आहाहाहा ! **`है'** उसकी दृष्टि करना है न प्रभु, आहाहाहा ! पर्याय की दृष्टि... ***जब यह द्रव्यदृष्टि यथार्थ होने के बाद पर्याय को देखे तो मलिनता दिखती है, वह ज्ञान का ज्ञेय है।*** आहाहा ! समझ में आया कुछ ? और - ऐसा भी जाने कि ***यह परिणमन हमारी पर्याय में है, हमारे द्रव्य में नहीं। परंतु पुण्य, पाप के भाव हैं, मुझ में होते हैं उनके परिणमन का कर्त्ता मैं हूँ नय ज्ञान (अपेक्षा) से।*** आहाहा ! परंतु वस्तु की दृष्टि से देखने पर ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव रूप रहा, उसे देखे उसे जाने (और) माने फिर उसकी पर्याय में मलिनता है उसका ज्ञान उसे सच्चा हो। आहा ! - ऐसा मार्ग - ऐसा कठिन काम। उपवास कर ले, चार छह आठ दश कर ले। शरीर क्रश हो जाये - ऐसा उपवास करे `उपवास' नहीं हो ? `उपवास' तो भगवान ज्ञायकभाव है उसके समीप में जाकर वसना (रहना)... पर्याय में उसका आदर करना... आहाहा ! और अतीन्द्रिय आनंद की दशा प्रगट हो - उसे `उपवास' कहते हैं। शेष सभी `उपवास' है।

राग में रुक कर, धर्म उपवास किया - ऐसा माने तो यह अनिष्ट वास है, भगवान ज्ञायकभाव है उसे तो देखा नहीं, जिसका महाअस्तित्व है, जिसकी विशाल सत्ता है, महान माहात्म्यस्वरूप जिसका है, उसे तो देखा नहीं, माना नहीं। आहाहा !

`द्रव्यदृष्टि से देखने में आये तो ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव ही `है' एकांत है ? हाँ निश्चयनय है वह सम्यक्एकांत है। समझ में आया ? आहाहाहा ! प्रभु अंदर विराजमान... जिसे केवलज्ञान हो, वह पर्याय कहाँ से आयेगी प्रभु ? कहीं बाहर से आयेगी ? यह अंदर में शक्ति और स्वभाव भरा है ज्ञायक भाव का। आहाहाहा !

**`वह ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है'** कहीं जड़रूप हुआ नहीं। अर्थात ? यह शुभ-अशुभ भाव, जो मलिन पर्याय है, अचेतन है, उसरूप ज्ञायकभाव हुआ नहीं। यह तो आ चुका है और टीका में ज्ञायकभाव शुभाशुभ भावरूप हुआ नहीं अर्थात जड़ हुआ नहीं। यह अंदर में आ गया है। आहाहा ! यह कहीं कथा नहीं, कहानी नहीं। यह तो प्रभु की `भागवत कथा है यह। आहाहा ! भगवत स्वरूप प्रभु अंदर है, आहाहा ! उसे प्राप्त करके भेंट करने की बातें है।

पामरता के आलिंगन में रुका है प्रभु ! प्रभुता की भेंट करो एकबार। आहाहा ! तुम्हारी पामरता नष्ट हो जायेगी। आहाहा ! सारी समाज को - ऐसा उपदेश है ?

बापू, समाज तो आत्मा है न अंदर प्रभु है न ! यह शरीर तो जड़ मिट्टी (तो यह) है। `जाननेवाले को बताना है' जाननेवाले को बताते है कि तुम तो ज्ञायकपनेरूप कायम रहे हो न। आहाहा !

हमारे सामने देखकर तुम सुनते हो एवं जो राग होता है यह तो पर्याय में होता है, तुम्हारा ज्ञायकभाव है, वह कभी भी पर्यायरूप रागरूप हुआ ही नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ?

`कहीं जड़पने हुआ नहीं' अर्थात ? शुभ-अशुभ भाव वह तो जड़ हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प जो उठे उसमें चैतन्य के, ज्ञायकपने के अंश का भी अभाव है इसमें पूरे ज्ञायकभाव का तो अभाव है, क्या कहा ? यह दया, दान, व्रतादि के परिणाम में ज्ञायक का तो अभाव है परंतु उसके एक अंश (का) भी उसमें अभाव है। जो सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की पर्याय इसमें जो भगवान आत्मा ज्ञात हुआ ऐसी पर्याय का भी राग में अभाव है, ज्ञायक का तो राग में अभाव है। आहाहा ! अरे, ऐसी बात कहाँ मिले भाई ? आहाहा !

`जड़रूप हुआ नहीं' आहाहा ! अर्थात ? जो कुछ शुभभाव कि अशुभभाव होते है, यह तो इसमें चैतन्य का, ज्ञायकभाव का तो अभाव है, परंतु ज्ञायकभाव की जो श्रद्धा ज्ञान आदि की निर्मल पर्याय होती है, उनका भी इसमें अभाव है, आहाहाहा ! इसलिये वह जड़रूप हैं। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण यह सभी राग वह जड़ हैं। आहाहाहा ! भगवान चैतन्य ज्ञायकरूप है वस्तु जो ज्ञायकरूप है, वह तो रागरूप हुई नहीं, यह राग में आयी नहीं, परंतु ज्ञायक की श्रद्धा ज्ञान की किरण जो सत्य का विष्फोट, उस किरण का भी राग में अभाव है। आहाहाहा !

इसलिये कहते हैं कि जो भाव... पंचमहाव्रत के भाव कहलाते है, भगवान का स्मरण कहलाये, उस भाव को तो यहाँ जड़ कहा है। आहाहा ! यह जड़ से, चैतन्य का ज्ञायक का ज्ञायकत्व प्रगटे ? वह ज्ञायकभाव नहीं था ? वह प्रगटे ? ज्ञायकभाव तो है ही। ज्ञायकभाव के स्वभाव का सत्कार और प्रतीति तथा अनुभव से उसका चैतन्यभाव प्रगटे। यह रागरूप क्रियाकाण्ड के परिणाम से प्रभु न प्रगटे। आहाहा ! - ऐसा (समझना) बहुत कठिन काम है।

चैतन्य ज्ञायकस्वभाव तो कायम रहनेवाला प्रभु द्रव्य है, परंतु उसे माननेवाली जो दृष्टि है, कि जाननेवाला जो ज्ञान है, उसे जाननेवाला ! ऐसे ज्ञान का अंश भी इस शुभराग में नहीं। आहाहा ! इसलिये शुभाशुभ राग को जड़ कहा गया है। आहाहा !

`यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है' पर्याय नहीं - ऐसा नहीं, पर्याय है

परंतु यहाँ द्रव्यदृष्टि को, द्रव्य की दृष्टि कराने को, ज्ञायकभाव की जो दृष्टि सत्य है, सत्य का स्वभाव है उसकी सत्य दृष्टि कराने को... आहाहा ! द्रव्यदृष्टि को मुख्य करके कहा है, मुख्यप्रधान करके मुख्य करके।

**`जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद है'** जो गुणस्थान के, चौदह गुणस्थान है, यह तो अशुद्धनय का, व्यवहारनय का विषय है। यह वस्तु में नहीं। आहाहाहा ! चौदह गुणस्थान हाँ। पहला गुणस्थान दूसरा, तीसरा, चौथा, चौदहवां, यह तो अशुद्धनय का विषय है। पर्याय का विषय कहो कि अशुद्ध का कहो अथवा व्यवहार का कहो, तीनों एक है। `जो प्रमत्त और अप्रमत्त के भेद है'... मलूगाथा में अप्रमत्त प्रमत्त था। `णवि होदि अपमत्तो ण पमत्तो' इसप्रकार।

(श्रोता :- आचार्य, स्वयं से कहते हैं) फिर यह सामान्य समझाया, वह प्रमत्त पहले होता है न ? प्रमत्त पहले होता है पहले से छठवें में और अप्रमत्त सातवें से चौदहवें गुणस्थान की धारा (है न) अर्थात उसे इसप्रकार कहा। यहाँ समझाने की अपेक्षा उसे प्रमत्त में कहा अप्रमत्त के भेद नहीं प्रभु, ज्ञायक भावरूप विराजमान वह शुभाशुभ भावरूप हुआ नहीं। जड़रूप हुआ नहीं इसलिये प्रमत्त-अप्रमत्त का भेद यह वस्तु में नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

लोगों को तो कहानी हो तो कुछ समझ में भी आये। एक राजा था और एक रानी थी रानी रूठ गई और राजा मनाने गया न ? हाँ ? घर पर होता हो ऐसी बातें करे तो उसे समझ में आये। उसके घर में होता हो। अरे ! बापू यह तो तुम्हारे घर में किसी दिन (ज्ञायक में) होता नहीं (कभी भी) `पर्याय में, (होता है) ऐसी बात है' यह तो। आहाहाहा !

भगवान आत्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ पुकारते हैं कि हम जो सर्वज्ञ हुये, यह सर्वज्ञतामें से सर्वज्ञ स्वभावमें से सर्वज्ञ हुए हैं... कहीं सर्वज्ञता कुछ बाहर से आई नहीं। आहाहा ! इसीप्रकार तुम्हारा गुण ही सर्वज्ञ स्वभाव है। यह सर्वज्ञस्वभाव स्वयं है। यह कभी भी रागरूप कि अल्पज्ञरूप हुआ ही नहीं। आहाहाहाहाहा ! तुम्हारा जो सत्त्व है, ज्ञायकपन `ज्ञपना' सर्वज्ञपना यह कभी भी `अल्पज्ञरूप हुआ नहीं', तब फिर रागरूप तो हो कहाँ से ? आहाहा ! ***वह तो परद्रव्य से संयोगजनित पर्याय है। शुभ-अशुभ भाव नहीं और प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं यह दोनों पर्याय नहीं, इसलिये भेद नहीं। इसलिये यह भेद परद्रव्य के संयोग जनित है।*** परद्रव्य के संयोग के लक्ष्य से हुआ है। परद्रव्य के संयोग जनित, संयोग ने उत्पन्न कराया है - ऐसा नहीं। फिर भी संयोगजनित (अर्थात कि) संयोग के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ है। आहाहा !

अब - ऐसा उपदेश याद किस प्रकार रहे ? एक घण्टा - ऐसा सुनो न बापू,

तुम आनंद केवलज्ञान के धनी हो नाथ ! तीनकाल, तीनलोक को जानो नाथ ! ऐसी तुम्हारे में शक्ति पड़ी है। आहाहा ! तब क्या ऐसी साधारण बात को न जान सके ? - ऐसा न सोचना भाई - ऐसा नहीं हो, समझ में नहीं आता यह कहने में कलंक लगता है प्रभु ! आहाहा ! यह तो ज्ञायकभाव का पिण्ड है न। वह कहे कि मुझे समझ में नहीं आये, पर्याय में नहीं समझे ! अरे आहाहा !

प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद है, यह तो परद्रव्य के संयोग से उत्पन्न हुयी पर्याय है। यह अशुद्धता... पर्याय में, हालत में, अवस्था में बदलती हलचल दशा में अशुद्धता है। नहीं बदलती स्थिर ध्रुव वस्तु में वह नहीं। ज्ञायक भाव न चलता न हिलता, स्थिर ध्रुव। आहाहा ! `उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' है न ? ध्रुव है वह चलता हिलता नहीं, परिणमता नहीं। आहाहा !

यह त्रिकाली वस्तु है, उसकी दृष्टि की अपेक्षा से, उसकी दृष्टि की अपेक्षा यह अशुद्धता वह संयोग जनित विकार है, वह द्रव्य दृष्टि में गौण है, मुख्य नहीं। भेद में रखा, है अवश्य। तलहटी में रखो, इसप्रकार ऊपर चढ़ना है तो तलहटी साथ में नहीं आये। आहाहा !

इस द्रव्यदृष्टि में मलिनता गौण है। अभाव है - ऐसा नहीं हाँ। मलिनता नहीं तो संसार भी नहीं, दुःख भी नहीं, विकार भी नहीं। आहाहा ! - ऐसा नहीं। है, परंतु द्रव्यदृष्टि वस्तु ज्ञायकभाव, उस दृष्टि की मुख्यता से, उस अशुद्धता को गौण करके नहीं - ऐसा कहने में आया है। गौण करके भेट में गर्भित करके, ऊपर जाना है न तलहटी नीचे रह गई, परंतु यह है अवश्य...।

इसप्रकार राग से भिन्न होकर, स्वरूप की दृष्टि करने को और उसमें स्थिर होने में, पर्याय को गौण करे तब उसमें दृष्टि उसकी स्थिरता होती है। आहाहा ! है ? गौण है यह व्यवहार है, दूसरे प्रकार से कहें उसे, द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से वस्तु जो त्रिकाल ज्ञायक प्रभु है वह मुख्य है। उसकी दृष्टि में अशुद्धता है यह व्यवहार है। त्रिकाली ज्ञायक भाव वह निश्चय है। यह गौण है और वह मुख्य है। यह व्यवहार है, वह त्रिकाली निश्चय है। आहाहा !

अभूतार्थ है। नहीं - ऐसा कहा। अ-भूत, पर्याय नहीं। गौण करके, भगवान त्रिकाली ज्ञायकभाव को मुख्य करके **`है'** निश्चय - ऐसा कहा और गौण करके व्यवहार कहकर नहीं - ऐसा कहा, पर्याय बिलकुल नहीं, इसप्रकार अशुद्धता - ऐसा नहीं और असत्यार्थ है, झूठा अशुद्धता असत्यार्थ है, उपचार है, पर्याय में.... (है) आहाहा ! विशेष व्याख्या आयेगी... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. २४ गाथा-६ ता. ३-७-७८ सोमवार जेठ वदि-१३ सं.२५०४

अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। भावार्थ (में) है ? क्या कहते हैं कि जो यह आत्मा है न आत्मा, वस्तु वह तो शुद्ध चैतन्य आनंदघन है अतीन्द्रियआनंद और अतीन्द्रियज्ञान की मूर्ति है। उसकी पर्याय में अवस्था में (हालत) वर्तमानदशा में अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। यह अशुद्धता अर्थात पर्याय का भेद परद्रव्य के संयोग से स्वयं अपनी योग्यता से होती है। आहाहा ! अशुद्धता, भेद अथवा पुण्य-पाप का भाव अपनी वस्तु जो द्रव्य है, उसमें तो है ही नहीं, परंतु उसकी पर्याय में मलिनता परद्रव्य के संयोग से आती है। **`उसमें मूलद्रव्य तो अन्यद्रव्यरूप नहीं होता'** क्या कहते हैं, वस्तु जो सच्चिदानंद ज्ञानानंद ध्रुव वस्तु, आत्मा नित्य ध्रुववस्तु यह कभी पुण्य-पाप के मैल, वह अन्य द्रव्यरूप यह स्वद्रव्य होता नहीं। समझ में आया ? सूक्ष्मबात बापू ! धर्म, धर्म यह क्या वस्तु है बहुत सूक्ष्म है। आहाहा !

यह मूलद्रव्य जो वस्तु है, वस्तु आत्मा, ज्ञानस्वरूप ज्ञायकभाव वह अन्य द्रव्य अर्थात पुण्य-पाप के भेदरूप तो कभी होता नहीं। समझ में आया ? **मात्र परद्रव्य के निमित्त से अवस्था मलिन हो जाती है।** पर कर्म का निमित्त उसके संबंध से आत्मा की अवस्था में पर्याय में, हालत में मलिनता होती है, वस्तु में मलिनता नहीं, वस्तु तो त्रिकाल निर्मलानंद है। आहाहा !

`द्रव्यदृष्टि से द्रव्य तो जो है वह ही है' वस्तु जो है वस्तु सच्चिदानंद प्रभु शुद्ध अखण्ड आत्मद्रव्य यह तो जो है वह ही है, उसमें कुछ फेरफार होता नहीं। पर्याय में फेरफार (होता है) यह संयोग जनित मलिन अवस्था वह वस्तु में नहीं। आहाहा ! दशा में, पर्याय में भेद है, वस्तु में नहीं। वस्तु और पर्याय (वस्तु में मलिनता नहीं तब मलिनता किधर से आई) मलिनता पर्याय में है वस्तु में मलिनता कैसी ? वस्तु तो है वही है। आहाहा ! पर्याय में अवस्था में मलिनता है अतः मलिनता चली जाती है... वस्तु में मलिनता हो तो वस्तु चली जायेगी, यदि वह अशुद्ध हो जाये एवं अशुद्धता का नाश करने जाये तब यह वस्तु नाश हो जाये, धर्म सूक्ष्मबात है भाई ! आहाहा !

द्रव्यदृष्टि से, द्रव्य अर्थात त्रिकालीवस्तु की दृष्टि से देखो तो द्रव्य जो है वही है। जो तत्त्व है वह - ऐसा का - ऐसा अनादि अनंत - ऐसा (ही) है। आहाहा ! और पर्याय दृष्टि से देखो तो मलिन ही दिखाई देता है, वर्तमान उसकी दशा, उसकी हालत, पर्याय, उससे देखो तो मलिन है, पर्यायदृष्टि से देखो तो मलिन है, द्रव्यदृष्टि

से देखो तो निर्मल है। आहाहा ! अब इसे - ऐसा समझना (कठिन पड़ता है)। मार्ग अनादि (से) ख्याल में नहीं (है) और जन्ममरण कर रहा है, चौरासी के अवतार (में)। आहाहा !

यह पर्यायदृष्टि से देखो तो मलिन दिखता है, इसीप्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकभाव मात्र है, ज्ञायक तो जानना, जानना, जानना, जानना - ऐसा ज्ञायक स्वभाव ही त्रिकाली उसका भाव है। उसकी अवस्था पुद्गलकर्म के निमित्त से रागादिकरूप मलिन है। उसकी वर्तमानदशा, त्रिकाली द्रव्य को छोड़कर वर्तमान अवस्था में पुद्गलकर्म के निमित्त से रागद्वेषादि मलिनता है, वह पर्याय है, यह तो अवस्था है। आहाहा ! मनुष्यपना मनुष्यपने की अपेक्षा कायम है। बाल, युवान, वृद्धावस्था यह तो पर्याय के भेद हैं। मनुष्यत्व तो मनुष्यत्वरूप कायम है। इसीप्रकार सोना तो स्वर्णत्वरूप कायम है, परंतु सोना की अवस्था जो कुण्डल कड़ा आदि होती है यह अवस्था है, यह अवस्था भेद है यह वस्तु में नहीं। आहाहाहा ! अब - ऐसा समझना।

'**द्रव्यदृष्टि से देखा जाय तो ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है,**' वस्तु, वस्तु, वस्तु त्रिकाली वस्तु द्रव्यतत्त्व इस दृष्टि देखा जाय तो **ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। वह कहीं जड़त्व नहीं हुआ।** ज्ञायक भाव जो जानन स्वभाव वह तो ज्ञायक स्वभाव रूप तो त्रिकाल है। यह पुण्य-पाप भाव जो जड़ है, उसरूप यह हुआ नहीं। पुण्य और पाप दया-दान-व्रत-भक्ति, काम, क्रोध का भाव उसमें ज्ञायक भाव का अंश नहीं, वह ज्ञायकभाव तो नहीं परंतु ज्ञायक भाव की किरण अंश (रूप) पर्याय, (अर्थात) उसकी निर्मल पर्याय भी पुण्य-पाप के भाव में नहीं। शुभ-अशुभ भाव जो है (वह) मलिन है जड़ है, आहाहा ! ***शरीर जड़ है यह तो रंग, गंध, स्पर्श, रसवाला जड़ है। आहाहा ! और पुण्य-पाप का भाव जड़ है उसमें चैतन्य के प्रकाश का अभाव है इस अपेक्षा यह जड़ है। आहाहा !***

'**यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है**' इस गाथा में तो वस्तु की दृष्टि बताना, वस्तु की दृष्टि कराना, तब यह सम्यग्दर्शन होता है। सत्य दर्शन होता है। जैसी वस्तु है ऐसी दृष्टि कराने को, द्रव्यदृष्टि को प्रधान मुख्य कहकर कहा है। है ?

'**जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं,** चौदह गुणस्थान यह भेद है, यह भेद है **वह परद्रव्य की संयोग जनित पर्याय है**' शुभाशुभ भाव, पर्याय में कर्म के संयोग के निमित्त से, अपनी उपाद की योग्यता से उत्पन्न होता है, परंतु यह तो जड़। इस कारण प्रमत्त-अप्रमत्त का भेद है वह परद्रव्य की संयोज जनित पर्याय है। जैसे शुभाशुभभाव परद्रव्य के संयोग जनित विकारी पर्याय जड़ पर्याय है, ऐसे प्रमत्त-अप्रमत्त का भेद

भी पहले गुणस्थान से छठवें (तक) प्रमाद सातवें से चौदहवें अप्रमाद यह भेद है, यह संयोगजनित की अपेक्षा यह भेद है, वस्तु में भेद नहीं, ऐसी चीज है।

हिन्दी बोलें परंतु भाव तो जो है वही रहे, अभी तो (यह बात) चलता नहीं, अभी तो सभी गड़बड़-गड़बड़ (चलती है), दया करो और व्रत करो एवं भक्ति करो तथा पूजा करो धर्म होगा, हो जायेगा। धूल में धर्म नहीं भाई तुझे ख्याल नहीं। यह विकारी भाव पर्यायदृष्टि से संयोग जनित भेद है यह वस्तु में है नहीं और वस्तु की दृष्टि हुये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है कि जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं यह तो परद्रव्य के संयोगजनित पर्याय है, यह अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है। वस्तु दृष्टि कराने को यह अशुद्धता गर्भित रखकर उसमें है नहीं, उसकी पर्याय में भी है नहीं - ऐसा गौण करके... पर्याय है ही नहीं - ऐसा नहीं परंतु उस पर्याय को गौण करके अर्थात उसकी मुख्यता लक्ष्य में न लेने को, त्रिकाली द्रव्य को मुख्यता से लक्ष्य में लेने को, इस कारण से सम्यग्दर्शन होता है धर्म की पहली सीढ़ी, इस कारण से अशुद्धता गौण करके है ? द्रव्यदृष्टि में यह गौण है, आहाहा ! वस्तु जो चैतन्यप्रभु नित्यानंद ध्रुव जो वस्तु है, उसकी दृष्टि में यह पर्याय के भेद गुणस्थान आदि पुण्य-पाप यह सब गौण है व्यवहार है त्रिकाली ज्ञायकभाव यह मुख्य है और प्रमत्त आदि का भेद है यह गौण है। त्रिकाली ज्ञायकभाव है यह निश्चय है और पर्याय का भेद है वह व्यवहार है। नेमचन्द्र भाई ! - ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा !

इसने परवाह नहीं कि किसी दिन, संसार के पाप सारे दिन करे, उसमें कहीं धर्म सुनने जाय एकाद घण्टे तो ऐसी उपदेश मिले कि दया करो और व्रत करो और भक्ति करो एवं पूजा करो, तो तुमको धर्म हो जायेगा। यह तो वह का वही मिथ्यात्व है।

यहाँ तो अशुद्धता वस्तु जो त्रिकाली है, जो कायमी असली चीज है उसकी दृष्टि कराने को, द्रव्यदृष्टि की मुख्यता से, जो पर्याय है वह गौण है। त्रिकाल यह सत्यार्थ है और पर्याय इस अपेक्षा अभूतार्थ। आहाहा ! त्रिकाली सत्यार्थ है, तब इस अपेक्षा पर्याय असत्यार्थ है, त्रिकाली वास्तविक है तब यह भेद उपचार है। वस्तु ऐसी सूक्ष्म है बापू ! आहाहा ! यहां तक कल आया था, आया था यहाँ तक ? यह तो फिर से (लेते है) भाई के कारण। आहाहा ! आहाहा ! **द्रव्यदृष्टि शुद्ध है... वस्तु जो त्रिकाली सच्चिदानंद प्रभु, ध्रुव जिसमें पलटाव, अवस्था भी नहीं, ऐसी चीज है यह शुद्ध है, पर्याय, मलिनता और भेद अशुद्ध कहकर गौण करके, व्यवहार कहकर उपचार कहकर के है ही नहीं - ऐसा कहने में आया है।** समझ में आया ? और

त्रिकाली भगवान आत्मा एक समय में ध्रुव, ध्रुव चिदानंद प्रभु वस्तु है उसकी दृष्टि से शुद्ध है। द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, क्योंकि त्रिकाली चीज है यह सत्यार्थ है भूतार्थ है, विद्यमानवस्तु है त्रिकाली, उसकी दृष्टि से यह शुद्ध है। संयोगजनित अशुद्धपर्याय की दृष्टि तो अशुद्ध है, पर्याय है और व्यवहार है। आहाहा ! समझ में आया ? आज हिन्दी चला, यह हिन्दी चला आज, नहीं समझते ? यह तो हिन्दी चलता है आज तो, समझ में आ रहा है, उसे कुछ फरक नहीं। समझ में आया ?

द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, वस्तु है वैसी दृष्टि करना यह द्रव्यदृष्टि यह शुद्ध है, पर्यायदृष्टि से... यह पर्याय तो अशुद्ध है संयोगजनित, उसको गौण करके व्यवहार कहकर और वस्तु को मुख्य करके निश्चय कहकर उसकी दृष्टि कराई है। पण्डितजी ! आहाहा ! दिगम्बर संतो की वाणी गंभीर बहुत अधिक गंभीर बापू, वस्तु ऐसी है और ऐसी वस्तु अन्य कहीं है नहीं, श्वेताम्बरों में, स्थानकवासियों में और अन्यमत में कहीं है नहीं। ऐसी चीज है आहाहा !

तो कहते हैं कि द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, त्रिकाली वस्तु की दृष्टि यह शुद्ध है और त्रिकाली दृष्टि यह निश्चय है। यह त्रिकाली द्रव्य जो है, वह निश्चय है, और उसकी दृष्टि वह निश्चय है। आहाहा ! भूतार्थ है, त्रिकालीवस्तु है यह भूत अर्थात विद्यमान पदार्थ है पर्याय तो पलटती क्षणिक अवस्था संयोग जनित भेद मलिनता है यह तो स्वभाविक वस्तु है त्रिकाली, जिसमें संयोग की अपेक्षा भी नहीं, संयोग के अभाव की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! जितना समझ में आये उतना समझो बापू ! यह तो परमात्मा जिनेश्वर देव, तीर्थंकर त्रिलोकनाथ उनकी यह वाणी है। अभी तो सभी जगह गड़बड़ हो गई है, जहाँ देखो वहाँ यह करो और उपवास करो, व्रत करो, परंतु कहते हैं कि यह सभी विकल्प हैं और अशुद्ध है, आहाहा ! यह अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से उत्पन्न होती है, वह स्वाभाविक चीज नहीं। आहाहाहा !

स्वभाविक चीज तो त्रिकाली जो चीज है यह स्वाभाविक है, सहज है, उसकी दृष्टि (करना) ***द्रव्य शुद्ध है तो दृष्टि भी शुद्ध है और द्रव्य भी, आहाहा ! (वस्तु) अभेद है और पर्याय अभेद हो गई, द्रव्य निश्चय है तो पर्याय को भी निश्चय कहा जाता है,*** वस्तु भूतार्थ है, भूत अर्थात विद्यमान, उपस्थित, कायमी, त्रिकाली मौजूद चीज है पर्याय यह तो क्षणिक विकार कर्म के संयोग से उत्पन्न है। यह वस्तु है सत्य है भूतार्थ है, आहाहा ! सत्यार्थ है, सत्य, सत्य कायमी सत्य पदार्थ है। आहाहा ! आहाहा वह सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया ?

अभ्यास नहीं करें, कुछ खबर नहीं पड़े, जगत के पापरूप सभी अभ्यास, पूरे दिन धंधा... इस दुकान पर बैठकर ग्राहक को सम्भालना और माल बेचना... यदि

नोकरी हो तो दो-पांच हजार की तनख्वा मिले, अकेला पाप है सारे दिन। धर्म तो नहीं परंतु पुण्य भी नहीं। आहाहाहा !

यहाँ तो धर्म करने के लिये, पर्यायदृष्टि को, मलिनता और भेद को गौण करके त्रिकाली दृष्टि कराने को कि जो सत्य दृष्टि है, क्योंकि वस्तु सत्य है त्रिकाली मौजूद चीज है, विद्यमान चीज भगवान त्रिकाली ध्रुव, उसकी दृष्टि करना वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! उसका नाम धर्म की प्रथम सीढ़ी है। अभी चारित्र तो कहीं रह गया यह तो बहुत कठिन बात है, समझ में आया ?!

अभेद है भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परमार्थ है। आहाहा ! परमपदार्थ परमार्थ यह वस्तु परमार्थ है यह दुनिया का परमार्थ हम करते हैं परोपकार करते है, यह सब झूठी बात है। किसी का कोई कुछ कर सकता नहीं। परमपदार्थ परमार्थ तो प्रभु स्वयं है। त्रिकाली परमपदार्थ परमार्थ उसकी दृष्टि करने से जन्म-मरण का अंत लानेवाला सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा ! समझ में आया ? इसलिये आत्मा ज्ञायक ही है। वस्तु है यह तो त्रिकाली ज्ञायक, ज्ञायक, ज्ञायक ज्ञानरूप ज्ञान स्वभाव, ज्ञायक `ज्ञ' स्वभाव सर्वज्ञ स्वभाव, ज्ञायकभाव, यह तो त्रिकाली ज्ञायकभाव स्वरूप है। आहाहा ! ऐसी भाषा और - ऐसा सभी...। बापू मार्ग सूक्ष्म बहुत भाई ! आहाहा ! है ? इस कारण आत्मा ज्ञायक ही है, एक ज्ञायक स्वरूप ज्ञायकत्व स्वभावमात्र यह तो है। ज्ञायकत्व स्वभाव कायमी त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, मात्र आत्मा है। ***उसमें कोई मलिनता और भेद है नहीं। आहाहा ! उमसें भेद नहीं। यह प्रमत्त-अप्रमत्त और पुण्य-पाप का भाव वह वस्तु के स्वरूप में नहीं, भेद नहीं।*** आहाहा ! इसलिये यह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं इस कारण वह प्रमत्त-अप्रमत्त जो गुणस्थान के भेद, जैसे चढ़ने को सीढ़ी होती है न ? सीढ़ी... इसी प्रकार भेद है गुणस्थान चौंदह पर्याय में, वो उसमें हैं ही नहीं। आहाहा !

`ज्ञायकभाव नाम भी उसे ज्ञेयों को जानने से दिया जाता है' आहा ! जाननेवाला जाननेवाला - ऐसा कहा जाता है, तो जाननेवाला पर को जानते है इसलिये जाननेवाला है ? कि `ना' आहाहा ! यह तो पर को जानने के काल में जो अपनी ज्ञान की विकास शक्ति प्रगट हुयी यह अपने से हुयी है, पर का जानना और स्व का जानना वह पर्याय में, पर्याय की विकास शक्ति व्यक्त प्रगट हुयी यह अपने से हुई है पर से नहीं। आहाहाहा !

ज्ञायक नाम भी उसे ज्ञेयों को जानने से दिया जाता है, `क्योंकि ज्ञेयों का प्रतिबिम्ब भी जब झलकता है,' ज्ञान की पर्याय में, पर्याय की बात अब चलती है, ***इसकी पर्याय में राग जानने में आता है, शरीर है - ऐसा जानने में आता है, ज्ञान की***

पर्याय में उसकी झलक अर्थात जानने में है। आहाहा ! ज्ञेयों का प्रतिबिम्ब जब झलकता है, ज्ञान की पर्याय में जो स्वपर प्रकाशक पर्याय की सामर्थ से कसित हुयी, उसमें राग और शरीर आदि देखने में जानने में आते है, `तव ज्ञान में वैसा अनुभव होता है,' तो ज्ञान में - ऐसा अनुभव होता है कि मैं तो ज्ञान की पर्याय हूँ, तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं। क्या कहते हैं ?

त्रिकाली ज्ञायक भाव तो शुद्ध है परंतु उसका ज्ञान हुआ अब पर्याय में, तो ज्ञान उसको हुआ वह ज्ञान की पर्याय में स्व तो जानने में आया परंतु वह ज्ञान की पर्याय अवस्था में पर (भी) जानने में आया, तो पर जानने में आया तब इतनी परज्ञेयकृत पराधीनता उसमें आयी - ऐसा है नहीं। ***यह पर ज्ञेय कृत जो भाव कहने में आया यह तो स्वज्ञेय अपनी पर्याय का भाव है, यह ज्ञान पर्याय अपना पर्याय का भाव है यह ज्ञेय कृत से हुआ है - ऐसा है नहीं।*** अरे ऐसी बातें। भाषा तो साधारण है परंतु अब भाव तो जो हो उस प्रकार हो न ? आहाहा ! क्या कहा ? कि जो जाननेवाला - ऐसा कहने में आया, तब जाननेवाले (ने) अपने को तो जाना, परंतु वह पर को जानने के काल में, पर जैसी चीज है वैसा यहाँ ज्ञान होता है, तो - ऐसा कि पर के कारण पर्याय हुई है - ऐसा है नहीं, यह पर को जानने की पर्याय है, अपने से प्रगट हुई है, पर से नहीं। समझ में आया ? आहाहाहा !

ऐसा उपेदश है, परन्तु कुछ सुना (ही) न हो, द्रव्य क्या और पर्याय क्या, अभेद क्या और भेद क्या यह क्या है आहा ! यह अनादि काल से अज्ञान में रूलते रूलते परिभ्रमण (किया), आहाहा ! कौआ, कीड़ा, कुत्ता, क्षुद्रजीव उसमें भव अनंत किये और यहाँ भी नहीं समझें (तो) यह मरकर वहीं जायेगा आहाहा ! भले यहाँ करोड़पति हो, मांस और शराब खाता (पीता) न हो शराब आदि, परंतु ज्ञान नहीं वस्तु का और माया, कपट, लोभ आदि भाव किये हों आहाहा ! तब पशु में जायेगा, फिर मनुष्य का अवतार मिलना कठिन पड़ेगा, धर्म तो कठिन परंतु मनुष्यपना मिलना कठिन (हो जायेगा) आहाहा !

यह चीज जैसी है, ऐसी ज्ञान में समझ में न आये तब तक तो परिभ्रमण का भाव है। आहाहा ! ज्ञान में - ऐसा अनुभव आता है, जैसा राग और शरीर को जाना तब यह ज्ञान की पर्याय जानने में आई है, ***यह राग का ज्ञान हुआ इसलिये राग को जाना अथवा राग से ज्ञान हुआ - ऐसा है नहीं। यह ज्ञान पर्याय (ने) अपने को जाना उसी पर्याय में पर को जाना, तब पर के कारण से पर का जानना हुआ - ऐसा है नहीं, अपने में यह स्वपरप्रकाशक भान हुआ, विकास हुआ, प्रगट हुआ, यह राग से प्रगट हुआ नहीं, शरीर को जाना तो शरीर से जानने की पर्याय***

उत्पन्न हुई नहीं। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

फिर भी उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं, क्योंकि जैसा ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ, जैसा शरीर और राग, जैसे अपनी पर्याय में स्वज्ञेय जानने में आया उस ही पर्याय में पर भी जानने में आये, यह (जो) प्रतिभासित हुआ वैसा (ही) ज्ञायक का अनुभव करनेपर ज्ञायक ही है, यह तो जानने की पर्याय ज्ञायक की ही है, यह राग की पर्याय नहीं, अरे ! ऐसी बातें अब ! श्लोक (गाथा) बहुत अच्छी है नेमचन्द्रभाई ! छठवीं गाथा, यह तो भावार्थ है, टीका तो चल चुकी यह तो उन्नीसवीं वार चलता है, अठारहबार तो सारा समयसार सभा में चल गया पहले से तो अंत तक अठारहबार, यह उन्नीसवीं बार चलता है। आहाहा ! वस्तु गहन ! कभी सुनी नहीं, विचार में आयी नहीं क्या चीज है और उसकी दशा में क्या होता है, पहले तो यह कहा कि वस्तु है यह तो त्रिकाली शुद्ध है और उसकी दृष्टि करना वह शुद्ध है, पर्याय में अशुद्धता आती है वह संयोग जनित है इसलिये मलिनता और भेद पड़ते हैं।

अब यहाँ जो पर्याय हुई यह दूसरी बात है, फिर भी वह पर्याय द्रव्य में नहीं, स्वज्ञेय को जाना और परज्ञेय को जाना यह पर्याय स्वपर प्रकाशक अपने से अपने में हुई है, फिर भी वह पर्याय द्रव्य में है नहीं, पर्याय यह भेद है। आहाहा !

इसमें मुंबईवालों को कहाँ फुरसत मिले इसमें - ऐसा समझने की ? व्यापार सारे दिन पाप। सुबह से उठे तभी से यह करो और यह करो, धंधा, धंधा, धंधा पाप का, आहाहा ! धर्म तो नहीं परंतु पुण्य भी नहीं होता। आहाहा ! और दो-चार घण्टे सत् सुनने में आता हो तब पुण्य भी बंधे परंतु धर्म नहीं। धर्म तो यह पुण्य बंध के राग से भिन्न भगवान है, पूर्णानंद का नाथ, ज्ञायकभाव है उसकी दृष्टि करना अर्थात कि उस दृष्टि में ज्ञायक लेना... आहाहा ! जिस दृष्टि में रागादि पर्याय आदि लिया है उस दृष्टि में सारा त्रिकाली ज्ञायक लेना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा !

`**क्योंकि जैसा ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ**' पर्याय की बात है हो ! `**वैसे ज्ञायक का अनुभव करने पर ज्ञायक ही है,**' वैसे यह जानने की पर्याय ज्ञायक की ही है यूं, **स्व का जानना और पर का जानना यह पर्याय ज्ञायक की है। अथवा पर्याय में ज्ञायक ही जानने में आया है।** आहाहाहा ! पर जानने में आया है - ऐसा है ही नहीं। आहाहाहा ! अपना ज्ञायक चैतन्यप्रभु, नित्यानंद ध्रुव उसका जो सम्यक्ज्ञान स्वसन्मुख होकर आश्रय लेकर हुआ, इस ज्ञान की पर्याय में रागादिक, शरीरादिक या बाह्य चीज जानने में आती है तब कहते हैं कि पर के कारण से (ज्ञेयाकार) पर्याय जानने में आती है - ऐसा नहीं, यह पर्याय का स्वभाव इतना स्वपर प्रकाशक

प्रगट होकर अपने में अपनी पर्याय है - ऐसा जानते हैं - ऐसा है। नेमचन्द्रभाई ! मार्ग बहुत सूक्ष्म है भाई ! अभी सम्प्रदाय में तो विरोध उठा है, परंतु क्या करें? यह विचार और खबर नहीं वहाँ। अरेरे ! आहा ! यह वस्तु जो अंदर रह जाती है पूरी सच्चिदानंद प्रभु, नित्यानंद सहजात्मस्वरूप, सहजस्वभावी जिसमें पलटना पर्याय, पर्याय ही नहीं। - ऐसा स्वभाव जो वस्तु है वह पर से दृष्टि उठाकर, अंदर त्रिकाली में दृष्टि लगाना... वह दृष्टि शुद्ध है और वस्तु शुद्ध है और वह दृष्टि शुद्ध हुई और स्व का ज्ञान हुआ ***उस ज्ञान की पर्याय में पर्याय का स्वपरप्रकाशक स्वभाव होने से पर जानने में आया, यह पर के कारण से ज्ञान पर का हुआ यहाँ - ऐसा नहीं। यह तो अपनी स्वपर प्रकाशक सामर्थ से पर को जानने का विकास हुआ है,*** ऐसी बात है। अरेरे ! जन्म-मरण का अंत कर दिया।

अभी तो ऐसा सुनते हैं कि युवान, युवान व्यक्तियों का हार्ट फैल, ऐसी बैठे बैठे बात करते करते और हार्ट फैल, बच्चों को भी हार्ट फैल। आहाहा ! कहाँ बिचारे मर के जाये आहा ! कहीं भटकना ढोर में पशु में अवतार... उनके बंगला और पैसा पड़ा रहे यहाँ। आहा ! प्रभु तुम्हें निकलने का काल है... यह निकलने का काल (पार उतरने का) यह चैतन्यद्रव्य है। आहाहा ! जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, स्वभावभाव, कायमीभाव, असलीभाव, नित्यभाव, आहाहा ! उसकी दृष्टि करने से अर्थात उसमें प्रवेश करने से तुम्हें सम्यग्दर्शन होगा यह सम्यग्दर्शन अनंत भव का अंत करनेवाला है, शेष कोई चीज दया, दान, व्रत, भक्ति आदि तो भव संसार (के कारण) है। आहाहाहा !

क्योंकि जैसा ज्ञेय (पर), ज्ञान में प्रतिभासित, प्रतिभासित अर्थात जैसा है वैसा यहाँ ज्ञान हुआ, वैसा ज्ञायक का अनुभव करना, यह तो ज्ञायक की पर्याय है और ज्ञायक से उत्पन्न हुई है, पर से... पर की नहीं, पर से नहीं। आहाहा ! यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ। इस ज्ञान की पर्याय में राग शरीर जानने में आया, परंतु जानने की पर्याय है यह तो मैं हूँ, हाँ ? मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ। यह जाननेवाले की पर्याय है यह मैं हूँ यह राग से जाननेवाले की पर्याय हुई है, राग का ज्ञान - ऐसा है नहीं। आहाहा ! कहाँ ले जाना है उसे ? - ऐसा मार्ग है। उसके (पता) ज्ञान बिना ८४ में भटक कर मरता है। कौआ और कुत्ता, सिंह और बाघ भेडिया का अवतार... यह बनिया मरकर बहुत लोग वहाँ जानेवाले हैं। धर्म की खबर नहीं पड़ती सच्चा सत्समागम दो-चार घण्टे चाहिए इतना समय नहीं मिले और पाप का असत्समागम... यह धंधा असत्समागम है और कुगुरु मिले तब उसका संग यह असत्समागम है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि पर जो जानने में आया वह तो मैं ही हूँ, यह तो मेरी पर्याय है, मेरे से उत्पन्न हुई है, ***राग का ज्ञान शरीर का ज्ञान वह ज्ञान राग और शरीर के कारण से नहीं हुआ है। मेरी पर्याय की सामर्थ से यह ज्ञान हुआ है। मैं त्रिकाली तो ज्ञायक हूँ परंतु उसकी जो पर्याय जो ज्ञायक को जाने और पर को जाने यह तो मेरी पर्याय है।*** मैं जाननेवाला उसरूप परिणमित हुआ हूँ। राग यह परिणाम है। राग का ज्ञान हुआ शरीर का ज्ञान (हुआ)। यह राग यहाँ आया है और राग के कारण से ज्ञान की पर्याय पर को जानने की हुई - ऐसा है नहीं। - ऐसा मार्ग है।

भाई ने हिन्दी का कहा था, तुम्हारे भाई ने कहा कि थोड़ा हिन्दी लो। फिर पूरा हिन्दी लो कहा, सुबह जल्दी आये थे। फिर कहा थोड़ा हिन्दी नहीं हो सकेगा, थोड़ा गुजराती थोड़ा हिन्दी गड़बड़ नहीं चले... कहा पूरा हिन्दी लो भाई के कारण। आहाहा ! बापू मार्ग भिन्न है भाई, आहाहा !

अरेरे सत्य सुनने में भी आये नहीं, तब यह सत्य क्या चीज है उसकी प्राप्ति तो महादुर्लभ है। आहाहा ! आहाहा !

`यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो तो मैं ही हूँ'** राग और शरीरादिक की क्रिया जो होती है जड़ की, उसका यहाँ ज्ञान होता है वह (ज्ञान) तो मैं ही हूँ, यह ज्ञान की पर्याय मेरी है मेरे से उत्पन्न हुई है, पर से उत्पन्न हुई नहीं। आहाहा ! **`अन्य कोई नहीं' - ऐसा अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ, ऐसे अपने को ***भगवान स्वरूप चैतन्यप्रभु... अपना ज्ञान हुआ और पर के ज्ञान में भी अपना ज्ञान हुआ - ऐसा अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ, तब इस जाननेरूप क्रिया का कर्त्ता स्वयं ही है,*** क्या कहा? जानन स्वरूप जो भगवान आत्मा त्रिकाल, उसकी जानने की पर्याय और उस समय अभी राग और शरीर को जानते है यह पर्याय, इस पर्याय का कर्त्ता तो आत्मा है, आहा ! है ? इस जाननेरूप क्रिया का कर्त्ता यहाँ लिया है, आहाहा ! पर्याय हुई न ? क्रिया है न ? पर्याय; त्रिकाली चैतन्यज्ञायक भी मैं हूँ - ऐसा लक्ष्य हुआ और ज्ञान में फिर भी शरीरादिक पर ऊपर लक्ष्य जाता है तो उसका भी ज्ञान होता है तब उसका ज्ञान हुआ वह ज्ञान की पर्याय मेरे ज्ञानकृत है... है ? यह जाननेरूप क्रिया का कर्त्ता स्वयं ही है। यह राग से ज्ञान हुआ तो राग कर्त्ता और जानने का कार्य उसका कर्म - ऐसा है नहीं। आहाहा ! - ऐसा वीतराग का मार्ग है।

`यह जाननेरूप क्रिया का कर्त्ता स्वयं ही है' स्व को जानना और पर का जानना यह जानने की क्रिया का कर्त्ता तो स्वयं आत्मा है। यह जानने की क्रिया, पर का

जानना हुआ तो पर कर्त्ता है और यह ज्ञान की पर्याय कार्य है - ऐसा है नहीं, और जिसने जाना वह कर्म भी स्वयं ही है। आहाहाहा ! यह कर्त्ता भी स्वयं है, अपनी ज्ञान की पर्याय का, और कर्म भी स्वयं ही है। कार्य हुआ वह भी स्वयं ही है अपना। आहाहा ! - ऐसा एक ज्ञायक स्वभाव स्वयं शुद्ध है। ऐसा एक ज्ञायक स्वभाव स्वयं शुद्ध है ? हिन्दी दी है न हिन्दी पुस्तक दी (है) हिन्दी है ? आहाहा ! यह तो त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वर देव की वाणी है। आहा ! प्रभु तुम कौन (हो), कैसे हो ? और कितना काल का है। मैं तो ज्ञायक हूँ कितने समय से हो ? मैं तो त्रिकाल हूँ, तो उसमें पर्याय का कोई भेद (उसमें) है कि नहीं ? उसको जो जाननेवाली पर्याय है अथवा अशुद्ध राग है, यह कोई उसमें है कि नहीं ? तो कहते है, नहीं ! तब उसमें है नहीं - ऐसा ज्ञान हुआ तब यह ज्ञान की पर्याय हुई, यह पर्याय तो स्व को जानती है और पर को जानती है यह पर्याय उसमें है ही नहीं अंदर में ? कि यह (पर्याय) अंदर में नहीं, परंतु पर्याय में दोनों का जानना, यह मेरे में है। पर्याय में स्व का जानना और पर का जानना यह पर्याय में है, समझ में आया ? क्या भाई आये नहीं ? प्रवीणभाई ! वहाँ बैठे हो ठीक।

मनीष गया, मनीष गया ? हाँ ? आहाहा !

अंदर चैतन्यज्ञान का पुंज है। जैसे गठान होती है अर्थात गठान क्या कहते हैं रुई की गठान रुई का बोरा बड़ा होता है न २५-२५ मन का, यह अनंत-अनंत ज्ञानादि गुण का बोरा है, उसमें से थोड़ा नमूना बाहर निकालते है कि देखो भाई यह रूई ऐसी है। ऐसे यह ज्ञायक पुञ्ज प्रभु उसका ज्ञान करने से, उसके नमूनेरूप ज्ञान की पर्याय बाहर आती है, कि यह ज्ञान की पर्याय जो आई - ऐसा ही सारा स्वरूप ज्ञानमय है। आहाहा ! ***और वह ज्ञान की पर्याय की जो अवस्था हुई, यह है तो भेद त्रिकाल की अपेक्षा, परंतु राग तरफ का झुकाव नहीं, राग का ज्ञान हुआ, यह तो स्व के झुकाव में हुआ उस कारण उस पर्याय को भी अभेद अर्थात स्वसन्मुख हुई स्व के आश्रय से हुई, तो अभेद हुई - ऐसा कहा जाता है। पर्याय कहीं द्रव्य में प्रवेश करती नहीं, पर्याय तो पर्याय में रहती है,*** भले ज्ञायक का ज्ञान हुआ और राग का ज्ञान हुआ वह तो अपनी पर्याय हुई है, परंतु वह पर्याय त्रिकाली में जाती नहीं, ***पर्याय पर्याय में रहती है द्रव्य-द्रव्य में रहता है। फिर भी द्रव्य का ज्ञान पर्याय में आता है यह पूर्णानंद प्रभु है - ऐसा ज्ञान पर्याय में आता है, परंतु यह वस्तु पर्याय में आती नहीं।*** आहाहाहा ! समझ में आया ? धीमे-धीमे कहा जाता है, यह तो प्रभु का मार्ग है, आहाहा ! जिनेश्वरदेव अनंत सर्वज्ञ अनंत तीर्थंकर यही बात कहते आये हैं, इसने अनंतबार सुनी है परंतु इसे रुचि (पसंद

आयी) नहीं इसे। इसने अंतर का आश्रय करके शरण लिया नहीं इसने आहाहा ! शरण लिया नहीं।

तो कहते हैं - ऐसा यह ज्ञायक मात्र स्वयं शुद्ध है, त्रिकाली, यह शुद्धनय का विषय है। यहाँ क्यों कहा ? कि यहाँ शुद्ध जो है त्रिकाली, परंतु उसका यहाँ ज्ञान हुआ उसको शुद्ध है, तब यह पर्याय (में) जो ज्ञान हुआ, उसे भी शुद्ध कहने में आया, अभेद हो गई न, जो शुद्ध चैतन्य मूर्ति पूर्ण है उसका ज्ञान होकर यह स्व के सन्मुख हो गयी, ***स्व के आश्रय हो गई, तब उसको भी अभेद कहा जाता है और उसको भी शुद्ध कहा जाता है, अभेद की अपेक्षा... वैसे पर्याय है तो व्यवहारनय का विषय है, चाहे तो केवलज्ञान हो यह भी व्यवहार नय का विषय है।*** आहाहाहा ! ऐसी फुरसत कहाँ ? अवकाश कहाँ ? व्यापार के कारण, एक धंधा हो वहाँ दूसरा धंधा चलायें कारखाना वहाँ दूसरा कारखाना, तीसरा कारखाना, इसमें फुरसत कहाँ मिलै ? आहाहा !

प्रभु ! (श्रोता :- उसमें रूपया मिलें, इसमें क्या मिले ?) धूल में नहीं मिलता रूपया वहाँ उसे, रूपया तो रूपया में रहते है, हमको मिला ऐसी ममता मिलती है उसको... पैसा मिलते है ? पैसा तो पैसा में रहते है। आत्मा में तो हमें मिला ऐसी ममता उसके पास आई, पैसा तो पैसा में रहता है। आहाहाहा ! धूल में नहीं (मिलता)।

यह पर्याय ज्ञान की हुई, यह उसमें रही - ऐसा कहने में आया। आहाहा ! प्रभु जो चैतन्यमूर्ति, चैतन्य का प्रकाश का पूर, पुञ्य पिण्ड, त्रिकाली, उसका ज्ञान हुआ वह ज्ञान की पर्याय उसमें रही क्योंकि उसके आश्रय से, उसके अवलम्बन से अथवा उससे पर्याय हुई है। आहाहा ! - ऐसा कठिन काम है।

अरेरे ! यहाँ कहाँ फुरसत, बालक हो वहाँ खेलने में जाय, युवान हो तो पत्नी के मोह में जाय, वृद्ध अवस्था हो तो जीर्ण शरीर होकर रहा, जीवन पराधीन गया। आहाहा ! इसमें पहले से काम नहीं लिया तो बाद में नहीं ले सके। शास्त्रों में - ऐसा है कि बुढ़ापे में शरीर पिघले, जीर्णता शरीर में आ जाये शरीर की इन्द्रियाँ क्षीण हों और शरीर में रोग आये, इसके पहले (काम) कर ले, बाद में नहीं होगा। आहाहाहा ! अपने अष्टपाहुड़ में है, यह श्वेताम्बर में भी है। श्वेताम्बरों की यह गाथा है जरा जाल न पिल्लई, अपने दिगम्बर में है, वृद्ध अवस्था न आ जाये, रोग शरीर में न दिखने लगे, और इन्द्रियाँ शिथिल न हो जाये तब तक काम करले आत्मा का, बाद में नहीं कर सके, चली जायेगी जिंदगी तेरी निष्फल, आहाहा ! (वैसे) निष्फल नहीं धर्म के लिये निष्फल आहाहा ! भटकने के लिये सफल... दुःख भोगने

के लिये सफल। आहाहाहा ! - ऐसा सत्य स्वरूप है।

`ज्ञायक भाव स्वयं शुद्ध है यह शुद्धनय का विषय है' शुद्धनय का विषय तो त्रिकाली है, परंतु उस विषय को जाना तब उसे शुद्ध कहने में आया और इस अपेक्षा उस पर्याय को भी शुद्धनय का विषय कहा जाता है। है तो विषय त्रिकाली शुद्ध, परंतु उसको विषय बनाने से जो पर्याय निर्मल प्रगट हुई, वह भी इस तरफ ढली हुई है न ? इसके उसे एक न्याय से चौदहवीं गाथा में... आत्मा कहो कि शुद्धनय कहो कि अनुभूति कहो - ऐसा कहने में आया है एक अपेक्षा से। आहाहा ! अन्यथा त्रिकाली शुद्ध को विषय कहा।

`अन्य जो पर संयोग जनित भेद है मलिन आदि, वह **सब भेद अशुद्धद्रव्यार्थिक नय का विषय है'** आहाहाहा ! परसंयोग जनित मलिन आदि पर्याय है अथवा भेद है प्रमत्त-अप्रमत्त। यह सब भेदरूप अशुद्ध द्रव्यार्थिक, यों क्यों कहा ? कि द्रव्य की पर्याय है, इस अपेक्षा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहा ***यह मलिन पर्याय प्रमत्त-अप्रमत्त भी द्रव्य की है न ? इस अपेक्षा से द्रव्य की पर्याय में उत्पन्न हुआ है न ? तो अशुद्धद्रव्यार्थिक कहा। यह अशुद्धद्रव्यार्थिक भी शुद्ध द्रव्य की दृष्टि में पर्यायार्थिक ही है, अशुद्ध क्यों कहा ? कि द्रव्य स्वयं अपनी पर्याय में अशुद्धरूप होता है इस कारण उसे अशुद्धद्रव्यार्थिक कहने में आया।*** आहाहा !

`अशुद्धद्रव्यार्थिक शुद्ध द्रव्य की दृष्टि में पर्यायार्थिक ही है' यह तो... पर्याय ही है, भेद प्रमत्त-अप्रमत्त सब। आहाहा ! **`और इसलिये व्यवहार नय ही है'** क्या कहा ? त्रिकाली वस्तु जो भगवान शुद्ध चैतन्य, वह शुद्ध नय का विषय (है), और पर्याय हुयी यह भेद परंतु जो मलिनपर्याय संयोग जनित का भेद है चौदहगुणस्थान शुभाशुभ भाव। यह तो अशुद्धद्रव्यार्थिकनय, यह द्रव्य स्वयं पर्याय में भेदरूप पर्याय हुई है इस अपेक्षा से अशुद्धद्रव्यार्थिक नय कहा, परंतु यह अशुद्धद्रव्यार्थिक यह पर्यायार्थिकि ही है और पर्यायार्थिक है वही व्यवहार है। आहाहा !

कितना याद रखें इसमें एक घण्टे में ! यह तो बापू जगत से भिन्न बात है बापू ! धर्म की जाति, तीनलोक के नाथ परमेश्वर कहते हैं यह बात सारे जगत से अलग है। आहाहा ! दुनियाँ में कहीं मेल बैठे - ऐसा नहीं। आहाहा ! क्या कहा ? कि दो भेद एक त्रिकाली द्रव्यवस्तु ज्ञायकभाव। यह शुद्धनय का ध्येय विषय और पर्याय में जो भेद है चौदहगुणस्थान शुभाशुभ आदि, वे अशुद्धद्रव्य, यह द्रव्य स्वयं अशुद्धरूप परिणमा है, पर्याय अपेक्षा हाँ, इसलिये इसे अशुद्धद्रव्यार्थिक कहा उसकी पर्याय है न - ऐसा गिनकर, यह अशुद्धद्रव्यार्थिक है, अशुद्धद्रव्य जिसका प्रयोजन वह अशुद्धद्रव्यार्थिक नय है, उसीको पर्यायार्थिक कहते हैं, यहाँ उसको व्यवहार कहते

हैं। सभी पहलू कठिन, आहाहा ! अनंतकाल का अनजान मार्ग बापू ! यह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की भाषा में दिव्यध्वनि में प्रभु की वाणी में यह आया है, यह आचार्यों ने इसप्रकार गाथा में रचना की है। आहाहा ! उसका भावार्थ पण्डितों ने... जयचन्द्र पण्डितजी हो गये है उन्होंने यह लिखा है यह तो भावार्थ है। आहा ! क्या कहना चाहते हैं ? क्या कहा जाता है ? उसका स्पष्टीकरण भावार्थ में ले लिया है। समझ में आया ?

पर्यायार्थिक है इसलिये व्यवहार ही है। आहाहा ! इस ज्ञायकभाव में पर्याय के चौदह भेद जो गुणस्थान के, उनका भेद दिखता है यह व्यवहार नय ही है। पर्याय यही व्यवहारनय है द्रव्य वह निश्चयनय का विषय। परंतु जिसे निश्चय वस्तु का ज्ञान होता है, उसको भेद और राग का ज्ञान स्वयं से अपने कारण से होता है। आहाहाहा ! `- ऐसा आशय समझना चाहिए'... इसलिये व्यवहारनय ही है, `ही' व्यवहारनय ही, आहाहा ! यह `ही' है - ऐसा आशय समझना चाहिए, विशेष कहेंगे लो।

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. २५ गाथा-६ ता. ४-७-७८ मंगलवार जेठ वदि-१४ सं.२५०४

श्री समयसार गाथा नं.६... उसके भावार्थ का दूसरा पैराग्राफ।

यहाँ यह भी जानना चाहिए... क्या करने को कहा है ? यह कहते हैं, आत्मा है वह ज्ञायकभाव त्रिकाल, उसमें जो यह गुणस्थान का भेद है, यह शुभ-अशुभ पुण्य-पाप का भेद, यह उसमें नहीं, पर्याय में है। वस्तु जो है ज्ञायकरस अस्ति मौजूदगी चीज, वस्तु मौजूदगी चीज आत्मा, ध्रुव, वह सम्यग्दर्शन का विषय। धर्म की पहली सीढ़ी प्राप्त करने में, वह ज्ञायक चैतन्य रस हलचल अर्थात् परिणमन पर्याय बिना की वस्तु, इसमें हलचल नहीं। आहाहा ! सूक्ष्मबात है भाई, पर्याय है तो हलचल करती है, बदलती है, वस्तु जो ध्रुव यह तो हलचल बिना की एकरूप त्रिकाल शुद्ध सत्तास्वरूप, उसमें तो पर्याय का भेद भी नहीं, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा !

धर्म की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन, पहली श्रेणी उसका विषय त्रिकाली ज्ञायकभाव जो एकरूप है वह उसका विषय। इस अपेक्षा से अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहो पर्याय कहो कि व्यवहार कहो, तीनों उस चीज में नहीं। आहाहा ! पर्याय में है इस अपेक्षा

तो लेना है, वस्तु में चैतन्यज्योति त्रिकाली एक सदृश्य चैतन्यघन चैतन्य के प्रकाश का पूर का नूर - ऐसा तेज का पिण्ड... यह तुम्हारे वहाँ डॉक्टर की पढ़ाई में कहाँ आये - ऐसा नहीं कहीं। आहाहाहा ! अस्ति है न ? अस्ति है न, अस्ति है न ? तब है तो अस्ति उसकी मोजूदगी क्या है, स्थाई मौजूदगी क्या है ? स्थाई उपस्थिति तो ज्ञान, आनंद आदि का रस, ध्रुव, एकरूप त्रिकाल अनादि अंत बिना की चीज, शुरूआत नहीं, अंत नहीं, बीच में भी कायम ध्रुवरूप विराजमान प्रभु... आहाहा ! इस वस्तु को सत्य कहकर पर्याय को असत्य कहा अथवा वह पर्याय भी, रागरूप, ध्रुव परिणमता नहीं, क्योंकि ज्ञायकभाव जो ध्रुव है... और यह पुण्य-पाप तो अचेतनभाव है। आहाहा !

दया, दान व्रत, भक्ति आदि का विकल्प जो है यह तो अचेतन है, अचेतन का अर्थ ? उसमें ज्ञायकरस जो चिदानंद है वह उसमें आता नहीं, और ज्ञायकको किरण जो है वह भी पुण्य-पाप के भाव में आती नहीं, इस कारण पुण्य-पाप को अचेतन और जड़ कहने में आया है। आहाहाहा ! ***यह शरीर जड़ है उसमें तो रंग, गंध, रस, स्पर्श है और पुण्य-पाप का भाव है, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध इसमें रंग, गंध नहीं परंतु उसमें चैतन्य के प्रकाश की किरण नहीं, इस अपेक्षा से पुण्य और पाप भाव को जड़ और अचेतन कहने में आया है।*** आहाहा ! समझ में आया ? तब कहते हैं कि अचेतन और जड़ कहकर, उसका निषेध किया कि वस्तु में है नहीं, तब वह पर्याय में है कि नहीं ? पर्याय में न हो तो, निर्णय करनेवाली तो पर्याय है, क्या कहते हैं ? जो त्रिकाली चीज है ध्रुव ज्ञायक ध्रुव वज्र का बिम्ब, वज्र, वज्र जैसा है इसप्रकार ज्ञानानंद बिम्ब ध्रुव हलचल बिना की वह वस्तु है। पर्याय बिना की (है)

परंतु `यह है' यह निर्णय उसका कौन करती है ? अनित्य-नित्य का निर्णय करती है, यहाँ बात ही दूसरी सारी दुनियाँ से भिन्न है। यह नित्यानंद प्रभु ध्रुव, आदि नहीं, अंत नहीं वस्तु सहज सहजात्मस्वरूप ध्रुव, वह तो मैं यह हूँ, उसका निर्णय उसमें तो है नहीं, निर्णय करनेवाली, तो पर्याय है, जो अनित्य है पलटती है हलचलवाली है, आहाहा ! तब वह पर्याय उसमें नहीं, परंतु पर्याय निर्णय करती है, तो पर्याय-पर्याय में है, लौजिक कठिन बहुत भाई, वीतराग का मार्ग, जिनेश्वर का मार्ग बहुत कठिन है।

जगत को तो अभी सुनने मिलता नहीं, बाहर का यह करो और सेवा करो और अमुक करो एवं यह देश सेवा करो तथा मानव की सेवा करो ! यह कौन करे प्रभु ! पर की सेवा अर्थात क्या ? इसका अर्थ क्या ? परद्रव्य है कि नहीं ?

है तो उसकी पर्याय (है कि नहीं) वर्तमान में पर्याय बिना का द्रव्य है ? उसकी पर्याय का कार्य तो वह द्रव्य करता है। तुम दूसरे का करो (कैसे) ? तुम दूसरों की सेवा करते हो मानते हो यह तो मिथ्याभ्रम अज्ञान है। आहाहा ! यह डॉक्टर गये थे न अभी... जेल में गये थे न... आहाहा ! यहाँ तो प्रभु कहते हैं त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ जिनेश्वर देव वीतराग परमात्मा, अनंत तीर्थंकर वर्तमान में बिराजते हैं २० तीर्थंकर महाविदेह क्षेत्र में, प्रभु तो बिराजते हैं... यह वाणी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। वह वहाँ से आकर भगवान का यह संदेश (लाये) हैं - ऐसा जगत को प्रसिद्ध करते हैं आड़तिया होकर, माल प्रभु का है आहाहा ! समझ में आया ? तब कहते हैं कि भगवान आत्मा चैतन्यज्ञायकरस अस्ति मौजूदगी चीज, वह तो पर्याय बिना की चीज है, उसमें तो अशुद्धता जो द्रव्यनय की अशुद्धता कहने में आती है, अशुद्धद्रव्यार्थिक (नय), द्रव्य अशुद्ध नहीं होता है, परंतु द्रव्य की पर्याय अशुद्ध होती है इस कारण अशुद्धद्रव्यार्थिक कहते हैं और उस अशुद्धद्रव्य के नय के (अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय के) विषयको पर्याय कहते हैं और वह पर्याय तो व्यवहार है और त्रिकाली चीज है वह निश्चय है। आहाहा ! इसमें बात कैसे समझना, इस कारण कहा न, पर्याय का निषेध किया है न भाई ? कि ज्ञायक में पर्याय है ही नहीं, और ज्ञायक है वह शुभाशुभ भावरूप हुआ ही नहीं, क्योंकि ज्ञानरस चैतन्य, चैतन्यप्रकाश का पुञ्ज, वह पुण्य-पाप का भाव जो अचेतन है उसमें अंधकार है, वह प्रकाश का अंश नहीं वह अंधकार है। तो चैतन्यप्रकाश का पूर (प्रवाह) जो चेतनत्व वह अंधकाररूप कभी हुआ नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

और जो ज्ञायकभाव, शुभाशुभ भावरूप हो जाय तब ज्ञायकरस अचेतन हो जाये जड़ हो जाये। आहाहाहा ! यह दया-दान-व्रत-भक्ति का भाव भी अचेतन जड़ है क्योंकि इसमें विकल्प है, राग है, उसरूप जो चैतन्य हो जाये, तो चेतन जड़ हो जाये, ज्ञायक चैतन्यप्रकाश में रागरूप अंधेरा हो जाये तब आत्मा अंधेरेरूप हो जाये, अचेतन हो जाये। आहाहाहा ! ऐसी बात है।

अर्थात पर्याय में जो अशुद्धता है यह द्रव्यार्थिकनय का विषय नहीं, वह तो अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय का (विषय है) अशुद्धद्रव्यार्थिक अर्थात वह द्रव्य की पर्याय में है उस अपेक्षा से अशुद्धद्रव्यार्थिक कहा, उसीको पर्यायार्थिक कहा और उसको व्यवहार कहा, वह व्यवहार झूठा है - ऐसा कहेंगे। आहाहा ! अब यहाँ कहते हैं, **'यहाँ यह भी जानना चाहिए कि जिनमत का कथन स्याद्वादरूप है'** वीतराग त्रिलोकनाथ के अभिप्राय में स्याद्वादरूप है, स्यात् अर्थात अपेक्षा से कथन करना है। 'स्याद्वाद' स्यात् अर्थात अपेक्षा से कथन करना यह जिनमत का कथन है। इसलिये अशुद्धनय से पर्याय

में शुभाशुभ भाव है यह चैतन्य शुभाशुभ रूप नहीं हुआ - ऐसा जो कहा, परंतु अशुद्धनय का विषय नहीं है - ऐसा नहीं। आहाहाहा !

जैसे त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्धस्वभाव ध्रुव यह शुभाशुभरूप हुआ नहीं, परंतु शुभाशुभ भाव पर्याय में है इसका निषेध करे तो, तब वस्तु का निषेध हो जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? अशुद्धनय को सर्वथा असत्य न माना जाये, यहाँ तो यह कहा है कि अशुद्ध (नय) है वह झूठा है असत्यार्थ है। किस अपेक्षा से ? वह त्रिकाली चैतन्यज्योति जो ध्रुवधातु है, चैतन्यधातु चैतन्यपना जिसने धारणकर रखा है, उसकी अपेक्षा से राग और पुण्य-पाप को अशुद्ध कहकर, अचेतन कहकर, द्रव्य में नहीं है - ऐसा कहा, परंतु पर्याय में नहीं है... `**सर्वथा उसको असत्यार्थ न माना जाये**' आहाहा ! समझ में आया ?

`**क्योंकि स्याद्वाद प्रमाण से अशुद्धता शुद्धता दोनों वस्तु के धर्म हैं,**' क्या कहा ? ***कथंचित्‌नय से जो परमार्थ का कथन है प्रभु का, यह शुद्ध जो त्रिकाली है वह भी वस्तु का सत्त्व है, वस्तु का सत्त्व है, कस है, इसीप्रकार पुण्य-पाप की पर्याय में भी वस्तु का कस है, पर्यायरूप तत्त्व है।*** आहाहाहा ! (लोगो का) हर शब्द अज्ञात हैं, उसकी पढ़ाई में नहीं आये, व्यापार में नहीं आये अभी तब संप्रदाय में भी यह नहीं है। आहाहा !

क्या कहा ? स्याद्वादप्रमाण से, अपेक्षा से वस्तु को सिद्ध करने में शुद्धता त्रिकाली और अशुद्धता वर्तमान दोनों वस्तु के धर्म हैं। धर्म अर्थात दोनों वस्तुओं को धारण करनेवाली चीज है। धर्म अर्थात सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इस धर्म की बात यहाँ नहीं। वस्तु ने धारण किये हुये भाव है, ***जैसे वस्तु भगवान त्रिकाली धारण किये हुई चीज है, वैसे ही पुण्य-पाप भी पर्याय में धारण की हुई चीज है, पुण्य-पाप अस्ति है, पुण्य-पाप नहीं है - ऐसा नहीं।*** आहाहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्मबात है यह सभी। किसी दिन कहीं सुना नहीं, सत्य क्या है, संप्रदाय में भी अभी गोलमाल चलता है सभी। यह करो और वह करो व्रत करो और तप करो। यह करना करना यह तो विकल्प और राग है, ***राग का कर्तृत्व ज्ञानरूप चैतन्य को सोंपना मिथ्यात्व है,*** परंतु वस्तु है अवश्य, अशुद्धता है अवश्य, पर्याय में अशुद्धता न हो... तब पर्याय शुद्ध है तब तो धर्म है ही, तब धर्म करना तो रहता नहीं। हमें धर्म करना है यह प्रश्न उठे तो उसका अर्थ क्या ? कि उसकी पर्याय में धर्म है नहीं, (अर्थात्) पर्याय में अधर्म है, तो अधर्म नाश करके धर्म करना है। तब अधर्म भी पर्याय में है। आहाहा ! यह तो लौजिक से (समझना) प्रभु का मार्ग कैसा है ? अभी अज्ञात हो गया है। आहा ! आहाहा !

दोनों ही वस्तु धर्म है; धर्म का अर्थ ? वस्तु ने उन्हे टिकाए रखा है वस्तु (ने) जो भगवान आत्मा त्रिकाली ध्रुव (को) टिका रखा है उसी प्रकार पर्याय में अशुद्धता भी टिकाए रखी है। आहाहा ! समझ में आया ?

और वस्तु धर्म वस्तु का सत्व है, क्या कहा समझ में आया ? वस्तु जो प्रभु ज्ञायकभाव जो त्रिकाली वह भी वस्तु का धर्म है, वस्तु द्वारा धारण की हुई चीज है, टिकाकर रखी है। उसकी पर्याय में मलिनता है, वह भी वस्तु का सत्व है। असत्व नहीं। पर्याय की मलिनता वह पर्याय का सत्व है सत्व नाम कस है उसका एक अंश है कस है। आहाहाहा ! है ! धर्म वस्तु का सत्व है अर्थात क्या ? शुद्ध जो ज्ञायक त्रिकाली वह भी वस्तु का सत्व है यह त्रिकाली, और पुण्य-पाप, दया, दान, काम, क्रोध का भाव वर्तमान पर्याय में उसके अस्तित्व में उसका सत्व पर्याय के सत्व में, यह अपने में है। आहाहा !

`अंतर मात्र इतना है कि अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से होती है' इतना फर्क, शुभ और अशुभ भाव, अशुद्ध, यह वस्तु की पर्याय का सत्व अर्थात उसकी चीज है। पर्याय भी उसकी चीज है, परंतु फर्क इतना है कि अशुद्धता पुण्य-पाप का भाव संयोग के लक्ष्य से संयोग जनित कहने में आते हैं। आहाहाहा ! है ? परंतु अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से होती है ? **`अशुद्ध नय को यहाँ हेय कहा है,**' यह पुण्य-पाप के भाव को छोड़ने लायक कहा है, जिसको धर्म प्रगट करना हो, सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी, उसको ज्ञायकभाव त्रिकाली वह आदरणीय है, और शुभाशुभ भाव हेय हैं, छोड़ने लायक हैं - ऐसा कहा है। आहाहा ! समझ में आया ?

भाई इसकी एक पंक्ति समक्ष कठिन है। यह तो सिद्धांत है, यह कहीं कथा वार्ता नहीं है, भागवत् कथा है। भागवत कथा कहते हैं ना ? नियमसार में आया है ना अंत में, यह भागवत कथा भगवत स्वरूप भगवान आत्मा, भगवान त्रिलोकनाथ ने कहा, प्रभु तुम्हारा स्वरूप वस्तु तो भगवत् स्वरूप त्रिकाल तो यह है, परन्तु तुम्हारी पर्याय में भूल है, पुण्य-पाप भाव है यह है, शुद्धता त्रिकाल है, पर्याय में अशुद्धता है। ये अशुद्धता द्रव्य ने की है और भले पर्याय ने किया है और पर्याय में मौजूद है। अशुद्धता पर्याय में है, फर्क मात्र त्रिकाली वस्तु स्वतः स्वभाविक वस्तु है, और पुण्य-पाप का भाव संयोगी (भाव) कर्म के लक्ष्य से होता है। आहाहाहा ! है ! **`अशुद्धनय को यहाँ हेय कहा है, क्योंकि अशुद्धनय का विषय संसार है**' यह पुण्य-पाप का भाव संसार है, दुःख है।

यह दुकान धंधा में सारे दिन रहना `अकेला पाप भाव है' (श्रोता :- पेट किस प्रकार भरें यदि धंधा न करें तो) है ? कौन पेट भरता है ? पेट तो जड़ है, जड़

मे जड़ आना हो तो (वह) चीज आयेगी ही - ऐसा नहीं कहते - अपनी गुजराती में ? दाने दाने पर लिखा खानेवाले का नाम ! दाने दाने पर नाम है, नेमचन्द्र भाई कहा जाता है तुम्हारे (यहाँ) ? खानेवाले का दाने दाने पर मुहर छाप है। मुहर छाप का अर्थ ? वहाँ कहाँ (नाम) है, परंतु जो परमाणु आनेवाला है (वह) आयेगा ही, और नहीं आनेवाला है तो नहीं आयेगा, तुम लाख पुरुषार्थ करो तब भी नहीं आयेगा और आनेवाले को रोकने से नहीं रोक सकते, उसके कारण से आता है और उसके कारण से जाता है अहार के परमाणु तुम्हारे कारण से आते हैं - ऐसा है नहीं।

(श्रोता :- परमाणु नहीं आये परंतु रुपया आये न ?) धूल में रुपया नहीं आता, रूपया यह जड़ परमाणुओं का (पिण्ड) है। वह भी परमाणु जहाँ जानेवाले है वहाँ जायेंगे, जहाँ रहनेवाला है वहाँ रहेगें। तुम से रहेंगें और तुम पर को दे सकते हो यह बात तीन काल में सच्ची नहीं। बात-बात में बहुत फर्क बापू !

अरे चौरासी के अवतार भाई, इसने भटकते हुए किये है। आहाहा ! प्रभु तो - ऐसा कहते हैं कि तुमने इतना दुःख सहन किया कि उस दुःख को देखनेवाले को रुदन आया। तुमने तो सहन किया परंतु देखनेवाले को (रोना आया), तुमने इतना दुःख सहन किया है। चौराशी के अवतार... नर्क में, कीड़ा, कौआ, कुत्ता, कबूतर आहाहा ! कौआ, इल्ली-इल्ली होती है दो-दो हाथ लम्बी पतली जाती हो उसी समय पांचमन का ऊपर पत्थरगिरे एक वेत दब जाये और एक वेत बाहर रहे, करना क्या अब ? आहा ! वह वहाँ की वहाँ मर जानेवाली है, देह छूट जायेगी, कारण कि अंदर से निकल सके नहीं, खींचने जायें तो आधी टूट जाय। इल्ली होती है न इतनी लम्बी, सूत के धागे जैसी लम्बी। इल्ली समझते हैं इल्ली जीव। आहाहा !

अरे हमने तो एक ऊंट को देखा था, ऊंट को जंगल में। ऐसे अच्छा जवान ऊंट, राणपुर से नागेस जाते थे दो गाँव, रास्ते में पड़ा था ऊँट, हमने पूंछा यह क्यों (पड़ा है) (कहा) कि इसका पैर टूट गया है, ऊंट का पैर इसप्रकार आड़ा होता है थोड़ा - ऐसा, अपना जैसा सीधा होता वैसा नहीं, उसमें भी यदि गिर जाय, चल सके नहीं, चल सके नहीं तो, मरना ही पड़ेगा। देह छूट जाती है, हमने पूछाँ यह यहाँ क्यों ? इसका पैर फिसल गया है, अब खतम हो गया। यहाँ से चल सके नहीं उसको थोड़ा अनाज डाला था, वह घास खाये और वही के वही देह छूट जायेगी। आहाहाहा ! ऐसे प्रभु अनंतभव किये हैं तुमने, अनंतकाल के हो न तुम, अनादि के हो कि नये हो ? आहाहा !

यह परिभ्रमणन का दुःख नाश करना, है तो प्रभु तेरी चीज एक अंदर आनंद

का नाथ है, तुम्हारा शरण वहाँ है, तुम्हारा रक्षक वहाँ है, तुम्हारी उत्तम चीज अंदर ज्ञायक है। आहाहाहा ! वहाँ शरण लेने को जाओ तो वहाँ अस्ति है - ऐसा कहने में आया है। (वह) उपादेय है तथा पुण्य-पाप हेय है एवं छोड़ने लायक कहने में आया है, परंतु है उसे छोड़ने लायक कहा है, कि है ही नहीं ? यह कहते हैं, है न ?

शुभ-अशुभ का विषय संसार है। आहाहाहाहा ! तीनलोक का नाथ चैतन्यप्रभु ज्ञायक स्वरूप चैतन्यप्रकाश का पुञ्ज उसके अतिरिक्त पुण्य और पाप दो भाव होते हैं, वह संसार है, संसरणम् इति संसारः जिसमे संसरणम् (अर्थात) परिभ्रमण जिससे उत्पन्न हो उसका नाम संसार कहते हैं ***यह पुण्य-पाप के दो ही भाव संसरणम् संसार है, यह वर्तमान संसार है भविष्य में परिभ्रमण का बीज है।*** आहाहाहा ! ऐसी बात सुनते (दुःख लगे)।

उस दवाखाने में रस कितना चढ़ जाता है। देखो यह डॉक्टर है, खण्डवा खण्डवा इनके बच्चे सभी डॉक्टर हैं, मदद करते थोड़ी वहाँ जाकर, दुकान नहीं जायें परंतु ध्यान रखना कि क्या किया था, कैसा चलता है ? लगाम तो हाथ में रखना चाहिए न भले ही......। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं प्रभु ! तुम जानन शक्ति के तत्त्व हो, यह राग को और पर को कैसे कर सकते हो ? आहाहा ! यह राग और पुण्य-पाप का कर्त्ता तुम मानते हो, तो यह तेरा संसार है रुलने (परिभ्रमण) की चीज (है)। आहाहा ! है ? अशुद्ध नय का विषय संसार है, यह पुण्य-पाप भाव यह संसार है और संसार में आत्मा क्लेश भोगता है। आहाहा ! (श्रोता :- बहुत से सुख भोगते हैं) धूल में सुख नहीं, सुख तो आत्मा में है, बाहर में मानते है पांच पचास लाख रुपये हुये, पुत्र हुये सात, आठ, दस। दो-दो लाख की कमाई (करने)वाले हम सुखी है, दुःख की गठरी भरी है, दुःख है क्लेश है देखो, यह शुभ-अशुभ भाव में तो वर्तमान क्लेश है, और भविष्य में क्लेश का कारण है। आहाहाहा !

`जब स्वयं परद्रव्य से भिन्न होता है' अब यहाँ धर्म की बात करते हैं यह पुण्य-पाप का शुभाशुभ भाव यह संसार है, क्लेश है, दुःख है और भविष्य में संसार परिभ्रमण का वह कारण है। आहाहाहा ! जब यह स्वयं परद्रव्य से, भिन्न होता है, इस पुण्य-पाप के भाव से मैं भिन्न हूँ, मेरी चीज तो उससे दूर भिन्न है, मैं तो ज्ञायक चैतन्यरस से भरा अतीन्द्रिय आनंद से भरा पड़ा तत्त्व हूँ, और राग जो परद्रव्य है, उससे भिन्न करते हैं (मानते हैं), वह संसार से छूटते हैं। आहाहा ! अनादिसे स्वद्रव्य से तो भिन्न हो गया है, अब परद्रव्य से भिन्न करना है। आहाहा ! स्वद्रव्य से तो भिन्न

होकर रागद्वेष को अपना मानता है, वही तो संसार है क्लेश है, दुःख है, नरक-निगोद का कारण है। आहाहा ! 'स्वयं जब परद्रव्य से भिन्न होता है तब संसार छूटता है' आहाहा !

यह शुभ कि अशुभ भाव... यह कमाना, व्यापार, ध्यान रखना संसार का स्त्री कुटुंब परिवार की सम्हाल करना वह तो पाप है, क्लेश है, और वह भविष्य में भी क्लेश और दुःख का कारण है, एवं शुभ भाव भी वर्तमान दुःख है। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति का यह विकल्प यह भी राग है, दुःख है, वर्तमान क्लेश है, भविष्य में क्लेश का कारण है। आहाहाहा ! उससे भिन्न होकर... यह शुभ-अशुभ भाव वह तो क्लेश है, संसार है, दुःख है मेरी वस्तु में वह नहीं, ऐसे परद्रव्य से भिन्न करते हैं... आहाहाहा ! वह पुण्य-पाप का राग, यह एकत्व बुद्धि, चैतन्यभगवान के साथ राग की एकत्व बुद्धि यह परिभ्रमण का बीज है, इस एकत्व को तोड़ना और पृथक् करना... आहाहा ! भेदज्ञान करना।

पुण्य और पाप का भाव, मलिन है दुःख है, उससे अपनी चीज भिन्न है - ऐसा भिन्न करके अपना अनुभव करना, वही संसार नाश करने का उपाय है, दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहाहा ! अभी तो कुछ लोग (कहते) देश सेवा करो, भूखों को अनाज दो, प्यासों को पानी दो, रोगी को दवा दो, मकान न हो उसे मकान बकान झोपड़ी दे दो, अरे भगवान कौन करे प्रभु ? परद्रव्य की क्रिया कौन करे भाई ! तुझे खबर नहीं। एक अंगुली चले तो वह तुमसे नहीं (चलती), यह परमाणु की उस समय की वह पर्याय उत्पन्न होने से वह होती है, तुमसे अंगुली हिलती नहीं, अपनी सत्ता में तुम गड़बड़ करो, कि मैं कर सकता हूँ और राग - ऐसा कर दूँ, परंतु पर की सत्ता में तुम्हारी गड़बड़ी बिलकुल नहीं चले। आहाहाहा ! अरे एक तो - ऐसा सुनता मुश्किल है, प्रथम तो सुनने को मिले नहीं, सुनना कठिन लगे, हाथ में रस्ता आये नहीं। आहाहाहा ! अनंतकाल से परिभ्रमण कर करके यह दुःखी है। आहाहा !

अभी तो सुनते हैं न ! एक अखबार में आया था गाँव विहार शरीफ है शादी होती थी पति-पत्नि की शादी के समय लड़के का हार्ट फैल हो गया। शादी के अभी तो मंत्र पढ़ रहे थे, वहाँ उस दूल्हे का हार्ट फैल हो गया। देह की स्थिति नाशवान है। आहाहाहा !

अभी नया गाम क्या नाम कहा कोड़ीनार, यह सुना न भाई कि आठ आदमी मर गये। कुयें में से ऐसी गैस निकली गैस, जैसा वह पेट्रोल निकलता है इसप्रकार पानी निकलता है, जैसे तेल निकलता है इसीप्रकार निकलता है अंदर से - ऐसा

कोई गैस निकली अंदर से, लड़के को तलासने गये उसमें मर गये, उनका पिता गया कि क्या (है) ? वह भी मर गया, उसका चाचा गया, वह मर गया, उसके चाचा का लड़का गया वह भी मर गया फिर दूसरे चार एक के बाद एक देखने गये वह भी मर गये। गैस कुयेमें से निकलती थी तो मर गये, आठ लोग मर गये। डॉक्टर ने बाद में बहुत खोज कि यह गैस (कैसी) है कुयें में। (श्रोता :- डॉक्टर बच गया) डॉक्टर ने तो बाहर रहकर उसका निर्णय किया, कि है क्या यह ? कि जो अंदर जाता है वह तुरंत मर जाता है। आहाहा !

ऐसे मृत्यु के क्षण अनंतबार जीव को आ गये हैं, यह सभी पुण्य-पाप के भाव के कर्त्ताबुद्धि के कारण हैं, आहाहाहा ! कठिन बात प्रभु ! यह तो निवृत्ति स्वरूप प्रभु है। परद्रव्य से तो निवृत्ति स्वरूप है ही, परद्रव्य तो उसमें है ही नहीं, इससे यह तो निवृत्त है ही, परंतु पुण्य-पाप के भाव से भी निवृत्त है। आहाहाहा ! अब यह निवृत्ति लेने आये नहीं तो उसका संसार मिटे नहीं। आहाहा ! समझ में आया। आहाहा ! जिनेश्वर तीनलोक के नाथ परमेश्वर - ऐसा फरमाते हैं उनकी यह वाणी है। आहा ! 'स्वयं परद्रव्य से भिन्न होता है तब संसार छूटता हैं और क्लेश दूर होता है' शुभ अशुभ भाव वह क्लेश है, संसार है, दुःख है, उससे भिन्न होकर अपना चैतन्य आनंदस्वरूप भगवान त्रिकाली मौजूदगी चीज है, कायमी चीज है, उसकी शरण लेने से संसार छूट जाता है। आहाहा !

'इसप्रकार दुःख मिटाने के लिये शुद्धनय का उपदेश प्रधान है,' क्या कहते हैं ? कि शुद्धनय का विषय को त्रिकाली आनंद है वही कहा, और पुण्य-पाप को असत्य कहा, उस शुद्धनय के विषय को आदर करने को मुख्यरूप से शुद्धनय का विषय ध्रुव है, उसका आदर करने को यही वस्तु सत्य है - ऐसा कहा और पुण्य-पाप को अशुद्ध (कहा) है, यह स्वभाव की अपेक्षा से असत है स्वभाव में नहीं है, इस अपेक्षा से उसमें नहीं है - ऐसा कहा। समझ में आया ? आहाहा ! शुद्धनय का उपदेश मुख्य है, प्रधान अर्थात मुख्य क्या ? त्रिकाली ज्ञायक भाव है उसकी शरण ले, उसके समीप में जाओ, उससे दूर (रहने से) दूर भटकते हो, चैतन्यभगवान आनंद का नाथ मौजूद चीज ध्रुव... आहाहा ! वह तेरह बोल है न यहाँ गुजराती (आत्मधर्म) में आये हैं, ध्रुव धाम के ध्यान का ध्येय... अभी पत्रिका आई थी, किसको दी थी, किसी को अभी। कल कौन था उसे दी थी, हिम्मत को दी थी, हिम्मत नहीं ? है। कल पत्रिका किसे दी थी, हाँ उसे दी थी, हाँ उसे दी थी, तब ठीक योगेश था उसे दी थी, तेरह बोल नहीं ? अपनी गुजराती में डाला है। वहाँ पिछले वर्ष बनाये थे न वहाँ भावनगर में, तब तेरह बोल बनाये थे।

`ध्रुव धाम के ध्येय की ध्यान में धीरज से धगश की धुनी धगश लगाओ, तेरहबोल है - ऐसा कुछ अपनी गुजराती में आ गया, आत्मधर्म में। आहाहाहा ! उसका धरनेवाला एक-दो शब्द कम रह गये हैं, है ? आहाहा ! यह मिला था तुमको ? नहीं मिला ? फिर देंगे। ध्रुव धाम के ध्येय का ध्यान की धधकती, धूणी धगश से धीरज से धरबाना उस धर्म का धारक धर्मी धन्य है। सभी ध-ध है। किसके पास से आया ? तुम्हारे पास से ? यह ध्रुवधाम, अपना ध्रुव स्थान नित्यानंद प्रभु, पुण्य-पाप की पर्याय से भिन्न (है), यह ध्रुवधाम का ध्येय उसे ध्येय बनाकर ध्यान (अर्थात) उसकी एकाग्रता करके, धधकती धुनी... पर्याय में एकाग्रता की धधकती धुनी, (गुजराती है) धगश और धीरज से धगश अर्थात उग्र पुरुषार्थ और धीरज से धधकाना अंदर एकाकार करना स्वरूप में एकाकार वह धर्म का धारक धर्मी धन्य है। तेरह है तेरह। बाद में देंगे डॉक्टर को। आहाहा ! चार बोल है यह दिये थे ? ऐसे चार बोल हैं। जानते हो भिन्न-भिन्न। यह एक पत्र ऐसे चार पन्ने हैं, भिन्न-भिन्न जाति के फिर देंगे डॉक्टर को। आहाहा ! फिर देंगे डॉक्टर को आहा ! यहाँ तो हमारे पास हो वह आये। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, कि शुद्धनय का विषय प्रधान करके मुख्य करके कहा है त्रिकाली आनंद के नाथ प्रभु हैं न, आहाहा ! उसकी शरण ले तुम्हारी शरण वहाँ है, तुम्हारा धाम वहाँ है, तुम्हारा स्थान वहां है, तुम्हारी शक्ति वहां है, तुम्हारा गुण वहाँ है, अरेरे ! - ऐसा कहाँ सुनना। आहाहा ! अरेरे मनुष्यपना मिला, परंतु यों का यों पचास-साठ वर्ष बितायें... पाप में ही पाप में जगत में रहे, इसे कहाँ जाना (है) भाई ? आहाहाहा ! यहाँ तो पुण्य में थोड़ा समय लगाये कदाचित, तो यह भी बंध का कारण क्लेश है। आहाहा ! उसकी दृष्टि छोड़ना और उसको त्रिकाली की दृष्टि कराने को, शुद्धनय को प्रधान कहकर मुख्य करके यह है - ऐसा कहा है, त्रिकाली चीज चिदानंदप्रभु भगवान - ऐसा कहते हैं प्रभु तेरा स्वरूप पूर्ण है वहाँ जाओ ! यह मलिन पर्याय है उसमें से हट जा ! तुमको जो मुक्ति चाहिए हो और आनंद लेना हो तो। अन्यथा तो दुःख तो होता है अनादि से। आहाहा ! है ?

`अशुद्धनय को असत्यार्थ कहने से' अशुद्धनय अर्थात पुण्य-पाप का (भाव) वह नय नहीं है - ऐसा कहा। असत्यार्थ कहा, अभूतार्थ कहा, झूठा कहा। तब `यह न समझना चाहिए, कि आकाश के फूल की भांति वस्तु धर्म सर्वथा नहीं,' आकाश में फूल नहीं, आकाश में फूल होता है ? इसीप्रकार पुण्य-पाप का और अशुभ परिणाम है ही नहीं - ऐसा नहीं है, तुम्हारी पर्याय में है, आहाहा ! है तो स्वरूप की दृष्टि करने से यह छूट जाता है, दुःख है, दुःख है ! आहाहा ! आंख मिची तो समाप्त हो गया। यह पैसा तथा शरीर एवं रजकण जहाँ जहाँ जो रहते हैं वहाँ रहेगा,

तुम्हारे कारण से कोई पर में फेरफार होता (नहीं) है ? आहाहा ! जहाँ जहाँ पुद्‌गल परमाणु जैसी पर्याय में है वहाँ वह रहेगा, उसको बदलने में तुम्हारे आत्मा की कोई शक्ति नहीं। तुम्हारी शक्ति है ही नहीं। आहाहा ! कल्पना चाहे जो तुम करो, परंतु जो चीज जहाँ जिस पर्याय से जहाँ जैसी है वहाँ, रहेगी। आहाहाहा ! - ऐसा कठिन (मार्ग) है। जो पर्याय जहाँ जिस क्षेत्र में, जिस काल भाव में जहाँ जहाँ है वहाँ वहाँ होगी, तुम्हारी कल्पना से उसमें फेरफार हो... काल बदल जाय और परिस्थिति बदल जाय - ऐसा कुछ है नहीं वहाँ, तुम बदल जाओ। तुम्हारी दृष्टि जो पुण्य-पाप और अशुद्धता ऊपर है उसको छोड़ दो तुम बस ! यह तुम्हारे अधिकार की बात है। ऐसी बात भाई बहुत... आहाहा !

`आकाश फूल की भांति यह वस्तु धर्म सर्वथा ही नहीं' आत्मा की पर्याय में मलिनता है ही नहीं, यह तो आकाश फूल है। ऐसा नहीं है - ऐसा माने तो मिथ्यात्व होगा। आहाहा ! है ? - ऐसा सर्वथा एकांत समझने से मिथ्यात्व होता है। पर्याय में मलिनता अशुद्धता नहीं है - ऐसा मानना मिथ्यात्व है।

और अशुद्धता से धर्म होगा, ऐसी मान्यता भी मिथ्यात्व है। और मेरे शुद्धस्वभाव में अशुद्धता घुस गई है - ऐसा मानना भी मिथ्यात्व है। आहाहा ! - ऐसा उपदेश और सुननेवाले (सामान्य) मनुष्य...

परंतु अब तो जिज्ञासु लोग सुनते हैं। घाटकोपर जन्म जयंती हुई, पंद्रह हजार, बीस हजार मनुष्य (आते), बात तो यह है हमारी। आहा ! बापू प्रभु तुम कौन हो ? कहाँ हो ? और हो तो तुम्हारी पर्याय में भी तुम हो, परंतु पर्याय में मलिनता है यह छोड़ने को असत्यार्थ कह कर त्रिकाली की सत्यार्थ की शरण लेना है। आहाहाहा ! इसलिये स्याद्वाद की शरण लेकर... अपेक्षा से कहा था। त्रिकालीशुद्ध में त्रिकाली द्रव्य में, मलिनता है ही नहीं, तो पर्याय में नहीं है - ऐसा नहीं कहना था। अपेक्षा से कहा वस्तु में नहीं। आहाहा ! स्याद्वाद नाम अपेक्षा, स्याद, अर्थात अपेक्षा, वाद अर्थात कहना अथवा जानना। `अपेक्षा की शरण लेकर जानने से शुद्धनय का अवलम्बन लेना चाहिए'। पुण्य-पाप मलिनता पर्याय में है - ऐसा जानकर, उसकी दृष्टि छोड़कर त्रिकाली की शरण लेना। आहाहा !

इसमें कहीं दया पालना व्रत पालना, पैसा देना वहाँ मंदिर बनवाना कि पांच करोड़रुपया है वह एक करोड़ धर्म के नाम पर दे। अरे पांच करोड़ दे दे तो यह तो जड़ है उसमें तुम्हें धर्म कहाँ है। आहाहा ! (श्रोता :- अब मंदिर बन गया) अब मंदिर बन गया अतः आपत्ती नहीं - ऐसा कहते हैं, मंदिर नहीं बना था तब भी हम तो पहले से यही कहते आये है यहाँ तो, हाँ ? आहाहा ! बेंगलोर में बारह

लाख का मंदिर। अभी गये थे बेंगलोर - ऐसा मंदिर बना है वहाँ तो हम थे पंचकल्याण किया था न ? आठ लाख तो एक भभूतमलजी ने दिया श्वेताम्बर भभूतमल, दो करोड़ का आसामी है श्वेताम्बर, उन्होंने आठ लाख दिया और एक करोड़पति अपना है जुगराजजी बोम्बे में महावीर मार्केट, स्थानकवासी करोड़पति, उसने चारलाख रुपया दिया, बारह लाख का मंदिर बना परंतु देखना, और उसमें अभी हम पहले पंचकल्याण के समय बारह लाख, अभी विचारो तो पंद्रहलाख परंतु मंदिर, मंदिर ओहो !

- ऐसा दिगम्बर मंदिर - ऐसा दिखे कि... कलकत्तावाला (डॉक्टर) आयेगा अभी आनेवाला है न गांगुली आठ तारीख को आनेवाला है। क्या कहते हैं तुम्हारी भाषा में ? होम्योपेथी का बड़ा डॉक्टर, होम्योपेथी में अपने यहाँ आते है, वेदांती (है) तीन बार यहाँ आये, बेंगलोर आ चुके, वहाँ आ चुके, घाटकोपर भी आ चुके फिर उनको रस लगा सुनने का... ओ भाई यह वस्तु तो राग का विकल्प करना, कारण कि ब्रह्मचारी है। ४९ वर्ष की उम्र है ब्रह्मचारी है, सुन्दर राजकुमार जैसा शरीर है, और बहुत पैसा पैदा होता है, बारह महीने बहुत पैसा आता है, और भगवान के नाम पर दान देते हैं। दुःखी कोई हो उसे पैसा देते (है) और (बोले) अब आजीवन ब्रह्मचर्य से रहना है। महाराज ! इस आठवीं तारीख को आनेवाले है।

उन्होंने देखा मंदिर भाई, चंदुभाई ! अन्यथा आये थे तो सुनने और स्वास्थ्य देखने, मंदिर देखा... ओहोहो ! बेंगलोर में एक हजार रुपया मैं देता हूँ। डॉक्टर स्वयं (श्रोता :- मंदिर का इतना प्रभाव पड़ा) इसे - ऐसा लगा कि, ओहो यह चीज ऐसी ? भले ही धर्म दूसरा, परंतु यह एक मंदिर - ऐसा बनाया नीचे भोंयरा, मंदिर, ऊपर समवशरण - ऐसा पन्द्रहलाख का मंदिर बेंगलोर में, बहुत खुश हो गया।

अभी इस १७वीं तारीख को अफ्रीका के नैरोबी में पन्द्रह लाख के मंदिर का शिलान्यास हो गया, भाई लालचन्द्रभाई ! यह यह बाबूभाई, अपने लालचन्द्रभाई वहाँ गये थे, और १७वीं तारीख को वहाँ, लोग करोड़पति है चार श्वेताम्बर, दूसरे पन्द्रह बीस-बीस लाखवाले बहुत हैं, मंदिर हो गया सभी, ४० घर उन्होंने पन्द्रहलाख का मंदिर बनाया। शिलान्यास किया अभी, यह तो ग्रहस्थ लोग है, यह तो चाहे जो करें परंतु वह तो पर की चीज है बापू ! यह तो बनने के काल में बनेगी दूसरा जीव कहे हमसे बनती है... आहाहा ! (श्रोता :- कारीगर से बनता है।) कारीगर से बनता नहीं, कारीगर दूसरा द्रव्य है यह द्रव्य दूसरा है (उसका) जन्मक्षण है। १०२ गाथा प्रवचनसार।

प्रत्येक द्रव्य की जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होने का जन्म नाम उत्पत्ती काल है, तब यह उत्पन्न होती है, पर से बिलकुल तीनकाल तीनलोक में नहीं। आहाहाहा !

यह हाथ हिलता है उस समय का जन्मक्षण है - पर्याय की ऐसी उत्पत्ती का काल है, तो उत्पन्न होती है, आत्मा से बिलकुल नहीं। अरे ! ऐसी बात सुनने मिले नहीं। कठिनबात है बापू परंतु इसका फल कैसा है ? शुद्धनय का आश्रय, चिदानंद का आश्रय करने पर जिसके फल में अतीन्द्रिय आनंद और पूर्णता में अतीन्द्रिय आनंद उसका फल। आहाहाहा !

`इसलिए स्याद्वाद की शरणलेकर' (किसी) अपेक्षा से ***त्रिकाली शुद्ध में अशुद्धता नहीं, पर्याय में अशुद्धता है - ऐसे दोनों प्रकार का ज्ञान करके अशुद्धता की शरण छोड़ दे और त्रिकाली शुद्ध की शरण ले, परंतु अशुद्धता का ज्ञान रख कर।*** आहाहा ! यह चौदहवीं गाथा में आया है तथा टीका में भावार्थ में कि भाई यहाँ अस्वीकार मत करो, परंतु अशुद्धता है, पर्याय है, यह लक्ष्य में रखकर फिर यह बात है, पर्याय नहीं हो तो एकांत वेदांत हो जाता है। वेदांतों ने पर्याय मानी ही नहीं। पर्याय न माने तो अनुभव किसका ? त्रिकाली का अनुभव किसने किया ? द्रव्य ने किया कि पर्याय ने किया ? यह त्रिकाली आत्मा है यह निर्णय किसने किया ? यदि पर्याय न हो तो पर्याय बिना निर्णय करे कौन ? नित्य का निर्णय अनित्य करती है। द्रव्य नित्य है, उसकी पर्याय अनित्य है यह उसका निर्णय करती है, आहाहाहाहा !

परंतु उस पर्याय की दृष्टि छोड़ने को त्रिकाली वस्तु जो सत्य है और अशुद्धता यह असत्य है। इसप्रकार मुख्य गौण करके कहने में आया है। आहाहा ! बिलकुल अशुद्धता है ही नहीं तो फिर अशुद्धता टालने का उपाय भी निरर्थक हो जाता है। और धर्म करना है, यदि अधर्म न हो, पर्याय में अधर्म न हो तब धर्म करना... वह रहता नहीं। आहाहाहाहा ! अधर्म की पर्याय के स्थान में धर्म लाना है, तब त्रिकाणी स्वभाव शुद्ध न हो तब आश्रय बिना धर्म होता नहीं और अशुद्धता न हो तो (अशुद्धता का व्यय) हुये बिना शुद्धता प्रगट होती नहीं, ऐसी बात है, इसलिये स्याद्वाद की शरण लेकर शुद्धनय का अवलम्बन लेना चाहिए, शुद्धनय अर्थात त्रिकाली वस्तु।

`स्वरूप की प्राप्ति होने के बाद'** चैतन्यमूर्ति पूर्ण शुद्ध जब दृष्टिमें-अनुभवमें आया और आने से पूर्ण प्राप्ति करके ***सर्वज्ञ हुआ केवली हुआ केवलज्ञानी हुआ। `शुद्धनय का भी अवलम्बन नहीं रहता' बाद में स्वतरफ झुकना यह रहता नहीं, अवलम्बन अर्थात पूर्ण हो गया। आहाहाहा !*

जो वस्तु स्वरूप है वह है, वहाँ तो जैसा द्रव्य है न वैसी पर्याय है - ऐसा है। - ऐसा ज्ञान हो गया, इसका फल वीतरागता है, प्रमाण का फल। इस प्रकार निश्चय करना योग्य है देखो ! ओहोहो ! सरलभाषा में कितना भरा है, चलती भाषा टीका के अलावा, **`यहाँ ज्ञायक भाव प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं - ऐसा कहा,'** क्या कहते

हैं ? कि वस्तु जो ध्रुव चैतन्य प्रभु जो सम्यग्दर्शन का विषय है वह तो प्रमत्त-अप्रमत्त १४ गुणस्थान उसमें नहीं, पर्याय का भेद उसमें नहीं - ऐसा कहा, **`यह गुणस्थानों की परिपाटी में छह गुणस्थान तक प्रमत्त और सातवें से लेकर अप्रमत्त कहलाता है किन्तु यह सभी गुणस्थान अशुद्धनय की कथनी में है'** आहाहा ! पहला गुणस्थान, दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठवां, सातवां, आठवां, तेरहवां यह व्यवहारनय की कथनी में है। आहाहा ! है ? अशुद्धनय की कथनी में है।

`शुद्धनय से तो आत्मा ज्ञायक है' अकेला चैतन्यबिम्ब प्रकाश का प्रवाह जाननेवाला ज्ञायकस्वरूप है, जाननेवाला ज्ञायक स्वरूप है, उसमें वह भेद-वेद-गुणस्थानों के है नहीं। आहाहाहाहा !

`अब प्रश्न यह होता है,'** अब सातवीं (गाथा की) भूमिका बताते है **`अब प्रश्न यह होता है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र को आत्मा का धर्म कहा गया है' भले रागादिक नहीं पुण्यादि भी नहीं, परन्तु आत्मा जो वस्तु है उसका भान हुआ अनुभव, तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान, चारित्र तो आत्मा का धर्म है किन्तु यह तो तीन भेद हुये... सूक्ष्मबात है। ज्ञायक भाव जो त्रिकाल वस्तु है उसमें जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो सम्यग्दर्शन ज्ञान प्रगट होता है, सम्यग्दर्शन अंतर के आश्रय से ज्ञान और चारित्र तब तीन भेद हो गये... है न ? यह भेद हुआ तथा भेदभाव से आत्मा में अशुद्धता आती है... और भेद भाव का लक्ष्य करने सो तो विकल्प उठते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

पुण्य-पाप तो विकल्प है दुःख है ही, परंतु आत्मा त्रिकाली जो ज्ञायक भाव है शुद्ध चैतन्य ध्रुव, उसकी दृष्टि ज्ञान और रमणता तीन बोल प्रगट हुये, मोक्ष का मार्ग वह तो तीन हुआ, तीन हुआ वह भेद हुआ, तो भेद से तो विकल्प उत्पन्न होता है अशुद्धता आती है शिष्य का प्रश्न है। आहाहा ! है ? भेदरूप भावों से तो आत्मा को अशुद्धता आती है उसके उत्तर स्वरूप गाथा सूत्र कहते हैं, क्या कहते हैं ? यह कि जिसके हृदय में - ऐसा प्रश्न उठा कि आपने पुण्य पाप की अशुद्धता को दूर करा दिया... वस्तु में है नहीं, वह तो ठीक, परंतु वस्तु में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ वह तीन भेद है, तब तीन भेद से तो अशुद्धता आती है, इसमें एकरूपता ज्ञायकता रहती नहीं। - ऐसा जिसको अंतर में हृदय में धगश (से) प्रश्न उठा है, उसको उत्तर देने में आता है, सामान्य श्रोताओं को नहीं। ठीक अपन सुनने को आये हैं न ! अपने को सुनना हैं - ऐसा नहीं। जिसके अंतरंग में... आहाहा ! शुभ-अशुभ भाव तो मलिन है, अशुद्ध है वह तो ठीक, परंतु एक वस्तु में उसकी दृष्टि ज्ञान और रमणता प्रगट हुये तीन, तब तीन हुये तो वह भी अशुद्धता आई। एक का आश्रय लेकर जो शुद्धता हो उस शुद्धता का तीन भेद (करके) लक्ष्य करने से

तो अशुद्धता आती है। आहाहा ! तब यह अशुद्धता... (तीन) भावों से अशुद्धता आती है, तब इसका क्या अर्थ ? ऐसी धगश जिसको है उसको उत्तर देने में आता है कि यह अशुद्धता भी मलिन है, तीन भेद ऊपर लक्ष्य करना नहीं, अनंत (गुणवाला) ज्ञायकस्वरूप है उसपर दृष्टि करना। इन भेद ऊपर लक्ष्य करने से तुम्हें विकल्प और राग उत्पन्न होगा। - ऐसा उत्तर आयेगा। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - ७

दर्शनज्ञानचारित्रवत्त्वेनास्याशुद्धत्वमिति चेत् -

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो।।७।।

व्यवहारेणोपदिश्यते ज्ञानिनश्चरित्रं दर्शनं ज्ञानम्।
नापि ज्ञानं न चरित्रं न दर्शनं ज्ञायकः शुद्धः।।७।।

अब, प्रश्न यह होता है कि दर्शन, ज्ञान और चारित्र को आत्मा का धर्म कहा गया है, किन्तु यह तो तीन भेद हुए; और इन भेदरूप भावों से आत्मा को अशुद्धता आती है ? इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं :-

चारित्र, दर्शन, ज्ञान भी, व्यवहार कहता ज्ञानिके।
चारित्र नहिं, दर्शन नहीं, नहिं ज्ञान, ज्ञायक शुद्ध है।।७।।

गाथार्थ :- [ज्ञानिनः] ज्ञानी के [चरित्रं दर्शनं ज्ञानं] चारित्र, दर्शन, ज्ञान-यह तीन भाव [व्यवहारेण] व्यवहार से [उपदिश्यते] कहे जाते हैं; निश्चय से [ज्ञानं अपि न] ज्ञान भी नहीं है, [चरित्रं न] चारित्र भी नहीं है, और [दर्शनं न] दर्शन भी नहीं है; ज्ञानी तो एक [ज्ञायकः शुद्धः] शुद्ध ज्ञायक ही है।

टीका :- इस ज्ञायक आत्मा को बन्धपर्याय के निमित्त से अशुद्धता तो दूर रहो, किन्तु उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी विद्यमान नहीं हैं; क्योंकि अनंत धर्मोंवाले एक धर्मी में जो निष्णात नहीं हैं ऐसे निकटवर्ती शिष्यों को, धर्मी को बतलानेवाले कितने ही धर्मों के द्वारा, उपदेश करते हुए आचार्यों का-यद्यपि धर्म और धर्मी का स्वभाव से अभेद है तथापि नामसे भेद करके - व्यवहारमात्र से ही - ऐसा उपदेश है कि ज्ञानी के दर्शन है, ज्ञान है चारित्र है। किन्तु परमार्थ से देखा जाये तो अनंत पर्यायों की एक द्रव्य पी गया होने से जो एक है ऐसे कुछ-मिले हुए आस्वादवाले, अभेद, एक स्वभावी (तत्त्व) का अनुभव करनेवाले को दर्शन भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है, एक शुद्ध ज्ञायक ही है।

भावार्थ :- इस शुद्ध आत्मा के कर्मबंध के निमित्त से अशुद्धता होती है, यह

बात तो दूर ही रहो, किन्तु उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद नहीं है, क्योंकि वस्तु अनंतधर्मरूप एकधर्मी है। परंतु व्यवहारीजन धर्मों को ही समझते हैं, धर्मी को नहीं जानते; इसलिये वस्तु के किन्हीं असाधारण धर्मों को उपदेश में लेकर अभेदरूप वस्तु में भी धर्मों के नामरूप भेद को उत्पन्न करके - ऐसा उपदेश दिया जाता है कि ज्ञानी के दर्शन है, ज्ञान है चारित्र है। इसप्रकार अभेद में भेद किया जाता है, इसलिये वह व्यवहार है। यदि परमार्थ से विचार किया जाये तो एक द्रव्य अनंत पर्यायों को अभेदरूप से पी कर बैठा है, इसलिये उसमें भेद नहीं है।

यहाँ कोई कह सकता है कि पर्याय भी द्रव्य के ही भेद हैं, अवस्तु नहीं; तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ? उसका समाधान यह है :- यह ठीक है, किन्तु यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है। अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है। इसलिये भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है। यहाँ यह अभिप्राय है कि भेददृष्टि में भी निर्विकल्प दशा नहीं होती और सरागी के विकल्प होते रहते हैं; इसलिये जहाँ तक रागादिक दूर नहीं हो जाते वहाँ तक भेद को गौण करके अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। वीतराग होने के बाद भेदाभेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है, वहाँ नय का आलम्बन ही नहीं रहता।

प्रवचन नं. २६ गाथा-७ ता. ६-७-७८ गुरुवार अषाढ सुद-१ सं.२५०४

समयसार गाथा सात।

अब प्रश्न यह होता है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र को आत्मा का धर्म कहा गया (है)। **किन्तु यह तो तीन भेद हुए और भेदरूप भावों से आत्मा को अशुद्धता आती है।** क्या कहते हैं ? छठवीं गाथा में - ऐसा कहा है कि आत्मा ज्ञायक स्वरूप, ध्रुव अभेद उसपर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। कर्म के निमित्त से जो अशुद्धता होती है, उससे (धर्म) होता नहीं, उसके लक्ष्य से होता नहीं। प्रथम धर्म की सीढी सम्यग्दर्शन वह त्रिकाल ज्ञायक भाव चैतन्यस्वभाव नित्य एकरूप, उसके आश्रय से होता है, इसमें कर्म के निमित्त से अशुद्धता आती है यह उसमें है नहीं। यह चौदह गुणस्थान के भेद उसमें है नहीं, ऐसी चीज को अंतर-दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, यह बात है।

तब शिष्य का प्रश्न है कि यह तो ठीक परंतु एक स्वरूप भगवान ज्ञायक स्वरूप

में दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे तीन भेद होते हैं न ? कर्म के निमित्त से अशुद्धता और चौदह गुणस्थान का भेद वह तो है नहीं उसमें, वह तो ठीक, परंतु वह चीज जो है चैतन्यस्वरूप, उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र के तीन भेद होते हैं, तब भेद भी अशुद्धता का कारण है, समझ में आया ? आहाहाहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई ! उसका उत्तर क्या है ? भेद करने से भी अशुद्धता होती है। भेद तो है, सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीनो है और तीन का भेद पाड़ने से भेद के लक्ष्य से, भेद के कारण से तो अशुद्धता होती है। आहाहा ! सूक्ष्म गाथा है। इसकी जिज्ञासा जिसको है कि आत्मा ज्ञायक चैतन्य शुद्ध ध्रुव स्वरूप, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन न होता है, तब इन तीन भेदों में तो अशुद्धता आती है ? - ऐसा शिष्य का प्रश्न है, अंतर से समझने को (प्रश्न है) उसका उत्तर देने में आता है।

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो।।७।।

चारित्र, दर्शन, ज्ञान भी, व्यवहार कहता ज्ञानिके।
चारित्र नहिं, दर्शन नहीं, नहिं ज्ञान, ज्ञायक शुद्ध है।।७।।

गाथार्थ :- ज्ञानी को अर्थात धर्मी को... आहाहा ! धर्मी उसे कहते हैं कि जिसकी दृष्टि ज्ञायक चैतन्य अभेद ऊपर स्थित है, और उससे उसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ तब इस धर्मी को ज्ञानी को धर्मी को... उसमें पण्डित लिखा है, पण्डित पुरुष को - ऐसा लिखा है और हिन्दी में मूल तो ज्ञानी को कहना है। पण्डित पुरुष को अर्थात ज्ञानी को धर्मी को अर्थात पण्डित पुरुष को पण्डित पुरुष अर्थात जिसकी दृष्टि ज्ञायक ऊपर है, यह समकिती है ज्ञानी है उसको चारित्र-दर्शन-ज्ञान यह तीन भाव व्यवहार से कहे जाते हैं। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह तो अशुद्ध... यह तो निकाल दिया छठवीं (गाथा) में, कि उनके लक्ष्य से सम्यक्त्व होता नहीं, और उसके आश्रय से होता नहीं उससे होता नहीं। यहाँ अब - ऐसा कहते हैं कि... आहाहा ! ऐसी बात ले जाना।

चैतन्य ज्ञायक मूर्ति अभेद उसको चारित्र आदि तीन भाव कहना व्यवहार है, असत्यार्थ है, अभूतार्थ है, वास्तव में एक में तीन भेद है नहीं। समझ में आता है ? सूक्ष्म विषय है आहाहा ! सम्यग्दृष्टि को धर्म के प्रथम सोपानवाले को, ज्ञायक स्वरूप जो अभेद चैतन्य है उसकी दृष्टि वहाँ ज्ञायक ऊपर है, एवं अशुद्धता की दृष्टि नहीं और अशुद्धता का लक्ष्य नहीं और अशुद्धता से सम्यक्त्व होता है - ऐसी मान्यता नहीं।

अब यहाँ आया, एकरूप चैतन्यस्वरूप जो है ज्ञायक, इसमें अनंतगुण अंदर है

परंतु वह तो पी गया अर्थात अंदर अभेदरूप है, अभेद की दृष्टि करने से दर्शन-ज्ञान-चारित्र भेद दिखते नहीं, आहा ! ऐसी बात है। इस कारण से धर्मी को दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहना वह व्यवहार है, अर्थात दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद से ज्ञायक ऊपर दृष्टि जाती है - ऐसा नहीं, और दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप भेद के लक्ष्य से और भेद के कारण से ज्ञायक (की) दृष्टि होती है - ऐसा है नहीं। आहाहाहाहा ! चारित्र-दर्शन-ज्ञान यह तीन भाव व्यवहार से कहे जाते हैं, यह तो कथन की शैली में, जो धर्मी समझते नहीं धर्म को, ऐसी जिज्ञासा (वाले) जीव को तीन बोलसे आत्मा - ऐसा कहने में आया (है) समझ में आया ? परंतु जो आत्मा है, यह तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों (रूप) से अंदर अभेद है, इस ज्ञायक से तीन भेद भिन्न है - ऐसा नहीं आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

सातवीं गाथा सूक्ष्म है। ***वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र तो उसमें शक्तिरूप है परंतु भेद करना यह व्यवहार है। आहाहा ! व्यवहार अर्थात उसके आश्रय से विकल्प उत्पन्न होता है, सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता। आहाहा ! इसलिये निश्चय से ज्ञान भी नहीं। धर्मी को ज्ञान भी नहीं दर्शन भी नहीं चारित्र भी नहीं।*** एक स्थानकवासी ने यह पढ़ा, तो कहे लो धर्मी को दर्शन-ज्ञान-चारित्र है ही नहीं ? उनको तो यह खबर नहीं, उनके शास्त्र में यह बात है नहीं। किस अपेक्षा से कहते हैं ? ***दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्रव्य में अभेदरूप है वैसे तो अनंतगुण मौजूद है परंतु उनको भेद करके पृथक लक्ष्य में लेना यह व्यवहार है, तब धर्मी को ज्ञायक भाव दृष्टि होने से अभेद में भेद दिखता नहीं।*** फिर भी भेद है, दिखनेवाला अभेद है, अभेद दिखता है उसमें भेद दिखता नहीं, और (जिसे) भेद दिखता है उसे अभेद नहीं दिखता। समझ में आया ? आहाहा !

ज्ञानी को ज्ञान नहीं, चारित्र नहीं, दर्शन नहीं, ठीक ! तो अज्ञानी को होगा ? उसका अर्थ है धर्मी जीव, सम्यग्दृष्टि की दृष्टि ज्ञायक भाव ऊपर है, अभेद ऊपर है, इस कारण उसको भेद है ही नहीं। ज्ञानी को ज्ञान भी नहीं, दर्शन भी नहीं, चारित्र भी नहीं है, तीनों नहीं है, क्योंकि यह तो भेद है, और ज्ञानी की दृष्टि तो ज्ञायक ऊपर अभेद ऊपर है। आहाहाहा ! समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म विषय है भाई !

अब, यहाँ तो अरे व्रत करो और तप करो और भक्ति करो एवं इससे कल्याण होगा, यहाँ तो कहते हैं कि यह तो अशुद्ध परिणाम है, अशुद्ध तो लक्ष्य लेने लायक है नहीं, और अशुद्ध से सम्यग्दर्शन होता नहीं, परंतु अभेदवस्तु में अनंतगुण है, परंतु उसके भेद करके लक्ष्य करना उससे सम्यग्दर्शन होता नहीं, ऐसी बात है। आहाहा !

समझ में आया ?

ज्ञानी को ज्ञान नहीं, दर्शन नहीं, चारित्र नहीं, अर्थात तब ज्ञायक शुद्ध है, ज्ञायक शुद्ध ही है, ***सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में तो अकेला शुद्ध ज्ञायक है। भेद है, राग है वह जानने लायक है, आदरणीय नहीं। आहाहा ! आदरणीय ज्ञायक शुद्धचैतन्यवस्तु अभेद यह ज्ञानी को ज्ञायक शुद्ध एक ही है।*** आहाहा !

टीका :- यह गाथा का अर्थ किया। समझ में आता है ? **`इस ज्ञायक आत्मा को...**' यह भगवान ज्ञायक स्वरूप, द्रव्यस्वरूप, शुद्धचैतन्यघन अनाकुल आनंद का कंद प्रभु, यह उसको **`बंध पर्याय के निमित्त से...**' कर्म के निमित्तरूप बंध के पर्याय के निमित्त से **`अशुद्धता से तो दूर रहो...**' अशुद्धता की तो बात यहाँ है ही नहीं। आहाहा ! अशुद्धता उसमें है - यह बात है ही नहीं - और अशुद्धता के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन होता है, यह बात तो है ही नहीं। तथा अशुद्धता के कारण से दर्शन शुद्ध होता है यह तो है ही नहीं। आहाहा !

किन्तु उसको दर्शन, ज्ञान और चारित्र भी विद्यमान नहीं है। आहाहा ! धर्मी जीव ज्ञायकभाव अकेला शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव उसकी दृष्टि में तीन भेद नहीं है, समझ में आया ? दृष्टि में तो ज्ञायक एक शुद्ध है। आहाहाहाहा ! ***अभेद ज्ञायक वस्तु वह सम्यग्दर्शन का विषय... दर्शन, ज्ञान और चारित्र भेद भी ज्ञानी को नहीं, अर्थात ज्ञानी का यह विषय नहीं, अथवा सम्यग्दर्शन उसके आश्रय से होता नहीं। इसलिये सम्यग्दर्शन का विषय नहीं।*** आहाहा ! नेमिचन्द्रभाई ! ऐसी बातें है। है ? आहाहा !

एकरूप स्वरूप ज्ञायक, भले अंतर में धर्म अनंत है परंतु वस्तु एक है। एक ऊपर दृष्टि देने से अशुद्धता तो लक्ष्य में आती नहीं, परंतु दर्शन, ज्ञान, चारित्र का भेद भी लक्ष्य में आता नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। उसको अर्थात ज्ञानी को अथवा ज्ञायक में, ज्ञायक वस्तु जो शुद्ध चैतन्य... एकरूप जो ध्रुव द्रव्य स्वभाव उसको दर्शन ज्ञान और चारित्र भी... अभेद में नहीं है। आहाहा ! दर्शन, ज्ञान, चारित्र विद्यमान नहीं।

मोक्ष का मार्ग जो है, वह भी ज्ञायक में विद्यमान है ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? **`उसके दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी (विद्यमान) नहीं**' अर्थात ? अशुद्धता तो है ही नहीं, पुण्य और पाप का भाव दया, दान, व्रत, भक्ति यह तो ज्ञायक में है ही नहीं, पर यह (दर्शन-ज्ञान-चारित्र) भी नहीं इसलिए `भी' लगाया, यह भी नहीं। आहाहा ! **`दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी नहीं...,**' आहाहा ! क्यों ? क्यों नहीं विद्यमान ? एक ज्ञायक भाव विद्यमान है, और तीन, विद्यमान एक में नहीं, क्यों ? आहाहा !

कारण क्या ? **`कि अनंत धर्मोंवाले एक धर्मी में...**' धर्मी नाम आत्मा एक ज्ञायक

अनंत धर्मोंवाले एक धर्मी, धर्म अनंत, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि। वस्तु धर्मी एक, वस्तु एक ज्ञायक धर्मी, उसमें धर्म अनंत। समझ में आया ? अनंतधर्मोंवाले एक धर्मी में - ऐसा लिया न ? आहाहा ! है तो यह प्रभु ज्ञायक में सामान्यगुण अनंत, विशेषगुण अनंत ऐसे अनंत गुणवाले धर्मी में ऐसे अनंतधर्म जो गुण है, धारण कर रखा है - ऐसा एक धर्मी, धर्म अनंत धर्मी एक। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो दूसरी बात है भाई अभ्यास नहीं करें (तो समझ में कैसे आए)। आहाहा ! प्रभु चैतन्यमूर्ति भगवान... शरीर से तो भिन्न, वाणी से भिन्न, अशुद्धता के परिणाम से भिन्न पर अभेद में धर्मों का भेद भी भिन्न, भेद भी उसमें नहीं। आहाहा ! - ऐसा कहा कि अनंत धर्मोंवाले... क्या कहा ? एक धर्मीद्रव्य ज्ञायक यह अनंत धर्मोंवाले... आहाहा ! एक धर्मी अनंतगुणवाला एक गुणी अनंत शक्तिवाले एक शक्तिमान। आहाहा ! इस धर्मी में, एक धर्मी में अनंतधर्म, अनंतधर्म है न अंदर ? अनंतगुण है, नहीं है - ऐसा नहीं, परंतु **`ऐसे एक धर्मी में जो निष्णांत नहीं...,'** एक धर्मी का जिसको ज्ञान नहीं, अनंत धर्म, स्वभाव, गुणवाले एक गुणीवस्तु धर्मी उसका जिसको ज्ञान नहीं, निष्णात नहीं। निष्णात का अर्थ वह तुम्हारे में नहीं ? इसमें निष्णात है, इस बात में निष्णात है, एक वस्तु अनंतधर्मवाली एक वस्तु... जो सम्यग्दर्शन का विषय ऐसे एक धर्मी में निष्णात नहीं, जिसको खबर नहीं, जिसको एक धर्मी का एक वस्तु ज्ञायक का ज्ञान नहीं... आहाहाहा !

`ऐसे निकटवर्ती शिष्य को...' क्या कहते हैं ? आहाहा ! एक तो जो शिष्य गुरु के पास आया उसको वह कहते हैं, समझ में आया ? आहाहा ! उसके घर (घरमें) समझाने को जाते नहीं। (श्रोता :- अपन तो मुंबई जाते है) यह तो सुननेवाले आते है, सुननेवाले हैं उन्हें सुनाते हैं।

निकटवर्ती के दो अर्थ हैं। एक तो गुरु के पास समझने आया है, उनके नजदीक है, दूसरी तरह कहें तो निकटवर्ती... भव का अंत का किनारा आया - ऐसा यह निकटवर्ती जीव है। आहाहा ! पण्डितजी। समझ में आता है भैया ? ऐसी बात है। दिगम्बर संत। आहाहा ! दूसरी (जगह) (ऐसी बात) मिलती नहीं, बहुत परिवर्तन हो गया (है) परिवर्तन हो गया यह तो। आहाहा ! एक धर्मी अर्थात द्रव्य यह अनंतधर्मवाला उसको एक धर्मी तो एकरूप वस्तु है, उसका जिसको ज्ञान नहीं। निष्णांत नहीं, ख्याल नहीं, उस तरफ का झुकाव नहीं - ऐसा निकटवर्ती शिष्य सुनने को आया है, सुनने को आया है, ऐसे निकट... उसको घर पर समझाने को जाते नहीं। एक बात।

दूसरी बात यह शिष्य निकटवर्ती है, अल्पकाल में संसार का अंत लानेवाला है - ऐसा शिष्य सुनने को आया है। आहाहा ! आहाहा ! गजब बात है। दिगम्बर

संतो की वाणी। केवलज्ञान का अनुसरण करनेवाले, ऐसी बात कहीं है नहीं। आहाहा ! लोगों को दुःख लगे, दूसरे संप्रदाय को बापू ! एक एक अक्षर तो देखो और एक-एक भाव तो क्या (चीज है)। सुनने को मिलता नहीं। आहाहा ! भाई ने कहा न, आहाहा ! बात तो ऐसी है भाई !

अनंत अनंत गुणों का गोदाम प्रभु एक, अनंत शक्ति का संग्रहालय एक, अनंत धर्मों को धारण करनेवाला धर्मी एक, आहाहा ! - एक का जिसको ज्ञान नहीं, ऐसी एक चीज ज्ञायक स्वरूप प्रभु, उसका जिसको ज्ञान नहीं - ऐसा नहीं कहा कि भेद का ज्ञान नहीं और निमित्त का ज्ञान नहीं कि छह द्रव्य का ज्ञान नहीं... आहाहा ! यहाँ तो एक वस्तु प्रभु नित्यानंद आत्मा जिसमें अनंतधर्म हैं, ऐसे अनंतगुण हैं, यह अनंतगुणों को धरनेवाला एक - ऐसा जो द्रव्य - ऐसा जो धर्मी उसमें निष्णात नहीं, और दूसरी बातो में भले पण्डित हो। आहाहाहा ! ऐसी बातें है बापू !

दिगम्बर संतो की बातें तो केवली के पदानुगामी की बातें हैं। केवलज्ञान के रस्ते पर चलनेवालों की... यह बात केवलज्ञान में ले जाने के लिये है। आहाहा ! भगवंत ! एकबार सुन ! तेरी चीज पर से तो भिन्न, रागरूप व्यवहार से तो भिन्न, परंतु अनंतगुणों का (भेद) एकरूप, तो गुण (भेद) से भी भिन्न, अभिन्न है यह तो। आहाहा ! यह गुणी और यह उसका गुण - ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। आहाहाहा ! गाथा बहुत ऊँची है। जैनदर्शन का मक्खन जैनदर्शन अर्थात वस्तु विश्वदर्शन। जैनदर्शन कोई संप्रदाय नहीं वस्तु का स्वरूप जैसा है वैसा कहा, (है) वैसा अनुभव किया, आहाहा ! यह दिगम्बर जैनदर्शन हो ! दूसरी जगह ऐसी बात है नहीं। आहाहा ! लोगों को दुःख लगे (परन्तु) दूसरा क्या करें ? मार्ग तो प्रभु का यह है। आहाहाहा !

जिसके पास जाने से आनंद उत्पन्न हो - ऐसा भगवान आत्मा एकरूप वस्तु उसमें जो निष्णात नहीं, उसका ज्ञान नहीं, एकरूप वस्तु का ज्ञान नहीं। हैं एकरूप वस्तु में अनंत धर्म, अनंतगुण फिर भी एकरूप का जिसको ज्ञान नहीं - ऐसा कहा। आहाहाहा !

छोटाभाई को यह समझायेगा हो ध्यान रखना, बड़ेभाई को जचती है, आहा ! मार्ग प्रभु (का) यह है। आहाहा !

पहले उसका यथार्थ ज्ञान तो करे, आहाहा ! फिर प्रयोग करे। आहाहा ! ओहोहो ! अमृतचन्द्राचार्य !! कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले भगवान के पास गये थे आठ दिन रहे थे और श्रुतकेवली केवलियों द्वारा कहा और सुना तथा अनुभव में आया था। विशेष स्पष्ट अनुभव हुआ, (वहाँ से) आने के बाद यह शास्त्र बनाया। तीन लोक के नाथ सीमंधर भगवान - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा ! गजब बात है। अनंत धर्म

सिद्ध किये, अनंत गुण... एक वस्तु में अनंत गुण तो है, आत्मा एक ही गुणवाला है - ऐसा नहीं, है तो अनंत गुण, अनंत धर्म कहो कि अनंत गुण कहो, परंतु यह अनंत गुणों का धरनेवाला एक, एक ऊपर जिसका ज्ञान (नजर) नहीं। आहाहाहा ! यह गुणी और गुण को अनंत गुणों का जिसे ज्ञान, यह कहीं वस्तु नहीं - ऐसा कहते हैं, हाँ।आहाहा !

भाई, मोहनलालजी नहीं आते भाई उनकी पत्नी को कहते हैं वह हो गया है। कोई कहता था कल लाड़न्वाले भाई, मोहनलालजी आनेवाले थे तथा उनकी स्त्री को, क्या कहलाता यह ? पक्षघात हो गया है। कहो ! यहाँ मुश्किल से मिला सुनने का संयोग उसमें - ऐसा विघ्न, संसार, संसार - ऐसा है। आहाहा ! मोहनलाल पाटनी है बहुत प्रेमी है, आहाहा !

यहाँ कहते हैं, एक-एक शब्द में बहुत गंभीरता। बहुत गंभीरता है ! अनंत धर्म सिद्ध करना है, आत्मा एक है तो धर्म गुण अनंत हैं, परंतु अनंत धर्मों को धारण करनेवाला एक, इस एक का जिसको ज्ञान नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! हें ? आहाहाहा ! अनंत गुणवाला जीव इसका जिसे ज्ञान है नहीं। यह भेद का ज्ञान है यह तो व्यवहार है। यह अनंतगुणों को धारण करनेवाली एक वस्तु है प्रभु ! इसका जिसे निष्णात ज्ञान नहीं, ऐसे निकटवर्ती शिष्य, आहाहा ! वह भी नजदीक अपना आत्मा के लिए सुनने को आया है, अन्य कोई चीज नहीं। आहाहा ! आहाहा ! अपना आत्मा का हित क्यों (कैसे) हो - ऐसा (इसलिये) सुनने को आया है, निष्णांत नहीं एक द्रव्य कैसा है उसका ज्ञान नहीं परंतु - ऐसा भाव उसको है कि मेरा कल्याण कैसे हो - ऐसा निकटवर्ती-नजदीक (पास) में आया और संसार (भी) जिसका निकट है अंत। आहाहा ! अब भव के अंत की स्थिति जिसको नजदीक है। आहाहा !

`ऐसे निकटवर्ती शिष्य को, धर्मी को बतानेवाला'** धर्मी, धर्मी, द्रव्य स्वभाव जो ज्ञायक एकरूप इसको बतानेवाले `धर्मी को बतानेवाले' द्रव्य को बतलानेवाला, ज्ञायक को दिखानेवाला, अभेदस्वरूप वस्तु जो है उसको बतानेवाला **`कितने ही धर्मों के द्वारा' किन्हीं-किन्हीं धर्म द्वारा... सभी धर्म तो एक साथ (बता सकते) नहीं परंतु मुख्य कितने ही धर्म व्यवहार मात्र से ही भेद कथन मात्र से, भेद के कथन मात्र से... उसमें अंदर भेद है नहीं। आहाहा ! आहाहाहा !

व्यवहारमात्र से ही, यहाँ ही शब्द लिखा है, व्यवहारमात्र से ही, भेद करके समझाना है। कि व्यवहार मात्र से ही। आहाहाहा ! समझ में आया ? भेद समझाना है ? समझना है अभेद। परंतु भेद करके समझना... तो व्यवहारमात्र से ही भेद करके समझना है... आहाहा ! व्यवहारमात्र से ही - ऐसा उपदेश है। यहाँ तो - ऐसा उपदेश

है, कथन है न ! यहाँ तो... आहाहा ! भाव तो भाव भले (परन्तु) उपदेश - ऐसा है। व्यवहारमात्र से ही - ऐसा उपदेश आया कि एक वस्तु में निष्णांत नहीं और एक वस्तु में अनंत धर्म है उनका जिसको ज्ञान नहीं... आहाहा ! बहुत गंभीर - ऐसा उपदेश है कि ज्ञानी को, गाथा में है न ? गाथा में है, ज्ञानी को धर्मी को सम्यग्दृष्टि के विषय में, सम्यग्दृष्टि के ध्येय में धर्मी को... आहाहा ! `ज्ञानी के दर्शन है, ज्ञान है चारित्र है' - ऐसा भेद करके बताया है। समझ में आया ? आहाहा ! भले अभी सम्यग्दर्शन नहीं पाया। परंतु सम्यग्दर्शन पानेवाले को भेद करके दिखाया कि देखो ऐसा भगवान आत्मा है, आत्मा आत्मा कहने से नहीं समझ सकें, यह धर्मी है, द्रव्य है - ऐसा कहने पर (भी) न समझ सके। एक रूप को तो समझते नहीं, एक द्रव्य का तो ज्ञान नहीं। आहाहाहाहा ! - ऐसा सम्यग्दर्शन पाने के लायक है और निकटवर्ती शिष्य है। आहाहाहा ! भैयाजी ! - ऐसा उपदेश है। आहाहा ! परमसत्य है, आहाहा ! पण्डितजी का परिचय है न ? आहा ! यह बात कहाँ है प्रभु ! उसका एक बार ज्ञान तो सच्चा करे ! आहाहा !

धर्मी को बतानेवाले... व्यवहार से, व्यवहार समझना नहीं, व्यवहार से धर्मी (अभेद) द्रव्य को समझना है (परंतु) लक्ष्य तो वहाँ ले जाना है परंतु अकेले द्रव्य का ज्ञान नहीं और चैतन्य स्वरूप अखण्ड अभेद है इसका ज्ञान नहीं तब उसको... आहाहाहा ! `**उपदेश करते हुये धर्मी को बतलानेवाला**' भी हो। बतलाना तो धर्मी द्रव्य, द्रव्य को दिखलानेवाले उपदेश में... आहाहा ! यहाँ लोग ऐसा निकाले (कहें) देखो व्यवहार से निश्चय जानने में आता है कि नहीं ? अरे परंतु व्यवहार से समझाते हैं जो समझते है वे यह द्रव्य का आश्रय लेते हैं तब समझते हैं, भेद का आश्रय भी उसको छूट जाता है। समझ में आया ? परन्तु समझाने को दूसरी वस्तु कहाँ से लायें ?

एकरूप अनंत आनंद-कंद प्रभु ! सहजानंद चैतन्य आनंद का कंद प्रभु पूर्णानंद परमात्मा स्वरूप खुद स्वयं - ऐसा जिसकी दृष्टि में नहीं है इसका जिसके अंदर (से) माहात्म्य आया नहीं। इसको उसके धर्मों में धर्मी को बतानेवाला, धर्म की कितने ही धर्मों से बात करते हैं सभी धर्मों से तो नहीं समझा सकते। खास-खास मुख्य बिन्दु कहते हैं। आहाहा ! है ? `कितने ही धर्मों के द्वारा'... देखो इसमें `ही' है `उपदेश करते हुये आचार्य...' आहाहा ! आचार्यो ने उपदेश किया... आहाहाहाहा ! `**यद्यपि धर्म और धर्मी का स्वभाव से अभेद है,**' उष्णता और अग्नि कोई भिन्न नहीं... ऊष्णता और अग्नि अभिन्न है। इसीप्रकार गुण और गुणी कोई भिन्न नहीं गुण और गुणी अभेद है। समझ में आया ? आहाहा !

जैसे यह लकड़ी है, यह सफेदाई चिकनाई आदि उसमें अभेद है। परंतु समझाने

को यह क्या है पिलास्टिक है पिलास्टिक क्या कहलाती यह ? यह सफेद है यह सफेदी है वह कहीं भिन्न होती है उसमें से ? चिकनाई है वह तो अभेद है सभी, पर इसको भेद करके बताना है। आहाहा ! अकेले पिलास्टिक को कैसे कहें, तब कहें चिकना है सफेद है वजनवाला है चमकदार है, चमक-चमक है यह उसमें है तो अभेद, परन्तु भेद करके समझाना है।

इसीप्रकार भगवान आत्मा में अनंतगुण हैं तो अभेद परन्तु जो अभेदरूपी एक द्रव्य को नहीं जानता, उसको भेद करके बतलाना है वह। भेद करके भेद बताना है (- ऐसा) नहीं। आहा ! ***इसमें कोई - ऐसा माने कि व्यवहार से निश्चय समझा जाता है न ? परंतु इसका दूसरा कोई उपाय नहीं। आहाहा ! और वह भी उस समझने योग्य धर्मी को समझाते हैं। व्यवहार से समझाते हैं परंतु लक्ष्य कराते है धर्मी (अभेद) ऊपर। आहाहा ! धर्मी ऊपर दृष्टि जाये तब व्यवहार से आचार्यों ने समझाया उससे समझा - ऐसा कहा जाता है।*** आहाहा !

ओहोहो ! कैसी गाथा है ? कहीं है नहीं। आहाहा ! जिसके एक-एक शब्दों में कितनी गंभीरता है, तो दिगम्बर संत छद्मस्थ, छद्मस्थ है न ? यह तो केवली नहीं है आहाहा ! परंतु वीतरागी संत है, तीनकषाय का तो अभाव है कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, आहाहा ! क्षण में सातवां क्षण में छठवां, अंतर्मुहूर्त में हजारों बार छठवां सातवां (गुणस्थान) आता है। फिर भी कहते हैं कि यह नहीं, यह छठवां सातवां भेद (आत्मा) में नहीं। मैं तो ज्ञायक हूँ। यह तो छठवीं गाथा में आ गया। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि धर्म का धरनेवाला धर्मी अनंत धर्मों को धारण करता है, परंतु धर्मी को बताना है वहाँ धर्म से बताना है, दूसरा उपाय क्या ? कि देखो दर्शन किसको होता है ? कि आत्मा का विश्वास आता है कि मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, किसको ? जड़ को ? राग को ? आहाहाहा ! विश्वास अंदर परमात्मा मैं हूँ - ऐसा विश्वास आता है ? कि किसको ? कि आत्मा को, इसलिये विश्वास द्वारा आत्मा को समझाया... परंतु विश्वास द्वारा समझाया, विश्वास भेद करके समझाया। आहाहाहा !

ज्ञान द्वारा समझाया कि समझो पहले प्रभु जिसकी सत्ता में ज्ञान होता है स्व-पर का, जिसकी सत्ता में स्व पर का ज्ञान होता है, यह ज्ञान वह आत्मा इसप्रकार व्यवहार से भेद करके बताया। आहाहाहा ! इसमें बाद विवाद काम कर सके नहीं यह तो वस्तु ऐसी है, इसमें पण्डिताई का काम नहीं।

(श्रोता :- वाद-विवाद को नियमसार में निषेध किया है) स्वसमय परसमय के साथ प्रभु वाद-विवाद करना नहीं, नियमसार में कहा। ऐसी वस्तु है कैसे बैठे भाई ! यह तो जिसको आत्मा की रुचि हो और आत्मा को समझने की गरज हो, दूसरी

सब पिपासा जिसको घट गई हो। आहाहा !

जैसे आचार्यों का - ऐसा उपदेश है कि धर्मी को अर्थात ज्ञायक, ज्ञायक में दर्शन है ज्ञान है, चारित्र है - ऐसा भेद हुआ, यह व्यवहार से है, आया न यह? व्यवहार मात्र से - ऐसा उपदेश (है) कि धर्मी को दर्शन-ज्ञान-चारित्र (है) आहाहा ! तब कहते हैं कि देखो व्यवहार समझाने में आया है कि नहीं ? निश्चय को व्यवहार कारण हुआ कि नहीं? ना, ना भाई - ऐसा नहीं व्यवहार (से) समझाते हैं निश्चय को वहाँ निश्चय का लक्ष्य है, और ***आचार्य तो कहते हैं कि हम समझाते है न, दर्शन, ज्ञान, चारित्र वह आत्मा परंतु इस व्यवहार का हम भी आश्रय नहीं करते और तुम्हें आश्रय नहीं करना।*** आठवीं गाथा। आठवीं गाथा में आयेगा। आहाहा ! समझ में आया ? ***इस व्यवहार से हम समझाते हैं, परंतु व्यवहार का आश्रय हमें भी अनुसरण नहीं करना, और तुमको भी व्यवहार से समझाते हैं तो भी अनुसरण नहीं करना, अनुसरण तो द्रव्य का करना।*** आहाहा ! ऐसी बात है।

'व्यवहार मात्र से ही - ऐसा उपदेश है कि धर्मी को दर्शन-ज्ञान...' ज्ञायक में दर्शन है ज्ञान है चारित्र का भेद बताया यह व्यवहार से बताया है, ज्ञायक में यह तीन है, यह व्यवहार से कहे हैं। आहाहाहाहा ! '**किन्तु परमार्थ से देखा जाये**' वास्तव में ज्ञायकभाव, ऐसी वस्तु को देखा जाये '**तो अनंत पर्यायों को एक द्रव्य पी गया है**' आहाहा ! अनंतगुण तो एक अभेद द्रव्य में घुस गये है ! (द्रव्य) अंदर पी गया है, आहाहा ! ***एक द्रव्य अनंत धर्मों को पी गया है अंदर अनंत पर्यायों को एकद्रव्य ही पी जाता है,*** अंदर स्थित ही है, अंदर - ऐसा कहते हैं। इसलिये एकरूप है। वस्तु तो एकरूप है, अनंत धर्म गुण अंदर हों, फिर भी पी गया है अर्थात एकरूप हो गया है द्रव्य। वहाँ गुण और गुणी - ऐसा भेद रहता नहीं। आहाहाहा !

यह सम्यग्दर्शन धर्म की पहला सोपान पाने की कला है। आहा ! शेष सभी निःसार निःसार है आहाहा ! जन्म-मरण कर करके कहीं विश्राम मिला नहीं। विश्राम स्थान प्रभु है वहाँ गया नहीं। आनंदधाम... वहाँ तो गया नहीं और भेद तथा राग में रुककर परिभ्रमण किया। आहाहा ! आहा ! ग्यारह अंग पढ़े नव पूर्व पढ़े तब भी अंतर दृष्टि नहीं की। अभेद ऊपर दृष्टि नहीं की। कुछ न कुछ शल्य अंदर रह गई। रुकने के अनंत प्रकार, छूटने का एक प्रकार। वस्तु एक त्रिकाली उसका आश्रय वह छूटने का उपाय, रुकने के तो अनेक उपाय (हैं), दया से होता है, भक्ति से होता है और व्यवहार से होता है एवं निमित्त से होता है एवं देव गुरु की कुछ कृपा मिल जाये तब होता है, ऐसे अटका (अनंतबार) आहाहाहा ! समझ में आया ?

`इसलिये'... इसलिये क्या ? अनंतपर्या में एक द्रव्य में घुस कर स्थित है अंदर अभेद इसलिये एकरूप किञ्चित् मिले हुए आस्वाद... आस्वाद - ऐसा क्यों कहा ? ***अनंतगुण में प्रत्येक गुण का स्वाद भिन्न है, किंचित एक-मेक मिले हुये... किसी अपेक्षा एक-मेक है, सर्वथा प्रकार अनंत गुण यह एकरूप नहीं। यह प्रत्येक गुण भिन्न-२ स्वादवाला है।*** आहाहाहा ! उसमें सुधारा न ? गुजराती में ? इसमें तो ठीक आया है। यह ठीक आया है, शेष है वहाँ आया था, गुजराती में किंचित एक-मेक मिले हुये, किसी अपेक्षा गुण एक-मेक हैं बाकी, स्वाद भिन्न-२ है **द्रव्य की अपेक्षा एक-मेक है परंतु स्वाद भिन्न है,** भिन्न स्वाद की अपेक्षा। आहाहा ! आस्वादरूप है न? अभेद है। आहाहा ! एकत्वभाव (रूप) वस्तु का अनुभव करनेवाले ज्ञानी को, एक स्वभाव वस्तु भेद अनेक प्रकार के भले (वें) - ऐसा कहते हैं और गुणों का स्वाद भी भले भिन्न-भिन्न हो, वस्तु अपेक्षा एक है। आहाहाहा !

अब - ऐसा उपदेश (कि) कोई उदाहरण, न्याय और कोई कथा कहानी नहीं मिले। आहाहा ! उदाहरण, न्याय तो कहा। आहाहा ! - ऐसा एक स्वभाव वस्तु का अनुभव करानेवाले ज्ञानी पुरुष को - ऐसा लेना, शीर्षक में लिया था न ? ज्ञानी को दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार से कहे। देखो ऊपर कहा न ? ज्ञानी को दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार से कहा, देखो ऊपर कहा था न ? और (मूल) पाठ में भी है ज्ञानी को? फिर ज्ञानी यहाँ पण्डित पुरुष हो यही, यहाँ ज्ञानी को दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार से (कहा) (कि) निश्चय से... आहाहाहा ! ज्ञानी पुरुष के न तो दर्शन है। आहाहाहा ! धर्मी जीव की दृष्टि तो द्रव्य ऊपर है। आहाहा ! अखण्ड ज्ञायक स्वभाव अभेद, जो अनंत गुण पी गया है, अंदर पड़े है अंदर, फिर भी दृष्टि तो उनकी एकरूप द्रव्य ऊपर ही है। आहाहा ! ध्रुव की और ध्येय की दृष्टि कभी छूटती नहीं। ध्रुव के ध्यान की दृष्टि... आहाहा !

ज्ञानी पुरुष को- ऐसा वहाँ लेना, ज्ञानी है न, मूल पाठ में है न ? इसलिये लेना, ज्ञानी कहा अर्थात अनुभवी जीव के, द्रव्यस्वभाव में दर्शनज्ञानचारित्र ऐसे भेद दिखते नहीं। अभेद अनुभव में भेद दिखते नहीं। भेद दिखे तो अभेद रहता नहीं और अभेद दिखे उसमें भेद होता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? एक घण्टे का विषय बहुत सूक्ष्म ! नये व्यक्तियों को तो यह लगे कि यह क्या यह कहाँ से लाये, क्या है? यह तो कहीं धर्म होगा ? (श्रोता :- यह बात सच्ची है दूसरी जगह - ऐसा उपदेश आता नहीं, पूजा करो, व्रत करो, भक्ति करो, स्तुति करो परमात्मा की, मंदिर बनाओ गजरथ निकालो, रथ निकालो रथ, दो-पांच लाख खर्चो। यह तो विद्यारथ (ऊपर) आरूढ़ है। आहा ! ज्ञान में आरूढ़ होना रथ यात्रा है... वह

तो शुभ भाव हो तो बाहर की क्रिया होती हो तो हो, वह कोई धर्म नहीं, शुभ भाव आता है, परंतु वह धर्म नहीं पुण्य बंध का कारण है। आहाहा !

***`एक स्वभाव वस्तु का अनुभव करनेवाले ज्ञानी को न तो दर्शन है'... भेदरूप दर्शन और ज्ञान है - ऐसा नहीं, अंतर में (अभेद में) सब स्थित हो, और परिणति में भी तीन भले आओ परंतु दृष्टि के विषय में तीन नहीं।*** आहाहाहाहा ! ऐसी बात। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य आहाहा ! अमृतचन्द्राचार्य। अब वह तुलसी है न ? वह `लोए' निकाल देना चाहते हैं, कहते णमो लोए सव्वसाहूणं, (श्वेतम्बरों के) तेरहपंथी है ना ? तुलसी कहता `लोए' निकाल दो अररर ! णमो सव्वसाहूणम् लोए नहीं, उसे लगे लोक में। सुनो न बापा तुम्हें खबर नहीं। अनादि (का है) द्रव्य संग्रह में तो पेंतीस अक्षर का मंत्र कहा है पैंतीस अक्षर का मंत्र कहा है, द्रव्य संग्रह में। पैंतीस अक्षर, णमो लोए सव्वसाहूणम् तब पैंतीस अक्षर होते है, नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती (का बनाया हुआ) लोग स्वच्छंद (हो गये) स्वयं की अपनी कल्पना से (कुछ भी करते) आहाहा !

सनातन चैतन्य तत्त्व चला आया है, सनातन दिगम्बर मुनियों ने तो परमात्मा की जो वाणी का प्रवाह था वह चलाया है। आहाहा ! एक वस्तुस्वभाव को अनुभव करनेवाले धर्मी को, धर्मी को कहो, ज्ञानी को कहो, पण्डित पुरुषों को कहो, और यही पण्डित है। आहाहा ! जिसने एक द्रव्य स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान किया, वह ही पण्डित है। आहाहाहा ! आहाहा ! शास्त्र का बहुत ज्ञान हो एवं बहुत समझाना आता हो, तो पण्डित है - (ऐसी कोई व्यवस्था नहीं) आहाहाहा ! धर्मी को न तो दर्शन का भेद है उसकी तो अखण्ड ज्ञायक ऊपर दृष्टि है, न दर्शन है न ज्ञान है न चारित्र ही है, देखा ? आहाहा ! एव एक - ऐसा है न ? है न ? ज्ञायक एव एक किन्तु वह तो ज्ञायक एक मात्र शुद्ध ज्ञायक ही है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि तो एक ज्ञायक ऊपर ही है तब वह ज्ञायक मात्र ही है। भेदरूप यह है नहीं। आहाहाहाहा !

दर्शन का विषय ध्येय, यह इसमें ज्ञान-दर्शन-चारित्र भेद नहीं। यह तो एकरूप वस्तु है यह उसका ध्येय है। आहाहाहा ! बाद में जो उसका ज्ञान हुआ अपना दर्शन के आश्रय से यह ज्ञान का स्वपर प्रकाशक जानने का स्वभाव है, तब द्रव्य को भी जाने और पर्याय को भी जाने, परंतु यह जो ज्ञान स्वपर प्रकाशक यह जाने, आदरणीय ध्येय तो दृष्टि का (विषय) एक ही ज्ञायक है। आहाहा !

दूसरी तरह से, एक ज्ञायक का ध्येय और द्रव्य दृष्टि हुई तब उसका ज्ञान - ऐसा हुआ, कि स्वका भी ज्ञान है और रागादि का मंद आदिरूप अशुद्धता हो उसका भी उसको यथार्थ ज्ञान व्यवहार का है, समझ में आया ? अकेले शास्त्र का ज्ञान यह ज्ञान नहीं। आहाहा ! वस्तु का जिसको ज्ञान हुआ, अभेदधर्मी एक द्रव्य

स्वभाव उसकी जिसको दृष्टि हुई तब उसको उसमें भेद नहीं, परंतु उसके साथ जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान अभेद को भी जानता है और पर्याय में भेद है दर्शन-ज्ञान-चारित्र, रागादिक है, यह जानते हैं। जानने लायक है... किन्तु वह तो एक मात्र शुद्ध, शुद्ध ज्ञायक ही है शुद्ध ! तीन में तो अशुद्धता आती है - ऐसा यहाँ कहते हैं। दर्शन, ज्ञान और चारित्र यह तो तीन भेद हुये। भेद हुआ... वहाँ सोलहवीं गाथा में मलिन कहा न मेचक, १६वीं गाथा के कलश में, तीन भेद हुये तब मेचक हुआ, मलिन हुआ मलिन कहने का व्यवहार है, क्योंकि उसके आश्रय से राग उत्पन्न होता है। आहाहा ! और त्रिकाली के आश्रय से वीतरागभाव उत्पन्न होता है एवं भेद के आश्रय से राग होता है यह मेचक मलिन है, अभेद है यह निर्मल है आहाहा ! विशेष कहेंगे। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. २७ गाथा-७ ता. ७-७-७८ शुक्रवार अषाढ सुद-२ सं.२५०४

इस शुद्ध आत्मा के, शुद्ध आत्मा के, पवित्र द्रव्य स्वभाव त्रिकाल आनंदकंद प्रभु यह शुद्धात्मा, जो सम्यग्दर्शन का विषय है। शुद्धात्मा त्रिकाली सम्यग्दर्शन का विषय, ध्यान का ध्येय, ध्यान पर्याय है, उसका ध्येय शुद्धात्मा। पूर्ण पवित्रता का पिण्ड वह शुद्ध। इस आत्मा को **`कर्मबंध के निमित्त से अशुद्धता होती है,'** कर्मबंध के निमित्त से... उपादान अपना ही है निमित्त कर्म, (जो) अशुद्धता मलिनता होती है, **`यह बात तो दूर रहो'** मलिनता तो लक्ष्य में लेने लायक वस्तु नहीं। सम्यग्दर्शन जिसको पाना है धर्म की पहली सीढ़ी अथवा धर्म की शुरूआत, धर्म की शुरूआत करना है, उसको शुद्धात्मा में जो मलिनता दिखती है उसका तो लक्ष्य छोड़ दो। क्योंकि वह कोई दृष्टि का ध्येय नहीं।

किन्तु उसमें दर्शन ज्ञान चारित्र के भी भेद नहीं... आहाहा ! एकरूप वस्तु चिद्घन एकरूप, उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन भेद करना वह भी विकल्प का कारण है, भेद है, (वह) व्यवहार का विषय है, वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। धर्म की शुरूआत करनेवालों को अशुद्धता को लक्ष्यमें से छोड़ देना परंतु दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद... अभेद में भेद करना छोड़ देना। आहाहा ! ऐसी बात है। `भी' चारित्र के भी - ऐसा है न ? अशुद्धता तो दूर रहो परंतु भेद का

भी लक्ष्य दूर रहो। दर्शन, ज्ञान और चारित्र वह भी लक्ष्य में लेने लायक नहीं। भेद है तो दृष्टि के विषय में लक्ष्य लेने लायक नहीं। आहाहा ! सूक्ष्मविषय है।

क्योंकि भगवान आत्मा वस्तु है `**यह अनंत धर्मरूप एक धर्मी**' अनंत धर्म है, गुण है उसमें, परंतु वस्तु अपेक्षा एक है, गुण अपेक्षा अनंत है, परंतु गुणी अपेक्षा एकधर्मी, एकद्रव्य है, आहाहा ! - ऐसा मार्ग... वस्तु अनंत धर्मरूप अनंत गुणरूप एक धर्मी है एक द्रव्य है आहाहा ! परंतु व्यवहारीजन अज्ञानी व्यवहार में रहनेवाला परमार्थ को नहीं जाननेवाला `एक धर्मी को समझते नहीं' वह धर्म को समझें, कि यह ज्ञान वह आत्मा, दर्शन वह आत्मा - ऐसा धर्म को समझे परंतु धर्मी को (अभेद को) समझते नहीं। समझ में आया ? व्यवहारीजन धर्मों को ही समझते है। मात्र धर्मों को ही... ज्ञान, दर्शन और अस्तित्व वस्तुत्व ऐसे धर्म को जाने। धर्मी को नहीं जानते। परंतु धर्मी जो द्रव्य एकरूप है उसको जानते नहीं। आहाहा ! इसप्रकार आत्मा है अस्ति है - ऐसा गुण से तो कदाचित जाने, परन्तु एकरूप धर्मी है जिसमें गुण भेद भी नहीं - ऐसा एकरूप धर्मीद्रव्य को जानते नहीं। आहाहा ! कहाँ ले जाना है ? धर्मी को नहीं जानते।

`**इसलिये वस्तु के किन्हीं असाधरण धर्मों को**' असाधारण अर्थात उसमें यह है दूसरे में नहीं ऐसे असाधारण धर्म अर्थात गुण अवस्था गुण को `उपदेश में लेकर अभेदरूप वस्तु में' वस्तु तो अभेद है अनंत गुणों का एकरूप धर्मी है फिर भी नहीं समझनेवाले (को)... धर्मी अर्थात् द्रव्य की दृष्टि नहीं, वह गुण को ही जानते है, उनको अभेदरूप वस्तु में भी... वस्तु तो अभेद है, ज्ञान, दर्शन भिन्न है एवं वस्तु भिन्न है - ऐसा नहीं। अनंत गुणों का एकरूप चिदानंद द्रव्य एक है।

`वस्तु में भी धर्मों के नाम रूप भेदों को उत्पन्न करके' आहाहा ! वस्तु जो चिदानंद प्रभु आत्मा ज्ञायक का ध्रुव प्रवाह (सादृश्य) जानन, जानन, जानन ध्रुव द्रव्य स्वरूप प्रवाह अर्थात ध्रुव सदा रहनेवाला, उसको नहीं जानते, उसको धर्मों के नामरूप भेदों को उत्पन्न करके... धर्मों के नाम, कथनरूप करके, कि यह आत्मा ज्ञान है दर्शन है - ऐसा भेद धर्मों का नामरूपी कथन, वस्तु में भेद नहीं... आहाहा ! धर्मों के धर्मी अर्थात् द्रव्य उसकी दृष्टि करने को अभेद में भेद है नहीं, तब भी भेद... धर्मों का नामरूप भेद, कथनरूप भेद, ज्ञान-दर्शन - ऐसा कोई अंदर भेद नहीं अंदर अभेद में भी नाम कथन करके नामरूप भेद को उत्पन्न करके `- ऐसा उपदेश दिया जाता है, कि ज्ञानी के,' धर्मी के धर्मी अर्थात द्रव्य में `**दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है**' - ऐसा भेद करके समझाते हैं, समझ में आया ?

गाथा तो एकदम बहुत ऊँची है। वस्तु जो है अखण्ड अभेद उसमें कोई गुणभेद

है नहीं, वह तो अभेदवस्तु है, परंतु धर्मों को जाननेवाला, धर्मी को नहीं जाननेवाले को धर्म के नाम से कथन करके भिन्न-भिन्न कथन करके... वस्तु में भिन्न नहीं, परंतु यह आत्मा ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है - ऐसा धर्मी में धर्म का भेद न होने पर भी न समझनेवाले को भेद अर्थात कथन (भेद) से कह करके यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र यह आत्मा में है। ***देवीलालजी ! (श्रोता :- वस्तु भेदा-भेद स्वरूप है) नहीं नहीं नहीं यह वस्तु भेदाभेद स्वरूप तो वीतरागता हो तब, भेदाभेद स्वरूप होने पर भी अभेद की दृष्टि कराने को, (भेद को गोण किया) जब तक भेद ऊपर लक्ष्य रहेगा तबतक राग होता है, और जबतक रागी है तबतक राग का विषय भेद है, तब यह भेद छोड़ने को, द्रव्य में भेद है नहीं। है तो वस्तु भेदाभेद, अंत में कहेंगे। परंतु जब वीतरागी हो जायेंगा फिर भेदा-भेद (को) जाननेवाला है। पहले जबतक रागी है तब अभेद जानना, दोनों जानने जायेगा तब विकल्प उत्पन्न होगा।*** वस्तु जो अखण्ड है यह अनंत गुण का पिण्ड है उसमें गुण भेद का लक्ष्य करोगे तब रागी होने से राग उत्पन्न होगा, ***भेद है अतः भेद को जानने के कारण राग होगा - ऐसा नहीं, क्योंकि भेद को तो केवली भी जानते हैं, परंतु यह रागी है तब भेद ऊपर लक्ष्य जायेगा तब राग ही उत्पन्न होगा।*** आहाहा ! ऐसी बात है।

यह कैसा उपदेश - ऐसा कहते हैं। बापू ! यह तो अंतर का मार्ग है वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं वस्तु तो वस्तु है अंदर एकरूप अनंत धर्मों को पी गया अंदर में घुस गये है। ऐसे धर्मी को अर्थात द्रव्य को नहीं जाननेवाले को उसका धर्म अर्थात गुण जाननेवाले को, गुण (भेद) से समझाते हैं, कि अभेद में भेद नहीं परंतु नाम भेद कथन करके आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र है - ऐसा व्यवहार से भेद करके, उपदेश करते हैं, ऐसी सूक्ष्म बातें हैं !

ज्ञानी अर्थात आत्मा में दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, ज्ञानी शब्द से आत्मा (समझना)। आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र नाम भेद कथन करके उनके द्वारा वह अभेद को जानें - इस अपेक्षा से नाम भेद कथन किया, वस्तु में भेद नहीं। आहाहाहा ! `**इसप्रकार अभेद में भेद किया जाता है**' इस अपेक्षा से वस्तु अभेद है एकरूप है, द्रव्य अपेक्षा, धर्मी अपेक्षा, तो एकरूप है, उसमें धर्मों का भेद करके व्यवहार कहकर, धर्मी को समझनेवाले को धर्म द्वारा धर्मी समझाते हैं। समझाना तो वह धर्मी है। आहाहा !

जिसे धर्म की शुरूआत करना हो, प्रथम धर्म की शुरूआत करना हो, प्रथम धर्म की शुरूआत पहले नम्बर (श्रद्धा) फिर दूसरा ज्ञान, चारित्र आदि (का) नम्बर पीछे। पहले सम्यग्दर्शन की सत्य दर्शन की शुरूआत करना हो तो उसको धर्मी की दृष्टि करना। द्रव्यदृष्टि, परंतु अज्ञानी एकदम द्रव्यदृष्टि को समझते नहीं, इसलिये

अभेद में भेद है नहीं फिर भी वे भेद से समझते हैं कि देखो यह ज्ञान - ऐसा जाने वह आत्मा, श्रद्धे वह आत्मा, स्थिर हो वह आत्मा - ऐसा गुण भेद नाम कथन करके बताते है। वस्तु में भेद नहीं। आहाहाहा ! अब इतना तो झगड़ा बाहर का। व्रत करो तप करो भक्ति करो... और यह अशुद्धता तो दूर रहो यह तो पहले कहा, यह अशुद्धता तो दूर रहो परंतु यहाँ तो गुणी में (धर्मी में) धर्मों का भेद है नहीं, फिर भी धर्मी में धर्म का भेद करके, धर्मी नहीं समझनेवाले को धर्म से धर्मी को समझाते हैं। आहाहा !

इसप्रकार अभेद में भेद किया जाता है, है तो वस्तु अभेद, एकरूप है, उसमें व्यवहार से भेद करके समझाया जाता है। है ? इसलिये (भेद) व्यवहार है। आहाहाहा ! दया, दान, व्रत, तप का भाव तो असद्भूत व्यवहार है, आहाहाहा ! वह तो दूर रहो उसका तो लक्ष्य छोड़ो परंतु (जो) उसमें है ऐसा दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो सद्भूत व्यवहार है उसमें है, परंतु भेद नहीं, अंदर वस्तु अभेद है। आहाहा ! तब उसमें भेद डाल कर समझाना यह व्यवहार है। आहाहा ! यह आत्मा दर्शनरूप है, कौन विश्वास करेगा ? विश्वास करता है कौन ? जड़ करे ? राग करे ? मैं आत्मा हूँ - ऐसा विश्वास कौन करता है ? यह विश्वास वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन से द्रव्य का लक्ष्य कराना है, दृष्टि द्रव्य की कराना है।

परंतु अकेले द्रव्य को समझना (है) न समझ सके... धर्मी यह द्रव्य है, वस्तु है, वस्तु है परंतु जिसका विश्वास करनेवाली वस्तु वह द्रव्य है, जाननेवाला जानता है कौन ? यह जाननेवाली वस्तु वह आत्मा है। स्थिर होता है कौन ? रमते-रमते ठहरते हैं कि अंदर यह आत्मा (है) - ऐसा तीन गुणों को भेद करके व्यवहार कहकर समझाया है। नेमचन्द्रभाई ! ऐसी बात है। अभी तो बाहर में झगड़ा है। धर्मी कौन है उसकी दृष्टि बिना व्रत और तप और भक्ति, पूजा करो, करते-करते शुभ से शुद्ध हो जायेगा। यहाँ तो कहते हैं कि अशुद्ध परिणाम से सम्यग्दर्शन होता नहीं (उससे) दृष्टि द्रव्य ऊपर होगी नहीं, परंतु उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद करने से भी दृष्टि अभेद में आती नहीं। आहाहा ! भेद ऊपर भी जबतक लक्ष्य रहेगा तबतक विकल्प उत्पन्न होगा। आहाहा ! - ऐसा मार्ग।

`**यदि परमार्थ से विचार किया जाये**' यथार्थ परम पदार्थ वस्तु अभेद की अपेक्षा विचार किया जाये, `**तो एक द्रव्य अनंत पर्यायों को अभेदरूप से पी कर बैठा है,**' वस्तु में अनंत गुण जो भेद अन्दर, पर्याय अर्थात् भेद अंदर में है, वह तो पी गया है। आहाहा ! जैसे पानी पी जाते है न ? इसीप्रकार अनंत धर्म, द्रव्य पी गया है, अंदर में पी गया है। आहाहा !

यदि परमार्थ से विचार किया जाय तो एक द्रव्य अनंत भेदों को, पर्याय अर्थात भेद, पर्याय को अर्थात भेदों को, अभेदरूप से पी कर बैठा है (अर्थात कि) द्रव्य में अनंतगुण अभेदरूप अंदर स्थित है, कहीं भिन्न है नहीं। समझमें आया ? अरे ! अब ऐसी बात, फुरसत कब निकाले, एक तो बाहर की प्रवृत्ति धर्म के नाम पर चला दी है। यह प्रवृत्ति से भी धर्म नहीं, परंतु अंदर जो वस्तु स्वरूप है, उसे भेद करके समझना परंतु भेद से भी धर्म नहीं। आहाहा ! ***अंदर वस्तु अभेद चैतन्य-ध्रुव-प्रवाह ध्रुव, ध्रुव, ध्रुव, ध्रुव, ध्रुव, ध्रुव, ध्रुव ऊर्ध्व सदा ध्रुव। वह तो अनंत गुण पी गया है।*** अनंत गुण कोई भिन्न रहें नहीं, पी गया और एकरूप रहा है। आहाहाहा ! अब - ऐसा उपदेश...

यह तो अभी धर्म की प्रथम शुरूआत की बात है। चारित्र तो यह तो कहीं बाद की बातें... बापू यह चारित्र किसे कहना, यह लोगों को तो बाहर से नग्नपना धारण कर लिया कहीं पंचमहाव्रत का नाम रखे नाम यह महाव्रत तो कहाँ ? बहुत कठिन बात प्रभु है। हित की बात यह तो है किसी व्यक्ति की नहीं। व्यक्ति की बात है नहीं, हित ऐसे होता है, यह व्रत तप की अशुद्धता यह तो विकल्प है, वह तो दूर रहो, वह तो दृष्टि के विषय में है ही नहीं, परंतु वस्तु में दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि शक्तियाँ तो पड़ी हैं, (द्रव्य) पी गया है, अभेद है उसमें भेद करके बताना दर्शन, ज्ञान, चारित्र... वह भी व्यवहार है, व्यवहार के आश्रय से तो विकल्प उत्पन्न होता है। व्यवहार के आश्रय से सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता, यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेदरूप व्यवहार से (भी) सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा ! ऐसी बात है।

भाषा तो सरल है पकड़ में आये - ऐसा है, नेमिचन्द्र भाई ! आहाहा ! क्या कहते हैं कि ऐसी सीधी बात है, वस्तु अंदर है न आत्मा ? यह (शरीर) तो पर चीज है, वस्तु जो अंदर है वह शरीर से तो भिन्न है, परंतु वह पुण्य और दया, दान का विकल्प से भी तो भिन्न है, आहाहा ! वह तो भिन्न है, परंतु उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद करना, उससे भी अभेद भिन्न है। आहाहाहा ! बहुत कठिन काम। तुम्हारे नये भाई तो पहली बार सुनते होंगे ? यह तो आत्मा की बात है न प्रभु ? तुम्हारे घर की बात है। निज स्वरूप की बात है प्रभु ! तुम कैसे हो ?

यहाँ परमात्मा कहते हैं कि तुम्हें जो धर्म की शुरूआत करना है तो पुण्य और दया, दान के विकल्प को लक्ष्यमें से छोड़ दो, वह तेरी वस्तु में है नहीं, परंतु तुम्हारी चीज में है... दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो स्वरूप में है अंदर में अभेद में है। अभेद भेद को पी गया है। परंतु भेद करके बताना दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह आत्मा वह भी व्यवहार है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होगा। भेद के आश्रय से तो राग

ही उत्पन्न होगा। क्यों ? वह रागी है इसलिए, भेद के लक्ष्य से राग उत्पन्न होता हो तो तब केवली भेद को सभी को जानते है केवली तो तीनकाल, तीनलोक सब भेद को पर्याय को सभी को जानते है, परंतु तुम छद्मस्थ हो, रागी हो, तो रागी का भेद पर लक्ष्य जायेगा तब राग ही उत्पन्न होगा। आहाहाहा ! भेद का लक्ष्य (ज्ञान) करने से राग उत्पन्न नहीं होगा, परंतु तुम रागी हो इसलिये भेद ऊपर लक्ष्य करने से राग होगा, आहाहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात किस जाति की होगी यह ? यह वीतराग का मार्ग - ऐसा होगा ? जिनेश्वर का ? इस संसार में तो दया पालना और व्रत करना तथा उपवास करना, रस परित्याग करना तथा व्रतपरिसंख्यान करना बापू वीतराग, वीतराग जैन दर्शन कोई अलौकिक वस्तु है।

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा ! यदि परमार्थ से विचार किया जाय तो एक द्रव्य अनंतभेदों को अभेदरूप से पीकर बैठा है, पर्याय का अर्थ भेद, अनंत गुण जो भेदरूप है उसको तो अभेद रूप पी गया है, अंदर में पड़ा है पूरा... एकरूप द्रव्य है इसलिये उसमें भेद नहीं। इसलिये अनंत भेद... अभेदरूप में स्थित है, इसकारण उसमें भेद नहीं। किस कारण ? अभेद में सभी गुण अंदर स्थित हैं अभेदरूप से, इसकारण उसमें भेद नहीं, और भेद करने जाओगे कि यह दर्शन है, यह ज्ञान है और यह चारित्र है तब व्यवहार विकल्प उत्पन्न होगा, और निर्विकल्प सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा ! समझ में आया। आहाहाहा !

दूसरा पेराग्राफ भावार्थ का दूसरा...

`यहाँ कोई यह कह सकता है'** भाषा देखी ? यहाँ कोई कह सकता है, कह सकते है कि **`पर्याय भी द्रव्य का ही भेद है' यह सभी गुण द्रव्य का ही स्वभाव हैं। द्रव्य का ही भेद है। **`अवस्तु तो नहीं'** यह गुण तो कहीं अवस्तु नहीं। गुण और भेद जो है यह कोई अवस्तु अर्थात पर वस्तु नहीं। **अवस्तु अर्थात पर वस्तु को अवस्तु कहते हैं, क्या कहा ? क्या कहा ? कि आत्मा की अपेक्षा से भेद है यह कहीं अवस्तु नहीं।** अवस्तु किसे कहें, कि आत्मा के अलावा दूसरा आत्मा, दूसरे जड़ उनको इस वस्तु की अपेक्षा से उनको अवस्तु कहें क्योंकि (यह तो) उसमें है नहीं अतः अवस्तु कहें तथा यह गुण तो उसमें है, उसको तुम अवस्तु कहकर व्यवहार क्यों कहते हो ? समझ में आया ?

फिर भाई तो नये है न नये आप, वह तो आते है बारंबार, यह समझने की चीज यह है, शेष तो धूल पानी है सारा, आहाहा ! क्या कहा ? यहाँ भावार्थ समझानेवाले पण्डितजी - ऐसा कहते हैं, कि यहाँ कोई कह सकता है, क्योंकि दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मद्रव्य में है, आत्मा की वस्तु है, यह कोई अवस्तु नहीं अवस्तु अर्थात भिन्न नहीं।

परद्रव्य और परात्मा को भी इस द्रव्य की अपेक्षा अद्रव्य कहते हैं। इस वस्तु की अपेक्षा दूसरी वस्तु को अवस्तु कहते हैं। परंतु (जो) इस वस्तु में गुण हैं यह अंदर में है उनमें भेद करना तो, है उसमें भेद करना तो, यह कहीं अवस्तु नहीं (कहलाये) वस्तु अंदर है, लौजिक से बात करते हैं। आहाहा !

क्या कहा ? यहाँ कोई कह सकता है, क्योंकि उसमें गुण (विद्यमान) हैं, परवस्तु तो उसमें है नहीं, भगवान पंचपरमेष्ठी भी आत्मा की अपेक्षा से अवस्तु कहने में आते हैं। उसको व्यवहार कहनेमें आता है। अवस्तु को व्यवहार और वस्तु को निश्चय। तब भगवान पंचपरमेष्ठी यह देव-गुरु-शास्त्र आदि को परद्रव्य उसे तो अवस्तु कहो एवं व्यवहार कहो तब कुछ ऐतराज नहीं। परंतु (जो) अंदर में है, वस्तु में गुण है यह अवस्तु नहीं, उसमें है इसमें अवस्तु कहाँ से आई - ऐसा तुम प्रश्न कर सकते हो - ऐसा पण्डितजी कहते हैं। आहाहा !

यहाँ कोई यह कह सकता है, क्योंकि गुण तो द्रव्य के अंदर में भेदरूप है, वस्तु, ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि (स्वरूप) है, (यह) वस्तु में है। वस्तु में नहीं है यह जो परद्रव्य वस्तु में नहीं है। परंतु यह तो वस्तु में है, (जो) है उसे तुम व्यवहार कैसे कह सकते हो ? और अवस्तु क्यों कहते हो ? आहाहाहाहा ! लौजिक से बात करते हैं, यहाँ कोई कह सकता है, कह सकता है, कि गुण भी द्रव्य का भेद है, अवस्तु नहीं यह कोई पर चीज नहीं उसी द्रव्य का भेद है, यह कोई पर वस्तु नहीं, द्रव्य का ही भेद है तो यह वस्तु है, और वस्तु है उसको व्यवहार क्यों कहते हो ? अपनी चीज की अपेक्षा पर चीज अवस्तु कहो उसको व्यवहार कहो परंतु (जो) वस्तु (में) है उसको व्यवहार कैसे कहो ? अपनी वस्तु अपेक्षा परवस्तु अवस्तु है, तब उसे व्यवहार कहो। परंतु अपनी स्व चीज में जो गुण है, यह अपनी वस्तु है उसी को अवस्तु कह कर तुम भेद, व्यवहार क्यों कहते हो ? समझ में आया। आहाहाहा !

तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है, प्रश्न समझ में आया, प्रश्नकार का प्रश्न, तुम कर सकते हो - ऐसा कहते हैं। तुम प्रश्नकार प्रश्न कर सकते हो। पहले तो - ऐसा कहा। क्योंकि तुम्हारा द्रव्य जो है उसमें गुण है, गुण भेद है, उसमें न हो और पर में हो तब उसको तो अवस्तु कह कर व्यवहार कहो परंतु तुममें (जो) भेद है उसको तुम व्यवहार कहते हो तब वह तो अवस्तु हो गई, आहाहाहा ! समझ में आया ? भाषा तो सादी है, परंतु अब भाव तो... (भाव) परंतु यह सेठ लोग आये है अतः यह हिन्दी ली है, तुम्हारे लिए यह, बहनों की तो बिनंती थी बहनों ने कहा कि अभी हिन्दी रहने दो, वह अभी आयेंगे और शिक्षण शिबिर (होगा) तब

हिन्दी चलेगा कहा अभी, यह सेठिया आये है न, सुने तो सही एक भाई तो अपरिचित है। आहाहा ! मार्ग तो प्रभु...

शिष्य को - ऐसा कहते हैं अथवा प्रश्नकार को, टीकाकार अर्थात यह वचनिका कार - ऐसा कहते हैं कि तुम - ऐसा कह सकते हो। क्योंकि आत्मा है। उसमें गुण है और गुण है उनको व्यवहार कहना ? (यदि) कहते हो तो वह अवस्तु हो जाती है - ऐसा तुम प्रश्न कर सकते हो। आहाहा ! देवीलालजी। आहाहा ! यह वस्तु अंदर है, चैतन्य प्रकाश का पुण्ज, चैतन्यचन्द्र, एकरूप ध्रुव उसमें गुण है, एवं है, उसको तुम अवस्तु कह कर व्यवहार कहो, है उसको व्यवहार कहो ? है उसको निश्चय कहना चाहिए। जो उसमें नहीं हो, पर चीज नहीं है, उसको तुम व्यवहार कह सकते हो क्योंकि वह अवस्तु है। इस वस्तु की अपेक्षा अवस्तु है पर उसकी अपेक्षा से भले वस्तु हो, परंतु इसकी अपेक्षा से अवस्तु है तो अवस्तु को तुम व्यवहार कह सकते हो। परंतु तुम्हारी चीज में (जो) धर्म है, गुण है उनको तुम व्यवहार क्यों कहते हो, वह तो नहीं है - ऐसा हो गया। समझ में आया ?

भैयाजी ! भैयाजी को प्रेम लगता है, बात तो ऐसी है प्रभु यह तो दिगम्बर संतों की बातें लोगों को अभी सुनने में आतीं नहीं। आहाहा ! गजब बात है, समझ में आया ? क्या कहा भैया समझ में आया ? क्या कहते हैं ? कि एक ध्रुव वस्तु है आत्मा पदार्थ उसमें जो चीज न हो, शरीर, वाणी, मन, देव, गुरु, शास्त्र नहीं है, तब इस अपेक्षा से उनको अवस्तु कहा जाता है, अवस्तु कह कर व्यवहार कहा जाता है, परंतु अपने में गुण है, अंदर है, उसको हम व्यवहार कहकर अवस्तु कहते हैं। समझ में आया ? यह प्रश्न तो प्रश्नकार का है, तुम - ऐसा कह सकते हो ? क्योंकि भगवान आत्मा अनंत गुण स्वरूप है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि गुणस्वरूप है और उसको तुम व्यवहार कहो तो अवस्तु हो जायेगी, अवस्तु को व्यवहार कहते हैं। स्ववस्तु को निश्चय कहते हैं। देवीलालजी। आहाहाहा ! ठीक समय पर आये हो अच्छी गाथा चलती है, कलकत्ते से आये बहुत दूर दिल्ली से। आहाहा !

हमारे भाई आये है न लाड़नूवाले नहीं ? भगवान तेरी चीज ऐसी है भाई आहाहा ! और यह दिगम्बर संतो के अलावा... आहाहाहाहा ! ऐसी कथनी, आहाहा ! क्या, क्या कहते हैं ? आहाहा ! अर्थ करनेवाले प्रश्न कर्त्ता के मुख से बुलवाते है, कहो क्योंकि गुण तो अंदर में है, है उसको हम व्यवहार कहते हैं तो तुम कह सकते हो कि, है उसको व्यवहार कैसे कहें ? उसमें नहीं हो उसको व्यवहार कह सकते हैं। आत्मा में परद्रव्य नहीं शरीर कर्म देव-गुरु-शास्त्र आत्मा के अलावा कर्म आदि सब अवस्तु कहने में आतीं हैं। तब अवस्तु को तो व्यवहार तुम कहो परंतु अंदर में गुण है,

वस्तु में है, वस्तु में वस्तुत्वपने की शक्तियाँ है, यह है (उसको) तुम व्यवहार कहते हो तब उसका अर्थ यह हो गया, कि यह शक्तियाँ है ही नहीं ? अवस्तु है, समझ में आया ? आहाहा !

सातवीं गाथा तो वैसे सर्वोत्कृष्ट है। उसमें भी यह सेठ आये ठीक समय पर, नेमिचन्द्र भाई ! आहाहा ! क्या कहते हैं ? प्रश्नकार के मुख से तुम प्रश्न कर सकते हो - ऐसा कहा, क्योंकि उसमें है वह तो निश्चय है, गुण है तो स्व में निश्चय है और गुण को भेद करके तुम अवस्तु व्यवहार कहते हो, तो व्यवहार तो अवस्तु होती है, अपने में जो चीज न हो उसको व्यवहार कहा जाता है, (जो) अपने में है उसे तो निश्चय कहा जाता है। तब तुम प्रश्न (कर सकते) हो। देवीलाल जी ! आहाहाहाहा ! (श्रोता :- समाधान भी बहुत सुन्दर किया) हाँ, प्रभु तुम प्रश्न कर सकते हो, क्योंकि अपनी चीज जो है, उसके गुण अपने में है, है फिर भी हम व्यवहार कहते हैं, तो तुम प्रश्न कर सकते हो, हैं उनको तुमने व्यवहार क्यों कहा ? उसमें न हो उस चीज को तुम व्यवहार कहो, परंतु यहाँ है उसको तो निश्चय कहना चाहिए, उसको व्यवहार क्यों कहा ? आहाहा !

यहाँ कोई कह सकता है - ऐसा कहा न ? तुम प्रश्न कर सकते हो, क्योंकि (यहाँ) प्रश्न करने का अवकाश है, क्योंकि (जो) गुण अपने में है वह तो निश्चय है और तुम गुण को व्यवहार कहते हो तो (गुण तो) अवस्तु हो गये। - ऐसा तुम प्रश्नकार प्रश्न कर सकते हो। आहाहा ! देवीलालजी ! आहाहा ! अरे यह बात प्रभु के घर की, तीनलोक के नाथ जिनेश्वर देव के अलावा कहां यह बात है ? आहाहा ! ऐसी बात। आहाहा ! प्रश्नकार के मुख से कहलाते है, तुम प्रश्न कर सकते हो, क्यों कर सकते हो ? कि आत्मा में गुण है, है, अनंतगुण भेदरूप है तब उनको तो तुम (ने) व्यवहार क्यों कहा ? न हो उसको व्यवहार कहो, अपने में कोई चीज न हो तब पर की अपेक्षा अपने में (है) आत्मा यह पर है नहीं अपनी अपेक्षा से पर है नहीं। पर में अपना है नहीं, तो पर को व्यवहार कहो, स्व को निश्चय कहो, आहाहाहा ! - ऐसा प्रश्न कर सकते हो तुम - ऐसा कहते हैं। कारण कि हम (में) है उसको व्यवहार कहते हो, तब तुम प्रश्न कर सकते हो, है उसको तो निश्चय कहो। अपने में न हो उसको व्यवहार कहो - ऐसा प्रश्न कर सकते हो तुम। आहाहाहा ! (श्रोता :- प्रश्न समझ में आये तब उत्तर समझ में आये) हमारे सेठ आये है न फिर इन्हें कुछ समझ में नहीं आये न यह नये इसबार डेढ़ साल बाद आये। आहाहा ! प्रभु तुम कौन हो ? तुम अंदर एकरूप वस्तु हो। आहाहा ! गुणों (को) भी पी गया है द्रव्य में अभेद रहे है। आहाहा ! उसमें गुण है, यह

गुण है और गुणी है - ऐसा भेद करना वह है (तो भी) उसमें भेद करके तुम व्यवहार कहते हो तो अवस्तु हो जाती है - ऐसा प्रश्नकर्ता कहता है। यहाँ कोई कह सकता है पर्याय भी द्रव्य के भेद हैं यह द्रव्य अर्थात गुणादि सभी, अवस्तु नहीं तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ? अपने में है उसको व्यवहार कैसे कहा जाता है ? पर्याय, दर्शन ज्ञान चारित्र अथवा दर्शन ज्ञान चारित्र गुण भेद अंदर में है उसको तुम अवस्तु कहकर व्यवहार कहते हो ? तुम्हारे कहने से (वह) अवस्तु हो जाती है। उसमें है नहीं - ऐसा लगता है, बराबर है ? आहाहा ! आहाहा ! ऐसी बात कहीं (है नहीं) आहाहा ! गजब बात करते हैं और कितनी लौजिक से न्याय से लौजिक से। ओहोहोहो !

प्रभु प्रश्नकार से कहते हैं कि तुम प्रश्न कर सकते हो न प्रभु, क्योंकि गुण तो अपने में है ना। अपने में है पर्याय भी अपने में है न ! तो अपने में है उसको तो व्यवहार कैसे कहो ? उसको तो निश्चय कहो न तुम पर्याय है उसको व्यवहार कहते हो, व्यवहार तो अपने में जो चीज न हो उसको व्यवहार कहते हैं, व्यवहार तो अपने में जो चीज न हो उसको व्यवहार कहा जाता है और गुण और पर्याय तो अपने में है। उसको आप व्यवहार कैसे कह सकते हो ? उसका समाधान। यह प्रश्न भैयाजी ! सुनने में आता है समझ में (आता है) ? भाषा तो सरल है प्रभु ! आहाहा ! भगवान है न आत्मा अंदर। आहाहाहा ! तीनलोक का नाथ । उसे समझने की कथनी ! संतो, दिगम्बर संत कैसी करते हैं। आहाहाहा ! यह ठीक है। तुम्हारा प्रश्न ठीक है। ठीक तो कहा क्यों ? कि अंदर में गुण हैं पर्याय है, उसको हमने व्यवहार कहा, तब तुम्हारा प्रश्न ठीक है, कि अवस्तु को व्यवहार कहा जाता है, है उसको व्यवहार क्यों कहा ? यह तुम्हारा प्रश्न ठीक है, अब उसका समाधान करते हैं, आहाहा !

ठीक, यह ठीक है, '**किन्तु यहाँ द्रव्य दृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है**' तुम्हारी बात व्याजबी है। अपने में है उसको व्यवहार क्यों कहा, यह तुम्हारी बात ठीक है। उचित है - ऐसा तो स्वीकार किया। परंतु यहाँ भिन्न चीज, अन्य शैली से कहना है। यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को मुख्य करके उपदेश दिया है। अभेदवस्तु जो द्रव्यस्वभाव उसकी दृष्टि से, इसको दृष्टि के विषय की प्रधानता से, आहाहा ! अभेद को मुख्य करके उपदेश दिया है। '**अभेद दृष्टि में भेद को गौण कहने से ही**' क्या ? कहा ? अभेद में भेद है, गुण अंदर है। '**परंतु भेद को गौण करने से अभेद भली भांति मालूम हो सकता है।**'

तुम्हारा कहना ठीक है कि अंदर पर्याय अपनी है गुण अपना है तो (जो) अपना

(उसे) निश्चय कहो। इसको व्यवहार कहने से अवस्तु हो जाती है, यह ठीक है भैया तुम्हारा कथन। आहाहा ! परंतु हमारी कथनी में अभी द्रव्यदृष्टि को अभेद प्रधान करके कहना है, तब वहाँ भेद आता नहीं। आहाहाहा ! आहाहाहा ! ऐसी चारों तरफ की बात सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त (कहीं है नहीं) आहाहा ! कितनी बात लौजिक न्याय से सिद्ध करते हैं। प्रभु तुम्हारा प्रश्न बराबर है हो, परंतु हमें यहाँ अभेद दृष्टि की प्रधानता से कहना है, भेद को गौण करना है, है अवश्य, अभाव नहीं करना है। परंतु भेद को गौण करके अभेद त्रिकाली एक वस्तु की दृष्टि कराने को, ***दृष्टि का विषय तो बिलकुल अभेद है, अभेद ऊपर दृष्टि किये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं।*** आहाहाहा !

`अभेद दृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभांति मालूम हो सकता है।' अभेद दृष्टि में भेद है फिर भी भेद को गौण करके, अभाव करके नहीं, उसका लक्ष्य छुड़ाने को, उस तरफ का आश्रय छुड़ाने को उसको गौण करके व्यवहार है - ऐसा कहा जाता है, और निश्चय अभेद दृष्टि को मुख्य करके उसको निश्चय कहने में आया है। आहाहाहाहा ! अभी तो प्रथम धर्म की शुरूआत सम्यग्दर्शन उसका बीज कैसा है यह बात चलती है। आहाहा !

अब यह कुछ पता नहीं और प्रतिमा ले लो व्रत ले लो ब्रह्मचर्य ले लो। अमुक ले लो धूल में ही नहीं। आहाहा ! तुम्हारी बात ठीक है, क्योंकि अपने में है उसको व्यवहार कहना, यह तो अवस्तु हो जाती है अतः बात तुम्हारी ठीक है। यह तो स्वीकार किया। परंतु यहाँ द्रव्य दृष्टि से ***वस्तु की दृष्टि त्रिकाल अभेद ऐसी अभेद को मुख्य करके,*** मुख्य कह कर उपदेश दिया, और भेद को गौण करके, अभाव करके - ऐसा नहीं। अभेद दृष्टि में भेद को गौण करने से उसमें प्रधान कहा न? द्रव्यदृष्टि से अभेद को मुख्य कहा प्रधान नाम मुख्य, और अभेद दृष्टि में भेद को गौण कहने से अभेद भली भांति मालूम हो सकता है। भेद को लक्ष्य में नहीं लेने के कारण अभेद की दृष्टि कराने को, भेद जो है उसको गौण करके अभेद की दृष्टि कराने को भेद व्यवहार है - ऐसा कहने में आया है। आहाहाहा ! वहाँ खण्डवा वण्डवा में मिले - ऐसा है ? हमारे भैयाजी तो कहते हैं कि कहीं मिलता नहीं। (कहीं मिलती नहीं) यह वस्तु वीतराग की। आहाहाहा ! अलौकिक चीज है, भाग्यवान को तो सुनने मिले ऐसी बात है.

वस्तु भगवान आत्मा धर्मी के रूप में एक है। वह अनंत गुणों को पी गया अभेद हो गये है कोई भिन्न नहीं तब गुण को जो समझते है, अभेद को दृष्टि के विषय को नहीं समझते, उसको भेद से समझाया (है) किन्तु भेद से समझाया। परंतु

भेद से समझाया यह अभेद, भेद को समझाना है - ऐसा नहीं, दृष्टि वहाँ कराने को भेद से समझाया। आहाहा ! भेद को गौण करके, भेद को गौण करके, भेद को व्यवहार कहकर अवस्त कहा, वह इस अपेक्षा से कि त्रिकाली दृष्टि में अभेद में भेद नहीं, यह अभेद दृष्टि कराने को भेद की गौण करके व्यवहार कहा है, अब इसमें इतना ज्यादा याद कैसे रहें ? आहाहा ! (श्रोता :- याद कहाँ रखना है, समझना ही है) है ? आहाहा !

इसलिये भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है। अभाव करके नहीं, है तो उसमें, पर अभेद की दृष्टि कराने को अभेद में भेद ज्ञात होता नहीं और भेद का लक्ष्य करने जाये तो राग उत्पन्न होता है और अभेद (की) दृष्टि कराने को, अभेद (की) दृष्टि को मुख्य करके... गुण है उसमें, भेद है परंतु भेद को गौण करके, व्यवहार कहने में आया है, अभेद को मुख्य करके निश्चय कहने में आया है। आहाहाहा ! - ऐसा है परंतु क्या करें ? दया पालना कि व्रत करना उपवास, स्वयं की दया तो पालो पहले, भेद का भी लक्ष्य छोड़कर अभेद की दृष्टि करना यह स्व दया है। अर्थात ? जैसा अभेद है - ऐसा जानना उसका नाम स्व दया है। है अभेद (उसको) भेदवाला जानना रागवाला जानना (यह) तो हिंसा की, अपनी वस्तु का अनादर किया। आहाहाहा ! आहाहा !

अभेददृष्टि में भेद को गौण करके कहने से ही अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है। इसलिये, इसकारण भेद उसमें होने पर भी, उसकी वस्तु में है, फिर भी भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है। उसमें अभाव करके व्यवहार कहा नहीं, कि इसमें गुणभेद है ही नहीं, धर्म अंदर है ही नहीं। पर्याय है ही नहीं - ऐसा नहीं। परंतु अभेद त्रिकाली वस्तु जो अभेद एकरूप है उसकी दृष्टि में भेद, अभेद में मालूम होता नहीं, तब भेद को गौण करके व्यवहार अर्थात अवस्तु कहा और त्रिकाली अभेद को मुख्य कहकर वस्तु कहा। उसका नाम वस्तु कहा। आहाहाहा ! विषय आज सूक्ष्म है। आज अषाढ़ सुदी २ है आज तो, सौराष्ट्र का नयावर्ष प्रारंभ होता है। सौराष्ट्र में जामनगरवाले अषाढ़ सुदी २ को प्रारंभ मानते है न, अरे चिमनभाई ! उन्हें वास्तव में (पता) नहीं होता मुंबई रहते है न ? सौराष्ट्र में अषाढ़ सुदी २ को वर्ष प्रारंभ होता, जामनगर और उस तरफ, नवीन वर्ष वहाँ हैं। बोम्बे बहुत रहते हों उन्हें ख्याल नहीं हो। असाढ़ सुदी २ जामनगर और उस तरफ नया वर्ष प्रारंभ होता है, ३५वीं साल प्रारंभ होगी। ३४ वर्ष (पूरा हुआ), आहाहा !

क्या कहा ? प्रश्नकार से कहते हैं कि तुम प्रश्न कर सकते हो, क्यों कर सकते हो ? कि आत्मा में गुणों का भेद है, है फिर भी हमने उसे व्यवहार कहा,

तब तुम प्रश्न कर सकते हो। गुण है वह तो निश्चय है। स्व है उसमें तो निश्चय है और व्यवहार को तुमने अवस्तु कहा, अवस्तु को तुम व्यवहार कहते हो, तब यह आत्मा में गुण पर्याय नहीं है ? गुण पर्याय नहीं है, तव व्यवहार है ? - ऐसा प्रश्न तुम कर सकते हो, परंतु उसका उत्तर हमारा यह है, कि वस्तु जो अभेद (की) दृष्टि कराने को ***एकरूप त्रिकाली चीज इसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। तब त्रिकाली की अभेद की दृष्टि कराने को अभेद को मुख्य करके उसको निश्चय कहने में आया है।*** समझ में आया ? उपदेश दिया गया है, तथा गुणभेद (रूप) व्यवहार उसमें तो है तब इस अपेक्षा से निश्चय है, परंतु अभेद की दृष्टि कराने को भेद को गौण करके व्यवहार कहने में आया है। आहाहा ! - ऐसा है।

वीतरागमार्ग परमेश्वर त्रिलोकनाथ उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों है। आत्मा में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों है। अपने में है तब यह निश्चय कहने में आया, अपने में परवस्तु नहीं उसे व्यवहार कहने में आया और तुम तो पर्याय को एवं गुण भेद को व्यवहार कहते हो जानों कि यह वस्तु ही नहीं। भैया ! हमने किस कारण से कहा है प्रभु तुम सुनो ! तुम्हारी पूर्ण प्रभुता जो द्रव्य अभेद है उसकी दृष्टि कराने को भेद उसमें है, उसकी दृष्टि कराने को भेद उसमें है (तो भी) गौण करके अवस्तु कहकर व्यवहार कहा, निश्चय वस्तु को वस्तु कहा। आहाहा ! (त्रिकाली) अभेद को निश्चय कहा। यहाँ तो यह कहा। त्रिकाली में तो तीनकाल आते है और पुनश्च यहाँ तो अभेद वस्तु तो वर्तमान में... आहाहा ! एकरूप वस्तु है प्रभु उसकी दृष्टि की प्रधानता से यह उपदेश देने में आया है, क्योंकि द्रव्यदृष्टि करने से समकित होता है, और भेद की दृष्टि करने से विकल्प उत्पन्न होता है। उसमें भेद है परंतु छद्मस्थ प्राणी है, रागी है... आगे कहेंगे - रागी प्राणी है अतः भेद का लक्ष्य करेंगे तो राग होगा, भेद का ज्ञान करने से राग होगा - ऐसा नहीं, परंतु तुम रागी प्राणी हो, अल्पज्ञ हो, छद्मस्थ हो, यह तुम में भेद है गुणपर्याय का भी, गुणपर्याय का लक्ष्य करेगा तो रागी प्राणी है अतः राग उत्पन्न होगा।

लो विशेष आयेगा। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. २८ गाथा-७ ता. ८-७-७८ शनिवार अषाढ सुद-३ सं.२५०४

समयसार सातवीं गाथा, भावार्थ। उसका दूसरा पैराग्राफ फिरसे भावार्थ का दूसरा पैराग्राफ।

पहले - ऐसा कहा कि, आत्मा जो वस्तु है, यह तो अनंत गुण पी गया ऐसी एकरूप एकवस्तु है, अभेद चीज है। उसमें पुण्य और पाप का भाव वह तो दूर रहा, क्योंकि वह तो अशुद्ध है, वह तो दृष्टि के विषय में नहीं और दृष्टि का विषय उस वस्तु में नहीं। क्या कहा ? कि आत्मा जो है वस्तु वह तो अनंत धर्म अर्थात गुणों का एकरूप द्रव्य है, तब उसमें विकार तो है नहीं, शुभ-अशुभ भाव कर्म के निमित्त के संग से, आश्रय से उत्पन्न होता है, यह तो वस्तु में है नहीं, तब दृष्टि के विषय में भी यह आते नहीं, अब एक चीज, एक समय में अनंत गुणरूप अभेद वस्तु, परंतु इस अभेद धर्मी को नहीं जाननेवाले, धर्म अर्थात गुण को जानते है। उसको धर्म द्वारा अभेद को बताया कि यह ज्ञान वह आत्मा, दर्शन वह आत्मा, ऐसे भेद करके बताया, यह अभेद में भेद करना सो व्यवहार है। समझ में आया? और यह भेद वह दृष्टि का विषय नहीं। दृष्टि, सम्यग्दर्शन का विषय तो अभेद अनंत गुणों का एकरूप द्रव्य यह द्रव्य उसका विषय है। तो, यहाँ प्रश्न किया।

यहाँ कोई कह सकता है, कल आया था। यह बात की उसमें कोई प्राणी प्रश्न कर सकते है क्योंकि जो भेद है उस आत्म वस्तु में गुण भेद है, यह आत्मा में तो है उसे व्यवहार क्यों कहा ? उसमें न हो ऐसी वस्तु को व्यवहार कहो तब बराबर है परंतु उस आत्मा में यह ज्ञान है दर्शन है आनंद है उसमें पर्याय भी निर्मल है और तुम भेद को व्यवहार कहते हो, तब व्यवहार तो उसको कहा जाता है कि (जो) उसमें न हो और परवस्तु को व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया ? सूक्ष्म विषय है अपूर्व। यहाँ कोई यह कह सकता है, यहाँ - ऐसा प्रश्न कर सकते है कि पर्याय भी द्रव्य का भी भेद है, यह गुण और गुणी की निर्मल पर्याय, वह तो वस्तु का ही भेद है, वस्तु की यह चीज है, वस्तु में है, है न ? भेद, द्रव्य के ही भेद है, वस्तु का भेद है अवस्तु नहीं, यह कहीं पर चीज (नहीं) जिसे स्व की अपेक्षा से अवस्तु कहने में आये ?

स्ववस्तु अस्ति इस अपेक्षा यह शरीर वाणी मन कर्म स्त्री-कुटुंब, देव-गुरु-शास्त्र यह तो अन्य है, तब अन्य तो आत्मा में है नहीं, इस कारण व्यवहार कहो तब

यह बात बराबर है। परंतु आत्मा में जो गुणपर्याय है उसी में है तब निश्चय से है। उसको तुम व्यवहार कहते हो तब उसका क्या कारण है ? प्रश्नकार का - ऐसा प्रश्न हो सकता है - ऐसा भी कहा, समझ में आया ? ऐसी बात है, है ?

यहाँ कोई यह कह सकता है कि पर्याय भी द्रव्य का भेद है अवस्तु नहीं, यह कहीं परवस्तु नहीं, तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ? अपनी पर्याय अपने में है, अपना गुण अपने में है, अतः (जो) स्व में हो तो निश्चय है, तब जो स्व में है उसे भेद बताकर व्यवहार कहते हो वह कैसे है ? समझ में आता है।

स्व वस्तु अस्ति इस अपेक्षा से शरीर, वाणी, मन, कर्म, स्त्री, कुटुंब, देव, गुरु, शास्त्र यह तो अन्य है। तब अन्य को तो जो आत्मा में नहीं, इस कारण व्यवहार कहो तब यह बात बराबर है, परंतु आत्मा में जो गुण और पर्याय है उसी में है अतः निश्चय से है। उसको तुम व्यवहार कहते हो तब उसका क्या कारण है ? हमारा प्रश्न तो, प्रश्नकार का - ऐसा प्रश्न हो सकता है - ऐसा भी कहा। समझ में आया। ऐसी बात है, है

यहाँ कोई यह कह सकता है कि पर्याय भी द्रव्य का भेद है अवस्तु नहीं, यह कहीं परवस्तु नहीं, तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जाता है ? अपनी पर्याय अपने में है अपना गुण अपने में है, तब स्व में है तो निश्चय है, तब जो स्व में हो उसको भेद कह कर व्यवहार कहते हो वह कैसे ? समझ में आता है ? आहाहा ! धर्म (की) बात अपूर्व चीज है। पहले कभी किया नहीं, पहले कभी यथार्थ रुचि से सुना नहीं। आहाहा ! तब शिष्य का यह प्रश्न कि तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ? जब उसमें है, उसमें न हो, उसको तो व्यवहार कहो, उसमें है वह तो निश्चय हुआ, 'स्व निश्चय पर व्यवहार' प्रश्नकार कहता है, उसका समाधान। यह प्रश्न का रूप, प्रश्नकार का यह रूप, कि जो चीज है भगवान आत्मा उसमें अनंतगुण है और पर्याय भी है, अथवा यह गुणरूपी भेद यह पर्याय है, वस्तु है उसमें यह गुण भेद है - ऐसा तो उसमें है है उसको आप व्यवहार कैसे कहो ? उसमें न हो उसको व्यवहार कहो तो व्याजबी है, समझ में आया ? आहाहाहा !

समाधान :- यह ठीक है तुम्हारी बात इस अपेक्षा से तो ठीक है, कि पर को व्यवहार कहना, अवस्तु को व्यवहार कहो, अपने में है उसको व्यवहार क्यों कहते हो ? वह तो अपने में है, कि तुम्हारा प्रश्न ठीक है, परंतु उसमें समझने की चीज है। आहाहा !

'**किन्तु यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश है,**' यहाँ तो द्रव्यदृष्टि,

द्रव्य, वस्तु उसकी दृष्टि कराने को और दृष्टि का विषय जो अभेद है, उसकी मुख्यता से कथन करने में आया है। ***त्रिकाली चीज जो ज्ञायकभाव... उसमें गुणभेद है वह भी दृष्टि का विषय नहीं और गुण भेद है यह गुणी में भिन्न गुण और भिन्न गुणी - ऐसा नहीं। गुणी में गुण अभेद है, द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है, आहाहा ! अभेद दृष्टि में भेद तो गौण (है), है तो अवश्य, परंतु वह भेद गौण करके अभाव करके नहीं।*** आहाहा ! आत्मा में ज्ञान-दर्शन आनंद है, तब इस अपेक्षा से तो वह निश्चय है, परंतु यहाँ दृष्टिप्रधान कथन करने से, अभेद की दृष्टि कराने को तथा दृष्टि का विषय अभेद है उसकी प्रधानता से कथन करने को भेद को गौण कहने से, है न ? द्रव्यदृष्टि से अभेद को मुख्य करके उपदेश दिया। अभेद दृष्टि में भेद को गौण कहने से, आहाहा ! आत्मा वस्तु है, उसमें अनंत गुण होने पर भी, अभेद में भेद को गौण कहने पर उसके साथ में मुख्यरूप लेने से अभेद सिद्ध नहीं होता। समझ में आया ? आहाहाहा ! **`अभेद में भेद को गौण करने से ही अभेद भली भांति मालूम हो सकता है,'** गुण अंदर में है परंतु अभेद की दृष्टि कराने को (जो) भेद है, उसको गौण करके उसमें नहीं है, अभेद (की) दृष्टि कराने को उसमें भेद है नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। यहाँ अभेद बिना निर्विकल्पता होगी नहीं। भेद में लक्ष्य जायेगा तो विकल्प राग उत्पन्न होगा सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होगा, आहाहा ! समझ में आया ? मार्ग बहुत सूक्ष्म भाई, मार्ग सूक्ष्म और अपूर्व। आहाहा !

अभेद में भेद को गौण कहने से अभेद भलीभांति मालूम हो सकता है। अभेद में भेद भी कहने में आये तो अभेद दृष्टि में आता नहीं, भेद दृष्टि में आता है, जब भेद दृष्टि में आये तब अभेद दृष्टि में आये नहीं और भेद की दृष्टि करने से राग की उत्पत्ति होती है यह आगे कहेगें। (अतः अभेद) भली भाँति मालूम नहीं हो सकता है।

`इसलिये भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है,' है तो उसमें उसकी गुण और पर्याय, जैसे पर चीज उसमें त्रिकाल नहीं, कर्म देव, शास्त्र, गुरु, स्त्री, कुटुंब, परिवार, लक्ष्मी, मकान वह चीज तो स्वभाव में त्रिकाल है ही नहीं, तथा यह गुण और पर्याय तो उसमें है, परंतु अभेद (की) दृष्टि कराने को भेद को गौण करके व्यवहार कहने में आया है। (श्रोता :- गुण तो द्रव्य में है परंतु कहाँ (द्रव्यमें) है ?) उत्तर :- यह गुण और पर्याय दोनों संयुक्त। पर्याय कहो कि गुण कहो, पर्याय अर्थात गुणों का भेद, पर्याय अर्थात गुणों में भेद। (श्रोता :- वह तो प्रमाण (के विषय) में होती है) यहाँ यह काम (बात) नहीं - ऐसा। ***यहाँ तो पर्याय कहो कि गुण कहो,***

द्रव्य में भेद होता है, वह पर्याय है वही गुण है भेद यही गुण है। यह गुण कहो कि पर्याय कहो कि भेद कहो जैसे कि वह समुद्र में पी गया है न, अनंती पर्याय और गुण, द्रव्य अंदर में पी गया है अभेद है, समझ में आया ? (श्रोता :- सम्यग्दर्शन के विषय में तो पर्याय नहीं है) पर्याय विषय है परंतु गौण करके कहा, भेद है तो, (उसे) गौण करके कहा, तब पर्याय भी तो है गौण करके, आत्मा में है ही नहीं ? है यह सूक्ष्मबात है भाई। आहाहा ! सातमी गाथा (चलती) हमारा सेठ ठीक समय पर आये है सभी ठीक-गाथा में बराबर आया है सातवीं गाथा सर्वोत्कृष्ट है, आहाहा !

गुण को पर्याय भी कहते हैं। सहचर पर्याय सर्वविशुद्ध (अधिकार में) आता है न ? भाई पर्याय सहवर्ती और क्रमवर्ती दोनों आती है सर्व विशुद्ध अधिकार में। यह तो शांति और धीरज से समझने की चीज है। यह कोई कहानी, कथा है नहीं। यह तो तीनलोक का नाथ चैतन्यवृक्ष आया था न फल, अमृतफल लगें, अमृतफल - ऐसा चैतन्य वृक्ष है, तब इस चैतन्यवृक्ष को दृष्टि में लेने को, अभेद को बताना है, अभेद में भेद करने से अभेद अच्छी तरह मालूम होता नहीं। उसमें है अवश्य परंतु अभेद बताने में भेद देखें तो अभेद बराबर दिखाई नहीं देता। आहाहा !

'यहाँ यह अभिप्राय है, कि भेद दृष्टि में भी निर्विकल्पदशा नहीं होती' यह कल आया नहीं था। कल यहाँ तक तो आया था, क्या कहते हैं ? भेददृष्टि में अभिप्राय आशय यह है कि वस्तु जो है अभेद अनंतगुण पी गया है, ऐसी जो वस्तु उसे भेद करके दिखाना, तब भेद में निर्विकल्पदशा नहीं होती, **गुणभेद ऊपर दृष्टि जाती है। तो विकल्प** (एवं) **राग ही उत्पन्न होता है, और अभेद ऊपर दृष्टि होने से निर्विकल्प अर्थात अरागी दृष्टि होती है। समकिती अरागी है।** आहाहा ! बहुत सूक्ष्म भाई ! मार्ग अपूर्व है, अनंतकाल अनंतकाल अनंतकाल में कभी (धर्म) एक सेकेण्ड मात्र किया नहीं और उल्टे रास्ते चढ़ गये। यहाँ कहते हैं कि प्रभु एकबार सुनो तो। आहाहा !

भगवान कहकर बुलाते है, आत्मा को तो प्रभु... आचार्य, ७२ गाथा में भगवान कहकर बुलाते है, भगवान एकबार सुन तो सही। आहाहा ! आहा ! तुम्हारी वस्तु तो शक्ति गुण पर्याय में अभेद (है) अर्थात (द्रव्य) पी गया है। द्रव्य में एकरूप यह चीज है। इस एक में अनेकपना नहीं दिखता है। अनेकपना देखने जायें तो एकपना दिखता नहीं, एकपना कहो कि अभेद कहो। आहाहा ! समझ में आये - ऐसा है, हाँ। नहीं समझ में आये - ऐसा नहीं। भाषा तो सरल है।

यहाँ यह आशय है अभिप्राय है, भेद दृष्टि में यह गुणी है उसमें ज्ञानादिक गुण है ऐसी दृष्टि से विकल्प उत्पन्न होता है। निर्विकल्प अरागी दृष्टि उसमें उत्पन्न

नहीं होती। आहाहा ! निर्विकल्प सम्यग्दर्शन जो निर्विकल्प अरागीदृष्टि है जो भेद के लक्ष्य से उत्पन्न होती नहीं। बराबर है भैया ? आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग है। अगम्य गम्य, परंतु बाहर की प्रवृत्ति यह करो यह करो और यह करो (उसमें) फंस गया। यहाँ तो वस्तु जो एकरूप है (उसमें) यह भेददृष्टि करने से राग उत्पन्न होता है, अभेद में जो निर्विकल्प अरागीदृष्टि होती है वह भेद (की) दृष्टि में नहीं होती। समझ में आया ? ***अभेद दृष्टि में गुण और गुणी का भेद न करके द्रव्य अखण्ड अभेद है, अचिंत्य अनंत अनंत गुण का एकरूपी धर्मी, ऐसी अभेददृष्टि करने से निर्विकल्प अर्थात राग रहित सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है*** और भेददृष्टि में निर्विकल्प अरागीदृष्टि उत्पन्न नहीं होती। भेद दृष्टि में तो विकल्प अर्थात राग उत्पन्न होता है आहाहा ! भाषा तो सरल है न ?

यह सेठ लोगों के कारण हिन्दी भाषा होती है, हिन्दी भी सरल है, कोई ऐसी कठिन तुम्हारी जैसी नहीं। आहाहाहा ! वस्तु विश्वदर्शन ऐसी जो चीज है, यह तो विश्व को जाननेवाली चीज है, विश्व को अपने में रखनेवाली वस्तु नहीं। आहाहा ! और भेद को रखनेवाली वस्तु है, परंतु भेदसे अभेद की दृष्टि छोड़कर भेद की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन अरागी निर्विकल्प अनंतकाल में कभी हुआ नहीं, यह भेद दृष्टि में होता नहीं। चीमनभाई इसमें तुम्हारे वहाँ लोढे-बोढे में कुछ है नहीं, कहीं है नहीं, भाई बड़े भाई कहते हैं लोहा है वहाँ। आहाहा ! परमात्मा त्रिलोक नाथ जिनेश्वरदेव की वाणी यह है। संत (गुरु) जिनेश्वर ने जो कहा वह आड़तिया होकर जगत को बताते हैं। माल तो यह है। आहाहा ! प्रभु एकबार सुन तो सही, तुम्हारी वस्तु में सुनना वह भी एक विकल्प है आहाहा ! वह भी दृष्टि के विषय में आता नहीं और विकल्प आया सुनने का वह भी दृष्टि के विषय में आता नहीं। दृष्टि के विषय में सुनना तो आता नहीं, तीर्थंकर तीनलोक के नाथ की दिव्यध्वनि सुनना वह दृष्टि के विषय में आता नहीं और सुनने में जो विकल्प आता है, वह भी दृष्टि के विषय में आता नहीं। परंतु गुण-गुणी का भेद है वह भी दृष्टि के विषय में आता नहीं। आहाहा !

`भेददृष्टि में भी.....' क्या कहते हैं ? निर्विकल्प दशा नहीं होती `भी' क्यों लिखा ? जैसे अपने अतिरिक्त (अलावा) अन्य चीज का लक्ष्य करने से निर्विकल्प नहीं होता। जैसे भगवान आत्मा उससे अन्य द्रव्य जो है तीर्थंकर और तीर्थंकर की वाणी उसके लक्ष्य से निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती, वह तो परवस्तु है। जैसे परवस्तु के लक्ष्य से निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती। अर्थात सम्यग्दर्शन अभेद की दृष्टि नहीं होती। आहाहा ! भेददृष्टि में भी - ऐसा कहा न `भी' कहा ना ? `भी' क्यों कहा, कि अन्य आत्मा

के अलावा देव-गुरु-शास्त्र की दृष्टि से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। निर्विकल्पता नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य से भी निर्विकल्पता नहीं होती। यह तो ठीक, परंतु भेददृष्टि से भी निर्विकल्पता नहीं होती। आहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्होंने एक समय में तीनकाल, तीनलोक, एक समय की पर्याय में देख लिया है। परलोक को, पर देखना यह तो असद्भूत व्यवहार है, परंतु पर्याय में इतनी ताकत है पर्याय को देखे तो सब देख लिया। आहाहा !

यह भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर की दिव्यध्वनि में आया और उसकी रचना आगम में हुई। उस आगम की रचना के अंदर का यह समयसार आगम की रचना है। आहा ! तो यह वीतराग की ही वाणी है। तब वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जगत को बतलाते हैं जैसे तुम्हारी चीज के अलावा अनंती दूसरी चीज है, उनके लक्ष्य से विकल्प उत्पन्न होता है, निर्विकल्प नहीं होता। आहाहाहाहा ! इसीप्रकार भेद (की) दृष्टि से भी, आहाहा ! अंतर में गुणी में गुण है ऐसी भेददृष्टि करने से भी निर्विकल्प नहीं होता और निर्विकल्प हुये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा ! भाई !

भाई ने प्रश्न किया, तब रामजीभाई ने (कहा) कि उसमें निर्विकल्पता आती है कहीं यह जगमोहनलालजी की टीका में। आहाहा ! यहाँ तो निर्विकल्पता ऊपर वजन है। (श्रोता :- उसको तो विचार ही करना आता) - ऐसा कहा था यह पढ़ते हैं न पढ़ेंगे, परंतु यह ध्यान में नहीं, निर्विकल्पता का !

यहाँ क्या ? क्या कहना है ? प्रभु तुम्हारी जब निर्विकल्प दृष्टि हो, तब सम्यग्दर्शन होता है, तब निर्विकल्प दृष्टि (अर्थात) सम्यग्दर्शन तो अभेद की दृष्टि करने से होता है, भेद की दृष्टि करने पर भी, जैसे अन्य की दृष्टि करने से भी राग उत्पन्न होता है, ऐसे भेददृष्टि करने से भी राग उत्पन्न होता है, आहाहा ! ऐसी बात। (श्रोता :- बहुत सुन्दर, ऐसी बात वीतराग की ही होती) आहाहा ! गजब बात है और यथार्थ लौजिक, न्याय से युक्ति से... समझने में कठिन लगे परंतु समझना तो यह है, शेष तो सब किया बेकार बकवास, साधु होकर पंचमहाव्रत और नग्नपना और यह अनन्त बार लिया, बकवास है उसमें। आहाहा !

यहाँ तो यह पंचमहाव्रतादिक का परिणाम तो अशुद्ध है, वह तो दृष्टि का विषय नहीं, परन्तु गुण-गुणी का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं, क्योंकि भेद के लक्ष्य से भी, निर्विकल्पता नहीं होती, भैया ! समझ में आता है ? छोटे है, छोटे है ? बड़े है तुम्हारे से अच्छा। समझ में आया ? भगवान है न आत्मा यहाँ तो..... आहाहा ! अंदर भगवान स्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनंद का कंद एकरूप वस्तु है। आहाहा ! इसमें कितनी शैली से कहते हैं। आहाहा ! पण्डित(जी) अर्थ करते है, उस समय के पण्डित

भी कैसे ? हाँ ? आहाहाहा ! जयचन्द्रजी पण्डित... दो सौ साल पहले के तो पण्डित लोग भी... अभी तो बदलाव बहुत हो गया है।

और यहाँ अभेद से समकित होता है, व्यवहार राग से तो नहीं परंतु भेद से भी नहीं। तो यह.....भी निश्चयाभास है - ऐसा कहते हैं, अरे ! प्रभु सुन तो सही। आहाहा ! ***जिसके ऊपर दृष्टि देना है वह एकरूप न हो तो दृष्टि निर्विकल्प होती नहीं, जिसके ऊपर दृष्टि देना है यह एकरूप न हो तो दृष्टि वहाँ टिक सकती नहीं, अनेक हो तो दृष्टि अनेक में रह सकती नहीं।*** आहाहा ! ***स्थिर बिम्बप्रभु अंदर चैतन्य बिम्बप्रभु ध्रुव अभेद तो दृष्टि अपेक्षा अभेद है एकरूप है तो दृष्टि स्थिर हो जायेगी, तब दृष्टि वहाँ एकाकार हो जायेगी,*** भेद पर दृष्टि करने से भेद और अभेद हो गया तो दृष्टि अनेक में रहती है ऐसे यहाँ एक में आये बिना वीतरागता होती नहीं, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होता नहीं, बराबर है ? आहाहा !

भगवान तीनलोक के नाथ परमात्मा का विरह हुआ, भरत (क्षेत्र) में, परंतु भगवान की वाणी रह गई (शेष रही) आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य संतोने वहाँ जाकर आठ दिन रहकर संग्रह किया, वह यहाँ बताया (है) आहाहा ! कहते हैं भेददृष्टि में भी... क्या किया ? आहाहा ! अपनी चीज जो अंदर है एकरूप वस्तु इसके अलावा अनेक दूसरी वस्तु अनेक अनंत है, अनंतसिद्ध है, केवली संख्यात है, तीर्थंकर बीस है, आचार्य उपाध्याय भी संख्यात है, गणधर (भी) है साधु है परंतु तुम्हारी वस्तु से वह वस्तु भिन्न है तब भिन्न वस्तु है तो तुम्हारी अपेक्षा उसको व्यवहार कह दिया परंतु व्यवहार कहा तो उसके आश्रय से निर्विकल्पता उत्पन्न नहीं होती। आहाहा ! पंचपरमेष्ठी के आश्रय से भी निर्विकल्पता नहीं क्योंकि, यह तो पर द्रव्य है, तो परद्रव्य के आश्रय से जैसे निर्विकल्पता नहीं होती इसीप्रकार भेद की दृष्टि से भी निर्विकल्पता नहीं होती। समझ में आये ऐसी चीज है, भाषा सरल है भगवान। आहाहा !

चीज बहुत अलौकिक है, ठीक आये हो, टाइमसर आये है भैया ! आहाहा ! यह विषय चलता हो तब स्पष्टीकरण हो सके न ! आहाहा ! पण्डितजी के शब्द भी कैसे हैं, अभेद, भेद को गौण करने से अभेद भली भाँति मालूम हो सकता है, इसलिये भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है। है तो उसकी वस्तु परंतु उसको गौण करके व्यवहार कहा (है) पर (वस्तु) तो अपने में नहीं इसलिये व्यवहार कहा परंतु यह भेद तो (वस्तु में) है अपितु (उसे) गौण करके व्यवहार कहा (है)। आहाहाहा ! समझ में आया ? क्योंकि ***मुख्य त्रिकाली अभेद (की) दृष्टि कराने को, अभेद की प्रधानता बताने को भेद को गौण करके व्यवहार कहा,*** आहाहाहाहा ! यह बात सुनना (श्रोता :- भाग्य की बात है।) भाग्य की बात है बापू !

अरे परमात्मा का विरह हुआ, और केवलज्ञान रहा नहीं। आहाहा ! और वह ऐसी वस्तु संतो के हृदय में रह गई। दिगम्बर मुनिओं (धन्य)। आहाहा ! मध्यस्थ से थोड़ा विचार करें, आग्रह छोड़कर तब उसकी समझ में आये कि मार्ग यह है - ऐसा दूसरा कहीं है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? उसमें तो श्वेताम्बरों में अरहंतो महादेवो बस अरहंतों महादेवो, गुरु ऐसे और शास्त्र ऐसे यह धर्म यह समकित, मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आता है, आता है न ? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) के पांचमें अध्याय में। यहाँ तो कहते हैं प्रभु एक बार सुन तो प्रभु ! अरहंत का लक्ष्य करने से तो तुम्हें विकल्प (होगा) क्योंकि यह परवस्तु है। आहाहाहा !

पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा करने जायेगा, प्रभु यह तो पर-द्रव्य है न नाथ तो परद्रव्य तो तुम्हारी अपेक्षा अवस्तु (है) अवस्तु में दृष्टि करने से राग ही होगा। आहाहा ! तब वह तो ठीक परंतु अभेद में भेद करने से भी राग उत्पन्न होगा, निर्विकल्पता नहीं होगी, आहाहा ! और निर्विकल्प सम्यग्दर्शन बिना, धर्म की शुरूआत होती नहीं। आहाहा ! जगत का भाग्य कि यह समयसार जैसी चीज रह गई (बच गई) आहाहा ! (श्रोता :- परम कल्याण की बातें है)

`भेददृष्टि में निर्विकल्पदशा नहीं होती और सरागी को विकल्प होते (रहते) है' अब भाषा समझे... भेद को जानने से जो राग उत्पन्न हो तब केवली को... केवली भी भेद को जानते है, केवली तो लोकालोक को जानते हैं और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जानते है, तो उनको भी राग होना चाहिए। समझ में आया ? (तब) कहते हैं कि सरागी को विकल्प उत्पन्न होता है, और तुम तो रागी हो, अभी तुम तो रागी हो, तुम रागी हो इसकारण से भेद का लक्ष्य करने जायेगा, तो रागी (होने) के कारण राग उत्पन्न होगा। भेद का जानना वह राग का कारण नहीं। परंतु तुम रागी प्राणी हो भेद ऊपर तुम्हारी दृष्टि जायेगी तो तुम्हें राग है इसलिये राग उत्पन्न होगा। आहाहा !

भगवान तो भेद, द्रव्य, गुण, पर्याय, त्रिकाल जानते हैं। उनको क्यों राग नहीं होता ? भेद को जानना यह राग का कारण हो तो केवली तो सब को जानते है। परंतु तुम रागी प्राणी हो, अल्पज्ञ हो और तुम एक अभेद विषय को छोड़कर भेद का लक्ष्य करोगे तो तुम्हें राग के कारण राग उत्पन्न होगा। आहाहा ! समझ में आया ? भैया, आहाहा ! देखो यह दिगम्बर संतो का भाव। आहाहाहा ! और निर्विकल्पता, पर्याय तो रहेगी - ऐसा तो यहाँ सिद्ध करते हैं, अकेला द्रव्य ही है - ऐसा नहीं, द्रव्य का लक्ष्य करने से, द्रव्य की दृष्टि करने से पर्याय में अरागी निर्विकल्पता होगी, जो पर्याय में पर का लक्ष्य करने से राग होता है इसीप्रकार

पर्याय में भेद का लक्ष्य से भी राग (होता) रागी है इसकारण। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

भेददृष्टि में भी निर्विकल्पदशा नहीं होती और सरागी को विकल्प होते रहते हैं। रागी प्राणी है अल्पज्ञ है, तब भेद करने जायेगा तो अभेद की दृष्टि छूट जायेगी और भेद के लक्ष्य से तुमको राग ही उत्पन्न होगा, क्योंकि रागी हो इसलिये। भेद का ज्ञान करना वह राग का कारण हो तो तब केवली सब तीनलोक, तीनकाल (का) सब जानते है, किन्तु (उन्हें) राग नहीं, तुम में राग है और तुम रागी प्राणी हो तब एक का लक्ष्य छोड़कर दूसरे ऊपर लक्ष्य जायेगा, तो रागी (होने) के कारण तुम्हें भेददृष्टि से राग उत्पन्न होगा। समझ में आया ? आहाहाहा ! ऐसी बात है, कैसी जाति का यह उपदेश होगा ! बापू मार्ग यह है भाई ! आहाहा ! दुनियाँ कहे, दुनियाँ - ऐसा कहे कि एकांतवाद है, कानजीस्वामी का एकांतवाद है। - ऐसा कह करके, ग्रंथ (मंदिर से बाहर) निकाल दो। प्रभु तुम्हें क्या पड़ी है। आहाहाहा ! यहाँ क्या कहते हैं ? इसी शैली का तो यह ग्रंथ है, यहाँ (सोनगढ) का बना हुआ नहीं। भाई तुम्हें खबर नहीं प्रभु। आहाहा !

अपनी दया कब करोगे ? कि पर के लक्ष्य से जैसे राग और हिंसा होती है तुम्हारी, ऐसे ही भेद के लक्ष्य से राग और हिंसा होती है तुम्हारी। आहाहाहाहा ! समझ में आया ? जैसे पर की दया का भाव राग है हिंसा है, राग यह अपनी हिंसा है, इसीप्रकार भेद की दृष्टि करने जाओगे (तो) तुम रागी हो तब राग होगा। स्वरूप की हिंसा होगी। आहाहा ! ***स्वरूप निर्विकल्प और अभेद है यह तुम्हारी दृष्टि में नहीं रहेगा, और भेद ऊपर जायेगा तो राग होगा, राग होने से अभेद वस्तु की दृष्टि का अभाव होगा यह तुम्हारी वस्तु की हिंसा है।*** आहाहा ! ऐसी वस्तु है, कुछ भी करें यह समझना ही पड़ेगा, अन्यथा मर भी जाय तब भी भवभ्रमण नहीं मिटेगा। आहाहा ! आहाहा ! पण्डितजी ने भी कैसा अर्थ भरा है देखो न...? पुराने पण्डित, अभी तो कोई - ऐसा (है) नहीं। आहाहा !

भेद दृष्टि से भी वीतरागता नहीं होती, वीतरागता अर्थात निर्विकल्पता, वीतराग है वह ही सम्यग्दर्शन एवं, धर्म है, ***सम्यग्दर्शन यह वीतरागी दर्शन है, यह सरागसमकित और वीतरागसमकित यह तो चारित्र के राग की अपेक्षा से कहा। समकित सरागी होता नहीं, समकित तो वीतरागदशा यह ही समकित कहलाता है, आहाहा !*** भेददृष्टि में भी निर्विकल्प दशा नहीं होती। आहाहा ! यह क्यों कहा ? (क्यों)कि प्रश्नकार ने - ऐसा कहा था कि अंदर में गुण और पर्याय हैं, यह अवस्तु नहीं। अवस्तु नहीं तो, तब वस्तु है और वस्तु में तुम राग कहते तो (यह) न्याय नहीं, अवस्तु को तुम

राग की उत्पत्ति करनेवाला, कहो, जो चीज तुम्हारी सत्ता में नहीं उसका लक्ष्य करने से राग उत्पन्न होना कहो तब यब तो तुम्हारी बात बराबर है। परंतु अंदर में है उसका लक्ष्य करने से राग कहो तो वह अवस्तु हो जाती है (जो) उसमें है उसे अवस्तु कहने से, नहीं है - ऐसा हो जायेगा। आहाहा !

सुनो प्रभु ! उसमें है तो सही परंतु भेद की दृष्टि करने से विकल्प उत्पन्न होता है इस अपेक्षा से भेद और पर्याय को, अभेद की अपेक्षा से अवस्तु कहकर, व्यवहार कहकर, अवस्तु कहा। आहाहाहाहा ! समझ में आता है ? - ऐसा उपदेश भी कोई बार सुनने मिला भाई, आहाहा ! (श्रोता :- यहाँ तो रोज (सुनने मिलता) है हाँ ! आहाहा ! क्या शैली ! प्रभु कहते हैं। आहाहा सरागी को विकल्प होते रहते हैं। किस कारण ? भेद के लक्ष्य से राग होता है - ऐसा नहीं, परंतु रागी है तो एक (अभेद) ऊपर लक्ष्य न करके दूसरे (भेद) ऊपर लक्ष्य करेगा तब राग होगा। भेद ऊपर लक्ष्य करेगा तो राग ही होगा और तुम्हें अभेद की दृष्टि करने से निर्विकल्प अरागी सम्यग्दर्शन और आनंद, आनंद की दशा प्रगट होगी। आहाहाहा !

भेद का लक्ष्य करने से प्रभु तुम्हें राग होगा और तुम्हें दुःख होगा। क्योंकि तुम रागी हो, तब भेद ऊपर लक्ष्य करोगे तो दुःखी तो हो, फिर दुःख उत्पन्न होगा। आहाहा ! देवीलालजी ! - ऐसा कहाँ है ? है तुम्हारे स्थानकवासी में ? (पूरे हिन्दुस्तान में नहीं) इनके भाई है न अभी स्थानकवासी (श्रोता :- यह बात तो नहीं परंतु इस बात की गंध भी नहीं) यह चीज तो क्या है बापू ! आहाहा ! जिसके मत में सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ, प्रत्येक आत्मा सर्वज्ञ हो सकता है और सर्वज्ञवत् है - ऐसा भी... जिसके मत में नहीं, उसके मत में यह बात ऐसी आती नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? इसलिये सरागी को विकल्प होते रहते हैं, अतः क्या कहते हैं ? तुम रागी प्राणी हो तब एक अभेद ऊपर लक्ष्य करने से तो वीतरागता होगी, अभेद ऊपर यदि भेद ऊपर लक्ष्य करेगा तो (तुम) रागी प्राणी हो अतः राग ही उत्पन्न होगा। आहाहा ! गजब बात है ! व्रत एवं तप तथा भक्ति यह तो राग है इसकी बात तो कहाँ दूर रह गई है। उससे तो सम्यग्दर्शन होता नहीं, परंतु भेद के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा ! अरे ! ऐसी बात सुनने को मिले नहीं न यह किस दिन कब निर्णय करे और कब जन्म-मरण का अंत आये ? आहाहा ! और यह जन्म-मरण कर करके भाई जैसे रहटमें से एक वर्तन ऊपर खाली होता और नीचे भरता है... यह रहट होता है न ? रहट नीचे भरता ऊपर (जाकर) खाली, एक जन्म जाता तब दूसरा जन्म तैयार। आहाहा ! और वह भी कैसा जन्म, आहाहा ! मनुष्यपने का जन्म यहाँ करोड़पति हो बंगले में (रहता हो) अरबपति अरे मांस और दारू कदाचित

न (खाता) हो। आहाहा ! मरकर पशु में जाय ऐसे भव अनंत किये हैं। प्रभु ! आहाहा !

यहाँ तो पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा से भी राग उत्पन्न होता है, क्योंकि वह परद्रव्य है, और मोक्ष अधिकार में - ऐसा कहा है मोक्षपाहुड, **`पर दव्वाओ दुग्गई'** ओहोहो ! वीतरागी संत कहें... जिन्हें किसी की पड़ी नहीं, हमें मानने में भी तुम्हें राग होगा, क्योंकि हम परद्रव्य हैं आहाहा ! तुम्हें स्वद्रव्य अभेद में दृष्टि करने से तुम्हें अरागी दशा उत्पन्न होगी। आहाहा ! बात तो बहुत सरल और संक्षिप्त है... हाँ। आहाहा ! निहाल होने की बात है भैया प्रभु। हानि का धंधा कर करके मर गया चौराशी में, यहाँ तो कहते हैं कि पंचपरमेष्ठी की शरण लेने जायेगा हो यह तो परद्रव्य है, परद्रव्य से तो दुर्गति होगी, दुर्गति अर्थात उसमें चैतन्य का फल नहीं आयेगा। गति का फल आयेगा कोई स्वर्ग आदि, तब यह तो दुर्गति है यह कहीं चैतन्य गति सिद्ध (गति) नहीं आहाहा ! कठिन काम लगे ?

लोग चीख चिल्लाहट करते है सोनगढ़ तो एकांतवाद है, एकांतवाद है, प्रभु तुमने सुना नहीं भाई ! प्रभु तुम क्या कहते हो, हाँ ! (श्रोता :- ऐकांती को, एकांत और अनेकांत की परिभाषा खबर नहीं। मध्यस्थ प्राणी हो तो वह कहे कि यह देखो ! कल पत्र आया था, हिम्मतलाल (का) बनारस के शास्त्री, एकबार यह पुस्तक पढ़ी बेन की वहाँ, आहाहा ! (श्रोता :- प्रमोद कैसा कितना प्रमोद) हाँ ! आहाहा ! लोग यह पढ़ेंगे देखेंगे तब उन्हें लाभ होगा। - ऐसा विचारा शास्त्री बनारस का बापू ! इसमें कहाँ कोई पक्ष की बात है ? भाई... आहाहा ! आहाहाहा !

`सरागी के विकल्प होते है इसलिये, इसकारण, रागी को राग (होता) इस कारण भेद ऊपर लक्ष्य करने से राग उत्पन्न होता है' इसलिये जहाँ तक रागादिक दूर न हों रागादिक विकल्प दूर न हों, नहीं हो जाते वहाँ तक भेद को गौण करके, वहाँ तक भेद को गौण करके, अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। आहाहा ! जहाँतक राग है वहाँ तक भेद को गौण करके अभेद की दृष्टि कराई है आहाहा ! राग छूटने के बाद अभेद और भेद दोनों को जानें। आहाहा ! जानने में कोई... वस्तु भेदाभेद है तो जानों, परंतु फिर जब तक राग है तब तक तुम्हारा लक्ष्य पर ऊपर जायेगा, भेद ऊपर, तब राग ही होगा, तब जहाँ तक रागादिक दूर नहीं हो जाते, आहाहा ! वहाँ तक पर का लक्ष्य छोड़ना और भेद को गौण करना, उसमें (आत्मा में) पर्याय है, गुण है उसको गौण रखना और मुख्य अभेद को करना। आहाहाहा ! समझ में आया ? पर्याय को गौण करके अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया है। आहाहाहा ! अभेद वस्तु भगवान आत्मा (का) निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। यह पर्याय हुई, अभेदरूप की दृष्टि करने से निर्विकल्प अनुभव कराया गया है, राग रहित

अनुभव कराया गया है, वह वीतराग मार्ग है और यह वीतराग समकित है तथा यह जैन शासन है। आहाहाहा ! समझ में आया ?

वीतराग होने के बाद, **`वीतराग होने के बाद भेदाभेदारूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है'** जानना कोई राग का कारण नहीं। परंतु तुम रागी हो तब एक ऊपर (से) लक्ष्य छोड़कर इस (पर) लक्ष्य जायेगा तो तुम्हें रागी होने के कारण राग उत्पन्न होगा। आहाहा ! **`वीतराग होने के बाद भेदाभेद वस्तु का ज्ञाता हो जाता है,'** वीतराग हुआ तो अभेद वस्तु भी जानते है और गुण तथा पर्याय भेद भी वीतरागी जानते है, ***राग जाने के बाद भेदाभेद को जानना, परंतु जबतक राग है, तब तक अभेद की दृष्टि कराने भेद को गौण करके वीतरागी अनुभव कराया है।*** आहाहाहा ! पण्डितजी ने कितना अर्थ भरा है देखो, दोसौ वर्ष पहले जयचन्द्र पण्डितजी (हुये) है। (श्रोता :- स्पष्टीकरण करनेवाला भी तो कोई नहीं था, खोला भी तो आपने ही है) है कि नहीं ? यह वस्तु स्थिति है और वह सम्मत हो ऐसी है, पहले इसे दृष्टि में तो बैठ हो जाय, बात तो यह सच्ची है। (श्रोता :- ***बर्हिलक्षी ज्ञान में एकदम बैठ जाये - ऐसा है***) ***पहले बर्हिलक्षी भले हो परंतु उसके ख्याल आ जाये कि दृष्टि अभेद ऊपर करने से सम्यग्दर्शन निर्विकल्पता होती है... भेद ऊपर लक्ष्य करने से... सभी तरह से वहाँ रूक गया। अब अंदर जाना यह प्रयत्न करना। समझ में आया?*** आहाहाहा ! ***ज्ञान में पहले - ऐसा निश्चित हो जाये कि पर के आश्रय से तो लक्ष्य से तो राग होगा ही, क्योंकि मैं रागी प्राणी हूँ तो भेद ऊपर लक्ष करने से राग होगा..., अतः लक्ष्य करने लायक नहीं - ऐसा ज्ञान में निर्णय करें तब ज्ञान वहाँ रुक जाये। यह ज्ञान बाद में अंदर में जाये।*** आहाहा !

`वीतराग होने के बाद भेदाभेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है, यहाँ अवलम्बन ही नहीं रहता।' वीतराग होने के बाद स्वरूप तरफ का आश्रय करना यह रहता नहीं अंदर से पूर्ण हो गया। आश्रय करना क्या रहा ? समझ में आया ? वीतराग होने के बाद, ***अभी जहाँ तक वीतराग नहीं, वहाँ तक स्व के आश्रय से... अभेद का आश्रय करना रहता है, और भेद को गौण करके... परंतु जब वीतराग हुआ तब फिर स्व का आश्रय करना रहा नहीं, तब पूर्ण हो गया।*** आहाहाहा !

`भेदाभेद वस्तु का ज्ञाता हो जाता है-वहाँ नय का अवलम्बन ही नहीं रहता' स्व का अभेद का आश्रय करना यह वहाँ रहता नहीं। पूर्ण हो गई दशा। अभेद का आश्रय करना यह तो निश्चय नय है... और (जब) रागी था भेद का लक्ष्य करने से राग होता था, भेद का लक्ष्य करने से राग होता है यह व्यवहार था, यह तो बाद में रहा नहीं। वीतरागता जब हुई वहाँ तो बाद में किसी नय का आश्रय करना

रहा नहीं। आहाहा ! ***व्यवहार का (आश्रय) छोड़ना और निश्चय का लेना, वीतराग होने के बाद तो - ऐसा, कुछ रहा नहीं।*** आहाहाहा ! कहो शकुनलालजी सुना कि नहीं यह ? ऐसी बात है बराबर सातमी गाथा के समय आ गये। आहाहा !

आहा ! भगवान यह तो तुम्हारे हित की बात है प्रभु ! यह कोई पक्ष नहीं, यह कोई संप्रदाय नहीं हाँ ? (श्रोता :- अपने हित की बात है) है ? तुम्हारे हित की बात है प्रभु ! तुम अभेद हो, उसकी दृष्टि रखना यह तुम्हारा हित है, भेद ऊपर लक्ष्य करने से तुम रागी हो तो राग होगा, तब अहित होगा। इसमें पक्ष की बात कहाँ रही ? यह सोनगढ़वाले ऐकांत कहते हैं और हमारा मार्ग अनेकान्त है ? प्रभु कहो प्रभु ! तुम भगवान हो न नाथ ! आहाहा ! तुम्हारे शक्ति और गुणों में तो कोई कमी है नहीं। आहाहा ! पर्याय में अंश में खामी है, तो एक समय की भूल है। आहाहा ! यह स्वभाव का आश्रय लेकर भूल टालेगी - ऐसा भगवान है, एक समय की भूल है आहाहा ! किसी के ऊपर द्वेष नहीं, विरोध नहीं करना। समझ में आया ? आहाहा ! चाहे जितना एकांती कहो तुम्हारे जो लक्ष्य में हैं तो तुम वैसा कह सकते हो ! परंतु वह उसमें...

जामें जितनी बुद्धि है, इतना देय, बताय,
ता को बुरो न मानिये, और कहाँ ते लाय।

भैया आहा... हा... यह गाथा पूरी हो गई। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. २९ गाथा-७ ता. ९-७-७८ रविवार अषाढ सुद-४ सं.२५०४

समयसार सात गाथा हुई। कुछ श्रोता नये हैं, सातमी का भावार्थ फिर से लेते हैं। सूक्ष्म अधिकार है, भावार्थ है न ?

`इस शुद्धआत्मा के कर्म बंध के निमित्त से अशुद्धता होती है, यह बात तो दूर ही रहो'... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा शुद्धज्ञान घन पवित्रता का पिण्ड है उसमें, उसकी दशा में पर्याय में वर्तमान हालत में कर्म के निमित्त की अपेक्षा से पुण्य और पाप एवं भ्रांति आदि अशुद्धता हो, वह लक्ष्य में लेने लायक नहीं। आत्मा वस्तु है यह तो पवित्र और शुद्ध चैतन्यघन है। परंतु उसकी दशा में हालत में,

पर्याय में, वर्तमान-वर्तमान अंश में अशुद्धता है पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, काम और क्रोध, यह सभी अशुद्धता है, यह अशुद्धता तो यहाँ दूर रहो कहते हैं उसका तो लक्ष्य करना नहीं। आहाहा !

जिसे आत्मा का सम्यग्दर्शन करना हो, आत्मा जैसा है परिपूर्ण शुद्ध - ऐसा जिसको अंतर में सम्यक् सत्यदर्शन जैसा सत्य है उसका दर्शन करना हो अथवा उसका अनुभव करना हो, उसको क्या करना ? यह बात चलती है, कि अशुद्धता को लक्ष्य में लेना ही नहीं, अंदर अशुद्धता होती है यह लक्ष्य में नहीं लेना। आहाहा ! क्योंकि अशुद्धता के लक्ष्य से तो मलिनता का राग ही उत्पन्न होगा। उससे सम्यग्दर्शन और धर्म दशा उत्पन्न नहीं होगी। डॉक्टर ? थोड़ा सूक्ष्म विषय है, फिर से लिया है तीसरी बार लिया है हैं। `**किन्तु उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भी भेद नहीं**' क्या कहते हैं ? वस्तु जो है वस्तु जो अंतर अनंत अनंत गुणों का एकरूप तत्त्व है, उसमें श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र ऐसी जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है उसका भी लक्ष्य करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा ! आत्मा का साक्षात्कार अशुद्धता के लक्ष्य से नहीं होता और (जो) उसमें गुण है अथवा पर्याय है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... शक्ति तो त्रिकाली वस्तु में है, परंतु उसको दर्शन-ज्ञान-चारित्र भेद से समझाना, यह भेद है, उसके लक्ष्य से भी आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहाहा !

`**क्योंकि वस्तु अनंत धर्मरूप एक धर्मी है,**' वस्तु जो है वस्तु यह अनंत-ज्ञान-दर्शन-आनंद जैसे अनंतगुण अर्थात धर्म, धर्म अर्थात उसने धारण की हुयी वस्तु, ऐसे अनंतगुण हैं, परंतु धर्मी अनंतगुणों का एकरूप है, आहाहाहा ! है ? अनंतधर्मरूपी एकधर्मी अर्थात एक वस्तु, द्रव्य अर्थात तत्त्व एक है, अनंतगुण अंदर होनेपर भी अनंत गुणों का एकरूप द्रव्य है। `**परंतु व्यवहारीजन धर्मों को ही समझते है**' अनादि का अज्ञानी प्राणी, उसको अन्दर धर्मी त्रिकाली चीज क्या है ? उसका ख्याल नहीं, ज्ञान नहीं। तब उसमें जो ज्ञान-दर्शन आदि जो गुण हैं, उन गुणों द्वारा समझाने में आता है। उदानी ! अलग जाति की बात है। बड़ा डॉक्टर है वहाँ मुंबई में, डॉक्टर हाँ दांत का, डॉक्टर ! यह अलग जाति की चीज है। आहाहा !

कहते हैं वस्तु तो वस्तु, अखण्ड अभेद चीज आत्मा अंदर विद्यमान है उसमें अनंत गुण है। शक्ति है यह धर्म अर्थात धारण किये हुए गुण परंतु उनके अनंत गुणरूप तो द्रव्य एक है धर्मी, द्रव्य। परंतु अज्ञानी जन द्रव्य को तो जानते नहीं, वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र यह आत्मा है - ऐसा भेद करके दिखायें तो जान सकते हैं। तब इसकारण से ज्ञान-दर्शन-चारित्र उसका जानना उसका विश्वास, उसमें रमणता

यह आत्मा - ऐसा कहने से अज्ञानी उसको गुण द्वारा गुणी जानते है तब गुण द्वारा समझाने में आता है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है। (जो) धर्मी को नहीं जानते। द्रव्य को तो अज्ञानी अनादि से जानते ही नहीं कि अंदर क्या चीज है ?

`**इसलिये वस्तु के किन्हीं असाधारण धर्मों को उपदेश में लेकर**' उसके असाधारण जो उसमें गुण है जो दूसरे में नहीं - ऐसे ज्ञानानंद आदि गुणों से उसको उपदेश द्वारा समझाने में आता है, कि जो देख भैया। यह अंदर ज्ञान है न, वह विश्वास करता है यह आत्मा, ज्ञान करता है वह आत्मा, स्वरूप में रमण करता यह आत्मा ! - ऐसा गुणों का भेद करके गुणी अर्थात धर्मी द्रव्य को दिखलानेवाला उपदेशक, धर्म से धर्म द्वारा धर्मी को समझाते हैं। धर्मी को अर्थात द्रव्य को, समझनेवाले (शिष्य) को, समझनेवाले को धर्मी नाम द्रव्य उसका धर्म अर्थात गुण, गुणों के भेद द्वारा धर्मी अर्थात द्रव्य को समझनेवाले को समझाते हैं। आहाहा ! ऐसी बात है। उपदेश द्वारा कहकर, अभेदरूप वस्तु भगवान प्रभु तो अभेद वस्तु अनंतगुण का एकरूप है। आहाहा !

`**उसमें धर्मों के नामरूप भेद को उत्पन्न करके,**' क्या कहते हैं ? गुण और गुणी वस्तु तो अभेद है जैसे शक्कर की मिठास और शक्कर तो एकरूप है परंतु जो शक्कर को न जाने उसको मिठास सो शक्कर - ऐसा गुण का भेद करके शक्कर जो द्रव्य है, धर्मी अर्थात द्रव्य उसे बताते हैं, इसप्रकार आत्मा अनंत गुण का पिण्ड है अंदर... परन्तु धर्मी द्रव्य है, उसको अनादि से अज्ञानी जानते नहीं तब गुण का भेद करके बताते हैं, कि देखो ! ज्ञान सो आत्मा, इतना भेद किया। आहाहा ! समझ में आया ? वस्तु के किन्हीं असाधारण धर्मों को उपदेश में लेकर अभेदरूप वस्तु में भी धर्मों के नामरूप भेद, कथनरूप भेद वस्तु में भेद नहीं। आहाहाहाहा !

देखो यह पिलास्टिक है। अब उसको सफेद कहना चिकना कहना है, वह कहीं अंदर में भिन्न नहीं, यह तो एकरूप है। परंतु उसको चिकना है, सफेद है - ऐसे नामों से उसके गुणों का कथन कहकर पिलास्टिक बताना है। इसीप्रकार भगवान आत्मा अंदर ज्ञान-दर्शन-चारित्र से तो अभिन्न एकाकार है, परंतु जो धर्मी जीव को नहीं जाननेवाले, धर्मी अर्थात वस्तु को नहीं जाननेवाले ऐसे अज्ञानी को धर्मी बताने को उसके गुणद्वारा धर्म द्वारा धर्मी को बताया जाता है। आहाहा ! श्वास गहरी ठहर जाये - ऐसा है यह तो। सभी अभ्यास किया परंतु यह कभी किया नहीं। जन्म-मरण (से) रहित कैसे होते हैं ? कि ज्ञानी को, ज्ञानी अर्थात आत्मा, आत्मा को दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, `इस प्रकार अभेद में भेद किया जाता है', वस्तु तो अभेद

है। जैसे यह चीज (पिलास्टिक) तो अभेद है, परंतु चिकनाई और सफेदाई आदि (से) बताना, अब नाम कथन करके उस चीज को समझाते हैं। इसीप्रकार भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद (रूप) नहीं, अंदर अभेद वस्तु है, एकरूप है, परंतु एकरूप चीज को नहीं जाननेवाले को, गुण द्वारा, धर्म द्वारा, इस अभेद को दिखाते है। आहाहा ! क्योंकि अभेद देखने से सम्यग्दर्शन होता है और आत्मानुभव होता है एवं आत्मा का स्वाद आता है। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

`**इसलिये यह व्यवहार है**' अभेद में भेद किया जाता है इसलिये व्यवहार है। `**यदि परमार्थ से विचार किया जाय तो एकद्रव्य वस्तु है, यह अनंतगुणों को पर्यायों को अभेदरूप से पीकर बैठा है**' यह तो वस्तु अखण्ड है। शक्कर में मिठास सफेदाई तो अंदर अखण्ड विद्यमान है, भिन्न नहीं है कोई चीज। आहाहा ! इसीप्रकार शक्कर जैसा प्रभु आत्मा अनंतगुणों का एकरूप होकर पीकर बैठा है। आहाहा ! अब ऐसी बात ! एक द्रव्य अनंत पर्याय को अभेदरूप से पीकर बैठा है। `इसलिये उसमें भेद नहीं' यह तो साधारण बात की है।

`**अब यहाँ कोई कह सकता है**' क्या कहते हैं ? शिष्य को कहते हैं कि तुम ऐसी बात कह सकते हो, क्योंकि वस्तु जो हैं, उसमें गुण भिन्न नहीं (है) गुण से तो अभिन्न एकाकार वस्तु है, तब हम गुणों का भेद करके व्यवहार कहकर, व्यवहार कहकर यह उसमें नहीं है अभेद में भेद नहीं है - ऐसा हमने कहा, तब तुम प्रश्न कर सकते हो ! आहाहा ! मोटाणी ? इस पाऊडर वाऊडर में वहाँ नहीं मिले - ऐसा कहीं ? आहाहाहा !

यहाँ कोई कह सकता है कि आहाहाहा ! पूंछो कि वस्तु भगवान अंदर है तो देह से भिन्न, पुण्य-पाप के राग से भिन्न और गुण-गुणी का भेद भी जिसमें नहीं, ऐसी अभेदवस्तु को भेद करके व्यवहार कहा, और व्यवहार कहकर उसका लक्ष्य छुड़या और अखण्डानंद प्रभु अभेद है, उसमें दृष्टि लगाई, ऐसी बात हम (ने) कहीं यह तो परमार्थ है और गुण भेद करके बताया तो वह व्यवहार है, तब तुम्हारा प्रश्न होगा, उसमें हो सकता है। कि (जो) उसमें है उसको व्यवहार क्यों कहा ? उसमें न हो, उसको व्यवहार कहो यह बराबर है। समझ में आया ? आहाहाहाहा !

आत्मा की अपेक्षा से शरीर कर्म वाणी, देव-गुरु-शास्त्र यह अवस्तु है, यह (ज्ञायक) वस्तु है तो वह अवस्तु हैं। यह अंगुली है तब यह अंगुली अंगुलीरूप से वस्तु है परंतु दूसरी अंगुली की अपेक्षा से यह अंगुली अवस्तु है क्योंकि एक अंगुली में दूसरी अंगुली है नहीं, अतः अवस्तु है। इसीप्रकार आत्मा में शरीर, कर्म, देव, गुरु, शास्त्र यह परद्रव्य है वह परद्रव्य तो है, अपने द्रव्य की अपेक्षा से अवस्तु (है) अद्रव्य, यह

तो ठीक है, परंतु तुम तो गुण भेदों को व्यवहार कहते हो तब वह तो अवस्तु हो जाती है। सूक्ष्म बात है भाई ! कभी सुनी नहीं, कभी मिली नहीं, यह गड़बड़ गड़बड़ सभी धर्म के नाम पर। आहाहा ! क्या कहा ?

`यहाँ कोई कह सकता है' - ऐसा लिया है तुम - ऐसा प्रश्न कर सकते हो। समझ में आया ? क्योंकि हम (ने) तो गुण भेद को व्यवहार कहा तब उसका अर्थ हो गया कि वह अवस्तु हो गई ? ***जैसे अपनी चीज है आत्मा उस अपेक्षा से इस शरीर आदि को अवस्तु कहा जाता है, यह तो उसके कारण तो वस्तु है परंतु इसके कारण अवस्तु है। ऐसे भगवान आत्मा को हमने गुणभेद कहकर व्यवहार कहा, तब व्यवहार तो उसको कहते हैं कि (जो) उसमें न हो उसमें न हो।*** (डॉक्टर) गाथा महान आयी है बारह अंगों का सार दिया है। आहाहाहाहा ! सूक्ष्म लगे बापू क्या करें ?

प्रभु तेरा मार्ग, रास्ता कोई अलौकिक है। कभी मिला नहीं, अभी तो कहीं सुनने को भी मिलता नहीं। हमारे सेठ कहते हैं कि नहीं मिलता। क्यों नेमिचन्द्रभाई ! आहाहा ! (श्रोता :- शरीर में जितना दुःख आता है राग खिंचता है ?) नहीं नहीं नहीं झूठी बात, यह झूठ है। शरीर हो तो, (श्रोता :- राग रहेगा) राग नहीं रहेगा। वह राग करे तो रहेगा। राग से लक्ष्य छोड़कर अपने अभेद ऊपर दृष्टि करेगा तो राग नहीं होगा ? शरीर (से) नहीं होगा- ऐसा राग ही नहीं होगा। सूक्ष्म बात है । अपनी जो अभेद चीज है, उसको भेद करके बताना वह भेद तो व्यवहार हुआ, तब शिष्य कहता है कि तुम प्रश्न कर सकते हो, क्योंकि गुण (भेद) को हमने व्यवहार कहा तब व्यवहार तो अवस्तु को कहा जाता है, उसमें न हो उस वस्तु को व्यवहार कहा जाता है, और यह तो अंदर में है। आहाहाहा ! यह तो अलौकिक बात है बापू ! अभी तो करोड़ों में अबजों में मिलना मुश्किल है ऐसी बात है। हम तो सारी दुनिया (को) जानते हैं। आहाहा ! किस पद्धति और क्या रीति है बात यह कोई अलौकिक है। आहाहा ! कहते हैं कि यहाँ कोई यह कह सकता है, यहाँ कोई यह कह सकता है, क्यों ? कि पर्याय भी द्रव्य का ही भेद है, यह ज्ञान-दर्शन-आनंद यह जो दशा यह आत्मा की है और आत्मा में है और आप कहते हैं कि यह तो व्यवहार है ? तो तुम प्रश्न कर सकते हो कि (जो) अपने में है उसे व्यवहार क्यों कहो ? अपने में न हो उसको व्यवहार कहो। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है बापू ! यह तो मंत्र है। अंतर के मंत्र है। आहाहा ! हीरालालजी नहीं आये, माणेकचन्दजी ! भावनगर, बाहर गये हैं। ठीक !

क्या कहा ? यहाँ कोई `कोई' सब नहीं, यह कह सकता है कि आत्मा की

जो पर्याय है दर्शन-ज्ञान-चारित्र वस्तु की दशा है, यह दशा है यह वस्तु में है तब तुम कह सकते हो कि वस्तु में है उसको व्यवहार क्यों कहा ? वस्तु में न हो उसको व्यवहार कहो तब यह तो बराबर है अपने में जो नहीं ऐसी पर चीज को तुम अवस्तु कहो और व्यवहार कहो तो यह व्याजबी है परंतु अपने में दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय तो है, अपने में है उसको तुम व्यवहार कहते हो अवस्तु कहते हो, अपने में है नहीं - ऐसा कहने में आता है - ऐसा तुम प्रश्न कर सकते हो। आहा ! समझ में आया ? अरे ! ऐसी बातें हैं।

अवस्तु नहीं, क्या कहा ? पर्याय भी द्रव्य का ही भेद है। - ऐसा प्रश्नकार का प्रश्न है, तुम - ऐसा प्रश्न कर सकते हो, कि भगवान आत्मा उसकी श्रद्धा, ज्ञान और आनंद यह दशा पर्याय अर्थात गुण भेद यह उसमें है, यह अवस्तु तो नहीं अर्थात यह परवस्तु तो नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! स्पष्टीकरण करनेवाले पण्डितजी ने बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण किया है। है तो पण्डित, दो सौ वर्ष पहले (हुये) परंतु बहुत स्पष्टीकरण किया है, यह आप कह सकते हो, कि द्रव्य जो वस्तु है उसकी दशा जो है, अवस्था है यह तो उसकी है यह दशा कोई पर की नहीं और यह पर की हो तो अवस्तु कहा जाता है, परंतु अपनी पर्याय को अवस्तु क्यों कहा ? क्योंकि तुमने उसको व्यवहार कहा। अतः व्यवहार तो अवस्तु को कहते हैं। आहाहाहा ! यह तो अलौकिक बात है भगवान ! क्या कहें ? आहाहा ! **`तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ?'** यह अवस्तु नहीं, आत्मा में राग नहीं। पुण्य नहीं तब यह तो है नहीं, दया, दान (के) जो विकल्प है यह तो आत्मा में है ही नहीं और यह आत्मा के है ही नहीं, यह तो विकार है दुःख है, ***परंतु आत्मा में आत्मा का ज्ञान करना, श्रद्धा करना, स्थिरता करना यह तो आत्मा की (अवस्था) है यह दशा तो आत्मा की है और आत्मा में है और आत्मा की (पर्याय) है, उसको तुम व्यवहार कहकर अवस्तु कहते हो, क्योंकि व्यवहार है वह अवस्तु है, अपने में न हो ऐसी चीज को अवस्तु कहा जाता है और उसको व्यवहार कहा जाता है, परंतु अपने में है यह अवस्तु नहीं,*** (फिर भी) उसको तुम व्यवहार कहते हो, तब (वह) अवस्तु हो जाती है, अरे ! ऐसी बात है। कहो चिमनभाई ? यह बात तो तीसरी बार आती है।

क्या कहा ? पहले तो प्रश्नकार का रूप क्या है ? प्रश्नकार की मर्यादा उसका रूप क्या है ? यह प्रश्न किस प्रकार से करते हैं ? यह समझना। बाद में उसका उत्तर हो तब समझ में आये। प्रश्नकार ने - ऐसा प्रश्न किया कि तुम - ऐसा प्रश्न कर सकते हो, पण्डितजी - ऐसा कहते है कि तुम - ऐसा प्रश्न कर सकते हो

कैसा ? कि आपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनंद आदि दशा तो है वह अपने में है उसको तुम व्यवहार कहो, तब तो यह अवस्तु हो गई, अपने में नहीं है - ऐसा हुआ। उदानी ? दांत का बड़ा है, बोम्बे में बड़ा डॉक्टर, बत्तीसी यहाँ (मुँह में) यह बत्तीसी बैठालते है। आहाहा !

भगवान आत्मा अंर्तमुख अंतरचीज एकरूप अभेद वस्तु अंतर गुणों का पिण्डरूप अभेद है तब वह तो दृष्टि कराने को, तुम भेद दृष्टि से कहते हो तो भेद तो व्यवहार है, भेद तो अवस्तु है, जैसे पर अवस्तु है तो आपने भेद को भी अवस्तु कहा, तब (क्या) अवस्तु से आत्मा जानने में आता है ? अवस्तु से वस्तु जानने में आती है और उसको अवस्तु कहकर उसमें आत्मा में पर्याय नहीं है - ऐसा आप कहते हो, तब क्या उसका मेल बैठता है ? (श्रोता :- इसमें कुछ समझ में नहीं आता) ध्यान रखे तो समझ में आये। फिर... यह तो तीसरी बार चलता है। यह तो कितने ही लोग नये आये है हमारे, यहाँ रमणीकभाई और तुम्हारे आये है न राजकोट से। सुने तो सही कि यह क्या है ? आहाहा !

कहते हैं कि सुनो कि आत्मा एक चीज है, अंदर तब वह चीज, शरीर, वाणी, कर्म पर से तो बिलकुल भिन्न है, और इस कारण उस चीज को व्यवहार कहा। क्योंकि पर चीज अवस्तु स्व की अपेक्षा से अवस्तु है, उसको तो व्यवहार कहा, यह तो तुम्हारी बात बराबर है, परंतु अपने में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनंद तो अपने में है, क्या उसको तुम व्यवहार कह कर, नहीं है और अवस्तु है - ऐसा तुम कहते हो, यहाँ क्या तुम्हारा कहना है ? शशिभाई ? कल नहीं थे, नहीं ? सुबह में यह सुबह की बात थी न ? आहाहा !

`व्यवहार' उसका समाधान :- यह प्रश्न जो - ऐसा कहा उसका समाधान, परंतु प्रश्न का रूप - ऐसा है ? प्रश्नकर्त्ता का रूप - ऐसा है, कि मेरी चीज में जो वस्तु है यह वस्तु में है उसको व्यवहार क्यों कहा ? अपने में न हो उसको तो व्यवहार कहो क्योंकि अवस्तु को तो व्यवहार कहा जाता है। परंतु अपनी वस्तु में दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो है। विकार नहीं है यह तो दूसरी बात है, परंतु अविकारी गुण और पर्याय तो है, जो है उसको आप व्यवहार कहते हो वह तो अवस्तु हो जाती है, है तो वस्तु अपने में। देवीलालजी ! आहाहा ! - ऐसा प्रश्नकार का रूप है, अब उसका उत्तर है... समझ में आया ?

प्रश्नकार का रूप क्या है कि तुम कह सकते हो, क्योंकि हम अंदर वस्तु अखण्ड आनंद प्रभु है, उसमें ज्ञान, दर्शन, आनंद है - ऐसा हमने भेद करके बताया और उसे व्यवहार कहा तब तुम प्रश्न कर सकते हो, कि उसमें है उसको व्यवहार क्यों

कहते हो ? उसमें न हो उसको व्यवहार कह सकते हो। आहाहा ! उदानी ! यह पढ़ाई दूसरे प्रकार की है। (श्रोता :- यह क्या करने जैसा है कि नहीं करने जैसा) अरे ! यह करने जैसा है, बापू बाकी तो सभी धूल धानी, मरकर जाओगे, चले जाओगे, आहाहा ! कहीं कोई शरण नहीं आहाहा ! शरण तो अंदर आत्मा आनंदस्वरूप यह राग से तो भिन्न है परंतु यह भेद भी उसमें नहीं। अभी प्रश्नकार का प्रश्न आया कि गुण... गुण तो उसमें है, उसमें है, (तब) उसको आप व्यवहार क्यों कहते हो ? अवस्तु जो नहीं है - उसको तो व्यवहार कहा जाता है, उसमें है उसको व्यवहार क्यों कहते हो ? (- ऐसा कहने से) वह तो अवस्तु हो जाती है, यह निश्चय है। प्रश्नकार का रूप, तुम - ऐसा प्रश्न कर सकते हो - ऐसा कहा समझ में आया ?

उसका समाधान :- कि ठीक है, तुम्हारी बात ठीक है। आहाहा ! तुम्हारी बात तो ठीक है। क्या ठीक है ? कि आत्मा वस्तु है उसमें आनंद, ज्ञान आदि दशा है इस अपेक्षा से तुम्हारी बात तो ठीक है परंतु हम किस अपेक्षा से उसे व्यवहार कहते हैं, अब यह सुनो। समझ में आया ? आहाहाहाहा !

यह तो मंत्र है प्रभु के। हैं ? अरेरे ! कभी सुना नहीं परिचय में आया नहीं। अनुभव में तो कहाँ से आए ? आहाहाहा ! - ऐसा प्रश्नकार का रूप पण्डितजी स्वयं से कह कर उत्तर देते हैं। समाधान :- यह ठीक है, तुम्हारी बात अच्छी है क्योंकि अपने आत्मा में दर्शन, ज्ञान, आनंद (तो है) सच्चिदानंद प्रभु के अंदर ज्ञान है, आनंद है, शांति है, यह दशा है और अपने में है, उसको हमने व्यवहार कहा तब तुम कहते हो कि यह तो अवस्तु हो जाती है तब तुम्हारी बात ठीक है भाई, बात तो ठीक है, परंतु हमारा कहने का आशय क्या है ? यह तुम समझो; समझ में आया ?

हमें क्या कहना है, हमारा क्या आशय है ? यह समझों। तुम्हारी बात तो ठीक है कि अपनी पर्याय में है, उसको तुम व्यवहार कहो तो अवस्तु हो जाती है, यह तुम्हारा प्रश्न ठीक है। उदानी ! यह समयसार पढ़ो तो भी समझ में आये - ऐसा नहीं, वहाँ से बैठे बैठे नहीं ? भाई मना करते हैं। ऐसी बात है बापू ! क्या है हाँ ?

यह तो अलौकिक बातें बापू ! आहाहा ! अनंतकाल में अनंत-अनंत भव गये, साधु अनंत बार हुआ, सन्यासी हुआ, स्त्री-कुटुंब को छोड़कर अकेला जंगल में रहा परंतु यह चीज क्या है उसके ज्ञान बिना निष्फल गया सारा। आहाहा ! और उस चीज का ज्ञान कैसे होता है, और किसके आश्रय से होता है। यह क्या चीज है, इसने उसका ख्याल नहीं किया, ज्ञान न किया। तब यहाँ कहते हैं कि ठीक है...।

किन्तु `**यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है।** चिमनभाई

समझ में आता है कि नहीं ?' आहाहा ! वस्तु अंदर है, तब वह चीज है उसमें आनंद आदि श्रद्धा आदि ज्ञानादि दशा भी है गुण भी है, तो भी तुम कहते हो कि उसमें है उसको व्यवहार क्यों कहा ? यह तुम्हारी बात ठीक है। आहाहाहाहा ! परंतु हमारा आशय क्या है उसमें, यह तुम समझो ! हमारा आशय यह है कि द्रव्यदृष्टि से अभेद को... वस्तु जो अखण्ड अभेद है, यह दृष्टि का विषय बताने को और यह प्रधान अर्थात मुख्य वह है... पर्याय में पर्याय है यह कहीं मुख्य नहीं, उसको तो गौण करके उसमें है नहीं - ऐसा, हमने व्यवहार कहकर अभेद द्रव्य में भेद है नहीं, भेद है यह अवस्तु हुई, तब उसको व्यवहार कहा, तब अभेद में व्यवहार है नहीं यहाँ अभेददृष्टि कराने को, हम भेद को व्यवहार कहते हैं। आहाहा !

अरेरे ! - ऐसा हो यह बापू मार्ग कोई भिन्न है भाई। यह समझे बिना जन्म-मरण मिटेगा नहीं मर जायेगा। यहाँ के बड़े अरबपति कौये और कुत्ते में जानेवाले, कागड़ा समझे, कौआ, कुत्ता आहाहा ! बापू ! ऐसे अनंत भव किये प्रभु क्या कहें ?

अंदर चीज आनंद का नाथ प्रभु एकरूप है। उसमें भेद करना... समझाने के लिये भेद करना कि यह ज्ञान वह आत्मा, दर्शन वह आत्मा। यह भेद करना वह भी व्यवहार हो गया, व्यवहार अर्थात अवस्तु हो गई। अवस्तु अर्थात अभेद में भेद है नहीं। आहाहाहाहा ! समझ में आया ? द्रव्यदृष्टि से अभेद को एकरूप चीज को, एकरूप चीज को, गुणी वस्तु और उसके गुण - ऐसा भेद न दिखाकर अभेद दिखाना है, और अभेद ऊपर दृष्टि जायेगी तो सम्यग्दर्शन होगा, तभी धर्म प्रगट होगा, भेददृष्टि छोड़कर अभेद अखण्डानंद प्रभु... उसपर दृष्टि करने से, उस दृष्टि को प्रधान करके, उसमें पर्याय है भेद है उसको हमने गौण करके, व्यवहार कह कर अवस्तु कहा। क्योंकि द्रव्यदृष्टि कराने को अभेद दृष्टि की मुख्यता बताने को (कहा) है द्रव्यदृष्टि से अभेद को मुख्य करके उपदेश दिया है।

`अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से'** आहाहा ! (भेद) का अभाव नहीं। परवस्तु का जैसे आत्मा में अभाव है - ऐसा अन्दर ज्ञान दर्शन चारित्र की दशा है उसका आत्मा में अभाव है - ऐसा नहीं है। जैसे परवस्तु का अपने में अभाव है इसीप्रकार अपनी पर्याय का अभाव है - ऐसा है नहीं। समझ में आया ? **`परंतु भेद को अभेद में गौण कहने से अभेद भली भाँति मालूम हो सकता है।' आहाहा ! समझ में आया ?

अभेद चीज की दृष्टि कराने को... इसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं, तब अभेद की दृष्टि कराने को भेद को गौण करके व्यवहार कहकर तुम्हारी अपेक्षा से अवस्तु कहने में आया है, है तो वस्तु पर्याय... ***परंतु अभेद की दृष्टि को मुख्य बताने को क्योंकि त्रिकाली की दृष्टि बिना, त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं***

यह प्रयोजन है। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म है।

भाई आये नहीं वह जयंती भाई, भावनगर। उस समय भी नहीं थे रविवार को ? जयंतीलाल, नहीं। (श्रोता :- तबियत बराबर नहीं) तबियत ठीक नहीं। आहाहा ! कहो गुणवंतभाई समझ में आता है यह ? आहाहाहा !

क्या कहते हैं ? सुनो प्रभु, तुम्हारा प्रश्न - ऐसा हो सकता है, क्योंकि वस्तु जो है भगवान आत्मा यह शरीर से तो भिन्न, कर्म से भिन्न, परद्रव्य से भिन्न या अशुद्धता से भी भिन्न, पुण्य-पाप का भाव उससे तो भिन्न... परंतु यहाँ हमको भेद करके बताना है समझने को, परन्तु भेद करके बताया वह भेद है तो व्यवहार... आगे प्रश्न होगा कि जो व्यवहार, भेद करके बताया तब व्यवहार का क्यों उपदेश नहीं देते ? आहाहा ! क्योंकि अभेद चीज जो वस्तु है उसको समझाना किस प्रकार ? वह ज्ञान सो आत्मा, जानना यह आत्मा, विश्वास किस सत्ता में होता है ? जिसकी सत्ता में विश्वास होता है वह आत्मा। जिसकी सत्ता में स्थिरता होती वह आत्मा - ऐसा भेद करके बताना, यह व्यवहार है, क्योंकि इस व्यवहार को गौण करके द्रव्यदृष्टि कराने को, (अभेद) को प्रधान करके (भेद को) व्यवहार कहने में आया है, अवस्तु कहने में आया है। आहाहाहाहा !

शशिभाई ? कल नहीं थे, सुबह नहीं थे ? ठीक आहाहा ! हसुभाई ! समझ में आता है यह ? ऐसी सूक्ष्मबात है यह। क्योंकि **`अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भली भाँति मालूम हो सकता है'** आहाहाहा ! अखण्ड अभेद दृष्टि कराने को अंतर में गुणभेद पर्यायभेद होने पर भी अभेद दृष्टि कराने को भेद को गौण करने से अभेद भली भाँति मालूम हो सकता है, इस कारण भेद, (पर्याय) उसमें नहीं (है) अभेद की दृष्टि कराने को... आहाहाहा ! समझ में आया ? यह (धर्म) पहले तो सुगम सरल था। **तस्स सुत्तरी करणेणं पायछित्तं करणेणं, इच्छामि पडिक्कमीयुं इरिया, वहियाए, विराहणाए ए** ! लो, समायिक हो गई। इच्छामि पडित्तमीयुं लो ! धूल में नहीं सामायिक, कहाँ ? मिथ्यादर्शन है। आहाहा ! यहाँ तो भेद का विकल्प उत्पन्न होता है और उससे लाभ माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! तब भेद से बताया क्यों ? कि देखो भाई ! भेद किये बिना अभेद समझ में आता नहीं। परंतु भेद जो है यह उसकी पर्याय में है, ***परंतु अभेद त्रिकाली (की) दृष्टि कराने को द्रव्यदृष्टि की मुख्यता कराने को, भेद है उसको गौण करके, उसे व्यवहार कहने में आया है व्यवहार कहो कि अवस्तु कहो।*** आहाहाहा !

लो यह लाये बत्ती के लिए लाये सुना था। वास्तव में यह आये। आहाहा ! पिताजी को तो प्रेम था हो। मगनभाई को तो बहुत स्पष्ट नहीं था, परंतु प्रेम था

उन्हें बहुत-प्रेम। आहाहा !

बापू ! यह मार्ग भिन्न जाति का, किस प्रकार की भाषा है यह समझना कठिन है। आहाहा ! प्रभु एकबार सुन, तुम अंदर वस्तु हो न वस्तु, अस्ति मौजूदगी चीज है न ? जैसी यह विद्यमान वस्तु है शरीरादि, उसीप्रकार तुम चैतन्यमूर्ति मौजूदगी अस्तित्ववाली वस्तु हो, वह वस्तु अनंतधर्म और अनंतगुणों का पिण्ड है, और उसमें अनंतगुण होने पर भी और इन गुणों की श्रद्धादि की पर्याय उसमें होने पर भी द्रव्य की दृष्टि की प्रधानता कराने को, अभेद की दृष्टि कराने को, भेद को व्यवहार कहा तब भेद से अभेद ज्ञात होता नहीं, इसकारण भेद को व्यवहार कहकर अभेददृष्टि कराई। आहाहाहा ! कितना यह कहीं कथा कहानी नहीं प्रभु, यह तो भगवत् कथा है, आहाहा ! वस्तु कहो (प्रेमचन्द्रभाई) नये आये परंतु सुनने को अच्छा मिला- ऐसा मार्ग है प्रभु ! क्या करें ? आहाहा ! अरेरे ! दुनियाँ कहाँ कहाँ रूकी वस्तु कहीं रह गई। आहाहा ! और यह वस्तु की दृष्टि और अनुभव किये बिना जन्म-मरण का चक्कर तुम्हारा नाश नहीं होगा। चौराशी के अवतार आहाहा ! यह चौराशी के अवतार को नाश कराने को अभेदवस्तु अनंतगुण की एकरूप वस्तु है उसकी दृष्टि कराने को... मुख्यरूप वह है और उसमें पर्याय है फिर भी उसको गौण करके, व्यवहार करके, अभेद में भेद नहीं। आहाहाहाहा !

कहो समझ में आता है ? इन युवानों को समझ में आता है कि नहीं ? यह सुबोध सुनता है, प्रेम से सुनते है। आहाहा ! अरे ! प्रभु आत्मा है न, नाथ प्रत्येक भगवान है अंदर ! भाई तुम शरीर को न देख ! कर्म को न देख ! राग को न देख ! भेद को नहीं देखो, आहाहा जैसे पर-निमित्त के आश्रय से सम्यक् नहीं होता। इसीप्रकार राग के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता नहीं ऐसे भेद के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहाहा ! इसकारण भेद उसमें होने पर भी उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता, इसकारण से अभेद की दृष्टि कराने को भेद उसमें होने पर भी व्यवहार कहकर अवस्तु कहा है, गौण करके अवस्तु कहा है अभाव करके नहीं। आहाहा ! समझ में आता है कुछ ? ऐसी वस्तु है।

कुछ नये आये है न इसलिये कहा इसलिये यह (लेते है) वैसे तो कलही चला था हाँ ! परसों चला था, आज तीसरी बार चलता है। आहाहा ! तो भी नया-नया आता (है) कहीं वही का वही आता है ? आहाहा ! यहाँ भली भाँति मालूम होता है, इस कारण भेद को गौण करके, इसलिये भेद को गौण करके व्यवहार कहा है तब तुम्हारे हिसाब से तो यह अवस्तु हुई। परंतु गौण करके अवस्तु कहा है, ***त्रिकाली अभेद की दृष्टि कराने को मुख्य करने को कोई चीज है, वहाँ दृष्टि***

होगी तब सम्यग्दर्शन होगा, आहाहा ! भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है।

`**यहाँ यह अभिप्राय है -** अभिप्राय यह है **उसमें भेददृष्टि में भी निर्विकल्पदशा नहीं होती**' आहाहा ! यह हेतु है, जैसे - परद्रव्य के लक्ष्य से अपनी निर्विकल्प अनुभव दशा नहीं होती इसीप्रकार राग के लक्ष्य से अपनी अनुभव दृष्टि सम्यक् नहीं होती। इसी तरह भेद की दृष्टि से अनुभव दृष्टि निर्विकल्प नहीं होती। आहाहा ! यह एक-दो दिन में हो जाये - ऐसा नहीं यह। उस दिन कहा था न वह बत्तीसी बनाने की बजाय दो-पाँच दिन सुने तो ठीक, उस दिन कहा था बराबर है न ? खबर है ! समझने में दिमाग की बहुत कसरत होना चाहिए। आहाहा ! दिमागी कसरत-व्यायाम होना चाहिए। रोटी बनाते है तब आटे को गूंदते है कि नहीं। यों के यों आटा मिलाकर रोटी बनाते है ? आटा में पानी डालकर गूंदते है गूंदे फिर रोटी होती है। इसीप्रकार ज्ञान में इसकी कसरत होना चाहिए क्या भेद ? क्या अभेद ? क्या पर ? क्या स्व ? क्या स्ववस्तु, क्या कहते हैं ? यह समझ में आया ? आहाहा !

भेददृष्टि में भी क्या कहते हैं कि यहाँ यह अभिप्राय है कि भेददृष्टि में भी, `भी' क्यों कहा, भेददृष्टि से भी क्यों कहा ? कि निमित्त के आश्रय से जैसे सम्यग्दर्शन नहीं होता, राग के आश्रय से नहीं होता, ऐसे भेददृष्टि से भी, इसप्रकार `भी' भी वजन से सब, हाँ। नहीं परंतु बराबर भेद चाहिए। देखो यह, क्या कहा है ? कि भगवान आत्मा का सत्यदर्शन, सम्यग्दर्शन कब होता है ? कि कोई पर के लक्ष्य से देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य से होता नहीं, उसीप्रकार राग के लक्ष्य से नहीं होता, क्यों ? भेददृष्टि से भी होता नहीं `भी' अर्थात उससे भी होता नहीं, उससे भी होता नहीं। आहाहा ! यह तो शब्द मंत्र है यह कोई कहानी नहीं। आहाहा ! गाथा में है उसका स्पष्टीकरण किया है। `व्यवहारेण उपदिश्यते' यह गाथा है न व्यवहारेण उपदिश्यते ज्ञानी दर्शन-ज्ञान-चारित्र। आहाहा ! धर्मी को तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार से है, निश्चय से है नहीं, आहाहा ! उसका अर्थ ? अभेद चिदानंद भगवान की दृष्टि मुख्य कराने को उसमें ज्ञान दर्शन होने पर भी... जैसे परवस्तु का अभाव है - ऐसा उसका (गुण-पर्याय) का अभाव नहीं, परंतु अभेद में भेद करके देखने से... (यदि) भेद ऊपर लक्ष्य जो रहे तब सम्यग्दर्शन नहीं होगा, धर्म नहीं होगा धर्म की शुरूआत नहीं होगी, ***त्रिकाली ज्ञायक भाव अभेद की दृष्टि करने से धर्म की शुरूआत होगी।*** आहाहाहाहा !

राग से तो नहीं परंतु भेद से भी नहीं। ऐसे बात आगे चली अंतिम। अखण्ड जो है उसमें भेद करने से यह ज्ञान है और यह दर्शन है तथा उससे भी सम्यग्दर्शन होता। जैसे राग से तो भिन्न करना है, परंतु भेद से भी भिन्न करके अभेद (की)

दृष्टि करना है। आहाहा ! राग से कहते हैं न पण्डितजी। अलौकिक बात ! (श्रोता :- यह दूसरा पाठ है) यह दूसरा पाठ आया। आहाहा !

भगवान आत्मा शरीर वाणी, मन से तो भिन्न है, जो दया, दान के विकल्प उठते हैं, वह पैसा देते नहीं क्योंकि वह ब्रह्मचारी है तब पैसा खर्चते है ? ऐसी जीवदया में और इसमें तो धर्म होता है ? कहते नहीं, तीनकाल में नहीं। (श्रोता :- राग छोड़ देते हैं) राग छोड़ना यह काम (हो) दूसरा छोड़ना, यह बात यहाँ चलती है, अंदर जो वस्तु है अनंत आनंदकंद प्रभु सच्चिदानंद उसमें ज्ञानादिक की पर्याय का भेद करना, उससे भी अभेद की दृष्टि (अर्थात) सम्यग्दर्शन नहीं होता। राग से तो (नहीं होता) इसलिये `भी' कहा न, **`भेद दृष्टि में भी निर्विकल्प दशा नहीं होती'** आहाहाहा ! जहाँ भेद देखो तब राग होगा। जैसे परद्रव्य को देखने से भगवान को देखने से राग (होता) है। आहाहा ! इसीप्रकार राग का लक्ष्य करने से भी आत्मा प्राप्त नहीं होगा, इसीप्रकार भेद की दृष्टि करने से निर्विकल्प दृष्टि नहीं होगी, निर्विकल्प दृष्टि अर्थात राग से भिन्न अपना चिदानंद, पूर्णानंद प्रभु जिसमें अभेददृष्टि होने से दृष्टि निर्विकल्प होगी। तब सम्यग्दर्शन होगा। तब आत्मा का साक्षात्कार होगा, तब भव का अंत आयेगा। (श्रोता :- यह तो एक दिन में नहीं होगा न) एक दिन में (क्या) एक घड़ी में होगा। परंतु अभ्यास करने से भाई। ऐसे कि एक दिन में है... (क्या) तुम्हारी डॉक्टरी का अभ्यास करने में कितना वर्ष हो गये न ? हाँ वह सभी तो पाप का अभ्यास है, यह डॉक्टर उदानी हमारे बड़े डॉक्टर है वहाँ दाँत के, वहाँ पढ़ने में कुछ साल गये होगे न कहीं बड़ेभाई है न पढ़ाई की है न कुछ नहीं हुआ वह तो बालको को कराते नहीं यह। तब पाप का अभ्यास के लिये पांच-दश साल निकालना। तब इस पढ़ाई के लिये कोइ निश्चित करना कि इतना समय निकालें ? वहाँ मर्यादा कहते हैं कि इतने वर्ष (अभ्यास करना) इससे कम नहीं। जब तक यह एम. ए. एल. एल. बी. पूरी न हो तब तक पढ़ाई करें एल. एल. बी. पूरे हुये बिना वकील नहीं होगा इसप्रकार। यह पूरा किये बिना डॉक्टर नहीं होगा।

इसीप्रकार अभेददृष्टि कराने में थोड़ा समय तो अभ्यास उसको करना चाहिए। छह महीने तो होना ही चाहिए। - ऐसा कलश में आता है न ? जघन्य थोड़ा समय तो अंतर्मुहूर्त है। बहुत तो छहमाह। परंतु उसमें लगनी-लगना चाहिए। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो उसमें क्या लिखा है उसका कैसा अर्थ किया जाता है, अपने आप पढ़ जाये तो कुछ समझ में नहीं आये। आहाहा !

भेददृष्टि में भी... क्या कहना चाहते ? कि अपना द्रव्य वस्तु है उसको छोड़कर

देव-गुरु-शास्त्र का लक्ष्य करने से भी निर्विकल्पता नहीं होती, और राग का लक्ष्य करने से भी निर्विकल्पता नहीं होगी, और ऐसे अभेद की दृष्टि से भी निर्विकल्पता नहीं होगी। आहा ! निर्विकल्पता अर्थात राग से भिन्न होकर, अपनी वीतरागी पर्याय से आत्मा का अनुभव करना उसका नाम निर्विकल्पता है। आहाहाहा ! समझ में आया ? ऐसी चीज है। (श्रोता :- आपका मंत्र बहुत कठिन लगता है)

वहाँ डॉक्टर (बनने में) कितनी पढ़ाई कितना समय लगा होगा ? ऐसे कहीं एक दिन में तो नहीं होनेवाला है। यह तो अनजानी वस्तु है न ! और अभी तो चलती नहीं। संप्रदाय में तो यह बात है ही नहीं, संप्रदाय में तो जहाँ-तहाँ मूर्तिपूजा करो, भक्ति करो, दया पालो, व्रत पालो और उपवास करो, दो-चार उपवास कर लो निर्जला, पानी बिना का, उसमें क्या है ? वह धर्म नहीं। यह तो राग की क्रिया है, तब उससे तो दूर रहो, परंतु अपने में गुण और पर्याय है यह अभेद में भेद करके दिखाना, परंतु वह भेद व्यवहार है, क्योंकि अभेद में भेद नहीं (परन्तु) वह बताये बिना अभेद यथार्थ मालूम होता नहीं। आहाहा ! यह शब्द किस जाति के ? ऐसी बात है। अर्थात लोग बिचारे कहें, एकांत है... एकांत है। सोनगढ़ का एकांत... कहो बापा ! तुम भी प्रभु हो न तुम, तुम्हें अपनी खबर नहीं तुम्हें, आहाहा ! (श्रोता :- इसीका अर्थ होता है ?) इसमें लिखा है, उसका अर्थ होता है। - ऐसा है, उसका अर्थ होता है, (कहीं) अपने मन से करते यह ? पर वह अभ्यास नहीं अभी तो बस प्रवृत्ति प्रवृत्ति। तप और उपवास और - ऐसा करो स्थानकवासी में सामायिक करो, उपवास करो, प्रतिक्रमण करो, श्वेताम्बर में भक्ति, कर्म दहन, सिद्धचक्र बस, सभी पूजा कराओं... दिगम्बर में कपड़ा छोड़ दो, और प्रतिमा ले लो और साधु हो जाओ, परंतु वस्तु (सम्यग्दर्शन) बिना ? (श्रोता :- अच्छारूप बनेगा) क्या अच्छारूप बनेगा, देह छूट जायेगा मर जायेगा और चारगति में जायेगा। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि भेददृष्टि में निर्विकल्प, **भेददृष्टि में भी निर्विकल्पता नहीं होती, सरागी के विकल्प होते रहते है,** यहाँ क्या कहते हैं ? यह भेद को देखने से राग होता है - ऐसा नहीं, क्योंकि भेद को तो केवली भी देखते है, परंतु तुम रागी हो सरागी को कहते हैं, सरागी के विकल्प होते रहते है तुम रागी हो तब भेद देखने से रागी हो इस कारण से राग होता है, भेद को जानने से राग होता है - ऐसा नहीं, तब फिर भेद को तो केवली सभी तीनलोक, तीनलोक देखते है परंतु तुम अल्पज्ञ हो और रागी हो तब राग के कारण तुम भेद पर लक्ष्य करोगे तब तुम्हें विकल्प ही होगा, राग ही होगा और अंतर निर्विकल्प दृष्टि भेद के लक्ष्य से नहीं होगी, जैसे पर के लक्ष्य से निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती, इसीप्रकार भेददृष्टि से भी

निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती। आहाहा ! और निर्विकल्प दृष्टि हुये बिना आत्मा का अनुभव नहीं होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

`सरागी को' जोर यहाँ है। भेद को देखने से राग होता है - ऐसा नहीं भेद को देखने से हो तो केवली तो तीनकाल, तीनलोक को देखते है परंतु (भाई) तुम रागी हो तुम्हारी भूमिका में राग है तब तुम रागी होने से भेद ऊपर दृष्टि करोगे तो राग उत्पन्न होगा। आहाहाहाहा ! अभेददृष्टि करने से तुम्हें वीतरागता होगी। यह धर्म होगा, आहाहाहा ! इतनी शर्त। नरेशजी। ऐसी शरत है। आहाहा ! सरागी को विकल्प होते रहते हैं।

इसलिये जब तक रागादिक दूर न हों... दूर नहीं हो जाते तब तक भेद को गौण करके अभेद निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। देखो सारांश आहाहा ! तुम रागी हो और भेद ऊपर लक्ष्य करोगे तो राग होगा। तो जब तक राग का अभाव न हो तब तक अभेद का अनुभव कराया है। आहाहा ! और अभेद की दृष्टि और पूर्ण अभेद हो गया, फिर अभेद को भी जानो और भेद को भी जानो, जानने में तो कोई यह बात है नहीं। परंतु राग जाने के बाद, राग के अभाव के बाद, जबतक राग है तब तक भेद का लक्ष्य करोगे, तब रागी होने के कारण तुम्हें राग होगा। भेद के कारण नहीं।

`वीतराग होने के बाद भेदा-भेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है' फिर वीतरागदशा हुई तब द्रव्य को जानते गुण को जानते पर्याय को जानते, पर को भी जानते है, उससे क्या ? जानना तो उसका स्वभाव है, उससे तो राग होता नहीं। यहाँ नय का अवलम्बन ही नहीं रहता क्या ? ***पूर्ण सर्वज्ञ होने पर राग का अभाव होने से स्व का आश्रय पूर्ण हो गया। अब आश्रय लेना बाकी नहीं तब आश्रय बिना स्व और पर को जानते है।*** आहाहा ! तब ज्ञाता दृष्टा होकर जानते है फिर कहीं अभेद का आश्रय लेना है एवं भेद को गौण करना है यह तो राग जाने के बाद वीतराग होने पर - ऐसा है नहीं वीतराग न हो तबतक उसे राग को गौण करके भेद को गौण करके अभेद की दृष्टि करके पूर्णराग जब नाश न हो तब तक अभेद का अनुभव करना। यही सारांश है लो। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - ८

तर्हि परमार्थ एवैको वक्तव्य इति चेत् -

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं।।८।।

यथा नापि शक्योऽनार्योऽनार्यभाषां विना तु ग्राहयितुम्।
तथा व्यवहारेण विना परमार्थोपदेशनमशक्यम्।।८।।

अब यहाँ पुनः यह प्रश्न उठा है कि - यदि - ऐसा है तो एक परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिये; व्यवहार किसलिये कहा जाता है ? इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं :-

भाषा अनार्य बिना न, समझाना ज्यु शक्य अनार्यको।
व्यवहार बिन परमार्थ का, उपदेश होय अशक्य यों।।८।।

गाथार्थ :- [यथा] जैसे [अनार्यः] अनार्य (म्लेच्छ) जनको [अनार्यभाषां विना तु] अनार्यभाषा के बिना [ग्राहयितुम्] किसी भी वस्तु का स्वरूप ग्रहण करने के लिये [न अपि शक्यः] कोई समर्थ नहीं है [तथा] उसीप्रकार [व्यवहारेण बिना] व्यवहार के बिना [परमार्थोपदेशनम्] परमार्थ का उपदेश देना [अशक्यम्] अशक्य है।

टीका :- जैसे किसी म्लेच्छ से यदि कोई ब्राह्मण `स्वस्ति' - ऐसा शब्द कहे तो वह म्लेच्छ उस शब्द के वाच्यवाचक संबंध को न जानने से कुछ भी न समझकर उस ब्राह्मण की ओर मेंढे की भाँति आँखें फाड़कर टकटकी लगाकर देखता ही रहता है, किन्तु जब ब्राह्मण की और म्लेच्छ की भाषा का-दोनों का अर्थ जाननेवाला कोई दूसरा पुरुष या वही ब्राह्मण म्लेच्छभाषा बोलकर उसे समझाता है कि `स्वस्ति' शब्द का अर्थ यह है कि `तेरा अविनाशी कल्याण हो', तब तत्काल ही उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त आनंदमय अश्रुओं से जिसके नेत्र भर जाते हैं - ऐसा वह म्लेच्छ इस `स्वस्ति' शब्द के अर्थ को समझ जाता है; इसीप्रकार व्यवहारीजन भी `आत्मा' शब्द के कहने पर `आत्मा' शब्द के अर्थ का ज्ञान न होने से कुछ भी न समझकर मेंढे की भाँति

आँखें फाड़कर टककटी लगाकर देखते रहते हैं, किन्तु जब व्यवहार-परमार्थ मार्ग पर सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले सारथी की भाँति अन्य कोई आचार्य अथवा `आत्मा' शब्द को कहनेवाला स्वयं ही व्यवहारमार्ग में रहता हुआ आत्मा शब्द का यह अर्थ बतलाता है कि - `दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो सदा प्राप्त हो वह आत्मा है', तब तत्काल ही उत्पन्न होनेवाले अत्यंत आनंद से जिसके हृदय में सुन्दर बोधतरंगें (ज्ञानतरंगें) उछलने लगती हैं - ऐसा वह व्यवहारीजन उस `आत्मा' शब्द के अर्थ को अच्छी तरह समझ लेता है। इसप्रकार जगत तो म्लेच्छ के स्थान पर होने से, और व्यवहारनय भी म्लेच्छभाषा के स्थान पर होने से परमार्थ का प्रतिपादक (कहनेवाला) है इसलिये, व्यवहारनय स्थापित करने योग्य है; किन्तु ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं हो जाना चाहिये - इस वचन से वह (व्यवहारनय) अनुसरण करने योग्य नहीं है।

भावार्थ :- लोग शुद्धनय को नहीं जानते, क्योंकि शुद्धनय का विषय अभेद एकरूप वस्तु है; किन्तु वे अशुद्धनय को ही जानते हैं क्योंकि उसका विषय भेदरूप अनेकप्रकार है; इसलिये वे व्यवहार के द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं। अतः व्यवहारनय को परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश किया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि यहाँ व्यवहार का आलम्बन कराते हैं, प्रत्युत व्यवहार का आलम्बन छुड़ाकर परमार्थ में पहूँचाते हैं, - यह समझना चाहिये।

प्रवचन नं. ३० गाथा-८ ता. १०-७-७८ सोमवार अषाढ सुद-५ सं.२५०४

समयसार गाथा ८ - अब यहाँ पुनः यह प्रश्न उठता है, सातवीं गाथा सुनी तब प्रश्न उठा क्या ? यदि - ऐसा है तो एक परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिए, क्योंकि तुम तो व्यवहार को तो हेय कहते हो और उस व्यवहार को आदरणीय नहीं कहते हो, तब एक परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिए, व्यवहार के उपदेश की क्या जरूरत ? - ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया ? जब तुम - ऐसा कहते हों कि व्यवहार दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह भी व्यवहार, यह भी हेय है, यह व्यवहार पर्याय मात्र हेय है, और अकेली त्रिकाली ज्ञायक भाव परमार्थ वस्तु वह ही उपादेय है, तब परमार्थ का (ही) उपदेश देना (चाहिए) व्यवहार का उपदेश क्यों देते हो ? शिष्य का यह प्रश्न है। समझ में आया ? (अकेले परमार्थ का) उपदेश देना चाहिए, व्यवहार किसलिये कहा जाता है ? इसके उत्तर स्वरूप गाथा सूत्र कहते हैं।

ऐसी जिसको जिज्ञासा हुई कि परमार्थ वस्तु वही वस्तु है, ज्ञायक चैतन्य अभेद

वही आदरणीय है और जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र का भेद, यह भी व्यवहार आदरणीय नहीं, हेय है, तब व्यवहार का उपदेश क्यों कहते हो ? परमार्थ का कहो न - ऐसा शिष्य का अंतर में जिज्ञासा से प्रश्न है, उसका उत्तर देते है।

संस्कृत है ऊपर, देखते है न, '**तर्हि परमार्थ एकैव वक्तव्य इति चेत्**' इसकी उनने व्याख्या की संस्कृत में।

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं।।८।।

भाषा अनार्य बिना न, समझाना ज्यु शक्य अनार्यको।
व्यवहार बिन परमार्थ का, उपदेश होय अशक्य यों।।८।।

गाथार्थ :- जैसे अनार्य... कुन्दकुन्दाचार्य के समय में अनार्यभाषा चलती थी, अब हल्का काल आया थोड़ा हजार वर्ष बाद तब अमृतचन्द्राचार्य के समय में, म्लेच्छभाषा प्रयोग होती, भाषा इतनी बदल गई। समझ में आया ? कुन्दकुन्दाचार्य तो कहें जह ण वि सक्कमणजो... अनार्यभाषा बिना, ऐसी भाषा है, तब अमृतचन्द्राचार्य के समय में भाषा भी थोड़ी अनार्य शब्दों के स्थान पर म्लेच्छ भाषा का प्रचलन हुआ। यह कहा जा चुका था पहले... शुरूआत में यह भाषा पुनः हुयी ? अनार्यभाषा के बिना तो अमृतचन्द्राचार्य को भी अनार्यभाषा बिना कहना था, समझ में आया ? तब अमृतचन्द्राचार्य तो म्लेच्छ भाषा प्रयोग करते थे, यह म्लेच्छभाषा अमृतचन्द्राचार्य के समय की है। आहाहा ! काल बदला तो भाषा बदल गई अनार्य की जगह म्लेच्छ आगई। आहा ! म्लेच्छजन को, अनार्य भाषा के बिना अर्थात म्लेच्छ भाषा बिना, वर्तमान काल की अपेक्षा से उसे (म्लेच्छ) अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, किसी भी वस्तु का स्वरूप ग्रहण करने के लिये कोई समर्थ नहीं। किसी भी चीज को भेद किये बिना अनार्य भाषा के प्रयोग बिना उसे समझा सकते नहीं। अनार्य आदमी को उसकी अनार्य भाषा से समझा सकते है। दूसरी भाषा से समझा सकते नहीं। किसी भी वस्तु का ग्रहण नहीं हो सकता उसी प्रकार यह दृष्टांत, व्यवहार के बिना... भगवान आत्मा को भेद से व्यवहार के बिना उपदेश उसको क्या कहें ? व्यवहार से उसको उपदेश देना पड़ता है। आत्मा आत्मा अकेला करें परंतु आत्मा क्या है - ***ऐसा भेद करके बताना यह व्यवहार (के) बिना परमार्थ का उपदेश हो सकता नहीं, व्यवहार से परमार्थ प्राप्त हो सके - यह बात यहाँ नहीं,*** समझ में आया ?

व्यवहार से परमार्थ प्राप्त कर सकते हैं - ऐसा नहीं परंतु व्यवहार के उपदेश बिना निश्चय का उपदेश समझ में आता नहीं, फिर भी आगे कहेंगे। व्यवहार के

बिना... यहाँ से (लोग) विरोध करते हैं, इस गाथा से, देखो व्यवहार बिना परमार्थ प्रगट होता ही नहीं... व्यवहार पहले हो यह बात यहाँ है ही नहीं, यहाँ तो भगवान आत्मा... अनार्य भाषा बिना अनार्य को समझाना असंभव है। समझ में आया ? आहाहा !

जब पालिताना के राजा नहीं थे, तब क्या कहलाता यह गोरे अंग्रेज आये काम करने, क्या कहलाता भाई... राजा का स्वर्गवास हुआ तो राज्य की व्यवस्था के लिये गोरा आया, तब (श्रोता :- एडमिस्ट्रेटर) हाँ, यही। फिर एक दफा गारियाधार आया गारियाधार है न ? हम तो गारियाधार में थे, हमारी बहिन वहाँ थी, तब वह घोड़ा ऊपर खड़े थे, बीच में चौक है, पर आया, वास्तव में तो व्यक्ति म्लेच्छ जैसा, यहाँ की भाषा (न आती)- ऐसा बोलता था बा...ज...रा... है है ? बाजरा इसप्रकार। बाजरा बाजरा - ऐसा कहीं नहीं, अच्छी तरह सुना यह संवत ५९ की घटना है। यह ५९ बा...ज...रा... है ? अब वह अपनी भाषा के अनुसार, भाई तुम बाजरा को भिन्न-भिन्न कहते हैं - ऐसा नहीं बाजरा अखण्ड शब्द (है) गोरा (अंग्रेज) गोरा (सफेद) था, राजा गुजर गया अतः काम करने आया। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, जैसे यह अनार्य अर्थात कि म्लेच्छ भाषा, म्लेच्छ देश के, म्लेच्छ के व्यक्तियों को उसकी म्लेच्छ भाषा बिना उसको समझा सकते नहीं, इसीप्रकार आत्मा का अंजान पुरुष को आत्मा का भेद व्यवहार किये बिना यह समझा सकते नहीं। व्यवहार से समझ सकते हैं। व्यवहार से होता है यह प्रश्न यहाँ नहीं। समझाने को व्यवहार आता है, परंतु व्यवहारसे समझाते क्या ? कि तुम अखण्ड अभेद हो और भेद करके तुमको अभेद बताते है, समझ में आया ? आहाहाहाहा !

हैं ? व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश असंभव है। यह लोग जहाँ हों वहाँ एक बारहवीं गाथा का अर्थ और एक यह (गाथा) यह दो गाथाओं से विरोध करते वहाँ लोगों से कहते देखो ! व्यवहार से, यहाँ आया था उस दिन, लीमड़ीवाला, चिमन चक्कु। चिमन चक्कु यहाँ आया था न ९७ की साल में... देखो ! यह व्यवहार से आता है। व्यवहार बिना परमार्थ... ९७ साल में मंदिर बना था न (संवत्) ९७ में तब यहाँ एक महीना रहा था। बारहवीं गाथा का झगड़ा तो अभी तक चलता है। अभी अखबार (जैनपत्रिका) में आया था बारहवीं गाथा में देखो ! व्यवहार से ही निश्चय की प्राप्ति होती है। व्यवहार से ही यह होता है। - ऐसा लेख शास्त्र में है। `व्यवहार देसिदा' - ऐसा पाठ है न ? व्यवहार दर्शाया होने पर भी, होने पर भी व्यवहार से परमार्थ समझ सकते है।

व्यवहार दिखाने की परिभाषा ही दूसरी है, यह तो आत्मा अंदर ज्ञायक स्वरूप है (अभेद) (उसको) भेद करके बताया और वह अभेद समझ गये... तब उसको गुण

भेद करके बताना पड़े कि देखो ! (यह) जानता है न, जानता है न, ज्ञानस्वरूप परिणमित होता है न, यह आत्मा, विश्वास करने लायक जो है, वह आत्मा और जो स्थिरता होती है अंदर में, यह आत्मा। - ऐसा गुण भेद करके बताये बिना यह (अज्ञानी) समझ सकते नहीं, परंतु समझना तो इस अभेद को है, भेद से समझाते हैं तो भेद को समझना - ऐसा नहीं, समझ में आया ? आहाहा ! अर्थ में फर्क, भाव में फर्क, और ऐसी सभी गड़बड़। (श्रोता :- भेद से अभेद समझ में आता है कि भेद का लक्ष्य छोड़े तब अभेद समझ में आये) भेद से और यह तो अभी कहेंगे, भेद से समझना परंतु भेद का अनुसरण नहीं करना। समझनेवाले को और समझानेवाले को दोनों को ही... समझानेवाले भी व्यवहार में तो आते हैं, विकल्प में आये तब भेद को समझाते है न ? और श्रोता को भी भेद से समझाते हैं, परंतु दोनों को व्यवहार का अनुसरण नहीं करना।

भेद से तो समझना, दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस कारण भेद को समझाते हैं परंतु समझनेवाले को और यहाँ समझानेवाला छद्मस्थ लेना है यहाँ केवली लेना नहीं। समझ में आया ? यहाँ उस समय केवली तो थे नहीं, मुनि थे और मुनि तो छद्मस्थ हैं तब अपना स्वयं का दृष्टांत देते हैं, कि भाई केवली - ऐसा कहते हैं कि यह आत्मा (तुम हो) फिर यह आत्मा न समझ में आये तो केवली ने भेद करके समझाया यह बात यहाँ है नहीं... यहाँ तो वर्तमान उस समय भगवान के विरह में संत और आचार्य थे, वह जगत को व्यवहार से समझाते थे, यह बात लेंगें। यह स्वयं भी व्यवहार में आते है, क्योंकि निर्विकल्प अनुभव में है तब तो उपदेश होता नहीं... आहाहा ! और दूसरों को समझाना है तब विकल्प तो आये बिना रहे नहीं, तब विकल्प आया वही व्यवहार है, तब वह समझनेवाला भी व्यवहार में तो आाय। है और समझनेवाले को व्यवहार से समझाते हैं। आहाहाहा ! समझ में आया ?

परंतु दोनों को ही व्यवहार अनुसरण करने लायक नहीं। पण्डितजी ! आहाहा ! न अनुसर्त्तव्यः... आहाहा ! ऐसी वस्तु परम सत्य यह तो बापू ऐसी चीज है यह अभी तो... (चलती नहीं) आहाहा !

टीका :- `जैसे किसी म्लेच्छ'** पाठ में अनार्य है न ? टीका में म्लेच्छ आ गया, हजार वर्ष हो गये न ? कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा के बाद टीका... म्लेच्छ (भाषा) के बिना, किसी म्लेच्छ यदि कोई ब्राह्मण... देखा ? ब्राह्मण कहा है `स्वस्ति' - ऐसा शब्द कहा, `स्वस्ति' म्लेच्छ से ब्राह्मण ने **`स्वस्ति' - ऐसा कहा, **तब यह म्लेच्छ उस शब्द के वाच्य वाचक संबंध को न जानने से कुछ भी न समझकर** उस ब्राह्मण की ओर भी भाषा (न) समझनेवाला, समझनेवाला यहाँ कैसा लिया है कि उसको

`स्वस्ति' कहाँ तब सुननेवाले को ऊब गया, यह क्या कहते हैं, हम कुछ समझते नहीं न - ऐसा क्या कहते हैं - ऐसा नहीं (लिया)।

यहाँ - ऐसा जीव लिया है। आहाहा ! कि भाषा समझने कों वह टकटकी लगाकर देखते हैं कि यह क्या कहते हैं ? यह `स्वस्ति' ऊब नहीं, शंका नहीं, मात्र समझ में आता नहीं, यह यहाँ क्या कहते हैं **`स्वस्ति'** `स्वस्ति' क्या ? `स्वस्ति' - ऐसा है न? शब्द कहा, यह म्लेच्छ उस शब्द के वाच्य-वाचक, वाच्य-वाचक का अर्थ `स्वस्ति' शब्द वाचक है और उसका अर्थ स्वस्ति तुम्हारा कल्याण हो। स्व आत्मा की अस्ति है - ऐसा कल्याण हो यह उसका वाच्य है। जैसे शक्कर शब्द है यह वाचक है और शक्कर पदार्थ वाच्य है, शक्कर शब्द है उसमें शक्कर पदार्थ नहीं, शक्कर पदार्थ है उसमें शक्कर शब्द नहीं परंतु शब्द वाचक है यह शक्कर वाच्य को बताता है, भाषा तो सरल है भैया। अभी तो दृष्टांत है यह। आहाहा !

`वाच्य वाचक संबंध' यह उसका अर्थ किया वाच्य क्या है ? कि स्वस्ति का जो भाव है यह वाच्य है और स्वस्ति शब्द है वह वाचक है। तो वाचक (शब्द) बताते हैं इस स्वस्ति (शब्द) का अर्थ तब स्वस्ति का अर्थ वह समझते नहीं, और स्वस्ति शब्द सुना तो यह अर्थ न जानने से कुछ भी समझ नहीं सकते, क्या कहते हैं ? स्वस्ति क्या है यह ?

`उस ब्राह्मण की ओर मेंढ़े की भाँति,'** भेड़-भेड़ होती है न, भेड़, भेड़ नीचे देखकर चलते दूसरी उनके पीछे अनुकरण करके चलती जाती है... भेड़ नीचे नीचे देखकर, **`इसीप्रकार भेड़ की तरह सुनते ही उसके ऊपर बराबर लक्ष्य लगाकर' क्या कहते हैं यह ? ऊब नहीं है, अनादर नहीं है, नहीं समझते हैं तो समझना नहीं - ऐसा भी नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! **`भेड़ की तरह, आंखें फाड़कर'** आंखे बंद करके ऐसे के ऐसे - ऐसा नहीं, क्या कहते हैं यह ? सुनना तो है कान से परंतु आंखें फाड़कर अर्थात उनका लक्ष्य वहाँ है भाई, ये यह क्या कहते हैं ? यह स्वस्ति स्वस्ति स्वस्ति **`आंखें फाड़कर टकटकी लगाकर'** आंखे फाड़कर और फिर टकटकी लगाकर आंखें तो ये फाड़ी उतना नहीं परंतु ऐसे टकटकी लगाकर (कि) क्या कहते हैं यह आहाहाहा ! यह तो संस्कृत टीका आचार्यों की है, एक-एक शब्द में बहुत गंभीरता है, यह कहीं कहानी किस्सा नहीं, आहाहा ! दिगम्बर संतो की धर्म कथा... आहाहाहा !

`आंखें फाड़कर टकटकी लगाकर' आंखें तो फाड़ी परंतु उसके ऊपर एकाग्रदृष्टि, उसके ऊपर लक्ष्य करके, आंखें तो फाड़ी पर उसके ऊपर लक्ष्य करके देखता ही रहते है' स्वस्ति कहता है उसको न समझने न समझने के कारण ब्राह्मण देखता

ही रहता है। यह क्या कहते हैं ? `स्वस्ति' आहाहा ! **`किन्तु जब ब्राह्मण की और म्लेच्छ की भाषा का दोनों का अर्थ जाननेवाला**' दोनों का अर्थ जाननेवाला क्या कहते हैं ? ब्राह्मण ने जो स्वस्ति कहा और स्वस्ति को म्लेच्छ भाषा में क्या कहते ? इन दोनों का ही जो जाननेवाला है, स्वस्ति को भी जाने और म्लेच्छ भाषा में स्वस्ति का अर्थ क्या होता है, वह भी जानें, दोनों का जाननेवाला है, है ? ब्राह्मण की और म्लेच्छ की भाषा का दोनों का अर्थ जाननेवाला `कोई दूसरा पुरुष या ब्राह्मण स्वयं' और ब्राह्मण भी स्वस्ति को भी जानते हैं, स्वस्ति का अर्थ भी जानते है, अथवा कोई अन्य स्वस्ति के अर्थ को भी जानते है, एवं स्वस्ति के भाव को भी जानते है, स्वस्ति शब्द को भी जानते है और स्वस्ति शब्द के भाव को भी जानते है। उस ब्राह्मण ने कहा और दूसरा भी हो, यह ब्राह्मण भी दोनों का अर्थ जाननेवाला कहे, अथवा दूसरा कोई आकर दोनों को जाननेवाला उसको कहे। आहाहा !

है ? दोनों का अर्थ, **`दोनों का अर्थ हो** ! जाननेवाला कोई दूसरा पुरुष अथवा वही ब्राह्मण म्लेच्छ भाषा बोलकर' आहाहा ! देखो, अब यह स्वस्ति का अर्थ बतलाते हैं तब म्लेच्छ भाषा आयी, उसे समझाया जाता है कि, `स्वस्ति' शब्द का अर्थ यह है कि **`तेरा अविनाशी कल्याण हो**' स्व-अस्ति, स्व अर्थात तुम्हारी जो वस्तु है, अस्तिरूप - ऐसा तुम्हारी अस्ति में तुम्हारा भान हो जाओ। `स्वस्ति' समझ में आया ? तुम्हारा जो स्वरूप है उसका कल्याण हो... चाहे बाहर की बात कैसी भी हो परंतु स्व जो तुम्हारा है उसकी अस्ति हो। उसकी सिद्धि हो, जो है उससे तुझे यह स्वस्ति का अर्थ है। तुम्हारा कल्याण हो। तुम हो, आहाहा ! तो तुम्हारा कल्याण हो - ऐसा म्लेच्छ भाषा में स्वस्ति का कल्याण हो - ऐसा अर्थ किया। आहाहा ! है ?

`तब**' यहाँ तो ऐसे ही प्राणी लिया, भाषा समझानेवाले ने भी ऐसी भाषा कही, फिर धर्म समझनेवाले ने कहा कि क्या कहते हैं यह ? और उसने कहा कि तेरा कल्याण हो यह अर्थ है। `तब तत्काल'... तत्काल देर नहीं लगाता है, (- ऐसा नहीं कि) थोड़ा विचार करें फिर - ऐसा भी नहीं, आहाहा ! तुम्हारा कल्याण हो, स्वस्ति का अर्थ - ऐसा है प्रभु है ? आहाहा ! तब यह समझाता है तो **`तब तत्काल ही उत्पन्न होनेवाले, अत्यंत आनंदमय अश्रुओं से' आहाहा ! यहाँ तो अभी अंतर के आनंद की बात है नहीं, अभी तो इस तरह हर्ष के आंसू आते हैं, व्यक्ति को बहुत हर्ष, हर्ष, हर्ष, हर्ष के आंसू आ जाते है न ? इसप्रकार हर्ष के आंसू बहुत आते, ऐसे हर्ष के आंसू आये। स्वस्ति का अर्थ यह ? तुम्हारा कल्याण हो, आहाहा ! शब्द तो थोड़े और भावार्थ तो उसका बहुत बड़ा, ऐसे सुनकर आंखमें से अश्रुधारा, आनंदरूपी हर्ष, हर्ष... आहाहा !

अत्यंत आनंदमय हो, `**अत्यंत आनंदमय अश्रुओं से जिसके नेत्र भर जाते है**' आंखों में हर्ष के आंसू भर जाते है, ओहोहो ! स्वस्ति का - ऐसा अर्थ हम तो कुछ नहीं समझते थे और यह क्या कहते हैं यह समझने की मेरी जिज्ञासा थी, कि इसका क्या अर्थ ? कि तुम्हारा कल्याण हो तब अत्यंत आनंद के अश्रुओं से, आंख में हर्ष (रूप) आनंद आया। आहा ! हर्ष का आनंद आया, हर्ष के आंसू आये, हर्ष के आंसू आये और वह रोता है तथा शोक में (भी) आंसू आये... रोते हैं, यदि लड़का मर जाये... यहाँ तो हर्ष के आंसू आये। आहाहा !

अभी तो दृष्टांत है हाँ ! आनंद से जिसके नेत्र भर जाते है फिर देखा ? जिसके आंसू भर जाते हैं, अश्रुधारा... आहाहाहाहा ! `**- ऐसा वह म्लेच्छ इस `स्वस्ति' शब्द के अर्थ को समझ जाता है।**' यह स्वस्ति का अर्थ समझ जाता है, अच्छी तरह समझ जाता है। आहाहा ! बिलकुल अपरिचित व्यक्ति हो, बिलकुल भी स्वस्ति का अर्थ नहीं जाननेवाला, फिर भी वह स्वस्ति के शब्द पर और स्वस्ति कहनेवाले पर बहुमान से टकटकी से देखकर देखा और जब अर्थ किया (तो) खुश हो गया, हर्ष के आंसू आ गये। आहा !

`**शब्द के अर्थ को समझ जाता है**' यह दृष्टांत हुआ। यह तो अभी दृष्टांत हुआ, आत्मा में तो अब (घटायेंगे) आहाहा ! `**उसीप्रकार**' दृष्टांत की भांति व्यवहारी जन भी अर्थात अनादि (का) अज्ञानी प्राणी, व्यवहारी जन है, निश्चय क्या वस्तु है उसकी खबर नहीं आत्मा आनंद स्वरूप है शुद्ध अभेद अखण्ड है उसकी खबर नहीं, नहीं, खबरवाला व्यवहारीजन... आहाहाहा ! जन भी तो दृष्टांत दिये न ? तब यह व्यवहारीजन भी ऐसे, जैसे वह म्लेच्छ भी समझनेवाला नहीं था, व्यवहारीजन भी नहीं समझनेवाले है। समझ में आया ? आहाहा !

`**आत्मा शब्द के कहने पर...**' आत्मा... कहा जिस तरह उसने स्वस्ति कहा, (था) `आत्मा' शब्द के अर्थ का ज्ञान न होने से, आत्मा शब्द का अर्थ अर्थात उसका वाच्य वस्तु क्या है उसका ज्ञान न होने से... देखा ? आत्मा शब्द का ज्ञान बिलकुल नहीं, यहाँ - ऐसा प्राणी लिया है। आहाहा ! `**कुछ भी न समझकर**' कुछ समझता नहीं कि क्या कहते हैं यह ? तुम नहीं समझते अर्थात आत्मा कहनेवाले के प्रति अनादर नहीं, क्लेश नहीं, खेद नहीं, यह क्या कहते हैं ? इस प्रकार नहीं, आत्मा कहनेवाले के प्रति प्रेम से, उसके सामने देख रहे है, आहाहा ! कुछ भी न समझ कर `मेंढ़े की भांति' मेंढ़ा-भेड़ उसकी तरह भेद जैसे एक-दूसरे के पीछे चलते ऐसे भेड़ होती है - भेड़ एक को देखकर अनुकरण करती भेड़ नीचे देखकर कुआ में गिरे तब दूसरा भी गिरती है इसप्रकार यह अनुकरण करनेवाले है। आहाहा ! ऊपर

नहीं देखती यह नीचे देखते पहली भेड़ आगे चले उसका अनुकरण करती भेड़। आहाहा !

इसीप्रकार यहाँ भेड़ की भाँति अनुकरण करनेवाले... आहाहा ! `आँखें फाड़कर' आहाहा ! टकटकी लगाकर देखते रहते हैं, अंदर क्षयोपशम ज्ञान में यह क्या कहते हैं इसप्रकार लगातार टकटकी लगाकर देखते रहते है, आत्मा को जानने के लिये ज्ञान की पर्याय विकसित हो गई, अंदर ज्ञान... उसकी आँखें (कहीं) थी यहाँ ज्ञान विकसित हुआ, विकसित हुआ और टकटकी लगाकर यह क्या कहते हैं ? `आत्मा' कहते हैं, क्या है ? आहाहा ! उसीप्रकार आत्मा का अर्थ न समझनें पर नहीं समझना, छोड़ दे, चलो - ऐसा भी नहीं, क्या कहते हैं इसे समझने की जिज्ञासा में ज्ञान का जो क्षयोपशम था उससे टकटकी लगाकर देखते रहें (कि) क्या अर्थ है, क्या अर्थ है क्या कहते हैं समझ में आया ? आहाहा ! टकटकी लगाकर ज्ञान की पर्याय में रहते हैं (कि) आत्मा का क्या अर्थ है (यह) समझने की जिज्ञासा टकटकी लगाकर खड़ा है। आहाहा ! बापू ! आचार्य महाराज तो...

**`किन्तु जब व्यवहार-परमार्थ मार्ग पर सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले'** यहाँ केवली नहीं लिये है। स्वयं मुनि थे और मुनि अपनी बात करते हैं। मुनि के समय सर्वज्ञ नहीं थे, और मुनि स्वयं `आत्मा' कहनेवाले थे। तब यह मुनि, आहाहा ! व्यवहार और परमार्थ मार्ग दोनों को जाननेवाले थे। भेद से समझाना यह उसका भी ज्ञान था और अभेद वस्तु, क्या है उसका भी ज्ञान था। तब व्यवहार और परमार्थ मार्ग पर `सम्यग्ज्ञानरूपी'... दोनों का सम्यग्ज्ञान, व्यवहार से - ऐसा कहा जाता है और निश्चय यह है। दोनों का जिसको ज्ञान है... आहाहा ! सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले, यहाँ मुनि नहीं लिये, आचार्य को ग्रहण किया है। केवली नहीं क्योंकि केवली उस समय थे नहीं, यहाँ तो आचार्य स्वयं जिस स्थिति में है उस स्थिति में बात करते हैं। आहाहा !

सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ... देखो ! रथ के दो पहिये होते है न, यह व्यवहार और निश्चय दो पहिये। व्यवहार से कैसे समझाना और किस चीज को समझना, दोनों का ज्ञान यथार्थ है। आहाहा ! समझ में आया ? दोनों का ज्ञान हो ! और यह व्यवहार में आया है, आत्मा कहा तो समझे नहीं, तो समझाने का विकल्प तो आया है तब व्यवहार में आया तो है, चाहे आदर नहीं, परंतु आया है विकल्प से समझने को, आहाहा ! समझ में आया ?

सारथी की भांति, **`सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले सारथी की भाँति'** आहाहाहा ! रथ में बैठनेवालों की भाँति नहीं। सारथी की तरह कहा न ! सारथी

जैसे चलाता है दो पहियेवाले रथ को, इसीप्रकार जो मुनि व्यवहार से कैसे कहा जाता है, और निश्चय क्या है दोनों का (ज्ञान है) आहाहा ! ऐसी टीका, भरत खण्ड में अभी यह टीका आत्मख्याति... आहाहा ! आत्मा को अंदर से प्रफुल्लित कर देती है, हिला दिया है, प्रभु तुम कैसे हो नाथ, यहाँ कहाँ रुके हो तुम, आहाहा ! तुमको हमने व्यवहार आत्मा कहकर पुकारा तब तुम समझे नहीं, तब हमको भी समझाने का विकल्प आया है, तब निश्चय और व्यवहार दोनों ही रथ में हम है अभी तो, दोनों भाव, आहाहा ! समझ में आया ? है न सामने पुस्तक ? हम निश्चय में भी है और समझाने का विकल्प आया तब उसमें ज्ञान हमारा है, दोनों का ज्ञान है, हम दोनों का ज्ञान करते हैं। आहाहाहा !

यहाँ तो केवली आत्मा को समझाते है, ऐसी बात यहाँ ली नहीं, क्योंकि अपनी बात करते है, छठवीं गाथा में भी अपनी बात करते है, यह प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्था हम में है, (परंतु) यह मैं नहीं में तो ज्ञायक हूँ, (जो) है उस भूमिका से बात करते हैं, आहाहाहा ! समझ में आया ?

मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्य हों अथवा अमृतचन्द्राचार्य हों, कोई भी संत, दिगम्बर संत सच्चे हों, तब इन दिगम्बर संतो ने आत्मा कहा और वह समझने में आया और समझने के कारण वास्तव में टकटकी लगाकर भाव है, तब आत्मा कहा... वह भी व्यवहार परमार्थ को जाननेवाला कदाचित हो, उसका अर्थ करनेवाला हो, कदाचित दूसरा भी हो। हाँ ! आहाहा ! ***व्यवहार से विकल्प आया है न ? समझाने का भेद - (विकल्प) तो आया है। तब `हम' भी विकल्प में आये है, (आया) हो परंतु आदरणीय नहीं। आहाहा ! और भाषा व्यवहार की होगी, उसके भी हम कर्त्ता नहीं है, आहाहा ! तथा व्यवहार से तुम्हें समझाते है तब तुम व्यवहार से समझोगे इसलिये व्यवहार आदरणीय है - ऐसा नहीं है।*** आहाहाहा !

एक-एक गाथा और एक-एक टीका, जगत का भाग्य... यह समयसार जैसी चीज रह गई !! आहाहा ! एवं यहाँ तो - ऐसा ही आत्मा लिया है, वहाँ भी कहा पांचमी गाथा में... प्रमाण करना, मैं कहता हूँ परंतु, गजब बात है तुम्हारी प्रभु, हम निमित्त आये और तुम्हारे उपादान में ऐसी तैयारी न हो - ऐसा नहीं। आहाहा ! तुमको निमित्त मिले आत्मा को समझानेवाले आचार्य और संत ! आहाहाहा ! और तुम अनुभव करके प्रमाण करो, अनुभव करके हाँ कहना। आहा ! गजब बात है प्रभु ! ओहोहो ! यह भाषा यह व्यवहार, यह निश्चय, यह समझानेवाले व्यवहार से कहते हैं, समझनेवाला भी व्यवहार से निश्चय समझाते है। आहाहा ! ऐसी यहाँ वस्तु ली है। व्यवहार कहा हमने और नहीं समझते हैं - ऐसी बात यहाँ है ही नहीं।

आहाहाहाहा ! समझ में आया?

सभी जगह है न यह, उसमें आया है न ? शरीर और आत्मा को भिन्न बताया है, तब कौन नहीं समझते ? कौन - ऐसा आत्मा है कि नहीं समझे ? आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि आत्मा शब्द कहनेवाला और सुननेवाला यह समझे नहीं तो `कहनेवाला निश्चय-व्यवहार का जाननेवाला है अथवा कोई दूसरा व्यवहार-निश्चय का जाननेवाला, आत्मा का अर्थ दूसरों को समझाते है। आहाहा ! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, अपनी उपस्थिति में हमने उससे कहा, आहाहा ! कदाचित हम कहते हैं व्यवहार निश्चय उस समय दोनों समय दोनों कहनेवाले हमें तो यह समझाया जाता है। परंतु हमने कहा यदि उसका अर्थ करने का समय हमारे पास न हो तब दूसरा उसको अर्थ करनेवाला मिलेगा ही, आहाहा ! और वह समझेगा ही। आहाहाहाहा ! ऐसी बात है।

व्यवहार परमार्थ मार्ग को, जो कहते हैं किं व्यवहार में आया कि नहीं, ? परमार्थ का भी ज्ञान है एवं व्यवहार (से) विकल्प आया है। छद्मस्थ की बात है न ? यहाँ केवली की बात है नहीं, कारण कि यहाँ केवली कहते हैं और वह लोग समझते हैं - ऐसा समय तो यहाँ है नहीं। यहाँ तो अपने समय की बात करते हैं। आहाहा ! जिस समय संत मौजूद थे कुन्दाकुन्दाचार्य अमृतचन्द्राचार्य आदि मुनियों ने... उन मुनियों ने दूसरों को कहा आत्मा और वह आत्मा का अर्थ नहीं समझे, तब उस समय वही मुनि स्वयं विकल्प में आये एवं परमार्थ का ज्ञान है दोनों (का) ज्ञान, रथों में चलनेवाला आया। आहाहा ! तब यह कहनेवाला भी आया कहनेवाले को समय नहीं मिला और उस समय वह समझे नहीं, समझ में आया ? और बाद में कोई कहनेवाला निश्चय-व्यवहार को जाननेवाला (है)... समझमें आता है। आहाहा !

एक-एक शब्द और एक-एक अर्थ में कितनी गंभीरता, उसके क्षयोपशम ज्ञान में कैसी स्थिति... आहाहा ! ऐसी बात संतो (की) ! एक-एक शब्द भाव भरा है, ऐसी चीज कहीं अन्यत्र नहीं। जिसके अंदर मान (है) और मान के साथ सुननेवाला तुरंत ज्ञान करेगा ही, यहाँ तो यह कहते हैं। आहाहाहा ! देखो ! प्रवचनसार में - ऐसा कहा न फिर, हम बात करते हैं तो आज समझ लो आज ही समझो, बायदा छोड़ दो - बाद में समझेंगे, फिर समझेंगे - ऐसा छोड़ दो। नेमचन्द्रभाई ! आहाहा ! दिगम्बर संतों के बाग बगची भी बातें तो देखो ! आहाहा ! उनके फूलों की सुगंध तो देखो ! आहाहा ! जब हम व्यवहार में आये समझाने के लिये, हम छद्मस्थ है न। छद्मस्थ है अतः व्यवहार विकल्प में आये हैं। आहाहाहा !

और परमार्थ की तो हमको खबर है, विकल्प से रहित हमारी चीज है और

उसकी भी वस्तु विकल्प से रहित है, इन दोनों का हमको ज्ञान है। आहाहा !

व्यवहार, परमार्थ मार्ग पर सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले। महारथ को चलानेवाले... आहाहा ! जिसको अंतर अनुभव भी है और समझाने का विकल्प आया है ऐसे दोनों चक्र का रथ चलानेवाला, जिसको समझाने का विकल्प है नहीं, उनकी बात तो यहाँ है नहीं। आहाहा ! वह तो अंदर आनंद में मग्न है। आहाहाहा ! समझ में आया ?

परंतु जिसको व्यवहार का विकल्प आया वह आत्मा शब्द को नहीं समझे, कहने का विकल्प आया, यह समझता नहीं तब हमें उसका अर्थ करना होगा। आहाहा ! देवीलालजी। आहाहाहा ! अरे प्रभु, यह क्या है भाई ? आहाहा ! यह क्या चीज है यह ? आहाहा ! एक-एक गाथा, उसके एक-एक शब्द में, कितनी गंभीरता है। आहाहा ! कहते हैं कि आत्मा कहनेवाला वही सम्यग्ज्ञानरूपी महारथी निश्चय से व्यवहार में आया, यदि बोलने का समय न रहा तो निर्विकल्प में चले गये, आहाहा ! आत्मा कहा तो अवश्य परंतु बाद में अर्थ करने का समय नहीं रहा और अंतर में चले गये। आहाहाहा ! तब दूसरे आचार्य या मुनि जिनको जो विकल्प और निर्विकल्प दोनों का ज्ञान है और विकल्प में आये महारथ चलानेवाले... आहाहाहाहा !

सारथी की तरह है न ? महारथ को चलानेवाला सारथी, महारथ में बैठा है भगवान, यह भगवान को... आहाहा ! भगवान को क्या कहना है, यह सारथी रथ को चलाते हैं... आहाहा ! ***तीनलोक के नाथ सर्वज्ञ जिनेश्वर देव वह रथ में बैठे हैं और सारथी की जगह यह (आचार्य) है। वह माल तो परमात्मा तीनलोक के नाथ सर्वज्ञदेव का है, परंतु हम सारथी की तरह इस रथ को चलाते हैं।*** आहाहा ! निश्चय - ऐसा है और व्यवहार - ऐसा है। आहाहाहा ! गजब बात है।

महारथ को चलानेवाला कहा न ? निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग को जिसे चलाना है जो अंतर में ठहर गये है ऐसे भी हैं और विकल्प आया - ऐसे रथ को परमार्थ को चलानेवाले। आहाहा ! सारथी के समान, यहाँ तो सारथी की भाँति, आहाहा ! सम्यक् वस्तु है, उनको यह भी ज्ञान है, और ज्ञान में यह आत्मा ही प्रतिष्ठित है। आहाहा ! तब यह निश्चय से व्यवहार की जो बात की थी उससे विकल्प भी आया एवं समझने की चीज भी समझे हैं, इन दोनों के अर्थ में चलानेवाला सारथी (कहा), जिनको व्यवहार की पड़ी ही नही एवं अंदर में स्थित है उनकी यहाँ बात नहीं, केवली की यहाँ बात नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

वह आत्मा समझे नहीं तो फिर दूसरा भी आया, उन्हें भी अपनी आत्मा का ज्ञान है और विकल्प आया है कि यह समझे नहीं अतः समझाना ! आहाहाहा !

मोक्षमार्ग प्रकाशक में आया है न ! प्रथम तो मुनि को अशुभ राग तो होता नहीं, परंतु धर्म का लोभी देखकर कोई धर्म का शुभराग आता है... आहाहा ! धर्म का लोभी, धर्म को समझनेवाला - ऐसे को देखकर शुभभाव आता है, तब शुभभाव में समझाते हैं। आहाहा ! है न भाई ? मोक्षमार्ग प्रकाश, आहाहा ! यह तो टोडरमल, बनारसीदास, राजमल्लजी, भागचन्द्रजी, ओहोहोहो ! संतों की बात तो क्या कहना... परंतु इनके पण्डित भी ! आहाहा ! जैन धर्म क्या वस्तु है यह टिका रखा है।

पण्डित जो ग्रहस्थाश्रम में रहते है, पर इस वस्तु में क्या फर्क है ? सम्यग्दर्शन में... सिद्ध के और तिर्यंच के सम्यग्दर्शन में फर्क है ? आहाहाहाहा ! यहाँ कहते हैं सारथी के समान अन्य कोई आचार्य अथवा तो आत्मा शब्द को कहनेवाले स्वयं व्यवहार में आते, देखो समझाने का विकल्प आया - ऐसा कहते हैं। आत्मा कहा और विकल्प छूट गया और निर्विकल्पता में आ गये, तब उनकी बात अलग है, तब दूसरे आत्मा मुनि संत कोई मिले उनको, यह व्यवहार मार्ग (में) रहते हुये आत्मा शब्द का अर्थ बतलाया, क्या ? आहाहाहाहा !

पुण्य-पाप के भाव को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा है ? पर का कुछ कर सके, जगत को तार दे वह आत्मा ! व्यवहार भी - ऐसा लिया है - ऐसा (नहीं) पर को तार दे - ऐसा। यह भी नहीं कहाँ यहाँ तो। आहाहा ! समझ में आया ?

यह आत्मा क्या है ? कि 'दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जो सदा प्राप्त हो, वह आत्मा' आहाहा ! देखो ! भेद करके इतना बताया। मुनिराज विकल्प में आये और वह आत्मा कहते हैं तो ***नहीं समझे तब व्यहार से - ऐसा कहा, प्रभु ! हम उसे आत्मा कहते हैं कि (जो) दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो ! पर के कार्य को करे और उसकी उपस्थिति में पर का कार्य व्यवस्थित हो, वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा। उसीप्रकार दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम को प्राप्त हो, कि जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बंधे उस भाव को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा।*** आहाहा !

गजब बात है भाई ! दिगम्बर संतों की इतनी गंभीरता ! आहाहा ! गजब बात है बापू दूसरों को दुःख लगे... बस यह एक ही सत्य है दूसरे कहीं नहीं ? बापू ! सत्य तो यह एक ही है। आहाहा ! सर्वज्ञ परमात्मा ! आहाहा ! इस रथ को चलानेवाले संत ! आहाहाहा ! उसका मार्ग निश्चय और व्यवहार, आहाहाहा ! यह दिगम्बर संत स्वयं पुकार करते हैं, अपनी स्थिति को ही बताते हैं, हम निश्चय और व्यवहार दोनों में है। अभी तो समझाने को आये तब निश्चय और व्यवहार। हम केवली नहीं है, हम निर्विकल्प में स्थित नहीं है एवं व्यवहार को समझाते है। आहाहा !

दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जो सदा प्राप्त हो, भाषा देखो ! आहाहाहा ! प्रभु इसको हम आत्मा कहते हैं, व्यवहार में हम आये हैं निश्चय में तो है ही, तब विकल्प द्वारा भी तुमको - ऐसा कहते हैं और तुम सुननेवाले भी विकल्प से - ऐसा सुनते हो, और क्या सुना ? कि जो अंदर आत्मा है, यह दर्शन, ज्ञान, चारित्र को सदा प्राप्त हो, आहाहा ! राग को प्राप्त हो कि व्यवहार रत्नत्रय को प्राप्त हो, या उपदेश देनेवाला विकल्पवाला आत्मा हो, यहाँ - ऐसा नहीं कहा, कहनेवाला विकल्प में आया है, परंतु बताया वह आत्मा, कि जिसे यह आत्मा, दुनियाँ को समझाते हैं, विकल्प द्वारा (ज्ञात हो) यह आत्मा - ऐसा नहीं कहा। समझ में आया ? आहाहाहाहा !

यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जो सदा प्राप्त हो, गजब बात है नाथ ! तुम्हारे परमार्थ अर्थ को बताना, व्यवहार से बताना, आहाहा ! भेद करके भी बताना यह व्यवहार। यह भी भेद करके बताना, परंतु बताया क्या ? प्रभु तुम्हारे आत्मा को... आत्मा तो कहा, तब - ऐसा अर्थ है कि जो दर्शन-ज्ञान और शांति इन भेदरूप परिणमे, प्राप्त हो, वह आत्मा, आहाहाहा ! किसी की दया पालनेवाला वह आत्मा। व्यवहार से भी यह नहीं कहा, व्यवहार से यह लिया है (कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को) आहाहा ! गजब बात है।

समयसार कोई - ऐसा बन गया, कुन्दकुन्दाचार्य ने (बताया) आहाहा ! धन्य काल... समझ में आया ? कि हम जो आत्मा इसको कहते हैं प्रभु हम व्यवहार में विकल्प में आये है और तुमको समझाते है न ! परद्रव्यको व्यवहार तो आता है, और तुमको व्यवहार से समझाते हैं - यह भी आया परंतु व्यवहार क्या ? कि यह आत्मा चले गति करे वह (त्रस) आत्मा, स्थिर रहे वह स्थावर, गति करे वह त्रस, दया पालने का भाववाला आत्मा ! आहाहा ! हमारी भक्ति, तीर्थंकर की भक्ति करे यह आत्मा... आहाहाहा ! यह आत्मा, व्यवहार को बराबर टिकाए रखे वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा। आहाहा ! नरेशजी भाग्य !

दर्शन-ज्ञान-चारित्र को... प्राप्त हो इतना लिया, सदा प्राप्त हो, आहाहा ! भेद करके कहा परंतु इतना भेद लिया प्रभु यह तुम्हारी चीज जो है न ? हम तो इसको आत्मा कहते हैं कि जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र को सदा प्राप्त हो, वह भी व्यवहार आया, भेद से बताया न ? आहाहा ! इसमें कोई व्यवहार रत्नत्रय का राग आये यह तो बात कहीं नहीं प्रभु ! आहाहा ! इतना भेद किये बिना समझ सकते नहीं। यह आता है उस कलश टीका में आता है, बहुत बुद्धिवाला हो तो भी, कलश टीका में आता है न ? इतना तो कहना ही पड़े, ज्ञान वह आत्मा, ज्ञान वह आत्मा, इतना तो कहना ही पड़े। आहाहा ! वह आत्मा इतना तो सद्भूत व्यवहार हुआ। आहाहा ! यह भी

ज्ञान सो आत्मा यह भी सद्भूत व्यवहार हुआ। आहाहा ! यहाँ मोक्षमार्ग एक साथ बताया है, प्रभु आत्मा इसको कहते हैं... आहाहा ! कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र को निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को हाँ ! व्यवहार की बात यहाँ नहीं, व्यवहार से कहते परंतु वह भेद आया न अब, व्यवहार। परंतु भेद आया क्या ? कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्विकारी दशा, वीतरागी पर्याय को प्राप्त हो वह आत्मा उसे तू जान ले कि आत्मा है, आहाहा ! समझ में आया ? जो सदा प्राप्त हो, आहाहाहा ! किसी समय व्यवहार को प्राप्त और कभी दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो - ऐसा नहीं कहा। आहाहा ! गजब बात करते हैं एक-एक गाथा में तो बारह अंग का (सार भर दिया) विशेष कहेंगे। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ३१ गाथा-८ ता. ११-७-७८ मंगलवार अषाढ सुदी-६ सं.२५०४

आठवीं गाथा की टीका चलती है न ? यहाँ आया है, शिष्य को गुरु ने आत्मा शब्द कहा तब आत्मा का अर्थ नहीं समझने से गुरु के सन्मुख आंख फाड़कर टकटकी लगाकर (आत्मा का) क्या अर्थ है ? समझने की जिज्ञासा में खड़ा है। आहाहा !

उसमें गुरु ने कहा कि आत्मा किसको कहते कि स्वयं व्यवहार मार्ग में रहते हुये - ऐसा कहा न ? उपदेश देने को विकल्प में आते है न, यहाँ बात छद्मस्थ मुनि की है न ? आहाहाहा ! धर्म समझने को आया हैं और उसका प्रश्न है कि तुम आत्मा कहते हो, तब आत्मा क्या कहलाती है ? प्रश्न भले न किया परंतु उसकी दृष्टि वहाँ लगी है कि आप आत्मा क्या (किसे) कहते हैं ? उसका अर्थ कहकर शब्द का अर्थ बताया, (जो) दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो। आहाहा ! आत्मा जो अंदर है वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र को प्राप्त हो, सदा प्राप्त हो, फिर हिन्दी में विशेष लिखा है, उसका अर्थ यह बहुत संक्षिप्त भाषा में (कहा) छह द्रव्य की यहाँ बात है नहीं, आत्मा अर्थात दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्मल पर्यायरूप परिणमित हो यह आत्मा, बहुत सूक्ष्म बात की है इसमें। आहाहा ! गुरु ने कहा और उसने ध्यान से सुना।

ऐसी बात कहीं अन्यथा नहीं, दिगम्बर संतों के अतिरिक्त... यह कोई गजब बात है, यह बात संप्रदायवालों को खबर नहीं, जिसके घर में है, हाँ ! तुम्हारे तो घर

में है। आहाहा !

क्या कहते हैं देखो ! ओहोहो ! कहीं छःद्रव्य की बात नहीं की, गुरु ने तो आत्मा शब्द लिया कहा है बस, कारण कि आत्मा जानेगा तब छह द्रव्य, 'एयं जाणहि सो सव्वं जाणहि,' वह सर्व जानने में आयेगा, तब एक आत्मा कहा तथा श्रोता भी अकेला आत्मा क्यों कहते हैं ? छः द्रव्य क्यों नहीं कहते - ऐसा (प्रश्न) नहीं (किया)। सुननेवाले को भी जिज्ञासा रुचि यह क्या कहते हैं बस यही बात (है), आत्मा किसे कहते हैं ? आहाहा ! कहनेवाले भी मात्र आत्मा कहते हैं और सुननेवाला भी आत्मा क्या है यह समझने एक जिज्ञासा है। आहाहा !

गुरु ने छह द्रव्य नहीं कहे और शिष्य ने प्रश्न भी नहीं किया कि आप आत्मा कहते हो परंतु छह द्रव्य तो कहो ? नम्र विनयवंत है, आप आत्मा किसे कहते हैं ? क्योंकि आत्मा की पर्याय में छह द्रव्य तो जानने में आ जाते हैं, ऐसी पर्याय की ताकत है, अर्थात यहाँ छह द्रव्य को जानने का प्रश्न नहीं किया, यहाँ तो आत्मा कहा। आहाहा ! तब उसने इतना कहा है भेद द्वारा कथन करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र सो आत्मा, अंतर में उसकी प्रतीतिरूप दर्शन उसका ज्ञान उसकी रमणता उसे प्राप्त हो। आहाहाहा ! उसे आत्मा कहते हैं।

शिष्य ने - ऐसा जब अर्थ सुना... यहाँ तो ऐसी ही तैयारीवाला शिष्य लिया है, आहाहा ! दिगम्बर संतों की कथनी, स्वयं की तैयारी बहुत है, परंतु सुननेवाला भी तैयारीवाला लिया है। आहाहा ! नेमिचन्द्रभाई ! ऐसी बात है बापू ! यह कहानी किस्सा नहीं, यह तो वीतराग का अंतरंग पेट है। जिनेश्वर देव त्रिलोकनाथ आत्मा किसे कहते हैं, यह आचार्य अपने शब्दों में कहते हैं। प्रभु ! एक बार सुनो (तो) यहाँ आत्मा इसको कहते हैं कि जो सम्यग्दर्शन, विश्वास जो करता है..... ज्ञान करता है और चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा, तब उसका अर्थ इनको प्राप्त हो उस पर तुम्हारा लक्ष्य नहीं, सुननेवाले का लक्ष्य यह आत्मा प्राप्त हो कौन ? आत्मा ? किसे ? कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र को, तब उसका लक्ष्य द्रव्य ऊपर जाता है। समझ में आया ?

क्या कहा... यह तो अध्यात्मवाणी है बापा ! आहाहाहा ! भाग्यवान को सुनने मिले ऐसी बात है। ओहोहो ! - ऐसा कहा प्रभु, हम इसको आत्मा कहते हैं, कि जो श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र को प्राप्त हो - ऐसा नहीं कहा कि, पर का कर्त्ता हो वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा कि रागरूप परिणमे, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा (करे) वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा। आहाहा ! तथा तीन बोलरूप परिणमे, है तो पर्याय भेद, परंतु यह अभेद आत्मा वस्तु तीनरूप परिणमे वह आत्मा, तब श्रोता का लक्ष्य तीनरूप परिणमनेवाला द्रव्य है, आत्मा है, उसके ऊपर दृष्टि जाती है, ***भेद ऊपर...***

भेद से कहा, परंतु कहनेवाले को भी भेद का अनुसरण नहीं, और सुननेवाले को भी भेद का अनुसरण नहीं। मोटानी ! ऊँची बात है यह। आहाहा ! शिवलालभाई ! - ऐसा कहते हैं।

आत्मा अर्थात जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भावरूप, पर्यायरूप परिणमे, प्राप्त हो - यह आत्मा भेद करके आचार्यने कहा तो आत्मा, भेद करके बताया तो आत्मा (परंतु) भेद से तो बताया, भेद को बताना नहीं, भेद से अभेद को बताना है आहाहाहा ! समझ में आया ? बहुत (गंभीर) ऐसी बात तो कहाँ ? आहाहा ! क्या कहते हैं ? कहते हैं कि प्रभु, हम किसे आत्मा कहते हैं, कि जो दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप... रागरूप परिणमे वह आत्मा, यह बात निकालदी, व्यवहारपने परिणमे यह बात तो है ही नहीं, मात्र दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमे वह आत्मा, जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा... यहाँ दर्शन, ज्ञान, चारित्र को बताना नहीं, दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप को प्राप्त हो वह आत्मा, बताना है (आत्मा) आहाहाहाहा !

समझ में आये उतना समझना बापू यह तो अलौकिक बाते हैं, त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव उनकी वाणी अरे यह कहीं जगत में है नहीं। आहाहा ! पर समझनेवाले लोग भी बहुत कम हैं। कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र - ऐसा नहीं कहा। दर्शन, ज्ञान और चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा अर्थात वहाँ दृष्टि आत्मा ऊपर लगाना है, भेद ऊपर नहीं। भेद से समझाया परंतु अभी कहेंगे, ***हमने भेद से समझाया परंतु हमको भी भेद का अनुकरण अनुसरण करना नहीं, और तुम्हें भी हमने भेद से समझाया, परंतु हमने तुम्हें समझायी अभेद चीज है जो अंदर वह भगवान आत्मा स्थित है उसको, तो तुम्हें भेद का अनुसरण करना नहीं, परंतु जो भेदरूप परिणमता है वह कौन ? कि आत्मा।*** आहाहाहा !

यहाँ श्रोता को और वक्ता को दोनों को ही भेद से कहते हैं और वह भेद से सुनते हैं परंतु सुनने में (- ऐसा लगे) भेदरूप परिणमते है वह आत्मा, बताना है आत्मा, भेदरूप परिणमे वह आत्मा बताना नहीं। आहाहाहाहा ! इतने शब्दों में कितना भाव भरा है, दिगम्बर संतो की वाणी, आहाहा ! जगत इनके सामने भरे पानी, क्यों नरेशजी। आहाहा ! प्रभु यह तो शांति की बात है नाथ, यह कोई पक्ष की बात नहीं है, जैन दर्शन कोई पक्ष नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा ! यह स्वरूप है यह आत्मा। आहाहा ! क्योंकि वस्तु आत्मा यह जिनस्वरूप है '**घट घट अंतर जिन बसे घट-घट अंतर जैन, मतमदिरा के पान सों मतवाला समझे न**' अपने अभिप्राय में पागल हो गये है तब वस्तु क्या चीज है यह समझते नहीं, कोई कहता कि राग करना है एवं राग करते-करते होगा ! - ऐसा करने से होगा ! निमित्त

से होगा ! आहाहा !

यह जिनस्वरूपी भगवान आत्मा यह समयसार नाटक का शब्द है। घट-घट अंतर जिन वसे, यह जिन आत्मा - ऐसा कहकर आत्मा जिनस्वरूपी कैसा है ? आहाहाहा ! कि जैन अर्थात यह जिन स्वयं जैनरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हो यह वीतरागी रूप परिणमे वह आत्मा। समझ में आया ? आहाहाहा ! (श्रोता :- अंगुली से चन्द्रमा बताया सो अंगुली को देखना नहीं चन्द्रमा देखना) नहीं यह अंगुली तो भिन्न वस्तु हुई। यह तो अंदर से भेद से बताया, तब भेद को बताना नहीं। भेद अभेद को बताते हैं, कहनेवाले का आशय भी - ऐसा है कि हम भेद से कहते हैं, परंतु हमें भी भेद का अनुसरण करना नहीं, और तुम्हें हम कहते हैं कि प्रभु अंदर द्रव्य जो वस्तु है अंदर जिनस्वरूपी अनादि अनंत आनंद कंद प्रभु ध्रुव जो आत्मा परम सामान्य इसको हमें बताना है, तब उसको बताने में जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेदरूप जो परिणमे, यह कहकर बताना है अभेद। उस दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमे तब दर्शन, ज्ञान, चारित्र को बताना है - ऐसा नहीं। आहाहा ! दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो प्राप्त हो। आहाहा ! गजब बात है अमृतचन्द्राचार्य एक हजार वर्ष पहले (हुये) कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले (हुये) और यह टीकाकार एक हजार वर्ष पहले (हुए)। ओहोहो ! उस समय श्वेताम्बर पंथ तो निकल चुका था, कुन्दकुन्द आचार्य के समय निकल चुका था। आहाहाहाहा ! परंतु ऐसी (उत्कृष्ट) वाणी कहनेवाले थे, उनकी भी परवाह नहीं की, संप्रदायवालों ने ?

यहाँ भगवान की भक्ति करे और भगवान का स्मरण करे, वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा। आहाहा ! जिनेश्वरदेव का भक्त हो, यह आत्मा - ऐसा ही नहीं कहा। आहाहा ! यहाँ तो प्रभु उस तरफ का लक्ष्य करने से... लक्ष्य तो वहाँ करना है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का लक्ष्य करना नहीं, वह द्रव्य ज्ञायक स्वरूप एक है, इसका लक्ष्य करने से दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय उत्पन्न होती है, तब यह पर्याय भेद से भी (जो) प्राप्त होता है - ऐसा आत्मा कहना है, समझ में आया ? आहाहाहा ! यह आठवीं गाथा। बापू ! यह व्याख्यान तो उन्नीसवीं बार चलता है और व्यक्तिगत तो सैकड़ों बार पढ़ा है, अंदर में तो..... आहाहाहा !

भगवान आत्मा अनंत अनंत गुणों का एकरूप धर्मी उसको अमुक दर्शन, ज्ञान, चारित्र धर्म से... धर्म को धर्मी प्राप्त होता है - ऐसा लिया, मुख्य असाधारण धर्म को लिया, असाधारण शब्द लिया न भाई ? असाधारण धर्म को बताना है। आहाहाहा ! तब असाधारण धर्म ये, कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र, किसी दूसरी चीज में नहीं, कोई दूसरे जीव में है नहीं। ओहो !

ऐसा जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, है पर्याय है भेद परंतु वह वस्तु इसको प्राप्त करे उसको आत्मा कहते हैं। तब श्रोता का लक्ष्य दर्शन, ज्ञान, चारित्र के परिणमन ऊपर नहीं, यह दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमनेवाला आत्मा वहाँ लक्ष्य है। आहाहाहा ! समझ में आया ? समझ में आये उतना समझना बापू ! यह तो तीनलोक के नाथ जिनेश्वर देव सीमंधर प्रभु उनके पास गये थे सम्वत् उन्नचास में आठ दिन रहे थे, यह वाणी है वहाँ की, आहाहाहा ! ऐसी वाणी कहीं भरतक्षेत्र में है नहीं कहीं। आहा-ओहोहोहोहो !

क्या कहते हैं ? कितना स्पष्टीकरण कर दिया है। व्यवहाररूप परिणमे यह आत्मा नहीं। तब व्यवहार से निश्चय हो - यह तो है ही नहीं, परंतु जो निश्चय वस्तु है ज्ञायक, यह दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमे उसरूप परिणमे वह आत्मा, परिणमे वह पर्याय आत्मा - ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहाहा ! अरे - ऐसा मनुष्य भव उसमें यह वीतराग त्रिलोकनाथ की वाणी... आहाहा ! सनातन सत्य दर्शन। आहाहा !

गुरु ने शिष्य से आत्मा कहा तब शिष्य तो आत्मा किसको कहते हैं, इसको समझने की जिज्ञासा में खड़ा है, दूसरी कोई चीज नहीं, यह क्या कहते हो ? हम समझते नहीं प्रभु, तुमने आत्मा कहा परंतु आत्मा क्या ? किसको आत्मा कहना ? तब गुरु कहते हैं (कि) भाई जो चीज है... आनंद का नाथ प्रभु शुद्ध स्वरूप स्वभाव वस्तु जो परिणमन में आती है तो दर्शन-ज्ञान में आती है, तब दर्शन-ज्ञान-चारित्र से, पर्याय से तुमको बताते है कि यह पर्याय परिणमे परंतु परिणमनेवाला वह आत्मा। देवीलालजी ! समझ में आये उतना समझना भाई। यह तो उसकी पूरी बात श्रुतकेवली कह सकें। आहाहाहा !

यह बात मूल रकम की बात है, दर्शन, ज्ञान, चारित्र को (प्राप्त हो) फिर टीकाकार ने सरल हिन्दी अर्थ किया, परंतु उसका अर्थ ही यही कि त्रिकाल रहनेवाली चीज यह वर्तमान में अंदर ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप परिणमे वह आत्मा। ***वस्तु त्रिकाल है परंतु यहाँ तो उसको परिणमनेवाला यह सदा ले लिया है अर्थकार ने कि सदा वह दर्शन, ज्ञानरूप परिणमे यह परिणमे वह आत्मा, इस परिणमन ऊपर तुम्हारी दृष्टि नहीं होना चाहिए, परिणमे वह आत्मा वहाँ तुम्हारी दृष्टि होना चाहिए। प्रेमचन्द्रजी*** *!* यह बात सुनी थी वहाँ ? रात को कहते थे कि हम गुजराती समझ कर आयेंगें। अच्छी बात कही। आहाहा !

ऐसा जब सुना, कैसे शब्द ? प्राप्त हो वह आत्मा है, वहाँ वजन है, वजन कहाँ है कि '**दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा**' तब - ऐसा सुना... आहाहा ! शिष्य को आत्मा का अर्थ... लक्ष्य कराने को यह आत्मा (जो) दर्शन, ज्ञान, चारित्र

को प्राप्त हो यह आत्मा - ऐसा कहा तब एकदम तत्काल दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप प्राप्त होनेवाला आत्मा, उसके ऊपर उसकी दृष्टि गई। आहाहाहा ! समझ में आया ?

तब श्रोता (भी) - ऐसा लिया है कि उन्होने कहा और उसकी दृष्टि एकदम आत्मा ऊपर गई। समझ में आया ? कोई विशेष माँग नहीं, विशेष स्पष्टीकरण करो यह भी नहीं। बस यह (इतना) कहा। प्रभु आप आत्मा किसको कहते हैं, हम समझ सकते नहीं, तब प्रभु सुन ! आहाहा ! ***अंदर भगवान जिनस्वरूपी प्रभु जिसको आत्मा कहो, जिन कहो, ध्रुव कहो, सामान्य कहो, एकरूप कहो, नित्य कहो, यह ही आत्मा, अनित्य ऐसे भेदरूप दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप प्राप्त हो।*** आहाहा ! क्या कहा ? चारित्र को जो प्राप्त, उसको आत्मा प्राप्त हो - ऐसा यहाँ नहीं कहा है। ऐसे तो यहाँ दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, उससे आत्मा प्राप्त हो - ऐसा कहा नहीं। आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो यह आत्मा (- ऐसा कहा) आहाहा ! गजब बात है।

भरत क्षेत्र में समयसार सिद्धांतशास्त्रों में शिरोमणि है। आहाहा ! अरे ऐसी भेंट दे गये प्रभु, कुन्दकुन्दाचार्य बना कर भेंट दे गये। लो प्रभु आगे है, जयसेनाचार्य की टीका में। समयसार बनाकर भेंट दिया। आहाहा ! कहते हैं स्वीकारो नाथ अब स्वीकारो, आहाहा ! भेंट दी यह स्वीकारो नहीं ? आहाहा !

इसप्रकार तुम्हारे आत्मा में, आहाहा ! ऐसी पर्याय में प्राप्त हो, आहाहा ! दर्शन, ज्ञान, चारित्र से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा नहीं कहा। यहाँ तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जो प्राप्त हो, जो प्राप्त हो आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, तब सुननेवाले को वहाँ आत्मा ऊपर लक्ष्य कराना है, कि जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा। आहाहाहा ! यह सिद्धांत, यह सिद्धांत यह वीतराग की वाणी देखो न ! सत् का पुकार करती है। आहाहा ! प्रथम सम्यग्दर्शन। (श्रोता :- भले तीन बोल कहे परंतु साथ में तीनों आते ही है।) वस्तु जो है, उसके ऊपर दृष्टि जाने से दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय प्राप्त होती है। चौथे गुणस्थान में स्वरूप आचरण चारित्र होता है। समझ में आया ? ***सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण तीनों एक साथ हैं, तब इन तीनों को प्राप्त हो वह आत्मा तब उस श्रोता का लक्ष्य द्रव्य ऊपर जाता है। आहाहा ! जो पर्याय प्राप्त है उसके ऊपर लक्ष्य नहीं जाता, कारण कि प्राप्त कौन ? कि आत्मा।*** कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा, दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! अर्थात वहाँ लक्ष्य, ध्येय आत्मा ऊपर कराना है - ऐसा ध्येय कहा, आहा ! जो भगवान आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय को प्राप्त हो। आहाहा ! ऐसे भेद से उसको समझाया, लेकिन समझाया तो आत्मा परंतु भेद से समझाया, तब भेद ऊपर लक्ष्य सुननेवाले को करना

नहीं और कहनेवाले का भी भेद ऊपर लक्ष्य रखना नहीं। आहाहा ! समझ में आया? आहाहा !

तब श्रोता जब सुनता है `तब' आहाहा ! तत्काल ही उसी समय, उत्पन्न होनेवाला आहाहा ! पर्याय में आनंद उत्पन्न होनेवाला, या सुनते ही तुरंत सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्राप्त होता है। आहाहा ! क्योंकि दृष्टि उसकी वहाँ कराई है और दृष्टि जब वहाँ द्रव्य ऊपर की तब परिणमन में दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय उसी समय (तत् क्षण) उत्पन्न होती है। आहाहाहा ! समझ में आया ? तब, उस समय - ऐसा सुनते समय, तत्काल ही, तत्काल ही है तुरंत ही, एकदम आहाहा ! यह अपनी बुद्धि से पढ़े तो कुछ समझ में आये - ऐसा नहीं, यह चीज ऐसी है बहुत गंभीर बहुत गंभीर ओहोहोहो ! पर्याय को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा कहकर आत्मा ऊपर दृष्टि कराई है पर्याय ऊपर नहीं परंतु आत्मा ऊपर दृष्टि कराई, वहाँ तुरंत उसको दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय को आत्मा प्राप्त हो गया। आहाहा ! समझ में आया? (श्रोता :- किसी किसी को होता है कि सभी को ?) यह कहीं यह बात ही नहीं, किसी किसी की बात नहीं। यहाँ तो होता है ऐसी बात है, नहीं होता तो ऐसे श्रोता को यहाँ लिया ही नहीं। आहाहा ! यहाँ तो होता ही है - ऐसा श्रोता लेना है। आहाहाहा !

संत - ऐसा कहते हैं कि हमने अपनी आत्मा का जो आगम कुशलता और अनुभव से सम्यग्दर्शन जो प्रगट हुआ है, हम पंचमकाल के छद्मस्थ हैं, भगवान के बाद तो एक हजार, पन्द्रह सौ वर्ष हो गये परंतु हम कहते हैं, सौगंधपूर्वक कहते हैं, कि हमें जो आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ और सम्यग्दर्शन हुआ, हम पतित नहीं होंगे, इस सम्यग्दर्शन से हम केवलज्ञान लेंगें। आहाहाहाहा ! यह वाणी (गाथा) ३८ (समयसार) में है ७२ (प्रवचनसार) में है (श्रोता :- बिना गिरे हुये) आहाहाहा ! प्रभु तुम तो पंचमकाल के साधु, भगवान के पास गये नहीं न अमृतचन्द्राचार्य, तथा कुन्दकुन्दाचार्य तो गये थे, हम भगवान के पास गये थे। आहाहा ! तीनलोक का नाथ भगवान का भगवान, आहाहा ! भगवान है यह तो पर्याय है यह तो महा त्रिकाली स्वरूप भगवान है। आहाहा ! उनके पास हम गये थे एवं हमको जो दर्शन हुआ दर्शन ज्ञानादि चारित्र की पर्याय स्वरूपचरणरूप है। (जो) है वह अब पतित होगी - ऐसा नहीं। आहाहा ! हम सोगंधपूर्वक पंचमहाव्रत के धारी विकल्प से सत्य कहते हैं। ***हम अल्पज्ञ होने पर भी, पूर्णज्ञान, (पूर्ण) हुये बिना भी, पूर्ण ज्ञानी के पास पास गये बिना ही, पूर्णज्ञानस्वरूप (निज) भगवान के पास हम गये है, तब द्रव्य जैसे पतित होता नहीं, द्रव्य का जैसे अभाव नहीं होता, इसीप्रकार हमारे सम्यग्दर्शन***

का भी कभी अभाव नहीं होगा। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

वस्तु जो भगवान जिनस्वरूपी अनादिअनंत नित्यानंद प्रभु अंदर है यह कभी अन्यद्रव्य परद्रव्यरूप होता नहीं तब इस द्रव्य की हमको जो दृष्टि हुई है। आहाहाहा ! हम कहते हैं पचंमहाव्रतधारी, सत्य कहते हैं कि हमारा यह सम्यग्दर्शन अप्रतिहत है, गिरे नहीं - ऐसा है। आहाहा ! भले क्षयोपशम हो, परंतु क्षायक लेंगे और केवलज्ञान लेंगे - ऐसा हमारा सम्यग्दर्शन है, प्रभु परंतु तुम देह छोड़कर स्वर्ग में जाओगे न। वहाँ जायेंगे, परंतु हमारा दर्शन नहीं छूटेगा, वहाँ तो चारित्र में अस्थिरता होगी। आहाहा ! समझ में आया ? ओहोहो !

यह वाणी प्रभु की बापू कहाँ है यह ? अरेरे ! जो सुनने लायक चीज है एवं करने लायक चीज है, वह न मिले तो क्या किया उसने ? आहाहा !

कहो रतिभाई आहाहा ! यह एक पंक्ति का व्याख्यान चलता है। आहाहाहा ! हमारे भाई तो कहते कि आठवीं गाथा पहली बार सुनी (है) देवीलालजी ! (श्रोता :- ऐसा है जब सुनो तब नया-नया अलौकिक बातें है) हाँ ? अलौकिक बातें है, बापू ! प्रभु ! तुम्हारी बात विद्यमान भगवान मौजूद है न ? आहाहा ! विद्यमान मौजूद भगवान है और जिसकी हाजरी लेनी पड़ती नहीं कि तुम अमुक आये हो - ऐसा नहीं, यह तो है ही यहाँ। यह है दर्शन, ज्ञान, चारित्र को पर्याय में प्राप्त हो इतना भेद से प्रभु तुमको समझाते है, परंतु तुम भेद ऊपर लक्ष्य नहीं रखना। हम तो समझाते हैं आत्मा। आहाहा ! अपनी दृष्टि का जोर आत्मा ऊपर ले जाना परिणमन ऊपर लक्ष्य नहीं रखना, परिणमन से तो तुमको समझाया है। आहा ! समझ में आया ? आहाहाहा !

तब तत्काल ही उत्पन्न होनेवाला अत्यंत आनंद से... दो बातें लेंगे, ज्ञान और आनंद उत्पन्न हो गया बस दोनों बातें है ? तत्काल उत्पन्न होनेवाला अत्यंत आनंद, अत्यंत आनंद जो आया आनंद यह न जानेवाला। आहाहाहाहा ! स्वरूप की दृष्टि कराई... ऐसी चीज है यह तब दर्शन, ज्ञान, चारित्र को पर्याय प्राप्त हो वह आत्मा तब वहाँ दृष्टि ले गये... आहाहा ! अरे मध्यस्थ से सुने न ! ऐसे एकांत-एकांत पुकारकर करते हैं क्या बापू ? भगवान तुम भी भगवान हो भाई ! परंतु तुम्हारी दृष्टि में फर्क है, तब लगता है (कि) सोनगढ़ का एकांत है। एकांतवादी है, कहो प्रभु आहाहा ! बापा मार्ग तो यह है भाई। आहाहा !

अत्यंत आनंद से जिसके... आहाहा ! आनंद भी अत्यंत आनंद लिया भाई। आहाहा ! अतीन्द्रिय है न यह। आहाहा ! स्वरूप भगवान आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को निर्मल पर्याय की प्राप्त हो वह आत्मा, पर्याय को प्राप्त हो वह आत्मा, हाँ। तब उस सुननेवाले की दृष्टि तत्काल द्रव्य ऊपर गई और दृष्टि जाने से तत्काल अत्यंत

आनंद उत्पन्न हुआ। आहा ! बाद में करेंगें, आप कहते हैं आत्मा की बात, बाद में प्रयत्न करेंगें ऐसी बात नहीं, थोड़ा बाद में अभ्यास करेंगे (बाद की बात नहीं)।

हमारे डॉक्टर ने प्रश्न किया था, है वैष्णव है न, परंतु है सरल, रुचि लगती है कलकता का है डॉ. गांगुली नहीं। बड़ा डॉक्टर है होम्योपेथी का। ब्रह्मचारी है बाल ब्रह्मचारी, सुन्दर, सुनने का रस लगा है तब आते है कभी कोई बुलाते हैं तो आते हैं व्याख्यान सुनने को आते हैं, व्याख्यान सुनने का रस (है) अरे ! प्रभु देख तो सही बापू यह वेदांत और वैष्णव और यह बात यह (मत पंथ) प्रभु यह परम सत्य है नहीं कहीं। आहाहा ! श्वेताम्बर जैन में नहीं है तो फिर अन्य मत को तो कहाँ से लागू (होगी) ? आहाहा ! यह सेठ लोग यह दिगम्बर में जन्म लिया परंतु कभी सुना तो नहीं था उन्होंने। नहीं। आहाहाहा !

नाँव तिरे रे मेरी नाँव तिरे, ऐसे आत्मा अंदर में खेल करे। हाँ ! मेरी नाँव अंदर में तैरने लगी, दृष्टि हुयी द्रव्य ऊपर, गुरु ने कहा कि यह आत्मा, हाँ। आहाहाहा ! उसका तत्काल दर्शन उत्पन्न हुआ। आहाहा ! परंतु काललब्धि पके तब होती है न - ऐसा कहते हैं न ? यह काललब्धि पक गई। आहाहा ! यह काललब्धि होगी तब होगी, परंतु उसका ज्ञान करे कौन ? इस समय जो लब्धि प्राप्त है यह तो ऐसी ही है उस समय उत्पन्न, परंतु उसका ज्ञान कौन करेगा ? इस द्रव्य ऊपर दृष्टि करे तब उसका ज्ञान होगा। आहाहाहा ! `अत्यंत आनंद से जिसके हृदय में'... उसकी आँखोंमें से आँसू आये थे, उसके `स्वस्ति', `स्वस्ति', स्वस्ति का अर्थ किया कि तुम्हारा अविनाशी कल्याण हो, वहाँ उसके आँख में आँसू आ गये, यहाँ तो हृदय में आत्मामें से आनंद आया। आहाहा !

- ऐसा कि तुम एकांत (करते) आत्मा से ही बस पर की अपेक्षा रखे बिना समझे... तब इस अपेक्षा तो कहते हैं व्यवहार की, परंतु व्यवहार से तो बताना वह है, व्यवहार से व्यवहार बताना नहीं, और व्यवहार का लक्ष्य करके निश्चय में आता है - ऐसा नहीं, यह दर्शन, ज्ञान, चारित्र है व्यवहार, परंतु उसके लक्ष्य से द्रव्य (अनुभव में) आता नहीं। वह तो जिसको प्राप्त होनेवाला आत्मा है, उसकी दृष्टि से दर्शन, ज्ञान प्राप्त होता है। आहाहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

अमृतचन्द्राचार्य जब टीका करते होंगे, उनका हृदय... आहाहा ! आनंद में उल्लसित हो गया है अंदर... एक विकल्प आया है, परंतु मैं कर्त्ता नहीं हूँ। इस विकल्प का कर्त्ता मैं नहीं, इस टीका का मैं कर्त्ता नहीं। मैं तो स्वरूपगुप्त हूँ न ! आहाहा ! मेरा स्वरूप राग में आता नहीं वह वाणी में आता नहीं। आहाहा ! मेरा स्वरूप तो राग और वाणी से अंतर में गुप्त है न ! आहा ! तब टीका हमसे हुई बिलकुल

नहीं, अकिंचित्‌कर है। अब उस निमित्त को अकिंचित्‌कर कहते हैं तब विरोध करते हैं - यह निमित्त को अकिंचित्‌कर कहते हैं। परंतु आचार्य स्वयं कहते हैं कि मैं अकिंचितकर हूँ, टीका करने में मेरा कुछ कार्य नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ?

अत्यंत आनंद से जिसके हृदय में, जिसके हृदय में अर्थात ज्ञान (में) आत्मा में, सुन्दर बोध, तरंग, आनंद और ज्ञान दोनों लिया, है न ! अत्यंत आनंद से जिसके हृदय में सुन्दर बोध तरंग अर्थात आनंद सहित ज्ञान हुआ, अकेला ज्ञान नहीं हुआ - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अकेला ज्ञान, नहीं हुआ - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अकेला ज्ञान, ज्ञान वह ज्ञान ही नहीं। आहाहा ! जिस ज्ञान के साथ में अतीन्द्रिय आनंद न हो वह ज्ञान नहीं। आहाहाहा ! क्या कहा देखो ? अत्यंत आनंद से जिसके हृदय में, प्रगट क्या हुआ ? **'सुन्दर बोध तरंग'** अत्यंत आनंद के साथ, आहाहा ! सुन्दर बोध तरंग, बोध अर्थात ज्ञान ज्ञान की तरंगें... आहाहा ! अंदर ज्ञान की धारा सम्यक्‌ उत्पन्न हुई। आहाहा ! भेद ज्ञान की धारा उत्पन्न हुई राग से भिन्न और अपने स्वरूप से अभिन्न - ऐसी अनुभव की धारा उत्पन्न हुई। आहाहाहा !

परंतु उसने प्रश्न क्या किया ! पहले ज्ञान से उत्पन्न होकर आनंद- ऐसा न लिया, अत्यंत आनंद के साथ बोध तरंग उठी। आहाहाहा ! अनंतकाल में कभी अपना आनंद का स्वाद आया नहीं था, क्या यह अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप है, इसका बोध नहीं था। यहाँ जब लक्ष्य द्रव्य ऊपर गुरु ने कराया... पर्याय ऊपर लक्ष्य नहीं, परिणति को प्राप्त हो - ऐसा यह आत्मा। आहाहा !

पहले चीज तो यह करने की है यह छोड़कर बाहर से सभी प्रतिमा लींया और ब्रह्मचर्य लिया प्रभु ! उससे यहाँ क्या लाभ होगा ? आहा ! उससे अभिमान हो जायेगा। हम त्यागी हैं, हम ब्रह्मचारी हैं, हम प्रतिमा धारी हैं, वैसे तो कोई आदर नहीं करे तो, हम तो त्यागी हैं... भाई। यह सम्यग्दर्शन बिना अभिमान हो जायेगा तुम्हें। आहाहा ! क्योंकि तुम्हारी महिमावाली वस्तु - ऐसा तो जाना नहीं तुमने और इस चीज को जानने से आनंद सहित ज्ञान की तरंग उठेगी, आनंद को अत्यंत शब्द से प्रयोग किया है, उसमें सुन्दर बोध तरंग, ऐसा लिया, सुन्दर बोध तरंग। आहाहा !

सुन्दर ज्ञान की तरंगे यह उत्पन्न होती हैं। अकेली ज्ञान तरंग ज्ञान की उत्पत्ती... जैसे पानी में तरंग उठती है न पानी में तरंग, इस प्रकार यहाँ सुन्दर बोध तरंग। आहाहा ! (श्रोता :- आनंद से उल्लसित ज्ञान) अत्यंत आनंद सहित का ज्ञान पहले आनंद लिया। आहाहाहा ! अत्यंत आनंद से जिसके हृदय में सुन्दर बोध तरंग, आहा ! उछलने लगती है। कहते हैं कि यह सम्यग्ज्ञान की तरंगे आनंद सहित उत्पन्न होती हैं। आहाहा ! यह भी तत्काल उत्पन्न होता है। आहाहाहा ! प्रभु तुम तो ऐसी चीज

लेते हो तुम भी अप्रतिहत और श्रोता भी - ऐसा लिया। आहाहाहा ! (श्रोता :- अत्यंत निकटवर्ती शिष्य) अत्यंत निकटवर्ती, नजदीक... सुनते है और संसार जिसका अल्प (और) निकट है। आहाहा ! (श्रोता :- धारणा में रुकनेवाला नहीं। यह बात यहाँ नहीं।

अतीन्द्रिय आनंद का नाथ प्रभु ! यह आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र पर्याय को प्राप्त हो आत्मा। तब यहाँ आत्मा ऊपर दृष्टि कराई। आहाहा ! तब अत्यंत आनंद उत्पन्न होकर, सुन्दर बोध तरंग उछलने लगती हैं, उछाल मारती हैं जैसे पातालमें से पानी फूटता है, पाताल में पानी बहुत है, ऊपर का पत्थर टूट जाये तब धारा निकलती है, यहाँ है गाम कौन गाँव कहा (जनड़ा, जनड़ा) ? वहाँ है वह हम कुँआ के पास निकली थी विहार करते समय कुँआ के पास से अठारह कोष पानी निकलने का अठारह भी, परंतु पानी, समाप्त होता नहीं इतना पानी निकलता है। जनड़ा यहाँ बोटाद के पास हम निकले कुँआ के पास। यहाँ पाताल कुँआ फूटा (- ऐसा) कहते हैं आहाहा ! जिसने अपनी दृष्टि द्रव्य ऊपर दी। आहाहा ! इस दृष्टि, ज्ञान और चारित्र में अत्यंत आनंद सहित बोध तरंगें उठती (है)। आहाहा ! समझ में आया ?

जिसके हृदय में, हृदय अर्थात ज्ञान में, आहाहा ! सुन्दर बोध तरंगें उछलने लगती हैं, उछलने लगती हैं। आहाहाहा ! अतीन्द्रिय आनंद सहित ज्ञान की धारा ज्ञान स्वभाव अंदर वस्तुमें से उछलती है आहाहा ! पातालमें से आती है अंदर पर्याय, तल-तलमें से आती है, तल... ध्रुव ऊपर दृष्टि होने से उसमें से ज्ञान तरंगे उठती है। आहाहा ! '**ऐसे यह व्यवहारी जन**' देखो समझ में आता है न नेमचन्द्रभाई ! भाषा तो सरल है भाव तो कोई अलौकिक है। कभी तुम्हारे व्यापार में आई नहीं, छह भाई इकट्ठे होकर बात करते थे, यह बात आये वहाँ ? व्यापार की बात चले, यह कारखाना डाला। आहाहा ! छह भाईयों है न ? यह तो सभी को होता है, आठ-आठ, बारह-बारह भाई होते हैं। परंतु यह बात बापू कहीं (नहीं) अरेरे !

अभी तो धर्म के नाम पर अदल-बदल (बदलावा) हो गया, हाँ। व्यवहार को करें और व्यवहार से होता है - ऐसा न मानों तो एकांत हो जाता है, प्रभु करो बापू व्रत करो तप करो, इन्द्रिय दमन करो - ऐसा करते-करते उससे तुम्हें निश्चय सम्यक् होगा, क्या यह पुण्य आस्रव सम्यग्दर्शन का कारण है। आहाहा ! कल ही आया है, २५ लाख का जम्बुद्वीप, हस्तिनापुर में बनवाती है एक मेरु पर्वत। आहाहा ! (वह कहती है) पुण्य आश्रव, पुण्य आस्रव से निश्चय होता है। आहाहा ! (- ऐसा नहीं भाई)

यहाँ तो आत्मा... रागरूप परिणमते है, उसे आत्मा ही नहीं कहते। आहाहा ! यह तो अनात्मा है यह तो आत्मा की जो चीज है अंदर में एकरूप जो परिणमती

है सम्यग्दर्शन ज्ञान तो उसको आत्मा प्राप्त हुआ - ऐसा कहा, आत्मा जो पर्याय को प्राप्त हुआ, कहा राग तो अनात्मा है। चाहे तो व्यवहार रत्नत्रय दया, दान, भक्ति का (राग) आता है यह दूसरी बात है। होता है अशुभ से बचने को, शुभ आता है परंतु है तो अनात्मा। पुण्य है, पुण्य यह कहीं आत्मा नहीं, नौ तत्त्वों में तो पुण्य तत्त्व भिन्न है, आत्मा भिन्न है, पुण्य तत्त्व भिन्न है। आहाहा ! समझ में आया ?

व्यवहारी जन, उस आत्मा शब्द के अर्थ को, आत्मा शब्द के अर्थ को, आत्मा के शब्द के भाव को वाच्य को अच्छी तरह समझ लेते है हाँ ? आहाहाहाहा ! आत्मा शब्द है तब इस शब्द में कहीं आत्मा है नहीं, आत्मा तो आत्मा में है। परंतु यह आत्मा शब्द कहने से आत्मा का अर्थ जो आत्मा है उसको समझ लेते हैं। आहाहा ! भाई इसका अभ्यास चाहिए। थोड़ा सत्य का परिचय चाहिए यह तो भाई ऐसी बात है यह। आहाहा ! व्यवहारीजन तो इस आत्मा शब्द के अर्थ को, पदार्थ को आत्मा शब्द के अर्थ को अर्थात आत्मा शब्द का अर्थ अर्थात् आत्मा नामक पदार्थ (को) अच्छी तरह समझ लेता है। आहाहा ! अच्छी तरह समझ लेता है। बदलाव बिलकुल नहीं - ऐसा। आहाहा ! भगवान आत्मा पूर्णानंद के ऊपर जहाँ लक्ष्य जाता है तब पर्याय में जो दर्शन ज्ञान हुआ यह यही अच्छी तरह परिणमन होगा और उसने अच्छी तरह आत्मा को जाना, संदेह रहित, दूसरे के पक्षपात बिना, कि दूसरे में भी कुछ होगा ! यहाँ यह मार्ग नहीं, एक ही मार्ग है (मार्ग) बस। आहाहा ! चैतन्य का अंतर लक्ष्य करके जो ज्ञान उत्पन्न होता है यह एक ही सत्य है। समझ में आया ? समझ लेता है।

इसप्रकार जगत म्लेच्छ के स्थानपर होने से जगत म्लेच्छ के स्थान। आहाहा ! व्यवहारनय भी म्लेच्छ की भाषा के स्थान पर... आहाहा ! दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो यह आत्मा, यह भी व्यवहार भाषा म्लेच्छ के स्थान पर है। आहाहा ! कोई दूसरा उपाय नहीं। (अभेद) कैसे कहना ? तब - ऐसा व्यवहार का भेद करना और समझाना, यह म्लेच्छ भाषा है, कहते हैं। आहाहा !

व्यवहारी जन भी म्लेच्छ भाषा के स्थानपर होने से, है न ? व्यवहारनय भी म्लेच्छ के स्थानपर जगत, सुननेवाला और व्यवहारनय भी म्लेच्छ (भाषा) के स्थानपर होने से दोनों, व्यवहारी जन है यह भी म्लेच्छ के स्थान में है, और भेद की भाषा भी कहना है वह भी म्लेच्छ की भाषा है व्यवहार। आहाहाहा ! जगत तो म्लेच्छ के स्थानपर होने से और व्यवहार नय भी म्लेच्छ भाषा के स्थानपर होने से व्यवहारी जन को क्या समझावें ? आत्मा-आत्मा कहें तो समझें नहीं तब भेद करके, यह भेद करना यह भाषा म्लेच्छ भाषा है, आहाहा ! ***दर्शन, ज्ञान, चारित्र यह भेद करके***

समझा यह म्लेच्छ भाषा है, गजब है। तब व्यवहार करने से तुम्हारा कल्याण होगा ! यह वस्तु कहाँ है ? आहाहा ! यह भाषा तो म्लेच्छ के स्थान में भी नहीं। आहाहा !

`जगत के जीव म्लेच्छ के स्थानपर होने से और व्यवहारनय भी म्लेच्छ भाषा के स्थानपर होने से परमार्थ का प्रतिपादन (करनेवाला) है' वस्तु का कथन करनेवाला है। यह आत्मा, `यह आत्मा' ! दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त `यह आत्मा'- ऐसा व्यवहार का... आहाहा ! `परमार्थ का प्रतिपादन करनेवाला है, इसलिये व्यवहारनय. स्थापित करने योग्य है,' ***व्यवहारनय है, व्यवहारनय नहीं है (- ऐसा) नहीं, और व्यवहारनय का विषय भेद है, व्यवहारनय को असत्यार्थ कहा अतः उसका विषय नहीं है - ऐसा नहीं यह तो त्रिकाल की दृष्टि कराने को पर्याय को भेद को असत्यार्थ कहा अभूतार्थ है तब यह गौण करके झूठा कहा। व्यवहारनय है - ऐसा स्थापित करने लायक है, परंतु आदरणीय नहीं।*** आहाहाहाहा !

स्थापित करने योग्य है व्यवहारनय है समझाने में व्यवहारनय से समझाना ऐसी म्लेच्छ भाषारूप व्यवहार है, आहाहाहाहा ! परंतु ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं हो जाना। ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं होना। स्वस्ति कहनेवाला यह म्लेच्छ भाषा से समझावें उसे भी स्वयं म्लेच्छ नहीं होना। आहाहा ! इस वचन से व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नहीं, स्थापन करने योग्य है, क्योंकि व्यवहार है, उसके द्वारा समझाते है परंतु आदरणीय नहीं। आहाहा ! गजब काम करते है न ! स्थापन करने योग्य है कि है, व्यवहार से समझाते है परंतु आदरणीय नहीं। आहाहा ! गजब काम करते हैं न, इसमें भी उस दिन था वह चिमन चक्कु कहता था... आठमी गाथा में (कहा है), चिमन चक्कु है न ? देखो इसमें व्यवहार से कहा, परंतु क्या कहा है ? व्यवहार समझाना यह म्लेच्छ को जैसे म्लेच्छ भाषा से समझाया इसीप्रकार व्यवहारीजन को व्यवहार भाषा से समझाया, परंतु समझाते है तो निश्चय, व्यवहार से समझाते तो व्यवहार का आश्रय लेना - ऐसा यहाँ है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? इस कथन से व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं। देखों पाठ में है न ? व्यवहारनयो नानुसर्तव्यो संस्कृत में है कहनेवाला यहाँ व्यवहार में आया, विकल्प आदरणीय अनुसरण लायक नहीं। आहाहा ! विशेष कहेंगे। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ३२ गाथा-८ ता. १२-७-७८ बुधवार अषाढ सुदी-७ सं.२५०४

आंठवी गाथा का भावार्थ है न ? भावार्थ है, पण्डितजी नहीं आये ? (श्रोता :- पण्डितजी भावनगर गये है) भावनगर गये हैं।

क्या कहते हैं ? `**लोग शुद्धनय को नहीं जानते**' अर्थात लोग सामान्यजन व्यवहारी हैं, वह धर्मी पूर्ण शुद्ध चैतन्यधर्मी जो शुद्धनय का विषय वह जानते नहीं, वस्तु जो अखण्ड है, अभेद है, चैतन्यस्वरूप जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं, उस चीज को लोग जानते नहीं, `**क्योंकि शुद्धनय का विषय तो अभेद एकरूप वस्तु है,**' शुद्धनय के विषय को नहीं जानते (वह) शुद्धनय को नहीं जानते, क्योंकि शुद्धनय का विषय, अभेद एकरूप वस्तु है, एकरूप, अभेद एकरूप, उसमें पर्याय का भेद नहीं, राग का संबंध नहीं, संयोग का संबंध नहीं। आहा ! (श्रोता :- यह तो त्रिकाल स्वरूप है) ***यह वर्तमान, यह त्रिकाली वस्तु, त्रिकाल कहा जाता है, परंतु वर्तमान में अभेद अखण्ड वस्तु, आहाहा ! एकरूप वस्तु इसप्रकार वर्तमान में। वर्तमान में एकरूप अभेद एकरूप वस्तु उसको तो व्यवहारीजनों (का) अनंतकाल से अभ्यास नहीं अतः जानते नहीं है ? यह अभेद एकरूप वस्तु त्रिकाल, त्रिकाल यह भी एक अपेक्षा लागू परंतु वस्तु है बस, एकरूप सामान्य ध्रुव, आहाहा !***

`**किन्तु वह अशुद्धनय को ही जानते हैं।**' व्यवहारनय को जानते हैं - ऐसा नहीं कहकर अशुद्धनय को जानते है, अशुद्ध नय कहो कि व्यवहार अर्थात क्या कहा ? कि वस्तु जो है एकरूप अभेद अखण्ड, उसका अज्ञानी को अनादि से परिचय नहीं, अभ्यास नहीं, व्यवहारीजन इसको जान सकते नहीं। वे तो अशुद्धनय को जानते है, राग को और भेद को जानते है कि यह ज्ञान सो आत्मा, ज्ञान सो आत्मा, जाने वह आत्मा - ऐसा भेद, भेद करके जानते हैं। समझ में आया ? किन्तु अशुद्धनय को ही जानते हैं - ऐसा लिया, यह तो भेद को ही जानते हैं भेद से अभेद क्या चीज है उसको जानते नहीं। आहाहा !

`**क्योंकि उसका विषय भेदरूप अनेकप्रकार है**' अशुद्धनय का विषय भेदरूप अनेक प्रकार है। देखा ? शुद्धनय का विषय अभेद एकरूप है तो अशुद्धनय का विषय भेद अनेकरूप है। समझ में आता है ? यह विषय सूक्ष्म है।

`**इसलिये व्यवहार के द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं**' इस कारण यह अशुद्धनय को अर्थात भेद को जानते हैं अनेक प्रकार हैं, उसको जानते हैं, अभेद

और एकरूप वस्तु को जानते नहीं अनेक प्रकार है उसको जानते है, अभेद और एकरूप वस्तु को जानते नहीं, उसको व्यवहार से (जानते), व्यवहार के द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं, भेद द्वारा परमार्थ को समझ सकते है। यह ज्ञान वह आत्मा, दर्शन को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा भेद करके समझ सकते हैं। क्या कहते हैं? कि आत्मा तो अभेद है, वस्तु एक अखण्ड अभेद है, परंतु वह अभेद को जानते नहीं तब उसको समझाया कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो प्राप्त हो (सो आत्मा) भेद से समझाया। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो प्राप्त हो वह आत्मा, समझ में आया? आहाहा ! ऐसी बात है। व्यवहार के द्वारा ***ही, व्यवहार से निश्चय होता है यह प्रश्न यहाँ नहीं, मात्र व्यवहार से भेद से अनेक प्रकार बताने से अभेद एकरूप को जानते है, भेद से अनेक प्रकार से एक चीज को जिसमें भेद नहीं फिर भी भेद बताया कि भाई जो ज्ञान वह आत्मा, ज्ञान को प्राप्त हो वह आत्मा। - ऐसा ज्ञान का भेद करके बताया। तब वह समझें कि हाँ।*** वह जाननेवाला ज्ञान, ज्ञान सो आत्मा, तब व्यवहार के द्वारा, भेद के द्वारा अभेद को समझ सकते हैं, इस कारण व्यवहार से समझाने में आता है। आहाहा ! ऐसी बात है। यह व्यवहार क्या ? ***किसी की दया पाल सकते है और व्रत कर सकते है एवं भक्ति कर सकते हैं - इस व्यवहार द्वारा यह बात यहाँ है नहीं, यहाँ तो एक वस्तु आत्मा अभेद अखण्डतत्त्व है आत्मा, उसमें भेद है नहीं। गुण अनंत हैं, फिर भी अनंत गुणों का रूप अभेद एक चीज है, तो अभेद को अनादि काल के अभ्यास के अभाव में जान सकते नहीं, तब भेद से समझाना पड़े, कि भेद हुआ वह व्यवहार आया,*** भेद के द्वारा व्यवहार के द्वारा कि देखो भाई अंदर आत्मा है न ? वह जानता है न ? जानता है न, ज्ञान वह आत्मा - ऐसा भेद करके व्यवहार कहकर अभेद को बताया, व्यवहार करते-करते अभेद होगा - यह प्रश्न यहाँ है नहीं। व्यवहार आचरण करते निश्चय होगा यह यहाँ प्रश्न है नहीं।

यहाँ तो उसको अभेद चीज को नहीं सकझते, तब भेद द्वारा, उसमें है गुणी में भेद है, परंतु अभेदरूप में है उसमें भेद बताकर जाननेवाला भिन्न बताकरके, पहले तीन भेद लिये थे सातवीं गाथा में, यहाँ एक ज्ञान ही लिया, अब। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो वही का वही विषय है उसका विषय तो वही का वही परंतु उन्होंने यह संक्षेप में बताया। यह व्यवहार के द्वारा परमार्थ को कहने में आया, परमार्थ को अर्थात वस्तु जो अखण्ड है अभेद चैतन्यतत्त्व, जिनतत्त्व जो वस्तु अनादि एकरूप वस्तु है उस एकरूप को नहीं जाननेवाले को अनेक नाम गुण आदि भेदों के द्वारा उस अभेद को बताते हैं - ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं समझ में

आया ? फिर भी व्यवहार का अनुसरण करने लायक नहीं, गजब भाई यह। आहाहा !

इस गाथा में बड़ा विवाद है, चिमनचक्कु थे उन्होने कहा था, देखो इसमें व्यवहार है, परंतु क्या कहा, व्यवहार से कहां, व्यवहार से तो भेद से समझाना परंतु इसलिये भेद से समझेगा... इसलिये राग की क्रिया करे तो समझेगा - ऐसी यहाँ बात है नहीं, यहाँ तो अखण्ड एकरूप को जो नहीं जानते हैं, तब ज्ञान, यह जानता है न, जाननेवाला गुण है यह ज्ञान एक आत्मा का, यह आत्मा है, राग यह अनात्मा है, शरीर यह अनात्मा है, और ज्ञान यह आत्मा है - ऐसा भेद करके बताया, परंतु बताना अभेद। भेद से बताना (है) अभेद, तब भेद सुनकर भेद का आश्रय लेना नहीं, सुननेवाले को भी भेद से अभेद को जानना, जानना है आहाहा ! - ऐसा सूक्ष्म मार्ग। यह सामायिक करो और प्रतिक्रमण करो और अमुक करो और भक्ति करो, हो गया लो, आहाहा ! यह तो अनंतबार किया भाई... यह कोई चीज नहीं।

यहाँ व्यवहार द्वारा, गुणी जो एकरूप अभेद है, उसको भेद के द्वारा जानना इतना व्यवहार बीच में आये बिना रहता नहीं। परंतु व्यवहार से जानने में आनेवाली वस्तु तो अभेद है। आहाहा ! व्यवहार, व्यवहार को बताते हैं - ऐसा नहीं व्यवहार बताते है उसको (अभेद को) समझ में आया ? - ऐसा मार्ग अभी तो सम्यग्दर्शन की बात चलती है।

सम्यग्दर्शन जिसको पाना है, उसे भेद से पहले समझाना पड़ेगा, कि देखो भाई ! वस्तु जो त्रिकाली है यह ज्ञान सो 'आत्मा' है दृष्टि वहाँ लगाओ, ज्ञान वह आत्मा है, तब ज्ञान ऊपर दृष्टि लगाओं - ऐसा नहीं, समझ में आया ? आहाहा ! यह जानना जानना जानना जो भाव है, यह आत्मा - ऐसा कहकर तुम्हें लक्ष्य द्रव्य ऊपर जाना चाहिए। ज्ञान से बताया परंतु ज्ञान ऊपर लक्ष्य रखना, इसके लिये बताया नहीं। समझ में आया ? ज्ञान से आत्मा बताया, परंतु जाननेवाले को, ज्ञान में रुकने के लिये बताया - ऐसा नहीं, यह ज्ञान वह आत्मा। आहाहा ! वहाँ जाओ, ऐसे भेद द्वारा अभेद को समझाया, आहाहा ! यह विषय (श्रोता :- बतानेवालों का तो उपकार मानना चाहिए न) यह अन्य बात है - यहाँ तो उसका विकल्प आता है, यह दूसरी बात है। परंतु चीज क्या है, वस्तु जो है वह तो एकरूप अभेद है, तब अभेद को तो समझना किस तरह ? आत्मा अभेद है, आत्मा एक है, पूर्ण है, परंतु वह समझना किस प्रकार ? तब उसको - ऐसा बहुत संक्षेप में कहा जाता है, कि ज्ञान सो आत्मा, समझ में आया ? मूल पाठ में तो तीन लिये हैं, आहाहा ! व्यवहार के द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं। भेद से अर्थात दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त जो हो वह आत्मा... है तो भेद, दर्शन, ज्ञान। राग को प्राप्त होता है कि निमित्त को प्राप्त

होता है यह बात तो यहाँ है नहीं। दर्शन, ज्ञान जिसमें रुचि, ज्ञान और स्थिरता उसको जो प्राप्त करे यह आत्मा। तब भेद से बताया अभेद, भेद ऊपर लक्ष्य कराने नहीं, भेद ऊपर से लक्ष्य छोड़कर अभेद की दृष्टि कराने को। देवीलालजी ! ऐसी वस्तु है।

(श्रोता :- भेद पहचाने तब अभेद पहचाने) यह बात यहाँ है नहीं। भेद पहचानना यह बात यहाँ है नहीं। भेद से अभेद बताना है। ज्ञान सो आत्मा अतः ज्ञान पहले जानना यह तो व्यवहार है यह बाद में आयेगा। परंतु वह व्यवहार किसको ? जो ज्ञान सो आत्मा - ऐसे आत्मा का अनुभव हुआ वह तो परमार्थश्रुतकेवली यह (गाथा) नौ दशमी में आयेगा, और ज्ञान सो आत्मा... यह ज्ञान को जाने यह व्यवहार है, यह व्यवहार श्रुतकेवली है, परंतु वहाँ दृष्टि हुई है उसकी, आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात है।

यहाँ तो अभी आठमी गाथा चलती है न ? आठमी में तीन बोल लिये है न ? दर्शन, ज्ञान, चारित्र से जो प्राप्त होता है वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा, क्या कहा ? दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त हो यह आत्मा - ऐसा नहीं कहा परंतु जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है, यह आत्मा। आहाहा ! 'को' और 'उससे' इतना फर्क दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है यह 'जो' दर्शन, ज्ञान, चारित्र... राग को प्राप्त होता है यह बात तो है नहीं दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है 'जो' 'वह' आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त होता है वह आत्मा - ऐसा नहीं। समझ में आया ? बहुत फर्क पूरब-पश्चिम का फर्क है दोनों में, कल कहा था न रात को ?

वस्तु, राग हो... धर्मी ज्ञानी को भी राग होता है, राग होता है विषय आदि का राग होता है परंतु वह चीज तो दुःखरूप है, ही है, परंतु (साधक को भी) आता है वह तो दूसरी बात है, परंतु यहाँ आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है, जो जो, अर्थात आत्मा। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है तब यह भेद से बताया। आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है यह 'आत्मा', 'आत्मा' दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त होता है वह आत्मा - ऐसा नहीं। समझ में आया ? (श्रोता :- दर्शन, ज्ञान, चारित्र को आत्मा प्राप्त करता है) यह आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त करता है, पर्याय में वो आता है और पर्याय में यह बताता है द्रव्य को न ! पर्याय ऊपर लक्ष्य करना नहीं। ***कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त हो यह आत्मा, तब तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र का लक्ष्य करें तब यह तो पर्याय का लक्ष्य हुआ।*** समझ में आया ? सूक्ष्मबात है भाई !

यह प्रथम १२ गाथायें तो पीठिका है, सारे (पूरे) समयसार की, यह आत्मा पूर्णानंद एकरूप वस्तु है, न वस्तु, यह तो अभेद एकरूप है उसको नहीं जाननेवाले को इतना भेद बताया कि ***'जो' अर्थात आत्मा, दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो यह***

आत्मा, तब उसका लक्ष्य तो आत्मा पर है, दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हुआ वह आत्मा। चंदुभाई ! आहाहा ! (श्रोता :- जो पर पूरा वजन है) `जो' दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है। `जो' वहाँ दृष्टि है। आहाहा ! और जो दर्शन, ज्ञान से प्राप्त होता है - ऐसा नहीं। आहाहा ! तब उसकी दृष्टि पर्याय ऊपर रही। उससे प्राप्त होता है, उससे प्राप्त होता है, और यह तो, `जो' दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हुआ वह आत्मा। समझ में आया ? समयसार गूढ़ वस्तु है। आहाहा !

भेद करके बताया तो इतना कि यह अभेद वस्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होती है। आहाहा ! यह चीज आत्मा। अति में अति संक्षेप में कहते हैं तब इतना तो कहना पड़ेगा आगे कहेंगे तो इन तीनमें से एक कहेंगे। यहाँ तो तीन कहे है फिर एक कहेंगे। ज्ञान वह आत्मा नौ-दश (गाथा में) आहाहा ! राग होता है, ***समकिति ज्ञानी को भी राग आता है, परंतु है राग दुःखरूप, हेयरूप, आकुलतारूप, उससे आत्मा जानने में आता है, यह तो प्रश्न है ही नहीं और वह दुःख को प्राप्त होता है - यह आत्मा - ऐसा भी नहीं, दुःख अर्थात राग से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा नहीं। परंतु राग को आत्मा प्राप्त होता है - ऐसा आत्मा नहीं।*** समझ में आया ? राग को जो प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा नहीं और राग से प्राप्त हो आत्मा - ऐसा नहीं, अब तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त हो आत्मा - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! गजब बात है !

देखो तो वाणी, यह सिद्धांत कहलाते। यह वीतराग की वाणी कहलाती। आहाहा ! दिगम्बर संतों तो केवलज्ञानी के रास्ते चलनेवाले, अकेला केवलज्ञान अकेला है। आहाहा ! कितना स्पष्ट है, कि जो राग को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा। नवरंगभाई ! एवं राग से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा भी कहा नहीं। अभी तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा भी कहा नहीं, प्रेमचन्द्रजी। बहुत ध्यान रखने की समझने की यह वस्तु है। आहाहा ! ज्ञानी को राग होता है, परंतु ज्ञानी की दृष्टि द्रव्य ऊपर है बाद में यह सिद्ध करना है समझ में आया ? और अज्ञानी को भी दृष्टि द्रव्य ऊपर लगाना है, यह यहाँ सिद्ध करना है।

भेद करके, कि आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को (प्राप्त हो) `वह' द्रव्य, `जो' वस्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा। तब वहाँ दृष्टि तो द्रव्य ऊपर लगाना है और दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त आत्मा तब वहाँ दृष्टि दर्शन, ज्ञान, चारित्र (पर्याय) पर जाती है। आहाहा ! समझ में आया ? नवरंगभाई ! क्या कठिन लगा अब इसमें ? पानी छानने का भाव राग है, उसे आत्मा प्राप्त करे यह मना करते हैं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! रतिभाई ! भाई का प्रश्न था पहले ? कहाँ की कहाँ चली गई वस्तु।

आहाहा ! भगवंत तुम क्या हो ? कि मैं तो अभेद, परंतु यह अभेद का जिसको ख्याल नहीं, अभेद का अनुभव नहीं, अभेद तक पहूँच सकते नहीं, उनको क्या करना ? क्या किस तरह समझना ? उसे इसप्रकार समझाना। यह वस्तु जो अभेद है, भेद को प्राप्त होती है, आहाहा ! भेद को प्राप्त होती है। आहाहा ! भेद को प्राप्त होती है, दर्शन, ज्ञान, चारित्र को, भेद से अभेद प्राप्त होता है - ऐसी बात नहीं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा नहीं लिया, मात्र दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो प्राप्त होता है, ***अभेद चीज है यह भेदरूप जो परिणमित होती है। आहाहा ! तब इस परिणमन द्वारा अभेद को बताया। जोर तो वहाँ दिया है, परिणमन द्वारा यह परिणमन करनेवाला 'जो' है यह आत्मा। तब उस आत्मा पर दृष्टि लगाई है, परिणमन करनेवाली वस्तु है वह आत्मा कहें तो पर्याय ऊपर दृष्टि हुई यह आत्मा तो वहाँ है नहीं।*** आहाहा !

अतः व्यवहार को परमार्थ का कहनेवाला जानकर, परमार्थ का कहनेवाला जानकर, परमार्थ को प्राप्त करानेवाला जानकर- ऐसा यहाँ नहीं। आहाहा ! **परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश दिया जाता है।** आहाहा ! दूसरा कोई उपाय नहीं, ***अखण्ड आनंदप्रभु अभेद एकरूप चीज, और जिसकी दृष्टि में अभेद आया है, तब उसमें गुण तो है, परंतु अभेद की दृष्टि में भेद दिखते नहीं, जो अंदर गुण है वह दिखते नहीं - ऐसा कहते हैं, यह भेद तो वर्तमान पर्याय का कहा।*** आहाहा ! पर्याय को प्राप्त हो वो आत्मा, तब वहाँ दृष्टि द्रव्य पर लगी है। आहाहा ! गजब बात है !! एक-एक गाथा एक-एक पद कितनी गंभीरता से भरा है। (श्रोता :- दर्शन, ज्ञान को प्राप्त हो वह आत्मा) ज्ञान को प्राप्त हो यह तो बाद में कहेंगे, यहाँ तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा, बाद में कहेंगे कि ज्ञान वह आत्मा यह बाद में कहेंगे यह भी व्यवहार है। इतना थोड़ा तो व्यवहार आये बिना रहता नहीं। फिर भी व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं। अनुकरण करने लायक आदरणीय नहीं। आहाहा !

अरे ! चौरासी के अवतार में अनंतकाल से डूब गया है, डूब रहा है, यह दुःख में डूब गया है, उसे दुःख से मुक्त करने के लिये, अभेद को समझाने में... भेद से समझाना इसके अलावा दूसरी चीज आती नहीं, यह भेद तो क्या ? उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र का परिणमन यह भेद, उस परिणमन को प्राप्त हो यह आत्मा। आहाहा ! थोड़ा भी परन्तु परम सत्य होना चाहिए न ! आहाहा !

इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए... क्या कहा कि व्यवहार नय को परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश दिया जाता है। परंतु उसका अर्थ यह समझना

नहीं कि `यहाँ व्यवहार का अवलंबन कराते है' आहाहा ! दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा, यहाँ दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अवलंबन कराया है - ऐसा नहीं। आहाहा ! (श्रोता :- भेद और अभेद की जाति तो एक है) भेद होने से वस्तु व्यवहार (का विषय) हो गई। ***पर्याय मात्र व्यवहार है, द्रव्य है वह निश्चय है एवं पर्याय है वह व्यवहार (है), चाहे निर्मल पर्याय हो, यह निर्मल पर्याय की बात हो न ? दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो यह निर्मल पर्याय है।*** आहाहाहा ! (श्रोता :- पर्याय भी निर्मल द्रव्य भी निर्मल जाति एक हो गई) यह बात अभी नहीं। यहाँ तो जानने की बात करना, जो चीज अंदर वस्तु महाप्रभु अनंतगुण की संपदा का महामहल, महल अर्थात महल, मेल नहीं महल, जिस महल में अनंतो वस्तु संपदा स्थित है, जैसे यह महल होता है न, जैसे फर्नीचर, फर्नीचर होता है न ? क्या कहते हैं ? फर्नीचर तब यह आत्मा - ऐसा महल है कि उसमें अनंत (गुणोंका) फर्नीचर स्थित है। अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन - ऐसा अनंतानंत परंतु वह सभी एकरूप में है, द्रव्य से भिन्न है नहीं। अब उसे भिन्न करके बताना, तब नामरूपी कथन करके कथन मात्र से व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा उपदेश अतः लोगों को - ऐसा लगे, फिर करना धरना कुछ नहीं और आनंद बहुत है। आगरा में एक पण्डितजी थे, एक घण्टे सुना, बहुत बड़ी सभा थी, पाटनी (जी) के मकान के पीछे जगह थी उसतरफ एक व्याख्यान हुआ (पण्डितजी) खड़े हो गये। बड़े आनंद की बात (है), करना धरना कुछ नहीं ? अरे प्रभु ! ऐसे कहीं ***व्रत करना, भक्ति करना, तप करना कुछ नहीं। अरे भगवान !*** इसकी तो कहीं बात है यहाँ ? जो चीज आत्मा में है नहीं उससे प्राप्त कैसे हो ? ***यहाँ तो उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र, स्वभाव है, तो उसमें भी प्राप्त हो - ऐसा नहीं कहा। परिणति से यह प्राप्त हो - ऐसा नहीं। `जो' परिणति को प्राप्त होता है, यह द्रव्य है।*** आहाहा !

यह तो तीनलोक के नाथ ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग ! एक समय, सेकेण्ड का असंख्यमा भाग उसमें तीन काल एक समय में तीनोंकाल आहाहा ! एवं तीनलोक और अलोक जानते हैं, ऐसे भगवान की यह वाणी है, आहाहा ! बापू यह क्या चीज है भाई ! वह संत भगवान की जो वाणी है - ऐसा कहते हैं कि मार्ग तो ऐसा है, हमने भी ऐसा ही जाना है, वस्तु ऐसी है। आहाहा ! कहीं फुरसत नहीं, धंधे के कारण फुरसत नहीं, धर्म के नाम पर करे तो गजरथ चलाओ एवं मंदिर (बनाओ) एवं... आहा ! पच्चीस पच्चीस हजार व्यक्ति, एक-एक हजार व्यक्तियों के बीच बैंड़-वाजा, रथ निकलता न ? हमारा रथ निकला था न वहाँ जयपुर (में)

चालीस हजार व्यक्ति साथ में, हम थे तब २१ हाथी तो सामने थे, इक्कीस हाथी, हजार-हजार आदमी के बीच एक बैंड़ क्योंकि लोगों को सुनाई दे ऐसे हजार आदमी हों परंतु यह तो। बापू ! यह तो बाहर की प्रवृत्ति है, यह कहीं आत्मा से होती है, और आत्मा करता है तो होती है - ऐसा है नहीं। आहाहा ! उसमें लक्ष्य है किसी का तो शुभ भाव है इस शुभ भाव से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा (भी) नहीं। आहाहा !

यहाँ तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र से भी आत्मा प्राप्त हो - ऐसा यहाँ नहीं कहा। क्योंकि - ऐसा कहने से उसका जोर पर्याय पर जाएगा। जो वस्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमित है वह आत्मद्रव्य है। आहाहा ! मार्ग में बहुत बदलाव हो गया है, वीतराग मार्ग यह जैनदर्शन सनातन। जैनदर्शन तो यह है। व्यवहार का अवलम्बन कराते हैं - ऐसा नहीं समझना। यहाँ - ऐसा कह कर व्यवहार द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं इसलिये व्यवहार को परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश किया जाता है।

इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि यहाँ व्यवहार का अवलम्बन कराया, प्रत्युत व्यवहार का अवलम्बन छुडाकर परमार्थ में पहुंचाते है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो यह आत्मा, तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अवलम्बन लेना है - ऐसा नहीं, यह जो वस्तु उसको प्राप्त होती है इस वस्तु का अवलम्बन है। आहाहा ! अनंत अनंत काल गया, अनंत अनंत काल, शास्त्र तो कहते हैं कि कोई राग संबंधी दोष हो, तो भी उसके ज्ञान में है, तब वह राग छोड़ेगा और स्थिर होगा, परंतु जिसको अभी राग क्या, आत्मा क्या, पर्याय क्या, इसकी तो अभी खबर नहीं... आहाहा ! यह तो दर्शन भ्रष्ट है, दर्शन भ्रष्ट, ज्ञान भ्रष्ट, चारित्र भ्रष्ट। चारित्र भ्रष्ट है यह मुक्ति जायेगा, दर्शन भ्रष्ट नहीं जायेगा। आहाहा !

दर्शनपाहुड़ की गाथा है अष्टपाहुड़ में `**दंसण भट्टा न सिझ्झंति, चरित्र भट्टा सिझ्झंति**' चारित्र का दोष होगा राग का तो उसको ख्याल है कि यह मेरी कमजोरी है, तब वह भी छोड़कर सिद्ध होगा परंतु (यदि) दर्शन भ्रष्ट है, जिसको अभी प्रतीति का पता नहीं। आहाहा ! वह तो ज्ञान से भ्रष्ट और चारित्र से भ्रष्ट तीनों से भ्रष्ट है। समझ में आया ? तब यह दर्शन क्या चीज है, उसकी अभी खबर नहीं। आहाहाहा ! और वह दर्शन कैसे प्राप्त हो, इसकी भी खबर नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? तब यहाँ व्यवहार का उपदेश देना - ऐसा कह दिया जाता है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि व्यवहार का अवलम्बन कराते हैं पर्याय का अवलम्बन कराते है - ऐसा नहीं। आहाहा ! `प्रत्युत' परंतु व्यवहार का अवलम्बन छुड़ाकर परमार्थ में पहुंचाते है।

आहाहा !

दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, यह आत्मा - ऐसा कहकर पर्याय-भेद से बताया परंतु भेद, अभेद को बताते हैं, अभेद की दृष्टि कराना है। आहाहा ! इसके बिना उसको सम्यग्दर्शन होगा नहीं, उसके बिना जन्म-मरण का अंत आयेगा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? **`व्यवहार का अवलम्बन छुड़ाकर परमार्थ में पहुंचाते हैं'** यह समझना चाहिए। भेद से बताया, परंतु भेद का अवलम्बन करना - ऐसा नहीं बताया। (श्रोता :- छुड़ाया है यह तो) छुड़ाया है वह तो। आहाहा ! आठवीं गाथा हुई।

गाथा - ९, १०

कथं व्यवहारस्य प्रतिपादकत्वमिति चेत् -

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।।९।।

जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।।१०।।जुम्मं।।

यो हि श्रुतेनाभिगच्छति आत्मानमिमं तु केवलं शुद्धम्।
तं श्रुतकेवलिनमृषयो भणंति लोकप्रदीपकराः।।९।।

यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति श्रुतकेवलिनं तमाहुर्जिनाः।
ज्ञानमात्मा सर्वं यस्माच्छ्रुतकेवली तस्मात्।।१०।।युग्मम्।।

अब, प्रश्न यह होता है कि व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है ? इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं :-

इस आत्म को श्रुत से नियत, जो शुद्ध केवल जानते।
ऋषिगण प्रकाशक लोकके, श्रुतकेवली उसको कहें।।९।।

श्रुतज्ञान सब जानें जु, जिन श्रुतकेवली उसको कहे।
सब ज्ञान सो आत्मा हि है, श्रुतकेवली उससे बने।।१०।।

गाथार्थ :- [यः] जो जीव [हि] निश्चय से (वास्तव में) [श्रुतेन तु] श्रुतज्ञान के द्वारा [इमं] इस अनुभवगोचर [केवलं शुद्धम्] केवल एक शुद्ध [आत्मानं] आत्मा को [अभिगच्छति] सम्मुख होकर जानता है, [तं] उसे [लोकप्रदीपकराः] लोक को प्रगट जाननेवाले [ऋषयः] ऋषीश्वर [श्रुतकेवलिनं] श्रुतकेवली [भणंति] कहते हैं; [यः] जो जीव [सर्वं] सर्व [श्रुतज्ञानं] श्रुतज्ञान को [जानाति] जानता है [तं] उसे [जिनाः] जिनदेव [श्रुतकेवलिनं] श्रुतकेवली [आहुः] कहते हैं, [यस्मात्] क्योंकि [ज्ञानं सर्वं] ज्ञान सब [आत्मा] आत्मा ही है [तस्मात्] इसलिये [श्रुतकेवली] (वह जीव) श्रुतकेवली है।

टीका :- प्रथम, `जो श्रुत से केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं' वह तो परमार्थ है; और `जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं' यह व्यवहार है। यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते हैं - उपरोक्त सर्व ज्ञान आत्मा है या अनात्मा ? यदि अनात्मा का पक्ष लिया जाये तो वह ठीक नहीं है, क्योंकि जो समस्त जड़रूप अनात्मा आकाशादिक पाँच द्रव्य हैं, उनका ज्ञान के साथ तादात्म्य बनता ही नहीं (क्योंकि उनमें ज्ञान सिद्ध नहीं है)। इसलिये अन्य पक्ष का अभाव होने से `ज्ञान आत्मा ही है' यह पक्ष सिद्ध हुआ। इसलिये श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है। - ऐसा होने से `जो आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली' - ऐसा ही घटित होता है; और वह तो परमार्थ ही है। इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कहनेवाला जो व्यवहार है उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है, उससे भिन्न कुछ नहीं कहा जाता और `जो श्रुत से केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं,' इसप्रकार परमार्थ का प्रतिपादन करना अशक्य होने से, `जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं' - ऐसा व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादकत्व से अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है।

भावार्थ :- जो शास्त्रज्ञान से अभेदरूप ज्ञायकमात्र शुद्ध आत्मा को जानता है वह श्रुतकेवली है, यह तो परमार्थ (निश्चय कथन) है और जो सर्व शास्त्रज्ञान को जानता है, उसने भी ज्ञान को जानने से आत्मा को ही जाना है, क्योंकि जो ज्ञान है वह आत्मा ही है; इसलिये ज्ञान-ज्ञानी के भेद को कहनेवाला जो व्यवहार उसने भी परमार्थ ही कहा है, अन्य कुछ नहीं कहा और परमार्थ का विषय तो कथंचित वचनगोचर भी नहीं है, इसलिये व्यवहारनय ही आत्मा को प्रगटरूप से कहता है - ऐसा जानना चाहिये।

गाथा - ९, १० पर प्रवचन

आगे प्रश्न होता है कि व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है ? कहते हो व्यवहार और परमार्थ का कहनेवाला कहते हो, छोड़ने लायक कहते हो और छोड़ने लायक चीज परमार्थ को बताती है - ऐसा कहते हो। आहाहा ! है ? यह प्रश्न अंदर है।

`कथं व्यवहारस्य प्रतिपादकत्वमिति चेत्' संस्कृत है संस्कृत है।

प्रश्न यह होता है कि व्यवहार नय... पर्याय से, भेद से द्रव्य को बताया- ऐसा व्यवहारनय परमार्थ को बताता है, तब परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है ? परमार्थ का

कहनेवाला किसप्रकार है वह ? उसके उत्तर स्वरूप क्या कहते हैं ? जिसके हृदय में - ऐसा प्रश्न उठा ख्याल में आया, तुमने व्यवहार को परमार्थ का कहनेवाला कहा तब यह क्या है ? किस तरह ? परमार्थ को कहनेवाला व्यवहार, जो व्यवहार छोड़ने लायक है, अनुकरण लायक नहीं, वह परमार्थ को कहनेवाला है ? - ऐसा जिसको अंतर में जिज्ञासा से प्रश्न उठा है, उसको उत्तर देने में आता है। समझ में आया ? जिसको यह समझकर अंदर से प्रश्न उठा कि व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादन करनेवाला कैसे ? व्यवहार से परमार्थ होता है यह बात नहीं परंतु व्यवहार परमार्थ को कहनेवाला है, यह कैसे ? आहाहा !

इसमें ऐसी भूल करते है सभी, देखो व्यवहार से परमार्थ प्राप्त होता है। इसने क्या कहा ? व्यवहार तो बताते है परमार्थ को, व्यवहार व्यवहार को बताते हैं यह बात नहीं। आहाहा ! व्यवहारनय व्यवहार का लक्ष्य कराता है - ऐसा नहीं, परमार्थ को कहनेवाला है यह कैसे है ? उसका उत्तर !

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।।९।।

जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।।१०।।जुम्मं।।

इस आत्म को श्रुत से नियत, जो शुद्ध केवल जानते।
ऋषिगण प्रकाशक लोकके, श्रुतकेवली उसको कहें।।९।।

श्रुतज्ञान सब जानें जु, जिन श्रुतकेवली उसको कहे।
सब ज्ञान सो आत्मा हि है, श्रुतकेवली उससे बने।।१०।।

गाथार्थ लेते हैं। जो जीव निश्चय से खरेखर वास्तव में, अर्थात यथार्थ श्रुतज्ञान के द्वारा, भावार्थ में तो - ऐसा लेंगें साधारण भाई भावार्थ में, शास्त्रज्ञान से - ऐसा लिखा है, भाई भावार्थ में, परंतु - ऐसा नहीं यहाँ तो भावश्रुत ज्ञान से सीधा आत्मा को जानते हैं। फिर शास्त्र ज्ञान आदि ग्रहण करना।

जो जीव वास्तव में, खरेखर भावश्रुतज्ञान के द्वारा, श्रुत तो निमित्त है परंतु भावश्रुतज्ञान जो हुआ अपनी आत्मा को ग्रहण करने लायक, भावश्रुतज्ञान हुआ। आहाहा ! इस श्रुत के द्वारा अनुभव गोचर, अनुभव गम्य, केवल शुद्धम् केवल एक शुद्ध, एक शुद्ध आत्मा भावश्रुतज्ञान द्वारा, द्रव्यश्रुत तो निमित्त है, परंतु अंदर भावश्रुतज्ञान द्वारा 'सुयेण अभिगच्छई' जो अपने आत्मा के सन्मुख होकर अभि अर्थात समस्त प्रकार से अनुभव

करता है, भावश्रुतज्ञान द्वारा वस्तु के सन्मुख होकर समस्त प्रकार से अनुभव करता है। आहाहा ! क्या कहते हैं ? वस्तु जो है वस्तु, अनंतगुणरूप अभेद वस्तु (आत्मद्रव्य) वह जो भावश्रुतज्ञान द्वारा सीधा अनुभव करते हैं... यह तो निश्चय श्रुतकेवली है, है ?

केवल एक, केवल शुद्धम् है, न ? केवल का अर्थ एक शुद्ध, आहा ! श्रुतज्ञान के द्वारा यह अनुभव गोचर... अनुभव गोचर, अनुभव गम्य केवल एक शुद्धात्मा को अभिगच्छति सन्मुख होकर जानता है। अंर्तमुख होकर (आहा) अंर्तमुख होकर, भावश्रुतज्ञान द्वारा अंर्तमुख होकर जो कोई आत्मा को केवल शुद्धम् एक शुद्धरूप वस्तु... आहाहा ! एकरूप शुद्ध उसको भावश्रुतज्ञान द्वारा जानता है उसे 'लोक प्रदीपकरः' लोक को प्रगट जाननेवाले संत मुनियों, श्रुतकेवली कहते हैं। यह श्रुतकेवली का अर्थ, कोई विशेष ज्ञान हो गया है, उसकी यहाँ बात नहीं। आहाहा ! जिसने भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा (जाना), द्रव्यश्रुत में वो कहा है - ऐसा भावश्रुत (ज्ञान) हुआ है और भावश्रुत द्वारा भगवान पूर्णानंद आत्मा को सन्मुख होकर समस्त प्रकार से, सभी तरह से, चारों तरफ से आत्मा को अनुभवते हैं। आहाहा ! ऐसे अनुभवी जीवों को 'ऋषीश्वर' लोक को जाननेवाले तीनकाल, तीनलोक को जाननेवाले केवलियों अथवा ऋषीश्वर संत उन्हें निश्चय श्रुतकेवली कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

भावश्रुतज्ञान द्वारा जानने में आया न इतना ? इसके द्वारा का अर्थ यह है कि साथ इसप्रकार सीधा जानते है भावश्रुत से जानते है न ? भावश्रुत से जानते है न ? उनके अंदर में भेद नहीं परंतु यहाँ समझाने में क्या करें ? यह भावश्रुत यह है और मैं उसको जानता हूँ - ऐसा उसमें भेद नहीं। परंतु समझाने क्या करें ? आहाहाहा ! यहाँ भावार्थ में शास्त्र-ज्ञान द्वारा कहेंगे, उसका अर्थ यह है कि शास्त्र का ज्ञान यह - ऐसा कहते हैं, शास्त्र के तात्पर्य में यह कहते हैं कि तुम्हारा श्रुतज्ञान (का) जो भाव है यह वीतरागी पर्याय है, उसका भावश्रुत के द्वारा आत्मा का अनुभव करते हैं। भावश्रुत द्वारा अनुभव करते हैं आत्मा का। समझ में आया ? (श्रोता :- द्रव्यश्रुत द्वारा नहीं करते, करते भावश्रुत द्वारा करते हैं) भावश्रुत, द्रव्यश्रुत नहीं, द्रव्यश्रुत तो बाह्य निमित्त है, यह वस्तु थोड़ी ली है, द्रव्यश्रुत में - ऐसा कहा है द्रव्यश्रुत में भी - ऐसा कहा है, अपदेश संतमझ्झम्, आया न ? अपदेशसंत मझ्झम्।

पन्द्रहमी गाथा में, मतभेद है न, वे कहते हैं कि 'अपदेश' अर्थात अखण्ड प्रदेश ! - ऐसा नहीं है। वे बाहर में बहुत भाषण करते है, अपदेश का अर्थ अभी नया किया। श्रुतज्ञान से ! यहाँ, अपदेश का अर्थ अखण्ड प्रदेश ऐसी बात है नहीं। अपदेश का अर्थ कथन है, यह जयसेनाचार्य की टीका में लिया है, पन्द्रहवीं गाथा में, अपदेश अर्थात कथन ! श्रुत, द्रव्य श्रुत में भी यह कहा है कि आत्मा को अबद्ध स्पष्ट

देखे वह समकिति है न वह जिनशासन का जाननेवाला है, इसीप्रकार द्रव्यश्रुत में भी - ऐसा कहा है, और भावश्रुत द्वारा भी यही जानते हैं। भावश्रुत द्वारा भी अबद्धस्पष्ट आत्मा को जानते हैं यह जैनशासन को जानते हैं। आहाहाहा !

अन्जान (व्यक्ति) को तो - ऐसा लगे कि यह किस जाति की बात होगी। अपने को तो भक्ति करना, हमेशा देव दर्शन करना, साधुओं को आहार देना (साधर्मी को) भोजन कराना। आहाहा ! अरे यह चीज ही नहीं भाई ! यह चीज तो अंदर भगवान आत्मा द्रव्यश्रुत में भी यह कहा कि द्रव्यश्रुत का सार तो वीतरागता है, चारों अनुयोंगों का और भावश्रुतज्ञान यह वीतरागी पर्याय है, आहाहा ! श्रुतज्ञान भी वीतरागी पर्याय है, यह भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करते है, यह समकिति श्रुतकेवली है, उन्होंने सब शास्त्रों का सार जान लिया है। आहाहा ! समझ में आया ? (श्रोता :- श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को जाने यह निश्चय श्रुतकेवली) निश्चय श्रुतकेवली वस्तु-वस्तु जाने यह लोक को प्रगट जाननेवाले केवली अथवा संत निश्चय से उसे श्रुतकेवली कहते हैं। आहाहा !

जो जीव सर्व श्रुतज्ञान को जानता है, ज्ञान को जानते है, ज्ञान ऊपर लक्ष्य है भावश्रुत हाँ ! आहाहा ! भावश्रुतज्ञान को जानते हैं ! आहाहा ! जानता है उसे जिनदेव... लो यहाँ जिनदेव कहें वहाँ लोक प्रदीपकर कहा यह तो उसका अर्थ है, उसको जिनदेव श्रुतकेवली कहते हैं व्यवहार (से) वहाँ व्यवहार लेना, इस ज्ञान को भावज्ञान हो ! जाना वह व्यवहार श्रुतकेवली है। परंतु इस श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा जाना यह निश्चय श्रुतकेवली है, इतना भेद बताया, समझ में आया ?

(श्रोता :- ***ऐसा नहीं लेना कि बारह अंग को जाने वह व्यवहार श्रुतकेवली ?) यह यहाँ ज्ञान में जो ज्ञान है इस ज्ञान को ही सर्व ज्ञान कहने में आया है, चाहे थोड़ा ज्ञान हो परंतु सर्वज्ञान, सभी को जाने, पूर्ण को जाननेवाला ज्ञान तो ज्ञान को ही सर्वज्ञान कहा। यह ज्ञान भी व्यवहार (से) श्रुतकेवली है, संपूर्ण जाना उसको व्यवहार से भी (कहा) क्योंकि, जानना तो आत्मा को (था) उसे वह ज्ञान को जाने यह व्यवहार है, ज्ञान आत्मा को जाने यह निश्चय है इतना भेद है।*** आहाहा !

श्रुतकेवली कहते हैं ? क्योंकि जो ज्ञान सब आत्मा है। यह सभी ज्ञान ही है चाहे थोड़ा हो परंतु यह सब ज्ञान, यह आत्मा है, ज्ञान यह आत्मा है - ऐसा बताना है न ? आहाहा ! क्योंकि ज्ञान सब, `सब' शब्द लिखा है न ? ***भले वह ज्ञान थोड़ा हो भावश्रुत, परंतु उससे सारा आत्मा जानने में आता है, इसकारण थोड़े श्रुतज्ञान को भी सब श्रुतज्ञान कहा (है), समझ में आया ?*** क्या कहा ? कि पहले तो जो अपना भावश्रुतज्ञान द्वारा अपने आत्मा को जाना, मूल तो यह जानो उसको केवली

ऋषीश्वर निश्चय परमार्थ केवली है, परमार्थ श्रुतकेवली - ऐसा कहा। परंतु उनकी जो जाननेरूप पर्याय है, और जानने की पर्याय में तो सर्व पूर्ण यही जानने में आता है - ऐसे ज्ञान को ही सारे ज्ञान को ही द्रव्यश्रुतकेवली... उन्हें व्यवहार श्रुतकेवली कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

यह `सब' कहा न कि संपूर्ण को जानना है तथा भले यह ज्ञान अल्प हो परंतु यह सब ज्ञान ही है, ज्ञान सब, यह ज्ञान को सभी को जाने यह व्यवहार श्रुतकेवली और ज्ञान से आत्मा को जाने यह निश्चय श्रुतकेवली है, उसमें ही उसमें दो (भेद) है। आहाहा !

यहाँ तो शुभराग करें तो यह व्यवहार है - ऐसा कहा ही नहीं, जो ज्ञान पूरी अखण्ड आत्मा को जानने की ताकात रखता है, उस ज्ञान को ही `सब' ज्ञान कहा, समझ में आया ? आहाहा ! क्योंकि ज्ञान सब आत्मा ही है, इसलिये यह जीव व्यवहार श्रुतकेवली है, उस जीव को श्रुतकेवली कहना, ज्ञान को जानते हैं, ज्ञान में सारा आत्मा जानने की वस्तु है यह ज्ञान को जानते हैं यह व्यवहार श्रुतकेवली और ज्ञान से भगवान को (निजात्मा को) जाने यह निश्चय श्रुतकेवली... उसकी टीका चलेगी। आहाहा !

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. ३३ गाथा-९-१० ता. १४-७-७८ शुक्रवार अषाढ सुदी-८ सं.२५०४

समयसार ! ९ और १० गाथा, टीका है न इसकी। प्रथम, **`जो श्रुत से केवल शुद्धात्मा को जानते है वे श्रुतकेवली है'** क्या कहा ? जो अंदर श्रुतज्ञान, भावश्रुतज्ञान जिसमें राग नहीं, स्वस्वरूप को जाननेवाला भावश्रुतज्ञान, इस भावश्रुतज्ञान से आत्मा को जानते हैं वह श्रुतकेवली परमार्थ से है। क्योंकि जिसने पूरा आत्मा जाना, भावश्रुत, द्रव्यश्रुत नहीं, विकल्प नहीं, राग या शुभादि (भाव), राग तो अंधकार है राग में जानने की शक्ति नहीं, जानने की शक्ति जो राग से भिन्न, जो स्वरूप को पकड़ने (वाला) भावश्रुतज्ञान वर्तमान पर्याय, वर्तमान भावश्रुतज्ञान निर्मल पर्याय, राग बिना की ऐसे निर्मल श्रुतज्ञान से आत्मा को सीधा जानता है, यह तो निश्चय समकिति अर्थात कि निश्चय श्रुतकेवली। आहाहाहा ! निमित्त से जानने में आता है - ऐसा भी नहीं, व्यवहार श्रुतज्ञान शब्दों से जानने में आता है - ऐसा भी नहीं, इसीप्रकार दया, दान, व्रत, भक्तिरूप

राग की मंदता के भाव शुभभाव से आत्मा जानने में आये - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! अंतर में भावश्रुतज्ञान द्वारा अंतर्मुख होकर (जानते है) अपूर्व बात है। अनंतकाल से कभी किया नहीं इसने।

यहाँ दो प्रकार से वर्णन करेंगे। निश्चयश्रुतकेवली और व्यवहारश्रुतकेवली, सत् सच्चाश्रुतकेवली और उपचार कथन के श्रुतकेवली, जो सच्चे श्रुतकेवली उन्हें कहते है कि ***जिसने अंदर भावश्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत के ज्ञान द्वारा, भावार्थ में - ऐसा अवश्य लिया है परंतु द्रव्यश्रुत तो निमित्त है और भावश्रुत तो अपने से हुआ है, यह भावश्रुत का वर्तमान ज्ञान की पर्याय से, द्रव्य अर्थात ज्ञायकभाव को जाने यही सच्चा निश्चय श्रुतकेवली है।*** उसको जो जानना था यह जान लिया। आहाहा ! बारह अंगों में जो कहने की बात थी, अनुभूति करने की, कि ज्ञान द्वारा आत्मा को, ***वर्तमानज्ञान द्वारा आत्मा को सीधा पकड़ना, यह अनुभूति इसमें आत्मा का ज्ञान आया, यहाँ परमार्थ से श्रुत में पूर्ण हुआ यह, क्योंकि श्रुत को जाननेवाला ज्ञान यह तो त्रिकाली स्वरूप है उसे जिसने श्रुतज्ञान द्वारा जाना यह तो परमार्थ से श्रुतकेवली हो गया।*** आहाहा !

नरक का नारकी हो कि पशु हो, तिर्यंच भी यह अंतर के भाव (श्रुत) ज्ञान द्वारा आत्मा को जैसा अनुभवे जाने, तब यह श्रुतकेवली है सभी जाना उसने। आहाहा ! उसने सभी जाना आहाहा ! उसने सभी जाना `जाननेवाले को जाना' उसने सभी जाना, आहाहाहाहा ! सूक्ष्मबात है भाई ! यह आत्मा जो एक समय में अकेला ज्ञायक भाव जिसमें गुण होने पर भी गुणों का भेद नहीं - ऐसा जो अभेद द्रव्य स्वभाव कि जो भावश्रुत से उसे जाने, उसने परमार्थ से आत्मा को जाना तब परमार्थ से उसको श्रुतकेवली कहा जाता है। आहाहा !

चाहे अन्य शास्त्र का ज्ञान विशेष न हो, समझाना भी कदाचित नहीं आये, आहाहा ! जिसने अंतरज्ञान, राग के विकल्प बिना का जो ज्ञान - ऐसा जो श्रुतभाव उसने भगवान - ऐसा भगवान आत्मा उसको जाने, जाना वह सम्यग्दृष्टि और वह भावश्रुतकेवली। आहाहा ! बाबूलालजी ! छोटा भाई ! - ऐसा मार्ग है बापा ! आहाहा !

जो जानने योग्य वस्तु थी, परमात्मस्वरूप, सर्वोत्कृष्ट ज्ञायकभाव (वह जाना) दोपहर तो आया था न बहुत, अभी आज दोपहर को आयेगा। आहाहा ! जिसमें मुनिपर्याय का लिंग केवली की पर्याय और सिद्धपर्याय भी जिसमें नहीं, त्रिकाली ज्ञायक में नहीं ऐसे ज्ञायक को जिसने वर्तमान भावश्रुत से जाना... आहाहा ! यह सच्चा निश्चय परमार्थश्रुतकेवली है। आहाहाहा ! है ? यह प्रथम पंक्ति हुई, प्रथम प्रथम `तावत्' शब्द है न मूल संस्कृत में है अंतिम `तावत्' यह पहली पंक्ति उसका तावत् अंतिम शब्द

है, संस्कृत में `तावत् परमार्थ' पहली पंक्ति। आहाहा ! समझ में आता है कुछ ? वह तो परमार्थ है। आहाहा ! परम पदार्थ, परमार्थ स्वरूप अपना ध्रुव, अपना इसे जिसने भावश्रुत से जाना यह तो परमार्थ है। यह परमार्थ किसी का करे - ऐसा नहीं हो यह। (लोक में मानते है) पैसा देना किसीकी मदद करना यह परमार्थ काम करते हैं। आहाहा ! परमार्थ तो यह भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण... तुम तो गुजराती समझते हो न ? तुम मूल में तो गुजरात के ही हो, बड़े भाई, यह तो ठीक है। आहाहा !

बहुत संक्षेप में पूर्ण स्वरूप... जिसको अल्पज्ञान (होनेपर भी) परंतु भावश्रुत है। जिसको विशेष द्रव्यश्रुत का ज्ञान ही न हो। आहाहाहा ! परंतु जो ज्ञान की दशा, भावश्रुत जिसकी यह पर्याय है उसको जिसने जाना। आहाहा ! यह परमार्थ से निश्चय सच्चा श्रुतकेवली है। बाबूलालजी ! भैया ऐसी बात है, व्यवहार-व्यवहार तो तुम्हारा कहाँ, भैया ने प्रश्न किया था न ? शुभभाव आता है, धर्मी को भी (अशुभ) से बचने के लिये शुभभाव होता है, परंतु है यह बंध का कारण, धर्मी को भी आत्मज्ञान होने पर भी और अंतर के अनुभव की दृष्टि होने पर भी, उसे अशुभ से बचने (के लिये) शुभभाव आते हैं, परंतु है यह बंध का कारण। मोक्षमार्ग नहीं और मोक्षमार्ग का यह कारण नहीं। आहाहाहा ! अरे ! मनुष्यभव में तो करना तो यह है। जिसमें हित हो, अहित टले। आहाहाहा ! शेष सभी बेकार है। आहा ! शेठ ! यह एक बात हुई।

भावश्रुतज्ञान समझे न ? उसमें भावश्रुतज्ञान से आत्मा जाने यह परमार्थ से यथार्थ से निश्चयश्रुतकेवली और यह परमार्थ है यह। यही वास्तविक चीज है। आहाहाहा ! और जो... यह तुम्हारा प्रश्न आया अब, और जो सभी श्रुतज्ञान को जानता है, सभी श्रुतज्ञान क्यों कहा ? है तो भावश्रुतज्ञान पर्याय इस ज्ञान से ज्ञान में आत्मा जानता है - ऐसा कहना है। इस श्रुतज्ञान से सीधा जानता है यह दूसरी बात, अब यह तो `ज्ञान सो आत्मा' - ऐसा भेद करके समझाना है कि यह ज्ञान इसका संबंध आत्मद्रव्य के साथ है, यह ज्ञान सो आत्मा... इतना भेद करके जो ज्ञान सो आत्मा - ऐसा कहा उस ज्ञान को यहाँ सर्वज्ञान कहा है। आहाहा !

क्योंकि इस सभी को जानने के लिये जाता है, यह ज्ञान की पर्याय सर्व को जानने के लिये है। है ! श्रुतज्ञान वह आत्मा इतना भेद करना है, वह व्यवहार है। परंतु उसको सर्व श्रुत क्यों कहा ? क्योंकि श्रुतज्ञान से यह **`ज्ञान सो आत्मा'** - ऐसा कह कर परमार्थ का उपदेश इसप्रकार चलता (है)। अकेला सीधा परमार्थ का उपदेश हो सकता नहीं। इसलिये उसको जो श्रुतज्ञान है। ज्ञान है वह तो भावश्रुत है, द्रव्यश्रुत की यहाँ बात नहीं। परंतु यहाँ भावश्रुतज्ञान जो हुआ यह ज्ञान आत्मा

को जानता है, यह ज्ञान आत्मा का है, उसका आत्मा के साथ तादात्म्य संबंध है, इतना जो ज्ञान और आत्मा का भेद करके आत्मा को समझाया इसलिये उस ज्ञान को सर्व श्रुत कहा जाता है। क्योंकि वह ज्ञान पूरा भगवान आत्मा तीनलोक का नाथ पूर्ण उसे जाननेवाला यह ज्ञान है और इस ज्ञान का आत्मा के साथ तादात्म्य संबंध है।

कांतिभाई ! यह तुम्हारा प्रश्न अब यहाँ आया, प्लेन में नौकर थे। १५०० का वेतन (है) ब्रह्मचारी है, बालब्रह्मचारी। छोड़ दी, नौकरी, छोड़ दी। देढ़ हजार का वेतन था मासिक, प्लेन कहलाती न वहाँ हम जाते तब मदद करने आते टोप पहनकर हाँ। रात को प्रश्न किया था न श्रुत का। आहाहा ! यहाँ कहते हैं प्रभु एक बार सुन तो सही ! कि तुम्हारी जो ज्ञान की पर्याय है, स्वरूप का ज्ञान वास्तविक यह ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान और पर का ज्ञान यह बात यहाँ नहीं। आहाहा ! ***शास्त्र से भी ज्ञान जो (कहा) हुआ, वह भी स्वयं से हुआ, उसे यहाँ ज्ञान कहने में नहीं आता है। द्रव्यश्रुत को सुनकर हुआ वह ज्ञान भी वास्तविक ज्ञान नहीं। क्योंकि सुनकर के भी जो ज्ञान हुआ है वह स्वयं से (हुआ), परंतु यह परलक्ष्य से ज्ञान हुआ, उसे स्वलक्ष्य करने के लिये वह ज्ञान काम नहीं आये।*** आहाहा !

ऐसा वीतराग मार्ग, आहाहा ! दिगम्बर जैन धर्म सनातन सत्य तीनों काल में कहीं है नहीं अन्य जगह। आहाहा ! ऐसी यह चीज तो देखो उसे सुनने को मिले नहीं। आहाहाहाहा ! दिगम्बर मुनि केवलियों के पथानुगामी, अल्पकाल में, एकादभव में केवलज्ञान लेनेवाले हैं। यह संत जगत को समझाते है। आहाहाहाहा ! पक्ष में बंधकर बैठे है यह, यह बात इसमें नहीं बापू ! आहाहा ! यह तो वस्तु का स्वरूप है। यह जैन कोई संप्रदाय नहीं, जैन कोई पंथ नहीं यह तो वस्तु का स्वरूप है।

जिन सो ही आत्मा, अन्य सो ही कर्म,
यही बचन से समझ ले, जिनप्रवचन का मर्म।
घट घट अंतर जिन वसे, घट घट अंतर जैन,
मत मदिरा के पान सो, मतवाला समझें न। - नाटक समयसार

मतवाला - अपने मत का अभिप्राय अर्थात मूर्छापना, मूर्छा, भगवान जिनस्वरूपी प्रभु ! आहाहा ! ***परमात्मप्रकाश में भाई आता है न ! ८८ गाथा जिसमें भाव लिंग का स्वरूप उपचार से जीव का है। परमार्थ से तो मुनिपना भावलिंग मोक्षमार्ग यह ज्ञायकभाव में नहीं।*** आहाहा ! ***ऐसा ज्ञायक है उसे जिस ज्ञान ने जाना उस ज्ञान ने भावश्रुत को जाना वह तो श्रुतकेवली परमार्थ से है,*** यथार्थ है, सत्यार्थ है, परंतु

जो ज्ञान भावश्रुत ज्ञान द्वारा, यह ज्ञान सो यह आत्मा - ऐसा जो समझाया है क्योंकि ज्ञान और आत्मा का तादात्म्य संबंध है, एकरूप संबंध है। जैसे उष्णता और अग्नि का तत्‌रूप संबंध है। इसीप्रकार यह ज्ञान और आत्मा का तद्रूप तादात्म्य संबंध है। इस कारण कहा कि जो सर्व श्रुतज्ञान को जानता है। सर्वश्रुतज्ञान से आत्मा को जानता है यह अभी यहाँ नहीं, आत्मा को श्रुतज्ञान द्वारा जानते है यह तो निश्चय हुआ।

अब यह आत्मा को जाननेवाला ज्ञान, यह ज्ञान जो है यह सर्व श्रुत को जाननेवाला है यह है ? जो सर्व श्रुतज्ञान को जानता है। आहाहाहा ! ***चाहे वह ज्ञान अल्प हो और ध्रुव को जाने अंदर में, तब वह ज्ञान को भी सर्वश्रुत ज्ञान कहा है।*** समझ में आया ? आहाहाहाहा ! - ऐसा मार्ग ! पकड़ने में कठिन लगे, दिगम्बर जैन धर्म सनातन अनादि अनंत जिसको गणधरों ने स्वीकारा, इन्द्रों ने सत्कार करके अनुभव किया, इन्द्र एकावतारी एक भव से मोक्ष जानेवाले है शक्रेन्द्र। सौधर्मलोक के बत्तीस लाख विमान, एक एक विमान में असंख्य देव, उसका स्वामी इन्द्र है। भगवान के शास्त्रों में सिद्धांत में - ऐसा कहा है कि अभी (जो) शकेन्द्र है कि वह मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले है। आहाहा ! (इन्द्र) समकिति है। बाबूलालजी ! इन्द्र सौधर्मदेवलोक है, ऊपर पहला मेरुपर्वत ऊपर, (तुरंत) बत्तीसलाख तो विमान है। एक एक विमान में असंख्य देव है। कोई विमान छोटा होगा, शेष बहुत असंख्य है उसका स्वामी है, करोड़ों अप्सरायें है, परंतु अंदर में आहाहा ! यह भावश्रुतज्ञान से आत्मा को जान लिया है। आहाहा ! तब यह कोई वस्तु हमारी नहीं, (अभिप्राय में) मैं इन्द्र नहीं, मैं इन इन्द्राणी का स्वामी नहीं। मैं ३२ लाख विमानों का स्वामी नहीं। आहाहाहा ! हमने तो एक श्रुतज्ञान द्वारा त्रिकाली जो जाना है। आहाहाहा ! भगवान उसे श्रुत केवलीयो, श्रुतकेवली कहते हैं। आहाहा ! ***और उसे यह जाननेवाला जो ज्ञान है, उसे सर्वश्रुत कहकर एवं वह ज्ञान आत्मा का है, आत्मा के साथ संबंध - ऐसा व्यवहार है। इतना भेद करके समझाया (है) यह व्यवहार हुआ।*** आहाहाहा ! दया, दान आदि रूप व्यवहार के व्रत के विकल्प की तो बात रही नहीं।

मात्र जो श्रुतज्ञान जो आत्मा को जाननेवाला ज्ञान, चाहे वह अल्पज्ञान हो परंतु उसको सर्वश्रुत कहा, कारण कि जो जाननेवाला है उस जाननेवाले ज्ञान का उससे संबंध है, यह ज्ञान सो आत्मा है। आहाहाहा ! (श्रोता :- सर्वश्रुत का अर्थ स्वपरप्रकाशक ले सकते हैं ?) यहाँ सर्व अर्थात आत्मा को जाननेवाला ज्ञान वह सर्वश्रुत। आत्मा जो ज्ञान है। यह आत्मा को सीधा जाने यह परमार्थ तो सीधी बात है, अब इस ज्ञान को यहाँ, इस ज्ञान को सर्वश्रुत कहा क्योंकि यह आत्मा को जाननेवाला ज्ञान है। यह ज्ञान और आत्मा दोनों का संबंध है। तादात्म्य तद्‌रूप, इस कारण ज्ञान

को सर्वज्ञान कहा और वह ज्ञान वह श्रुतकेवली है। यह व्यवहार कहा। यह ज्ञान वह श्रुत केवली है, उसे जाने वह ज्ञान श्रुत केवली है। यह व्यवहार कहा। यह ज्ञान वह श्रुतकेवली है उसे जाने उसे श्रुतकेवली कहना यह व्यवहार है और वही ज्ञान आत्मा को जाने उसे निश्चय श्रुतकेवली कहते हैं। आहाहा !

कहो कांतिभाई ! प्रकरण तो जब आये तब स्पष्टीकरण होता है न ? (श्रोता :- सर्व श्रुतज्ञान अतीन्द्रय ज्ञान है ?) हाँ, यह `अतीन्द्रियज्ञान' है यहाँ तो इतना कहना है, कि इस ज्ञान का संबंध आत्मतत्त्व के साथ है। इसलिये वह तादात्म्य संबंध होने से `ज्ञान सो आत्मा' - ऐसा जो भेद करके समझाया उस ज्ञान को व्यवहार श्रुतकेवली कहा जाता है। आहाहा ! नवरंगभाई ऐसी बातें है।

प्रथम १२ गाथाओं में तो पूरे समयसार का संपूर्ण स्वरूप भर दिया है। फिर तेरह (गाथा) से उसका विस्तार है। पहली १२ गाथायें... कुन्दकुन्दाचार्य की गजब रचना और अमृतचन्द्राचार्य की टीका दिगम्बर संत। आहाहा ! अतीन्द्रिय प्रचुर आनंद के वेदन में स्थित हैं उनको यह विकल्प आया और टीका रची गई। फिर भी यह स्वयं - ऐसा कहते हैं कि प्रभु ! इस टीका का मैं रचनेवाला नहीं, हाँ। यह तो शब्दों की रचना हो गई है। आहाहाहा ! मैं तो स्वरूप में आत्मा में हूँ, मैं तो स्वरूपगुप्त हूँ। आहाहा ! जहाँ मैं हूँ वहाँ तो राग ही नहीं। वहाँ पर को समझाने का विकल्प भी नहीं और में जहाँ हूँ और जो हूँ वह टीका के शब्दों को रचे - ऐसा आत्मा नहीं। आहाहाहा ! किंचित् मात्र हमारा कर्तव्य नहीं - ऐसा कहा है। यह टीका के शब्दों की रचना हुई इसमें किंचित् थोड़ा भी हमारा कर्तव्य नहीं (मैं) अकिंचितकर (हूँ)। आहाहाहा ! उसमें वस्तु का स्वरूप है, हो ! परद्रव्य की रचना कौन करे प्रभु ? यह परद्रव्य के रजकण की उस समय वह पर्याय होना हो वह परद्रव्य से होती है। आहाहा !

यहाँ तो यह बड़ा धंधा और व्यापार और उसके सभी (काम) मैं हूँ तब होता है। मैं इसे करता हूँ। बहुत भ्रमणा। यह तुम्हारे शेठ जैसों को धंधा बड़ा हो, सभी बड़े-बड़े आकर बैठें, गादी कहलाती क्या ? दुकान की पीढ़ी ऊपर, यह करो और - ऐसा करो। आहाहा ! कौन करे प्रभु ? परद्रव्य की क्रिया कौन करे नाथ ? आहाहा ! तुम जहाँ हो वहाँ यह करने का स्वरूप है ही नहीं।

अरे ! तुम जहाँ हो वहाँ मोक्षमार्ग की पर्याय भी उस द्रव्य में नहीं। आहाहा ! यह पर्याय में है। आहाहा ! - ऐसा जो स्वभाव बापू ! यह स्वभाव को जाननेवाला ज्ञान, उस ज्ञान को यहाँ सर्व श्रुत कहा जाता है, क्योंकि वह `ज्ञान सो आत्मा' ज्ञान का संबंध, आत्मा के साथ है, ज्ञान का संबंध किसी अनात्मा के साथ है नहीं, इस

ज्ञान का संबंध व्यवहार रत्नत्रय का राग होता है, उसके साथ संबंध नहीं। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

जो भावश्रुतज्ञान है उसके द्वारा सीधा आत्मा को जाने, भेद किये बिना, यह तो सच्चा निश्चय परमार्थ श्रुतकेवली है। परंतु उस पदार्थ को जाननेवाला भावश्रुतज्ञान जो है। जिस ज्ञान का संबंध (निज) आत्मा के साथ है, इसलिये उस ज्ञान को आत्मा कहकर, उस ज्ञान को व्यवहार सर्व श्रुतकेवली कहा जाता है। आहाहाहा ! गजब बात है। आहाहाहा ! ऐसी बात ! यह तो तीर्थंकर के घर की बात है। जिसे गणधर सुनते थे, जिसे एकावतारी, एक भवतारी इन्द्र सुनते थे, यह बात है। आहाहा ! भगवान (सीमंधरनाथ) विराजते हैं, वहाँ से तो यह बात आई है। आहाहाहा !

अभी तो निश्चय और व्यवहार किसको कहना यह बात अभी चलती है। आहाहा ! जो अंतर ज्ञान द्वारा आत्मा का सीधा अनुभव करे यह तो यथार्थ निश्चय परमार्थ श्रुतकेवली, परंतु उस परमार्थ स्वरूप को जाननेवाला ज्ञान, यह ज्ञान उसका (आत्मा) के साथ तादात्म्य संबंध है, वस्तु के साथ यह तो भेद जानकर उस ज्ञान को सर्वश्रुत कहा और उस ज्ञान को व्यवहार कहा वह व्यवहार श्रुतकेवली कहा। आहाहाहाहा ! कहो रतिभाई ! ऐसी बातें है। अब मूलवस्तु में बहुत बदलाव हो गया है। आहाहा ! अभ्यास नहीं न ? अतः कठिन लगे, ऐसी लगे यह बात। वस्तु तो इस प्रकार है और यही परम सत्य है। आहाहा !

`ज्ञान', शास्त्र का ज्ञान नहीं, जो आत्मा का ज्ञान हुआ, यह `ज्ञान सो आत्मा' है इतना भेद करके समझाया है, यह ज्ञान आत्मा को अनुभवता है, यह परमार्थ को कहना इस भेद के बिना समझ सकते नहीं, इसलिये बीच में - ऐसा एक व्यवहार भेद आता है, यह भेद यह कि ज्ञान जो आत्मा को जाननेवाला है, वह ज्ञान आत्मा को जाने - ऐसा संबंध है इसलिये उस ज्ञान को सर्वश्रुत कहकर उसे व्यवहारश्रुत केवली कहा जाता है। आहाहा ! धीरुभाई ! - ऐसा मार्ग है। आहाहा !

अरेरे ! जिसे सुनने को मिला नहीं - ऐसा मनुष्यपना... कहा ना कि परसों तो यह विचार आया था। अरेरे ! अपने मां-बाप को प्यारा कहते है। प्यारी हमारी मां और बाप प्यारा कहते थे। वह कहाँ गये होंगे, यह विचार किया है ? बाबूलालजी ! आहाहा ! तुम - ऐसा कहते हमारी मां, इसप्रकार गोदी में बैठा ले और पालें पोसे। आहाहा ! दोनों पैर लम्बा करके (बैठाकर) संडास कराते, यह दोनों पैर लम्बे करके बैठालते है - ऐसा करते है न, बालक को जंगल, दिशा के लिये पैर पर पैर करके उस छोटे बालक को, आहाहा ! - ऐसा जिन्होंने बड़ा किया और जिन्हें प्यार करके मां, मां कहता तब अरे यह मरकर कहाँ गये बापू ! तुमने देखा है ? आहाहा !

पिताजी ! ऐसे तुम बापूजी, बापूजी करते भाई, कहाँ गये बापू। आहाहाहाहा ! ऐसे तो अनंत मां-बाप किये। आहाहा !

एक (लड़का) नीमपत्ती तोड़ता था, तब कहा कि भाई तुम छोड़ दो बापू, यह तुम्हारे पूर्व (भव) के बहुत मां-बाप इसमें बैठे हैं। यह नीम, बाबूलालजी ! यह नीम पत्ता है न ? एक-एक पत्तों में असंख्य जीव है हाँ ! एक पत्ते में असंख्य जीव हैं, एक टुकड़े में असंख्य। आहाहा ! कहा भाई ! तुम इसे तोड़ो नहीं रहने दो। बापू ! तुम्हें खबर नहीं। तुम्हारे असंख्य बहुत भवों के मां-बाप मरकर के इसमें बैठे है स्थित होंगे। तुम जिसे मां, मां कहता और मम्मी, मम्मी कहता था, साड़ी पकड़ता था, साड़ी क्या कहते हैं ? साड़ी पकड़कर इसप्रकार खड़ा रहता, मां, मां, कहता था। आहाहा ! अरे ! भाई तुमने विचार किया नहीं। आहाहाहा ! ऐसे अनंतजीव कहीं भटकते-भटकते कहाँ परिभ्रमण करते होंगे। बापू तुझे (भव) सुधारने का रस्ता मिला है, सुधार लो - ऐसा समय पुनः नहीं मिलेगा। आहाहा ! यह ही करना है।

छः ढाला में आता है न ? लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ, छः ढाला में आता न भाई ! लाख बात, लाख नहीं अपितु अनंत बात, अनंत बात की बात, निश्चय उर आनो, छोड़ी सकल जग छंद-कंद निज आतम ध्याओ। आहाहाहाहा ! छः ढाला में आता है। गागर में सागर भर दिया है। छः ढाला में बहुत... संत और उस समय के पण्डित भी बहुत अच्छे, टोडरमल, बनारसीदास, भागचन्द्रजी यह दौलतराम पण्डित तो पण्डित ही, अभी तो सभी गड़बड़ हो गई। आहाहा !

भाई, तुम्हें दिखावा करना है कि देखनेवाले को देखना है ? आहाहा ! दुनियाँ में प्रदर्शन करना है ? कि हमको कोई पहचाने कि हमें कोई बड़ा माने हम कुछ है हमारी गिनती दुनियाँ में हो, भाई ! तुम्हें वहाँ (क्या) करना है ? आहाहा ! कि देखनेवाले को देखना है ? देखनेवाला तीनलोक का नाथ विराजित है प्रभु ! उसे जो ज्ञान जानता है उस ज्ञान को श्रुतकेवली कहा जाता है। आहाहाहा ! सभी पढ़ा तुमने... आहाहा !

तिर्यंच समकिति को भी जिस ज्ञान से आत्मा जानने में आता उस ज्ञान को श्रुतकेवली कि व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं, बापू तुम्हें जो जानना था वह जाना, तुम्हारे ज्ञान में यह चीज आ गई। आहाहा ! तीनलोक का नाथ, पूर्णानंद का नाथ प्रभु उसको तुमने ज्ञान से जाना, उस ज्ञान में और आत्मा में तत्रूप संबंध है, इसलिये उस ज्ञान को ही हम व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं। वह भी सर्वश्रुतरूपी व्यवहार श्रुतकेवली कहे जाते हैं। आहाहा ! गजब बात !! समझ में आया ?

थोड़ा भी परंतु सत्य होना चाहिए, लम्बी बड़ी बातो में सत्य... आहाहा ! जिसमें

से जन्म-मरण का अंत नहीं आये प्रभु ! यह क्या वस्तु है ? जिसमें जन्म-मरण अनंत-अनंत किये। आहाहा ! और जिसे मिथ्याभाव मौजूद है, इस मिथ्यात्व में तो अनंत जन्म-मरण करने का गर्भ स्थित है। आहाहा ! यहाँ तो जो कहीं आत्मा को जाननेवाला ज्ञान है। आहाहा ! उस ज्ञान को, भगवान (आत्मा को) जानने लायक ज्ञान इसलिये उसे संपूर्ण कहा और श्रुतकेवली कहा। आहाहा ! भाई तुमने सब जाना बापू, तुम्हें जो जानने योग्य वस्तु उसका तुमने ज्ञान किया उस ज्ञान को सर्व ज्ञान कहते हैं और 'ज्ञान सो आत्मा' इतना भेद है इसलिये इस ज्ञान को व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं। आहाहा ! बापू ऐसी बात मिलना मुश्किल है भाई ! आहाहा ! बहुत मुश्किल हो गया बापू ! आहाहा ! परम सत्य का प्रवाह तो यह है। आहाहा !

जो सर्व श्रुतज्ञान को जानता है। उसमें क्या था ? केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं - ऐसा था। है न ? श्रुत से केवल शुद्धआत्मा को जानते हैं - ऐसा था, और इसमें सर्व श्रुतज्ञान को जानते है फर्क है। आहाहा ! समझ में आया ? संतों की वाणी इतनी गंभीर है, उसके लिये बहुत अभ्यास चाहिए और समय निकलना चाहिए बापू ! आहा ! और वह अपने हित के लिये है न ?

इस बात की विशेषता क्या हुई ? कि जो आत्मा वस्तु है यह ज्ञानादिक अनंत गुणों का एकरूप हैं। तब ऐसे ज्ञान को ऐसी वस्तु को जानले यह ज्ञान तो अभेद हो गया, अर्थात श्रुतज्ञान, निश्चयश्रुत केवली हो गया। परंतु जो ज्ञान वस्तु को जाननेवाला है, उसे जानने को गया नहीं, अभेद हुआ नहीं, यह जाननेवाला ज्ञान है उसका (एवं) आत्मा का और आत्मा के साथ इस ज्ञान का संबंध है। इस ज्ञान का राग(या) व्यवहार रत्नत्रय के साथ कि देव-शास्त्र-गुरु कि अन्य अजीव तत्त्व के साथ ज्ञान का - ऐसा संबंध नहीं। आहाहा ! ज्ञान का इस आत्मा के साथ तादात्म्य संबंध है, इसलिये ज्ञान को सर्वज्ञान कहा, और उस ज्ञान को सर्व श्रुतकेवली को व्यवहार कहा जाता है। आहाहाहाहा ! कल दोपहर की बात थी कि अधिकार अच्छा आया था। बाबूलालजी ! दोपहर की चीज में यह अधिकार बहुत अच्छा आया था कल, मुनिपना, केवली... यह पर्याय आत्मा में नहीं। आहाहा ! आज आयेगा विशेष दोपहर को। आहाहा !

जो सर्व श्रुतज्ञान को जानता है, भाषा बदल गई ? पहले - ऐसा था, केवल शुद्ध आत्मा को जानता है - ऐसा था, वह निश्चय, और यहाँ सर्व श्रुतज्ञान को जानता है। समझ में आया ? **सर्वश्रुतज्ञान (द्वादशांग) को जानता है। सर्व कहने का आशय तो त्रिकाली को जानता है - ऐसा जो ज्ञान, है अभी भिन्न परंतु उसे व्यवहार श्रुतकेवली उसे जो जानता है उसे व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं।** आहाहाहा ! वह व्यवहार है।

देखा ? अंतर के भावश्रुतज्ञान द्वारा अनुभव में चला गया द्रव्य में, द्रव्य के अनुभव में अभेद ज्ञान हुआ यह तो परमार्थ से सत्य ज्ञान, श्रुतकेवली है। सच्चा श्रुतकेवली परमार्थ से श्रुतकेवली। आहाहा ! क्योंकि इसमें से तो उसको केवलज्ञान होना है।

भगवान (आत्मा) का अनुभव हुआ, जिस ज्ञान द्वारा अनुभव किया, यह भगवान के ज्ञानमें चाहे अभी इतना ज्ञान आया परंतु उसे तो निश्चय श्रुतकेवली कहा इसलिये इसे परमार्थ से केवलज्ञान अल्पकाल में होनेवाला है, वह द्रव्यमें से होनेवाला है। आहाहाहा ! समझ में आया ? जिसमें से केवलज्ञान होनेवाला है, उसे जो जाने अनुभव करे इसलिये वह निश्चय श्रुतकेवली परमार्थ से है। आहाहा ! गंभीर बात गंभीर बात !!

दिगम्बर संतों के सिद्धांत गजब है, कहीं मिले - ऐसा नहीं। आहाहा ! लोगों को दुःख हो। अरे तब हमारा संप्रदाय गलत ? बापू ! भाई, यह हित की बात है। जिसमें अहित हो वह वस्तु क्या ? आहाहा ! जिससे जन्म-मरण मिटते हैं, आहाहा ! जिसमें जन्म-मरण और जन्म-मरण का भाव नहीं, अरे जिसमें मोक्षमार्ग की पर्याय भी नहीं। आहाहाहा ! ऐसे ज्ञायकभाव को जिसने जाना, यह तो निश्चय श्रुतकेवली है। आहाहा ! और उन्हें केवलज्ञान तो अल्पकाल में होनेवाला ही है, परंतु उसे जाननेवाला जो ज्ञान है, उस जाननेवाले ज्ञान को भी हम सर्वश्रुत कहते हैं... संत महाव्रतधारी, सच्चे महाव्रतधारी हो, आहाहाहा ! आत्मज्ञान बिना जितने महाव्रतधारी है यह सभी तो मिथ्या है। आहाहा ! यह सत्य महाव्रतधारी ऐसी पुकार करते हैं कि प्रभु तुम्हारे आत्मा को जो जाननेवाला, जो ज्ञान है न ? आहाहा ! हम सत्य महाव्रतधारी कहते हैं, ऋषीश्वर कहते हैं - ऐसा आया था न, ऋषीश्वर - ऐसा गाथा में आया था, ऋषी के ईश्वर अर्थात गणधर भी - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा ! यह भविष्य के ईश्वर परमात्मा हैं, जिनेश्वर देव यह भी - ऐसा कहते हैं।

जिसने ज्ञान से सीधे, भाव से आत्मा का अनुभव किया तब परमार्थ श्रुतकेवली है, परंतु उसको जाननेवाला ज्ञान है उसे `सर्व' कहते हैं, उसे व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं। आहाहा ! कारण कि उस ज्ञान का संबंध आत्मा के साथ है। उस ज्ञान का संबंध कहीं... व्यवहार रत्नत्रय के राग के साथ भी जिसका संबंध नहीं। आहाहा !

क्योंकि राग तो अज्ञान है। अज्ञान अर्थात ? उसमें ज्ञान का अंश नहीं। विपरीत ज्ञान - ऐसा नहीं कहना परंतु जो दया, दान, व्रत या व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प है राग, उसमें ज्ञान का अंश नहीं क्योंकि राग जानता नहीं, राग स्वयं को जानता नहीं, उसीप्रकार साथ में चैतन्य है उसे जानता नहीं, परंतु वह राग चैतन्य द्वारा जानने में आता है इसलिये अचेतन है। आहाहाहाहा !

`**यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते है**' अब वह ज्ञान को जाने उसे व्यवहार

श्रुतकेवली कहा और सबको जाननेवाला कहा। अब उसका थोड़ा स्पष्टीकरण करते हैं। यह ज्ञान जो भावश्रुत है, उस ज्ञान को सर्वश्रुत कहा और उस ज्ञान को व्यवहार श्रुतकेवली कहा, कारण कि ज्ञान ग्रहण किया नहीं अनुभव में गया नहीं, अभी भिन्न रहकर बात करते हैं, उस ज्ञान को व्यवहार श्रुतकेवली क्यों कहा ? यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते हैं। ऊपर कहा हुआ **`सर्व ज्ञान आत्मा है कि अनात्मा ?'** जो ज्ञान आत्मा को जाननेवाला है वह ज्ञान आत्मा है कि यह अनात्मा ? आहाहा ! यह कोर्ट में जैसे कानून बोलता है इसीप्रकार यह कानून बताते हैं। भगवान के घर के, कानून निकालते हैं, दलील निकालते हैं, यह सुन तो सही तुम एक बार प्रभु, भगवान आत्मा ! उसे जाननेवाला ज्ञान, उस ज्ञान को हमने `सर्व' कहा, और उसे व्यवहार श्रुतकेवली कहा, उसका कारण ? कि वह ज्ञान है... आहाहा ! है ? वह आत्मा है कि अनात्मा ? यह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता कि यह ज्ञान रागादिक अनात्मा के साथ संबंध रखता है ? समझ में आया ? आहाहाहा !

जो ऊपर कहा सर्व ज्ञान सर्व अर्थात व्यवहार श्रुतज्ञान, द्रव्यश्रुत नहीं, उसकी तो बात ही कहाँ यहाँ ? आहाहा ! ऊपर कहा `सर्व ज्ञान' शीर्षक में कहा न। सर्वश्रुतज्ञान यह ऊपर कहा हुआ सर्वज्ञान आत्मा है कि अनात्मा ? यदि अनात्मा का पक्ष लेने में आये, तब तो वह ठीक नहीं क्योंकि समस्त जो जड़रूप अनात्मा आकाशादि पांच द्रव्यों, आहाहा ! धर्मास्ति, अधर्मास्ति, पुद्‌गलपरमाणु, आकाश, काल, उसका ज्ञान के साथ तादात्म्य बनता ही नहीं। पांच जो जड़ पदार्थ हैं उस ज्ञान को और जड़ को एकरूपता होती ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

व्यवहारश्रुत को सर्वश्रुत क्यों कहा ? कि हम - ऐसा कहते हैं कि जो ज्ञान है वह तो आत्म स्वरूप है आत्मा के साथ संबंध रखनेवाला है कि अनात्म स्वरूप अनात्मा के साथ संबंध रखनेवाला है ? आहाहा ! बानियाँ व्यापारियों से ऐसे काम लेना सूक्ष्म तर्क के, उन्हें लेना पड़े बापू ! यह जन्म-मरण टालने का दूसरा कोई उपाय नहीं। चौराशी के अवतार एक-एक योनि में अनंत करे बापू उसकी उसे थकान लगी नहीं अभी ? आहाहा ! अरेरे मैं कहाँ गया और कहाँ भटका हूँ ? अन्जान क्षेत्र और अन्जान आत्मायें एवं अन्जान भाव और काल में। आहाहा ! भाई - ऐसा परिभ्रमण तुम अनंतकाल से करते आये हो, इस मिथ्यात्व को लेकर, उस मिथ्यात्व को टालने का यह एक उपाय (है), कि जो ज्ञान आगम से हुआ, उस ज्ञान का लक्ष्य भी छोड़ दो, और जिसने आत्मा के लक्ष्य से जो ज्ञान किया उस ज्ञान से आत्मा को अनुभवा, तब तो उसको निश्चय श्रुतकेवली (कहा) उसके भव का अभाव हो गया, भले एकाद दो भव हो परंतु भव का अभाव हो गया, परिभ्रमण उसका

है नहीं। आहाहाहाहा !

अब जिसको ज्ञान कहते हैं, और जो ज्ञान उसने जाना उस ज्ञान का सर्वपना और व्यवहार श्रुतकेवली कहा उसका कारण ? इस ज्ञान का संबंध आत्मा के साथ है कि इस ज्ञान का संबंध राग और जड़ के साथ है ? आहाहाहाहा ! यह तो भगवान के कोर्ट के कानून है, कोलेज है, भगवान की कोलेज है। आहाहा ! लोग फिर - ऐसा कहते हैं न यह तो अकेले निश्चय की सत्य की बात करते है - ऐसा कह कर निश्चयाभास है एकांत है, कहो प्रभु तुम ! तुम्हें खबर नहीं तुम्हें, यह तुम्हारी चीज क्या वस्तु है ? प्रभु तुम्हें खबर नहीं, अरे उसको जाननेवाले ज्ञान की भी तुम्हें खबर नहीं। आहाहा !

यह ज्ञान ही आत्मा को जान सकता है, यह राग से ज्ञान होता नहीं क्योंकि यह ज्ञान का संबंध आत्मा के साथ है, इस ज्ञान का संबंध राग के साथ नहीं, यह भी पांच द्रव्यों में परद्रव्य में जाता है राग, व्यवहाररत्नत्रय। आहाहा ! यह भावश्रुतज्ञान जो है उसको हमने सर्वश्रुत कहा इसने तो सभी को जाननेवाले को पकड़ा इसलिये और उसको हमने व्यवहारश्रुत कहा, भेदरूप तो यह ज्ञान का संबंध आत्मा के साथ है कि इस ज्ञान का संबंध राग के साथ है ? राग के (साथ) संबंध तो है नहीं राग में और शरीर में एवं वाणी में पुद्‌गल में और पुस्तक में शास्त्र में यह ज्ञान तो नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? कहो छोटा भाई ! कलकत्ता में मिलना मुश्किल है। धूल मिले वहाँ पैसा... आहाहाहा !

अनात्मा का पक्ष लेने में आये तो वह ठीक नहीं। कारण कि समस्त जो जड़रूप अनात्मा आकाशादि पांच द्रव्यों वास्तव में तो इसमें तो व्यवहार रत्नत्रय का राग भी है न ? इसका भी व्यवहार श्रुतकेवली को एवं उसका कुछ संबंध नहीं कारण कि इस राग में ज्ञान नहीं राग का ज्ञान से संबंध नहीं। आहाहाहाहा ! इस ज्ञान का आत्मा से संबंध है, इसलिये इसे व्यवहारश्रुतकेवली कहा। इस ज्ञान का राग का संबंध है तब राग तो अनात्मा है, तब आत्मा का जो ज्ञान वह अनात्मा के साथ संबंध रखे - ऐसा कैसे हो सकता ? आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्मबात है बापू !

यह तो तीनलोक के नाथ जिनेश्वर सर्वज्ञ। आहाहा ! जिसके पास एक भवावतारी इन्द्रो अर्धलोक के स्वामी, कुत्ते के बच्चों की तरह बैठ कर सुनते हैं। आहाहा ! समोशरण में प्रभु के समोशरण में। आहाहाहा ! जिनको सेवा में असंख्यदेव, एक-एक विमान में, ऐसे बत्तीसलाख विमान, उनका राजा इन्द्र आकर... आहाहा ! वह भगवान की वाणी सुने, यह वाणी कैसी हो भाई ! (अलौकिक) आहाहा ! यह भगवान कैसे हो और उनकी वाणी कैसी हो ? आहाहा ! उसकी विस्मयता अद्‌भुतता इसे

किसी दिन आयी नहीं। आहाहा ! यह बाहर के ठाठ बाठ... फोस्फरस हड्डी की तेज है, जैसे स्मशान में हड्डी की फोस्फरस चमकती चक चक इस प्रकार यह शरीर और पैसा एवं आबरु (इज्जत) बड़े महल। ओहोहो ! यह स्मशान के हड्डी की फोस्फरस है बापू ! तुम्हारी चीज कोई भिन्न है अंदर। आहाहा ! तुम्हारी वस्तु का ज्ञान करनेवाला ज्ञान को भी व्यवहार श्रुतकेवली कहते (है) आहाहा ! हाँ ! चाहे यह शास्त्रज्ञान उसे कम हो। आहाहाहा ! तिर्यंच का ज्ञान आत्मा को पकड़ता है उस ज्ञान को भी सर्वश्रुत व्यवहार श्रुतकेवली, आहाहा ! सिंह, सिंह हो जंगल का और समकिति हो, बाहर, ढाई द्वीप बाहर असंख्यात सिंह और असंख्यात मच्छ, असंख्यात बाघ सम्यग्दृष्टि है बाहर ढाई द्वीप बाहर। आहाहाहा ! वहाँ आत्मज्ञान पाते है। आहाहाहा ! उसके ज्ञान को भी व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं। तिर्यंच के ज्ञान को भी... आहाहाहाहा !

यहाँ तो थोड़ा बहुत जो बाहर का ज्ञान हो वहाँ अभिमान हो जाये कि हम जानते है और हम बड़े है और हम ऐसे है और अरे ! बापू ! भाई तुम्हें कहाँ जाना है तुम्हें ? आहाहा ! किसके साथ संबंध है ? उनका ज्ञान के साथ साधन बनता नहीं, क्योंकि उसमें ज्ञान की सिद्धि ही नहीं। इसलिये अन्य पक्ष का अभाव होने से ज्ञान आत्मा है। यह पक्ष सिद्ध होता है यह बात विशेष कहेंगें।

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ३४ गाथा-९-१० ता. १५-७-७८ शनिवार अषाढ सुदी-१० सं.२५०४

समयसार ९-१० गाथा चलती है थोड़ी चल गई, हिन्दी में फिर से।

प्रथम मुख्य बात यह है कि, जो श्रुतज्ञान से भावश्रुतज्ञान, द्रव्य शास्त्र के सुनने से जो ज्ञान हो वह ज्ञान नहीं। यहाँ तो स्वाभाविक सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु उसके अवलम्बन से जो ज्ञान हुआ उस ज्ञान को यहाँ भावश्रुत कहते हैं। सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा... आत्मा है यह सर्वज्ञ स्वभाव है, अंतर (में) सर्वज्ञ स्वभाव न हो तो सर्वज्ञपना आयेगा कहाँ से ? सर्वज्ञ परमात्मा हुये, वह आये कहाँ से ? आहाहाहा ! यहाँ पुनश्च आज दूसरी तरह आया, यह सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु उसके सर्वज्ञ के अवलम्बन से जो ज्ञान अपनी पर्याय में हुआ उसको यहाँ भावश्रुतज्ञान कहते हैं। यह जो कोई जीव भावश्रुतज्ञान से केवल शुद्धआत्मा को... आहाहाहा ! अर्थात भावश्रुतज्ञान से अर्थात भावश्रुतज्ञान से केवल सर्वज्ञ, स्वभावी शुद्धात्मा को... आहाहाहा ! पर्याय में सर्वज्ञपना है नहीं, परंतु

वस्तु तो सर्वज्ञ स्वरूप है।

यहाँ तो विचार - ऐसा आया एवं वह सर्वज्ञ की आज्ञा मानकर फिर परीक्षा करना, अकेली परीक्षा करने जायेगा तो तुम भ्रष्ट हो जाओगे। अभी बतलाया न? अष्टपाहुड़ उसका यह अर्थ है... सूक्ष्म है भगवान ! सर्वज्ञ स्वभावी भगवान आत्मा... श्रुतज्ञान में उसका ज्ञान हुआ वह सर्वज्ञ स्वभाव के आश्रय से जो भावश्रुतज्ञान हुआ उस भावश्रुतज्ञान में सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा का ज्ञान हुआ... आहाहा ! गजब बात है, बहुत गंभीर बात। आहाहा ! (श्रोता :- यहाँ प्रश्न होता है (कि जो) ***अल्पज्ञ है वह सर्वज्ञ को कैसे जाने ?) सर्वज्ञ को जाने यह कहते हैं यहाँ, यही बात लेना है ? अल्पज्ञ पर्याय में सर्वज्ञ स्वभाव की श्रद्धाज्ञान बराबर होती है। फिर भी सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा अल्पज्ञ श्रुतज्ञान में आता नहीं परंतु उसका सामर्थ है यह सब ज्ञान आता है।*** बाबूलालजी ! बहुत बापू ! आहाहा ! आहा !

रात्री को कहा था न ? आहाहा ! क्षेत्र का अंत कहाँ ? क्या चीज है यह? आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... चौदह ब्रह्मांड़ जो असंख्य योजन में है उसके बाहर अनंत... अनंत... अनंत... अनंत... अनंत... अनंत... चले जाओ तो कहीं आकाश का अंत है, देखो क्या कहते हैं यह ? ***इस आकाश का अंत नहीं कहीं, आहाहा ! और काल की शुरुआत नहीं कि पहली आत्मा कौन एवं पहली पर्याय कौन ? आहाहाहा ! यह भी कोई अचिंत्य अनादि यह वस्तु, और आत्मा के अनंतगुण जो है, यह भी आकाश के प्रदेशों की संख्या से अनंतगुणे गुण हैं, भाई मार्ग बहुत अलौकिक है बापू ! आहाहा ! आकाश के जो प्रदेश है उससे अनंतगुणे गुण... इतने में अनंतगुणे गुण (हैं) ! क्या है यह ? ओहोहो ! और अनंतगुण हैं कितने कि संख्या अपेक्षा कहीं अंत नहीं आये, फिर भी वहाँ है। आकाश का अंत न आये फिर भी - ऐसा है, काल का अंत न आये फिर भी - ऐसा है।*** आहाहाहा !

ऐसे भगवान आत्मा अपने सर्वज्ञ स्वभाव को जानकर जो श्रुतज्ञान हुआ, उस श्रुतज्ञान की पर्याय में भी सर्वज्ञ स्वभाव की प्रतीति आई, और इस सर्वज्ञ स्वभाव का पर्याय में ज्ञान आया, फिर भी वह सर्वज्ञ स्वभावी चीज (यह) पर्याय में नहीं आती। आहाहा ! एक बात... इतनी वर्तमान श्रुतज्ञान की पर्याय सारे सर्वज्ञ स्वभाव को जाने तो भी जो सर्वज्ञ संपूर्ण स्वभाव है उसमें से श्रुतज्ञान हुआ तब उसको जानने की पात्रतावाली इतना आया, फिर भी उस स्वभाव में कमी हुयी नहीं। आहाहाहाहाहा ! और उसमें केवलज्ञान हो... माणेकचन्द्रभाई ! आहाहा ! प्रभु मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा ! यह सर्वज्ञपना प्रगट हुआ तो भी सर्वज्ञ स्वभाव में अंदर में कमी हुई अन्दर - ऐसा नहीं। आहाहाहा !

और सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हुई, उसके जो अविभाग प्रतिछेद अनंत है क्योंकि सर्वज्ञ तो अनंता सर्वज्ञों को भी जानते है, अनंत सर्वज्ञो को भी जानते है। आहाहा ! तब यह सर्वज्ञ की पर्याय में जितने भाग अविभाग अंश पड़ते हैं, अनंत... अनंत.. आहाहा ! इतना ही यह अनंत, द्रव्य में हैं ज्ञान गुण में, आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय में जितनी सामर्थता अविभाग जिसका भाग न हो - ऐसा छेद करके। अनंत...अनंत... अविभाग... (अंश) प्रभु मार्ग बहुत दुर्लभ है भाई ! आहाहा ! फिर भी यह चीज तो तुम्हारे पास पड़ी है अंदर। आहाहा ! ***यह सर्वज्ञ को यह अनंत अविभाग प्रतिच्छेद प्रगट हुये (तो भी) उतना का उतना ज्ञायक, इस में अनंत अविभाग प्रतिछेद है। आहाहाहा !***

ऐसी शक्ति जो है - ऐसा सर्वज्ञप्रभु स्वभाव और सर्वज्ञ जो पर्याय हुई। आहाहा ! उसमें तो अनंत अगुरुलघु पर्याय (प्रगट हुई)... भाई यह क्या है ? सर्वज्ञ पर्याय में अनंत गुणी वृद्धि हो जाये और अनंत गुण हानि हो जाय...। पर्याय ऐसी...ऐसी... आहाहा ! क्या है यह ? समझ में आया ? यह केवलज्ञान की पर्याय, यहाँ तो अपने श्रुतज्ञान से आत्मा जाने इसमें यह लेना है। कि ऐसी केवलज्ञान की पर्याय जो अनंतो होगी यह भी सब शक्तिरूप ज्ञानगुण में सर्वज्ञपने में पड़ी है। यह सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा जिस ज्ञान से जानने में आती है इस ज्ञान को यहाँ श्रुतज्ञान कहते हैं। आहाहाहा !

सूक्ष्म बात है बापू ! यह कोई कहानी किस्सा नहीं। यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव की बात है आहाहा ! अगाध अगाध गंभीर चीज है। कभी अभ्यास किया नहीं कभी सुना नहीं आहाहा !

ऐसे एक-एक गुण की एक-एक पर्याय में अनंतअविभाग प्रतिच्छेद इतने के इतने गुण में इतने अविभाग प्रतिच्छेद। आहाहा ! यह अविभाग प्रतिच्छेदवाली पर्याय प्रगट हुई फिर भी अंतर में तो जितने अविभाग प्रतिच्छेद गुण में तब शक्ति तो इतनी की इतनी रहती है। सर्वज्ञपना प्रगट हो तब भी ज्ञायकपना सर्वज्ञ स्वभावी वस्तु है तब इतनी की इतनी है, और मतिज्ञानपर्याय, श्रुतज्ञानपर्याय केवलज्ञान के अनंतवें भाग है, तब भी ज्ञायक भाव में सर्वज्ञ स्वरूपी जो आत्मा वह तो इतना का इतना है। आहाहाहाहा ! समझ में आया ? भाई यह तो अलौकिक बातें है। सर्वज्ञ जिनेश्वर देव ! जिसने एक समय में तीनकाल तीनलोक देखा... भाई यह कोई मार्ग अलौकिक है प्रभु। आहाहाहा ! ***ऐसे आत्मा (में) सर्वज्ञ की पर्याय प्रगट हो तब भी कहते हैं कि सर्वज्ञ की पर्याय का कर्त्ता सर्वज्ञ (का) द्रव्य नहीं।*** माणेकचन्दभाई ! कहाँ यह बात। आहाहा ! लोग कहाँ अटके है कहाँ वस्तु पड़ी है यह। ***सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हुई, आहाहा ! ऐसी अनंती पर्याय ज्ञान गुण में है - ऐसा सर्वज्ञ स्वरूपी प्रभु श्रुतज्ञान***

से जानने में आता है। आहाहाहा ! यह भावश्रुतज्ञान की ताकत कितनी ? आहाहा ! समझ में आया ?

और यह सर्वज्ञ पर्याय प्रगट होती है, उसका कर्त्ता द्रव्य नहीं, (आत्म) द्रव्य नहीं यह पर्याय-पर्याय का कर्त्ता, फिर भी आई है द्रव्यमें से। आहाहा ! यह किस अपेक्षा से बात है ? आहाहा ! यह पर्याय तो अपनी सत् अहेतुक, आहाहाहा ! स्वतंत्र पर्याय हुई द्रव्य के कारण से नहीं, गुण के कारण से नहीं। आहाहा ! प्रभु तुम्हारी बलहारी है। आहाहा ! यह उसका जो चैतन्य स्वभाव सर्वज्ञपना हुआ तब यह चैतन्य स्वभावने प्रगट किया - ऐसा नहीं, पर्याय है न ? ऐसी बात है। आहाहा ! अरेरे ! इसने भगवान सर्वज्ञ की जो आज्ञा (मानी नहीं) यहाँ तो विचार क्या आया कि सर्वज्ञ की आज्ञा मानकर परीक्षा करना, बिना परीक्षा किये अकेली आज्ञा मानने जायेगा तो भ्रष्ट हो जायेगा। - ऐसा आया न, अभी बतायेंगे न ? आहाहाहा ! बापू वस्तु ऐसी अंदर है। जो सम्यग्दर्शन, उसके साथ हुआ श्रुतज्ञान इसमें इतनी ताकत है कि जो अंदर सर्वज्ञ अनंती पर्याय प्रगट हो - ऐसा गुण स्थित है, और अनंती समकित की पर्याय प्रगट होगी, यह सब श्रद्धागुण में स्थित है अंदर। आहाहा ! और अनंत अनंत आनंद प्रगट होगा केवली को, ऐसी अनंत आनंद की पर्याय जिसके आनंद गुण में स्थित है। आहाहाहा ! अनंत वीर्य परमात्मा को प्रगट होता है...

भाई भाषा भले हिन्दी परंतु भाव तो जो है सो है। कभी अभ्यास नहीं, यह बात अभी चलती नहीं। अरेरे ! उनको अनंत वीर्य जो प्रगट हुआ परमात्मा को, तो भी अंदर वीर्य की पूर्णता उसमें कमी आयी नहीं, और पूर्ण वीर्य जो है यह अनंत वीर्य प्रगट है उसका यह कर्त्ता नहीं, आहाहाहा ! (श्रोता :- अद्भुत आश्चर्य लगता है) आश्चर्य की बात है बापा ! आहाहा !

एक अंगुली के असंख्य भाग में निगोद के अनंत जीव अंगुली के असंख्यभाग में असंख्यशरीर एक शरीर में अनंतजीव एक-एक जीव सर्वज्ञ स्वभावी। आहाहा ! बापू यह क्या चीज है ? यह जिनवर देव के अलावा कहीं नहीं। आहाहाहा ! अरे प्रभु का विरह पड़ा, भगवान है नहीं, वस्तु का विरह, (परंतु) पर्याय में वस्तु का विरह नहीं पर्याय उसको जाने तो पर्याय में भगवान का विरह नहीं है। आहाहा !

क्या कहा ? वैसे तीनलोक के नाथ महाविदेह क्षेत्र में रह गये। भरतक्षेत्र में विरह पड़ा, परंतु यहाँ ऐसी सर्वज्ञ शक्ति का भण्डार भगवान (आत्मा) वह सर्वज्ञ (को) श्रुतज्ञान से जाने तो, उसको विरह नहीं। (श्रोता :- भगवान का विरह नहीं दिखता है) बराबर भाई ! आहाहा ! ओहोहो ! यह तो पुनः हिन्दी लिया, यह तो फिर से निकले तो यही बात बापा क्या कहें ! आहाहाहा ! यह वस्तु का स्वभाव एक

परमाणु में अनंतगुण और एक अंगुल के असंख्य भाग में एक आकाश के प्रदेश में अनंत परमाणु रहते है और एक-एक परमाणु में जितने आकाश के गुण है, जितने जीव के गुण है, उतनी संख्या में (एक) परमाणु में गुण है। यह क्या चीज है यह तो ! छोटा भाई ! यह कहीं कलकत्ता, में मिले - ऐसा नहीं (श्रोता :- यह ज्ञान पता लगा लेता है) आहाहाहा !

यहाँ तो श्रुतज्ञान से आत्मा जाने इसका अर्थ चलता है कि आत्मा कितना- कैसा ? ***जिसमें अनंत अनंत गुण और अनंती पर्याय जो केवलज्ञानादि की प्रगट होती है उसका स्वभाव अंदर पारिणामिक भावरूप भाव। सर्वज्ञ जानते कि यह पर्याय यह आई और यह पर्याय यहाँ से गई और यहाँ जायेगी। आहाहा ! यह सर्वज्ञ जानते यह।*** आहाहा ! अगुरुलघु की षट्‌गुणी हानिवृद्धि, केवलज्ञान की भी पर्याय इसमें अनंतगुण वृद्धि और अनंतगुण हानि हो जाती एक समय में फिर भी वह पर्याय तीनकाल, तीनलोक को जाने, वह इतनी की इतनी रहती है। क्या है यह ? ***द्रव्यमें से अनंती पर्याय प्रगट होती है फिर भी द्रव्य वैसा का वैसा (इतना का इतना) रहेगा। गुणोंमें से अनंत पूर्ण पर्याय प्रगट हो तब भी गुण इतना का इतना रहेगा। आहाहाहा ! और पर्याय भी... आहाहा ! पूर्ण प्रगट हो, वह भी पूर्ण पर्याय में पर की अपेक्षा से उत्पन्न हुई - ऐसा नहीं।*** आहाहाहाहा ! - ऐसा जो भगवान आत्मा गंभीर रहे प्रभु ! परंतु सुनना तो पड़ेगा प्रभु ! आहाहा ! अनंत अनंतगुण जो अनंतपूर्ण पर्याय उस पूर्ण पर्याय में अनंतगुणी हानि-वृद्धि अगुरुलघु भाव। ओहोहोहो ! (श्रोता :- हानि-वृद्धि क्या ?) यह हानि-वृद्धि ख्याल में नहीं आये इसलिये तो बात रखी है। ***केवलज्ञान पर्याय तीनकाल, तीनलोक को जाने - ऐसी पर्याय इतनी की इतनी रहे फिर भी उसमें अनंतगुण हानिवृद्धि हो यह तो सर्वज्ञ जाने।*** आहाहा ! (केवली जाने) ऐसी बात है। बहुत लम्बी बात करें, तब षट्‌गुण हानि-वृद्धि, ***प्रत्येक गुण बड़ी बात... लम्बीबात... प्रत्येक पर्याय मतिज्ञान की एक समय की पर्याय में षट्‌गुण हानिवृद्धि, एक केवलज्ञान की पर्याय होती, षट्‌गुण हानिवृद्धि, (जो) अनंत आनंद हुआ उसमें भी षट्‌गुणहानि-वृद्धि।*** आहाहा !

क्या है यह तो ? प्रभु तुम्हारे स्वभाव की अचिंत्य महिमा (है) यह कोई विकल्प से पार नहीं आयेगा, आहाहा ! - ऐसा कहना है। आहाहा ! उस शुभराग से यह पता लग जाये... राग की मर्यादा की अभी तो सीमा है। आहाहाहा ! भले आत्मा की श्रुतज्ञान की पर्याय भी मर्यादित है केवलज्ञान की अपेक्षा से अनंतवें भाग, तो भी यह ज्ञान... आहाहाहा ! फिर भी सर्वज्ञ की अनंती पर्यायें प्रगट हों ऐसी द्रव्य में (शक्ति है) उस द्रव्य को यह श्रुतज्ञान बराबर जानता है। आहाहाहा ! समझ में

आया ? भाई ! वीतरागमार्ग जिनेश्वरदेव का मार्ग दूसरा (अपूर्व) अलौकिक है। ओहोहो ! जैसे जैसे गहराई में जाते है उसी उसी प्रकार थाह (पता) गहरी गहरी लगती रहती (है) आहाहा !

यहाँ कहते हैं, श्रुत से... यह श्रुत, भावश्रुत लेना (समझना) वर्तमान भावश्रुतज्ञान कि जो त्रिकाली सर्वज्ञ स्वभाव के अवलम्बन से हुआ, जिसके अवलम्बन से हुआ, उसको यह श्रुतज्ञान पूर्ण जानता है। आहाहाहा ! अरे ! समयसार और उसकी टीका और उसके शब्द ? जो जो श्रुत से भावश्रुतज्ञान से क्या ? यह सर्वज्ञ भगवान की वाणी सुनी है, वाणी में भी बहुत आता है... बात स्वपर की सुनी और जो ज्ञान हुआ, वह हुआ अपने से, फिर भी वह ज्ञान की पर्याय परलक्षी है, उसकी बात यहाँ है नहीं, इस परलक्षी ज्ञान से आत्मा जानने में आता है - ऐसा है नहीं। समझ में आये इतना समझना प्रभु तुम्हारी प्रभुताका पार नहीं नाथ। आहाहाहा !

तुम्हारी एक-एक शक्ति में ईश्वरता भरी है अनंत शक्तियोंमें से एक-एक शक्ति में अनंत प्रभुता भरी है। आहाहाहा ! ***यहाँ तो - ऐसा कहना है कि ऐसी अनंती प्रभुता का रूप एकरूप वस्तु... सर्वज्ञ स्वभाव में भी अनंती प्रभुता है। सर्वदर्शी में अनंत प्रभुता है। प्रभुता गुण में भी अनंत प्रभुता है। श्रद्धा गुण में (भी) अनंत प्रभुता है। चारित्र में अनंती प्रभुता है। अस्तित्वगुण में अनंती प्रभुता है। ऐसे ऐसे अनंत अनंत गुण एक एक गुण में अनंती प्रभुता, अनंती ईश्वरता ऐसी अनंती ईश्वर(ता) के गुण का धरनेवाला ईश्वरप्रभु... वह कोई दूसरा ईश्वर नहीं। आहाहा ! उस ईश्वर को (निज को) श्रुत से केवल शुद्धात्मा को जानते है।*** आहाहाहा ! ऐसे श्रुतज्ञान से केवल एकरूप आत्मा त्रिकाल, केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं। आहाहा ! समझ में आता है ? आहाहाहा ! फिर यह दूसरी तरह आया, कल दूसरी तरह से था। यह कहीं... आहाहा !

यह, जो कोई प्राणी आत्मा अपना भावश्रुतज्ञान से जो सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु ! आश्चर्यकारी अद्‌भुत शक्ति का भण्डार भगवान एक हो ! ऐसी तो अनंती शक्तियाँ है। आहाहा ! ऐसी वस्तु जो प्रभु अपनी पूर्व चीज वह श्रुत से जो जाने केवल शुद्ध आत्मा को जो जाने, अकेले शुद्ध आत्मा को जाने - ऐसा कहते हैं। देखा ! आहाहा ! श्रुत (ज्ञान) से श्रुत को (द्रव्य श्रुत) जाने - ऐसा नहीं कहा भाई, क्या ? क्या कहा ? आहाहाहा ! एक भावश्रुतज्ञान जो हुआ बापू ! यह तो अपूर्व बात है भाई, इस भावश्रुतज्ञान से, भावश्रुतज्ञान जाना - ऐसा नहीं कहा। आहाहाहाहा !

यह सर्वज्ञ की वाणी इन्द्र सुनते होंगे। हाँ ! उनकी बात है यह। आहाहा ! एक भवावतारी इन्द्र और उनकी पत्नी, स्त्री भी एकभवावतारी है, पति-पत्नी दोनों एक

भव (बाद) मोक्ष जानेवाले हैं, सौधर्म देवलोक के (इन्द्र) ! यह भगवान की वाणी सुनने को जाते हैं, प्रभु यह वाणी कैसी होगी ? आहाहा ! इस वाणी में कैसी आश्चर्यता आती होगी ? आहाहा ! आहाहाहाहा ! इस वाणी में कितनी गंभीरता, आहाहा ! यहाँ तो कुछ साधारण बोलना जहाँ तहाँ समझे कि आहाहा ! हम तो समझें कि कुछ बढ़ गये न आगे बढ़ गये। अरे प्रभु सुन तो सही भाई !

जो श्रुतज्ञान से, श्रुतज्ञान को जानते हैं - ऐसा नहीं कहा, भावश्रुतज्ञान से इस आत्मा को जानें, त्रिकाल अनंती शक्तियों का भण्डार और एक-एक शक्ति भी अनंत अनंत स्वभाव का भण्डार - ऐसा एकरूप प्रभु आत्मा, आहाहाहा ! उसको जाने वह श्रुतकेवली है। (वही) श्रुतकेवली हैं उन्होंने पूर्ण आत्मा को जाना यह श्रुतज्ञान, इसलिये यह श्रुतज्ञान यह पूर्ण श्रुतज्ञानी है, आहाहाहाहा ! यह श्रुतकेवली है, सम्यग्दर्शन हुआ, पूर्णानंद का नाथ अनंतशक्ति का भण्डार एक-एक शक्ति में अचिंत्य अचिंत्य समर्थ जो एकदम अज्ञानी के साधारण तर्क से भी पता न लगे - ऐसा वीतरागी ने जो भाव देखा और कहा... - ऐसा है... ऐसे आत्मा को जो जानते हैं, आहाहाहा ! यह श्रुतकेवली है, समझ में आया ? यह श्रुतकेवली परमार्थ से श्रुतकेवली है। आहाहा ! आया ? वह तो परमार्थ है। है ? इस एक पंक्ति (में) कितना भर (दिया) है। संत... दिगम्बर संतों की वाणी। आहाहाहा !

जो कोई भावश्रुतज्ञान द्वारा, आहाहा ! आत्मा को जाने, भावश्रुतज्ञान से श्रुत को जाने या पर्याय को जाने - ऐसा नहीं कहा। भावश्रुतज्ञान से केवल आत्मा को जानें, प्रभु को जानें। आहाहाहा ! आहाहाहा ! मैं पूर्ण परमात्मद्रव्य हूँ - ऐसा जो भावश्रुतज्ञान द्वारा जाने यह श्रुतकेवली परमार्थ से है, यथार्थ में वास्तविकता में वह श्रुतकेवली है। (श्रोता :- जानवर को होता है)

जानवरों को होता है, पशु को, नारकी को होता है, सम्यग्दर्शन का भाव सातवां नरक, ***जहाँ जानेवाले मिथ्यादृष्टि जाते है वहाँ समकिति नहीं जाते, परंतु जाने के बाद सम्यग्दर्शन हो सकता है वहाँ से निकलते समय भी मिथ्यात्व हो जाता है, परंतु बीच के समय में सम्यग्दर्शन होता है।*** सातवां नरक। आहाहा ! यह भी जो भावश्रुतज्ञान से आत्मा को जाने। आहाहाहा ! वह श्रुतकेवली है, भाई यह तो - ऐसा कहा तिर्यंच में - ऐसा ? परंतु नरक में भी - ऐसा और तिर्यंच में भी पशु असंख्य मौजूद है ***बाहर ढाई द्वीप बाहर असंख्य पशु है। सिंह बाघ मच्छ, कौआ असंख्य है उसके असंख्य में भाग असंख्य समकिति है, इन समकिति को यहाँ श्रुतकेवली कहा। आहाहाहा ! भगवान आत्मा अंदर, आहाहाहाहाहा ! जिसकी पर्याय की पूर्ण सामर्थ की शक्ति भी अपने से हुई है, यह त्रिकालीमें से नहीं। आहाहा ! - ऐसा त्रिकाली भगवान***

ज्ञायक स्वरूप प्रभु पूर्ण है। भाई ! यह वस्तु कोई अगम्य है। आहाहा ! अगम्य को गम्य करना है। हाँ। आहाहा !

यह (जो) तिर्यंच है यह भी सम्यग्दृष्टि है, भावश्रुत से केवल प्रभु आत्मा पूर्णानंद का नाथ सर्वज्ञ स्वभावी, सर्वदर्शी स्वभावी, पूर्ण आनंद स्वभावी, पूर्ण वीर्यस्वभावी, पूर्ण प्रभु स्वभावी, पूर्ण कर्त्ता स्वभावी, पूर्ण कार्य स्वभावी, पूर्ण कार्य स्वभाव उसका अंदर में (है) आहाहा ! पूर्ण साधन स्वभावी, आहाहा ! पूर्ण आधार स्वभावी, आहाहाहाहा ! ऐसे आत्मा का अवलम्बन लेकर जो ज्ञान हुआ... यह ज्ञान उसको जानता है। समझ में आया ? यह ऐसी कोई बात है शास्त्र में - ऐसा तो लक्ष्य करना। समझ में आया ? कोई सिद्धांत, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ दिगम्बर संतों की उनकी वाणी में कोई बहुत गंभीरता है, गंभीरता। भाव की ऐसी कोई चीज है - ऐसा तो लक्ष्य करना। आहाहा ! समझ में आया ?

`यह परमार्थ है' यह परमार्थ है जो अंतर में राग का लक्ष्य छोड़कर, त्रिकाली स्वरूप का लक्ष्य करके जो ज्ञान हुआ, यह ज्ञान जिसके लक्ष्य से हुआ उसको वह ज्ञान जाने। आहाहा ! यह तो परमार्थ श्रुतकेवली है। आहाहा !

गिलहरी होती है, खिसकोली क्या कहते हैं (श्रोता :- गिलहरी) गिलहरी उसको सम्यग्दर्शन होता है, हाथी को होता है, भरत नहीं, आया था, भरत का मित्र हाथी था, उस पर बैठ कर जाते थे वह भगवान का दर्शन करने को तब भरत को वैराग्य हो गया, दीक्षा लेली तो हाथी को जातिस्मरण हो गया, विचार करता कि अरे ! यह तो मेरा मित्र, एकदम (वैराग्य हुआ) पन्द्रह-पन्द्रह दिन के अंतर से आहार लेता था, अपने स्वाध्याय मंदिर में (चित्र) है और आत्मज्ञान। आहाहा ! शरीर वह चाहे हाथी का हो कि मनुष्य का हो कि छिपकली का हो, छिपकली समझते (है) ? छोटी-छोटी होती है छिपकली ? जीवों को पकड़ती है। आहाहाहा ! उसमें भी आत्मा अंदर है न प्रभु ? शरीर यह भिन्न चीज है, आत्मा भिन्न चीज है। आहाहा ! उसको भी जब श्रुतज्ञान से आत्मा का ज्ञान होता है तब उसको श्रुतकेवली कहा जाता है। आहाहा ! और... एक बात हुई परमार्थ श्रुतकेवली। आहाहा ! आहाहा !

जिसने अंदर में भावश्रुत से आत्मा को जाना वह अपना स्वरूप साधने को, विशेष साधने को कुटुंब, स्त्री आदि छोड़कर वन में चले जाते हैं, वह कैसी चीज होगी ? माता-पिता, हजारों रानियाँ और जिनके यहाँ नीलमणि का तो फर्स, (टाइल्स) मकान में नीलमणि का फर्स - ऐसा मकान और स्त्रियाँ, चक्रवर्ती का लड़का हो, महारानी हो परंतु जब निज का भान हुआ अंदर में, अरे ! मैं तो आनंद का नाथ श्रुतकेवली यह मेरी वस्तु तो पूर्ण। अरेरे ! हमें साधना (है) अपने स्वरूप की विशेष साधना

करना (है) मैं तो निवृत्ति लूंगा। आहाहा ! यह हजारों रानियाँ मात-पिता यह बंगला, नीलमणि का फर्स, स्फटिक (मणि) के मकान, बापू तीनलोक का नाथ (निजात्मा) यहाँ ज्ञात हुआ है, उसको साधने के लिये, जैसे (कफ) बलगम को छोड़ते हैं, इसीप्रकार चक्रवर्ती का राज्य छोड़ते है। आहाहा ! बलगम समझते है ? थूंक ऐसे अंदर के आनंद का नाथ (ज्ञायक प्रभु) जब जानने में आया, उसको साधने को, अंतर स्वरूप में स्थिर होने को, यह नीलगणि एवं स्फटिक के मकान तिनके की तरह छोड़कर चले जाते हैं जंगल में। सिंह और श्यार के बीच में जहाँ आहार-पानी का बिन्दु न मिले। आहाहा !

क्या होगा मेरा जंगल में ? होगा मुझे जंगल में केवलज्ञान ! आहाहा ! अतीन्द्रिय आनंद का भोजन करते-करते अतीन्द्रिय आनंद प्रगट होगा। आहाहा ! बाबूलालजी ! ऐसी चीज सुनने मिलती नहीं अभी ! प्रभु क्या करें भाई। आहाहा ! त्रिलोकनाथ अनंत जिनेनद्रों की यह पुकार है। अनंत तीर्थंकरों अनंत केवलियों आहाहा ! यह अनंत तीर्थंकरों ने केवलियों ने भी एक समय में जाननेवाली शक्ति उसको अनंत को जानती ऐसी अनंत पर्याय, अनंतीं पर्याय तो अंदर एक ज्ञान गुण में मौजूद है - ऐसा ज्ञान गुण संपन्न प्रभु और अनंतगुण का स्वरूप एक, केवल ऐसे आत्मा को जिसने जाना। आहाहा ! परमार्थ श्रुतकेवली है। संत कहते हैं कि हम कहते हैं कि यह परमार्थ श्रुतकेवली है। आहाहा ! श्रुत से जानना था पूर्ण यह सब उसने जान लिया। समझ में आया ? ***यह सम्यग्दर्शन कहो कि श्रुतज्ञान कहो, ज्ञान की अपेक्षा से श्रुतज्ञान और प्रतीति की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन।*** आहाहा !

`और जो सर्वश्रुत को जानते है' क्या कहते हैं ? कि जो आत्मा परिपूर्ण वस्तु है उसको जो ज्ञान जानता है, उस ज्ञान को यहाँ सर्व ज्ञान कहने में आया है। पहले तो ज्ञान (अर्थात) श्रुतज्ञान से आत्मा जाना यह परमार्थ श्रुतकेवली है, अब जो श्रुतज्ञान है, सर्व श्रुत को जानते हैं। आहाहा ! द्रव्यश्रुत की बात यहाँ नहीं, अंतर ज्ञान की पर्याय में संपूर्ण आत्मा जानने में आया, ऐसे ज्ञान को सर्वज्ञान कहते हैं। वह सर्वज्ञ (का) ज्ञान - ऐसा नहीं। आहाहा ! सर्वज्ञान ज्ञान में परिपूर्ण प्रभु, पूर्ण सर्वज्ञ स्वभावी, जिस ज्ञान ने जाना उस ज्ञान को सर्वज्ञान कहा जाता है, (आहा !) सर्वज्ञान कहा जाता है। (ओहो) सर्वज्ञान कहा जाता है। आहाहाहा ! जिस ज्ञान से आत्मा को जाना वह परमार्थ श्रुत यह परमार्थ केवली। और जिसने इस जाननेवाली चीज को जाना, उस ज्ञान को सर्व ज्ञान कहते हैं। आहाहाहा ! गजब बात करते हैं सर्वज्ञ स्वभावी भगवान को जाना, तब उस ज्ञान को सर्व ज्ञान कहते हैं। आहाहाहा !

अरेरे ! (यह) भरतक्षेत्र ! कहाँ प्रभु ! और कहा महाविदेह और कहाँ यह स्थिति।

ओहोहो ! यह भगवान के पास कैसी वाणी, कैसे श्रोता। आहाहा ! यहाँ से परमात्मा के पास गये थे, निश्चय परमात्मा और व्यवहार परमात्मा, कुन्दकुन्दाचार्य ! आहाहा ! वह कहते हैं कि जो ज्ञान अंदर का भावज्ञान जो आत्मा को जानने की लायकातवाला भावज्ञान उसे हम सर्व श्रुतज्ञान कहते हैं। आहाहाहाहा ! ***क्योंकि जो सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा उसको जाननेवाला ज्ञान इस ज्ञान को सर्वज्ञान कहते हैं। भले सर्वज्ञ नहीं परंतु 'सर्वज्ञान' (तो है) आहाहाहा ! इसप्रकार श्रुतज्ञानरूपी 'सर्वज्ञान'।*** आहाहा ! समझ में आया ? बापू वीतराग मार्ग सूक्ष्म अरे प्रभु मिले नहीं अभी इनको हाँ। आहाहाहा ! अरेरे ! मनुष्य का भव यह भव के अभाव के लिये यह भव है यह कहीं दुनियाँ में पैसा कमाने और धंधा करने इसके लिये यह भव नहीं प्रभु। बाहर का बड़प्पन मिलना और... आहाहा ! मनुष्य की परिभाषा ज्ञायते इति ज्ञानम ते मनुष्य। आहाहाहा ! जो आत्मा को जाने उसे मनुष्य कहते है बाकी पशु है। आहाहा !

यह शरीर की सुन्दरता और लक्ष्मी की अधिकता और बड़प्पन, मकान बड़ा सुन्दर संगमरमर या स्फटिक के बड़े-बड़े मकान। आहाहा ! यह काल का ईंधन, काल की अग्नि के लिये ईंधन समान है। ईंधन, जैसे अग्नि में लकड़ी जल जाती है।आहाहाहाहा ! परमात्मप्रकाश में है। करोड़ों रुपया का मंदिर बनाया हो परंतु कालरूपी अग्नि का ईंधन हो जायेगा। आहाहाहा ! प्रभु यह कहीं शाश्वत चीज नहीं। आहाहा ! शाश्वत चीज को जिसने जाना उस ज्ञान को 'सर्वज्ञान' कहते हैं। नवरंगभाई ! आहाहाहा !

जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं। आहाहाहा ! जिस ज्ञानसे भावश्रुतज्ञान हो। आत्मा जाना उस ज्ञान को सर्व श्रुतज्ञान कहते हैं। आहाहा ! यह सर्व श्रुतज्ञान को जानते है, सर्व श्रुतज्ञान को जानते, इसमें पहले आया कि श्रुतज्ञान से आत्मा को जानते हैं यहाँ सर्व श्रुतज्ञान, सर्व श्रुतज्ञान को जानते है। अब पर्याय आ गई और व्यवहार आया। आहाहा ! समझ में आया ? ***जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते है वे श्रुतकेवली है, परंतु यह व्यवहार, क्योंकि सर्वज्ञान है सर्व को जाना - ऐसा ज्ञान इस ज्ञान को व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं, ज्ञान को व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं और ज्ञान से आत्मा को जाने उसे परमार्थ श्रुतकेवली कहते हैं।*** आहाहा !

सभी अनजान बातें, वहाँ कोई तीर्थ करना यात्रा करना यह करना बापू... आहाहाहा ! तीनलोक का नाथ अरे पर्याय के प्रेम में आलस में रूका है। (एक तरफ आड़में) राग के प्रेम में (रुका), अंदर बड़ा भगवान होने पर भी एकतरफ रह गया। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते है। सर्व श्रुत, ज्ञान को जानते है, ***प्रथम क्या कहा था केवल शुद्धात्मा को जानते है - ऐसा कहा था परंतु अब यहाँ***

ज्ञान ज्ञान को जानता है यह गुण-ज्ञानगुण (की) पर्याय हुई उसको जानते है। आहाहाहा ! यह व्यवहार से श्रुतकेवली है। यह व्यवहार है। आहाहाहा !

राग, दया, दान, भक्ति एवं राग यह व्यवहार इसकी बात यहाँ नहीं। आहाहाहा ! यह तो असद्भूत, यह तो उसकी पर्याय में है, आहाहा ! तो उस ज्ञान को व्यवहार कहते हैं। आहाहा !

क्योंकि यह `ज्ञान सो आत्मा' इसप्रकार ज्ञान सो आत्मा - ऐसा ज्ञान के साथ आत्मा का तादात्म्य संबंध है यह बताने को सद्भूत व्यवहारनय से श्रुतज्ञान को जाननेवाले को व्यवहार श्रुतकेवली कहा। आहाहाहा ! यह गाथा का अर्थ हुआ। अब उसका स्पष्टीकरण।

`यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते है' किसकी ? कि यह श्रुतज्ञान वह सर्वश्रुतज्ञान वह श्रुतज्ञान है यह आत्मा के साथ तादात्म्य संबंध रखता है इसलिये उसे हमने व्यवहार श्रुतज्ञान कहा। उसका कारण क्या ? उसका कारण हेतु क्या ? यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते हैं... लो परीक्षा तो आयी। ***आज्ञा को प्रधान रखकर परीक्षा करना यह तो आया उसमें बताया न अभी अकेली आज्ञा छोड़कर मात्र परीक्षा करके जो मानेगा तो भ्रष्ट हो जायेगा।*** आहाहा ! बताया है न उसमें ?

अल्पज्ञानियों में बैठकर महंतबुद्धि रखे तो अपना प्राप्तज्ञान भी नष्ट हो जायेगा। आहाहाहाहा ! इसप्रकार निश्चय व्यवहार आगम की कथन पद्धति को जानकर निश्चय व्यवहार आगम कथन पद्धति को समझकर उसका श्रद्धान करके यथा शक्ति आचरण करना। इस काल में, आहाहा ! गुरु संप्रदाय के बिना महंत नहीं बनना। आहाहाहा ! गुरुगम जिसे न मिला हो इस भव में कि परभव में गुरुगम तो मिला नहीं और अपनी स्वच्छंदता से पढ़ते और समझते कहते हैं। आहाहा ! हाँ ? गुरु सम्प्रदाय के बिना महंत नहीं बनना। जिन आज्ञा का लोप नहीं करना, हाँ ? आहाहा ! कोई कहता है कि हम तो परीक्षा करके जिनमत को मानेंगे, वह वृथा (बेकार में) बकते हैं।

बापू यह अलौकिक बातें (है) प्रभु, यह क्षेत्र स्वभाव, काल स्वभाव, भाव स्वभाव यह पर्याय स्वभाव आदि कोई अलौकिक बातें हैं सभी। आहाहा ! व्यर्थ बकते हैं अपनी अल्पबुद्धिरूपी ज्ञान परीक्षा करने योग्य नहीं है, आहाहा ! तीनलोक के नाथ जिनेश्वर की आज्ञा में जो आया, उसकी अल्पबुद्धि परीक्षा करने जायेगा, नहीं कर सकेगा। आहाहा ! ऐसी चीज गंभीर है नाथ, तुम गंभीर हो, तुम्हारी शक्ति गंभीर है, तुम्हारी दशा गंभीर है। आहाहा ! दूसरे द्रव्य के गुण भी गंभीर है अनंत गुण दूसरे परमाणु आदि के। आहाहा ! स्व अल्प बुद्धिरूपी ज्ञान परीक्षा करने योग्य नहीं। ***आज्ञा को प्रधान रखकर बने उतनी परीक्षा करने में दोष नहीं, देखा ? आहाहा !***

प्रथम तो सर्वज्ञ की प्रतीति हुई और सर्वज्ञ की आज्ञा की प्रतीति हुई तब यह आज्ञा प्रधान रखकर। आहाहा ! आज्ञा को मुख्य रखकर संभव हो उसकी परीक्षा करने में दोष नहीं।

केवल परीक्षा ही को प्रधान रखने से मात्र परीक्षा हो। आहाहा ! गंभीर स्वभाव प्रभु जिन आज्ञा में तो गंभीर स्वभाव एक-एक चीज का आया (है)। आहाहा ! भगवान की आज्ञा को मुख्य रखकर परीक्षा (करना)... ***केवल परीक्षा की प्रधानता रखके जिन मत से च्युत हो जाये, तब बड़ा दोष आये, तुम बहुत*** शंका करोगे (कि) यह क्या ? आकाश के प्रदेशों से अनंतगुणे गुण है, वह इतने में, और अंगुल के असंख्य में भाग में अनंत निगोदिया है तो इतना, अरे ! प्रभु सुन तो सही प्रभु। यह स्वभाव की महिमा जो भगवान ने देखी है उसी प्रमाण में कही, उस आज्ञा की मुख्यता रखकर परीक्षा करना। आहाहा ! देवीलालजी ! आहाहा ! ***जैन धर्म गुरुगम लिखा है (अलौकिक) दशा है। आहाहा ! किसी का पूर्व का संस्कार हो या वर्तमान गुरुगम हो यह लिखा, तो समझे ऐसी बात है।*** आहाहा !

इसप्रकार जानो, जिनमत से च्युत हो जाये, तब बड़ा दोष आयेगा, इसलिये तो जिनकी अपने हित-अहित पर दृष्टि है... जिनकी अपने हित-अहित पर दृष्टि है। हाँ ! यह तो इस प्रकार जानों, और जिनको अल्पज्ञानियों में महंत बनकर अपना मान, लोभ, बड़ाई, विषयकषाय पुष्ट करना हो, उनकी बात नहीं। आहाहाहा ! सूक्ष्मबात आ गई है। माणेकचन्द्रजी ! बात तो ऐसी है, वह तो जैसे अपने विषयकषाय पुष्ट होंगे वैसा करेंगे। अपनी मान, बड़ाई, पुष्टी होगी वैसा करेंगे। आहाहा ! उनको मोक्षमार्ग का उपदेश नहीं लगता, विपरीतता में किस चीज का उपदेश ? इसप्रकार जानना चाहिए।

देखो ! अर्थकार पण्डितजी ने अष्टपाहुड में... (श्रोता :- ***आज्ञा से काम चल जाये तो परीक्षा क्यों करना ?) आज्ञा से बिलकुल आज्ञा से (कार्य - ऐसा) नहीं, बिलकुल (एकांत) आज्ञा से नहीं। अंदर परीक्षक हो, यह मुख्यता होना चाहिए अन्यथा अकेले वचन से मानना तब दूसरा बतायेगा तो भ्रष्ट हो जायेगा। इसमें आया है मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने... अकेला आज्ञा से माने परंतु अंदर मुख्य परीक्षा होना चाहिए कि ओ हो, आत्मा का स्वभाव ज्ञान, उसका अर्थ यह सर्वज्ञ स्वभाव है, ऐसे तो परीक्षा करना। आहाहा ! और सर्वज्ञ स्वभावी है, तब जिसके मत में सर्वज्ञपना प्रगट हुआ हो उसका कहा पंथ यह पंथ है, जिसके मत में सर्वज्ञ नहीं, वह पंथ चलाये वह पंथ नहीं। समझ में आया ?*** आहाहा ! यहाँ कहते हैं श्रुतकेवली यह व्यवहार है। अब दो पक्ष लेकर बात करेंगे। बाद में - विशेष...

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ३५ गाथा-९-१० ता. १६-७-७८ रविवार अषाढ सुदी-११ सं.२५०४

समयसार ९-१० गाथा की टीका फिर से '**प्रथम तो जो श्रुत से केवल शुद्धात्मा को जानते है, वे श्रुतकेवली है,**' क्या कहा ? भावश्रुतज्ञान निर्विकल्प शांति समाधी के द्वारा आत्मा को जानते है, वह आत्मा को जाननेवाले परमार्थ (से) निश्चय श्रुतकेवली कहने में आते हैं। समझ में आया ? आत्मवस्तु जो आत्म पदार्थ उसे जो ज्ञान, निर्विकल्प ज्ञान होकर राग का भी पक्ष छोड़कर निर्विकल्पशांति, समाधि के द्वारा जो त्रिकाली आत्मा को जाने, आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्मबात है भाई ! परम सत्य बहुत सूक्ष्म। यह आत्मा चीज जो है अनंत आनंद और अनंतज्ञान सम्पन्न प्रभु, जिसका स्वभाव है उसका तो माप क्या ? अमाप ज्ञान और अमाप दर्शन और आनंद आदि एकरूप वस्तु, अनंतगुणों में एकरूप वस्तु द्रव्य उसको जो ज्ञान वर्तमान राग रहित होकर निर्विकल्पशांति द्वारा द्रव्य को जानता है उसको निश्चय श्रुतकेवली कहते हैं। सूक्ष्मबात है बाबूलालजी ! आहाहा !

जो यह आत्मा वस्तु है। परिपूर्ण अंतर (परिपूर्ण) संपदा से भरा पड़ा प्रभु उसको जो वर्तमान ज्ञान निर्विकल्प अर्थात राग की अपेक्षा छोड़कर निर्विकल्प शांति और समाधि, उसके द्वारा वह ज्ञान आया। इसके द्वारा आत्मा को जाने यह निश्चय श्रुतकेवली कहा जाता है। समझ में आया ? ऐसी सूक्ष्मबात है। यहाँ तो आत्मा को जिसने जाना यह निश्चय श्रुतकेवली है परंतु यह किसप्रकार जाना ? अंतर में राग से भिन्न होकर जो ज्ञान (की) शांति और वीतरागी पर्याय हुई उसके द्वारा जो आत्मा जानने में आया, इसके द्वारा सीधा आत्मा जानने में आया, उसको निश्चयश्रुतकेवली कहते हैं।

सभी बात जगत से निराली है भाई ! शब्द भी अलग, भाव भी अलग- ऐसा है ख्याल है न ! आहाहा ! मूल चीज पूरी अंतर वस्तु भगवान आत्मा नित्यवस्तु ध्रुववस्तु, शाश्वतवस्तु है। वह कहीं नई उत्पन्न नहीं हुई, उसका अंश भी नष्ट होगा ऐसी चीज नहीं - ऐसा शाश्वत प्रभु अविनाशी आत्मा उसको वर्तमान शांति, राग से रहित होकर राग से भिन्न होकर अपनी शांति और ज्ञान द्वारा जो आत्मा को अनुभवे, आत्मा को जाने, उनको यहाँ निश्चय सच्चा श्रुतकेवली कहा जाता है। कहो राजमलजी ! देवीलालजी ! आहाहा ! हाँ ! यह परमार्थ है।

और जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं प्रथम तो यह (कहा) ***जो ज्ञान अपने को जानता है उस ज्ञान में परिपूर्ण चीज आ गई क्योंकि परिपूर्ण को जाननेवाली ज्ञान***

पर्याय उस ज्ञान में सर्वश्रुत स्व को भी जाने और यह ज्ञान पर को भी जाने। आहाहा ! ***- ऐसा आत्मा का ज्ञान जो आत्मा को सीधा जाने यह तो निश्चय श्रुतकेवली।*** परंतु वह ज्ञान जो है और यह स्व को जाने एवं पर को जाने यह स्व को जाने यह ज्ञान की पर्याय में पर को जानने का ज्ञान तो आ गया। आहाहा ! ***यह स्व-पर को जाने - ऐसा जो ज्ञान उसको व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं वस्तु को त्रिकाली को जाने यह निश्चय श्रुतकेवली है।*** आहाहा ! यह तो अलौकिक बातें है बापू !

जगत से बिलकुल निराली... अभी तो चारों तरफ विरोध उठा है। सर्व श्रुतज्ञान को जानते है वह श्रुतकेवली है - यह व्यवहार है क्योंकि जो ज्ञान है जानने-जानने यह जाननेरूप शक्ति स्व को भी जाने यह जानने (वाला) पर को भी जाने यह तो साधारण बात है। यह स्व-पर को जाननेवाला ज्ञान (उसको) व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं। नवरंगभाई ! दोनों एक जैसे नहीं। आहाहा ! सूक्ष्मबात बापू ! यह तो परम सत्य का सागर, परम सत्य सागर प्रभु जो वस्तु है, वह तो परिपूर्ण स्वभाव से भरी पड़ी है। वस्तु में अपूर्णता विपरीतता कि अशुद्धता होती नहीं। यह पूर्ण वस्तु जो है आत्म वस्तु, उसको जो निर्विकल्प शांति द्वारा जो ज्ञान साथ में है, यह शांति द्वारा ज्ञान आत्मा को जानें यह तो परमार्थ हुआ, जो ***परमपदार्थ को जाने सो परमार्थश्रुतकेवली कहते हैं।*** समझ में आया ? और सर्वश्रुतज्ञान को जाने, यह ज्ञान की पर्याय चाहे तो बारह अंग को जाने और यह ज्ञान की पर्याय स्व को जाने यह ज्ञान अब बस। इस ज्ञान की पर्याय यह त्रिकाली को स्व को जाने और यहाँ बाह्यज्ञान है उसको भी जानें, उस ज्ञान को व्यवहार... पर्याय है न ? भेद है न ? तब व्यवहार श्रुतकेवली कहने में आया। सूक्ष्मबात बापू ! ओहोहो !

अभी दिखावा बाहर का यात्रा और यह एवं वह आहाहा ! भक्ति एवं पूजा एवं उसमें समझें धर्म हो गया ? आहाहा ! अंतर की वस्तु कोई दूसरी है। आहा ! अस्ति है न ! है न वस्तु ! है, यह कोई वस्तु अनादि की है और अनंतकाल रहेगी - ऐसी यह वस्तु है, और यह चीज है उसका स्वभाव जो है वह भी परिपूर्ण त्रिकाल है। वस्तु का स्वभाव जैसी वस्तु त्रिकाल है - ऐसा उसका स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनंद यह स्वभाव और स्वभाववान यह दोनों अनादि वस्तु शाश्वत है। आहाहा ! इस चीज को जो सम्यग्ज्ञान शांति द्वारा जाने, ***तब तो यह परमार्थ जाना तब उसे परमार्थ श्रुतकेवली कहते हैं, और जो ज्ञान स्व को जाने एवं पर को जाने, यह ज्ञान इस ज्ञान को यहाँ व्यवहारश्रुतकेवली कहते हैं।*** समझ में आया ?

यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते है उपरोक्त सर्वज्ञान आत्मा है कि अनात्मा ? क्या कहा ? जो ज्ञान है न ज्ञान, स्व को जाने और पर को जाने, ऐसी जो शक्ति

ज्ञान की, यह ज्ञान है यह आत्मा है कि अनात्मा ? यह आत्म स्वरूप (के) साथ संबंध है ? कि किसी अनात्मा के साथ संबंध है ? आहा ! जानन-जानन-जानन स्वभाव... इसका आत्मा के साथ संबंध है ? यह आत्मा है ? कि रागादिक पर के साथ संबंध है कि अनात्मा है ? यह आत्मा है ? कि रागादिक पर के साथ संबंध है कि अनात्मा है ? समझ में आया ?

यह पढ़ाई अलग जाति की है भाई ! आहाहा ! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा की कॉलेज है। इस कॉलेज की चीज इसने अनंतकाल में जानी नहीं उसकी बात है, शेष तो थोथा इस जगत का बाहर की जानकारी और शास्त्र की जानकारी अकेली... उसको तो यहाँ व्यवहार में लिया नहीं।

अपना और पर का ज्ञान दोनों (के) इस ज्ञान को व्यवहारश्रुतकेवली कहते हैं और उसको सर्वश्रुत कहते हैं, समझ में आया ? अभ्यास चाहिए भाई, यह तो एकदम अभ्यास बिना (नहीं समझ में आये)... अब यह कहते हैं जिस ज्ञान को व्यवहार कहा, जो ज्ञान है, यह ज्ञान आत्मा को सीधा जाने यह तो निश्चय। अब जो ज्ञान है, यह ज्ञान क्या है ? कि यह ज्ञान आत्मा का ज्ञान है कि जड़ का।

दो पक्ष किये। दो पक्ष परीक्षा करके... 'सर्वज्ञान आत्मा है कि अनात्मा ?' '**अनात्मा का पक्ष लिया जाय तो यह ठीक नहीं**' यह जानन जानन जानन जो भाव यह कर्म का है शरीर का है राग का है तब यह पक्ष सत्य नहीं, यह ज्ञान उसका है नहीं। ज्ञान उसको जानता है - यह बात यहाँ नहीं। परंतु यह ज्ञान है किसका ? ज्ञान स्व को जाने और पर को जाने, यह ज्ञान है किसका ? यह ज्ञान आत्मा का है कि अनात्मा का ? दया, दान, राग, शरीर वाणी उसका ज्ञान है यह ? समझ में आया ? यदि अनात्मा का पक्ष लिया जाय तो यह ठीक नहीं क्योंकि जानना, जो जानना है स्व को जाननेवाली पर्याय वह पर को जाने (- ऐसा) पर्याय ज्ञान यह अनात्मा है, राग है या शरीर है शरीर के साथ उसका संबंध है - ऐसा ठीक नहीं। यह ज्ञान का तो आत्मा के साथ संबंध है। समझ में आया ? आहा !

ऐसी बात को फुरसत कहाँ मिले ? व्रत पालो और उपवास करो एवं २२ घण्टे धंधा करे, यह एक दो घण्टे मिलें वहाँ यह करो परंतु यह चीज क्या है ? वस्तु क्या है और वस्तु में जानने की शक्ति ताकत कितनी है ? वस्तु को जाने जो ज्ञान की ताकत वह तो निश्चय है, परंतु उस निश्चय को जाननेवाला जो ज्ञान है, और वह ज्ञान भले पर को भी जाने, परंतु उस ज्ञान की पर्याय स्वपर जानने की ताकतवाला ज्ञान है, यह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता है कि जड़ के साथ संबंध रखता है ? यदि जड़ के साथ संबंध रखता है यह ठीक नहीं, कि जानने-देखनेवाली जो

दशा है। (उसका) राग और शरीर के साथ संबंध है नहीं। आहा ! समझ में आया? सूक्ष्मबात है भाई ! आहा !

क्योंकि जो समस्त जड़रूप अनात्मा, आकाशादि पदार्थ है न ? यह परमाणु शरीरादि पांचद्रव्य है, आत्मा के अलावा जड़ पांचद्रव्य है वस्तु, धर्मास्ति-अधर्मास्ति, आकाशास्ति, काल और पुद्‌गल, **उनका ज्ञान के साथ तादात्म्य बनता ही नहीं।** जड़ के साथ... जानना (ज्ञान)... भले यह वर्तमान दशारूप ज्ञान, (वह) ज्ञानरूप है, वर्तमानदशा ज्ञानरूप यह वर्तमान दशा का ज्ञान यह जड़ के साथ संबंध रखता है कि यह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता है ? कि यह ज्ञान आत्मा के साथ तादात्म्य तद्‌रूप है कि ज्ञान, राग और शरीर के साथ तद्‌रूप है ? अब ऐसी बातें ! आहा ! तब (जड़ पांचद्रव्यो) उनके ज्ञान के साथ तादात्म्य बनता नहीं। क्योंकि उनमें ज्ञान सिद्ध नहीं। राग, दया, दान, व्रतादि का भाव और शरीर, वाणी का भाव जड़ उसके साथ ज्ञान का संबंध है नहीं उसमें ज्ञान है नहीं, ज्ञान उसका है नहीं, ज्ञान का संबंध उसके साथ नहीं। आहाहा ! उसमें ज्ञान (की) सिद्धि नहीं इसलिये अन्य पक्ष का अभाव होने से ज्ञान आत्मा ही है, ज्ञान आत्मा ही है। ज्ञान राग है, ज्ञान शरीर है - ऐसा नहीं। ***चाहे तो ज्ञान, राग और शरीर को जाने, जानने पर भी वह ज्ञान पर्याय राग और शरीर की नहीं। आहाहा ! जानन शक्ति जो है यह आत्मा के साथ संबंध रखती है।*** समझ में आया ? भाई ! ऐसी बात है। आहाहा ! वस्तु त्रिकाली और उसको जाननेवाले ज्ञान को... उसको तो सर्वश्रुत कहकर पर को भी जाने इस अपेक्षा से सर्वश्रुत कहा, फिर भी वह ज्ञान स्वपर प्रकाशने की, जानने की ताकत रखता है। उस ज्ञान को व्यवहार श्रुतकेवली कहा। ***क्योंकि वह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता है भेद होकर कि यह ज्ञान सो आत्मा तो यह तो उसके साथ संबंध है, भले यहाँ व्यवहार कहा परंतु यह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता है, यह ज्ञान राग और शरीर के साथ संबंध नहीं रखता।*** आहाहा ! समझ में आता है कुछ ?

`इसलिये अन्य पक्ष का अभाव होने से ज्ञान आत्मा ही है'** ज्ञान आत्मा ही है इतना व्यवहार हो गया। ***ज्ञान आत्मा को जाने यह तो निश्चय हुआ अब यह ज्ञान आत्मा ही है - ऐसा भेद हुआ तो इस ज्ञान को व्यवहार कहा।*** आहाहा ! परंतु यह ज्ञान आत्मा है, यह ज्ञान राग और शरीररूप है नहीं। आहाहाहा ! **`यह पक्ष सिद्ध हुआ' इसलिये श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है, कौन ? ज्ञान हो ! (जो) ज्ञान व्यवहार श्रुत कहा था न ! व्यवहार श्रुतज्ञान... यह श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है। आत्मा तो आत्मा है ही परंतु श्रुतज्ञान भी आत्मा है, क्योंकि उसके साथ तादात्म्य संबंध

है। आहाहा ! - ऐसा होने से `**जो आत्मा को जानता है वह श्रुतकेवली है - ऐसा ही घटित होता है।**'

जो आत्मा को जाने, भगवान पूर्णानंद प्रभु... अस्तिरूप मौजूदगी चीजरूप और मौजूदगी अस्ति चीज है। वह अपूर्ण और विपरीतरूप होती नहीं। पूर्ण और अविपरीत स्वभाव से भरा पड़ा प्रभु है। (निजात्मा) उसको जो जानें वह तो निश्चय श्रुतकेवली है। समझ में आया ? - ऐसा होने से आत्मा को ही जानते वह तो श्रुतकेवली ही है - ऐसा ही घटित होता है, आहाहा ! और वह `**श्रुतज्ञान भी आत्मा है**' यह तो व्यवहार में गया। `**- ऐसा होने से जो आत्मा को जानता है वह श्रुतकेवली - ऐसा घटित होता है**' `**और यह तो परमार्थ ही है**' आहाहा ! जिस ज्ञान ने आत्मा को ज्ञेय बनाकर आत्मा को जाना... जो ज्ञान (अनादि से) अकेला पर को जानता है अपनी पर्याय में पर को जानते हैं यह तो ऐकान्तिक ज्ञान, यह ज्ञान ही नहीं, समझ में आया ?

परंतु जो ज्ञान स्व को जानता है और पर को भी भले जाने, ऐसी तो ताकत उसमें स्वपरप्रकाशक है। परंतु उस ज्ञान का संबंध अनात्मा-शरीर वाणी कर्म से है नहीं, इस ज्ञान का संबंध आत्मा के साथ है। आहाहा ! `ज्ञान सो आत्मा' - ऐसा भेद करके कहा ना ? `**ज्ञान सो आत्मा**' आत्मा सो आत्मा - ऐसा अनुभव हुआ यह तो निश्चय हुआ। परंतु ज्ञान सो आत्मा उसको जाननेवाला ज्ञान और वह ज्ञान पर को भी जाने यह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता है... स्व और पर को जानने का ज्ञान, आत्मा के साथ संबंध रखता है। पर को जाने इसलिये पर से संबंध रखता है - ऐसा नहीं है। आहाहाहा ! - ऐसा सूक्ष्म है।

क्या करना ? भाई ! अनंतकाल से चौराशी के अवतार (में) यह जन्म-मरण कर रहा है, चौराशी के अनेक भव... अनादि का है, तब रहा कहाँ ? भव भ्रमण में रहा। आहाहा ! यह भव भ्रमण में तो दुःख है अकेला, चाहे तो स्वर्ग का देव हो और मनुष्यों में राजा हो, दुःखी है बिचारा, राग-द्वेष की पीड़ा में आकुलता में पीड़ित होता है। आहाहा ! उसे पीड़ा से छूटना उसका उपाय क्या ? कि यह जो ज्ञान स्व सन्मुख अपने को जाने तब यह श्रुतकेवली अर्थात परमार्थ से आत्मा को जाना तब उसका भव भ्रमण रहा नहीं। क्योंकि आत्मा में भव और भव का भाव है नहीं। परंतु अपना भाव परिपूर्ण है। आहाहा ! यह परिपूर्ण भगवान को (ज्ञायक को) जाने जो ज्ञान, यह तो परमार्थ हो गया।

परंतु जो ज्ञान उसको जाने और पर को जाने - ऐसे ज्ञान को व्यवहार कहा, परंतु वह ज्ञान का संबंध किसके साथ है ? पर को जानता है इसलिये पर के

साथ संबंध है ? समझ में आया ? जानती तो पर्याय है अपनी अपने को और पर दोनों को, जानने की दशा तो स्व-पर दोनों को जानती है। फिर भी ज्ञान का संबंध राग और शरीर-कर्म, जड़ के साथ है नहीं। यह संबंध तो आत्मा के साथ है। आहाहा ! - ऐसा सूक्ष्म है।

लोगों को अंतर उतरना क्या चीज है अंदर, (परमार्थ) प्रभु ! यह शरीर वाणी तो जड़ है। उसका ज्ञान हो, परंतु उसका ज्ञान यह ज्ञान शरीर के साथ संबंध रखते है - ऐसा नहीं, शरीर का ज्ञान हो, पर यह ज्ञान शरीर के साथ संबंध रखता है - ऐसा नहीं। यह शरीर का ज्ञान हो, यह स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय आत्मा के साथ संबंध रखती है। नवरंगभाई ! आहाहा ! समझ में आया ? यह ऐसी बात है, भाई ! आज रविवार का दिन है और सभी बच्चे आये हैं न आज बहुत ! आहाहा !

पूर्णानंद प्रभु... पूर्ण स्वभाव की वस्तु है न, यह पूर्ण ही होती है, वस्तु है उसमें अपूर्णता कि विपरीतता कि अशुद्धता होती नहीं। ये भी पता नहीं अभी। वस्तु है अनादि चैतन्यघन प्रभु, यह तो परिपूर्ण शक्ति और परिपूर्ण स्वभावसे परिपूर्णवस्तु है। इस परिपूर्ण चीज को जो ज्ञान जाने उस ज्ञान को व्यवहार श्रुतज्ञान कहते हैं, परंतु जो ज्ञान उसको जानें अंदर में यह आत्मा को जाने उसे निश्चय कहते हैं। आहाहा ! - ऐसा है। - ऐसा होने से जो आत्मा को जानता है वह श्रुतकेवली है, यह सब घटित होता है और वह परमार्थ है।

'**इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कहनेवाला जो व्यवहार** (**है**)' देखो, देखा ? क्या कहते हैं जो यहाँ ज्ञान वर्तमान ज्ञान है, यह ज्ञान स्व को जाने और पर को जाने परंतु उस ज्ञान की पर्याय को व्यवहार कहा। क्योंकि यह ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद हो गया न ? आत्मा अकेला (ज्ञेय हो) तो निश्चय हो गया है ? आहाहा ! '**ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कहनेवाला जो व्यवहार उसमें भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है।**' आहाहा ! ज्ञान स्व और पर को जाने वह ज्ञान सो आत्मा, तब इतना भेद किया अतः व्यवहार हो गया।तब व्यवहार ने बताया है निश्चय को। जो ज्ञान स्व का हुआ और पर का हुआ, उस ज्ञान ने आत्मा को जाना और यह ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद करके व्यवहार कहा, तो व्यवहार ने बताया क्या ? त्रिकाली वस्तु को, तब उसमें इतना व्यवहार आया, अतः उसको व्यवहार कहा जाता है, परंतु इस व्यवहार का आश्रय लेने से निश्चय होता है - ऐसा नहीं इस व्यवहार का आश्रय तो त्रिकाली है। आहाहा ! सूक्ष्मबात बहुत आयी। फिर से लिया न हमारे बाबूभाई ने कहा, फिर से लो बाबूलालजी कहते हैं। बात सच्ची यह तो चाहे जितनी बार लो, बाबूलालजी ! अपार वस्तु है। आहाहा !

चैतन्य चमकता हीरा अंदर है, चैतन्य चैतन्य चैतन्य के चैतन्यप्रकाश का चमकता हीरा अंदर, परिपूर्ण चमकता हीरा (ज्ञायक) स्वभाव भगवान है। आहाहा ! ऐसे परिपूर्णशक्ति के स्वभाव से भरा पड़ा परिपूर्ण प्रभु है। ऐसे परिपूर्ण प्रभु को जो ज्ञान सीधा परिपूर्ण को जानता है, वह तो श्रुत निश्चय परमार्थ हो गया। परंतु जो ज्ञान स्व को जाने और पर को जाने उस ज्ञान को व्यवहार कहा, क्योंकि ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद डालकर कहा इसलिये व्यवहार हुआ ? समझ में आया ?

`**इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से**' ज्ञानी अर्थात आत्मा, ज्ञान शब्द से वर्तमान ज्ञान पर्याय, ऐसे भेद से कहनेवाला यह व्यवहार उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है। जानने की (दशा) ज्ञान सो आत्मा और यह आत्मा को जानें, इस परमार्थ को व्यवहार से बताया है। व्यवहार ने व्यवहार को बताया - ऐसा नहीं, व्यवहार ने बताया परमार्थ को। आहाहा ! (श्रोता :- व्यवहार का इतना उपकार मानना) इतना व्यवहार स्थापन करने योग्य है। है इतना, परंतु वह व्यवहार के आश्रय से निश्चय होता है निश्चय - ऐसा नहीं। आहाहा !

बहुत फर्क है भाई ! अरे ! अभी तो बहुत गड़बड़ हो गई है संप्रदाय में तो, दया पालो व्रत करो और उपवास करो, अब यह तो राग की क्रिया है, वह (देरावासी) कहें भक्ति करो और यात्रा करो। आज आये थे यहाँ बड़े (संघ) पालीतानावाले, बड़ा संघ आया था। घोघा भावनगर जाता था, यहाँ रुके थे, देखा था, यह बस यात्रा करो तो हम तिर गये। यह तो शुभराग की क्रिया जो मंदराग करते हो तो यह यात्रा और उसका नाम शुभराग पुण्य है। यह कोई धर्म नहीं और वह धर्म का कारण भी नहीं। आहाहा ! धर्म का कारण तो प्रभु त्रिकाली आत्मा जो है। यह वर्तमान आनंद और शांति एवं समकित का कारण तो यह आत्मा है। आहाहा ! और इस आत्मा को जिसने जाना उसकी पर्याय में आनंद और समकित आदि होता है। तब यह पर्याय स्व को और पर को जानती है, उस ज्ञान को `ज्ञान सो आत्मा' इतना भेद हुआ, यह व्यवहार कहने में आया, इसको व्यवहार कहने में आया। फिर भी यह ज्ञान व्यवहार है, यह अकेले व्यवहार को बताते है - ऐसा नहीं। यह ज्ञान सो आत्मा, यह जानता है न, जानते है न ? यह जानते है यह आत्मा इसप्रकार आत्मा को बताया। व्यवहार से व्यवहार श्रुतकेवली ने व्यवहारज्ञान से भी आत्मा को बताया। आहाहाहा ! ऐसी बातें है।

यह किस जाति का धर्म यह ? बापू क्या कहें ? परम सत्य वस्तु परमसत्य क्योंकि प्रभु तुम हो, यह सर्वज्ञ स्वरूपी तुम हो भाई। तुम्हें खबर नहीं। तुम आत्मा जो हो यह ज्ञान स्वरूपी है। चैतन्यप्रकाश स्वरूप है, चैतन्यप्रकाश स्वरूप है, तब

यह चैतन्यप्रकाश का परिपूर्ण प्रकाश है, परिपूर्ण अर्थात यह सर्वज्ञ प्रकाश स्वरूप है। आहाहा ! उसका शक्तिरूप सर्वज्ञ प्रकाश स्वरूप आत्मा का है `ज्ञ' स्वरूप कहो प्रभु यह `ज्ञ' का परिपूर्ण स्वरूप सर्वज्ञपना कहो तब यह सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु आत्मा है, परंतु वह ज्ञान की पर्याय त्रिकाली को अनुभवे, निर्विकल्प समाधी, शांति द्वारा तब तो मूल चीज को अनुभवे यह तो परमार्थ हुआ। परंतु वह पर्याय जो स्वपर को जानती है, उस पर्याय को व्यवहार क्यों कहा कि वह तो भेद है। त्रिकाली वस्तु में ज्ञान गुण - ऐसा पर्याय भेद हुआ इस कारण से व्यवहार कहा, परंतु व्यवहार ने बताया है परमार्थ को। आहाहाहा ! समझ में आता है कुछ ?

यह व्यवहार है अवश्य, परंतु वह व्यवहार बताते हैं त्रिकाली परमार्थ स्वरूप चिदानंद प्रभु, इसलिये व्यवहार का संबंध ज्ञान का भी आत्मा के साथ में है। इस ज्ञान का संबंध पर के साथ नहीं। आहाहाहा ! जिस ज्ञान को व्यवहार कहा, यह क्योंकि ज्ञान सो आत्मा ऐसा भेद होने से, परंतु वह ज्ञान अपने को और पर को जाने इसलिये वह ज्ञान पर से संबंध रखता है - ऐसा नहीं यह ज्ञान तो आत्मा के साथ संबंध रखता है। आहाहा ! समझ में आया ?

नये व्यक्तियों को - ऐसा लगे कि यह क्या कहते है यह तो, जैनदर्शन में वीतरागता (भरी है), बापू ! मार्ग - ऐसा है भाई ! सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ और तुम भी प्रभु सर्वज्ञ स्वरूपी हो उन सर्वज्ञ ने जो प्रगट किया जो उनकी आज्ञा में आया वह इस मार्ग पर आया। आहाहा !

दूसरी बात, कि राग से आत्मा जानने में आता है, यह तो व्यवहार ही नहीं, ज्ञान से आत्मा जानने में आता है यह उसको यहाँ व्यवहार कहा। आहाहा ! और उस व्यवहार ने राग को बताया - ऐसा नहीं उस व्यवहार ने आत्मा को बताया है। आहाहा ! यह जानन पर्याय जो अवस्था, स्वपर जानने की यह शक्ति वस्तु जो त्रिकाल (ज्ञायक) है उसका वह ज्ञान है - ऐसा यह बताते है। व्यवहार निश्चय को बताते है। आहाहा ! व्यवहार-व्यवहार ऊपर लक्ष्य कराता है - ऐसा नहीं। समझ में आये इतना समझना प्रभु, यह तो कोई अलौकिक बातें है, क्या कहे ? आहाहा !

उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है, क्या कहा ? जो जानन, जानन, जानन आत्मा को जाने और पर को जाने - ऐसा ज्ञान, यह ज्ञान आत्मा को बताता है। इसका आत्मा के साथ संबंध है। इस ज्ञान ने परमार्थ को बताया है न ? और उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है। ज्ञान सो आत्मा - ऐसा परमार्थ को बताया। इस ज्ञान ने परमार्थ वस्तु को बताया। व्यवहार ने परमार्थवस्तु बताया। ***ज्ञानरूपी वर्तमान पर्याय जो भेदरूप व्यवहार उसने भी अभेद ज्ञायक को बताया।*** आहाहाहा ! बहुत

सूक्ष्म।

यह तो अगाध सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञ प्रभु एक सेकण्ड के असंख्य भाग में तीनकाल, तीनलोक को जाने ऐसी अपनी पर्याय का सामर्थ - उसे जाने यह कहना व्यवहार है। ऐसी सर्वज्ञ दशा जहाँ प्रगट हुई और इच्छा बिना वाणी का प्रवाह निकला उस वाणीमें से शास्त्र रचा। उस शास्त्र में से यह भाग अवयव है उसका, समयसार।

मुख ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, भगवान के मुखमें से वाणी ओम... ध्वनि, दिव्यध्वनि, प्रधान आवाज उसको सुनकर संतों ने आगम की रचना की है, **रची आगम उपदेश भाविक जीव संशय निवारे,** आहाहा ! यह आगम से सुनकर भव्य लायक प्राणी संशय का नाश करे। आहाहा ! समझ में आया ? अरे ! ऐसी बातें।

`**उससे भिन्न कुछ नहीं कहा जाता**' व्यवहार ज्ञान है। इसको भले हमने व्यवहार कहा, परंतु उस व्यवहार ने बताया तो त्रिकाली ज्ञायक को, उससे कुछ भिन्न चीज तो बताई नहीं उसने। आहाहा ! ज्ञान स्वभाव जो पर्याय में स्व और पर को जानने की ताकतवाला ज्ञान कहा, यह तो स्वपरप्रकाशक है न ? फिर भी यह स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय आत्मा के साथ संबंध रखती है। यह परमार्थ आत्मा को बताती है। यह स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय, यह बताती संबंध रखती है आत्मा के साथ। यह स्वपरप्रकाशक ज्ञान पर के साथ संबंध नहीं रखता। आहाहाहा ! समझ में आया ? कितना याद रखना ? एक घण्टे में, बहुत सूक्ष्म बापा ! आहा ! अलौकिक चीज है। आहाहा !

कहते हैं - इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से... पर्याय ज्ञान और ज्ञानी द्रव्य, ऐसे भेद से कहनेवाला व्यवहार, उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है। इस ज्ञान ने बताया कि यह आत्मा, ऐसे परमार्थ त्रिकाली स्वरूप को ज्ञान जानता है तब उसने व्यवहार से निश्चय को बताया व्यवहार ने परमार्थ को बताया। व्यवहार शब्द (समझना) वर्तमानज्ञान की पर्याय उसने परमार्थ त्रिकाल को बताया। आहाहाहा ! यह सूक्ष्म लगे, इसलिये लोग व्रत एवं तप तथा उपवास और भक्ति में जुड़ गये और उसमें धर्म मानने लगे... आहाहाहा !

यहाँ तो ज्ञान की पर्याय जो है वह पर्याय भी स्व के साथ संबंध रखती है, तब भेद करके बताया, परंतु ज्ञान सो आत्मा, यहाँ आत्मा को बताया। भले ज्ञान भेद करके कि... यह ज्ञान सो आत्मा। यह ज्ञान यह व्यवहार वर्तमान, परंतु उसे जानन वह निश्चय, परंतु इस ज्ञान ने निश्चय को बताया कि यह त्रिकाली वस्तु वह मैं हूँ। आहाहाहा ! समझ में आया ? - ऐसा जब ज्ञान अंदर में हो तब उसको

अतीन्द्रिय आनंद आता है, यह अतीन्द्रिय आनंद की पर्याय भी वर्तमान है तो व्यवहार कहा जाता है, परंतु वह पर्याय बताती है अतीन्द्रिय स्वरूप भगवान आत्मा के साथ संबंध है। इस आनंद का संबंध कोई राग और पर के साथ नहीं। आहाहा ! यहाँ तो ज्ञान लिया न (वह ज्ञान) स्वपरप्रकाशक है आनंद में तो कोई स्वपर (प्रकाशक) है नहीं। आहाहाहा !

तब यह ज्ञान में स्व को जानने की ताकत और पर को जानने की ताकत वर्तमान में हो ! यह वर्तमान ज्ञान, फिर भी फिर भी यह स्व पर के जानने की ताकतवाला ज्ञान वर्तमान, यह तो त्रिकाली को बताता है। यह ज्ञान राग की और शरीर की प्रसिद्धि करते है - ऐसा नहीं। ***यह ज्ञान स्वपरप्रकाशक होने से राग को जाने, शरीर को जाने, वाणी को जाने - ऐसा कहना वह असद्भूत व्यवहार है। यह ज्ञान की पर्याय (स्वयं) ज्ञान को जानती है इस पर्याय में स्वपरप्रकाशकपना ज्ञात होता है, इस स्वपरप्रकाशक ज्ञान को यहाँ व्यवहार कहा क्योंकि ज्ञान और ज्ञानी का भेद बताया, परंतु भेद बताकर भी यह ज्ञान आत्मा की प्रसिद्धि करता है।*** आहा ! कि यह ज्ञान सो आत्मा त्रिकाली प्रभु पूर्णानंद अंदर है। आहाहा ! ऐसी बात है।

यह फिर से लिया, परंतु चाहे जितनी बार लें, फर्क थोड़ा भाषा का आता है, वस्तु तो जो है यह है, वस्तु तो... साधारण प्राणी तो - ऐसा कहें कि ***सम्यग्दर्शन तो केवलीगम्य है, केवलीगम्य है ऐसा, अष्टपाहुड़ में लिया है। परंतु फिर भी यह सम्यग्दर्शन अनुभूति द्वारा जानने में आता है इसलिये व्यवहार कहा। सम्यग्दर्शन सीधी बात है यह निर्विकल्प प्रतीति है वह जानने में नहीं आती। परंतु साथ में (जो) अनुभूति होती है जो ज्ञान आत्मा का अनुभव करे उस ज्ञानानुभूति उस अनुभूति के साथ सम्यग्दर्शन है तो अनुभूति से सम्यग्दर्शन जानने में आता है, इसके लिये उसे व्यवहार कहने में आया। सीधा सम्यग्दर्शन जानने में नहीं आता है। क्योंकि यह तो निर्विकल्प अवस्थारूप चीज है। यह सम्यग्दर्शन स्वयं को नहीं जानता, साथ में ज्ञान को नहीं जानता, परंतु ज्ञानानुभूति हुई उस ज्ञान में जानने में आया कि यह समकित है और उसका विषय यह त्रिकाली है यह अनुभूति से जानने में आया।*** समझ में आया ? समझ में आया ? आहाहा ! यहाँ तो अनुभूति की पर्याय को भेद करके कहना यह भी व्यवहार है, परंतु वह व्यवहार अनुभूति के समय है द्रव्य को, यह द्रव्य की अनुभूति, यह द्रव्य ! समझ में आया ? परंतु यहाँ तो ज्ञान से बात चली है क्योंकि जानने की वस्तु तो यह है, सम्यग्दर्शन, चारित्र आनंद कोई (कुछ) जानता नहीं, है इतना, यह है परंतु जाने, ज्ञान तब ज्ञान की प्रधानता से कथन किया है यहाँ। आहा ! समझ में आया ?

इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कहनेवाला जो व्यवहार यह उससे भी परमार्थ ही कहा जाता है। आत्मा ही कहने में आया है। आहा ! ज्ञान..... सो आत्मा, ज्ञान..... सो राग - ऐसा न कहा। ज्ञान सो शरीर (- ऐसा न कहा) ज्ञान सो आत्मा। ***राग का ज्ञान हुआ परंतु ज्ञान हुआ सो ज्ञान सो राग- ऐसा नहीं। राग का ज्ञान हुआ। यह तो स्वपरप्रकाशक शक्ति के कारण, फिर भी यहाँ ज्ञान सो आत्मा।*** समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें है। बारह गाथायें पूरे समयसार की पीठिका है। मूल-मूल अर्थात एक-एक गाथा में एक-एक बात गजब गंभीरता ! अंत न आये ऐसी चीज है। आहाहा !

शरीर वाणी मन तो जड़ है और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का परमात्मा के स्मरण आदि का भाव यह राग है, उसमें तो ज्ञान है नहीं। जब उसमें ज्ञान है नहीं तब राग सो आत्मा - ऐसा नहीं होता, परंतु राग का ज्ञान हुआ और स्वयं का ज्ञान हुआ यह ज्ञान सो आत्मा, तो व्यवहार ने भी निश्चय को बताया परमार्थ को, व्यवहार ने व्यवहार को बताया है - ऐसा नहीं। आहाहा ! छोटा भाई ! - ऐसा सूक्ष्म है और जो श्रुतज्ञान से केवलशुद्धात्मा को जाने यह श्रुतकेवली हैं। इसप्रकार है। आ गया न ! इससे भिन्न कुछ नहीं कहा जाता।

और जो श्रुत से केवल शुद्धात्मा को जानते हैं। भावश्रुतज्ञान से जो सीधा आत्मा को जानता है यह श्रुतकेवली है। यह परमार्थ हुआ। इसप्रकार परमार्थ का प्रतिपादन करना अशक्य होने से... अकेला परमार्थ का प्रतिपादन... यह आत्मा, यह आत्मा - ऐसा कहने से समझ सकें नहीं, असंभव है, तब इतना भेद करके कहा। यह `ज्ञान सो आत्मा' इतना व्यवहार कह कर बताया। यह आत्मा, आत्मा कहें परंतु यह आत्मा क्या ? तब परमार्थ आत्मा को कहना अशक्य है, हाँ। परमार्थ का प्रतिपादन करना-कहना अशक्य होने से **`जो सर्व श्रुत को जानते हैं वह श्रुतकेवली'** आहाहा ! - ऐसा व्यवहार... जो ज्ञान स्व और पर को जाने यह ज्ञान, श्रुतकेवली को जानते हैं, सर्वश्रुतज्ञान को जानते हैं, वे श्रुतकेवली है यह व्यवहार कहा। **`- ऐसा व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादकत्व से अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है।'** व्यवहार है यह बात स्थापित करते हैं। परंतु व्यवहार बताता है निश्चय को। आहाहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बाते है - व्यवहार है, व्यवहार स्थापित करते है, ***व्यवहार (का) अस्तित्व है परंतु वह व्यवहार बताते तो है परमार्थ को, ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद करके बताया आत्मा।*** ज्ञान सो ज्ञान, ज्ञान सो ज्ञान, यह तो भेद हो गया। ज्ञान सो आत्मा आहाहा !

ऐसा भेद करके व्यवहार ने भी परमार्थ को बताया... प्रवीणभाई ! यह व्यवहार परमार्थ के कथन के कारण अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है। देखो ! उसमें

पहले यह आया था। आया था न (गाथा) आठ में ? व्यवहार को परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश दिया जाता है, गाथा में - ऐसा आया है। देखो, गाथा इसलिये व्यवहारनय स्थापित करने योग्य है। आठवीं गाथा में, टीका का आखरी शब्द इसलिये व्यवहारनय स्थापित करने योग्य है। हाँ ! आठवीं गाथा की टीका का आखरी शब्द, टीका लिया, भावार्थ का नहीं। भावार्थ के ऊपर !

व्यवहारनय स्थापित करने योग्य है। है - ऐसा सिद्ध करना है किन्तु व्यवहार... है ? ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं हो जाना चाहिए, इस वचन से व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नहीं है। व्यवहार है - ऐसा स्थापित करने लायक है, परंतु व्यवहार अनुसरण करने लायक नहीं। अनुसरण करने लायक नहीं, अनुसरण करने लायक वस्तु (आत्मद्रव्य) आहाहा ! इसमें सभी अंजान लगता। लगे अंजान देश में आये हों, हाँ ! (श्रोता :- भगवान के देश में जानेवाले है) परमात्म स्वरूप अंदर... आहाहा ! यह ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद हुआ इसलिये ज्ञान को व्यवहार कहा। परंतु वह व्यवहार क्या बताये ? आत्मा को, परमार्थ को बताये... व्यवहार ने राग को और शरीर को बताया नहीं। आहाहाहा !

बारहवीं गाथा में आयेगा कि जिसको अपने स्वरूप की अनुभव दृष्टि प्रतीति हुई, अनुभव करके प्रतीति हुई अपने आत्मा की, उसने तो निश्चय का आश्रय लिया, अब उसकी पर्याय में अपूर्णता अशुद्धता अल्प है, अशुद्धता भी है। इसको क्या कहना ? कि वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। व्यवहार अपना माना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा नहीं। यह आगे आयेगा बारहवीं (गाथा में)। चारों ओर से बात वहाँ ली, कहा कि राग और अल्पज्ञ जाना हुआ प्रयोजनवान है, इतना भी यहाँ यह कहा कि जो अल्पज्ञ अवस्था, स्व और पर को जाने वह ज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध करते हैं इसलिये उसको व्यवहार कहा जाता है। यह ज्ञान राग को जाने, जाने इसलिये ज्ञान राग के साथ संबंध रखता है... पर को जाने इसलिये पर के साथ संबंध रखते है - ऐसा नहीं। आहाहाहाहा ! गजब शैली है !!

समयसार की एक-एक गाथा भरतक्षेत्र में तो अभी इसके अलावा कोई दूसरी चीज नहीं ऊंची। आहाहा ! परंतु इसके लिये बहुत पुरुषार्थ... स्वभाव को समझने के लिये बहुत निवृत्ति चाहिए। आहाहा ! एक L. L. B. और M. A. पढ़ने के लिये भी समय गंवाता न ? पाँच-दश वर्ष, धूल के लिये। आहाहा ! तब यह तो प्रभु जिससे जन्म-मरण रहित होना (है) और जन्म-मरण जिसमें है नहीं, ऐसी चीज समझने में कौन-सी विधि व्यवहार और कौन-सी विधि निश्चय, यह उसको समझना चाहिए।

बड़ा झगड़ा यह। देखो यहाँ उसमें आया था न कि व्यवहार स्थापित करने

योग्य है। आठवीं (गाथा) में यहाँ भी यही कहा है। यह यहाँ व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादन करते (है) अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करते हैं - ऐसा लिया। व्यवहार है - ऐसा व्यवहारनय स्थापित करता है परंतु वह व्यवहार बताता है - ऐसा व्यवहारनय स्थापित करता है परंतु वह व्यवहार बताता है निश्चय को आहाहा ! ज्ञान की पर्याय है, यह व्यवहार है तब व्यवहार स्थापित करना योग्य है। कारण कि व्यवहार है, उसका विषय भी है, परंतु व्यवहार के विषय को व्यवहार कहा वह तो आत्मा का ज्ञान कराने को कहा, उसीका ज्ञान कराने को कहा इतना नहीं। आहाहाहा ! व्यवहार ज्ञान को जानता है, व्यवहार ज्ञान, रागादिक को परंतु यह ज्ञान आत्मा को जानता है यह निश्चय और यह ज्ञान राग को जानता है यह व्यवहार, परंतु राग को जानता है फिर भी ज्ञान राग का हुआ नहीं। राग का ज्ञान हुआ तो (क्या) ज्ञान राग का हुआ ? राग है तब क्या उसके कारण से यहाँ ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं। समझ में आया ?

(श्रोता :- आप रोज नई-नई बात करते हैं - ऐसा वक्ता ऐसी ही (कला होना चाहिए) - ऐसा है भैयाजी ! आहाहा ! तीन लोक का नाथ, सर्वज्ञ की वाणी यह है, भाई क्या कहें। आहाहा ! परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव उनसे सुनी हुई वाणी, संत शास्त्र रचकर बताते हैं। आहाहा !

यह अंदर में थोड़ा जाय (तो) ख्याल आये, तब उसको उसकी महिमा ख्याल आती है। आहाहा ! - ऐसा व्यवहार परमार्थ को, व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादकत्व होने से। व्यवहार व्यवहार को बताने के लिये नहीं। आहाहाहा ! ज्ञान... यह व्यवहार, त्रिकाली वस्तु वह निश्चय, यह ज्ञान बताता है त्रिकाली को इसलिये व्यवहार स्थापन करने योग्य है, व्यवहार आता है, व्यवहार है परंतु व्यवहार आश्रय करने लायक है - ऐसा नहीं, आश्रय करने लायक व्यवहार कहते हैं कि त्रिकाली का आश्रय कर ! यह वस्तु अखण्डानंद प्रभु, **प्रतिपादकत्व से अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है। लो उसका भावार्थ आयेगा लो।** (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ३६ गाथा-९-१० ता. १७-७-७८ सोमवार अषाढ सुदी-१२ सं.२५०४

भावार्थ :- यह शास्त्रज्ञान से अर्थात अंतर के ज्ञान से भावज्ञान, श्रुतज्ञान उससे अभेदरूप ज्ञायक मात्र शुद्धात्मा को जाने... ***वर्तमान समय में अभेद चीज है। जिसमें पर्याय का भी भेद नहीं, जिसमें वर्तमान में जिसका त्रिकालीरूप ध्रुव है और जो ज्ञान सीधा भगवान आत्मा को जाने वह निश्चय श्रुतकेवली है।*** उसने जाना अवश्य जो जानना था वह जाना। आहाहा ! जो अंतरज्ञान से भाव (श्रुत) ज्ञान से, शास्त्र ज्ञान तो एक निमित्त से कथन है परन्तु इस शास्त्र ज्ञान (के निमित्त) से स्व के आश्रय से उत्पन्न हुआ - ऐसा जो ज्ञान यह सीधे ज्ञाता को जानता (है) अभेद को... एक समय में अभेद चीज है, उसको जो अनुभवे, उसको जाने, यह श्रुतकेवली है। `यह तो वास्तव में परमार्थ है'। समझ में आता है कुछ ? ज्ञानानंद प्रभु शुद्ध विज्ञानघन वर्तमान में पूर्ण स्वरूप, ऐसी चीज को जिसने अंदर में ज्ञान से जाना, उसे जाननेवाला जो ज्ञान है, उसने जिस द्रव्य को जाना, वस्तु को जाना वह ज्ञान परमार्थ से निश्चय है, यह सत्यज्ञान है, अथवा सत्यश्रुतकेवली है। आहाहा !

पुनश्च जो सर्व शास्त्र ज्ञान को जाने, दोनों जगह - ऐसा लिया, मूल में तो ज्ञान को जो जाने... ज्ञान को जो जाने, उसको भी ज्ञान द्वारा जानने से आत्मा को ही जाना, कारण कि ज्ञान को आत्मा के साथ संबंध है, और जो ज्ञान को जाने वह आत्मा को जाने - ऐसा, जो भेद से कथन उसको व्यवहार श्रुतकेवली कहा जाता (है)। ज्ञान को हो ! जो ज्ञान वस्तु को जाने उस ज्ञान को व्यवहार श्रुत कहा जाता है। क्योंकि ज्ञान सो आत्मा - ऐसा ज्ञान को भेद से बताया इसलिये उस ज्ञान को व्यवहार श्रुत कहा जाता है। अरे ! ऐसी बातें ! ज्ञान सो आत्मा है **`इसलिये ज्ञान ज्ञानी के भेद को कहनेवाला जो व्यवहार'** `ज्ञान सो आत्मा' यह जाननेवाला, जाननेवाला, जाननेवाला ज्ञान वह आत्मा, इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी का भेद कहनेवाला व्यवहार, उसने भी परमार्थ ही कहा।

यह ज्ञान सो आत्मा इसप्रकार परमार्थ तो आत्मा को ही उसने कहा। जो सीधा ज्ञान से आत्मा को जाने यह तो एकदम निश्चय, परंतु ज्ञान सो आत्मा इसप्रकार ज्ञान ने भी आत्मा को बताया इसलिये उस ज्ञान को भी व्यवहार श्रुतकेवली कहने में आता (है) (कारण कि) उसको भेद से समझाया कि यह ज्ञान सो आत्मा समझ में आया कुछ ? ज्ञान और ज्ञानी का भेद कहनेवाला, ज्ञानी अर्थात आत्मा त्रिकाली

और ज्ञान अर्थात वर्तमान जानपना उसको भी ज्ञान ज्ञानी का भेद करके व्यवहार, उसको भी परमार्थ ही कहा, उसने कहा तो परमार्थ जो त्रिकाली ज्ञान है वह यह ज्ञान है, त्रिकाली वस्तु है उसको यह ज्ञान दिखता है, यह ज्ञान त्रिकाली को दिखाता है, इसलिये ज्ञान ने परमार्थ को ही बताया। भेद किया इतना, इसमें (इसलिये) व्यवहार कहने में आया, समझ में आया ? ऐसी सूक्ष्मबात !

वस्तु है, वस्तु एक समय में अभेद एकरूप चीज उसको वर्तमान ज्ञान से जानकर अनुभव करे यह तो परमार्थ ज्ञान है अर्थात श्रुतकेवली है। परंतु जो ज्ञान उसको बताया वह ज्ञान इस ज्ञान ने भी बताया उस वस्तु को, इसलिये उस ज्ञान को भी व्यवहार श्रुतकेवली कहा जाता है। कारण कि जो ज्ञान है वह आत्मा - ऐसा इसने कहा। उसने कहा तो परमार्थ को परंतु भेद डालकर कहा इसलिये उस ज्ञान को व्यवहार कहा जाता है।

(श्रोता :- इसप्रकार प्रमाणका विषय कहा जाता ?)

यह बात यहाँ नहीं यह तो ज्ञान ने भेद डालकर ज्ञानी को बताया इतनी बात। प्रमाण की यहाँ बात है नहीं। जो ज्ञान, भावज्ञान जो हुआ, वह हुआ है तो त्रिकाली ज्ञायक आत्मा के अवलम्बन से परंतु उस ज्ञान ने त्रिकाली आत्मा का ही अनुभव किया, उसका नाम भावश्रुतज्ञान केवली। भावश्रुत द्वारा वस्तु को अनुभवा इसलिये परमार्थ से वह निश्चय है और जिस ज्ञानने यह ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद करके ज्ञान को कहा, कहा तो ज्ञान को, परमात्मा ने भी, ज्ञान सो आत्मा, इतना भेद डाला इसलिये इस ज्ञान को व्यवहार कहा जाता है, और उस व्यवहार ने भी बताया तो आत्मा कि यह, ज्ञान सो आत्मा इसप्रकार। आहाहा ! - ऐसा मार्ग है बापा ! बहुत सूक्ष्ममार्ग प्रभु का। आहाहा ! इसके लिए बहुत धैर्यवान होना पड़े।

और कुछ नहीं कहा। व्यवहारने भी परमार्थ कहा। ज्ञान यह आत्मा - ऐसा कहा न ! यह इसने व्यवहार ने भी परमार्थ को कहा और कुछ कहा नहीं। ज्ञान सो राग, ज्ञान सो शरीर, ज्ञान वह भगवान को जानता है - ऐसा कहीं ज्ञान ने कहा नहीं। ज्ञान वह भगवान को जानता है केवली को जानता है - ऐसा इसने कहा नहीं, यह ज्ञान वह आत्मा को दिखाता है, ज्ञान सो आत्मा है इसप्रकार - ऐसा भेद करके कहा तो परमार्थ को और कुछ कहा नहीं। अन्य वस्तु को उसमें बताई नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यह तो दो दिन से चलता है परसों भी चला था, कल लिया था हमने बाबूलालजी ने विस्तार करने को कहा था न, कल लिया था यह फिरसे, यह तो भावार्थ है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है। बापू ! अनंतकाल से मार्ग को जाना नहीं और वर्तमान

में तो गुटाला - ऐसा उठा है कि कहीं वस्तु को पहुंच सके कैसे, इस बात का ठिकाना नहीं मिलता। यह तो व्रत करो और तप करो और उपवास करो एवं भक्ति करो और यात्रा करो जो पर तरफ के लक्ष्यवाले भाव करो यह तो विकार राग है। हाँ ! यह बात। आहाहा ! यह तो प्रभु स्वयं सर्वोत्कृष्ट है। कल दोपहर को नहीं आया, यह सर्वोत्कृष्ट यह परमात्मा कहलाता है। यह तुम स्वयं सर्वोत्कृष्ट प्रभु हो वस्तु अंदर हाँ ! उसे जो ज्ञान सीधा अनुभव करे, उसका नाम परमार्थ और यह ज्ञान सो आत्मा (भेद करके) इस प्रकार जो ज्ञान जानता है व्यवहार कहकर परंतु व्यवहार ने बताया तो आत्मा को, परंतु इतना भेद किया कि यह `ज्ञान और आत्मा' ज्ञान आत्मा को सीधा अनुभवे यह तो निश्चय परमार्थ परंतु ज्ञान सो आत्मा - ऐसा व्यवहार कहकर भी बताया आत्मा, इतना व्यवहार से `ज्ञान सो आत्मा' को बताया है ज्ञान ने पर को बताया - ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा ! और कुछ नहीं कहा। देखा ?

क्या कहा यह ? कि यह ज्ञान जानता है न, वर्तमान जानने की दशा वह आत्मा, यह ज्ञान सो आत्मा, ज्ञान सो यह राग, और ज्ञान सो पर को जाने वह ज्ञान - ऐसा कहीं ज्ञान को कहा नहीं। ज्ञान पर को जाने वह ज्ञान - ऐसा (कहीं कहा नहीं) यह ज्ञान इसे जाने, ज्ञान सो यह आत्मा है। इसे जाने उसका नाम ज्ञान - ऐसा ज्ञान ने भेद करके कहा इसलिये उसको व्यवहार कहा और उस व्यवहार ने भी बताया है आत्मा को। आहाहाहा ! कितना याद रखना इसमें ? सभी बातें नई है। बापू ! अंतर में मार्ग - ऐसा है।

तथा परमार्थ का अन्य विषय तो कथंचित वचनगोचर भी नहीं, क्या कहते हैं ? आत्मा का अनुभव आत्मा-आत्मा उसका कहना उसे परमार्थ को किस तरह समझायें, भेद करके समझायें कि ज्ञान सो आत्मा। सीधा अभेद आत्मा अकेला समझा सकें - ऐसा नहीं। आहाहा ! `परमार्थ का विषय तो कथंचित वचनगोचर भी नहीं' त्रिकाली वस्तु। इसलिये व्यवहारनय आत्मा को प्रगटरूप में कहता है - ऐसा जानना। यह `ज्ञान सो आत्मा' इसप्रकार व्यवहारनय आत्मा को ज्ञान सहित ज्ञान से तादात्म्य संबंध इसके साथ है - ऐसा व्यवहार बताता है। यह गाथा पूरी हुई। कहो हीराभाई ! सूक्ष्म तो आया बहुत। आहाहा !

राग और पर उसकी यहाँ बात ही नहीं। यहाँ तो ज्ञान का जो भाव है अंदर (है) राग बिना का ज्ञान, यह ज्ञान सीधा आत्मा का अनुभव करे, यह तो निश्चय, सत्य परमार्थ वस्तु है, परंतु जो ज्ञान - ऐसा बताये कि यह `ज्ञान सो आत्मा' ऐसे भेद से बताये उसे व्यवहार कहा जाता है। उस ज्ञान को व्यवहार श्रुतकेवली कहने

में आता है और उस व्यवहार श्रुतज्ञान ने भी यहाँ क्या कहा ? कि `ज्ञान सो यह आत्मा' इतना भेद करके भी उसने परमार्थ को बताया इसलिये उसे व्यवहार कहा जाता है। कहो समझ में आता है कुछ ? आहाहा ! - ऐसा है।

अब गाथा ऊँची आई जैनदर्शन का प्राण। बराबर ठीक है आज यहाँ आज आया है। भाई ! बाबूलालजी ! यह गाथा जैनदर्शन का प्राण है ११ वीं गाथा। आहाहा ! त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर, यही परमेश्वर है न उन्होंने ही तीनकाल, तीनलोक देखा। दूसरा कोई है ही नहीं। यह परमेश्वर का जो शासन है जैनशासन जैन (अर्थात) शिक्षा जैनों का मार्ग उनका यह परमार्थ है यह गाथा जैनदर्शन का प्राण है। कि जिस प्राण से जैनदर्शन जिंदा और टिके, जैसे यह प्राण हों तो शरीर टिकता। इसीप्रकार यह प्राण हो तो आत्मा टिके, जैनदर्शन का प्राण, (पं.) कैलाशचन्द्रजी ने भी लिखा है एक बार तो इस गाथा के लिये - ऐसा कि यह गाथा तो जैनदर्शन का प्राण है, कैलाशचन्द्रजी है न, उन्होंने लिखा था एक बार। यहा तो अलौकिक बातें है।

गाथा - ११

कुतो व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्य इति चेत् -

ववहारो भूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।११।।

व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो दर्शितस्तु शुद्धनयः।
भूतार्थमाश्रितः खलु सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः।।११।।

अब, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि - पहले यह कहा था कि व्यवहार को अंगीकार नहीं करना चाहिये, किन्तु यदि वह परमार्थ को कहनेवाला है तो ऐसे व्यवहार को क्यों अंगीकार न किया जाये ? इसके उत्तररूप में गाथासूत्र कहते हैं :-

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सदृष्टि निश्चय होय है।।११।।

गाथार्थ :- [व्यवहारः] व्यवहारनय [अभूतार्थः] अभूतार्थ है [तु] और [शुद्धनयः] शुद्धनय [भूतार्थः] भूतार्थ है - ऐसा [दर्शितः] ऋषीश्वरों ने बताया है; [जीवः] जो जीव [भूतार्थ] भूतार्थ का [आश्रितः] आश्रय लेता है वह जीव [खलु] निश्चय से (वास्तव में) [सम्यग्दृष्टिः] सम्यग्दृष्टि [भवति] है।

टीका :- व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है, इसलिये वह अविद्यमान, असत्य, अभूत, अर्थ को प्रगट करता है; शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से विद्यमान, सत्य, भूत अर्थ को प्रगट करता है। यह बात दृष्टांत से बतलाते हैं :- जैसे प्रबल कीचड़ के मिलने से जिसका सहज एक निर्मलभाव तिरोभूत (आच्छादित) हो गया है, ऐसे जल का अनुभव करनेवाले पुरुष-जल और कीचड़ का विवेक न करनेवाले (दोनों के भेद को न समझनेवाले) - बहुत से तो उस जल को मलिन ही अनुभवते हैं, किन्तु कितने ही अपने हाथ से डाले हुवे कतकफल[१] के पड़ने मात्र से उत्पन्न जल-कादव के विवेकता से, अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये सहज एक निर्मलभावपने से उस

---

१ कतकफल = निर्मली; (एक औषधि जिससे कीचड़ नीचे बैठ जाता है)।

जल को निर्मल ही अनुभव करते हैं; इसीप्रकार प्रबल कर्मों के मिलने से जिसका सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है, ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले पुरुष-आत्मा और कर्म का विवेक (भेद) न करनेवाले, व्यवहार से विमोहित हृदयवाले तो, उसे (आत्मा को) जिसमें भावों की विश्वरूपता (अनेकरूपता) प्रगट है - ऐसा अनुभव करते हैं; किन्तु भूतार्थदर्शी (शुद्धनय को देखनेवाले) अपनी बुद्धि से डाले हुवे शुद्धनय के अनुसार बोध होनेमात्र से उत्पन्न आत्मकर्म के विवेकता से, अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये सहज एक ज्ञायकभावत्व के कारण उसे (आत्मा को) जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है - ऐसा अनुभव करते हैं। यहाँ, शुद्धनय कतकफल के स्थानपर है, इसलिये जो शुद्धनय का आश्रय लेते हैं वे ही सम्यक् अवलोकन करने से सम्यग्दृष्टि हैं, दूसरे (जो अशुद्धनय का सर्वथा आश्रय लेते हैं वे) सम्यग्दृष्टि नहीं हैं। इसलिये कर्मों से भिन्न आत्मा के देखनेवालों को व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नहीं है।

भावार्थ :- यहाँ व्यवहारनय को अभूतार्थ, और शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। जिसका विषय विद्यमान न हो, असत्यार्थ हो उसे अभूतार्थ कहते हैं। व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय यह है कि शुद्धनय का विषय अभेद एकाकाररूप नित्य द्रव्य है, उसकी दृष्टि में भेद दिखाई नहीं देता; इसलिये उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान, असत्यार्थ ही कहना चाहिए। - ऐसा न समझना चाहिये कि भेदरूप कोई वस्तु ही नहीं है। यदि - ऐसा माना जाये तो जैसे वेदान्त मतवाले भेदरूप अनित्य को देखकर अवस्तु मायास्वरूप कहते हैं और सर्वव्यापक एक अभेद नित्य शुद्ध ब्रह्म को वस्तु कहते हैं वैसा सिद्ध हो और उससे सर्वथा एकान्त शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का ही प्रसंग आये, इसलिये यहाँ - ऐसा समझना चाहिये कि जिनवाणी स्याद्वादरूप है, वह प्रयोजनवश नय को मुख्य-गौण करके कहती है। प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है और इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन (सहायक) जानकर बहुत किया है; किन्तु उसका फल संसार ही है। शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं और उसका उपदेश भी विरल है - वह कहीं कहीं पाया जाता है। इसलिये उपकारी श्रीगुरुने शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है कि - 'शुद्धनय भूतार्थ है, सत्यार्थ है; इसका आश्रय लेने से सम्यक्दृष्टि हो सकता है; इसे जाने बिना जबतक जीव व्यवहार में मग्न है तबतक आत्मा का ज्ञान श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नहीं हो सकता।' - ऐसा आशय समझना चाहिये।

गाथा - ११ पर प्रवचन

आहाहा ! अब पुनः - ऐसा प्रश्न उठता है कि पहले - ऐसा कहा था कि व्यवहार नय को अंगीकार नहीं करना। आठमी गाथा में - ऐसा कहा था, कि व्यवहार का अनुसरण न करना और तुम कहते हो कि व्यवहार यह परमार्थ को बताता है तब यह व्यवहार क्यों अंगीकार नहीं करना ? वह परमार्थ का कहनेवाला है तब ऐसे व्यवहार को क्यों अंगीकार नहीं करना ?

क्या प्रश्न है ? प्रश्न का स्वरूप क्या है ? प्रश्न की रीति - स्वरूप - स्थिति क्या है ? प्रश्न कर्त्ता का यह प्रश्न है कि तुमने पहले आठवीं गाथा में - ऐसा कहा कि दर्शनज्ञानचारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा व्यवहार कहा, और यह व्यवहार अनुसरण करने लायक नहीं, कहनेवाले को और सुननेवाले को - ऐसा आठवीं गाथा में तो तुमने कहा, अतः वह व्यवहार अनुसरण करने लायक नहीं और तुम कहते हो कि व्यवहार परमार्थ को कहनेवाला है, यह व्यवहार अंतर के परमार्थ को बतानेवाला है, तब यह व्यवहार अंगीकार क्यों नहीं करना ? प्रश्न समझ में आता है कुछ ? उसके प्रश्न का रूप यह है।

जब तुमने - ऐसा कहा कि भगवान आत्मा... यह आत्मा कहने पर यह नहीं समझा तब तुम्हें भेद डालकर समझना पड़ा, कि आत्मा अर्थात क्या ? कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को हमेशा प्राप्त हो, दर्शन-ज्ञान-चारित्र से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा नहीं परंतु जो आत्मा है वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है - ऐसा भेद से उसने समझाया... फिर भी बाद में आपने - ऐसा कहा कि ऐसे भेद से हमने समझाया है, हमको भी विकल्प में यह समझाने का भाव आया और तुम्हें भी कहते हैं, फिर भी इस भेद का अनुसरण करने लायक नहीं। आहाहा ! भेद आदरने लायक नहीं। अंदर अभेद त्रिकाली वस्तु है वह आदरणीय है। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

भाषा तो सरल है, परंतु भाई भाव जो कुछ हो उसे नीचे किस प्रकार करना ? आहाहा ! अंदर चैतन्य रत्नाकर भगवान, अनंत अनंत गुण मणियों की रत्नमाला से भरा हुआ भगवान ! आहा ! अनंत अनंत गुणों की खान, बापू ! आत्मा अर्थात क्या ? आहाहा ! सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा अंदर वस्तु, उसे आपने भेद करके समझाया कि जो आत्मा है वह ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त होती है। राग को प्राप्त हो और पर को प्राप्त हो - ऐसा नहीं कहा। मात्र इतना तुम्हें भेद समझाना पड़ा।

यह आत्मा श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता को प्राप्त हो सो आत्मा। तब आपने व्यवहार

से तो समझाया, भेद करके तो समझाया, तब व्यवहार तो आया। पुनः तुम कहते हो कि व्यवहार अंगीकार करना नहीं। व्यवहार आये बिना रहे नहीं और व्यवहार अंगीकार करने लायक नहीं। यह क्या तुम कहते हो ? समझ में आया ? आहाहाहा !

ऐसी बातें यह तो जैनदर्शन के मंत्र है। आहाहा ! अब पुनः - ऐसा प्रश्न उठता है कि पहले - ऐसा कहा था कि व्यवहार को अंगीकार नहीं करना, पुनश्च - ऐसा तुमने कहा कि व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादकपने से स्वयं को दृढ़ता से स्थापित करता है, आखरी पंक्ति आयी न ? टीका की आखरी पंक्ति। टीका की आखरी पंक्ति में है आहा ! वह व्यवहार परमार्थ का कहनेवाला है तब ऐसे व्यवहार को क्यों अंगीकार न करना ? - ऐसा समझने के लिए, उसे मेल नहीं खाता परन्तु वह इतना तो समझ गया है कि व्यवहार अंगीकार नहीं करना - ऐसा आपने कहा और फिर कहा कि व्यवहार परमार्थ को कहनेवाला है, वह परमार्थ को अर्थात् त्रिकाली आत्मा को बताता है तो ऐसा व्यवहार अंगीकार क्यों न करना ? - ऐसा उसे प्रश्न अंदर से उठा उसे यह उत्तर देने में आता है। समझ में आया ?

ऐसी स्थिति जिसके दिमाग में ज्ञानमें से ख्याल में उठी है कि ओहो ! यह तो कहते हैं कि ज्ञान वह आत्मा और दर्शन (ज्ञान) चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा तो व्यवहार है। इस व्यवहार ने निश्चय को बताया है, और यह व्यवहार आये बिना रहता (नहीं) व्यवहार स्थापित करने योग्य है, व्यवहार है - ऐसा स्थापने योग्य है, फिर भी यह व्यवहार आदरणीय नहीं। अंगीकार करने योग्य नहीं। उसका उत्तर क्या है ? समझ में आया ?

व्यवहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्दणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।११।।

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सुदृष्टि निश्चय होय है।।११।।

अभी तो सम्यग्दर्शन कैसे हो, इसकी बात है - चौथा गुणस्थान... आहाहाहा ! गुणस्थान की पर्याय द्रव्य में नहीं। गुणस्थान का भेद वस्तु में नहीं। परंतु वस्तु के आश्रय से होनेवाली पर्याय सम्यग्दर्शन यह क्या चीज है ? व्यवहार अंगीकार नहीं करना तुमने कहा, तब व्यवहार तो आये बिना रहता नहीं व्यवहार से तो समझाया है इसको (परमार्थ को), तब उसका उत्तर क्या है - उसका समाधान क्या है ?

अब गाथा (का) अर्थ पहले लें :- `**व्यवहारनय अभूतार्थ है**' सामान्य बात कही सभी व्यवहार - ऐसी भाषा यहाँ नहीं ली, यह टीका में लेंगें। व्यवहारनय अभूतार्थ

असत्यार्थ है। असत्यार्थ अर्थात् झूठा है। व्यवहारनय असत्यार्थ अभूतार्थ है, विद्यमान पदार्थ नहीं, यह तो असत्य है, और शुद्धनय भूतार्थ है। शुद्धनय स्वयं भूतार्थ है हाँ ! शुद्धनय का विषय भूतार्थ है यह बाद में कहेंगे, परंतु पहले तो यह कहते हैं कि ***त्रिकाली भूतार्थ विद्यमान पदार्थ ज्ञायकभाव स्वभावभाव अभेद भाव यह शुद्धनय है। यह शुद्धनय है, शुद्धनय का विषय है, उसको यहाँ शुद्धनय कहा है,*** बहुत कठिन गाथा है बापू !

क्या कहा यह ? कि व्यवहार मात्र बाद में कहेंगे। अभी तो व्यवहार असत्य है और शुद्धनय वह सत्य है, तब शुद्धनय है यह तो ज्ञान की पर्याय है। इसका विषय है यह त्रिकाली भूतार्थ (विद्यमान) है, परंतु यहाँ तो इस भूतार्थ को ही शुद्धनय कहा। नय और नय का विषय के विषय का भेद भी निकाल दिया पहले, आहाहा ! समझ में आया ? अरें ! ऐसी बातें।

क्या कहा ? शुद्धनय भूतार्थ, शुद्धनय भूतार्थ है। नय तो ज्ञान का अंश है। ज्ञान का अंश है, यह तो पर्याय है, चाहे निश्चय का, निश्चय ज्ञान है परंतु है तो यह पर्याय-ज्ञान का अंश है। उसे तुम भूतार्थ कहते हो ? कि हाँ। क्योंकि उसका विषय भूतार्थ है इसलिये हमने शुद्धनय को भूतार्थ कहा, विषय और विषयी का भेद भी यहाँ निकाल दिया हैं। शुद्धनय है यह विषय करनेवाला ध्येय को पकड़नेवाला, ज्ञेय को जाननेवाला - ऐसा जो भेद है वह यहाँ निकाल दिया है कि शुद्धनय स्वयं भूतार्थ है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं।

शुद्धनय भूतार्थ है। आहाहा ! एकतरह कहना कि निश्चयनय को शुद्धनय से जो में आत्मा हूँ भूतार्थ, ऐसा विकल्प भी छोड़ने जैसा है। (गाथा) १४२ मैं शुद्ध हूँ। पूर्ण हूँ, भूतार्थ हूँ, देखो न - ऐसा जो शुद्धनय का विकल्प उठा है यह वास्तव में शुद्धनय नहीं। आहाहा !

इस विकल्प का निषेध करके अकेला चैतन्य भगवान दृष्टि में आये, उसे हम शुद्धनय कहते हैं, ये (जो) शुद्धनय का विषय है उसे ही हम शुद्धनय कहते हैं। आहाहाहा ! ऐसी बात है। ***वास्तव में तो सम्यग्दृष्टि का विषय ही ध्रुव है, समझ में आया कुछ ? परंतु यहाँ तो कहते हैं कि जो त्रिकाली है उसे ही हम सम्यग्दर्शन और शुद्धनय कहते हैं। आहाहा ! वस्तु जो है आहाहा ! यही शुद्धनय है। त्रिकाल चिदानंदप्रभु अभेद, जिसमें राग तो नहीं, परंतु पर्याय का भेद भी नहीं, अभेद चीज वस्तु एकरूप उसे हम शुद्धनय कहते हैं। पहले अभेदपना स्थापा।*** अब इसप्रकार ऋषीश्वरों ने दर्शाया है।

जो जीव, फिर पुनः कहते हैं देखो, 'जो जीव भूतार्थ का आश्रय करते हैं' वहाँ

भेद हुआ। वह तो भूतार्थ स्वयं त्रिकाली वस्तु उसे शुद्धनय कहा था, उसे निश्चयनय ही कहा था। अब कहते हैं कि भूतार्थ जो त्रिकाली प्रभु है, सत्यार्थ सत्य वस्तु है, त्रिकाली परमसत्य नित्यानंद प्रभु ध्रुव है, उसका जो आश्रय करे, उसका जो अवलम्बन लेता है, आश्रय करता है, वह जीव निश्चय से सम्यग्दृष्टि है। वह वास्तव में सम्यग्दृष्टि है। सम्यक् अर्थात सत्य दृष्टिवंत है। क्योंकि उसे पूर्ण सत्य को प्रतीति में लिया, पूरण सत्य का आश्रय किया, ***पूर्ण सत्य प्रभु एक समय में अभेद वस्तु का जिसने आश्रय किया। वह आश्रय करनेवाली दृष्टि को हम यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं।*** आहाहाहा ! समझ में आया ?

यह प्रश्न उठा था, वहाँ वड़वाद में खंभात के पास भाई थे और वहाँ सोमचन्द्रभाई कहे देखो ! `भूयत्थमस्सिदो' पर्याय आयी कि नहीं आश्रय करने में ? - ऐसा प्रश्न किया था। यह तेरहवीं साल में जब पहले निकले थे बोम्बे जाने, तेरह-तेरह इक्कीस वर्ष हो गये, यह प्रश्न वहाँ वड़वा में किया था। परंतु कहा भाई ***आश्रय करती है यह है तो पर्याय, परंतु पर्याय का विषय पर्याय नहीं समझ में आया ? यह पर्याय के आश्रय का विषय त्रिकाली भूतार्थ वस्तु है।*** आहाहा ! क्या कहा यह। कि जो आश्रय तो आया, तब पर्याय तो आई साथ में, परंतु आयी यह पर्याय ने आश्रय किया त्रिकाली चीज का जिसने आश्रय किया, है तो यह पर्याय ने भी आश्रय किया, परंतु आश्रय किया यह पर्याय, उसे सम्यग्दर्शन कहना परंतु इस पर्याय का विषय (ध्येय) पर्याय है - ऐसा नहीं। छोटाभाई ! ऐसी बातें है। आहाहा !

भगवान ! यह दिगम्बर दर्शन तो देखो ! आहाहा ! जैनदर्शन वास्तविक स्वरूप का परमार्थरूप। आहाहाहा !

सत्य साहेब, भगवान सत्य साहेब पूर्ण अभेद एकरूप वस्तु उसका जो आश्रय करे - उसका जो अवलम्बन ले उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। यह तो सरल भाषा है। मोहनलालजी ! आहाहा ! गुजराती में कहो कि हिन्दी में कहो। यह तो भाषा बिलकुल सरल है।

भूतार्थ त्रिकाल एकरूप रहनेवाली वस्तु वर्तमान में एकरूप त्रिकाल। आहाहा ! आहाहा ! भले यह भविष्य में रहेंगी, पहेले थी, परंतु यहाँ तो एकरूप वर्तमान में जो है त्रिकाल रहनेवाला सत्व, अभेद एकरूप सामान्यरूप-नित्यरूप-ध्रुवरूप अभेदरूप उसे पहले निश्चय शुद्धनय कहा था अब यहाँ कहते हैं कि जो दृष्टि और नय उसका आश्रय करे दृष्टि (इस) दृष्टि को उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। है सम्यग्दर्शन पर्याय, परंतु सम्यग्दर्शन को पर्याय का विषय (ध्येय) पर्याय नहीं कारण कि सम्यग्दर्शनादि चौदहगुणस्थान तो द्रव्य में है ही नहीं। आहाहा !

- ऐसा कैसे समझना इसमें ? कहो हिम्मतभाई ! इस लोहे के व्यापार में कहाँ इससे फुरसत मिलती ? फुरसत निकालनी पड़ेगी। आहाहा ! लोहा का व्यापार अर्थात राग का (व्यापार) राग ही है न ? लोहे का व्यापार। आहाहा !

भगवान सोने के समान, जिसमें जंग नहीं। आहाहा ! जंग जंग सोना में जंग नहीं होती प्रभु ! तीनलोक के नाथ को मैल नहीं होता - ऐसी यह वस्तु है अंदर। आहा ! यह पवित्रता का धाम है भगवान पूर्ण शुद्ध धाम... अपना आया था न दोपहर में तीर्थ... शुद्ध धाम, भगवान वह तीर्थ है। आहाहा ! जिसके आश्रय से तिरने का उपाय प्रगट होता, इसलिये यह वस्तु स्वयं तीर्थ है। आहाहा !

(श्रोता :- आत्मा तीर्थ है कि रत्नत्रय तीर्थ है) यहाँ तो वस्तु को ही तीर्थ कहा, वस्तु के आश्रय से फिर जो प्रगट होता वह रत्नत्रय उपाय है, परंतु उपाय जिससे प्रगटा यही वस्तु तीर्थ है, उसमें स्नान किया, यह द्रव्य में स्नान किया, तब सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र प्रगट हुआ। आहाहा ! यह भूतार्थ का आश्रय करता है वह जीव... निश्चय अर्थात सच्चा, परम सत्य का जिसने आश्रय लिया, परम टिकाऊ वस्तु जो त्रिकाली एकरूप टिकाऊ, टिकती चीज का जिसने आश्रय लिया, वह सम्यग्दृष्टि वह सत् दृष्टि।

त्रिकाली सत् का जिसने आश्रय लिया त्रिकाली सत्ता का, इसलिये वह दृष्टि भी सत्य दृष्टि उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा ! सम्यक् अर्थात सत्य दृष्टि उसे कहें जो परम सत्य प्रभु भूतार्थ सत्यार्थ वस्तु भूतार्थ कहो कि सत्यार्थ कहो सत्रूप कायम उसका जिसने आश्रय लिया उस दृष्टि को सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहाहा ! यह तो मूल वस्तु की बात है।

पेड़ बड़ा हो इमली का, कि उसके पत्ते और डालियाँ पत्ते तोड़े, परंतु जड़ सुरक्षित हो तो फिर पन्द्रह दिन में यह फूल जायेगा-फल जायेगा। परंतु जिसका मूल काटा, फिर यह पत्ते-फत्ते पन्द्रह दिन (में) यह सूख जायेंगे। इसप्रकार यहाँ तो जिसने मिथ्यात्व जो संसार का मूल उसे छेदा, किस प्रकार ? कि त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हुआ उसने संसार के मूल को काट डाला। समझ में आया ? अब थोड़ा राग-द्वेष अस्थिरता के पत्ते रहे, यह क्रम-क्रम से खिर जायेंगे। आहाहा ! जिसको मूल ही हाथ आया नहीं। आहाहा ! जिसको चीज ही हाथ आयी नहीं, उसे निर्मल पर्याय कहाँ से प्रगट हो ? आहाहा !

क्योंकि प्रभु चैतन्यवृक्ष है कलपवृक्ष आत्मा। आहाहा ! एक समय में पूर्णानंद का नाथ भूतार्थ सत्यार्थ सत्य सत् का पिण्ड अकेला, सत् सत् सत् इसके आश्रय से सत् दृष्टि होती है, उसके बिना किसी के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा !

वर्तमान पर्याय में ग्यारह अंग का ज्ञान हो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो, यह राग, उसके आश्रय से... यह सत्य नहीं कुछ आहाहाहा ! इसलिये उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता इसप्रकार यह सत् नहीं यह तो असत् है। पर्याय मात्र को यहाँ असत् कहा है गौण करके, स्पष्टीकरण आयेगा। आहाहाहा !

(श्रोता :- मिथ्यादृष्टि को देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, श्रद्धा हो तो ?) यह भी राग है, यह भी एकत्व बुद्धि है, यह राग से लाभ होता है यह बुद्धि, त्रिकाली के आश्रय से सम्यग्दर्शन होते ही यह बुद्धि छिद जाती है। भाव आता है अवश्य पर उससे लाभ होगा और यह हमारी चीज है उसका नाम तो मिथ्यात्व है। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का भाव यह भी राग है। पंचमहाव्रत का परिणाम यह भी राग है। इस राग के आश्रय से तो राग ही होगा। आहाहाहा ! यहाँ तो त्रिकाली के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। राग के आश्रय से सम्यग्दर्शन (होता नहीं) आहाहा ! और वह निश्चय सम्यग्दर्शन त्रिकाल सत्यार्थ सत्य सत् सत् सत् सत् परमपारिणामिक-ज्ञायकभावरूपी परमसत्य उसके आश्रय से सम्यक् होता है, उसके बाद उसको ***देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो - ऐसे विकल्प को भी व्यवहार समकित का आरोप आता है। यह व्यवहार समकित, समकित ही नहीं है, यह है तो राग, चारित्र की दोष(रूप) पर्याय देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, पंचमहाव्रत के परिणाम, शास्त्र तरफ का विकल्पवाला ज्ञान यह है तो राग, है तो राग समझ में आया ? आहाहा ! है तो राग, परंतु यहाँ निश्चय स्वभाव की दृष्टि जब हुई, तब उस राग पर व्यवहार समकित का आरोप करके व्यवहार समकित कहा, यह समकित है नहीं। परंतु इसका आरोप देकर निरुपण कथन किया है।*** कथन किया वस्तु ऐसी है नहीं, वस्तु तो एक ही त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन वही दर्शन है। देव-गुरु की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन जिसको यहाँ निश्चय हुआ हो उसे व्यवहार का आरोप देकर कथन किया है परंतु यह कहीं सम्यग्दर्शन नहीं। यह तो राग है। समझ में आया ?

(श्रोता :- शीघ्र समझ में आये - ऐसा नहीं, जल्दी समझ में आये - ऐसा नहीं)

यह हमने शेठ रहे लालचन्द्र ! पुराने व्यक्ति, नहीं समझ में आये - ऐसा नहीं, वह तो प्रेम से आये हैं न प्रेम से सुनने। क्यों शेठ ? समझ में आये - ऐसा है न धीरे-धीरे। आहाहा ! भगवान आत्मा है न प्रभु। आहाहा ! प्रभु तुम्हारी तुम्हें तुम्हारे घर की खबर न लगे- ऐसा कैसे कहलाये ? कलंक लगे प्रभु तुम्हें। आहाहा !

अंदर चैतन्य चमकता हीरा जिसकी चमक का पार नहीं। जिसके ज्ञान की चमक, दर्शन की चमक त्रिकाली की हाँ, आनंद की चमक, अस्तित्व की चमक, प्रभुत्व की चमक, प्रकाश प्रत्यक्ष हो ऐसी शक्ति की चमक आहाहा ! सर्व दिर्शीशक्ति

की चमक, सर्वज्ञत्वशक्ति की चमक ऐसे अनंतगुणों की चमकवाला भगवान (निजात्मा) पूर्णानंद प्रभु ! - ऐसा जो परम सत्य प्रभु, उस परम सत्य को यहाँ निश्चय शुद्धनय कहा है, कहकर फिर पलटा कि भाई यह भी त्रिकाल है उसका आश्रय करे उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा ! आहाहा ! है कि नहीं ? यह शब्दार्थ गाथार्थ हुआ।

अब टीका :- `व्यवहारनय' गाथा में व्यवहारनय असत्यार्थ है - ऐसा कहा था। अब टीकाकार कहते हैं व्यवहारनय `सभी' असत्यार्थ होने से, व्यवहारनय `सभी' असत्यार्थ है। पर्याय मात्र असत्यार्थ है। यह गौण करके हाँ ? पर्याय नहीं - ऐसा कहकर नहीं, आश्रय करने योग्य नहीं और उसे गौण करके नहीं - ऐसा कहा असत्यार्थ और भगवान त्रिकाली सत् है उसे मुख्य करके निश्चय कहा और पर्याय है उसे गौण करके `नहीं' (- ऐसा) कहा, अभाव कहकर नहीं कहा - ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

व्यवहारनय सभी - सभी अर्थात चारों (प्रकार) यहाँ अध्यात्म के चार लेना। चार कौन ? एक तो राग जो होता है इस राग को जानना, ज्ञान जाने, जानने में राग आये उसे असद्भूत उपचरित व्यवहारनय कहते हैं। सुनो ! सुनने जैसी सूक्ष्मबात है। ***राग होता है उसे जानता है जीव। इसप्रकार जानता है कि यह राग है। इस अपेक्षा से उसे असद्भूत व्यवहारनय उपचार कहने में आता यह एक नय। राग है उसे वह जानता है कि यह राग है - ऐसा जानने में आता है इस अपेक्षा से वह राग*** को जाननेवाले ज्ञान को उपचरित असद्भूत व्यवहार नय कहा जाता है। ***असद्भूत अर्थात कि (बुद्धिपूर्वक) राग आत्मा में नहीं, व्यवहार अर्थात कि भेद है, राग वह (आत्मा से) दूसरी चीज असत् है; असत् अर्थात कि (राग) त्रिकाली में नहीं - असद्भूत है यह राग है वह त्रिकाली वस्तु में नहीं इसलिये उसे असद्भूत कहा और व्यवहार तो भेद है, अर्थात व्यवहार तो है ही और राग आया उसे जाननेवाला ज्ञान है जानने में आये - ऐसा जो राग, उसे असद्भूत उपचरित व्यवहार कहा है।***

और उस समय उपयोग थोड़ा सूक्ष्म नहीं, स्थूल है, इसलिये राग को जानने का ज्ञान हुआ, उसी समय कितना ही (अबुद्धिपूर्वक) राग जानने में नहीं आये - ऐसा साथ में है। जो राग जानने में आये उस राग को असद्भूत व्यवहारनय कहा, परंतु उसी समय अंदर साथ में है, जानने में नहीं आता-उपयोग काम नहीं करता। अबुद्धिपूर्वक अंदर राग है, समझ में आया ? आहाहा ! यह राग है, उसे जाननेवाले ज्ञान को `अनुपचरित असद्भूत व्यवहार' कहा जाता है। आहाहा !

यह अलौकिक गाथा है बापा ! यह तो बार-बार कहेंगे हाँ। इतनी बातें पुनः भाई ने कल कहा था न बाबूलालजी ने फिर से लो कहा। आहाहा !

प्रभु तुम कौन हो ? ***तुम्हारे स्वरूप में प्रभु अभेद और एकरूपता है। अब इसमें भेद (व्यवहार) के चार, प्रकार एक तो राग होता वह तो असद्भूत है तुममें नहीं, इसलिये वह राग पर्याय में है अवश्य, परंतु द्रव्य में वस्तु में नहीं और वह राग जानने में ख्याल में आता है कि यह राग है इसलिये उस राग को असद्भूत कहा।*** वस्तु में नहीं, इसलिये असद्भूत, (भेद) व्यवहार है इसलिये व्यवहार है - भेद है और उपचार अर्थात कि जानने में आये और फिर भी उसे राग है - ऐसा कहना यह उपचार है

आहाहा ! और उसी समय अभी राग का सूक्ष्म भाग है वह जानने में आता नहीं। उपयोग स्थूल है, इसलिये जानने में आये राग और नहीं जानने में आये - ऐसा राग है अंदर उसी समय। यह (जो) नहीं जानने में आये - ऐसा (अबुद्धिपूर्वक) राग उसे भी असद्भूत कहा कारण कि स्वरूप में नहीं है न, भेद को व्यवहार और उसे अनुपचार कहा (क्योंकि) जानने में आता नहीं इसलिये अनुपचार कहा। जानने में आये उसे उपचार कहा जानने में न आये उसे अनुपचार कहा। यहाँ दो नय हुये। असद्भूत व्यवहारनय दो प्रकार का हुआ। यह निषेध करने लायक है।

अब ऐसी दो दूसरी (नय) सद्भूत व्यवहारनय कि जो ***ज्ञान राग को जाने, ज्ञान का अस्तित्व हमारे अपने में है इसलिये सद्भूत परंतु राग को जाने वह (नय) राग को जाने यह तो सद्भूत, राग को जाने परंतु यहाँ तो राग को जाननेवाला ज्ञान स्वयं करे अपने से, राग को जाननेवाला ज्ञान स्वयं से (होता), स्वपरप्रकाशक ज्ञान पर्याय के सामर्थ से राग को जाननेवाला ज्ञान करे - ऐसा कहना है, तव जाननेवाला ज्ञान अपना राग को जाननेवाला ज्ञान है तो अपना, परंतु यह राग को जानता है - ऐसा कहना यह `सद्भूत उपचार नय' कहा जाता है।*** ऐसे सभी में चार बोल है।

वह तो राग को जानता है, उसको असद्भूत उपचार व्यवहारनय कहा और यहाँ तो राग को जाननेवाला ज्ञान स्वयं से हुआ है इसलिये वह `सद्भूत' है परंतु उसने राग को जाना है - ऐसा कहना वह उपचार है। समझ में आया कुछ ? आहाहा !

यह ज्ञान की पर्याय सद्भूत है अपने में, इसलिये सद्भूत, वह राग को जानता - ऐसा कहना वह उपचार है। इसलिये सद्भूत उपचारनय हो गया। `सद्भूत व्यवहार उपचार' हुआ, और चौथा, यह ज्ञान सो आत्मा है जो अभी आया था - ऐसा भेद करके कथन है, वह सद्भूत अनुपचार व्यवहारनय है कारण कि ज्ञान अपने में है और वह आत्मा को बताता है इसप्रकार ज्ञान `यह आत्मा है' इतना भेद है अतः व्यवहार है। आहाहा ! समझ में आया ?

अपने में है इसलिये सद्भूत है और इसप्रकार भेद को बताता है इसलिये व्यवहार

है और उसे अनुपचार कहा कारण कि ज्ञान सो आत्मा है यह तो बराबर है इस अपेक्षा से उसको सद्भूत अनुपचार व्यवहारनय कहा जाता है।

चार (नय) हुये, यह `सभी' कहने में चार प्रकार आते (हैं) दो असद्भूत के दो सद्भूत के व्यवहारनय है। आहाहा ! यह परवाह ही की नहीं, छोटा भाई ! यह कमाना और यह करना। आहाहा ! तीनलोक के नाथ का मार्ग जिनेश्वर का... कहीं है नहीं, इसकी गंध कहीं नहीं। आहा ! इस मार्ग को समझने के लिये (निवृत्ति चाहिए) (श्रोता :- आप कहते हो तब बहुत प्रसन्न होते हैं) इसमें क्या परंतु अभी यह समझें तो... प्रसन्न होना है न कि वीतराग ने कहा वह मार्ग सत्य है - ऐसा स्वयं को अंदर समझ में आये तब खुशी होती आनंद आये। आहाहा !

व्यवहारनय, अर्थात ? भेद को और असद्भूत को जाननेवाला नय उसे व्यवहारनय कहते हैं भेद को और उसमें नहीं त्रिकाली में, ऐसे को जाननेवाले नय को व्यवहारनय कहते। यह व्यवहारनय `सभी' अर्थात चारों `असद्भूत उपचरित व्यवहारनय' राग आता है, परंतु त्रिकाली में नहीं इसलिये असद्भूत और उसे जानने में आया फिर भी कहना कि यह राग यह उपचार हुआ। यह असद्भूत उपचार व्यवहारनय यह निषेध करने लायक है। ***अब इसी समय राग है सूक्ष्म वह जानने में आता नहीं, फिर भी है - ऐसा तो ज्ञान में आये, ज्ञान में ज्ञात हो अर्थात ख्याल में आये। - ऐसा यह राग है - ऐसा ख्याल में नहीं आये भले, परंतु अभी यहाँ सूक्ष्मराग है, क्यों ? न हो तो अंदर आनंद आना चाहिए। समझ में आया ? इस प्रकार सूक्ष्मराग है उसे सीधा ख्याल में आता नहीं। परंतु है इसलिये राग को असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय कहा जाता है।*** यह असद्भूत के दो प्रकार हुये।

अब सद्भूत के दो (प्रकार)। इस राग को जाननेवाला ज्ञान, यह ज्ञान है तो अपना इसलिये है अपना, इसलिये सद्भूत, परंतु यह राग को जानता है - ऐसा कहना वह उपचार है। आहाहाहाहा ! पकड़ में आये इतना पकड़ना बापू ! यह तो मार्ग... आहाहा ! यह सद्भूत उपचार व्यवहार अर्थात कि पर्याय है वह राग को जाननेवाली है वह पर्याय अपनी है। परंतु राग को जानती है - ऐसा कहना वह सद्भूत व्यवहार है। समझ में आया ? और इसलिये वह राग को जानते है - ऐसा कहना वह सद्भूत व्यवहार उपचार है। आहाहा ! राग को जानता है - ऐसा कहना वह सद्भूत उपचार है। वास्तव में तो राग का ज्ञान है उस ज्ञान को ज्ञान जानता है। समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

(श्रोता) :- पर को जानना उपचार और स्व को जानना अनुपचार - ऐसा लेना ?

(उत्तर) :- जानने में राग का ज्ञान हुआ, यह ज्ञान तो हुआ है अपने से, फिर

भी राग को जानता है - ऐसा कहना, यह सद्भूत उपचरित है। आहाहा ! और वह ज्ञान सो आत्मा, यह यही `ज्ञान सो आत्मा' - ऐसा जो भेद किया वह सद्भूत अनुपचरित व्यवहारनय है।

चारों नय असत्य है, यहाँ - ऐसा कहना है। आहाहा ! असत् है अर्थात ? कि यह आश्रय करने लायक नहीं। गौण करके उसे असत्यार्थ कहा जाता है। अन्यथा `ज्ञान सो आत्मा' वस्तु वह बराबर है। परंतु उसका भेद ऊपर लक्ष्य जायेगा तब उसे विकल्प उठेगा इसलिये वह व्यवहारनय में अनुपचार नय को भी असत् कह दिया है।

एक और सद्भूत पर्याय है उसमें, यह राग को जानती है इसप्रकार सद्भूत व्यवहारनय उपचार और `यह ज्ञान आत्मा है' - ऐसा सद्भूत अनुपचार, एक तरफ पर्याय है उसे सद्भूत कहा, पर्याय को हाँ। आहाहाहा ! फिर भी उसे गौण करके जिसे सत् कही थी उसे असत् कहीं है। आहाहाहा !

फिरसे हाँ ? धीरे-धीरे... यह तो धीरे से... पाँच मिनट है, वस्तु है प्रभु ! पूर्ण एकरूप अभेद यह तो दृष्टि का विषय (है) और यह तो भूतार्थ है उसे विषय करती है दृष्टि।

अब, दृष्टि का विषय नहीं ऐसे चार नय है। एक तो यह कि राग है उसे जानना। राग का यहाँ ज्ञान होता यह अभी यहाँ बात नहीं। मात्र राग जानने में आता है कि यह राग है - इस अपेक्षा से उसे असद्भूत उपचरित व्यवहारनय कहते हैं। जानने में आया है और फिर भी राग यहाँ है - ऐसा उपचार से कहा, और उस राग को सूक्ष्मपने तो टालते है थोड़ा, ***यह जानने में आता नहीं फिर भी राग है - ऐसा ज्ञान में आता (है) सीधा ख्याल में नहीं आये, परंतु ज्ञान में हो कि अभी यह स्थूलराग है, उसीप्रकार सूक्ष्म भी राग है, इसलिये उस ज्ञान में न आनेवाले राग को असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय कहा जाता है।*** आहाहा !

अब, सद्भूत के दो भेद, कि राग को वह जानता है यह दूसरी वस्तु हो गई वस्तु। यह तो राग को जाननेवाला ज्ञान है, यह ज्ञान है अपना अर्थात अपना सद्भूत है फिर भी यह ज्ञान राग को जानता है - ऐसा कहना वह उपचार है। आहाहाहा ! यह व्यवहारनय सद्भूत भी असत्यार्थ है (उपचरित है) गौण करके उसे झूठा स्थापित किया है।

और चौथी (नय) यह `**ज्ञान सो आत्मा**' वह तो ज्ञान राग को जानता था इतना कहना था। है अपना, परंतु (राग को) जानता है - ऐसा कहना वह उपचार। अब यह `ज्ञान सो आत्मा' उसका नाम `सद्भूत अनुपचार व्यवहारनय' कहा जाता है।

यह `सभी' चार के अर्थ में है। यह `सभी' शब्द जो लिखा है उसके यह चार अर्थ हैं।

यह चारों नय असत्यार्थ होने से असत्यार्थ अर्थात त्रिकाली वस्तु नहीं, क्षणिक है और उसका आश्रय करने से राग होता है, इसलिये उस नय को / वस्तु चार होने पर उसे गौण करके असत्य है - ऐसा कहने में आया है। कठिन गाथा है यह। समझ में आया ?

गौण करके असत्यार्थ होने से... अविद्यमान... लो देखा, (जो) नहीं उसको वह कहता है, है तो अवश्य सद्भूत ज्ञान वहाँ सद्भूत ज्ञान-उपचार सद्भूतज्ञान... वहाँ सद्भूत ज्ञान-उपचार, सद्भूत ज्ञान अनुपचार - ऐसा कहा, परंतु त्रिकाल की अपेक्षा से, यह सद्भूत जो कहा था उसे भी `नहीं' असत्य है। - ऐसा गौण करके उसे `नहीं' - ऐसा कहा है। आहाहा ! समझ में आया ?

`अविद्यमान' अर्थात हमें आश्रय करने लायक चीज नहीं (व्यवहारनय) यह नहीं। इसलिये नहीं। है अवश्य, वस्तु-वस्तु अपेक्षा हो आहाहा ! वह असत्य है।

त्रिकाली सत् की अपेक्षा इन चारों नयों का विषय वह गौण करके असत्य कहा है। असत् अर्थ को प्रगट करता है, स्वरूप में नहीं उसे वह नय प्रगट करता है।

सद्भूत व्यवहारनय का भेदपना और असद्भूत राग मात्र तो यह वस्तु में नहीं इसलिये यह अभूत अर्थ को प्रगट करता है। इस वस्तु में नहीं उसे यह कहता हैं, इसलिये उसे व्यवहार कहकर झूठा कहा है।

विशेष कहा जायेगा - (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ३७ गाथा-११ ता. १८-७-७८ मंगलवार अषाढ सुदी-१३ सं.२५०४

समयसार, ग्यारह गाथा। यह जैनशासन का सार है प्राण है। इसे समझे बिना दूसरा कितना ही समझे वह कोई वास्तविक ज्ञान नहीं। यह निश्चय और व्यवहार दोनों अच्छी तरह जानकर समझने योग्य है। इसे जानकर निश्चय का विषय जो ज्ञायक त्रिकाल वह आदरणीय है और व्यवहार का विषय भेद यह जानने लायक है - आदर ने लायक नहीं।

अब कहते हैं **`व्यवहारनय'** व्यवहारनय अर्थात ? कि जो भेद को विषय बनाये और भेद में भी गुण-गुणी का भेद अथवा राग को जानना - ऐसा भेद अथवा राग है - ऐसा जानना - ऐसा जो भेद उसे व्यवहारनय कहते हैं। सूक्ष्मबात है भाई !

व्यवहारनय उसकी व्याख्या इतनी, सभीव्यवहार... अध्यात्म के अंदर चारभेद किये है। यह अभूतार्थ होने से - ऐसा लिखा है। **`अभूतार्थ है'** - ऐसा नहीं कहा। `अभूतार्थ होने से' अविद्यमान, असत्य, अभूत अर्थ को प्रगट करता है।

अर्थात क्या ? सभी व्यवहारनय असत्य होने से, असत्य का अर्थ ? त्रिकाली वस्तु अपेक्षा वह नहीं। व्यवहारनय का विषय त्रिकाली वस्तु नहीं। उसका विषय वर्तमान भेद या राग का भेद, पर का, अपना गुण-गुणी का भेद जिसे यहाँ व्यवहारनय असत्यार्थ कहा है न। सभी अभूतार्थ होने से अर्थात झूठा होने से - ऐसा कहा यहाँ तो। अर्थात क्या ? जो आत्मा में राग जानने में आता है। पर्याय में है, वस्तु में नहीं... और वह राग है उसे असद्भूत कहकर... असद्भूत, वस्तु में नहीं, पर्याय में है। इसलिये उसको असद्भूत कहकर और उसके दो प्रकार। राग असद्भूत है, राग, इसके दो प्रकार। वस्तु में नहीं परंतु पर्याय में है। इसलिये उसको व्यवहार कहा और असद्भूत कहा।

अर्थात कि जो राग होता है पर्याय में है, उसे असद्भूत उपचारनय कहते हैं। क्यों ? (राग) है - ऐसा कहना यह उपचार है और उसे जाननेवाला ज्ञान यह असद्भूत व्यवहारनय है। आहाहा ! राग है पर्याय में परंतु असद्भूत है। वस्तु में नहीं, परंतु पर्याय में है। इस राग को जानने के दो प्रकार। (राग) है यह असद्भूत है और असद्भूत का यह विषय है। परंतु है उसको दो भेद। एक जानने में आता है बुद्धिपूर्वक का राग और एक जानने में नहीं आता फिर भी है - ऐसा ज्ञान करना। है यह जानने में आये उसे असद्भूत उपचार कहते हैं और राग है परंतु जानने में आता नहीं परंतु है इसलिये उसे असद्भूत अनुपचार कहते हैं।

ऐसा कहीं बही खाते में नहीं आता है। संप्रदाय में चलता न हो; दया पालो और व्रत पालो एवं भक्ति करो और बापू ! मूल चीज... वस्तु जो है आत्मा यह त्रिकाली तो ज्ञायकस्वरूप, चिदानंद सहजात्मस्वरूप, यह तो एक ही भूतार्थ है। विद्यमान पदार्थ है, कि जिसको विषय (ध्येय) बनाने से... जिसको विषय बनाने से सम्यग्दर्शन होता है। अर्थात परम सत्य वस्तु जो ध्रुव सामान्य ज्ञायक एकरूप भाव, उसे विषय बनाने से उसे ध्येय में लेने से, सम्यग्दर्शन होता है यह भूतार्थ त्रिकाल वस्तु है अर्थात इसका आश्रय करने से सत्यदर्शन होता है पर्याय में सम्यग्दर्शन...

परंतु पर्याय में जो राग है, यह त्रिकाली वस्तु में नहीं, इसलिये उसे असद्भूत कहकर और विद्यमान नहीं - ऐसा कहा, असत्यार्थ कहा। यह है ही नहीं, किस अपेक्षा से ? त्रिकाली में नहीं इसलिये वह नहीं इसप्रकार गौण करके नहीं कहा है। न हो, परंतु राग तो है, ज्ञानी को भी राग होता है। आहाहा ! ज्ञानी को भी

आत्मा ज्ञायकस्वरूप है पूर्ण आनंद अभेदरूप है - ऐसी द्रव्यदृष्टि ध्रुवदृष्टि होने पर भी ज्ञानी को राग तो होता है।

राग होता है उसे जानने के दो प्रकार... एक ज्ञान के ख्याल में आये - ऐसा राग, परंतु वस्तु में नहीं इसलिये `उपचरित असद्भूत व्यवहार' और ख्याल में न आये - ऐसा राग, स्वरूप में नहीं इसलिये असद्भूत परंतु ख्याल आता नहीं फिर भी है - ऐसा कहना `अनुपचार' असद्भूत है। अरे ऐसी बातें है। समझ में आया ?

व्यवहारनय चार प्रकार के (है)। जो नहीं - ऐसा यहाँ कहा है, नहीं अर्थात ? कि त्रिकाली में जो नहीं और त्रिकाली की अपेक्षा से, त्रिकाली अभेद की अपेक्षा से जब त्रिकाली को सत्य कहना है तब इस भेद को असत् कहकर गौण करके असत् कहकर उसे व्यवहारनय का विषय गिनाया है।

यह तो अलौकिक मंत्र है बापा ! आहाहा ! समझ में आया ? यह मूल रकम (पूंजी) की बात है यह तो। यह गाथा तो जैनदर्शन का प्राण है... जैसे प्राण बिना जीवन न रहे इसप्रकार इस गाथा के भान बिना जैनशासन दृष्टि में नहीं आये। आहाहा ! समझ में आया ? व्यवहारनय अर्थात कि राग को और भेद को विषय करनेवाला- ऐसा जो व्यवहारनय, समझ में आया ? व्यवहारनय अर्थात ? जो ज्ञान का अंश व्यवहार नय है। यह नय भेद को विषय बनाये - जाने और उसमें नहीं ऐसे राग को भी जाने - यह जाने उसके प्रकार फिर दो - भेद है उसके दो प्रकार।

जाने कि राग है, यह ख्याल में आये - ऐसा राग असद्भूत उपचार व्यवहार (क्योंकि) ख्याल में (राग) आया होने पर भी है उसे उपचार और उस समय उपयोग स्थूल है इसलिये राग जानने में आता है उसके साथ दूसरा राग है थोड़ा, वह जानने में आता नहीं। जानने में आता नहीं इसलिये उसे अनुपचार कहा और आत्मा में नहीं इसलिये असद्भूत कहा, असद्भूत अनुपचार जानने में नहीं आता उपयोगमें, है अवश्य, इसलिये उसको अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहा जाता है। पकड़ में आये इतना पकड़ना बापू यह तो...

(श्रोता :- अप्रमत्त की बात हुई यह तो) नहीं, नहीं अप्रमत्त की बात नहीं। यह तो राग होता है उस समय की बात है। छठवें गुणस्थान में भी राग होता है न? सातमें में अबुद्धिपूर्वक राग है - ऐसा अभी यहाँ नहीं लेना। सातवें अबुद्धिपूर्वक छठवें में बुद्धिपूर्वक - ऐसा नहीं लेना। देवकीनंदन ने - ऐसा अर्थ किया था, देवकीनंदन थे पण्डित, इन्दौर के - ऐसा अर्थ किया है उन्होंने पंचाध्यायी का फिर यहाँ आये। सेठ के साथ कहा कि यह अर्थ तो तुम्हारा गलत है। अबुद्धिपूर्वक सातमें और बुद्धिपूर्वक छठवें - ऐसा नहीं - यहाँ बात ऐसी नहीं, यहाँ कहा, परंतु व्यक्ति सरल थे नरम

व्यक्ति थे, गुजर गये बिचारे।

उन्होंने पंचाध्यायी में - ऐसा अर्थ किया कि अबुद्धिपूर्वक सातमें और बुद्धिपूर्वक छठवें अर्थात सातवें है वह अबुद्धिपूर्वक है यह अनुपचरित असद्भूत और यहाँ बुद्धिपूर्वक है उपचार असद्भूत। वह अनुपचरित असद्भूत और उपचरित असद्भूत, कहा - ऐसा नहीं, परंतु व्यक्ति बहुत सरल थे। उनका यहाँ पंचाध्यायी है, उसमें - ऐसा अर्थ किया है पर कहा कि यह तुम्हारी भूल है। (तब उन्होंने कहा) हम तो पण्डित है, समझ में नहीं आये, फिर भी लिख डालते हैं, कहा - ऐसा नहीं चले यह तो वीतराग मार्ग है। बहुत सरल (थे)।

सुनो, यहाँ तो छठवें गुणस्थान में जो राग है उसके दो प्रकार, एक बुद्धिपूर्वक और (दूसरा) अबुद्धिपूर्वक। यहाँ छठवें बुद्धिपूर्वक एवं सातवें में अबुद्धिपूर्वक है यह - यहाँ नहीं लेना। सातवें में अकेला अबुद्धिपूर्वक है यह यहाँ नहीं लेना, यहाँ तो। यह गोम्मटसार में भी है।

जो राग है समकिति को, ज्ञानी को, मुनि को, परंतु यह राग है - ऐसा जो है उसे जानना, बुद्धिपूर्वक है ख्याल में आता उसे, उसे यहाँ बुद्धिपूर्वक असद्भूत उपचारनय कहा है और उसको न उसको जो राग अंदर है यह ख्याल में आता नहीं, परंतु है अवश्य, उपयोग स्थूल है, अतः - ऐसा अबुद्धिपूर्वक (राग) है और ख्याल में नहीं आता, वह उसी जीव को जो ख्याल में नहीं आता उस जीव के, उस राग को, अनुपचार असद्भूत व्यवहारनय, कहते हैं भैया... सूक्ष्मबात है यह। आहाहा ! धीरज से कहते हैं।

राग है यह स्वरूप में नहीं। इसलिये उसे असद्भूत कहा अब असद्भूत के दो प्रकार कि एक जानने में आता है उसे असद्भूत उपचार कहते है और उसी क्षण में, उसी समय में जो राग का भाग है अंदर, यह जानने में आता नहीं, इसलिये उसे असद्भूत अनुपचार (व्यवहार) नय कहा जाता है, बुद्धिपूर्वक (राग) छठवें और उपचरित असद्भूत व्यवहार कहते हैं और सातवें में अबुद्धिपूर्वक है इसलिये उसे असद्भूत अनुपचार कहते हैं - यह बात यहाँ नहीं। बाबूलालजी ! समझ में आये - ऐसा है, धीरज से हाँ ! बहुत सूक्ष्म विषय बापू ! आहा ! वीतराग मार्ग परमेश्वर त्रिलोकनाथ का। आहाहा !

फिर से ! हमारे बाबूलालजी कहते हैं न फिर से लो ! यह ज्यादा विस्तार किया है न ? यह आत्मा जो है यह त्रिकाली भूतार्थ ज्ञायकभाव है। उसे भूतार्थ कहें, विद्यमान चीज सत् चीज, सत् साहिबो, सत् साहेब प्रभु। आहाहा ! और उसकी पर्याय में भेद से उसका ज्ञान करना कि राग है यह हमारी पर्याय में है बुद्धिपूर्वक

का ख्यालवाला राग, उसे असद्भूत उपचार कहते हैं और उसे ख्याल में नहीं आता - ऐसा जो राग उसे असद्भूत अनुपचार व्यवहार कहते हैं। कहो समझ में आता है कुछ ?

और सद्भूत के दो प्रकार :- कि जो ज्ञान अपनी पर्याय में है परंतु यह ज्ञान राग को जानता है - ऐसा कहना... वह है यह तो मात्र राग है - ऐसा जानना और यहाँ तो ज्ञान की पर्याय राग को इसप्रकार जाने परंतु पर्याय है अपने में। यह अपनी पर्याय राग को जाने इसप्रकार पर्याय सद्भूत है इसलिये अपने में है सद्भूत, परंतु उसे जानना कहना उपचार, अर्थात सद्भूत उपचार हुआ व्यवहार।

धीरे से समझना भाई ! आहा !... यह तो जैनदर्शन का प्राण है ग्यारहवीं गाथा तो। यह कैलाशचन्द्रजी ने लिखा था एक बार... अखबार में कि ११ वीं गाथा वीतराग परमेश्वर (के) मार्ग का प्राण है, इसके बिना जीवन चैतन्य कैसा है यह उसे नहीं जान सके। आहा...हा !

(कहते हैं कि) अर्थात व्यवहारनय सभी, सभी अर्थात चार जो राग है, वह पर्याय में है, वस्तु में नहीं। परंतु यह पर्याय में है यह तो व्यवहार हो गया और पर है अतः असद्भूत हो गया। यह असद्भूत व्यवहार... उसके दो प्रकार, जो ख्याल में आये ऐसे राग को `असद्भूत उपचार' कहते हैं और उसी समय का राग, ख्याल में नहीं आता। उपयोग स्थूल होने से, उस राग को अबुद्धिपूर्वक कहा है उस जीव को उसे अनुपचार (कहा) ख्याल में आता नहीं, परंतु है, इसलिये अनुपचार असद्भूत व्यवहारनय उसे कहा जाता है। यह वस्तु (व्यवहार) सभी अभूतार्थ है, अभूतार्थ अर्थात वस्तु में नहीं, इसलिये उसे गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा, असत्य है। है तो अवश्य, राग है उसके दो प्रकार है, उसे बुद्धिपूर्वक का राग वह व्यवहार असद्भूत उपचार और अबुद्धिपूर्वक का राग वह व्यवहार अनुपचरित असद्भूत व्यवहार `है', (परंतु) यहाँ कहते हैं कि **`अभूतार्थ होने से'**

क्या कहा ? नहीं अर्थात गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा है। बिलकुल नहीं तब तो व्यवहारनय का विषय ही नहीं (रहेगा) वर्तमान में। समझ में आया ? गुणवंतभाई ! है न पुस्तक सामने ? आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

भगवान आत्मा एक समय में सत्यार्थस्वरूप, पूर्णस्वरूप, अभेदस्वरूप, सामान्यस्वरूप, सत्यार्थवस्तु त्रिकाल, वह तो शुद्धनय का विषय है, इसलिये इस त्रिकाली को शुद्धनय भी कहा जाता है और यहाँ (साधक को) जो राग उसमें (पर्याय में) है, अभी साधक है इसकी बात है न यहाँ ! नय का ज्ञान तो श्रुतज्ञानी को होता है न ? केवली की यह बात नहीं कहीं, अर्थात श्रुतज्ञान से जिसने ज्ञायक को जाना अनुभवा यह

तो निश्चय, परंतु इस श्रुतज्ञान में अभी यह साथ में जो राग है यह ख्याल में आये ऐसे राग को `असद्भूत उपचार व्यवहार' कहते हैं और ख्याल में नहीं आये उसे `असद्भूत अनुपचार' कहते हैं।

परंतु इसमें है उसे `जानना' यहाँ तो - ऐसा कहा कि सभी अभूतार्थ-अविद्यमान `नहीं' उसे कहते हैं उसका अर्थ ? कि त्रिकाली सत् की अपेक्षा यह वस्तु नहीं, पर्याय की अपेक्षा इसमें है। आहाहा ! त्रिकाली को जब मुख्य कहकर निश्चय कहते, तब भेद को गौण करके `नहीं' - ऐसा कहते हैं, गौण कहकर अभूतार्थ होने से, अभूतार्थ होने से, असत्यार्थ होने से झूठ होने से। आहाहाहा ! शशिभाई ! - ऐसा विषय है। यह लोग। एकदम समझे बिना। बाहर की यह दया, यह व्रत, और यह तो सभी अज्ञान है मिथ्यात्व।

जो राग, स्वरूप में नहीं उस राग को करना और मानना यह तो मिथ्यात्व है। करना और मानना - ऐसा... इसप्रकार स्वरूप का ज्ञान होने के बाद, राग हो उसे `असत्यार्थ होने से' - ऐसा कहा क्योंकि कायमी वस्तु की दृष्टि की अपेक्षा से व्यवहार का विषय जो नहीं, अविद्यमान है, विद्यमान तो त्रिकाली चीज है वह है। आहाहा !

वस्तु सम्यग्दर्शन का विषय है, यह तो शुद्धनय का विषय वह सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाली, त्रिकाली भगवान, पूर्णानंद का नाथ प्रभु ध्रुव (आत्मा) यह सत्यार्थ है। और उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। अब जब पर्याय में भी अभी राग है, तब उस राग को क्या कहना ? कि उसको यहाँ त्रिकाली को सत्य कहा है। इस अपेक्षा से राग है, उसे असत्य कहा है, है ?

उस त्रिकाली को जब सत्य कहा तब इस (पर्याय में राग) है उसे असत् कहा है परंतु नहीं - ऐसा नहीं, समझ में आया ? इस राग के दो प्रकार समझना, यह असद्भूत व्यवहार के उपचार - अनुपचार दो प्रकार हुये। अब दो भेद दूसरे सद्भूत के, यह भी - अभूतार्थ होने से - यहाँ कहा है। व्यवहारनय का असद्भूत का विषय यह भी `नहीं' - अविद्यमान है। - ऐसा कहा, यह किस अपेक्षा से ? त्रिकाल सत् को मुख्य करके जब निश्चय है - ऐसा कहा तब इस पर्याय को गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा है।

अब इस सद्भूत के भी दो प्रकार, ***कि जो ज्ञान वर्तमान पर्याय, राग को जानता है - ऐसा कहना - जानता है - ऐसा कहना यह सद्भूत उपचार (है) यह भी त्रिकाल की अपेक्षा से `अविद्यमान' है*** अरे ! ऐसी बातें, समझ में आया ? वर्तमान की अपेक्षा से तो सत् है। न हो तब तो वेदांत हो जाये है। पर्याय नहीं-राग नहीं... यह तो

वीतराग सर्वज्ञ का शासन है। आहाहा !

अर्थात कि सद्भूत व्यवहार अर्थात... उसके दो प्रकार, कि जो ज्ञान अपने में (है) अब पर्याय की बात है वर्तमान में। ज्ञान की पर्याय अपने में है इसलिये सद्भूत, परंतु यह ज्ञान राग को जानता है उसका नाम उपचार, यह सद्भूत उपचार और विद्यमान है यहाँ त्रिकाली को विद्यमान ग्रहणकर के इस (ज्ञान पर्याय) विद्यमान को गौण करके अविद्यमान है। - ऐसा कहा है। आहाहाहा ! कहो छोटा भाई ! किसी दिन यह विचार किया न हो इसमें। आहाहा ! - ऐसा मार्ग वीतराग का आहा... कहा श्री वीतराग, त्रिलोकनाथ परमात्मा (यह) दिव्यध्वनि में कहा है। प्रभु तुम (कैसे हो) हम यहाँ कहते हैं क्योंकि पाठ - ऐसा है न ? `अभूतार्थत्वात-अभूतार्थम्' झूठा है इसलिये झूठ अर्थ को प्रगट करता है। - ऐसा कहा। पाठ तो - ऐसा है संस्कृत अभूतार्थ... अभूतार्थत्वात् अर्थात `नहीं' इसके कारण असत् कहा है। पाठ तो - ऐसा है। इसका अर्थ इतना... कि वस्तु की (जो) त्रिकाली सत्य वस्तु प्रभु, उसकी दृष्टि का विषय जो त्रिकाली सत् है, और व्यवहार का विषय, उसे गौण करके असत्यार्थ होने से, असत्य अर्थ को प्रगट करता है - ऐसा कहा है और शुद्धनय सत्यार्थ होने से, एक सत्य को ही प्रगट करता है। आहाहा ! - ऐसा काम !

फिर से, सभी व्यवहारनय अभूतार्थ होने से - ऐसा शब्द है न ? सीधा अभूतार्थ - ऐसा नहीं लिया। `अभूतार्थत्वात् अभूतम्अर्थम्' प्रगट करता है झूठा होने से असत्य अर्थ को प्रगट करता है - ऐसा कहा। समझ में आया ? आहाहा !

अर्थात ? कि त्रिकाली वस्तु जो ज्ञायक पूर्णप्रभु उसने जब सत्यार्थ कहा और यही सम्यग्दर्शन का विषय अर्थात शुद्धनय का विषय कहा, उसे जब सत्य कहा, तब पर्याय का भेद है कि जो ज्ञान राग को जाने, यह ज्ञान की पर्याय है, परंतु यह राग को जानती - ऐसा कहना, यह सद्भूत उपचार है। यह अभूतार्थ होने से नहीं - ऐसा कहा, है तो अवश्य परंतु त्रिकाली की अपेक्षा से उसे असत्य कहकर, असत्य अर्थ को प्रगट करता है। आहाहा ! राग को जानना - ऐसा जो ज्ञान, ज्ञान राग को जानता यह असत् अर्थ को प्रगट करता है। आहाहाहा ! समझ में आये इतना समझना प्रभु यह तो। वीतराग मार्ग का गहरा-गहरा गंभीर भाव है। भाई ! आहाहा !

धीरे... धीरे सभी कहा जायेगा हाँ ! एकसाथ छोड़ नहीं देते यह। हमारे बाबूलाल कहते थे न कि फिर से लो। भाई ! यह तो दो-चार बार लें फिर भी अंत न आये। आहाहा ! व्यवहारनय अर्थात ? भेद को और उसमें नहीं - ऐसे राग को जाने, उसे व्यवहारनय कहते हैं। यह संक्षिप्त भाषा, व्यवहारनय अर्थात अभेदमें से भेद करना और उसमें नहीं ऐसे राग को इन दोनों को जानना, यह नहीं त्रिकाली

की अपेक्षा वह नहीं। गौण करके यह नहीं - ऐसा कहकर यह अभूतार्थ होने से विद्यमान वस्तु को वह बताता नहीं। विद्यमान वस्तु को प्रगट करता नहीं। आहाहाहा ! विद्यमान वस्तु को प्रगट करता नहीं यदि फिर व्यवहारनय का विषय विद्यमान नहीं? नय है उसका विषय जो हो नहीं तब नय न हो। परंतु यहाँ त्रिकाली को जब सत्यार्थ कहकर मुख्य कहकर निश्चय कहा तब व्यवहाररूप भेदों का उसकी पर्याय में ज्ञान है यह ज्ञान राग को जानता है। - ऐसा होने पर भी और दूसरी बात, `यह ज्ञान, सो आत्मा' अब - ऐसा लिया है यह भी सद्भूत अनुपचार हुआ `ज्ञान सो आत्मा' ! उसे भी अभूतार्थ अर्थात कि विद्यमान वस्तु नहीं उसे वह प्रगट करती है भेद को, उसे गौण करके, नहीं - ऐसा कहने में आया है। आहाहाहा !

रात को प्रश्न करना, नहीं समझ में आया, परंतु कोई प्रश्न तो करता नहीं (श्रोता :- हमारी भूल आप जान जाओगे) इसमें कहाँ तकलीफ है। भूल तो ... समझ के लिये तो... चाहे जैसा प्रश्न हो सके। आहाहा ! और यह तो खास चीज है। आहाहाहा !

अर्थात व्यवहार के चार प्रकार हुये एक बुद्धिपूर्वक हुआ राग, जो ज्ञात होता यह असद्भूत उपचार उसीसमय (जो) राग ज्ञात नहीं होता उसीसमय का उसका ही स्वयं उसे असद्भूत अनुपचार और यहाँ ***ज्ञान की पर्याय अपने में है परंतु यहाँ राग को जाननेवाला ज्ञान लेकिन यह तो (स्वयं की) पर्याय है, पर्याय है अतः सद्भूत व्यवहार हो गया और यह राग को जानता है यह सद्भूत उपचार हो गया। पर्याय है इसलिये व्यवहार, परंतु अपने में है अतः सद्भूत।*** समझ में आया ?

और यह ज्ञान राग को जानता है - ऐसा कहना। यह जानता तो है ज्ञान ज्ञान को; परंतु यह ज्ञान राग को जानता है - ऐसा कहना यह सद्भूत उपचार व्यवहारनय नहीं उसे प्रगट करता है - ऐसा जो कहा वह गौण कहकर, नहीं - ऐसा कहा है, समझ में आया कुछ ?

और ज्ञान की पर्याय इसमें होने पर भी, यह तो व्यवहार है सद्भूत व्यवहार है। ***यह राग को जानता है - ऐसा कहना यह उपचार है, वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय ज्ञान को जानती है। ज्ञान की पर्याय ज्ञान को जानती है, फिर भी यह ज्ञान की पर्याय राग को जानती है - ऐसा कहना यह अपनी पर्याय है अतः सद्भूत, वह (राग को) जानती है - ऐसा कहना यह उपचार एवं पर्याय है अतः व्यवहार।*** आहाहा ! वह यहाँ असद्भूत होने से असद्भूत अर्थ को प्रगट करती है अर्थात कि त्रिकाली वस्तु में जो नहीं और पर्याय में है, परंतु पर्याय को गौण करके उसका आश्रय छुड़ाने वह नहीं इसप्रकार गौण करके कहा सर्वथा नहीं - ऐसा नहीं। समझ

में आया कुछ...?

(श्रोता :- ***द्रव्य में तो सर्वथा नहीं ? (उत्तर) द्रव्य में इस प्रकार द्रव्य में यह जो उसकी यह द्रव्य वस्तु है वह अभेद में नहीं। भेद में है इसके द्रव्य के भेद में, परंतु अभेद में नहीं। अभेद में नहीं इसलिये उसे व्यवहार कहा। भेद करना यह व्यवहार है, ज्ञान की पर्याय - ऐसा कहना वह भेद व्यवहार हो गया; पर्याय जो कहना यही व्यवहार हो गया; और यह पर्याय राग को जानती है - ऐसा कहना यह सद्भूत उपचार व्यवहार हो गया।*** आहाहा !

अब चौथा, `ज्ञान सो आत्मा' इतना भेद हुआ न ? यह भी व्यवहार है। क्योंकि ज्ञान सो आत्मा यह भेद हो गया। भेद को गौण करके, असत्य अर्थ को प्रगट करता है। यह सद्भूत अनुपचारनय है ज्ञान सो आत्मा यह सद्भूत और अनुपचार, (क्योंकि) उसमें हैं। सद्भूत अनुपचार अर्थात है - यह ज्ञान सो आत्मा - ऐसा जान सकते है परंतु इतना भेद हुआ और उसमें पर्याय तो सद्भूत है। परंतु उस राग को जानना - ऐसा कहना यह उपचार है और इसें (ज्ञान) जानना यह कहना निश्चय अनुपचार है। आहाहा !

- ऐसा जो `ज्ञान सो आत्मा' - ऐसा जो भेद यह सद्भूत अनुपचार। यह व्यवहारनय विद्यमान वस्तु को प्रगट करता नहीं। असत् को प्रगट करता है अर्थात कि त्रिकाली वस्तु में - ऐसा (भी) भेद नहीं, इस भेद को गौण करके, भेद नहीं, और व्यवहारनय का विषय असत्य को प्रगट करता है - ऐसा कहा जाता है। शकुनलालजी ! इसमें तो पण्डिताई पड़ी रहेगी सब, आहाहाहा ! कल तो कहा था, यह तो फिर से... सेंत्तीस सेंत्तीस मिनट तो हो गये।

व्यवहारनय सभी अर्थात यह चारों (प्रकार का) अभूतार्थ अर्थात असत्य होने से असत्य का अर्थ गौण करके असत्य होने से, और त्रिकाली को मुख्य करके सत्यार्थ होने से... आहाहा ! क्योंकि त्रिकाली जो सत्य वस्तु है पूरण ब्रह्म प्रभु, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। इसलिये यह भूतार्थ वस्तु वही त्रिकाली है, कि जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, और यह जो भेद है उसके आश्रय से तो राग होता है। भेद के आश्रय से विकल्प उठते हैं इसलिये उस भेद को, राग के भेद को और गुण-गुणी के भेद ने भी, असत्यार्थ कहा, असत्य अर्थ को प्रगट करता है अर्थात त्रिकाली सत्य को प्रगट करता नहीं, भेद को प्रगट करता है इस अभेद में भेद नहीं, इसलिये उसे गौण करके व्यवहारनय (कहा) असत्य को प्रगट करता है।

(श्रोता :- प्रगट करता है इसलिये ?) बताता है। है तो असत्य आहा... हाँ अभी वह शब्द आया नहीं परंतु पहले यह अर्थ किया। देखो अब आयेगा। व्यवहार सभी

अर्थात चारों अभूतार्थ अर्थात झूठा होने से। (श्रोता : है उसे झूठा क्यों कहा) यह तो कहा न ! गौण कहकर झूठा कहा है, कारण कि दृष्टि का विषय उसे बताना और दृष्टि का विषय वही सत्य है और वही दृष्टि स्थाई रखनी चाहिए। इस अपेक्षा से भेद की दृष्टि नहीं रखना चाहिए, फिर भी यह है - ऐसा ज्ञान करना चाहिए। है - ऐसा ज्ञान भी यहाँ गौण कहकर नहीं - ऐसा कहा है। आहाहाहा ! है कि नहीं इसमें पाठ ?

आलाप पद्धति में भाई दूसरा कहा है, वह आगम पद्धति का है, आगम की भाषा है यह अध्यात्म की भाषा है।

यहाँ तो प्रभु ! आत्मा परमात्मा स्वरूप त्रिकाली एकरूप वस्तु है, उसीको ही यहाँ सत्यार्थ और भूतार्थ और विद्यमान पदार्थ उसे कहने में आया है, और उसकी पर्याय और उसमें हुआ राग उसे गौण करके `नहीं' कहकर व्यवहार का विषय वह असत्य अर्थ को प्रगट करता है। आहाहा ! क्योंकि जो त्रिकाली नहीं, वर्तमान है उसका आश्रय करने जैसा नहीं, इसलिये उसे गौण करके, व्यवहार को असत्यार्थ कहा है। - ऐसा है बापू ! आहाहाहा !

(श्रोता :- व्यवहार को असत्यार्थ कहेंगे तो संसार ही नहीं रहेगा) वह वस्तु में है नहीं और त्रिकाली को मुख्य करने के लिये उसे सत्य करने के लिये त्रिकाली को मुख्य करके सत्य बताने में आया, उसे गौण करके, असत्य कहकर नहीं - ऐसा कहा है। आहाहा ! हसमुखभाई आया है, भाई भी आये है न जयंतीभाई !

ऐसी सूक्ष्मबातें है यह, धीरे-धीरे समझ में आये - ऐसा है हाँ ! धीमे... धीमे... ख्याल रखो न। आहाहा ! यह तो भगवान, समझनेवालों को समझाते है न ? कि उस राग को समझाते है ? हाँ ? शरीर को समझातें है ? वह समझनेवाला है उसे समझाते है। आहाहा !

भाई ! तुम इसप्रकार समझो, यह त्रिकाली प्रभु है, आहाहा ! उसे हम मुख्य कहकर, सत्य वही है - ऐसा उसे निश्चय कहा है। और पर्याय में सद्भूत उसीकी पर्याय होनेपर भी ज्ञान और आत्मा इसप्रकार अनुपचार भेद किया - ऐसा है तो अवश्य। परंतु भेद किया इसलिये इसे गौण कहकर `ज्ञान सो आत्मा' यह असत् अर्थ को प्रगट करता है - ऐसा कहा। आहाहाहाहा !

कहो धीरूभाई ? वहाँ था कही वहाँ ? मंदिर बनाओ और यह करो एवं ढिकाना करो और आहाहाहा ! तीनलोक का नाथ बादशाह पूर्णानन्द का नाथ बादशाह अन्दर बिराजता है, वह बादशाह है, वही सत्य है - ऐसा कहकर उसमें पर्याय का और राग का भेद पड़े उसे (असत् कहा) है तो अवश्य, उसे गौण कहकर, व्यवहारनय

असत्य को प्रगट करता है - ऐसा कहने में आया है `नहीं' है उसे प्रगट करता है - ऐसा नहीं आहाहा ! समझ में आया ?

व्यवहारनय का विषय ही नहीं तब नय क्यों ? नय तो विषयी है और सामने उसका विषय हो तब व्यवहारनय होता है। समझ में आया ? निश्चयनय है आहाहा ! वह भी विषयी है उसका विषय न हो तो विषयी ही कैसा ? आहाहा ! निश्चय का विषय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव है। आहाहा ! और व्यवहार का विषय वर्तमान पर्याय राग और भेद है, विषय उसका हो तो नय कहा जाता है, परंतु उस विषय को गौण कहकर वह असत्य को (प्रगट करता) त्रिकाली को प्रगट करता नहीं भेद को और राग को प्रगट करता (है) अतः गौण करके असत्य अर्थ को प्रगट करता है - ऐसा कहा है। आहाहाहा ! कहो देवीलालजी ! ऐसी बातें हैं। अभी तो यह प्रथम पंक्ति का अर्थ चलता है। आ आहा...हा !

अरे ! भगवान अंदर प्रभु ! जो ज्ञान का बिम्ब, चैतन्य बिम्ब प्रभु तुम हो न? आहाहा ! अकेले चैतन्य के प्रकाश का नूर का तेज सामान्य अभेदरूप वस्तु तुम हो, उसे सत्य कहकर, वही विद्यमान पदार्थ है - ऐसा कहकर, उस विषय को निश्चयनय का विषय बताया, और पर्याय में पर्याय अंश है वह भेद है और राग भी है, उसमें नहीं उसका विषय व्यवहार नय है, वह व्यवहारनय उसे जानता है यह तो बराबर है परंतु यहाँ इसे गौण कहकर व्यवहार का विषय नहीं - ऐसा कहने में आया है। आहाहा ! - ऐसा मार्ग ! दिगम्बर जैनदर्शन के अलावा सुनने मिले - ऐसा नहीं बापू ! आहाहा ! सनातन जैनदर्शन तीन लोक के नाथ का कहा हुआ, आहाहा ! परस्पर विरोध रहित - ऐसा जो जैनशासन है परंतु इसे समझने को बहुत प्रयत्न चाहिए, बहुत निवृत्ति लेकर पुरुषार्थ से उसे समझना चाहिए।

व्यवहारनय सभी अर्थात चारों अभूतार्थ चाहिए। झूठा होने से, कहे व्यवहार झूठा तो (क्या) पर्याय नहीं ? (न हो तों) वेदांत हो जाये इसमें से निकालते है यह... वह नाथूरामप्रेमी - ऐसा कहते थे कि यह तो वेदांत के ढाले में ढाला है, कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार को।

अरे भगवान... वहाँ आगे तो कहा कि पर्याय है, द्रव्य की है ***पर से भिन्न, अपने में है और पर्याय द्रव्य से भिन्न अपने में है - ऐसा सभी सिद्ध किया है। यह वेदांत में कहाँ था ? आहाहाहा ! वह कहते यह, इस पर्याय को अभूत कहा है न ? पर्याय वह नहीं - ऐसा कहा यहाँ तो ! द्रव्य तो है पर्याय नहीं, असत्य है, अर्थात कि नहीं। - ऐसा कहा था न ! बापू ! किस अपेक्षा से कहा ? (श्रोता :- अपेक्षा से कहा) उसकी अपेक्षा... उसको गौण करके उसका लक्ष्य छुड़ाने, वह नहीं***

- ऐसा कहा और जिसका लक्ष्य करना है उसे मुख्य करके वही सत्य है ऐसी दृष्टि कराई है समझ में आया ?

(श्रोता :- गौण है उसे गौण कराया है ?) परंतु हो उसे गौण करें न ? न हो उसे गौण क्या करना ? कुछ वस्तु ही नहीं उसे गौण (कैसे) करें ? गौण किसे करें ? तलहटी गौण करके ऊपर चढ़ना, परंतु... तलहटी है कि नहीं ? गौणकर छोडना, वहाँ खड़े नहीं रहना है ऊपर जाना है। तलहटी को गौण करके जहाँ जाना है उसे मुख्य करके वह है - ऐसा कहा। इसप्रकार व्यवहार तलहटी है, और असत्य कहकर वहाँ से हटकर जाना है अंदर में। आहा ! समझ में आया कुछ ? इसलिये तलहटी को जैसे असत् कहा, परंतु तलहटी है कि नहीं ? (श्रोता :- है) फिर तलहटी छोड़ कर फिर जाते हैं न अंदर ! है उसे छोड़कर जाते हैं कि नहीं ? इसप्रकार व्यवहारनय का विषय है उसे छोड़कर निश्चयनय की दृष्टि करते हैं। आहाहाहाहा !

(श्रोता :- सत्ता तो है परंतु दृष्टि में गौण है।

उत्तर :- यहाँ तो मुख्य गौण से कथन है वह अंदर भावार्थ में आयेगा, परंतु उसे गौण किया इसलिये अभाव ही मान लेना... मिथ्यादृष्टि है। (क्या) पर्याय नहीं ? पर्याय में राग नहीं ? तब तो शुद्धचैतन्य मूर्ति स्वरूप केवलज्ञानी परमात्मा होना चाहिए। समझ में आया ? राग पर्याय में नहीं ? तब तो केवलज्ञान हो गया ! यह तो साधक जीव की बात है। आहाहाहाहा !

जिसने आत्मा एक समय में पूर्णानंद का नाथ प्रभु ध्रुवस्वरूप जिसे अतीन्द्रिय स्वाद आया है। आहाहाहा ! वह अतीन्द्रिय का स्वाद लेने के लिये अतीन्द्रिय एकरूप पदार्थ वह सत्य है, इसलिये सत्य को मिलाओ, सत्य को प्राप्त करो और यह वस्तु तुम्हें आश्रय करने योग्य नहीं, इसलिये उसे गौण करके नहीं - ऐसा कहा है। इसलिये वहाँ से हट जाओ। आहाहाहा ! समझ में आया ?

समझ में आये इतना समझना भाई ! भगवान के मार्ग की गहनता का पार नहीं। आहाहा ! उसकी सूक्ष्मता उसकी गंभीरता। ओहोहोहो !

व्यवहार-निश्चय की भी गंभीरता बापू अपूर्व है। आहाहा ! बारहवीं (गाथा) में तो कहेंगे- ऐसा कहेंगे कि व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। न हो उसे जाना हुआ कहलाये ? इसमें निश्चयनय को मुख्य करके व्यवहार को गौण करके, नहीं (है) - ऐसा कहा है। बारहवीं गाथा में आयेगा कि उसे भान हुआ कि आत्मा अखण्ड भूतार्थ है, अब पर्याय में अपूर्णता और राग है कि नहीं ? है... जो व्यवहार न हो तो वीतराग केवली हो जायें।

`तब जाना हुआ' जानना तो उसका विषय है नहीं ? जाना हुआ प्रयोजनवान है ? व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। जानना चाहिए, आदर करने को प्रयोजनवान है - ऐसा नहीं। आहाहाहा !

सभी व्यवहार अर्थात यहाँ अध्यात्म के चार बोल लेना। अभूतार्थ अर्थात असत्य होने से, पर्याय और पर्याय के भेदों में रागादिक झूठा होने से, अविद्यमान, नहीं उसे असत्य और अभूत और नहीं उसे - ऐसा नहीं उसके अर्थ को प्रगट करता है, नहीं उस भाव को प्रगट करता है। आहाहा !

एक पंक्ति में कितना भरा है। आहाहा ! यह संत एवं केवली उसकी परिभाषा करते होंगे। आहाहाहाहा ! मुनि कहो तीन कषायों का अभाव हुआ और प्रचुर आनंद की भूमिका जिसे प्रगट हुई है। आहाहा ! वह शास्त्रों का अर्थ कैसा करते होंगे। आहाहा ! संत, वीतरागी मुनि दिगम्बर उनकी क्या बात कहें बापू ! क्योंकि यह तो उनके द्वारा कहा हुआ कथन है। आहाहा !

यह अभूतार्थ होने से विद्यमान नहीं। व्यवहारनय ही नहीं अर्थात व्यवहार का विषय ही नहीं, गौण करके नहीं, असत्य और अभूत अर्थात नहीं - ऐसे अर्थ को, नहीं ऐसे भाव को प्रगट करता है। आहाहा ! यह एकनय के विषय की व्याख्या हुई। लो यह होने आया एक घण्टा पांच मिनट है, छह मिनट। आहाहा !

गजब बात प्रभु तुम्हारी। सर्वज्ञ परमेश्वर उनके कथन धर्म के और धर्म विरुद्ध के दोनों कथन अलौकिक है। ऐसी बात परमसत्य कान में आना बापू ! यह भी भाग्यशाली हो उसे मिले ! समझे वह तो निहाल हो जाये। आहाहा !

अब शुद्धनय एक ही होने से, उसमें सभी था न ? व्यवहारनय सभी था; बहुत थे अर्थात चार बोल। यह तो एक ही प्रकार है। आहाहाहा ! दूसरे शास्त्रों में शुद्ध की व्याख्या आती है शुद्धनय-अशुद्धनय ऐसा भेद आता है, परंतु इन सभी भेदों की अपेक्षा परसमय की मुख्यात बताना... यहाँ तो स्वसमय की मुख्यता बताना है। आहाहाहा ! महाप्रभु ! एक समय में प्रभु ! शुद्धनय यह एक ही भूतार्थ होने से है। शुद्धनय एक ही इसप्रकार संस्कृत में है। आहाहा ! `शुद्धनय एक एव भूतार्थत्वात्' `भूतार्थ' `होने से' यहाँ फिर न्याय... वह अभूतार्थ `होने से' था। आहाहाहा !

प्रभु का मार्ग सूक्ष्म बापू भाई ! लोकों के हाथ आया नहीं संप्रदाय (श्वेताम्बर) में तो यह बात सुनने मिलती नहीं। आहाहा ! स्थानकवासी श्वेताम्बर में तो यह बात ही नहीं। दिगम्बरों में बात है परंतु उसके अर्थ को... अपनी कल्पना से अर्थ करके, व्यवहार के विषय में चले जाते है। आहाहा !

व्रत और तप और भक्ति एवं पूजा को करते-करते कल्याण हो जायेगा। जिसे

यहाँ असत्य कहा... उसे उससे सत्य मिलेगा... - ऐसा चलाए, बापू ! नुकसान होगा भाई ! तुम्हें विपरीत भाव के फल में, वेदन कठिन होगा प्रभु ! वर्तमान विपरीतभाव है यह भी दुःखरूप है और उसका फल भी भविष्य में भाई तुम्हें दुःखरूप है बापू ! यह बात तुम्हारे तिरस्कार के लिये नहीं प्रभु ! परंतु विपरीत श्रद्धा और विपरीत ज्ञान, उसका भविष्य में प्रभु कठिन दुःख है। आहाहाहा !

जिसके फल में नरक और निगोद बापू सामने कोई देखनेवाला नहीं मिले, आहाहा ! यह वहाँ परिचित कोई व्यक्ति नहीं होगा। अन्जान क्षेत्र में अन्जान शरीर में जाना बापा ! आहाहा ! इस मिथ्याश्रद्धा के फल में यह स्थिति अनंतबार खड़ी हुई है। आहा...हा !

भाई तुम्हारी सुननेवाला कोई नहीं था वहाँ हो ! चीखो चिल्लाओ और दुःखी हो। यह अमेरिका में.... सुनते है न ? इस प्रकार गायों को खड़ी रखें, गावों में खाने के लिये, सैंकड़ों गाय एक साथ माथे पर आरा पड़े (चले) मशीन होती मशीन, सिर इसप्रकार गिर जाय। कसाईखाना है न अमेरिका में। आहाहा ! भाई क्या होगा बापू ! राग की एकता और शरीर की एकता बुद्धि में बापा ! उसे दुःख यह काटने (का) दुःख नहीं उसे एकत्व बुद्धि का दुःख है। एकता बुद्धि का दुःख है। आहाहा ! आहाहाहा !

यह `शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से' इसकी विशेष व्याख्या आयेगी।

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ३८ गाथा-११ ता. १९-७-७८ बुधवार अषाढ सुदी-१४ सं.२५०४

ग्यारहवीं गाथा। व्यवहारनय सभी अभूतार्थ होने से... उसकी उपेक्षा कराई है। व्यवहारनय का विषय है अवश्य, क्योंकि यह राग है न ? असद्भूत उपचार राग है, तब है उसका ज्ञान होने पर उसे वीतरागता नहीं - ऐसा उसे ज्ञान हो और `राग को जाननेवाला ज्ञान' यह सद्भूत उपचार (है) यह अपनी ज्ञान की मौजूदगी सिद्ध करता है तब फिर यह `राग को जाने' (यह) उपचार - ऐसा आता है ज्ञान है अपनी पर्याय में अपना और यह `ज्ञान सो आत्मा' - ऐसा कह कर... है परंतु वर्तमान पर्याय की उपेक्षा, करायी... यह सभी अभूतार्थ होने से असत्य अर्थ को प्रगट करता है। सीधी भाषा तो ऐसी है, जाने सभी पर्याय नहीं - ऐसा नहीं, पर्याय की

उपेक्षा करना और त्रिकाली भगवान शुद्धचैतन्य, उसका अवलम्बन लेना तब पर्याय होने पर भी उपेक्षा करके `नहीं' - ऐसा कहने में आया है। अब यह तो व्यवहार है इसकी बातें बहुत लम्बी है।

अब यहाँ आया `शुद्धनय' एक ही भूतार्थ होने से... दूसरे स्थान में तो शुद्धनय के भेद पड़े हैं, शुद्ध-अशुद्ध आदि परंतु यह वास्तव में अशुद्धनय भी व्यवहार में जाता है। यहाँ तो एक, शुद्धनय एक ही है, उसमें दूसरा विभाग नहीं, अर्थात ! शुद्धनय का विषय जो त्रिकाली भगवान ध्रुव, उसकी दृष्टि के लिये शुद्धनय एक ही है। अरे ! अब ऐसी बातें। समझ में आया ?

वस्तु जो है ध्रुव एक समय में, उसे एक न्याय से तो यहाँ नय कही है शुद्ध, फिर भी... शुद्धनय उसका विषय करनेवाला है, त्रिकाली ध्रुव को (विषय करनेवाला) यह एक ही शुद्धनय है, यह शुद्धनय अर्थात ज्ञान का अंश, यह त्रिकाली को विषय करता है। इसलिये शुद्धनय एक ही भूतार्थ (है) क्यों ? प्रयोजन तो द्रव्य को दृष्टि में लेना उसको स्वीकार करना, यह प्रयोजन है। समझ में आया ?

यह पर्याय, ज्ञान का अंश वह आत्मा, उसकी भी उपेक्षा करनी (है)। ज्ञान का अंश जो राग को जाने उसे राग के उपचार की भी उपेक्षा कराई है। आहाहा ! और राग है, इस प्रकार इसके दो प्रकार है, एक राग है यह साधन है और साध्य है कि जो अव्यक्त राग है जो बुद्धिपूर्वक राग है तो अबुद्धिपूर्वक राग (भी) साथ है, उसकी भी यहाँ उपेक्षा कराई अब। आहा ! यह हमारी वस्तु-दृष्टि के विषय में यह वस्तु नहीं `ज्ञान सो आत्मा' यह (भेद) भी हमारे दृष्टि के विषय में नहीं। आहाहा ! मार्ग बहुत सूक्ष्म।

शुद्धनय एक ही शब्द है। देखा ? `एक ही' यह अन्य जगह आचार्य शुद्धनय का भेद करें इसमें टीका में और अर्थ में आयेगा। अशुद्धनय भी, फिर अशुद्धनय को पर्यायनय कहकर व्यवहारनय कहना - ऐसा कहा है। आहाहा ! अर्थात क्या ? त्रिकाली वस्तु को स्वीकार कराने को, पर्याय और पर्याय के भेदों की उपेक्षा किये बिना, उनका लक्ष्य छोड़े बिना त्रिकाली ज्ञायकभाव की दृष्टि न हो और प्रयोजन तो ज्ञायकभाव का अनुभव करके-सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! त्रिकाल ज्ञायक चैतन्य सत् महाप्रभु, सर्वोत्कृष्ट परपारिणामिक शुद्धपारिणामिक परमभाव, शुद्ध सहज स्वभाव परमभाव, शुद्ध सहज परमभाव त्रिकाल, उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की प्रथम सीढ़ी वहाँ से प्रारंभ होती है, इसलिये उसे शुद्धनय एक ही है। समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा मार्ग।

`शुद्धनय एक ही भूतार्थ' इसप्रकार शुद्धनय एक ही सच्चा `होने से' फिर यह

भी `होने से', शुद्धनय एक ही सच्चा होने से, सत्य अर्थात है `विद्यमान-सत्य-भूत अर्थ को प्रगट करता है' शुद्धनय अर्थात कि जो ज्ञान का अंश भाग, वह शुद्धनय एक ही है। क्योंकि यह शुद्धनय त्रिकाली भूतार्थ वस्तु है, सत्य है, एकरूप है यह ध्रुव सत्य और विद्यमान है ध्रुव, भूतार्थ अर्थात विद्यमान पदार्थ है, उसे प्रगट करता है। अरेरे ! फिर से...

(श्रोता :- शुद्धनय पर्याय को कहा है न महाराज ?) पर्याय है परंतु पर्याय का लक्ष्य छुड़ाकर, पर्याय की दृष्टि द्रव्य ऊपर जाती है उसका नाम शुद्धनय (है)। उसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं - ऐसा कहते हैं। पूरण-पूरण वस्तु है, उसमें उसका ज्ञान और प्रतीति हुये बिना, पूर्ण है - ऐसा स्वीकार आये नहीं तब तक पूर्ण है - ऐसा उसे कहाँ है ? क्या कहा ? एक समय की पर्याय के अतिरिक्त पूर्ण प्रभु है, आहाहाहा ! अनंत गुण का प्रभु एकरूप ऐसी पूर्ण चीज है, उस वस्तु का आश्रय लिये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। अर्थात कि पूरण है-यह है तो है परंतु जिसकी दृष्टि में पूरण है - ऐसा न आये, तब तक उसे तो पूर्ण है ही नहीं। समझ में आया ? हाँ ?

यह प्रश्न हुआ था न ? वीरजीभाई के लड़के ने प्रश्न किया था, त्रिभुवनभाई ने, कि आप आत्म को कारणपरमात्मा कहते हो तब कारण हो तो कार्य तो आना चाहिए ? तब कारण परमात्मा तो सभी के पास है, अतः कार्य क्यों आता नहीं ? यह प्रश्न किया था। वीरजीभाई के त्रिभुवनभाई ने, क्या कहा ? यह आत्मा है न, त्रिकाली, उसे `कारणपरमात्मा' परमात्मा कहते हैं और उसमें से केवलज्ञानादि हो उसे कार्य परमात्मा कहते हैं पर्याय की पूर्णता को कार्य परमात्मा कहते हैं और वस्तु की पूर्णता को कारण परमात्मा कहते हैं तब जो कारण परमात्मा है, तब कारण है तो कार्य आना चाहिए ? - ऐसा प्रश्न हुआ था।

परंतु किसको, कारणपरमात्मा है, परंतु जो माने उसे है कि नहीं माने उसे है ? जिसकी दृष्टि में तो आया कि यह है तब उसे कारण परमात्मा हुआ। दृष्टि में... `यह है' - ऐसा जिसने स्वीकारा, उस दृष्टि में `यह है' - ऐसा स्वीकारा, तब कारणपरमात्मा `है' - ऐसा उसकी प्रतीति में आया और यह प्रतीति में आया इसलिये उसे सम्यग्दर्शनरूपी कार्य हुआ। ऐसी बात है।

फिर से... कारणपरमात्मा तुम कहते हो, `कारणपरमात्मा' कहो `कारणजीव' कहो, ध्रुव कहो, सामान्य कहो, एकरूप कहो, तब - ऐसा जो कारण प्रभु है व... उसे कारण कहो तो कार्य आना चाहिए। बात सच्ची है, परंतु किसे ? जो कारण प्रभु है त्रिकाली, उसका स्वीकार जिसे दृष्टि में हुआ... उसे यह कारणपरमात्मा है। परंतु इसकी दृष्टि में आया नहीं और दृष्टि में पर्याय और राग का स्वीकार है, यह पूर्ण

है, इसका तो स्वीकार है नहीं, तब उसे तो उसे कारणपरमात्मा है ही नहीं। समझ में आया ? यह गाथा सूक्ष्म है भाई ! यह तो जैनदर्शन का प्राण है यह गाथा। इसमें तो जितना (उपयोग) डाले उतना निकले - ऐसा है, पार नहीं। आहाहा !

क्या कहा ? कि एक समय में, आत्मा ध्रुव भी है और उसी समय में उसकी एक समय की पर्याय भी है। दो है न ! पर्याय भी इसीमें है न ? पर्याय में पर्याय हो दो है। अब इन दोनों में जिसका पर्याय का स्वीकार है कारण कि इसकी दृष्टि इसके ऊपर है, पर्याय है उसका स्वीकार हुआ, अथवा पर्याय से दूर लम्बा गया तो राग है, शरीर है इसप्रकार उसको स्वीकार हुआ परंतु उसमें त्रिकाली है उसका स्वीकार नहीं हुआ, वस्तु है फिर भी स्वीकार न हुआ, समझ में आया ?

यहाँ तो त्रिकाली है ज्ञायकभाव, ध्रुव स्वभाव उसका जिसने वर्तमान पर्याय में ज्ञान में ज्ञान हुआ, भले वह वस्तु पर्याय में नहीं आयी, परंतु पर्याय में यह है - ऐसा ज्ञात हुआ, उसे कारणपरमात्मा है, और ऐसा कारणपरमात्मा जैसा है वैसा स्वीकार हुआ उसे सम्यग्दर्शन का कार्य हुये बिना रहे नहीं। समझ में आया ? ऐसी बातें अब कहाँ ?

इसलिये शुद्धनय एक ही भूतार्थ है। आहाहा ! किसे ? जो वर्तमान पर्याय और राग उसकी उपेक्षा करके अर्थात उसको गौण करके अर्थात कि यह है फिर भी उसका आश्रय छोड़कर, यह त्रिकाल है ज्ञायकभाव है यह है उसका आश्रय लेने से उसका स्वीकार हुआ, यह तो अभूतार्थ है, इसी दृष्टि हुई ज्ञान में ज्ञातहुआ, उसे यह भूतार्थ है। आहा ! ऐसी बातें है। सूक्ष्मबातें बापू ! जैन दर्शन अभी तो स्थूल कर डाला। आहाहा !

दोनों है। पर्याय है पर्याय में राग भी है और द्रव्य भी है। है ? अब राग है, पर्याय है इतनी जिसकी दृष्टि वहाँ है उसके लिये तो (द्रव्य) इतना है। उसके लिये त्रिकाली है यह तो आया नहीं, जिसकी वर्तमान पर्याय ऊपर दृष्टि है उसे यह पर्याय है - ऐसा श्रद्धा में आया, तब तो यह पर्यायदृष्टि ओर आगे जाये पर्याय की दृष्टिवाला तो - ऐसा मानता कि राग है, यह शरीर है - ऐसा मानता है। यह उसकी दृष्टि तो दूर होकर इसप्रकार (राग और शरीर पर) जाती है। तब इतना माना कि यह तो बराबर अर्थात कि मिथ्यात्व है। इतना माना यह इसने इसलिये ठीक है, परंतु यह मिथ्यात्व है। आहाहा !

परंतु त्रिकाली वस्तु है। आहाहाहा ! एक समय में पूर्णानंद का नाथ प्रभु यह 'है' फिर भी पर्यायबुद्धिवालों को वह नहीं ? समझ में आया ? आहा ! इसप्रकार जिसे राग की रुचि है वह, यह पुकार करते है कि व्रत-तप और भक्ति करते-

करते निश्चय (प्रगटे) अर्थात राग का स्वीकार है उसे। उसके अनुसार व्यवहारनय का विषय है अवश्य `नय' नहीं परंतु दूसरी अपेक्षा उसे व्यवहारनय का विषय है। `नयवाला' उसे जाने। समझ में आया ?

परंतु उसे त्रिकाली वस्तु है महा प्रभु ! जिसमें संपूर्णतत्त्व भरा है पूरण परमात्मस्वरूप है जिसके गुणों का माप नहीं इतने तो गुण है, इन सभी गुणों का एकरूप जो है... आहाहा ! यही सत्य है। किसको ? ***कि जिसने पर्याय और राग की उपेक्षा करके और त्रिकाली ऊपर जिसने दृष्टि डाली, उसके लिये यह भूतार्थ सत् है और इससे भूतार्थ सत् है ऐसी दृष्टि हुई इसलिये दृष्टि भी सच्ची है। समझ में आया ?*** कहो छोटा भाई !

जो है, दोनों हैं, पर्याय है, राग भी है और त्रिकाली भी है। अब इसमें यह दोनों हैं, जिसको त्रिकाली वस्तु की दृष्टि नहीं, उसे वर्तमान पर्याय और राग है उसकी दृष्टि में, उसके लिये तो बराबर है वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा ! क्योंकि उसकी दृष्टि भूतार्थ ऊपर नहीं। त्रिकाली वस्तु है उसके ऊपर उसकी दृष्टि नहीं गई। आहा !

अब जिसे त्रिकाली वस्तु है - एक ही वस्तु, शुद्धनय एक ही है और उसका विषय एकरूप ही परमार्थ है। आहाहा ! यह शुद्धनय एक ही सच्चा होने से एक ही सत्य होने से, यह सत्य अर्थात विद्यमान यह है उसे, और सत् है और विद्यमान पदार्थ है उसे यह प्रगट करता है। अर्थात शुद्धनय विद्यमान पदार्थ है उसे विषय करके `है' इसप्रकार उसे प्रगट करता है। `है' इसप्रकार उसकी पर्याय में प्रगट होता है। आहाहाहा ! अरे ! - ऐसा सूक्ष्म है।

`पंचाध्यायी' में उन्होंने यह अर्थ लिया है कि जो यह शुद्धनय है एक ही कहता है और उसके दो भेद करें तो सर्वज्ञ की आज्ञा के बाहर मिथ्यादृष्टि है। - ऐसा पंचाध्यायी में है। क्या कहा ? पंचाध्यायी में - ऐसा है कि भगवान की आज्ञा एक ही है कि शुद्धनय वह एक ही नय है इस एक शुद्धनय के दो भाग करे-तो अशुद्ध है और अशुद्ध उपचरित है और अशुद्ध अनुपचरित है, ऐसे भेद व्यवहार करता अशुद्धनय के, शुद्धनयमें से तो, सर्वज्ञ की आज्ञा के बाहर मिथ्यादृष्टि है। पंचाध्यायी में - ऐसा कहा है। तो फिर... इसप्रकार मक्खनलालजी ने अर्थ किया है वहाँ तो... दूसरे तो अन्य जगह गड़बड़ किया है बहुत जगह, वहाँ अर्थ किया है कि भाई यह यहाँ कहते हैं यह स्वसमय में आश्रय लेने के लिये इस स्वसमय की अपेक्षा एक नय कही है। स्वसमय अर्थात आत्मा त्रिकाली। समझ में आया ? उन्होंने लिखा है नीचे मक्खनलालजी ने, पंचाध्यायी का पहला अर्थ मक्खनलालजी ने ही किया)है)। फिर

दूसरा देवकीनंदनजी ने और तीसरा फूलचन्दजी ने पंचाध्यायी की तीन टीकायें है। यहाँ तीनों पुस्तकें है। यह बात फूलचन्दजी की पुस्तक में है।

यहाँ क्या कहना है ? आहा ! प्रभु एकसमय में... पर्याय भी है, राग भी है और यह ध्रुव एकरूप भी है। अब जब एकरूप वस्तु है उसे स्वीकार करना हो तब उसे पर्याय और राग को जाननेवाली नय है उसकी उपेक्षा करनी पड़ेगी। उसे हेय करके एक त्रिकाली वस्तु है उसे उपादेय करना पड़ेगा। समझ में आया कुछ ?

शुद्धनय... गंभीर है बापू ! यह गाथा तो ऐसी गाथा है। आहाहा ! ***अस्ति तो दोनों की है - पर्याय के भी अस्ति है, राग की भी अस्ति है और ध्रुव की भी अस्ति है। अस्ति अर्थात है, दोनों विद्यमान है, परंतु एक विद्यमान है उसे अविद्यमान करके अर्थात लक्ष्य छुड़ाने के लिये, वह नहीं - ऐसा कहकर और विद्यमान एक त्रिकाली वस्तु है उसकी दृष्टि कराने यह सत्य और भूतार्थ वह एक ही है।*** आहाहाहा ! कहो, हीराभाई ! - ऐसा सूक्ष्म है। हमारे आये है न हसुभाई और यह आये है। सूक्ष्मगाथा है न। आहाहाहा !

प्रभु तुम कितने, कहाँ हो पूरे ? वहाँ उसकी दृष्टि ले जाने, वहाँ उसकी दृष्टि का विषय बनाने, यह पर्याय और राग होने पर भी वह दृष्टि का विषय नहीं, यह गुण भेद करना भी दृष्टि का विषय नहीं। तब फिर पर्याय और राग वह तो दृष्टि का विषय है ही नहीं। आहाहा ! यह जानने लायक एक ही है परंतु आदर करने के लिये तो यह एक ही त्रिकाली वस्तु यह ही शुद्ध और सत्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह दूसरी पंक्ति का अर्थ चलता है। यह आहाहा ! गहन है प्रभु ! आहाहा ! आत्मा शरीर प्रमाण असंख्य प्रदेशी, उसमें अनंत... अनंत... अनंत... अनंतानंत अनंतानंत को अनंतबार गुणा करो और उसके बाद जो राशि आये ऐसे उसको अनंतबार गुणा करो, उसकी राशि आये उसे अनंतबार गुणा करो, यह अनंत बार गुणा करते-करते यह अनंत अनंत चले जायें अंदर तो भी उन गुणों की सीमा, उस संख्या में आती नहीं। आहाहा ! - ऐसा परमात्मस्वभाव... - ऐसा द्रव्य स्वभाव। आहाहा ! यह तो सर्वज्ञ के अलावा कहीं है नहीं। समझ में आया ? आहा !

श्वेताम्बर में - ऐसा कहते हैं एकसमय केवलज्ञान दूसरे समय केवलदर्शन, परंतु इस बात में कितना फर्क। यहाँ तो परिपूर्णवस्तु है उसका परिपूर्णज्ञान और दर्शन एक समय में दोनों होते हैं। समझ में आया ? यह तो पूर्ण पर्याय की बात की। परंतु यह पूर्ण पर्याय जिसमें से निकलती है वह वस्तु पूर्ण है। आहाहाहा ! यह पूर्ण वस्तु ज्ञान से और दर्शन से पूर्ण - इसप्रकार अनंतगुणों से पूर्ण वस्तु है, उसे

यहाँ सत्य कह कर विद्यमान कहकर, अस्तित्ववाली सही वस्तु है - ऐसा कहकर उसे सत्य और भूतार्थ कहने में आता है। आहाहा !

है ? पहले - ऐसा था कि अविद्यमान, असत्य और अभूत अर्थ को प्रगट करती है, दूसरे में विद्यमान सत्य और भूत अर्थ को प्रगट करती है। दो सिद्धांत आ गये, गाथा के न्याय।

`यह बात दृष्टांत से बताते है' अब कहते हैं, कि एकदम न समझ में आये तुझे, तो हम दृष्टांत देकर समझाते (है)। `जैसे प्रबल कीचड़ के मिलने से' - विशेष (बात) यहाँ है अकेला कीचड़ मिलने से नहीं। (परंतु) `प्रबल' कीचड़ मिलने से... पानी में कीचड़ है न पंक... प्रबल कीचड़ मिलने से जिसका सहज एक निर्मल भाव... (पानी का जल (का)) सहज स्वाभाविक एक निर्मलभाव है। उसमें मलिन भाव यह उसका स्वभाव है ही नहीं। आहाहा ! यह पानी का सहज एक निर्मल भाव ढ़क गया है। आहाहा ! अर्थात कि मलिनता की पर्याय देखनेपर यह दिखता नहीं, अर्थात इसे ढ़क गया है। निर्मल जल तो है। परंतु मलिनता को देखनेवाले को तो निर्मल जल ढ़क गया है। अर्थात निर्मल जल दूर हो गया है। आहाहाहा ! है ? तिरोभूत (अर्थात) दूर हो गया है। अर्थात कि जो मलिन को देखता है कादव को, वहाँ निर्मल जल है तो अवश्य, परंतु वह उसे देखता नहीं। आहाहा ! इसलिये उसे निर्मल जल का स्वरूप तिरोभूत, ढ़क गया (है)। दूर हो गया, उसकी दृष्टि में आया नहीं... मलिन ही दिखा, परंतु निर्मल जल होने पर भी दिखता नहीं। आहाहाहा !

`यह ऐसे जल का अनुभव करनेवाला' निर्मल जल जहाँ ढ़क गया है। आहाहाहा ! मलिन को देखनेवाले कीचड़ से मिले हुये जल को, मिले हुये कीचड़ से मिला हुआ देखनेवाले को निर्मलजल है यह दृष्टि में आता नहीं अर्थात ढ़क गया है, उसे तो आच्छादन हो गया है। आहाहा !

अभी तो यह दृष्टांत है हाँ ! फिर उसका सिद्धांत घटायेंगे बापू। मार्ग - ऐसा सूक्ष्म है भाई ! उसे ज्ञान का मंथन करना चाहिए। ज्ञान के अंदर कसरत करना पड़े हाँ। आहाहा !

कि जो जल... अभी पहले दृष्टांत में, जल है तो निर्मल परंतु कीचड़ के मिलने से वह वर्तमान पर्याय में मलिन दिखता है, उसे जो जल निर्मल है वह ढ़क गया है, उसकी नज़र में आया नहीं इसलिये उसे `नहीं' उसे ढ़क गया है। आहाहा !

कुकड़ा (गाँव) है न वहाँ मूळी के पास, कुकड़ा गाँव है। वहाँ हम गये थे। जेठ महिने का समय था राजकोट जाना था। रतनचन्दजी शतावधानी वहाँ आये थे, पानी गंदा ही था, वहाँ कुआ नहीं था। अभी एक राजपूत गया था न अस्पताल,

चन्दुभाई के पिता के लिये, वहाँ यह कुकड़ा के राजपूत थे, वह आये थे, दर्शन करने विचारे, हम कुकड़ा के हैं और हमारे यहाँ जैनों की वस्ती नहीं, परंतु उपाश्रय बनाया है साधु आयें, तब हम उस दिन गये उपाश्रय नहीं था चौपाल में ठहरे थे हम। यह कोई राजपूत थे वह आये थे और कोई होंगे शहर में। हमें पानी मिला, एकदम मैला। कारण कि यहाँ के तालाब का पानी मैला, इस तरफ (दूसरा) कोई साधन नहीं, कुआ नहीं, निर्मल पानी की नदी बहती नहीं - ऐसा कुछ है नहीं। इसे महाराज ठरने[१] देना, घर (जाकर), ठहराना मैल नीचे बैठ जाये, इसप्रकार। आहा ! हा !

परंतु, वह मैल को ही देखता है, यह तो पानी अंदर निर्मल है वह तो देख सकते नहीं। हाँ ? देख सके तो ठारने के लिये प्रयत्न करें। इसप्रकार... जल का एक निर्मलभाव तिरोभूत हो गया है। ऐसे जल का अनुभव करनेवाला पुरुष-जल और कीचड़ का विवेक नहीं करनेवाला, पानी को कीचड़ से जुदा नहीं जाननेवाला, देखा ? गंदा पानी यह कीचड़ है और जल निर्मल है, दोनों को भिन्न नहीं करनेवाला, आहा...! दोनों का विवेक नहीं करनेवाले बहुत तो, सभी हैं - ऐसा नहीं कहा। सभी मैला अनुभव करते हैं - ऐसा नहीं कहा। बहुत तो, आहाहा ! उसे अर्थात पानी को मलिन ही अनुभव करते हैं। मैला सो पानी इसप्रकार मलिन ही अनुभव करते है, बहुत !

परंतु कितने ही अपने हाथ से डाले हुये, अब यहाँ भी `कितना' कहा, सभी नहीं। कितने ही व्यक्ति `अपने हाथ से डाले हुये' पुनश्च यह क्या कहा ? यहाँ नौकर को आज्ञा की नहीं कि इसप्रकार यह डालो और इसे भिन्न करो, खुद स्वयं भिन्न करता है। मैल और पानी को स्वयं अपने (हाथ) से भिन्न करता है। अपने हाथ से डाला क्या ? कतकफल निर्मली औषधि, एक औषधि होती है निर्मली (जो) किराने की दुकान पर मिलती है, वह पानी में डालते ही मैल भिन्न हो जाता है और पानी भिन्न हो जाता, निर्मली औषधि आती है औषधि लिखा है न इसमें निर्मली औषधि, यह अपने हाथ से डालता है। नौकर से कहा नहीं, कि इसमें डालो... इसप्रकार अर्थात कि पानी के प्रमाण में जितनी चाहिए उतनी स्वयं अपने से डालता है निर्मल औषधि।

यह अपने हाथ से डाला हुआ, फिर यहाँ कोई तर्क करे कि आत्मा के हाथ तो नहीं और आप कहते हो कि अपने हाथ से डाले हुये, भाई ! यहाँ तो दृष्टांत है। यह हाथ आत्मा का नहीं, अपने हाथ से डाले हुये यह तो दृष्टांत से समझाना है कि यह हाथ है अर्थात अपने हाथ से डालता है। डाल सकता है, कि हाथ

---

१ मैले पानी को थोड़ी देर रखा रहने दे तो मैल अपने आप नीचे बैठ जाता है। इस प्रक्रिया को ठारना कहते है।

उसका है यह अभी सिद्ध करना नहीं। आहाहा !

अपने हाथ से डाला हुआ, डाला गंदे पानी में कतक फल डाला और डालने मात्र से... इसप्रकार, यह इसप्रकार अंदर डाला जहाँ, डालने मात्र से उत्पन्न हुआ, आहाहा ! देखो ? तत्काल मैल और निर्मल जल भिन्न हो गया। आहाहाहा ! जल-कीचड़ के विवेक से पानी और कादव की भिन्नता के कारण अपने पुरुषार्थ द्वारा... आहाहा ! है न ? इस जाति का पुरुषार्थ किया, आर्विभूत किया गया, निर्मल पानी है, वह प्रगट करने में आया, था तो (निर्मल ही) परंतु मलिनता के कारण ढ़का हुआ था, उस मलिन की दृष्टिवालों ने, उसने यहाँ निर्मल (पना) प्रगट किया। निर्मल 'है' - ऐसा प्रगट किया है ? आर्विभूत अर्थात प्रगट किया। तिरोभूत अर्थात ढ़क गया। मलिन(ता) को देखनेवाले को निर्मल जल ढ़क गया है परंतु यहाँ मलिनता और जल को भिन्न करनेवाली औषधि डालने पर, अपने हाथसे-पुरुषार्थसे आर्विभाव करने में आया हुआ 'सहज एक निर्मलभावपने के कारण' पानी का स्वभाव, यह तो स्वभाव ही उसका है कहते हैं। स्वभाव सहज एक निर्मलभावपने के कारण जल को निर्मल ही अनुभवता है। पानी को तो 'निर्मल ही' अनुभवता है। वह मलिन अनुभवता है, भेद नहीं करनेवाला, मलिनता को ही देखनेवाला, अंदर जल निर्मल है यह उसको ख्याल नहीं। आहाहाहा !

अरे ...! उदाहरण भी कैसा दिया है देखो-यह तो दृष्टांत हुआ।

'इसीप्रकार जल और कीचड़ के उदाहरण से... अब सिद्धांत सिद्ध करना है आत्मा में' इसीप्रकार प्रबल कर्म के मिलने से देखा ? राग की तीव्रता होती है-कर्म का उदय तीव्र होता है और विकार भी स्वयं तीव्र करता है पर्याय में 'प्रबल कर्म के मिलने से' आहाहा ! परद्रव्य लिया है, परंतु परद्रव्य के निमित्त से होनेवाला विकारी भाव, आहा ! उसके मिलने से जिसका सहज एक ज्ञायकभाव, भगवान आत्मा स्वाभाविक एक शुद्ध ज्ञायकभाव, कारणपरमात्मा का स्वरूप जो एक निर्मल ज्ञायकभाव 'तिरोभूत हो गया है' किसको ? जो रागद्वेष मलिन पर्याय को देखनेवाले को, यही ज्ञायकभाव है है तो है परंतु उसको तिरोभूत हो गया है ढ़क गया है। है तो ज्ञायक, ज्ञायक ही हाँ। आहाहा !

ज्ञायकभाव है, वह तो कभी भी 'मलिन होता नहीं, यह तो पर्याय में मलिनता है। पर्याय (मैली है) अंदर ज्ञायकभाव तो ऐसे का - ऐसा ही स्थित है। सुन्दर शुद्ध चैतन्यघन प्रभु आहाहा ! - ऐसा निर्मल है ? जिसका एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है। क्या कहा ? जो जीव को राग और द्वेष और कर्म के संबंधवाली मलिनता को देखता है, उसे ज्ञायकभाव है तो अवश्य परंतु उसको ढ़क गया है। वह ज्ञायकभाव

ज्ञायकभाव ढकता नहीं, ज्ञायकभाव प्रगट होता नहीं। ज्ञायकभाव तो त्रिकाल (एकरूप) है।

परंतु मलिनता को देखनेवाले को ज्ञायकभाव है विद्यमान... फिर भी उसे (ज्ञायकभाव) ढ़क गया है। क्या कहा समझ में आया ? आहाहा ! जैसे पानी निर्मल है और मलिनता तो उसकी पर्याय में है। इसीप्रकार भगवान आत्मा ज्ञायकभाव तो त्रिकाल निर्मल ही है, परंतु राग और द्वेष एवं पुण्य-पाप की मैली पर्याय को देखनेवाले को, उसको ही जो देखता है - नज़र उसमें ही वही स्थिर है। पर्याय ऊपर और राग ऊपर उसकी नज़रें वहाँ है उसे ज्ञायकभाव विद्यमान स्थित है, परंतु इसके लिये ढक गया है। समझ में आया ? आहाहा !

ऐसी बात... यह तो अमृत का झरना है। अमृत के मंत्र है यह तो, आहा ! जैसे सर्प को उतारने का मंत्र होता है बिच्छु को काटने का मन्त्र होता है, इसप्रकार यह मंत्र है। आहाहा !

`ऐसा'... क्या कहा ? `**इसप्रकार प्रबल कर्म के मिलने से**' अर्थात विकारी परिणाम की तीव्रता के कारण, पर्याय में हाँ `**उसका सहज एक ज्ञायकभाव**' स्वभाविक एक ज्ञायकभाव, राग और द्वेष को देखनेवाले को, उसके अस्तित्व को देखनेवाले को, ज्ञायक का अस्तित्व तो ढ़क गया है, है फिर भी वह देखता नहीं अर्थात ढ़क गया है। आहाहाहा !

ऐसा उपदेश लो ! फिर लोक कहते हैं कि सोनगढ़वाले एक निश्चय की बात करते हैं। परंतु व्यवहार से भी होता, (- ऐसा कहते नहीं) बाबूलालजी ने कहा था, न सुरेन्द्र के पास गये थे वहाँ बाबूलाल, वह जो ईसरी में है न सुरेन्द्र ! उन्होंने कहा था, व्यवहार से होता है, इसने मना किया, सभी को यह तकलीफ खड़ी होती है।

यह पानी जैसे मैला है तो अब मैल से निर्मलता का ज्ञान होता है ? इसीप्रकार पर्याय में विकार है, विकार से एक ज्ञायकभाव का भाव हो ? यह एकदम गलत बात है। समझ में आया ?

यह व्यवहार और राग को देखनेवालों को तो व्यवहार और राग ही दिखता है। उसकी उपेक्षा करके जो ज्ञायकभाव है वह तो उन्हें ढ़क गया है। उसकी उपेक्षा कर डाली है। ज्ञायकभाव त्रिकाल है उसकी उपेक्षा, उपेक्षा मलिन भाव की करनी चाहिए। समझ में आया ? आहाहा !

जो आत्मा में पुण्य-पाप के मलिनभाव है उसकी उपेक्षा करना चाहिए। कारण कि वास्तविक ज्ञायकभाव में यह है नहीं, परंतु जिसकी उपेक्षा करना है उसका आश्रय-

उसका आदर किया और जिसकी उपेक्षा नहीं करनी थी उसकी उपेक्षा की। त्रिकाली ज्ञायकभाव है सहजरूप, उसकी उपेक्षा की, अर्थात उसे ढ़क गया (है)। आहाहा !

- ऐसा वीतरागमार्ग ! अभी तो सुनने को मिलना मुश्किल हो गया है बाहर की... क्रियाकाण्ड में फँसे और व्यवहार करते, करते और व्रत और तप और भगवान की पूजा और भक्ति और उपवास और हम गये थे एकबार, दूसरी बार बुखार आया तब वह यह स्वयं सुरेन्द्र अभिषेक करते थे, भगवान की प्रतिमा का करते थे। बुखार आया तब हम गये थे वहाँ, यह सभी करें तो जाने कि अपन... ओहोहो ! कौन करे बापू ! यह शरीर की राग की सभी क्रिया तो जड़ की है थोड़ा तुम्हार भाव हो तो यह भी शुभ भाव राग है, उस राग को देखनेवाला राग से रहित ज्ञायकभाव है, उसे तो यह देखते नहीं। उस समय भी राग होने पर भी, राग को ही देखनेवाले को भी राग होने पर भी वहाँ ज्ञायकभाव है, राग होने पर भी वहाँ ज्ञायकभाव है। परंतु राग को देखने पर ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है। आहा...हा ! उसने तो उसे (ज्ञायकभाव को) निकाल दिया, और यह प्रगट होकर पुण्य और पाप के भाव बाहर आ गये (है)। आहाहा ! समझ में आया ? सहज ऐक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया (है) इसमें जरा गंभीरता है, सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो जाता नहीं। ज्ञायकभाव तिरोभूत हो जाता नहीं।

परंतु... कर्म के मिलने से जिसका, ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले के लिये बात है। आहाहा ! समझ में आया ? जो कुछ पुण्य-पाप के भाव, उनका ही अनुभव करता है उसे ज्ञायक एक सहज भाव ढ़क गया है, उसकी दृष्टि में वह आता नहीं। उसकी दृष्टि में तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति जो करते वह हमारा है। आहा...हा ! इसप्रकार प्रबल कर्म के मिलने से देखा ? कठिन कर्म का मिलना-तीव्र विकार चाहे अवश्य हो। आहाहा ! परंतु जिसका सहज एक ज्ञायकभाव ढ़क गया है - ढ़क गया की व्याख्या इतनी। ज्ञायकभाव ढ़कता नहीं।

द्रव्यभाव, द्रव्यस्वभाव है यह तो कायम शुद्ध निर्मलानंद ही है। परंतु जो मलिनाता को देखनेवाले को ज्ञायकभाव ढ़का हुआ न होने पर भी उसे ढ़क गया - ऐसा कहा जाता है। पर्याय दृष्टिवाले को राग की दृष्टिवाले को ज्ञायकभाव विद्यमान है परंतु अपनी नजर में वह लेता नहीं, इसलिये उसे ढ़क गया है। समझ में आया ? आहाहा !

ज्ञायकभाव तिरोभूत होता नहीं यह वस्तु जो ज्ञायक चैतन्यमूर्ति तो त्रिकाल निर्मलानंद प्रभु ही है। आहाहा ! परंतु जिसो वर्तमान में राग और दया-दान और पुण्य-पाप के विकार को देखनेवाला है और उसकी रुचि में रुका है, और उससे होगा -

ऐसा माननेवाले हैं, उसे ज्ञायकभाव ढ़क गया है। आहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

ऐसा सहज एक ज्ञायकभाव ढ़क गया है, ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाला देखा ? ऐसे राग-द्वेष को ही अनुभव करनेवाले... जिसे ज्ञायकभाव विद्यमान है परंतु नजर में लेता नहीं, ऐसे राग को अनुभव करनेवाले जीव को, आहाहा ! आत्मा और कर्म का विवेक नहीं करनेवाले, आहाहा ! भगवान ज्ञायकभाव और रागद्वेष यह भावकर्म विकार भाव, आहाहाहा ! दोनों की भिन्नता नहीं करनेवाला, दो है, वस्तु अपेक्षा दो है, इन दो को दो तरह (से) भिन्न नहीं करनेवाला। आहाहाहाहा ! अर्थात ? आत्मा और कर्म का विवेक अर्थात् भिन्न नहीं करनेवाले अर्थात् आत्मा सहज ज्ञायकभाव यह तो है ही। परंतु उसकी पर्याय में पुण्य-पाप के शुभाशुभ भाव की मलिनता उसका अनुभव करनेवाला यही अस्तित्व है, इतनी ही अस्तित्व स्थिति है। (यही आत्मा है) - ऐसा अनुभव करनेवाले उसे महाप्रभु का जो अस्तित्व है जो ज्ञायक सहज स्वरूप है वह उसकी नजर में आया नहीं, अर्थात ढ़क गया है। छोटाभाई ! - ऐसा है - ऐसा... कलकत्ता फलकत्ता (में) कहीं नहीं मिले, व्यापार में भी न मिले। आहाहा !

दूल्हा को छोड़कर बारात एकत्र करली, दूल्हा कहते हैं न आपके यहाँ, दूल्हा बिना बारात एकत्र कर ली। दूल्हा बिना बारात कहलाये ही नहीं, इस प्रकार निश्चय वस्तु का भान हो उसके राग को व्यवहार कहने में आता (है), परंतु जिसे ज्ञान ही नहीं और राग को ही अपना माने, उसे व्यवहार कहाँ है ? समझ में आया ? कारण कि यह तो राग को ही अपना मानता है, इसप्रकार यह ही स्वयं है इसमें पुनः दूसरी चीज कहाँ आयी ? आहा ! उसे तो यही ही है उसे ज्ञायकभाव है यह तो इसे व्यवहार हो गया-पर हो गया उसे यह व्यवहार हो गया। आहा !

निश्चय से दया, दान, व्रत, भक्ति के भाववाले को ज्ञायकभाव ढ़क गया (है) उसे ज्ञायकभाव दूर हो गया। आहाहा ! जो भूतार्थ है उसे अभूतार्थ कर डाला और जो अभूतार्थ है उसे भूतार्थ मानकर अनुभव किया। आहाहा !

`ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले पुरुष', पुरुष अर्थात आत्मा। पुरुष अर्थात कहीं स्त्रियों का आत्मा नहीं कर सके और पुरुषों का ही आत्मा - ऐसा कर सकते है - ऐसा नहीं। पुरुषों अर्थात आत्मा। फिर चाहे स्त्री हो कि चाहे पुरुष हो, या तो चाण्डाल हो कि नारकी का आत्मा हो। आहाहाहा ! परंतु जो कोई पुरुष राग को... जिसकी वस्तु में यह नहीं ऐसे राग को ही अनुभव करनेवाले उसका ज्ञायकभाव ढ़क गया होने से, इन दोनों का विवेक नहीं करनेवाले, व्यवहार से विमोहित... आहाहाहा !

वह पुण्य के भाव में ही व्यवहार में मोहित हो गया (है) विमोहित वहाँ विशेष मोहित, मूर्छित हो गया अर्थात कि वहाँ रुक गया। यह राग है वह मैं हूँ और

यह हमारा कर्तव्य है, और उससे मुझे लाभ होगा। आहाहा ! ऐसी स्पष्ट बात है, 'व्यवहार से विमोहित हृदयवाले'... देखा ? आहाहा ! जो भगवान ज्ञायकस्वरूप विद्यमान वस्तु मौजूद है, निर्मलानंद सहजस्वभाव उसके सामने देखता नहीं और राग का भाव जो दया और दान और व्रत और तप और भक्ति, उसके सामने देखनेवाले यह व्यवहार विमोहित है - व्यवहार में रुक गये हैं, विशेष व्यवहार में लीन है विमोहित मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! (श्रोता :- अठ्ठाईस मूल गुण में भी दोष लगता है ?) उसमें रुक गये, - ऐसे सभी एक है। यह सुरेन्द्र अभी एक है न ? वहाँ बाबूलालजी गये थे। वहाँ सभी - ऐसा कहते हैं वह। आहाहा ! ऐकांत है, व्यवहार से नहीं होता - ऐसा मानना वह एकांत है। राग की क्रिया करते - करते आनंद प्रगटे, ज्ञायक प्रगटे तब तो अनेकांत हो। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि स्व के आश्रय से प्रगटता है और पर के आश्रय से नहीं प्रगटे, उसका नाम अनेकांत है। तब यह कहते हैं कि राग करते-करते हो उसका नाम अनेकांत है और राग से प्रगटे - ऐसा न माने तो एकांत है। आहाहा !

क्या हो बापू ? प्रभु तुम्हारे उद्धार का मार्ग तो यह है। आहा ! कहाँ रुक गया, जहाँ वस्तु है वहाँ नहीं जाता, जो वस्तु में नहीं, (उस) वस्तु में रुक गया। आहाहा ! चाहे तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम कि पंचमहाव्रत के हों, परंतु वह व्यवहार विमोहित है उसमें जो फंस गया है और आत्मा तो उससे भिन्न है उसे यह देखता नहीं तो उसे तो आत्मा ढ़क गया है। आहाहाहा !

समझ में आये - ऐसा है और भाषा सरल है कहीं बहुत (कठिन नहीं)।

व्यवहार से विमोहित हृदयवालों को... जैसे भाव का विश्वरूपपना प्रगट होता है - ऐसा अनुभव करता है। क्या कहा यह ? उस आत्मा को जिसमें भावों का अनेक विश्व अर्थात् अनेकरूप... स्वयं भगवान पहले कहा कि सहज एक ज्ञायकभाव है यह तो सहज एक ज्ञायकभाव है और यह विकारी भाव तो अनेक है, जिसमें भावोंका विश्वरूप अर्थात अनेकरूपता प्रगट है। प्रगट है, विकार ही प्रगटता है, उसे तो विकार ही प्रगट है, आहाहा ! और भगवान आत्मा ज्ञायकभाव तो उसे अप्रगट है। आहा ! जो प्रगट है विद्यमान पदार्थ, उसे प्रगटरूप न माने, पर्याय में रागादिक का प्रगटपना, उसे वह प्रगट है - ऐसा मानता है। यही है सभी यही है। (वस्तु) ही यह है। आहाहा ! (श्रोता :- एक-एक में मन नहीं लगे तो अनेक में मन लगाता है ? उत्तर :- हाँ, मन जाता है अनेक में इसलिये मिथ्यादृष्टि है।

फिर... स्वरूप का स्वीकार होने के बाद... राग आये उसे भिन्नरूप ज्ञेयरूप जानते हैं। परज्ञेय की तरह जानते हैं और यह (अज्ञानी) तो अपना स्वरूप ही राग है और

उससे मुझे लाभ होगा - ऐसा माननेवाले है। आहाहा ! समझ में आया ?

आत्मा ज्ञायक है सहज एक ज्ञायक है - सहज एक ज्ञायकभाव है। ऐसे शुद्धनय से उसका अंतरदृष्टि में ज्ञान होने पर तब तो उसे यह मैलरूप मैं हूँ यह तो नहीं रहा, फिर मैल है उसे तो यह जानता है। जैसे स्व परिपूर्ण सहज स्वभाव हूँ - ऐसा जानता है, उसकी पर्याय में राग है वह राग को जानता है। यह भी जानता है - ऐसा कहना भी व्यवहार है। वास्तव में तो यह ज्ञान की पर्याय को ही जानता है। समझ में आया ? आहा !

विश्वरूपपना यह विश्वरूपपना क्यों लिखा है ? उसमें सहज एक ज्ञायकभाव है और त्रिकाली एकरूप है वस्तु ध्रुव नित्यानंद ध्रुव। जब पुण्य-पाप के भाव अनेकरूप है। असंख्य प्रकार के दया, दान, व्रत, पूजा, नाम स्मरण, जाप-माला, भक्ति आदि शुभभाव के अनेक प्रकार है औंर अशुभ के अनेक प्रकार है। आहाहा ! यह शुभ के अनेक प्रकार के भावों को अनुभवनेवाला, व्यवहार में उलझ गया (है) आहा ! उस व्यवहार को ही अपना माननेवाले... आहाहा ! ऐसी बातें है। ऐसे हृदयवाले जिसमें भावों का अनेकपना प्रगट है। वह वस्तु है वह अव्यक्त है, पर्याय की अपेक्षा अप्रगट है। पर्याय में प्रगट नहीं वस्तु में प्रगट है। पर्याय की अपेक्षा से वस्तु (ज्ञायक) अव्यक्त अर्थात अप्रगट है और उसे यह पर्याय है वह व्यक्त और प्रगट है। आहाहाहा !

अज्ञानी को यह पुण्य के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति यही उसे प्रगट है, प्रगट दिखता है। देखो न यह कितना छोड़ा, दुकान छोड़ी, धंधा छोड़ा, पत्नी छोड़ी, बच्चे छोड़े और यह बैठा। यहाँ अभी एक (बाई) आयी थी वह कहती थी, हमने त्याग किया है और समकित नहीं न यह कैसे ? आहाहा !

भाई ! श्वेताम्बरों का तो सभी समझने जैसा है... दिगम्बर में तो छुल्लक हो तो भी उसे बहुत सहन करना होता है। साधु को तो नग्नरूप में रहना, इन्हें तो (- ऐसा) कुछ नहीं करना, उसकी तो बात क्या ? परंतु विचारे यह नग्न रहें, शीतकाल की ठंड़। आहाहा ! शांतिसागर यहाँ आये थे ९७ में शांतिसागर बहुत बड़े अभी आचार्य। यहाँ शीतकाल के पूष महिने में थे, यह बाहर निकले अंदर दहलान में सुलाया था, बाहर निकले तो इसप्रकार कपें कपें कपें ठंड़ी बहुत बंद करो बंद करो बंद करो। वैसे विचारे नरम थे, परंतु वस्तु स्थिति यहाँ व्यवहार के हृदयवाले अनेकपना प्रगटता है आत्मा - ऐसा अनुभवता है। जैसा है नहीं उसे अनुभवता है, यह मिथ्यादृष्टि है। विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ३९ गाथा-११ ता. २१-७-७८ शुक्रवार अषाढ वदी-१ सं.२५०४

आज श्रावण वदी एकम है सिद्धांत में। दिव्यध्वनि दिन, भगवान की दिव्यध्वनि का आज दिन है। भगवान की राजगृही के पास विपुलाचल पर्वत पर आज दिव्यध्वनि निकली थी। केवलज्ञान तो वैशाख सुदी दशवीं को हुआ था। परंतु छियासठ दिन वाणी बंद रही। वाणी का योग नहीं और सुननेवालों का (भी) योग नहीं। (भगवान महावीर की) वाणी छियासठ दिन बंद रही। आज सुबह में सूर्योदय के दो घड़ी... (बाद) दिव्यध्वनि छूटी। इन्द्र लाये गणधर को, गौतमस्वामी को अंदर लाये, मानस्थंभ जहाँ देखा, उसमें उनका मान गल गया, और उन्हें स्वयं अंदर भावश्रुतज्ञान प्रगट हो गया। ***भगवान की वाणी निकली, उस वाणी में भावश्रुतज्ञान आया, केवलज्ञान नहीं।*** भावश्रुतज्ञान में सभी आये। क्योंकि वाणी है न अर्थात उनके भावरूप अर्थ के कर्त्ता तीर्थंकर कहलाते हैं और उसकी रचना ग्रंथ के कर्त्ता गौतमगणधर (है)। इसलिये वह भावश्रुतरूप परिणमती है और बाद में उसकी रचना द्रव्यश्रुतरूप करते हैं। परंतु भावश्रुतरूप परिणमते है उस वाणी को भी भगवान ने भावश्रुत कहा - ऐसा कहा। ***`धवल' में लेख है भगवान की वाणी में भावश्रुत द्वारा कथन (होता) - ऐसा आया, भावश्रुत द्वारा समझाया*** अर्थ करनेवालों ने। आहाहा !

सभी भावश्रुत से समझाया सब कुछ, केवलज्ञान आदि जितने जगत के (पदार्थ) छह द्रव्य उनके गुण पर्याय वगैरह वह भावश्रुत में आ जाते हैं, परंतु केवलज्ञान से वह समझाया - ऐसा नहीं कहा। समझ में आया ? उसमें पेंसठ पेज पर लिखा है भावश्रुत द्वारा अर्थ को समझाया भगवान ने। आहाहा ! इन गणधर ने भावश्रुत को सुना और उन्हें भी भावश्रुतज्ञान परिणमा, आहाहा ! अंर्तमुख होकर उन्हें भी भावश्रुतज्ञान हुआ। आज यह दिन है। दिव्यध्वनि का और गणधर (देव) ने अंतर्मुहूर्त में चार ज्ञान प्रगट किये और बारह अंगों की रचना की। बारह अंगों की रचना की वह क्रम से की। एक समय में हुई - ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? क्रमशः बारह अंग की रचना भी अंतर्मुहूर्त में (हुई) आहाहाहा !

जैसे (जैसे) भगवान की भावश्रुतज्ञान धारा चली, उसी प्रकार गणधर भी भावश्रुतज्ञानरूप परिणमे। आहाहा ! उन्होंने एक अंतर्मुहूर्त के अंदर, आहाहाहा ! दो घड़ी के अंदर चार ज्ञान प्रगट किये, मति-श्रुत अवधि मनः पर्यय और अंतर्मुहूर्त में जो आचारंगादिग्रंथ हैं शास्त्र, उसके अठारह हजार पद है, एक-एक पद में इक्यावन

करोड़ से भी अधिक श्लोक है - ऐसा (दुगना) सूत्रकृतांग छत्रीस हजार पद, बहत्तर हजार पद, एकसौ चबालीस हजार पद इसप्रकार दुगने-दुगने होने पर ऐसे ग्यारह अंग और उससे भी बारहवां अंग जिसमें चौदहपूर्व उसके अतिरिक्त... (ऐसी) जिसने अंतर्मुहूर्त में रचना की बापू ! यह शक्ति कैसी होगी ? आहाहा ! समझ में आया ? आहाहाहा !

बारह अंग किसे कहें ? एक अंग में अठारह हजार पद और एक-एक पद में इक्यावन करोड़ से भी ज्यादा श्लोक - ऐसे ग्यारह अंग और बारहवाँ अंग तो कोई अपार है। आहाहा ! परंतु गणधर के आत्मा की ताकत है... आहाहा ! अंतर्मुहूर्त में अड़तालीस मिनट के अंदर क्रमशः... रचना में (बारह अंग की करने में) अंतर्मुहूर्त लगा। आहाहा ! एक साथ तो (एक समय में) कर सकते नहीं, रचना क्रमशः करते, आहाहा ! बारह अंग की रचना करने पर क्रमशः अंतर्मुहूर्त लगा। आहाहा ! वह ताकत कितनी ? आहाहा ! भावश्रुतज्ञानरूप परिणमे हैं। चैतन्य भगवान यह जो चलती है यह ग्यारहवीं गाथा। ज्ञायक के अवलम्बन से जिसे भावश्रुतज्ञान हुआ है, भगवान की वाणी तो निमित्त है ? समझ में आया ?

अंदर में परमात्म स्वरूप पूर्णप्रभु पूर्णानंद का नाथ परिपूर्ण स्वभाव से भरा, अतीन्द्रिय आनंद के भाव से पूरा भरा हुआ, आहाहा ! इसप्रकार अतीन्द्रिय ज्ञान के भाव से पूरा भरा - ऐसा ज्ञायकभाव। अपनी ग्यारहवीं (गाथामें) चलता है। आहाहा !

इस ज्ञायकभाव को अंतर्मुहूर्त में आश्रय लेकर... एक ही समय होता है उनको तो, उपयोग में समय लगता है (अंतर्मुहूर्त) एक ही समय में समयांतर कर डाला ज्ञान। आहाहा ! जो मिथ्याज्ञान था वेदांती थे न वह तो ? गौतम ! ब्राह्मण थे। वेदों के पूर्ण ज्ञानी थे। परंतु जिसने ज्ञायक (अनुभव किया)... भगवान की वाणी तो निमित्त है। परंतु उनकी ताकत इतनी थी। आहाहा ! कि यह ज्ञायक पूर्ण स्वभाव भाव उसका अवलम्बन लेकर, यह ज्ञायक भाव है, वह निरालम्बी है... अभी बताया था किसी को गाथा या श्लोक वहाँ ऊपर बताई थी ? निरावलम्बन है। आहाहा ! वस्तु के प्राप्त होने में किसी बाह्य अवलम्बन की जरुरत नहीं - ऐसा जो निरावलम्बी प्रभु उसका अवल्मबन लेकर, जिसे भावश्रुतज्ञान, आनंद के स्वाद सहित का भावश्रुतज्ञान प्रगट हुआ... आहाहाहा !

जिस ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। आहाहा ! - ऐसा ज्ञान, जिसने अंतर्मुहूर्त में... यह तो उपयोग अंतर्मुहूर्त है, है तो एकसमय में। आहाहा ! समयांतर में एकदम पूरी दिशा बदल गई। जो दृष्टि राग और पुण्य ऊपर थी, यह दृष्टि हुई ज्ञायक के आनंद के सागर में,

एक समय में ज्ञान सम्यक् हो गया। जिस ज्ञान ने भावों का छोर पकड़ा, आहाहा ! उस ज्ञान को प्राप्त करके (गणधर देव) बारह अंग की रचना और चारज्ञान की प्राप्ति अंतर्मुहूर्त में कर ली। आहाहा !

देखो ! गणधर की ताकत, है छद्मस्थ, परंतु अंदर में आत्मा है न। आहाहा ! वेदांत में पूर्ण (प्रवीण) थे, वेदांत में प्रवीण थे, उसके श्रेष्ठ प्रमुख थे। आहाहा ! ऐसे दृष्टिवंत भी... त्रिलोक के नाथ की दिव्यध्वनि जहाँ सुनी आहाहाहा ! उन्होंने पुरुषार्थ की गति को अंतरोन्मुख किया, जो (गति) राग ऊपर थी। आहाहा ! (उस दृष्टि को अंतर्मुख किया !) भाव कठिन है बापा ! आहाहा !

और यह श्रुतकेवली, आहाहा ! श्रुत को अंतर्मुहूर्त में दुहराया जायें - ऐसी उनकी ताकत है। अंतर्मुहूर्त में रचना करें... बारह अंग किसे कहें भाई ! इसका कभी विचार किया है ? आहाहा ! जिसके तीसरे भाग में तो चौदहपूर्व आते हैं और उसके अलावा दो भाग दूसरे हैं। आहाहा ! ऐसे पूरे बारह अंग की रचना अंतर्मुहूर्त में की, परंतु छद्मस्थ होने से क्रमशः की। केवलज्ञान प्राप्त होता है, वह एक समय में होता है। समझ में आया ? आहाहाहा !

यह बारहअंग की रचना का दिन भी आज है। यह जो शास्त्र है यह, उसका अर्थ (व्याख्या), फिर बारहअंगों के जाननेवालों का विच्छेद हो गया, फिर ग्यारह अंग के जानकार रहे, फिर उनका भी विच्छेद हो गया (इस प्रकार समय बीतने पर) अंत में एक अंग के ज्ञाता रहे, उनका विच्छेद हो गया, फिर एक अंग के अंश के ज्ञाता रहे। आहाहा ! उस अंश के ज्ञाताओंमें से यह कुन्दकुन्दाचार्य। एक अंग में अमुक अंश के ज्ञाता थे। आहाहा ! उसमें से उन्होंने समयसार बनाया। आहाहा ! यह समयसार ग्रंथ की प्रमाणिकता है। (यह) स्वयं पांचमी गाथा में कहा है।

हमारे गुरु जो हैं कि अरहंत जो हैं, आहाहा ! यह अरहंत विज्ञानघन में निमग्न थे। केवलज्ञानी परमात्मा महावीर प्रभु आदि, यह (भी) विज्ञानघन भगवान (आत्मा) उसमें निमग्न थे, और फिर गणधर हुये वह (भी) विज्ञानघन में निमग्न थे, वहाँ से हमारे गुरु पर्यंत... आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य - ऐसा कहतें हैं कि हमारे गुरुपर्यंत... अरहंत जैसे (ही) विज्ञानघन में मग्न थे, `निमग्न', मग्न अकेले नहीं - ऐसे हमारे गुरु विज्ञानघन में (अंतर्निमग्न थे), विज्ञानघन भगवान... अकेला विज्ञान का पुंज पूर्ण प्रभु। उसमें अरहंत निमग्न थे, ऐसे हमारे गुरु भी निमग्न थे। प्रारंभ से अरहंत से लेकर हमारे गुरु(पर्यंत)... आहाहाहाहा !

देखो यह शास्त्र की प्रमाणीकता बताने में ऐसे प्रमाणिक पुरुष थे। समझ में आया ? आहाहा ! फिर भी उन्हें निर्मानता, निर्मानता, निर्मानता, आहाहा ! कहाँ प्रभु

हमारा भावश्रुतज्ञान और कहाँ प्रभु तुम्हारा केवलज्ञान ? आहाहा ! जिन्हें अंतर्मुहूर्त में बारहअंगों की रचनाकी ताकत, और बारह अंग का ज्ञान अंतर्मुहूर्त में प्रगट किया। आहाहा ! यह संत कहते हैं, प्रभु कहाँ आपका केवलज्ञान की पर्याय और कहाँ हमारी यह पामर श्रुतज्ञान की पर्याय ? आहाहाहाहा ! - ऐसा है ! यहाँ तो थोड़ा बहुत कहीं धारणा में आया और याद रहा, वहाँ उसे - ऐसा हो जाता है कि हम गये और हम आगे बढ़ गये अरे ! बापा यह अंतर का अलौकिक मार्ग है भाई ! आहाहा ! आहाहा !

जिन गणधर ने बारह अंगों की उत्पत्ती एक क्षण में की और रचना एक क्षण में की, चार ज्ञान, मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय की उत्पत्ती एक क्षण में हुई, यह पुरुष - ऐसा कहते (है), प्रभु आपका केवलज्ञान कहाँ ? पर्याय हो ? द्रव्य की तो बात क्या करना ? केवलज्ञान की पर्याय कहाँ प्रभु और हमारी श्रुतज्ञान की पर्याय कहाँ ? आहा ! प्रभु हम पामर हैं, हो ! आहाहा ! वस्तु अपेक्षा हम प्रभु हैं, परंतु पर्याय अपेक्षा ऐसी रचना की अंतर्मुहूर्त में बारहअंग की शक्ति... वह भी - ऐसा कहते हि हम पामर हैं। आहाहा ! उसमें से बना यह समयसार है। उसका तो यह थोड़ा एक भाग है, फिर भी बहुत बात आ गई है।

अपना यहाँ तक आया है, है न !

जिसमें भावों का अनेकपना प्रगट है, अज्ञानी - ऐसा अनुभवता है। आहाहा ! पर्याय में ग्यारहवीं गाथा (के)... बीच में है बीच में कल था। कल तो स्वाध्याय थी परसों, है ? बीच में 'व्यवहार से विमोहित हृदयवाले, जिसमें भावों का अनेकपना है - ऐसा अनुभवते हैं' क्या कहा यह ? कि पर्याय में अनेक प्रकार के शुभाशुभ राग हैं, उसमें पर्याय मूढ़ हुआ विमोहित जीव, आहाहा ! उसे यह मेरा स्वरूप है - ऐसा अनुभवता है। आहाहा ! उसका इन्हें वेदन है, दुःख का। आहाहा !

जो ज्ञान, भावों का अनेकरूपपना उसमें विकल्पों के अनेक प्रकार हैं। अज्ञानी को स्वभाव का आश्रय तो हुआ नहीं। जिसके अवलम्बन से एकता हो और अनेकता टूटे यह तो हुआ नहीं। इसलिये अनेकपने को ही अनुभवता है, पुण्य और पाप, दया और दान आदि असंख्य प्रकार के शुभ एवं असंख्य प्रकार अशुभ के, उसे अज्ञानी व्यवहार मोहित, उलझा हुआ प्राणी, व्यवहार में मूढ़ प्राणी उसे अनुभवता है। समझ में आता है कुछ ? आहाहा !

अब, '**किन्तु भूतार्थ दर्शियो**' है ? विद्यमान पदार्थ है, विद्यमान मौजूद पदार्थ है आहाहा ! महाचीज है, वस्तु है, मौजूदगी, विद्यमान पदार्थ है, ध्रुव ज्ञायकभाव। आहाहा ! इस शुद्धनय को देखनेवालों को, अंतर में देखनेवाले... जो पर्याय पर को देखती है, उसे छोड़कर जो पर्याय अपने को देखती है... '**ऐसे शुद्धनय को देखनेवाले अपनी**

बुद्धि से डाले हुये' आहाहा ! पुरुषार्थ द्वारा राग से भिन्न होकर आहाहा ! राग और स्वभाव के बीच प्रज्ञा छैनी, पुरुषार्थ से डाली है। बीच में प्रज्ञाछैनी पटकी है। आहाहा !

है ? अपनी बुद्धि से, जो अपनी ज्ञानदशा है, स्वयं की ज्ञान पर्याय, उससे डाला हुआ (अर्थात) राग और स्वभाव के बीच इस प्रकार प्रज्ञाछैनी डालकर... आहाहा ! **`शुद्धनय के अनुसार बोध होने मात्र से',** स्वभाव के आश्रय से जो बोध हुआ, शुद्धनय के आश्रय से जो बोध होने मात्र से क्या कहा ? आहा ! स्वयं के ज्ञान की निर्मल पर्याय, उसे स्वभाव तरफ झुकानेपर जो शुद्धनयानुसार बोध - ज्ञान होने मात्र से उत्पन्न हुआ, ज्ञायक का ज्ञानमात्र होने से उत्पन्न हुआ, आत्मा कर्म के विवेकता के कारण से... आत्मा और राग का विकल्प है यह कर्म। आत्मा और कर्म के विवेक से दोनों की भिन्नता से... आहाहा ! ज्ञायकभाव, जो शुद्धनय के अनुसार उसका ज्ञान होने पर, आत्मा और कर्म की विवेकता से... आहाहा ! राग और स्वभाव की भिन्नता का ज्ञान होने पर, आहाहा ! ऐसी बात है।

अपनी बुद्धि से डाले हुये, इसका अर्थ क्या ? आहाहा ! सुना हुआ ज्ञान है यह भी नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! सुना है वह ज्ञान नहीं, यह अपनी बुद्धि नहीं। यहाँ तो चैतन्यस्वरूप भगवान, उसका अनुसरण करके जो ज्ञान हुआ वह अपनी बुद्धि से जो ज्ञान हुआ वह अपनी बुद्धि से, इस ज्ञान से, आहाहा ! **`अपनी बुद्धि से डाले हुये शुद्धनय के अनुसार बोध होने मात्र से, उत्पन्न आत्मकर्म की विवेकता से, अपने पुरुषार्थ द्वारा**' देखा ! (कैसी) भाषा रखी ? स्वयं के पुरुषार्थ द्वारा अंदर में कर्म थोड़े हटे हैं अतः यह काम होता है - ऐसा नहीं। आहाहा ! `अपने पुरुषार्थ द्वारा, आहाहा ! आर्विभूत किये गये'... क्या ? ***जो त्रिकाली ज्ञायकभाव राग के और पर्याय बुद्धि के प्रेम में ढ़का हुआ था... ख्याल में नहीं आता था। आहाहा ! एक समय की पर्याय के प्रेम में कि विकल्प के प्रेम में वह ढ़क गया था, वस्तु थी विद्यमान फिर भी वह आच्छादित ढ़क गई थी। आहाहा ! अज्ञानी को आच्छादित हो गई है। वस्तु आच्छादित होती नहीं परंतु उसका आच्छादन पर्याय में हुआ अर्थात ढ़क गया है - ऐसा कहा जाता है। आहाहा !***

वस्तु ज्ञायकस्वरूप जो पदार्थ है यह तो त्रिकाली शुद्ध और आनंदकंद ही है वह ढ़कता नहीं और प्रगट होता नहीं, यह तो है ही ऐसी। आहाहा !

यह गाथा तो जैनदर्शन का प्राण है, पूरे बारह अंग और जैनशासन का मूल है यह। सूक्ष्मबात है भाई ! अभी तो मुश्किल हो गई है। बाहर की बात और बात है - ऐसा यह किया और यह किया, व्रत किया, और तप किया और प्रतिमा ली,

आहाहा ! यह सभी अनेक विकृतभाव, उसे अनुभवनेवाले, व्यवहार में मूढ़ हो गये हैं यह तो, और ऐसे (शुद्धनय के) ज्ञानवाले व्यवहार के जाननेवाले (मात्र) रह गये हैं अभी। आहाहा ! जिसे आत्मा और कर्म, कर्म अर्थात राग, चाहे जीव का शुभराग हो यह राग और आत्मा का विवेकपने से, उसे भिन्न करने से उसे अलग करने से। आहाहा ! उत्पन्न हुआ जो ज्ञान, आहाहा ! उसमें से अपने पुरुषार्थ द्वारा आर्विभूत करने में आया हुआ, क्या ? सहज एक ज्ञायकभाव ! आहाहा !

पुनश्च ! एक तरफ - ऐसा कहना कि जो त्रिकाली ज्ञायकभाव है, यह त्रिकाली शुद्ध ही है। उसे किसी दिन आवरण हुआ नहीं, अशुद्ध होता नहीं, हीन होकर रहता नहीं। आहाहा ! इतने-इतने अनंतभव किये, परंतु ज्ञायक भाव में कुछ भी कमी आयी नहीं। फिर भी यहाँ - ऐसा कहते है कि ज्ञायक भाव ढ्रक गया है। इस पर्यायवालों की (पर्याय) दृष्टि है, उसके नजर में नहीं (इसलिये) ढ्रक गया है। आहाहा ! वीतराग मार्ग कोई अलौकिक है बापू ! आहाहाहा !

यह... जिसमें एक ज्ञायक भाव। आहाहा ! उसमें अनेक शब्द था, है न ? जिसमें भावों का विश्वरूपपना अनेकपना प्रगट है, उसे अनुभवता है। अब यह, आत्मा और कर्म के भिन्नरूप से, विवेक अर्थात भिन्नपना से, अपने पुरुषार्थ द्वारा प्रगट करने आया हुआ, आर्विभाव अर्थात... उसमें - ऐसा था समझ में आया ? विश्वरूप प्रगट है - ऐसा था इसमें देखा ? जिसमें भावों का विश्वरूपपना प्रगट है - ऐसा था। इसमें ऊपर से तीसरी पंक्ति... आहाहा ! चौथी-पांचमी पंक्ति... जिसमें भावों का अनकेपना प्रगट है - ऐसा था। अब यहाँ यह प्रगट (ज्ञायकभाव) किया। आहाहा ! है तो है परंतु राग से भिन्न होकर और जैसा ज्ञायकभाव है, वैसा दृष्टि में प्रगट किया। आहाहाहाहा ! है ? वह है ?

`जिसमें भावों का विश्वरूप प्रगट है,' - ऐसा अनुभवते हैं। है ? अंत में परसों सुबह आया था। आहाहा ! यह अनेकपना अनुभवते हैं इसलिये उसे ज्ञायकभाव ढ़क गया है। आहाहा ! और यह एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है। देखा ? आहा ! उसको (अज्ञानी का) अनेक भाव प्रगट है उसे अनुभवते है, इसलिये ज्ञायकभाव वस्तु है वह आच्छादित हो गई, ढ़क गई है, विद्यमान हो उसे ढ़क गई कहलाये न ? आहा ! अग्नि ऊपर राख डालते है न ! वह अग्नि दब गई - (ढ़क गई) परंतु अग्नि तो अग्नि है। आहाहा ! इसतरह चैतन्य चमत्कार वस्तु जो तत्त्व है, वह राग की एकता बुद्धि में दब गया - ऐसा कहो, तो भी यह तो ज्ञायक चैतन्य प्रकाश का नूर का तेज तो जो है वह है। अज्ञानी की नजर में नहीं आया इसलिये ढ़क गया - ऐसा कहा जाता है।

अरे ! अब - ऐसा उपदेश। जिसकी एक-एक बात को पकड़ने में बहुत सावधानी चाहिए। आहाहा ! शादी के समय नहीं कहते ? समय रहते सावधान। समय आ गया है, होता है न लगन का मुहूर्त कि आठ बजकर पच्चीस मिनट पर मिलाप (हस्तमिलाप) करना - ऐसा है कुछ, हमने तो किसीका ज्यादा देखा नहीं, एक खुशालभाई का देखा था। - ऐसा बोले वह मंत्र बोलनेवाला बोले, समय रहते सावधान - समय हो गया है इसप्रकार, कन्या का लाओ। - ऐसा होगा न तुम्हारे हिन्दी प्रांत में - ऐसा होता है कि नहीं ? (श्रोता :- ऐसा ही होता है) होता है होता है अन्य तरह से कहते होंगे (श्रोता :- समय रहते सावधान) उनको खबर ही कहाँ है यही बोलते है वह, वह समय होता है आठ बजकर पच्चीस मिनट उस समय बोलते कि लाओ समय रहते सावधान।

यहाँ (भी) समय रहते सावधान। आहाहा ! आत्मा आनंद का नाथ प्रभु राग से जहाँ भिन्न हुआ, सावधान होकर अंदर में गया, ज्ञायक आर्विभूत हो गया, जो ढ़का हुआ था वह आर्विभूत हो गया था। आहाहा !

अरे ! इस क्रियाकाण्ड में लीन को ऐसी बात समझना कठिन लगे न ! गुलाबजी ! आहा ! प्रभु मूल मार्ग - ऐसा है भाई ! और वह भी प्रभु तुम्हारे हित का है न नाथ। आहा ! तुम सुख के रास्ते कैसे लगो, यह बात है। दुःख के रास्ते तो चल ही रहे हो प्रभु। तुम, विश्व के अनेकरूप भाव अर्थात विकार-विश्वरूप अनेकरूप यह तो दुःख का पंथ है वहाँ तो चल ही रहे हो अनादिकाल से, इसलिये प्रभु तुम्हारा ज्ञायक स्वरूप ढ़क गया है तुम्हें, पर्याय दृष्टि की अपेक्षा से आहाहा ! जो प्रगट बाह्य विकल्प है उसे यह अनुभवता है, परंतु अंदर में जो महाप्रभु ज्ञायकभाव है वह तो उसे ढ़क गया है। तब... कर्म और आत्मा का विवेक करनेवाला अपने पुरुषार्थ द्वारा, आहाहा ! सहज एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है - ऐसा कहा, उनको प्रगट है यहाँ प्रकाशमान है। आहाहा ! समझ में आया कुछ ?

टीका बहुत गंभीर ! हिन्दुस्तान में ऐसी टीका अभी अन्यमत में तो नहीं, परंतु जैनमत में दिगम्बर में भी ऐसी 'आत्मख्याति' जैसी दूसरी एक भी टीका नहीं ऐसी अलौकिक टीका है। अमृतचन्द्राचार्य ! आहाहाहाहा ! दिगम्बरसंत ! आहाहा !

फिर भी यह अंत में - ऐसा कहते हैं प्रभु यह टीका की रचना हमसे नहीं हुई हाँ। आहाहा ! मैं तो ज्ञान स्वरूप हूँ, तब मैं तो अपने में हूँ, इस वाणी में मैं कहाँ से आया, कि मैं वाणी को रचूँ ? आहाहा ! जहाँ मैं हूँ वहाँ तो वाणी नहीं, मैं तो ज्ञानस्वरूप में स्वरूप गुप्त हूँ। आहाहा ! तब मैं वाणी को बनाऊँ यह कहाँ से आये ? आहाहाहा !

अभी एक प्रश्न मंदसौरवालों ने प्रश्न किया है - ऐसा कि बहिनश्री (चंपाबेन) ने - ऐसा लिखा कि चेतन जानने में आता है परंतु पूरा कह सकते नहीं - ऐसा क्यों ? - ऐसा कहा न कि महाराज भी (कानजीस्वामी) एक घण्टे मूसलाधार (वाणी की वर्षा) करते है - ऐसा लिखा है उन्होने, परंतु भाषा कौन करे ? अरे प्रभु भाई ! भाषा भाषा के कारण निकलती है।

ऐसा कहा है न ? सर्वज्ञ की वाणी सर्वज्ञ का अनुसरण करनेवाली कहलाती है, अनुभवशीली - ऐसा पाठ है न पहला, पं. राजमलजी की टीका में। भगवान की वाणी कैसी है कि अनुभवशीली कि सर्वज्ञ को अनुसरण करनेवाली अर्थात ? कि सर्वज्ञ के अनुसार (परिणमित हो) वाणी निमित्त है उसके अनुसार है निमित्त से होती है - ऐसा नहीं। आहाहा ! जैसा वहाँ सर्वज्ञपना है इसीप्रकार वाणी निमित्त को अनुसरण करके अपने उपादान की शक्ति से स्वपरप्रकाशक वाणी परिणमित है। आहाहा !

अरे प्रभु तो ज्ञान स्वरूप है यह राग में आता नहीं तब वाणी में कहाँ से आये ? आहाहा ! वाणी में स्वपरप्रकाशक कहने की स्वतः शक्ति है। आत्मा में स्वपरप्रकाश जानने की स्वतः शक्ति है। जानने की स्वतः शक्ति (है) वाणी में स्वतः पर की अपेक्षा बिना... आहाहा ! चाहे उसे अनुसरण करनेवाली कही, परंतु वह तो पर की अपेक्षा रखकर (- ऐसा है नहीं) वह तो अपने से स्वयं ही परिणमती है। आहाहाहा !

यह चर्चा चली है... उस खानियाँ (चर्चा) में आयी है। `खानियाँ चर्चा' में यह चर्चा हुई है। - ऐसा कि वाणी तो भगवान को अनुसरण करनेवाली है, अरे बापू ! किस अपेक्षा से है ? यह तो निमित्त है इस अपेक्षा से कहा है। शेष वाणी तो वाणी के कारण, उस समय परमाणु भाषारूप परिणमने लायक थे वे स्वयं से परिणमे हैं। ऐसी बात। आहाहा !

एक ज्ञायकभाव। आहाहा ! उसमें भावों का विश्वरूपपना और अनेकरूपपना - ऐसा था। विश्वरूपपना अनेकरूपपना प्रगटता है - ऐसा अनुभव होता है। आहाहा ! तभी धर्मी जीव स्वयं को राग और आत्मा की भिन्नता के कारण, अपने पुरुषार्थ द्वारा, प्रगट करने में आया हुआ... `है तो है' परंतु दृष्टि में जब आया तब प्रगट किया गया - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहाहा ! (अपने पुरुषार्थ द्वारा) आर्विभूत करने में आया हुआ - ऐसा सहज एक ज्ञायकभावपने के कारण। आहाहा ! `आर्विभूत करने में आया हुआ - ऐसा एक सहज ज्ञायकभावपने के कारण' आर्विभूत करने में आया का मतलब ? दृष्टि में उसका स्वीकार हुआ है - ऐसा, उसने आर्विभाव किया - ऐसा कहने में आया। आहाहा ! - ऐसा सूक्ष्म है।

वर्तमान दृष्टि उसके सन्मुख हुई और उसका स्वीकार हुआ इसलिये उसे, आहाहा ! एक ज्ञायकभाव ही प्रकाशमान है। आहाहा ! जिसकी दृष्टि अथवा ज्ञान की पर्याय में एक ज्ञायकभाव ही प्रकाशमान है। जिसकी ज्ञान पर्याय में अनेक विकल्पोंके परिणाम प्रगट हैं, उनका अनुभव करनेवाला मिथ्यादृष्टि, व्यवहार में मूढ़ हो गया है और इस राग से भिन्न होकर अपनी ज्ञान पर्यया में परिपूर्ण भाव (ज्ञायकभाव) पूरे भावों का ज्ञान होने पर वह ज्ञायक भाव प्रकाशित है। ज्ञान की पर्याय में एक ज्ञायकभाव प्रकाशित है। सम्यग्ज्ञान की एक पर्याय में, आहाहा ! एक ज्ञायकभाव प्रकाशित है - ऐसा अनुभवता है। आहाहा !

सम्यग्ज्ञान के साथ-साथ दृष्टि अंदर रहती है। सम्यग्ज्ञान राग को और आत्मा को भिन्न करके एवं आत्मा तरफ जहाँ झुका है ज्ञान, तब वह सहज एक ज्ञायकभावपने के कारण उसे एक ज्ञायकभाव, उसकी पर्याय में प्रकाशमान हुआ। आहाहाहा ! अंधेरे में था वह प्रकाश में आया। आहा ! यह चैतन्य जलहल-जलहल ज्योति, जिसकी ज्ञान की पर्याय राग से भिन्न होकर पुरुषार्थ द्वारा अंदर जाती है उसे एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान दिखाई देता है। समझ में आया ? इसका नाम तो अभी सम्यग्दर्शन है। आहाहाहा !

उसकी विधि और रीत की भी खबर न लगे उसे यह एकांत लगे- ऐसा भी (कहते है) उसका साधन क्या ? यह साधन यही है। अपने पुरुषार्थ द्वारा, राग से (आत्मा को) भिन्न करके एक सहजज्ञायक भाव प्रकाशमान आया यह उसका साधन (है) आहाहा ! दूसरा साधन नहीं उसका नाम अनेकांत है और वह तो - ऐसा कहते हैं कि वह भी सच्चा और व्यवहार से भी होता है यह वास्तव में तो अनेकांत है। अरे ! भगवान - ऐसा नहीं होता। अस्ति-नास्ति है यह सप्तभंगी का पहला बोल है।

स्वरूप से है पररूप से नहीं। इसप्रकार स्वरूप से भी है और पररूप से भी है ? आहाहा ! अनेकांत का अर्थ स्वरूप से भी है और पररूप से भी है इसका नाम अनेकांत है ? स्वरूप से है पररूप से नहीं। चौदह बोलों में तो आता है। अनेकांत को प्रकाशित करनेवाला... अमृतचन्द्राचार्य... चौदह बोल तत्त-अतत, एक-अनेक। आहाहा ! जो स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है, वह पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं। आहाहा !

जो निश्चय से शुद्ध चैतन्य प्रकाशमान है, वह राग से प्रकाशमान (हो) एवं राग से जानने में आये - ऐसा है नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है परंतु क्या हो ? भगवान की दिव्यध्वनि का दिन है यह... विपुलाचल पर्वत ऊपर, राजगृह में भगवान की वाणी निकली होगी... ऐसे गणधर (और) इन्द्रो (सुनी होगी) आहाहा ! पच्चीसौ वर्ष हो गये।

आहाहा !

अनेकों को वहाँ आत्मज्ञान हुआ। किसी को मुनिपना आया। आहाहा ! उन्हें गौतम को एकदम मुनिपना आया, भगवान विराजते थे। आहाहा ! भगवान ने धर्म की हाट भरी । आहाहा ! कुछ माल लेने आये थे। आहाहा ! विपुलाचल पर्वत ऊपर। आहाहा ! गणधर जैसोने मुनिपना ले लिया दूसरे अन्य श्रावक हुये थे, कोई मुनि, समकित हुये थे। आहाहा !

और यह बारह अंग की रचना का दिन यही है अर्थात कि यह शास्त्र उसी में का है अर्थात इसकी रचना का दिन यही है। आहाहा ! समझ में आया कुछ? सूक्ष्म है बापू, परंतु क्या करें ? आहाहा !

चौराशी के अवतार में देखो न, आहाहा ! सुनते है न कोई लड़की जलकर मर गई, लड़के के लड़के का हार्ट फैल हो गया। आहाहा ! कोई लड़का केन्सर से ऐसे मर गया... बेचारे कल आये थे न ! दामनगरवाले भावसार थे। वहाँ दो-तीन घर ही यहाँ के मुमुक्षु लोग हैं। उसमें एक भावसार थे। शरीर बहुत ह्रष्टपुष्ट था, परंतु उसे केन्सर हो गया। लड़का कल आया था। (कहता) हमारे पिताजी मर गये, केन्सर में गुजर गये। इस रविवार को हमारी पूजा थी लड़के को पहचानते नहीं थे, उसके पिताजी को पहचानते थे। कहो ! इकसठ वर्ष की उम्र में केन्सर परंतु अंत तक यहाँ की धुन... कुछ सलाह नहीं कि तुम क्या करोगे इसका, बिलकुल नहीं... हमारे बाद यह करना - ऐसा कुछ नहीं (कहा)। वह तो अपने विचार में थे बस उस ही (समय) देह छूट गयी। आहाहा !

अन्यथा कुछ तो कहें कि तुम्हारी माँ को सम्हालना, अमुक का यह करना, अमुक करना। आहाहा ! कौन सम्हाले बापू ! आहाहा ! तुम्हारा विकल्प ही मुफतमें जायेंगा। हाँ ? ऐसे भी लड़के होते है कि सामने ही नहीं देखते उसकी माँ के सामने ऐसे भी होते हैं न ? बहुत उदाहरण हैं बहुत देखे है न बापू ! बापू किसका कौन है भाई ? सभी स्वार्थ के सगे है, अपनी पुष्टी मिले वहाँ तक वह, अच्छे लगें। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं अज्ञानी आत्मा को, जिसमें अनेक भावोंका प्रगटपना है - ऐसा अनुभव करता है। धर्मी जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है, - ऐसा अनुभव करता है। आहाहा ! यह दोनों की बात। अंतर प्रभु चैतन्यज्योति जलहल ज्योति भगवान, शुद्धानंद का नाथ प्रभु स्वयं परमात्मा स्वरूप है। इसके जैसी कोई सर्वोत्कृष्ट चीज ही नहीं। - ऐसा एक सहज ज्ञायकभाव प्रकाशमान है - ऐसा अनुभव करता है। आहाहा !

देखो ! यह सम्यग्दर्शन और उसके साथ रहनेवाला सम्यग्ज्ञान।आहाहा ! यह

तो शुरूआत होती है। अभी धर्म की यहाँ से शुरूआत होती है। उसका पता न लगे न। आहाहा !

`**यहाँ शुद्धनय कतकफल के स्थान पर है**' जैसे वह पानी और कीचड़ था, उसमें जो निर्मल औषधि डाली थी, तब मैल और पानी भिन्न हो जाता है। इसीप्रकार यह शुद्धनय अर्थात कतकफल के स्थान पर है। राग और भगवान यह सम्यग्ज्ञानसे भिन्न हो जाते हैं। जैसे कतकफल निर्मल औषधि से कीचड़ का मैल और निर्मलजल भिन्न हो जाता हैं। इसीप्रकार यह शुद्धनय अर्थात ? स्वभाव का अनुसरण करके जो ज्ञाननय यह ज्ञान उसके साथ अनुसरण करता है, आहाहा ! यह कतकफल के स्थान पर (है), यह राग को भिन्न करने के स्थान पर।

उसमें मिथ्याज्ञान राग की एकता करने को था, यह राग को भिन्न करने के स्थानपर है। जो ज्ञान, स्वभाव सन्मुख हुआ, तब उस ज्ञान ने राग और स्वभाव दोनों को भिन्न किया। आहाहा ! यह निर्मल औषधि की तरह है शुद्धनय, - ऐसा कहते हैं। निर्मल औषधि डालकर भिन्न हो, इसतरह शुद्धनय जब अंदर स्वभाव तरफ झुकता उस ज्ञान ने राग को और आत्मा को भिन्न किया। आहाहाहाहा !

शुद्धनय कतकफल के स्थानपर है। इसलिये जो शुद्धनय का आश्रय करते हैं अर्थात त्रिकाली का आश्रय करते हैं, वही सम्यक् अवलोकन करनेवाले हैं। आहाहा ! शुद्धनय के आश्रय का यह अर्थ है। शुद्धनय का विषय त्रिकाली है यह त्रिकाली (ही) शुद्धनय का विषय त्रिकाल ही है। यह त्रिकाली ज्ञायक भाव का आश्रय करता है। `**वह ही**' (क्या कहा ?) `वह ही' आहाहा ! जो त्रिकाली ज्ञायक चैतन्यध्रुव एक समय में हाँ ! परंतु त्रिकाल अर्थात भविष्य में रहेगा ना, (- ऐसा नहीं) यहाँ तो वर्तमान में। आहाहाहा ! ज्ञायकभाव ध्रुव टिकता हुआ त्रिकाली तत्त्व। आहाहा ! उसका जो आश्रय करता है, वह ही सम्यक् अवलोकन करता होने से `वह ही' एक ही, सम्यक अवलोकन करनेवाला होने से सम्यग्दृष्टि है। आहाहाहा ! है कि नहीं इसमें ?

जो शुद्धनय का अर्थात भूतार्थ का... गाथा में दो बातें आयी थी न ? भूतार्थ वही शुद्धनय है। दूसरे पद में - ऐसा आया था, यह त्रिकाली वस्तु वह ही शुद्धनय है और तीसरे पद में - ऐसा आया था कि भूतार्थ का आश्रय करे तो शुद्धनय का आश्रय किया कहलाये, और इस पर्याय को भी शुद्धनय कहते हैं। १४ वीं गाथा में आता है, जो वस्तु शुद्धनय है यह त्रिकाल को भी कहते है, और उसके आश्रय से आनंद आया-निर्मल सम्यग्ज्ञान हुआ वह भी शुद्धनय कहने में आता है। उसीका अंश प्रगटा न ? अनुभव कहो, शुद्धनय कहो कि आत्मा कहो तीनों एक ही है। आता है न चौदहवीं गाथा में ? यह तो ग्यारहवीं चलती है। आहाहा !

जो शुद्धनय का आश्रय करते हैं। `भूदत्थमस्सिदो' है न ? इसकी व्याख्या हुई, जो त्रिकाली ज्ञायकभाव (है) उस तरफ जिसने ज्ञान को मोड़ा है, और इस ज्ञान की पर्याय में जिसे त्रिकाली का आश्रय है। इसप्रकार जो त्रिकाली को अवलोकते हैं... आहाहा ! `वे ही सम्यक् अवलोकन करते हुये (होनेसे)'... क्योंकि सच्चा अवलोकन तो वही करनेवाले हैं... त्रिकाली चैतन्य का पुंज प्रभु... आहाहा ! परमेश्वर स्वरूप प्रभु ! ऐसे परमेश्वर का जो आश्रय करता है और वह आश्रय करके वह परमेश्वर को अवलोकते हैं आहाहा ! वही सम्यग्दृष्टि है।

ऐसी गाथा है यह। अभी तो यह चौथे गुणस्थान की बात है, प्रतिमाधारी पांचमें और मुनि छठवें (सातवें) वह तो कहाँ ? यहाँ तो दो-चार प्रतिमा ली वहाँ तो हो गया अपने को, जानें कि पांचवें गुणस्थान में आ गये। महाव्रत लिये कि जाने आ गया मुनिपना अरे... रे... ! आहाहा !

(श्रोता :- पात्र हो तो मालूम पड़े वह पात्र तैयार हो तो मालूम पड़े न) उत्तर :- यह वह अंतर्मुख जाये तब माल मिले। जहाँ माल है वहाँ जायें तब माल मिले, माल कहाँ है ? अंतर में है, परमात्म स्वरूप प्रभु परमेश्वर स्वरूप ही है। आहाहा ! अपना परमेश्वर को भूल गया था, आया है न अड़त्तीस गाथा में, आहाहा ! अड़त्तीस गाथा में आता है, अपने परमेश्वर को भूल गया है, अपना परमेश्वर, भगवान नहीं कहा। आहाहाहा !

उसे भूल गया था, जैसे मुठ्ठी में सोना हो, परंतु यह भूल गया, सोना कहाँ ? सोना कहाँ ? दातुन करते समय सोना (की अंगूठी) निकाल कर इसप्रकार मुठ्ठी में रखी हो फिर कहे कि कहाँ गया ? (सोना) वहाँ के वहाँ रह गया हो मुठ्ठी में, मुठ्ठी में सोना फिर भी भूल गया, इन बहिनों की गोदी में बालक हो परंतु भूल जायें, इसप्रकार गोदी में बालक हो एवं - ऐसा कह रही हो कि कहाँ गया ? कहाँ गया ? यहाँ ध्यान नहीं रहे... आहाहा ! (श्रोता :- बहिनें भूले परंतु पुरुषों ने गोदी में लिया हो तो पुरुष भूले कि नहीं ?) पुरुषों ने बाप भूले सभी (भूलें), यह तो बहनों की बात है। बहुधा तो बालक को बहिने ही सम्हालतीं, (है) अर्थात आहा... हा ! बहनों की गोद में बालक और भूल जाय इसप्रकार। इसीप्रकार पुरुषों की गोद में बालक और भूल जाये। आहाहा ! इसीप्रकार भगवान अंदर प्रकाशमान ज्योति है, उसे भूल गया। आहाहा ! और जो उसमें नहीं उसे याद किया। पुण्य और पाप को उसने याद करके उसमें रुक गया। दूसरे दिन विशेष बात (आयेगी)।

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ४० गाथा-११ ता. २२-७-७८ शनिवार अषाढ वदी-२ सं.२५०४

वस्तु का विश्वदर्शन, यह जैनदर्शन, यह गाथा उसकी प्राण है, सूक्ष्म बहुत सूक्ष्म।

यहाँ कहते हैं, देखो ! यहाँ आया, यहाँ शुद्धनय कतकफल के स्थानपर है। है ? अंतिम चार पंक्तियाँ है। क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा जो वस्तु है यह पूर्ण अतीन्द्रिय आनंदघन है, त्रिकालसत् है और इसमें चिदघन, ज्ञानानंद का यह पिण्ड है, आनंद का यह ढ़ेर है इसे यहाँ ज्ञायकभाव, त्रिकाली ज्ञायकभाव, जानन स्वभावभाव, उसे यहाँ त्रिकाली आत्मा कहते हैं, उसकी दृष्टि करना... आहाहा ! - ऐसा त्रिकाली ज्ञायक जो परम सत्य प्रभु स्वयं पूर्णानंदका नाथ परम सर्वोत्कृष्ट प्रभु है। आहाहा ! उसका अन्य कर्त्ता दूसरा प्रभु है ही नहीं। स्वयंभू है। ऐसी जो वस्तु... उसे राग के भाव से, संयोग के भाव से, पर्याय की एक समय की दशा, उससे भी अंतर वस्तु जो पूर्ण-पूर्ण है, उसके ऊपर दृष्टि करना और ज्ञायकभाव का अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा ! समझ में आया कुछ !

जैसे पानी में मैल होता है, उसमें निर्मली एक औषधि होती है। यह निर्मली औषधि डालने से मैल और पानी दोनों भिन्न हो जाते हैं। इसीप्रकार यह आत्मा आनंद का नाथ प्रभु, स्वयं सच्चिदानंद स्वरूप है, उसमें जो यह पुण्य और पाप के भाव, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोग वासना और दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रतादि के भाव यह सभी मलिनभाव है। यह पानी में जैसे कीचड़ का मलिनपना है, इसीप्रकार आत्मा के त्रिकाली स्वभाव में यह वस्तु नहीं। परंतु उसकी वर्तमान पर्याय में जो मलिन भाव है। आहाहा ! यह शरीर वाणी तो जड़ है यह तो इसमें है ही नहीं, यह तो मिट्टी है। वाणी, शरीर, कर्म, परवस्तु (यह) इस आत्मा में है ही नहीं। परंतु इसकी दशा (पर्याय) में होनेवाले पुण्य और पाप के मलिनभाव... चाहे तो दया का दान का भक्ति का पूजा का भगवान के स्मरण का भाव हो परंतु (यह) भाव राग है, और मलिन है। आहाहा !

यह मलिन भाव और आत्मा ज्ञायकभाव, यह जैसे पानी में मैल है और निर्मली औषधि डालने से अलग हो जाती है, उसीप्रकार आत्मा में... सूक्ष्म बात है बापू! अनंत काल में इसने किसी दिन (दरकार) की, नहीं अनंतकाल चौराशी के अवतार... चौराशी लाख योनियों के अवतार अनंत अनंत किये। आहाहा ! चौराशी लाख योनि कहीं जाती है न ? इसमें एक एक में अनंतवार जन्मा है। आहाहा ! भूल गया।

यहाँ कहते हैं कि ऐसे जन्ममरण के कारणरूप जो भाव... आहाहा ! पुण्य और पाप के जो भाव, यह मलिन भाव हैं और भगवान अंदर जैसे जल निर्मल है, ऐसे इसका स्वभाव शुद्धज्ञानानंद, शुद्ध परम ईश्वररूप, परमशांतस्वरूप, परमवीतराग स्वरूप - ऐसा इसका त्रिकाल स्वरूप है। आहाहाहा ! समझ में आया ? इसके ऊपर नजर करते ही राग और आत्मा दोनों भिन्न हो जाते (हैं)। आहाहा ! है ? शुद्धनय को कतकफल अर्थात् निर्मल औषधि... यह पानी में जैसे मैल होता है और निर्मली औषधि डालने से मैल और पानी भिन्न हो जाता है, इसीप्रकार भगवान आत्मा सच्चिदानंद शुद्ध त्रिकाली स्वरूप है, इसमें पुण्य और पाप के भाव यह मैल हैं, इससे भेदज्ञान करने से उससे भिन्न हमारी चीज ज्ञायकभाव है, यह शुद्धनयका विषय - त्रिकाली ज्ञायक भाव का अनुभव करने पर... आहाहा ! यह शुद्धनय कतकफल के स्थान पर... इसलिए शुद्धनयका आश्रय करते हैं। बहुत सूक्ष्मबात है बापू ! आहा !

यह बाहर में काम करते हैं हम, यह सभी मिथ्यादृष्टि के भाव हैं समझ में आया ? यह धंधा पानी और... सुमनभाई ! सच्ची होगी यह सभी तुम्हारी नौकरी बोकरी का... सभी यह करोड़ो के कारखाने चलाना एवं यह हम करते हैं (श्रोता :- नोकरी का अर्थ ही नो....करी) नो....करी यह तो है। परंतु यह काम कारखाना एवं पैसा उघरानी का काम करते हैं, कहीं ! यह एकदम मिथ्यादृष्टि झूठी दृष्टि का पाखण्ड है। आहाहा !

क्यों ? कि प्रभु आत्मा यह पर द्रव्य से भिन्न चीज है। यह भिन्न वस्तु, भिन्नका कुछ भी कर सके यह तीनकाल में नहीं। (श्रोता :- शेठका काम नौकर न कर सके ?) नौकर भी करे नहीं और शेठ भी करें नहीं, कौन करता था धूल... शेठ कहना किसे ? अबजो रूपया करोडो रूपया हों अतः शेठ कहना ? शेठ तो हेठ (नीचे) उतर गया है। पर को अपना मानकर... शेठ तो उसे कहें शेठ अर्थात श्रेष्ठ, यह राग के विकल्प से भिन्न होकर आत्मा की दृष्टि करे, अनुभव करे यह शेठ है। आहाहा ! (श्रोता :- तत्व की दृष्टि से यह श्रेष्ठ कहलाये परंतु लौकिक दृष्टि से शेठ कहलाता है न ?) लौकिक अर्थात पाखण्ड दृष्टि ! लौकिक अर्थात क्या ? आहाहा ! समझ में आया ?

यह यहाँ कहते हैं। 'यह शुद्धनय का आश्रय करता है' अर्थात त्रिकाली आनंदकंद प्रभु ध्रुव अविनाशी आत्मा, उसका जो आश्रय करता है, है ? तीसरी पंक्ति है, है ? हिम्मतभाई ! तीसरी पंक्ति है कि नहीं उन्हें मिलती नहीं उन्हें ? नजदीक वाले बताओ उन्हें कोई उन्हें कभी पुस्तक पढ़ी नहीं। बाहर की सभी उठापटक में। आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि यह प्रभु अंदर जो चैतन्यस्वरूप है, अतीन्द्रिय अनंत स्वभाव के

सागर से भरा हुआ तत्व है प्रभु ! आहाहा ! यह सच्चिदानंद सत् शाश्वत चिद और आनंद - ज्ञान और आनंद का यह भण्डार है। आहाहा ! इसका जिसने आश्रय किया, इसका जिसने अवलम्बन लिया, इसको जिसने आधार बनाया... दुनियाँ की कोई क्रिया, जड़ आदि है इसके साथ कुछ संबंध नहीं और यह पुण्य-पाप के भाव होते है यह भी विकारी मैल (है) आहाहा ! निर्मलानंद प्रभु, जिसका स्वभाव निर्मल चैतन्य (है) जैसे जल निर्मल है, इसीप्रकार कीचड़ की मलिनता से पर्याय में मलिनता दिखती है। जल तो निर्मल है, इसीप्रकार भगवानआत्मा चैतन्य प्रकाश का पुंज निर्मल है। चैतन्य का प्रकाश, चैतन्यप्रकाश, जानने देखनेवाला प्रकाश, उसका यहसमूह निर्मलानंद है। आहाहा ! यह इसका आश्रय करे, संयोग का लक्ष्य छोड़ दे, अंदर दया दान के विकल्प उठें उसका लक्ष्य छोड़ दो यह बंध का कारण-दुःखका कारण है। एससमय की वर्तमान दशा चलती अवस्था हालत उसका भी लक्ष्य छोड़ दो। आहाहा ! और सच्चिदानंद ध्रुव वस्तु, ध्रुव है अंदर भगवान नित्य, नित्यानंद प्रभु है। आहाहा ! उसका जो आश्रय करे, उसीका जो अवलम्बन ले, उसकी ओर जो पर्याय ढल जाये। आहाहा ! उसे अवलोकन करनेवाली यह शुद्धनय का आश्रय करे त्रिकाली वस्तु का, और उसे ही देखे। आहाहा ! पूर्णानंद प्रभु पूरा अंदर है, उसे जो देखे, वह सम्यग्दृष्टि है। वह अभी धर्म के प्रथम सोपानवाला सम्यग्दृष्टि है, सुनाई देता है कि नहीं, हिम्मतभाई ! सुनाई देता है न ? दोनों कानों से बहरे है, उनके, ख्याल है न। धीरूभाई आये है, मिले ? यह हिम्मतभाई आये हैं धीरूभाई वढवाण... आहाहाहा !

यहाँ कहते हैं, तुमने कभी किया नहीं, सुना नहीं प्रभु ! आहाहा ! या तो पर की दया पालना और भगवान की भक्ति करना, एवं व्रतपालना और यह सभी राग की क्रियायें हैं बापू ! यह कही तुम्हारी धर्म क्रिया नहीं। (श्रोता :- लोक सेवा करने में तो कुछ हर्ज (हानि) नहीं है ?) लोकसेवा कौन करता था, मूढ ? अज्ञानी मूर्ख यह तो पहले कहा न... पर की सेवा कर सकता हूँ यह मान्यता ही मिथ्या पाखण्ड है। आहाहा ! (श्रोता :- अपनी दृष्टि से वह है। अज्ञानी की दृष्टि से तो अज्ञानता में यह चाहे जैसा माने इससे कहीं सत्य हो जाये ? आहा...हा ! एक अंगुली यह हिले, आत्मा इसे हिला सकता नहीं। यह जो जड़ मिट्टी है, प्रभु तो चैतन्यस्वरूप है, जानने देखनेवाला, ज्ञान चक्षु है, यह होनेवाले को जाने कि होनेवाले को करे... यह आत्मा में है ही नहीं कभी भी आहाहाहा ! समझ में आया ?

यह गाथा तो सार में सार है, उसका एकदम मक्खन है। आहाहाहा !

ज्ञान, ज्ञान अर्थात जानने का स्वभावका पिण्ड प्रभु ! उसमें तो पुण्य और पाप के राग भी नहीं। परंतु जो वर्तमान दशा है वर्तमान पर्याय यह भी जिसमें नहीं।

यह तो परिपूर्ण आनंद और परिपूर्ण ज्ञान एवं परिपूर्ण शांति एवं परिपूर्ण वीतरागता, परिपूर्ण ईश्वरता के स्वभाव से भरा हुआ प्रभु है। आहाहाहा ! इस पामर को प्रभुता कैसे बैठे (सम्मत हो) ? समझ में आया ? आहाहा !

ऐसा जो भगवान, सर्वोत्कृष्ट तत्त्व प्रभु स्वयं है। आहाहा ! जिसकी सत्ता में, जिसकी उपस्थिति में, यह क्या है - ऐसा ज्ञात होता है यह सत्ता जो चैतन्य स्वरूप है। जिसकी भूमिका में, जिसकी मौजूदगी में, यह शरीर है, यह कर्म है, यह राग है यह है यह है - ऐसा जिसकी सत्ता में, अस्तित्व में ज्ञात होता है, यह जाननेवाला आत्मा है यह ज्ञात हो जो वस्तु यह उसकी नहीं। आहाहा ! छोटाभाई ! ऐसी है यह बात, अनंत काल हुआ भाई, अनंत काल से भटक रहा बिना ज्ञान भगवान। क्रियायें करी अनंत बार, व्रत और तप और भक्ति और पूजा और... करोड़ो के मंदिर बनाये और... इसमें धूल में कुछ नहीं इसमें। आहाहाहा ! इसमें रागकी मंदता हो तो कदाचित पुण्य हो। यह पुण्य तो भव है। आहाहा !

यहाँ तो प्रभु कहते हैं... सर्वज्ञ द्वारा कहा हुआ तत्त्व संत आड़तिया होकर जगत के समाने प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा !

चैतन्य प्रकाश की मूर्ति जो आत्मा, उसमें तो वर्तमान पुण्य-पापका भाव भी नहीं और जो वर्तमान उसकी दृष्टि करे, यह दृष्टि भी इसमें नहीं। आहाहा ! क्या कहा यह ? भाई मार्ग कोई अलग जातिका है। अरे दुनियाँ को मिला नहीं यह बाहर में भटक भटक करते हैं, प्रथम तो व्यापार से फुरसद नहीं, बाईस घन्टे पाप में, पत्नी, बच्चे, व्यापार। कमाना, कारखाना चलाना और इसमें बाईस घन्टे पाप, घन्टा दो घन्टा मिले वहाँ ऊपर से कुगुरू लूट लें। व्रत करो, हमारी भक्ति करो, हमको दान दो तुम्हारा कल्याण होगा। मारडाला। धूल में नहीं कल्याण सुनो न ! आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं। जिसकी सत्ता में पूर्णज्ञान आनंदादि और पूर्ण शांति... शांति... शांति यह शांति... शांति तीनवार कह परंतु शांति... शांति... शांति... शांति... शांति यह अनंत अनंतबार शांति कहो तो वहाँ शांति का पार नहीं, इतनी अंदर शांति भरी है।

क्या कहा ? समझ में आया कुछ इसमें ? भगवान आत्मा यह चिदानंद प्रभु यह पुण्य-पाप के राग से तो भिन्न है परंतु एक समय की पर्याय से भिन्न है - ऐसे तत्त्वकी अंतरंग दृष्टि देनेपर... दृष्टि है वह पर्याय है। उसे अवलोकन करनेवाली दशा पर्याय है, पर्याय अर्थात अवस्था, वर्तमान हालत, फिर भी वह अवलोकनदशा उसमें नहीं, उसे अवलोकन करती है। आहाहाहा ! क्या कहा यह ! आहाहा ! सूक्ष्म बात हैं बापू ! धरम की। यहाँ तो साधारण व्यक्ति ऐसे भक्ति करी और पूजा की

और व्रत पाला और हो गया धर्म ! धूलमें नहीं धरम सुनो न ! मर गया अनंतबार।

(श्रोता :- जो कुछ नहीं करते उनसे तो अच्छे है ?) उनकी अपेक्षा तो भटकने का करते हैं यह। आहाहा ! गाँव में अस्पताल बनवा दे, मंदिर बना देना, पैसो की उगाही वसूलना यह सभी पाप के भाव हैं। (श्रोता :- पुण्य की नहीं ?) पुण्य भी नही - ऐसा कहा न अर्थात, उसे करदें कर दूँ, कर दूँ, कर्ता होता है वह मर जाता है अंतर आत्मा से। ***ज्ञाता चैतन्यमूर्ति प्रभु जगत की आंख है यह तो जाननेवाला इसे पर का कर्ता सिद्ध करना यह चैतन्य का खून करता है। यह अपने चैतन्य की हिंसा करता है।*** आहाहाहा !

यह तो ठीक, परंतु अंदर राग करे न ? दया, दान, व्रतका राग होता है उसे करे तो भी आत्मा का मरन होता है वहाँ। आहाहाहा ! क्योंकि राग है वह स्वरूप से विपरीत है और वह राग मेरा है और मैं करता हूँ, यह स्वरूप की हिंसा है। कठिन बात है बापू ! सारी दुनियाँ यों की यों भटकती है चौराशी के अवतार में, मनुष्यपना मिला, पांच इन्द्रियाँ मिलीं, आहाहा ! इसमें जैन कुल में अवतार मिला, जैनवाणी मिली... अनंतबार, परंत यह वस्तु क्या है उसको समझने की किंमत नहीं की। पशु की तरह अवतार गुमाया, समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं `शुद्धनय करा आश्रय करते हैं' अर्थात कि त्रिकाली आनंद का नाथ प्रभु ! अस्ति अस्ति विद्यमान पदार्थ ध्रुव अविनाशी प्रभु है अंदर। अविनाशी - ऐसा जो त्रिकाली ध्रुव उसका जो आश्रय - अवलम्बन करता है, `वही सम्यक् अवलोकन कर्ता होने से सम्यग्दृष्टि है' आहाहाहा ! पूर्ण चैतन्यस्वभाव, जिसका स्वभाव है वह पूर्ण ही होता पूर्ण अतीन्द्रिय आनंद का स्वभाव, स्वभाव हो वह पूर्ण ही होता है। अतीन्द्रिय शांति शांति शांति... अकषाय वीतराग स्वभाव शांति ! यह भी पूर्ण है। आहा..हा !

ऐसे पूर्णानंदका आश्रय करे अर्थात् कि उसका अवलम्बन ले अर्थात् कि उसे अवलोके, आहाहा ! जो ज्ञान की वर्तमान दशा, पूर्णानंद का नाथ उसे अवलोके, ***अवलोकन करनेवाली पर्याय जाननेमें आती है वह वस्तु में प्रवेश करती नहीं। उसी प्रकार अवलोकन करनेवाली पर्याय में अवलोकन योग्य वस्तु आती नहीं*** अरे..! कठिन मार्ग भाई ! आहाहा ! अंतर के जन्ममरण रहित होने की पद्धति बहुत सूक्ष्म है बापा ! आहाहा ! चौराशी के अवतार तो अनंत किया... अभी जिसे मिथ्या श्रद्धा है इसे अनंत भव उसके गर्भ में विद्यमान हैं भटकने के। आहाहा ! यह पशु में जायेंगें कौये कुत्ते में जायेंगें। यहाँ अरबपति हो और मांस दारु आदि न खाता हो और ऐसी ममता धंधे की और इसकी यह मरकर सभी पशु में जानेवाले है, पशु में अवतार लेगें, क्योंकि उनको विकारी भाव की तिरछापना बहुत किया, तिरछापना टेडापना, उसे यह

मनुष्य शरीर जो खड़ा होता है और गाय, भैंस, गिलहरी आदि इसप्रकार तिरछा है। यह वक्रता करेंगे तो तिरछे शरीर में अवतार लेंगे। आहाहा ! तिरछापना समझे ? टेड़ापना। गिलहरी, गाय, भैंस, घोडा, हाथी आदि इसप्रकार तिरछा है न। मनुष्य इसप्रकार खड़ा है और वह तिरछे हैं। आहाहा ! जिसने मांस, दारु आदि खाये हैं वे तो मरकर नीचे नरक में जायेंगें। - ऐसा भव भी अनंत बार किये हैं परन्तु जिसके ये (भाव) न हो और क्रोध मान माया लोभ आदि कषायों के तीव्र भाव किए है और इसमें ही रचा पचा है... उसकी कषाय की तीव्रता की आड़ के कारण, जिसका आत्मा तो उल्टा हुआ परंतु उसका जन्म होगा वहाँ शरीर तिरछा मिलेगा उसे। तिरछा टेड़ा शरीर मिलेगा। वह जीव सीधा नहीं हो सके। सूक्ष्म बातें बापू। उसने कींमत की नहीं भाई। आहाहा !

यहाँ से भविष्य में अनंतकाल रहना है। आत्मा नष्ट हो - ऐसा है ? आत्मा तो अविनाशी है। तब यहाँ से छूटकर भी रहनेवाला है न ? कहाँ रहेगा ? जिसने - ऐसा माना है कि मैं दया दान का राग मेरा, यह पर का कर सकता हूँ। ऐसे मिथ्यात्व भाव के (फलमें) भविष्य में रहेगा, दुःखमें रहेगा, दुःखमें। आहाहाहाहा !

क्योंकि, भगवानआत्मा तो अविनाशी है, यह कही नष्ट हो - ऐसा नहीं, और लोग - ऐसा कहते हैं न देह छूटती तब (कहते) जीव गया, यह जीव गया ! पल्स (नाडी) हाथ नहीं आती, यह जीव गया तब जीव था वह गया न ? और पीछे गया वहाँ रहेगा कि नहीं ? आहाहा !

यह जीव कहाँ रहेगा जाकर ? यह विपरीतता सभी की है, यह पर का कार्य हमने किया और - ऐसा किया और परको (दूसरो) अभिनंदन दिया और इकठा करके उत्सव किया ! तुमने तो बड़ा काम किया और तुमने पचास लाख एकत्र किये और... यह आंध्रप्रदेश में देखो होता है न ? आंध्रप्रदेश में बड़ा उलट पलट हो गया न (भूकम्पसे) आंध्रप्रदेश के लिए पांच-पांच, दस-दस लाख एकत्र करते है व्यक्ति वह जहाँ देते वहाँ तो। आहाहा ! तुमने तो निहालकर डाला - ऐसा जगत बोलता है धूल में नहीं ! अब सुनो न। अब ऐसे कषायों के अभिनंदन देनेवालो को भी मिथ्यात्व का पाप लगता है और यह अभिनंदन जो लेते हैं, मुझे मेरी तारीफ करते है - ऐसा मानते हैं वह भी मिथ्यात्व अज्ञान का सेवन करते हैं। आहाहाहा !

यहाँ तो प्रभु सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर त्रिकालज्ञानी, जिसे त्रिकाल का ज्ञान है यह परमात्मा कहते हैं यह संत, आड़तिया होकर जगत के पास प्रसिद्ध करते हैं माल तो प्रभु के घर का है। आहाहाहा !

यह शुद्धनय का अवलम्बन लेते हैं आश्रय `वह ही' दूसरा नहीं - ऐसा। वर्तमान

पर्याय का आश्रय करे, रागका आश्रय करे यह बिलकुल मिथ्यादृष्टि है। आहाहाहाहा ! उसका ही सम्यक अवलोकन करता होने से सम्यग्दृष्टि है। आहाहा ! परंतु दूसरा सम्यग्दृष्टि नहीं - ऐसा लेना। कोष्टक में कहा कि `अशुद्धनय का सर्वथा आश्रय करता है...' अर्थात क्या कहा ? कि त्रिकाली ज्ञायक का आश्रय करता है, उसे भी पर्याय में अशुद्धता है - ऐसा लक्ष्य है। लक्ष्य है। अवस्था में राग है - ऐसा लक्ष्य है परंतु आश्रय इसका (ज्ञायकका) करते हैं, और इसका सर्वथा लक्ष्य ही नहीं, जिसे अशुद्धता है ही नहीं पर्याय में, यह तो भूल करते हैं। अशुद्धनय का सर्वथा आश्रय करते हैं इसका अर्थ हुआ कि सम्यग्दृष्टि भी कथंचित् अशुद्ध का आश्रय करता हैं अर्थात कि पर्याय में अशुद्धता अपूर्णता है - ऐसा इसे ख्यालमें है फिर भी आश्रय करता है त्रिकाली का। समझ में आया ?

अरे ! ऐसी कहाँ फुरसत होती है। आहाहा ! अरे बड़े राजा और बड़े करोडपति मरकर यह बकरी के पेट में बच्चे होते यह छिपकलीके पेट में, आहाहाहा ! कितने ही तो मकड़ी होते, या तो भोंरे होते अरे ! प्रभु ! तुम्हे खबर नहीं बापू ! आहाहा! जिसने एक ही प्रभु का आश्रय लिया वह तो एक ही सम्यग्दृष्टि और धर्मी है। शेष जितने पर का आश्रय लेकर रुके है वह सभी मिथ्यादृष्टि है।

तब यहाँ अशुद्धनय का सर्वथा आश्रय का अर्थ कि, `ज्ञानी को भी अशुद्धनय का आश्रय है' - ऐसा अंदर में आता है... इसका अर्थ इतना... यह १४ वी गाथा में आता है, अर्थ में। स्व का आश्रय करने की बात एक ही है, फिर भी पर्याय में अशुद्धता है इतना लक्ष्य (ख्याल) तो होना चाहिए। पर्याय है, अशुद्धता है यह लक्ष्य होना चाहिए। फिर उसका आश्रय लेना नहीं, परंतु अशुद्धता बिलकुल है ही नहीं, पर्याय में तब तो यह लक्ष्य चूक जाता है तब अशुद्धता टालना यह भी रहता नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ?

समझ में `कुछ' आता है न ? समझ गया हो तब तो हो गया... यह तो किस पद्धति से किस रीति से कहा जाता है, किस तरफ झुकाव होता है इतना समझ में आता है ? आहाहा ! जो अशुद्धनय का... अर्थात कि दूसरे सम्यग्दृष्टि नहीं। आहाहा ! जिसने पर्याय का और राग का और निमित्त का आश्रय लिया है वह सम्यग्दृष्टि नहीं, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा ! यह चार गति में नरक निगोद में जानेवाले भावों का सेवन करते हैं यह। आहाहाहा !

`**इसलिए कर्म से भिन्न आत्मा को देखनेवालो को**'... है अंतिम पंक्ति ? पुण्य और पाप के भाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव यह कर्म है विकार है। आहाहाहा ! उससे भिन्न देखनेवालों को ***यह राग की क्रिया के कार्य से प्रभु भिन्न***

है, क्योकि इससे रहित हो सकता है यदि सहित हो तब रहित हो सके नहीं। वास्तव में द्रव्य-वस्तु राग सहित है ही नहीं, इसलिए राग रहित हो सकती है। आहाहा ! समझे कुछ ?

वह कर्म से भिन्न राग से भिन्न, यह विकल्प उठते हैं... गुणी भगवान अनंत गुणों का धनी और उसका ज्ञान आनंद - ऐसा गुण - ऐसा जो भेद उठे विकल्परूपी राग, आहाहा ! उससे भी भिन्न, कर्म से भिन्न देखनेवाले, ऐसे राग से भिन्न जाननेवाले...

अरे ! ऐसी बाते अब कहाँ ? चौबीस घन्टे झंझट में रुके हैं अब उन्हें यह कभी देखा नहीं समझना ! जाना नहीं, वहाँ इसे अवलोकन करने ले जाना ! बापू ! इसका प्रयत्न अनंतगुना है। सुमनभाई ! आहाहा !

अभी तो बाहर में विरोध होता है संप्रदाय में तो ! पूरी बात (विपरीत)। सभी खबर है न ! संप्रदाय में कोई व्रत में धर्म मनायें, कोई दया को मनावे कोई भगवान की भक्ति को धर्म मनावे ! (साधक को भी) होता है, शुभ भाव होता है। पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक आत्मा का अवलम्बन होने पर भी शुभ राग आये, परंतु यह है बंध का कारण। यह धर्म का कारण कि मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं `**कर्म से भिन्न आत्मा को देखनेवालो को**' आहाहा ! कर्म शब्द से यहाँ राग लेना। राग से भिन्न प्रभु को देखनेवालो को `**व्यवहारनय अनुसरण करने लायक नहीं**' यह राग का अवलम्बन लेने योग्य नहीं। आहाहाहाहा ! यह दया दान और व्रत के भाव अनुसरण करने योग्य नहीं। आहाहाहा ! समझे कुछ... ?

यह ग्यारहवी गाथा हुई। अब इसका भावार्थ, वह संस्कृत टीका थी। टीका में बहुत गम्भीरता भरी है, उसे प्रचलित भाषा में थोड़ा भावार्थ समझाते है।

(भावार्थ :-) यहाँ व्यवहार को अभूतार्थ, अर्थात ? ***कि वर्तमान राग होता है, दया दान को, उसे और इस राग को जाननेवाली (ज्ञान की) वर्तमान पर्याय को अभूतार्थ कहा। `यह है नहीं' उसमें, है अवश्य, परंतु वस्तु की दृष्टि कराने, वस्तु में नहीं इसलिए उसमें नहीं - ऐसा कहा है। यह पर्याय ही नहीं राग ही नहीं। आहाहा ! क्योंकि इसका आश्रय करने लायक नहीं। आहाहाहा ! एक समय की जो दशा है जानने की दशा... जाननेवाला त्रिकाल प्रभु है परंतु इसकी वर्तमान दशा जो पलटती हलचल होती दशा... विचाररूप (ज्ञान की) यह यहाँ नहीं - ऐसा कहा। `नहीं' कहा गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा है - ऐसा कहते हैं देखो ! अभूतार्थ (कहा)***

और शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। त्रिकाली वस्तु को सत्य कहा और पर्याय और राग को असत्य कहा। जिसका विषय विद्यमान न हो... जिसका विषय ही होता नहीं, असत्यार्थ हो, उसे अभूतार्थ कहा है; यह अभूतार्थ की व्याख्या की। पहले गाथा

का अर्थ है न उसकी व्याख्या कहते हैं। नय अर्थात जानने की दशा। एसमें एक व्यवहारनय अर्थात वर्तमान पर्याय और अवस्था को और राग को जाने यह व्यवहारनय; और यह ज्ञान की पर्याय शुद्ध त्रिकाल को जाने यह निश्चय (नय) शुद्धनय।

यहाँ व्यवहारनय को झूठा कहा अभूतार्थ कहा, और शुद्धनय को सत्य कहा। है - ऐसा कहा। अब उसका विषय अविद्यमान हो - असत्यार्थ हो... व्यवहार का विषय `नहीं' असलिए इसे अभूतार्थ कहा है। किस अपेक्षा से कहेंगे, उसे अभूतार्थ कहा है। आहाहाहा ! क्या कहा यह ? व्यवहारनय अर्थात वर्तमान पर्याय और दया दान का राग, उसे जाननेवाली जो नय है, ज्ञान का अंश, व्यवहार। उसे यहाँ झूठा कहा। `नहीं' - ऐसा कहा अभूतार्थ है - ऐसा कहा। और त्रिकाली वस्तु को जो सत्य है न भूतार्थ है - ऐसा कहा। अब इसका अर्थ कि जिसका विषय नहीं, उसे अभूतार्थ है न ? आहाहा ! असत्यार्थ कहते हैं। व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय - ऐसा है - अब कहते हैं... इसकी वर्तमान पर्याय और राग को (व्यवहारनय) झूठा है नहीं (असत्यार्थ) है - ऐसा कहने का आशय - ऐसा है (के) - शुद्धनय का विषय तो अभेद है। आहाहा !

क्या कहा ? अंदर सम्यग्दृष्टि जीव, धर्म की प्रथम, सीढ़ीवाला जीव, उसका विषय तो त्रिकाली अभेद अखण्ड है। त्रिकाली आनंद का नाथ प्रभु, नित्यानंद प्रभु यह शुद्धनय का विषय है। आहाहा ! यह अभेद है। त्रिकाली ? वस्तु है उसमें पर्याय और राग का भेद नहीं। अरे ! ऐसी बातें ? समझना।

शुद्धनय का विषय अर्थात शुद्धनय का लक्ष्य जो है वह अभेद है, एकाकाररूप है। आहाहाहाहाहा ! सम्यग्दर्शन की, प्रतीति जो पर्याय, उसका विषय अभेद है। त्रिकाली एकरूप वस्तु है और वह एकाकार एक स्वरूप है। भेद और अनेकता इसमें नहीं। यह तो मंत्र है प्रभु ! आहाहाहा ! अभी तो सुनना मुश्किल हो गया - ऐसा है, जहाँ देखो वहाँ धमाल ! धमाल ! धमाल ! व्रत करो और उपवास करो एवं भक्ति करो न... पूजा करो न... यह बड़ी रथ यात्रा निकालो गजरथनिकालो... हाथी को निकालते है न गजरथ, पाँच-पाँच लाख खर्च करके। अरे ! बापा यह तो सभी पर की वस्तु है, इसमें कदाचित राग का भाव मंद हो तब पुण्य है, पुण्य है वह भव है और भव है वह संसार है। आहाहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो पण्डितजी - ऐसा स्पष्टीकरण करते हैं कि भाई यहाँ व्यवहारनय को झूठा कहा अर्थात वर्तमान पर्याय को, राग को `नहीं' - ऐसा कहा और त्रिकाली वस्तु है उसे सत्य कहकर `है' - ऐसा कहा। इसका अर्थ क्या ? कि व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ कहा, इसका अर्थ कि जिसका विषय नहीं है ? उसे अभूतार्थ

कहते हैं, व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय - ऐसा है कि शुद्धनय का विषय अभेद, एकाकाररूप, नित्यद्रव्य है। नित्यद्रव्य प्रभु कायम रहनेवाला भगवान, कायम भगवान अनादि है और अनंतकाल जैसे का तैसा रहनेवाला तत्त्व ध्रुव, यह ध्रुव तत्त्व जो है वह (ज्ञायकभाव) सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा ! यह शुद्धनय का विषय है।

भाषा तो समझ में आये - ऐसी है परंतु भाव बापू जैसा है वैसा है। अरे ! जो करना चाहिए यह पहले करें नहीं न, शेष सभी व्यर्थ का बेकार। आहाहा !

क्या कहा ? त्रिकाली वस्तु को विषय बनानेवालानय, अथवा सम्यग्दृष्टि का विषय अभेद है। जिसका विषय एक समय की पर्याय भी नहीं। यह तो त्रिकाली एकाकाररूप अभेद, भेद बिना की चीज है प्रभु ! एकाकार एक स्वरूप, वह भी नित्य द्रव्य है, यह तो, कायम रहनेवाली चीज है, पलटती जो अवस्था, बदलती अवस्था है वह तो वर्तमान क्षणिक है, और कायम रहनेवाली चीज यह स्वयं तो नित्य और ध्रुव है। आहाहा !

आत्मा में दो प्रकार (है) एक बदलती अवस्था क्षण-क्षण में विचार बदलते (है) और एक कायम रहनेवाली चीज, कायम रहनेवाली चीज तो नित्य है, बदलती अवस्था अनित्य और पर्याय है। हिम्मतभाई ! किसी दिन सुना नहीं और किया नहीं एवं माथापच्ची करके मर गया, वहाँ अंत में कुछ सार नहीं निकला। आहाहा ! बापू ! जो निष्कर्ष आयेगा, जिसका झूठा है उसका झूठा निष्कर्ष आयेगा। (श्रोता :- जैसे अंक होंगे वैसा निष्कर्ष आये न) अंक एक-दो-चार-पाँच के अंक हों तो जोड़ आये परंतु शून्य रखे हों तो उसका जोड़ क्या आये ? (श्रोता :- शून्य का जोड़ शून्य) शून्य का जोड़ शून्य आये। आहाहाहा ! अंक भले रखे एक-एक-एक तब भी उसका जोड़ आये यह दश अंक, पन्द्रह अंक, बीस अंक आहाहा ! - ऐसा जिसने पर का किया, मैं पर का कर सकता हूँ। पर में करने का भाव हुआ हमारा राग और यह भी हमारी चीज है, ऐसे शून्य जिसने रखे हैं, उसका जोड़ शून्य आयेगा। आहाहा ! अर्थात आत्मा को लाभ नहीं मिले परंतु संसार आयेगा। आहाहा !

शुद्धनय का विषय, अर्थात सम्यग्दर्शन धर्म की पहली दशा, ऐसे धर्मी को विषय अभेद है, चैतन्य चैतन्य चैतन्य चैतन्य प्रकाश पुण्ज, एकाकार है एक स्वरूप है और वह नित्य है आहाहा ! उसकी दृष्टि में, सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में अभेद एकाकार नित्य द्रव्य है। द्रव्य अर्थात वस्तु। उसकी दृष्टि में भेद दिखता नहीं। आहाहाहा ! यह तो मंत्र है बापा ! यह तो कहीं एकदम कहानी किस्सा कि चल जाये। अरे उसमें निजानंद का नाथ अंदर विराजमान है। आहाहा !

उसकी दृष्टि का विषय यह अभेद है एक स्वरूप है, नित्य है, ऐसी दृष्टि

से देखनेवाले को अभेद और एकाकार और नित्य देखनेवाले को, उसकी दृष्टि में भेद... अभेद देखनेवाले को भेद दिखता नहीं। है ? आहाहा ! क्या कहा यह ? ध्रुव प्रभु है, नित्यप्रभु, पर्याय अवस्था से बदलता है विचार दशा में परंतु वस्तु अपेक्षा तो ध्रुव है, यह ध्रुव है वह अभेद है। वह अभेद एकाकार नित्यद्रव्य को देखनेवाले तो अभेद को देखते हैं। तब अभेद देखनेवाले को भेद दिखता नहीं। आहाहा ! अंदर आत्मा में अनंतगुण है, वस्तु है वह आत्मा और गुण है वह उसकी शक्ति। यहाँ - ऐसा अंदर में भेद है, परंतु अभेद को देखनेवाले को यह भेद दिखता नहीं। आहाहा !

अरे ! अब ऐसी बातें बापू ! इसे समय चाहिए। एक मेट्रीक जैसी पाप की पढ़ाई के लिये... सुमनभाई ! पाप की पढ़ाई के लिये अमेरिका (में) तुम कितने भटके ? अमेरिका कि नहीं ? पीछे की कहाँ खबर है, दूसरे बहुत जाते हैं न ? लाखों रुपया खर्च करके अमेरिका और यह अमुक-तमुक अफ्रीका और। आहाहा ! परेशान-परेशान है। आहाहा !

यहाँ तो दूसरा कहना है कि संसार में ज्ञान के लिये जानने के लिये भी कितना समय इसे चाहिए है न ? वकील बनना हो तो एल. एल. बी. के लिये भी समय चाहिए कि नहीं ? डॉक्टर को एम. बी. बी. एस होना हो तो तो भी कुछ समय चाहिए कि नहीं ? तुम्हारे इस व्यापार में समय तो गया होगा न पाँच-सात-दश वर्ष। आहाहा ! तब... इसके पाप के धंधे के लिये कितना समय चाहिए तो आत्मा की पहचान के लिये कुछ समयनहीं निकालोगे तुम ? (श्रोता :- परंतु क्या करे ? सारे दिन ऑफिस क्या कहा ? (श्रोता :- सुबह आठ बजे जाये और रात को आठ बजे आये) इनके लड़के की बात की। सुबह जाये और ! अरे ! आहाहा !

जिसका स्वभाव अभेद और एकाकार है, इस वस्तु को जिसे अंदर देखना है उसे देखनेवाले को यहाँ धर्मी और सम्यग्दृष्टि कहते हैं और इन सम्यग्दृष्टि की अभेद ऊपर दृष्टि होने से... अभेद में गुणरूप भेद है, फिर भी अभेद ऊपर दृष्टि होने से उसे अभेद में भेद दिखता नहीं। अरे ऐसी बातें अब !

वस्तु जो ज्ञायक चैतन्य ज्योति है; चैतन्य के प्रकाश का पुण्ज प्रभु आत्मा, उसमें शरीर कर्म और यह देश यह तो है नहीं इसमें, परंतु इसमें पुण्य और पाप के भाव जो दया, दान, काम, क्रोध के (भाव) यह भी इसमें है नहीं, परंतु इस अभेद में, भेद भी नहीं। आहाहा ! समझ में आया कुछ ?

जिसकी चैतन्य प्रकाश सत्ता है। - ऐसा जो भगवान आत्मा, चैतन्य के प्रकाश का अस्तित्व जिसका त्रिकाल है, उसे देखनेवाले को, सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी उसे देखनेवाले को, अभेद देखने पर उस उसमे भेद दिखता नहीं। आहाहा ! है ? उसकी

दृष्टि में भेद दिखता नहीं इसलिए उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान असत्यार्थ कहना चाहिए। आहाहा ! जिसने दृष्टि को संयोग ऊपर से हटाकर दया, दान के विकल्प से भी हटाकर एक समय के पर्याय भेद से भी हटाकर और गुण-गुणी के भेद से भी दृष्टि हटाकर और जिसने सम्यग्दर्शन में अभेद को देखा ! आहाहाहाहा ! अभी तो चोथे गुणस्थान की बात चलती है।

श्रावक किसे कहें यह सभी समझने जैसी बातें है बापा ! यह सभी सम्प्रदाय के श्रावक तो (समझने जैसे) हैं। यह मुनि किसे कहें बापू ? यह अलौकिक बात है भाई, आहाहा ! जिसे अतीन्द्रिय आनंद की दशा में बाढ़ आती हो; जैसे समुद्रमें ज्वार आता है जैसे पानी का, इसप्रकार मुनिकी दशा में अतीन्द्रिय आनंद से भरा हुआ भगवान अतीन्द्रिय आनंद की बाढ़ आती (है) उन्हें। आहाहाहाहा ! उसे मुनि कहे बापू ! नग्न होकर घूमें एव कपड़े बदल दिए और बावा हो गये अतः साधु ? आहाहाहा !

अतीन्द्रिय आनंद का नाथ प्रभु सच्चिदानंद जिसके अनुभव में आया हैं उसने अभेद को देखा हैं, और जो अभेद में स्थित है अंदर में, अतीन्द्रिय आनंद में जम गया है उसे यहाँ साधु और मुनि कहा जाता है।

बहुत फर्क है परंतु यहाँ तो बात बात में फर्क है हिम्मतभाई ! मुम्बई में मिले - ऐसा नहीं वहाँ धूल मे मिले - ऐसा नहीं वहाँ बोटाद में वहाँ भटकते रहें। आहाहा ! यहाँ तो प्रभु - ऐसा कहते हैं कि ***जिसने आत्मा नित्यवस्तु, इसे जिसने देखी अंदर अभेद को, उस अभेद में भेद है अवश्य अंदर गुण भेद, गुणी की दृष्टि करने पर अंदर गुण हैं। परंतु अभेद में भेद दिखता नहीं। इसलिए वह अभेद की दृष्टि की अपेक्षा यह भेद दिखता नहीं। आहाहा ! अतः इसकी दृष्टि में भेद झूठा है - ऐसा कहा जाता है। आहाहा ! अभेद में भेद है, परंतु अभेद को देखनेवालों को भेद दिखता नहीं। भेद दिखता हो तो अभेद दिखता नहीं। आहाहा !***

ऐसा धरम... कोई कहे कि नया निकाला होगा - ऐसा ? बापू ! अनादि का मार्ग यह है, परंतु जगत में बाहर प्रसिद्ध न था, यहाँ अंधेर ही अंधेर खाता चलता था। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं, वर्तमान दशा और रागादि अथवा गुण भेद, उसको विषय व्यवहारनय का है। इस व्यवहार के विषय को झूठा कहा `नहीं' - ऐसा कहा क्यों ? कि जिसने अंदर गुण-गुणी के भेद का भी विकल्प छोड़ दिया है, और जिसने दृष्टि को त्रिकाली ध्रुव में जोड़ दी है, इस अभेद को देखने वाले को... उसके अनंत गुण-गुणी के गुण भेदरूप है फिर भी उस अभेद को देखनेवालों को भेद दिखता

नहीं। समझ में आया कुछ ? आहाहा !

ऐसी बातें हैं यह। - ऐसा उपदेश कहाँ से निकाला ? आहाहा ! यह भगवान का उपदेश है बापू ! आहा ! तीर्थंकर देव जैनशासन के शिरोमणी परमात्मा, उनकी वाणी में यह आया, यह जगत के सामने प्रसिद्ध होता है। आहाहा ! यहाँ कहने का आशय क्या है ? पर्याय को... पर्याय है, गुण-गुणी भेद भी हैं राग भी है यह सभी व्यवहार का विषय है। वर्तमान और त्रिकाली देखनेवाले को निश्चयनय का विषय है। तब त्रिकाली अभेद को देखने पर उसमें गुण-गुणी का भेद, अभेद को देखने पर भेद दिखता नहीं। आहाहा !

इसलिए अभेद को देखने पर भेद दिखता नहीं इसलिए उस भेद को व्यवहार का विषय समझकर `नहीं' - ऐसा कहा है, परंतु बिलकुल नहीं - ऐसा नहीं। व्यवहार का विषय है ही नहीं... यहाँ तो नहीं - ऐसा कहा है `परंतु' `नहीं' - ऐसा कहने का आशय क्या ? कि त्रिकाली में दृष्टि लगी है धर्मीकी, उसमें भेद दिखता नहीं, इसलिए उसे भेद नहीं और भेद झूठा है - ऐसा कहा। परंतु भेद अपेक्षा भेद और पर्याय अपेक्षा पर्याय नहीं - ऐसा नहीं।

इसकी बात करेगें। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ४१ गाथा-११ ता. २३-७-७८ रविवार अषाढ वदी-४ सं.२५०४

समयसार ग्यारहवीं गाथा का भावार्थ। कल, कितने ही नहीं थे न। हमारे बाबूलालजी नहीं थे। दूसरे आज भावनगरवाले आये है न ? यह तो अधिकार जब (- ऐसा है) चाहे जितनी (बार) लो न ! तुम तो थे कल।

भावार्थ :- यहाँ - इस जगह ग्यारहवीं गाथा में, यहाँ अर्थात इस ग्यारहवीं गाथा में व्यवहारनय को अभूतार्थ और शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। `अर्थात' कि जो आत्मा है अभेदवस्तु अनंतगुणों का पिण्ड, उसमें जो गुणभेद को लक्ष्य में ले, उसे व्यवहारनय कहते हैं। जो गुणी वस्तु है अभेदअखण्ड, उसमें जो अनंतगुण हैं, ऐसे गुणीमें से गुण का भेद लक्ष्य में ले उसे यहाँ व्यवहारनय, वर्तमान भेद पक्ष को लक्ष्य में ले उसे यहाँ व्यवहारनय कहा जाता है, अथवा पर्याय को लक्ष्य में ले यह भी भेद है त्रिकाली में, अथवा राग को लक्ष्य में ले यह भी व्यवहारनय कहलाता है।

इसे जाननेवाले नय को व्यवहारनय... और व्यवहारनय का विषय गुणगुणी भेद,

पर्याय और रागादिक उसका विषय है। आहाहा ! इसे यहाँ झूठा कहा है। यहाँ व्यवहारनय को झूठा कहा है, यह किस अपेक्षा से झूठा कहा यह स्पष्टीकरण करते है। और शुद्धनय को भूतार्थ कहा है, ***त्रिकाली जो अभेद चैतन्यस्वरूप भगवान जो ज्ञान का विषय बिलकुल अभेद है, जिसकी अभेददृष्टि से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी जो अखण्ड अभेद चीज उसे यहाँ शुद्धनय कहा है अथवा इसे शुद्धनय का विषय कहा है और उसे सत्य कहा है।*** क्या कहा ? त्रिकाली सत्यार्थवस्तु जो एकरूप अभेद उसे सत्य कहा है और गुणभेद, पर्यायभेद, रागभेद को व्यवहार कहकर उसे `नहीं' - ऐसा कहा है। उसका क्या कारण ? यह बात चलती है। आहाहा !

(श्रोता :- पहले घोटाला करना फिर उसका स्पष्टीकरण करना ?) घोटाला किया ही नहीं, किस अपेक्षा से कहा है इसे लक्ष्य में न ले ?

इसलिये `यहाँ' - ऐसा कहा न ? अन्य जगह तो स्पष्टीकरण सभी किये हैं, अलग-अलग... परन्तु, इस जगह, इस गाथा में, इसलिये `यहाँ' कहा न ? यहाँ कैसी अपेक्षा है। आहाहा ! सूक्ष्म बातें बापू ! धर्म - ऐसा सूक्ष्म है। अनंतकाल में यह बात इसने लक्ष्य में ली नहीं।

वस्तु में... वस्तु जो आत्मा है यह वस्तु अपेक्षा तो अभेद है। अभेद अर्थात जिसमें गुण और गुणी का भेद भी नहीं, यह तो गुणी अखंडवस्तु है, इसमें एक समय की पर्याय होती है यह भी भेद है, यह भी इसमें नहीं और जो दया, दान, व्रत, भक्ति के राग(रूप) परिणाम होते हैं, यह भी व्यवहार का विषय है, यह भी वस्तु में नहीं। आहाहा ! सूक्ष्मबात है बापू ! बहुत सूक्ष्मतत्त्व है।

यहाँ व्यवहारनय को झूठा कहा है, अभूतार्थ अर्थात झूठा। इस जगह (कहा) अन्यत्र तो कहा है व्यवहार सत् है। समझ में आया ? सत् है अर्थात पर्याय है। गुणभेद है, राग है, इतना भी जो यहाँ नहीं कहा उसका क्या कारण है ? इस जगह - ऐसा कहा उसका क्या कारण है ? - ऐसा कहते हैं कि व्यवहारनय असत्य है, अभूतार्थ अर्थात असत्य, अभूतार्थ अर्थात झूठा है, है नहीं। और शुद्धनय वह है भूतार्थ सत्य है। अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं।

जिसका विषय विद्यमान न हो, जिसका ध्येय, विषय हो ही नहीं और असत्यार्थ हो, असत्य हो उसे अभूतार्थ कहते हैं। उसे असत्यार्थ अभूतार्थ कहते हैं। आहाहा ! भाई आये है कि नहीं, हसमुखभाई ! ठीक दूर बैठे हैं। कल दोपहर को थे, सुबह नहीं थे। यह (गाथा) के समय नहीं थे न ? दोपहर तो शनिवार है न ! वह होते ही (है) वह, लड़कों की छुट्टी होती है न, साथ में लेकर आये थे न ! बालकों को लेकर आये थे, सौ केला लेकर आये थे। लड़कों को देने के लिए लेकर

आते हैं शनिवार रविवारको हमेशा। यह कल इस विषय के समय नहीं थे।

क्या कहा ? पहले तो - ऐसा कहा कि, व्यवहारनय तो झूठी है, और निश्चयनय वह सच्ची है। तब अब इसका आशय क्या ? कि जिसका विषय विद्यमान न हो जिसका विषय है ही नहीं, जिसका ध्येय जो है यह है ही नहीं और असत्यार्थ हो झूठा हो बिलकुल नहीं हो उसे अभूतार्थ कहते हैं। आहाहाहा !

व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय अब कहते हैं। कि भाई ! इस जगह असत्यार्थ कहा है, इसका आशय क्या है ? इसका विषय नहीं है, क्या ? तब यहाँ तो अभूतार्थ है तब जिसका विषय नहीं - ऐसा कहना है। व्यवहारनय का विषय ही नहीं, इसलिये झूठ कहा है। इसप्रकार जो यहाँ कहने में आया है, उसका कारण क्या ? आहाहा ! व्यवहारनय को अर्थात गुण-गुणी के भेद को विषय करनेवाला, पर्याय को विषय करनेवाला और राग, दया, दान के विकल्पकों जाननेवाला, विषय बनानेवाला, इस नय को झूठा कहने का आशय - ऐसा है कि, और असत्यार्थ नहीं - ऐसा कहने का मतलब - ऐसा है कि, आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात बापू !

शुद्धनय का विषय, अर्थात कि जो आत्मा अखण्ड अभेद वस्तु है, यह शुद्धनय अर्थात सम्यग्ज्ञान का विषय है, यह सम्यग्दर्शन का विषय है, यहाँ `नय' क्यों कही है कि सम्यग्दर्शन है यह जानता नहीं। यह तो प्रतीतिरूप है। इसलिये शुद्धनय जाननेवाला है शुद्धनय त्रिकाली को जाननेवाला है। इसलिये इसे यहाँ शुद्धनय कहा है। आहाहा ! समझ में आया ? कारण कि जानने का विषय तो यह ज्ञान ही है। इसके अलावा कोई गुण जाननेवाला नहीं। भाई ! वहाँ - ऐसा कहा है न टोडरमलजी (ने) - ऐसा प्रश्न किया है कि निश्चय समकित यह प्रत्यक्ष और व्यवहार समकित यह परोक्ष, शिष्य ने प्रश्न किया है इसमें। तब कहते हैं कि प्रत्यक्ष-परोक्ष कोई भेद समकित के है ही नहीं। यह ज्ञान के भेद हैं, प्रत्यक्ष-परोक्ष। दूसरे किसी गुण के भेद प्रत्यक्ष-परोक्ष हो ही सकते नहीं। भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

शिष्य ने - ऐसा पूंछा था टोडरमल में है, रहस्यपूर्ण चिट्ठी में कि निश्चय जो समकित है वह प्रत्यक्ष त्रिकाली वस्तु की जो प्रतीति करे वह निश्चय प्रत्यक्ष और व्यवहार भेद को जो विषय करे वह परोक्ष व्यवहार समकित। तुम कहते हो - ऐसा है ही नहीं समकित के दो भेद; निश्चय प्रत्यक्ष और (व्यवहार) परोक्ष दो भेद आत्मा के ज्ञान के अलावा प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेद दूसरे किसी गुण के हो ही सकते नहीं। समझ में आया ? ***तो आनंद को प्रत्यक्ष कहा है न वहाँ ? अर्थात कि जिसे स्वयं वेदता है इस अपेक्षा से प्रत्यक्ष, यह वस्तु कहीं ज्ञान का विषय नहीं, ज्ञान है यह तो प्रत्यक्ष और परोक्ष है। अब इसके प्रकार सूक्ष्म, बापा ! बहुत अधिक***

भेद, आनंद का वेदन है यह स्वयं वेदता है। यह कोई दूसरा वेदता है - ऐसा नहीं, इसलिये इसे प्रत्यक्ष कहा (है)। शेष जो कुछ प्रत्यक्ष ज्ञान का भाग है यह आनंद का प्रत्यक्ष का भाग नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्मबात है इससे भी आगे है। जिस श्रुतज्ञान को प्रत्यक्ष कहा, इस श्रुतज्ञान को भी ज्ञान का प्रत्यक्ष भेद कहा, यह भी पूरे आत्मा के पूरे असंख्यप्रदेश और आकार को कुछ ऐसे जानता नहीं। (श्रोता :- अनुभव प्रत्यक्ष है) अनुभव का अर्थ :- आनंद का वेदन प्रत्यक्ष है, प्रत्यक्ष अर्थात ? स्वयं वेदता है। प्रत्यक्ष और परोक्ष का भेद यह आनंद का भेद नहीं। भेद-प्रत्यक्ष और परोक्ष तो ज्ञान का भेद है। भाई ! आहाहा ! अभी इसमें एक सूक्ष्म बात है परंतु बहुत सूक्ष्म हो गई।

इसमें यह श्रुतज्ञान स्वयं को प्रत्यक्ष जानता है - ऐसा कहना यह प्रत्यक्षवत् है इसलिये प्रत्यक्ष कहा है। (श्रोता :- अन्यथा यह भी, परोक्ष है।) अन्यथा यह परोक्ष है। जो श्रुतज्ञान स्वयं को जानता है वह अभी परोक्ष है कारण कि श्रुतज्ञान में कहीं असंख्य प्रदेशी आकार इत्यादि सभी को जानता नहीं केवलज्ञान ही एक प्रत्यक्ष है। आहाहाहा ! बहुत सूक्ष्म बातें बापू ! (मोक्ष) मार्ग में इतनी अपेक्षायें है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, व्यवहारनय को झूठा कहा इसका कारण क्या ? व्यवहारनय का विषय क्या है ? कि जिसका विषय ही न हो - ऐसा भी कहते हैं कि नय है, तो उसका विषय न हो ? (श्रोता :- नय का विषय न हो ?) नय है यह विषयी है और उसका विषय तो होता ही हैं।

परंतु यहाँ व्यवहारनय का विषय नहीं - ऐसा कहा है उसका कारण क्या ? समझ में आया ? शांति से समझना भाई ! यह गाथा तो (श्रोता :- अलौकिक है) अन्जान व्यक्ति को तो यह सभी पूरा (समझना मुश्किल) कारण कि यह धर्मी की बात है अभी... सभी उलट-पलट कर डाली, लोगों ने। आहाहा ! ***व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ कहने का आशय - ऐसा है कि शुद्धनय का विषय अभेद एकाकाररूप वस्तु जो अभेद अखण्डानंद प्रभु - ऐसा जो अभेद विषय है, एकाकार है एकस्वरूप ही है त्रिकाली एवं नित्य द्रव्य है।***

शुद्धनय का विषय अभेद एकाकार एक स्वरूप, एकाकार अर्थात एकस्वरूप और नित्य द्रव्य, त्रिकाली द्रव्य वह शुद्धनय का विषय है, शुद्धनय उसे ध्येय बनाता है। आहाहाहा ! - ऐसा समझाना चाहते हैं, शुद्धनय का विषय अर्थात शुद्धनय है वह ज्ञान का अंश है उसका विषय कुछ हो कि नहीं ? तब ज्ञान का जो अंश है उसका विषय अभेद एकाकाररूप, अंतर एकरूप त्रिकाली अभेद, नित्यद्रव्य वह शुद्धनय रूप ज्ञान के अंश का विषय है। आहाहाहा !

उसकी दृष्टि में भेद दिखता नहीं। आहाहा ! अपना भगवान आत्मा अभेद की दृष्टि का विषय में आता है; वस्तु अखण्ड अनंतगुणों का पिण्डप्रभु, इसकी जहाँ दृष्टि के (इस) विषयमें दृष्टि लगती है, तब उसे दृष्टि में अभेद दिखता है, इस अभेद में भेद दिखता नहीं। आहाहा ! है ? उसकी दृष्टि में उसकी दृष्टि में अर्थात ? नित्य (की) दृष्टि जो की है सम्यग्दर्शनने और सम्यग्दर्शन का विषय नित्यद्रव्य है, ध्रुव त्रिकाल-त्रिकाल। इस त्रिकालीद्रव्य को विषय बनाया है इसमें भेद, अभेद में भेद दिखता नहीं। आहाहाहा ! उसकी दृष्टि में हो ? त्रिकाली को देखनेवाला सम्यग्दर्शन... यह त्रिकाली अभेद की दृष्टि का विषय है। उसके साथ यहाँ नय भी है, क्योंकि दृष्टि जानती नहीं न ? दृष्टि में जानने का स्वभाव नहीं। सम्यग्दर्शन में प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद नहीं। प्रत्यक्ष और परोक्ष तो ज्ञान के ही भेद है। समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा सूक्ष्म कितना !

इसलिए यहाँ कहते हैं (कि) ***शुद्धनय का विषय अखण्ड स्वरूप पूरण द्रव्य जो वस्तु भगवान, त्रिकाली नित्य द्रव्य वस्तु, नित्य पदार्थ है।*** ऐसी दृष्टि में अभेद में उसे उस अभेद की दृष्टि के समयमें, भेद अभेद में दिखता नहीं। भेद नहीं (होने पर भी) - ऐसा नहीं, भेद इसमें है, एकरूप वस्तु की दृष्टि में गुण अनंत है, गुणी की दृष्टि में अंदरगुण है, परंतु गुण-गुणी का भेद(रूप) विषय वहाँ सम्यग्दर्शन में नहीं। आहाहा !

यह तो गुण-गुणी एकरूप है - ऐसा जो अभेद विषय करनेवाला, उसकी दृष्टि में अंदर भेद होने पर भी अभेद को देखनेवाला भेद को देखता नहीं। उसकी दृष्टि में भेद है ही नहीं। इसलिये उसकी दृष्टि में भेद है ही नहीं, अविद्यमान अर्थात नहीं। आहाहा ! थोड़ा-थोड़ा समझना, धीरे-धीरे समझना भाई ! हमारे बाबूलालजी कल नहीं थे न इसलिये फिर से कहा। आहाहा !

बापू ! यह विषय तो अमृत का समुद्र है। आहाहा ! ***पर्याय को... पर्याय मात्र को यहाँ झूठा कहा (है)। यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय को भी झूठा कह दिया, क्योंकि यह व्यवहारनय का विषय है केवलज्ञान अंश है न ? यह सद्भूत व्यवहारनय का विषय है, राग है यह असद्भूत व्यवहारनय का विषय है। आहाहा ! और मतिज्ञान आदि का जो भेद है यह सद्भूत, आहाहा ! उपचार का विषय है। आहाहा !***

यह सभी अभूतार्थ है, यहाँ तो - ऐसा कहना है, किस अपेक्षा से ? कि त्रिकाली की दृष्टि जब करते हैं अभेद को जब देखते हैं, उसमें भेद दिखता नहीं, इसलिये उसे भेद नहीं - ऐसा कहा जाता है। आहाहा ! अभेद को देखने पर भेद दिखता नहीं अभेद में, इसलिये उसे (भेद) नहीं - ऐसा कहा है। व्यवहारनय नहीं - ऐसा

कहा है। आहाहा ! बहुत ध्यान रखे तो (समझ में आये), व्यापारियों को धंधे के कारण फुरसत नहीं मिले, और धरम के नाम पर बाहर में तप और व्रत में अटक गये। आहाहा ! प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का विषय (ध्येय) क्या है ? आहा ! समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो आत्मा का जो अनुभव है यह भी दृष्टि का विषय नहीं। (श्रोता :- यह पर्याय है) पर्याय है। आहाहाहा ! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा को जो अनंतज्ञान और अनंत आनंदादि प्रगटे, यह तो व्यवहार नय का विषय है, यह निश्चयनय का विषय नहीं। प्रगट हुआ है न ? है त्रिकाल, जो त्रिकाल है, वस्तु स्वरूप से त्रिकाल है उसे देखनेवाले को और उसे सत्यार्थ कहा जाता है। और इस सत्यार्थ को देखनेवाले को उसकी दृष्टि में भेद दिखता नहीं, इसलिये भेद नहीं - ऐसा कहा जाता है। अरे... ऐसी बातें। समझ में आया ? कहां गये कपूरभाई ! कलकत्ता में - ऐसा है नहीं कुछ, सब हैरान होने के रास्ते है ! आहाहाहा !

गजब बात करते हैं न ! यह गाथा तो जैनदर्शन का प्राण है। विश्वदर्शन, जैनदर्शन कोई पक्ष नहीं विश्वदर्शन (है)। छह द्रव्य, इसमें आत्मद्रव्य एक अनंतगुणों का पिण्ड उसे जानना यह जैनशासन है, जैनशासन कोई पक्ष नहीं वस्तु जो जैन स्वरूप है त्रिकाली, यह अभेद को देखना उसकी पर्याय को जैनशासन कहते हैं, पर्याय को हां !

यहाँ तो यह पर्याय का विषय है। यह अभेद है, एकरूप है, नित्य है। आहाहा ! तीनशब्द प्रयोग किये है है न ? अभेद, एकाकार, नित्य। आहाहा ! जो दृष्टि या ज्ञान का अंश... यहाँ तो `जानना' है न अर्थात, जो ज्ञान का अंश, त्रिकाली नित्य को जाने देखे, उसकी दृष्टि में भेद दिखता नहीं, इसलिये भेद नहीं - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहाहा ! कहो, समझ में आया...? उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान, अविद्यमान अर्थात नहीं, असत्यार्थ अर्थात झूठा कहना चाहिए। आहाहा ! यहाँ तक तो कल आया था। बाबूलालजी ! यहाँ तक कल आया था यह तुम्हारे लिये एवं हसमुखभाई तथा सभी आये हैं न नये ! आहाहा !

कि यह क्या है परंतु यह तीनचार पंक्तियों में। आहाहा ! अरे ! बापू ! आहा ! गंभीर मार्ग प्रभु। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ! अभी तो सर्वज्ञ कौन है इसका पता नहीं लगे, और सर्वज्ञ की मौजूदगी जगत में है कि नहीं, इसका पता भी नहीं लगे। इसका पता न लगे तो सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है कि नहीं, इसकी भी खबर न लगे। आहाहाहा !

सर्वज्ञ प्रगट हुई पर्यायवाले है कि नहीं ? और यह पर्यायवाले प्रगटवाले है तो सर्वज्ञ स्वभाववाला आत्मा है कि नहीं ? आहाहा ! तब सर्वज्ञ स्वभावी अभेद

स्वभाव को देखनेवाले को उसे यह केवलज्ञान की पर्याय और मतिज्ञान की पर्याय और भेद इस अभेद में दिखते नहीं। उसकी दृष्टि (ज्ञान) की अपेक्षा यह भेद है, फिर भी इस दृष्टि की अपेक्षा भेद नहीं - ऐसा कहने में आया है। सुमनभाई ! रात को तो बापूजी कहते थे कि अब एक महिना अवकाश लेंगे अब - ऐसा सत्य।

यह करना है बापू, बाकी तो सभी समझने जैसा है। आहाहा ! भगवान हो न प्रभु ! तुम्हारा स्वरूप ही अंदर भगवान है, नित्यद्रव्य भगवान स्वरूप है त्रिकाली। उसकी जो दृष्टि अथवा इसका जो ज्ञान, उसके ज्ञानका इसमें जो विषय अभेद है, उसमें भेद दिखता नहीं; इसलिये भेद नहीं और झूठा है - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहाहा ! अरे...रे...! कहीं दिमाग नहीं चले, ज्ञान को फिराने की शक्ति न मिले अब यह कहाँ (जाये)। आहाहा !

(श्रोता :- कभी आप अखण्ड कहते, कभी खण्ड कहते हमें इसमें क्या समझना ?) कहा न ! दोनों अपेक्षायें तो कहीं। खण्ड है, परंतु अखण्ड दृष्टि देखनेवाले को खण्ड दिखता नहीं इसलिये खण्ड को झूठा कहा है (श्रोता :-अखण्ड को देखनेवाले को खण्ड क्यों दिखे ?)

इसलिये तो कहते हैं अखण्ड को देखनेवाले को, अभेद को देखनेवाले को, नित्य को देखनेवाले को, अभेद को देखनेवाले को, भेद दिखता नहीं। एकाकार देखनेवाले को अनेकता दिखती नहीं। नित्य देखनेवाले को अनित्य दिखता नहीं यह पुनः ज्यादा स्पष्ट किया लो। आहाहा ! अरे ! प्रभु का मार्ग बापा ! अभी तो सुनना ही मुश्किल से मिले - ऐसी चीज है प्रभु ! क्या कहें ? आहा !

क्या कहा ? कि, अंतर में जिसने ज्ञान के अंश में... प्रमाण में नहीं यहाँ, प्रमाण तो त्रिकाली को जानता और पर्याय को भी जानता दोनों को जाने उसका नाम प्रमाण। इसलिए यहाँ शुद्धनय (कहा है) यह प्रमाण का अवयव, नय है - शुद्धनय प्रमाण है यह त्रिकाली को जाने और वर्तमान को जाने, दोनों को जाने उसका नाम प्रमाण। अब यह प्रमाण का अवयव, वह नय, उसमें वह अवयव जो निश्चय है, शुद्धनिश्चय है, प्रमाण के भाग का एक विषय, निश्चयनय को जाननेवाला है, वह एक विषय है वह एक नय है, यह प्रमाण नहीं। आहा !

यह नय, एक अंश को विषय करता है। नय द्रव्य और पर्याय दोनों को विषय नहीं बनाती, नय एक अंश को विषय करता है, परंतु यह अंश कौन ? कि अभेद और एकाकार नित्य अंश है उसे विषय करता है। आहाहा ! समझ में आया? विषय बनाता है अर्थात क्या ? कि लक्ष्य में लेता है। (श्रोता :- अर्थात इसे जानता है) आहाहा ! उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान असत्यार्थ झूठा कहना चाहिए अब स्पष्टीकरण

करते है कि इसकी दृष्टि सें त्रिकाल वस्तु ज्ञायक प्रभु चैतन्य त्रिकाल आनंद का नाथ नित्य वस्तु (होने से), इसकी दृष्टि में भेद नहीं, इसलिये उस भेद को `नहीं' कहकर झूठा कहने में आया है।

अब - ऐसा नहीं समझना कि भेदरूप कुछ वस्तु ही नहीं। असत्यार्थ कहा झूठा कहा। `नहीं' है कहा। अविद्यमान कहा न ? व्यवहारका विषय है ही नहीं, यह किस अपेक्षा से ? यह त्रिकालदृष्टि के अनुभव की अपेक्षा से, शुद्धनय का ध्येय पूर्ण, अभेद है इसकी अपेक्षा से भेद नहीं - ऐसा कहा। परंतु सर्वथा भेद ही नहीं - ऐसा माने, आहाहा ! है ? - ऐसा नहीं समझना। आहाहा !

इस गाथामें से तो एक थे (पं.) नाथूलाल प्रेमी मुंबई, दिगम्बर पण्डित थे। वह इस गाथामें से निकालते कि यह तो वेदांत के ढाला में ढाली है यह गाथा। यहाँ पर्याय नहीं, पर्याय नहीं, पर्याय झूठी है - ऐसा कहते हैं (परंतु यहाँ) - ऐसा नहीं बापू! वहाँ पर्याय बिलकुल नहीं - ऐसा कहते हैं (वेदांत), परंतु यहाँ तो पर्याय को, द्रव्यदृष्टि में नहीं दिखती, इसलिये पर्याय को झूठी कहा, पर्याय पर्यायकी अपेक्षा (से) है। आहाहाहा ! समझ में आया ? रविवार का दिन यह भावनगरवाले सभी आये न, इसमें आज - ऐसा आया है यह। (श्रोता :- बहुत अच्छी बात है न !) चाहे जितनी बार पढ़ें... यह तो... अमृत का सागर है। आहाहा !

क्या कहा ? कि वस्तु है न आत्मा पदार्थ, इसमें चाहे गुण हों, पर्याय हो, परंतु यह वस्तु है इस दृष्टि से जो देखता है अर्थात ज्ञान दृष्टि तो प्रतीतिरूप है, देखनेवाला तो ज्ञान है, जो नय का अंश ज्ञान का अंश प्रमाण नहीं। प्रमाण का अंश (ज्ञान) तो त्रिकाली को देखे और पर्याय को देखे, परंतु इस प्रमाण का एक अंश जो शुद्धनय जो अभेद को देखे त्रिकाल, ऐसे अभेद में एकाकार में नित्य में भेद, अनेकता और अनित्यता वहाँ होती नहीं, दिखती नहीं। इसलिये व्यवहारनय नहीं - ऐसा कहा है। आहाहाहा !

परंतु इसका अर्थ - ऐसा नहीं कि व्यवहारनय और नय का विषय बिलकुल है ही नहीं। यह तो त्रिकाली की दृष्टि और अभेद की अपेक्षा से, उसकी दृष्टि में अभेद दिखता है इसलिये उसकी दृष्टि की अपेक्षा से भेद नहीं - ऐसा कहा। समझ में आया ? आहाहाहा ! अब, व्यापारियों को फुरसत मिले नहीं न... यह सभी निर्णय करने का। कपूरभाई ! (श्रोता :- कहीं सारे दिन घर आये नहीं।) घर में तो नहीं मिले (परंतु) उपाश्रय में जाय तब भी नहीं मिले मंदिर जाय तो भी न मिले यह बात। आहा...हा ! शांति से समझ में आये - ऐसा है प्रभु ! आत्मा है न ? यह तो आनंद का ज्ञानसागर है। यह ज्ञान किसे न समझे ? आहाहा ! यह तो

अनंतकाल में (सुनी) नहीं, ऐसी अलौकिक बात है। आहाहा !

परंतु... अभेद की दृष्टि में एकनय का शुद्धनय का विषय जो अभेद एकाकार नित्य उसकी दृष्टि में भेद अनेकता और अनित्यता दिखती नहीं, इसलिये भेद अनेकाकार अनेक और अनित्य यह नहीं - ऐसा कहने में आया है (परंतु) यह उसकी दृष्टि में। आहाहा ! समझ में आया ?

अरे ! ऐसी सूक्ष्म बातें करना और... फिर समझ में आया ? कहना। बापू ! यह तो अलौकिक बातें (है) क्या (है) क्या कहें ? अभी तो उलट-पलट बहुत होगई है बापू! दुनियाँ को जानते हैं और पूरे हिन्दुस्तान को जानते हैं दश-दश हजार मील तीन बार घूमे पूरे हिन्दुस्तान में, मोटर से। आहाहा !

यह वस्तु कोई अलग बापू ! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर, उन्हें जो ज्ञान में ज्ञात हुआ, तीनकाल, तीनलोक को जाननेवाली पर्याय को जाना, उसकी आवाज में ओम् ध्वनि उठी। ओम् ध्वनि निकली और उसकी रचना संतो ने आगम में की, उसमें का यह एक आगम है। (समयसार !) उसमें भी ग्यारहवीं गाथा आहा ! **'ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ'** आहाहा ! यह व्यवहार भेद अनेक, एक, पर्याय झूठी है - ऐसा सीधा शब्द लिया है।

'ववहारोऽभूयत्थो' - भेद-पर्याय-राग, अनेकपना झूठा है, और **'भूयत्थो देसिदो खलु'** शुद्धनय, त्रिकाल एक वस्तु है वह सत्य है वही सत्य है। त्रिकाल एक वस्तु सत्य है। भेद, अनकेता अनित्यता वह इस दृष्टि के विषय में नहीं दिखता नहीं; इसलिए उसे अविद्यमान व्यवहार कहा है। आहाहा !

'परंतु - ऐसा नहीं समझना कि भेदरूप कुछ वस्तु ही नहीं। यदि - ऐसा मानने में आये तो, तब जैसे वेदांतवाले, भेदरूप अनित्य को देखकर'... आहाहाहा ! क्या कहते हैं ? वेदांतवाले सर्वव्यापक एक आत्मा ही कहते हैं बस। पर्याय और अनेकगुण एवं अनेक द्रव्य आदि यह मानते नहीं। अनेक द्रव्य तो नहीं, परंतु अनेकगुण वह मानते नहीं। अनेक गुण तो ठीक आत्मा अनुभव करे (ऐसी) आत्मा की पर्याय को, मानते नहीं। क्योंकि आत्मा और अनुभव करे यह दो भेद हो गया। अरे ! शशिभाई ! यह शशिभाई ! रहे हमारे, वेदांती वैष्णव थे मोढ़-मोढ़, भावनगर में प्रवचन करते हैं। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि वेदांतवाले तो एक ही (सर्व) व्याप कहते हैं। एक आत्मा विज्ञानघन इसमे विज्ञान और आत्मा - ऐसा भी नहीं यह तो बस एक एक स्वरूप वस्तु उसमें गुणभेद भी नहीं, पर्याय भेद नहीं विकार नहीं और अनेकता भी नहीं अनेक द्रव्य, यह भी नहीं। आहाहा !

तब, वेदांत मतवाले भेदरूप अर्थात गुण के भेदको कि अन्य पदार्थको तथा पर्याय

को अनित्य देखकर अवस्तु... `मायारूप कहते हैं' यह तो माया है...' मा...या...! या...मा... यह उसमें नहीं। या...मा, मा...या। मा...या...या...मा...। वह नहीं यह वह नहीं पर्याय नहीं, गुणभेद नहीं अनेक नहीं - ऐसा वेदांत का बड़ा मत है। मुसलमान में भी एक सूफी फकीर का भी - ऐसा मत है। सूफी फकीर होते है वह भी एकरूप मानते हैं। (श्रोता :- वह भी वेदांत (जैसे) होते है न ?) वेदांत नहीं, परंतु यहवेदांत जैसे ही माननेवाले सूफी फकीर होते है, एक बार हमने देखा था बोटाद में हम ठीक दरवाजे से बाहर निकले और वह ठीक सामने आते थे, तब बिचारे खड़े रह गये। वैसे तो हमारा नाम बहुत प्रसिद्ध है न! बोटाद संघ में (संप्रदाय में) हजार पन्द्रह सौ मनुष्य सभी संवत १९७४ में (सुनने) आते थे, कहा यह फकीर को ख्याल था, था वैरागी उदास-उदास जैसे हम निकले अतः एक तरफ खड़ा रहा, हमने किसी को पूंछा कि यह है कौन ? कहते कि यह सूफी फकीर है। वेदांती जैसी मान्यतावाले।

एकरूप वस्तु है - ऐसे माननेवाले... हम खुदा है, खुद यारो दूसरा कोई खुदा नहीं, हम खुदा है - ऐसा फकीर था, उदास देखा था, लगभग दो थे। बोटाद के बाहर निकलने का दरवाजा (है), वहाँ हम निकले वहाँ वह भी बिचारे यहाँ आते थे, परंतु एक तरफ खड़े रह गये। इन सूफी फकीरों को यह तत्त्व मिला न हो तब विचारे क्या करें ? वैरागी दिखते थे, चहेरे पर वैराग्य, उदास... दूसरे साधारण लोगों जैसे नहीं दिखते थे। परंतु एकरूप वस्तु है कि हम खुदा है, सब खुदा है। एक ही खुदा है - हम है खुदा खुद यारो।

इसमें एक हो गया है न ? नाम क्या है ? शूली पर चढ़ा था। मनसूर - मनसूर एक था इनमें हुआ है। (श्रोता :- अनहलहक्क) यह नहीं यह तो अनहलहक्क - ऐसा बोला, परंतु उसका नाम क्या (है) ? मनसूर - मनसूर था वह एक ही माने, फांसी पर चढ़ाओ। फांसी पर चढ़ाया था कहे, अनहलहक्क एक खुदा मैं हूँ। खुदा एक ही है। आया है कथा में आता है न ! फांसी पर चढ़ाया, फांसी ऊपर चढ़ा विरोध करते थे न (कहें)। खुद तुम खुदा एक खुदा सब खुदा है। चढ़ायो फांसी पर, तब वह बोला अनहलहक्क - एक खुदा है। दो खुदा नहीं, दो तत्त्व नहीं... चढ़ादो फांसीपर।

यहाँ कहते हैं कि वेदांतवाले भेदरूप अर्थात् अन्य वस्तु को देखकर अपनागुण भेद देखकर अनित्य को देखकर, अवस्तु यह वस्तु ही नहीं - ऐसा कहते हैं। माया स्वरूप है, माया स्वरूप है कि नहीं ? (है) तब दो हो गये, एक आत्मा और एक माया स्वरूप।

यह बड़ी चर्चा हुई थी, एक परमहंस आये थे। मोतीलाल, राजकोट के थे

परमहंस हमारी दीक्षा के समय थे। प्रवचन में बहुतबार आते (संवत) नवासी की साल से, उसने दीक्षा ले ली (सं. पंचावने) में फिर आये थे यहाँ आये थे, राजकोट आये थे। खूबचर्चा की, फिर कहा आप कहते हो कि `एक ही आत्मा है' - ऐसा मानों कि एक ही आत्मा है - ऐसा कहनेवाला जो है वह - ऐसा कहते हैं, वेदांती कि तुम दुःख से बिलकुल मुक्त हो जाओ तब आनंद आये, तव... - ऐसा कहा था उसका अर्थ दुःख है, उसका अस्तित्व है - दुःख है उसका अस्तित्व है, तब आनंद आत्मा और दुःख दो वस्तु हो गई, और दुःखसे मुक्त हो जाये, तब आनंद आया, तब आत्मा और आनंद की पर्याय, दो वस्तु सिद्ध हो गई।

फिर शुरु से बहुत चर्चा हुई तब स्वीकार किया था, पहले से उन्हें परिचय बहुत था नवासी से (प्रवचन में) तीन तीन हजार व्यक्ति, स्वयं व्याख्यान में आते, पंचानवे में आये थे, फिर कौन जाने क्या हो गया, पत्नी से कुछ (विरोध होगा) परमहंस हो गया दशा श्रीमाली वानिया था। तुम पहचानते थे ? नहीं। फिर तो गुजर गये, यहाँ आये थे खूबचर्चा हुई।

भाई ! तुम - ऐसा कहते हो कि एक ही व्यापक है, तब यह व्यापक है, और व्यापक नहीं - ऐसा माननेवाले, यह कौन ? नहीं माननेवाले कोई चीज है कि नहीं ? सर्वव्यापक नहीं - ऐसा माननेवाले है कि नहीं ? उसे ही सर्व व्यापक कहते हैं न ? तब इसका अर्थ हो गया कि (है) कहनेवाला एक एवं नहीं माननेवाले (दो) हुये, अर्थात नहीं, और माननेवाले है अर्थात द्वैत हो गया, अद्वैत नहीं रहा।

यह वेदांतवाले तो भेद अर्थात अनेक पदार्थो, अनित्य अर्थात पर्याय को देखकर अवस्तु है और माया स्वरूप कहते हैं और सर्वव्यापक - सर्वव्यापक। आहाहा ! सर्व व्यापक एक अर्थात वस्तु एक ही है सर्वव्यापक, दो (नहीं)। अभेद अर्थात। गुणभेद नहीं (कहते हैं) सर्व व्यापक एक और अभेद अर्थात गुण भेद नहीं। नित्य अर्थात पर्याय नहीं, बहुत शब्द सूक्ष्म है इसमें, यह तो सर्वव्यापक एक और अभेद, यह एक को माननेवाले और अभेद अर्थात गुणभेद भी मानतेनहीं और नित्य अर्थात पर्याय मानते नहीं, शुद्धब्रह्म को वस्तु कहते हैं।

ऐसे सर्वव्यापक एक, अभेद, नित्य, शुद्धब्रह्म को वस्तु कहते हैं। आहाहाहा ! वेदांतियों का बड़ा मत है पूरा अमेरिका में गया है यह वेदांती मत, कारण कि बातें करनेवाले को ऐसी बातें अच्छी लगें कि शुद्ध है एवं आत्मा एक है और। आहाहा ! अब तो, आता है वह बोम्बे में, अमेरिका के... हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, हरे कृष्ण (हरे राम) करते हुये निकलते हैं बोम्बे में निकलते है बाबा... अमेरिका के है न यह ? देखा है न, कुछ ज्ञान नहीं होता... हरेकृष्ण। आहाहा ! वह वहाँ से ऊब गये है

एवं बहुत पैसा हो और बहुत पैसेवाले लखपति वहाँ है परंतु शांति कहीं दिखती नहीं अर्थात बिचारे कही अन्य शोधने निकले परंतु सत् क्या है उन्हें यह हाथ में आना कठिन है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि अज्ञानी, भेद को अर्थात अनेक आत्मायें अनेक द्रव्य को नहीं माननेवाले, गुणभेद को नहीं माननेवाले, पर्याय को नहीं माननेवाले, उसे अवस्तु कहनेवाले और सर्व व्यापक एक अभेद को वस्तु कहते हैं - ऐसा सिद्ध हो... पहले कहा न कि अभेद में भेद देखता नहीं, इसलिये भेद नहीं - ऐसा कहा, परंतु भेद है ही नहीं - ऐसा माने तब तो वह वेदांत जैसा हो जायेगा। आहाहाहा ! समझ में आया ? शांति से समझना... बापू ! यह तो मार्ग (कोई अलग है !) आहाहाहा !

ऐसा सिद्ध हो, और इसलिये सर्वथा एकांत शुद्धनय के पक्षरूप सर्वथा एकांत, अभेद और एकाकार एवं नित्य ही वस्तु को मानने की अपेक्षा से, एकांत शुद्धनय के पक्षरूप, मिथ्यादृष्टि का ही प्रसंग आये, वह तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। आहाहा ! ***अनेक द्रव्य न माने, एक द्रव्य में गुण भेद न माने, एक द्रव्य में पर्याय न माने, तब यह शुद्धनय का एकांत पक्ष, मिथ्यादृष्टि हो जायेगा, झूठी दृष्टि होगी।***

अरे ! ऐसी अटपटी बातें। इसलिये एक नाथूरामप्रेमी थे न, गुजर गये वह कहते कि इस गाथा में तो पर्याय को नहीं - ऐसा (कहकर) वेदांत की स्थापना की है। वेदांत की चाल में समयसार को ढाला है (परंतु - ऐसा नहीं) यह तुम्हें खबर नहीं बापू ! किस अपेक्षा से यहाँ कहा है ? पर्याय झूठी, गुणभेद झूठा, अनेकपना झूठा, किस अपेक्षा कहा है ? ***यह त्रिकाली की दृष्टि देखनेवाले को वस्तु की अंतः दृष्टि देखनेवाले को शुद्धनय से पूरे द्रव्य को देखनेवाले को, भेद अनित्य और अनेकता दिखती नहीं, उसकी दृष्टि की अपेक्षा से उसे झूठा कहा है। परंतु भेद और पर्याय और अनेकता नहीं - ऐसा मानने जाओगे तो एकांत मिथ्यात्व होगा।*** आहाहा ! समझ में आया ?

इसलिये सर्वथा... कथंचित अभेद है एवं पर्याय दृष्टि से भेद है। कथंचित शुद्धनय से एक है, गुणपर्याय से अनेक है, कथंचित पूर्ण शुद्ध है, पर्याय की अपेक्षा से यह भी अशुद्ध है, इसप्रकार दोनों अपेक्षा यथार्थ जाने और माने तो यह यथार्थ दृष्टि है। समझ में आया ? आहाहा !

इसलिये, ऐसे एकांतमत का पक्ष आये तो मिथ्यादृष्टि झूठी दृष्टि हो जायेगी। अभेद में भेद नहीं - ऐसा जहाँ कहा और अनेकपना और पर्याय नहीं - ऐसा कहा, यह तो एकरूप की दृष्टि कराने और एकरूप की दृष्टि में पर्याय और गुणभेद दिखता नहीं, अतः `नहीं', - ऐसा कहा है। परंतु गुणभेद और पर्याय नहीं - ऐसा

जो मानने जाओगे, तो सर्वथा एकांत मिथ्यादृष्टि हो जाओगे। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

परंतु जो अभेद को देखता है, यह भी एक ज्ञान का अंश है, और उसका विषय है, तब वहाँ यह दो भेद हो गये। `भूयत्थमस्सिदोखलु' अब तीसरा पद है यहाँ भूतार्थ का आश्रय करता है वह आश्रय करनेवाली पर्याय है और आश्रय है भूतार्थ का, वहाँ दो भेद हो गये। समझ में आया ? भेद नहीं हो तब यह दोनों झूठ सिद्ध होते हैं। परंतु... जिसने निमित्त और राग एवं पर्याय तथा गुणभेद से दृष्टि उठायी और जिसने ज्ञान के अंश को... एक नय है न अर्थात, त्रिकाली नित्यका दूसरा अंश (अनित्य) है उसको लक्ष्यमें से छोड़कर एक त्रिकाली अंश है उसके ऊपर दृष्टि करने से, दूसरा अंश है वह त्रिकाली में दिखता नहीं अतः झूठा कहा था, परंतु सर्वथा नहीं - ऐसा जो मान बैठें तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

इसलिये यहाँ इस गाथा की अपेक्षा से अरे ! अरे ! टीका का (भावार्थ में भरा है न) पंडितजी (जयचन्दजी) का भी यहाँ कहने का आशय है दूसरी जगह तो स्पष्ट बात की है, कि पर्याय है गुणभेद है, अनंतगुणों हैं। परंतु यहाँ जो कहने में, आया है इस अपेक्षा सें, `यहाँ - ऐसा समझना' इस गाथा के प्रसंग में - ऐसा इन्हें ***समझाना कि `जिनवाणी स्याद्वादरूप है', वीतराग परमात्मा की वाणी, स्याद् अर्थात कथंचित कहनेवाली है, कथंचित त्रिकाली अभेद है नित्य है, कथंचित पर्याय अपेक्षा अनित्य है - ऐसा कहनेवाली है। कथंचित अभेद है कथंचित भेद है, कथंचित एक है कथंचित अनेक है, आहाहा ! एक और अनेक गुण है एवं अनेक भी उसका गुण है, त्रिकाली अभेद में भी एक अनेक नामक गुण है।*** ४७ शक्तियों में आती है एक अनेक। आहाहा !

सूक्ष्म बातें वहाँ जाये तो... वस्तु अपेक्षा एक है - ऐसा भी एक गुण है और गुणों की अपेक्षा अनेक है - ऐसा भी उसका एक त्रिकाली गुण है। समझ में आया ? तब अनेक गुण को न माने तो इसने एकरूप द्रव्य माना नहीं। आहाहा !

बहुत सूक्ष्म नहीं करते हाँ ! कुछ-कुछ। आहाहा ! एक अनेक की व्याख्या तो सैंतालीस शक्ति में बहुत ली है। एक है, अनेक है, आहाहा ! कर्त्ता है, कर्म है, करण है, सम्प्रदान है, अपादान है, अधिकरण है। ऐसे अनंतगुण है अंदर (आत्मा में) एकवस्तु है, वस्तु अपेक्षा एक, गुण अनंत है। यह अनंत है सो अनेक है। एकांत अनेक को नहीं माननेवाला यहाँ इसे जो कहने में आया है कि अनेकपना नहीं, यह तो ***जिनवाणी स्यादवाद (रूप) कहनेवाली है त्रिकाली को अभेद बताने के लिये काल***

भेद नहीं। इस प्रकार भेद को एवं अनेक को गौण करके, `नहीं'। - ऐसा कहा है। अरे ! अरे ! शब्दों-शब्दों में फर्क है।

`जिनवाणी स्याद्‌वादरूप है... प्रयोजनवश', यह क्या कहते हैं ? कि अपने त्रिकाली शुद्ध चैतन्य का प्रयोजन सिद्ध करना है सम्यग्दर्शन प्रगट करना है, और शुद्धनय का विषय पूर्व एकरूप देखना है - इस प्रयोजन की अपेक्षा मुख्य गौण करके कहती हैं। प्रयोजन के वश, फल एवं हेतु की अपेक्षा, मुख्य गौण करके कहते हैं।

अर्थात क्या कहा ? कि त्रिकाली अभेद है वही मुख्य है उसे मुख्य करके उसे सत्यार्थ कहा हैं तथा पर्याय और गुणभेद को गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा है, अभाव करके `नहीं' - ऐसा कहा नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! अंतर में रखकर `नहीं' - ऐसा कहा है। जैसे तलहटी तों है परंतु ऊपर यहाँ चढ़ना है अर्थात तलहटी नहीं - ऐसा कहा। (है) यह तो चढ़ने की अपेक्षा तलहटी नहीं परंतु तलहटी तलहटी की अपेक्षा है। आहाहा ! इसीप्रकार आत्मा की वर्तमान दशा में पर्याय है। आत्मा में अनंतगुण हैं। उसकी पर्याय में रागादिक है उसे प्रयोजन वश, (गौण किया) (क्योंकि) ***त्रिकाली का आश्रय करे तो सम्यग्दर्शन हो, अभेद का आश्रय करे तो सम्यग्दर्शन हो, इसप्रकार प्रयोजन की अपेक्षा मुख्य है उसे निश्चय कहा त्रिकाली को और पर्याय और भेद है उसे गौण करके `नहीं' (है) कहा है। अभाव करके नहीं - ऐसा नहीं।*** आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा सभी विषय सूक्ष्म... समझना होगा कि नहीं यह बापू ! यह मनुष्यपना चला जाता है आंखे बंद हो जायेगी बापू एकबार... देह छूट जायेगी, दूसरी जगह जाये, आत्मा तो कहीं नष्ट होनेवाला - ऐसा है ? और कहाँ जायेगा फिर भटकने ? आहाहाहा ! ज्ञान नहीं करे एवं पहचान नहीं करे तो फिर भटकना हैं। आहा...हा !

इसलिये कहते हैं एकबार समझने के लिये, त्रिकाली की दृष्टि कराने, नित्य का आश्रय कराने, नित्य यह सच्चा है और अनित्य यह झूठा है, यहाँ नित्य का आश्रय मुख्य करके निश्चय कहा है। अनित्य को गौण करके नहीं - ऐसा कहते में आया है। आहाहा ! प्रयोजन के वश, आवश्यकता के कारण। अर्थात क्या ? कि त्रिकाली वस्तु का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है - ऐसी आवश्यक्ता के कारण। आहाहा ! प्रयोजनवश नय को मुख्य गौण करके कहते हैं। `निश्चयनय को मुख्य करके सत्य कहा और व्यवहारनय को गौण करके असत्य कहा'। - ऐसा जिनवाणी का कथन है। आहाहा ! क्यों ? - ऐसा क्यों कहा ?

जिनवाणी स्याद्वाद... स्याद् अर्थात अपेक्षा और वाद अर्थात कथन और अपेक्षा से क्यों कहा ? कि प्रयोजनवश सम्यग्दर्शन और शुद्धनय को सच्चा कहा और उसके

विषय को सच्चा कहा यह क्योंकि उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। व्यवहार और पर्याय का आश्रय करने पर सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहाहा ! प्रयोजन के वश नय को अर्थात किसी नय को... निश्चय को मुख्य करके... मुख्य को निश्चय कहकर... निश्चय को मुख्य कहा - ऐसा नहीं, इन दोनों में बड़ा फर्क, जो मुख्य है त्रिकाली उसे मुख्य करके, वह है - ऐसा कहा और पर्याय और गुण भेद को गौण कहकर, `नहीं' - ऐसा कहा। छोटा भाई !

इसमें यहाँ कहीं कलकत्ते के व्यापार धंधे में मिले - ऐसा नहीं वहाँ, यहाँ हमारे सेठ कहते हैं कि `किस कारण यहाँ आते है वहाँ कहाँ है ?' आहाहा ! यह बापू मार्ग प्रभु ! - ऐसा अलौकिक मार्ग है, आहाहा ! हा ! प्रथम तो इसे समझना कठिन पड़े - ऐसा है, आहाहा ! इसकी शैली इसकी रचना, आहाहाहा ! और अर्थ करनेवाले पण्डित भी कैसे निकले ? उन पण्डितों का अर्थ है। आहाहा ! जयचन्द्र पण्डितजी हैं गृहस्थ थे।

प्रयोजन के वश नय को मुख्य करके कहा है। - ऐसा क्यों कहा ? अभेद को सत्य कहा और मुख्य कहा और पर्याय को गौण एवं असत्य कहा। गौण करके `नहीं' कहा - ऐसा कहने का कारण क्या है ? समझ में आया ? यह बात लेंगे।

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ४२ गाथा-११ ता. २४-७-७८ सोमवार अषाढ वदी-५ सं.२५०४

समयसार ग्यारहवीं गाथा का भावार्थ। प्राणियों को यहाँ से है... है ? प्रयोजनवश नय को मुख्य गौण करके कहते हैं। यहाँ तक आ चुका है। क्या कहा ? कि त्रिकाली आत्मा जो निश्चय है और ***निश्चय तो द्रव्य भी है गुण भी है और पर्याय भी है। स्व की अपेक्षा निश्चय है, पर की अपेक्षा व्यवहार है। अब यहाँ त्रिकाली को निश्चय कहा, इसके गुण भेद को पर्याय और व्यवहार में डाला। क्योंकि ? त्रिकाली, ज्ञायक भाव, ध्रुव भाव, यह मुख्य है इसलिये यह निश्चय है, और उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। इसलिये मुख्य को निश्चय कहकर और पर्यायादि के व्यवहार को गौण करके `नहीं' - ऐसा कहने में आया था।*** गौण करके कहने में आया था। मुख्य-गौण, मुख्य वह त्रिकाली वस्तु एवं पर्याय और रागादिक व्यवहार उसे गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा था, और यह मुख्य कहकर निश्चय है, सत्यार्थ है - ऐसा

कहने में आया था।

अरे ! क्यों कहने में आया था इसमें कहते हैं। आहाहा ! `कि प्राणियों को, जीवों को भेदरूप व्यवहर का पक्ष'... भेदरूप पर्याय का और गुण-गुणी के भेद का, राग का, आहा ! `ऐसे भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से है' अनादि काल से है। वस्तु अखण्ड, अभेद है, उसका तो पक्ष और आश्रय कभी लिया नहीं। इसलिये अनादि से अज्ञानी को गुण-गुणी के भेद का अथवा पर्याय के भेद का कि राग का पक्ष अनादि से है। समझ में आता है कुछ ?

प्राणियों को... बहुत जीवों को एक को नहीं, प्राणियों को। आहाहा ! भेदरूप व्यवहार, एक समय की पर्याय और राग एवं गुण-गुणी भेद यह सभी पक्ष व्यवहार का पक्ष, यह भेदरूप व्यवहार... सूक्ष्मबात है। गाथा भी बहुत सूक्ष्म है और भावार्थ पण्डितजी ने बहुत सरल किया है। आहाहा !

भेदरूप व्यवहार... इसका पक्ष तो अनादि से प्राणियों को अर्थात बहुतसे जीवों को तो है, एक बात। `और उसका उपदेश की बहुधा सर्व प्राणियो .... परस्पर करते है' इसका उपदेश भी... व्रत करो, उपवास करो, व्यवहार सम्यग्दर्शन का आचरण, व्यवहार ज्ञान का आचरण तप का आचरण, व्यवहार का उपदेश तो अज्ञानी परस्पर एक दूसरों को करते हैं। आहाहा ! जीवंत चित्र खींचा है। परस्पर यह तो प्ररूपण करते हैं (एवं) सारी दुनियाँ मानती है। कहनेवाले (तो) कहते हैं, परंतु सुननेवाले भी कहते हैं कि वाह ! यह ठीक है, वह तो निश्चय निश्चय की बातें करते हैं।

व्रत, तप, भक्ति, पूजा, देव-गुरु-शास्त्र का विनय। समकिती के आठ व्यवहार अंग, व्यवहाररूप ज्ञानाचार यह करने जैसे है, यह साधन है - ऐसा अज्ञानियों का उपदेश (है) है ? उनका उपदेश `भी', भी अर्थात वह भेद (रूप) व्यवहार का पक्ष तो है उसमें यह दूसरी बात। उपदेश करनेवालों को भी अनादि से इस बात (की) रुचि है। आहाहा ! उपदेश भी... - ऐसा है न ? अर्थात पहली बात रखकर, बहुत अधिक लोगों का, सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। व्यवहार समकित का आचरण, व्यवहार ज्ञान आचरण, चारित्र का आचरण व्रत, तप, व्यवहार नियम आदि आहाहा ! और तप के व्यवहार आचरण अनशनादि, ऊनोदर वगैरह... उपवास करो त्याग करो, ऊनोदर करो रस छोड़ो, - ऐसा बहुधा प्राणी एक दूसरे को परस्पर एक दूसरे को बात बैठती है (समझ में आती है) इसलिये बहुत से यह करते हैं। समझ में आया ? आहाहाहा ! अरे संक्षेप में कितना भरा है देखो न !

कि अनादि का इसको भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो है और बहुधा प्राणियों इसीका उपदेश देते है। (श्रोता :- उपदेशक भी - ऐसा है) हाँ ? इसे उपदेशक भी ऐसे

ऐसे मिले हैं। आहाहा ! बहुत कठिन बात तब... परस्पर कहा-एक दूसरों को उपदेश करते हैं और वह हाँ करते हैं। ऐसे ही निश्चय की प्राप्ति होती होगी ? निश्चय, निश्चय की बातें करें परंतु व्यवहार साधन बिना निश्चय प्राप्त हो ? (श्रोता :- व्यवहार साधन है ?) साधन है - ऐसा कहलाता है - कथन में, परंतु यह वास्तव में साधन है नहीं। आहाहा ! परस्पर यह उपदेश करते हैं। आहाहा ! उपदेशक भी, व्यवहार से लाभ होता है और भेद के पक्ष की बातें, व्यवहार समकित का आचरण, व्यवहार सम्यक्त्व का, व्यवहार ज्ञान का आचरण, ज्ञान, विनय, उपाधान वगैरह। व्यवहार व्रत तप व्यवहार अनशन, ऊनोदर आदि तप, उसकी बातें व्यवहार से सुने तब लाभ हो, कुछ व्यवहार करें तो लाभ हो - ऐसा परस्पर उपदेश अज्ञानियों बहुत, बहुत प्राणियों करते हैं। बात समझमें आती है कुछ ?

(श्रोता :- इसमें कह इसप्रकार बहुधा लोग ऐसी बातें करते हैं) बहुधा यही करते हैं। अब बाद में तीसरे बोल में थोड़ी सूक्ष्म बात आयेगी। आहाहा ! भगवान आत्मा एक समय में परिपूर्ण चीज, उसका आश्रय लेने पर सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, सम्यग्चारित्र होता है। यह बात छोड़कर `बहुधा प्राणियों एक-दूसरे को व्यवहार का ही उपदेश करते है' प्रथम तो उन्हें भेदरूप व्यवहार रुचता है अनादि का, और उसके उपदेशक भी ऐसे उन्हें मिले। आहाहा ! समझ में आया ? उपदेशक भी तेहवा (ऐसे), आता है न ? क्या करे जीव नवीन ? इसके पहले क्या आता है ? `**द्रव्य रुचि कर जीवड़ा भावरूचिकर हीन... उपदेशक पण तेहवा शुं करे जीव नवीन ?** आहाहा ! द्रव्य रुचि कर जीवड़ा, व्यवहार की रुचि व्रत और तप एवं उपवास तथा देव-गुरु की विनय करो भक्ति करो, पूजा करो, व्रत करो, उपवास करो, व्यवहार सम्यग्दर्शन के आठ आचार (अंग) बराबर पालो, व्यवहार ज्ञान के आचार बराबर पालो क्योंकि भगवान ने भी व्यवहार कहा है न ?' कहा है कि नहीं ? परंतु कहा है यह किस कारण ? यह तो निश्चय के साथ निमित्त देखकर सहचर (देखकर) उपचार से व्यवहार कहा है। `परंतु इसका फल... बंधन है' आहाहा ! समझ में आया ?

शांति से यह तो... वस्तु में... व्यवहार अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। निश्चय सत्यार्थ है और निश्चय भूतार्थ का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी जो मूल गाथा और मूल वस्तु (है)। तब कहते हैं कि - ऐसा क्यों कहा ? कि व्यवहार झूठा (है) ? कि भाई यह तो गौण करके झूठा कहा है। व्यवहार व्यवहार अपेक्षा नहीं पर्याय अपेक्षा नहीं - ऐसा नहीं। इसप्रकार भूमिकानुसार राग रूप व्यवहार आता है, यह नहीं - ऐसा नहीं, परंतु उसे गौण करके और त्रिकाली मुख्य की दृष्टि कराने के लिए त्रिकाली वह सत्य है, और पर्याय आदि का व्यवहार वह असत्य है, यह गौण

करके असत्य कहा है। अभाव करके असत्य कहा नहीं, इसलिये इसे मुख्य गौण करके कहने में आया है। आहाहा !

तब - ऐसा कैसे कहा कि व्यवहार का भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से स्वयं से यह स्वच्छंदी है। और उपदेशक भी ऐसे मिले हैं। व्यवहार का उपदेश करके और दूसरों को लाभ हो - ऐसा सुननेवालों की भी इसमें ठीक लगता है। बाबूलालजी ! आहाहा ! है ? इसका उपदेश भी... किसका उपदेश ? व्यवहार का, दया-दान, व्रत-तप करो, विनय करो, भक्ति करो, सम्यग्दर्शन का अंग पालना बराबर, व्यवहार के, इसका उपदेश भी; प्रथम तो व्यवहार का पक्ष इसको अनादि का है तथा इमसें उपदश देनेवाले भी ऐसे मिले हैं। आहा ! परंतु बहुधा अर्थात अधिकांश, सर्वप्राणी, अधिकांश सर्व प्राणी आपस में (उपदेश) करते है। कहनेवाले कहते हैं सुननेवाले प्रसन्नता से हाँ करके (स्वीकार करते) ठीक है, यही साधन चाहिए, यों ही होता होगा, अकेले निश्चय की बातें करते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

इसप्रकार बहुत से अज्ञानी प्राणी तो व्यवहार का परस्पर उपदेश देकर प्रसन्न होते हैं, कहते कि बहुत अच्छी आपने अच्छी बात कही, और यह करते-करते होता है न, कि यों ही होता होगा ? ***अशुभ टाले शुभ करे फिर शुभ से शुद्ध होगा।*** (श्रोता :- क्रम तो - ऐसा ही है न ?) ***यह क्रम ही नहीं। यह क्रम तो सम्यग्दर्शन पाने के बाद स्वरूप की दृष्टि द्रव्य का आश्रय करने के बाद पहले चारित्र के अशुभ परिणाम टाले और फिर शुभ के टाले यह तो इस अपेक्षा से है। (श्रोता :- सम्यग्दर्शन के बाद की बात है ?) सम्यग्दर्शन के बाद की बात है। आहाहा ! समझ में आया ? यह मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अध्याय में आता है।***

प्रथम तो त्रिकाली आत्मा आनंद स्वरूप अभेद उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन होता है उसका अनुभव होता है, और इस जीव को पहले चारित्र का अशुभ दोष है यह उसे हटाये, फिर वह शुभ को टाल कर शुद्ध उपयोग में जाये। परंतु पहली दृष्टि तो शुद्ध उपयोग में आत्मा की दृष्टि हुई हो उसके लिये यह बात है। आहाहा ! समझ में आया ?

(श्रोता :- अज्ञानी को क्या करना ?) अज्ञानी को करना यह व्यवहार छोड़कर निश्चय करना यह अज्ञानी को करना - ऐसा कहते हैं। अभी आयेगा अभी अब अभी तीसरे बोल में कठिन है। दो बोल तो... समझ में आये ? उसका उपदेश भी... अर्थात वह भेद का पक्ष तो है इसके अलावा उसका उपदेश देनेवाले भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं, आहाहा ! दो बातें।

अब तीसरी बात... `जिनवाणी में,'... अब वीतराग की वाणी में भी व्यवहार का

उपदेश बहुत आया है। समझ में आया ? जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन अर्थात शुद्धनय स्वभाव की दृष्टि में, उस समय हस्तावलम्ब अर्थात सहायक, सहचर देखकर साथ में - ऐसा शुभभाव व्रत, तप... सम्यक्‌निश्चय है उसे सहचर अपेक्षा निमित्त रूप... व्यवहार समकित के आठ आचार होते हैं! समझ में आया ? उसका उपदेश जिनवाणी में भी आया है। समझ में आया ? आहाहा !

प्रवचनसार में चरणानुयोग (चूलिका) में कहा न ? हे दर्शनाचार, समकित का व्यवहार दर्शनाचार, निःशंक आदि मैं जानता हूँ कि तुम मेरा स्वरूप नहीं। प्रवचनसार ! तुम मेरा स्वरूप नहीं, मैं जानता हूँ, परंतु तम्हारी कृपा से, यह सभी व्यवहार के कथन है। जहाँ तक मैं पूर्ण शुद्धि को न पायें तब तक तुम्हारा प्रसाद अर्थात तुम्हें निमित्तरूप में अंगीकार करता हूँ - ऐसा है वहाँ। आहाहा !

कहो ! जिनवाणी में भी - ऐसा आया है, कहते हैं, प्रथम तो भेद का पक्ष इसे है, परस्पर उपदेश भी प्राणी बहुत करते है और तीसरा जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश बहुत आया है। आहाहा !

(श्रोता :- सब एक ही जाति का है, तब भेद क्यों करते है ? सभी क्रम एक ही जाति का तो भेद क्यो करते है ? शुभ और अशुभ एक ही जाति का है तो उसमें भेद क्यों करना ? (उत्तर) कौन करता है भेद ? यह (तो) उसे अभी देरी है, भेद कहाँ...! यह तो सम्यग्दर्शन होने के बाद सम्यग्दर्शन का अनुभव होने के बाद, पहले एकदम शुभ टाल सकते नहीं। प्रथम अशुभ टालकर शुभ में आये, फिर शुभ टालकर (छोड़कर) शुद्ध में आये, परंतु यह तो सम्यग्दर्शन होने के बाद की बात है। सम्यग्दर्शन पहले तो यह बिलकुल एकदम झूठी बात है बिलकुल अशुभ टले और शुभ आये, इसलिये उसे सम्यग्दर्शन हो... एकदम मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? यही तो यहाँ कहते हैं।

उसे शुभभाव का (पक्ष है) उससे धर्म होता है, भेद से धरम होगा, भेदरूप व्यवहार से लाभ होगा - ऐसी दृष्टि तो... मिथ्यादृष्टि की अनादि से है। सूक्ष्मबात है और दूसरी (बात) उपदेशक भी उसे - ऐसा कहते हैं। व्यवहार करो, यह व्यवहार तप करो, उपवास करो, त्याग करो। आहाहा ! सम्यग्दर्शन के व्यवहार आठ अंग पहले पालो, फिर निश्चय सम्यग्दर्शन होगा - इसप्रकार बहुधा अज्ञानी उपदेशक, परस्पर - ऐसा उपदेश करते हैं।

अब, बात इससे आगे ले जाकर, (श्रोता :- शास्त्रों में भी - ऐसा है) शास्त्रों में... जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का निमित्त, सहचर सहायक अर्थात साथ में जानकर शुद्धनय का उपदेश अंतर अनुभव, दृष्टि होने पर भी साथ में उसे

अभी पूर्ण वीतरागता नहीं हुई, तब उसके साथ में, अंदर साथ में व्यवहार सम्यग्दर्शन व्यवहारज्ञान आदि आये, समझ में आया ? इसलिये इसे निमित्त सहचर देखकर बहुत किया है। जिनवाणी में भी उपदेश बहुत किया है व्यवहार का, आहाहा ! शास्त्रों में तो व्यवहार का उपदेश बहुत है, परंतु इसका फल संसार है। भटकना ही है। आहाहा ! है ? इसका फल संसार ही है। जिनवाणी में जो व्यवहार कहा... उसका फल भी बंधन और संसार है। आहाहा ! न्याय समझ में आता है कुछ ?

क्योंकि अभी कहा न ! प्रवचनसार चरणानुयोग (चूलिका) सम्यक्त्व के आठ अंग, यह सम्यग्दर्शन होने के बाद की बात है। आत्मज्ञान अनुभव हुआ है पहले, द्रव्य का आश्रय लेने से अभेद की दृष्टि प्रगटी है। आत्मा के आनंद की दशा का स्वाद आनंद का स्वाद आया है। - ऐसा समकिती को ... प्रथम - ऐसा कहते हैं कि हे दर्शनाचार ! व्यवहार ! हे ज्ञानाचार। मैं जानता हूँ कि तुम मेरा स्वरूप नहीं। आहाहाहा !

व्यवहार व्रत तप आदि के भाव को कहते हैं कि मैं जानता हूँ कि व्यवहार महाव्रतादि के परिणाम, यह हमारा स्वरूप नहीं। परंतु हमारी पूर्ण वीतराग न हो, तब हमारे अनुभव के साथ तुम्हारा (व्यवहार) होता है, इसलिए उसे व्यवहार से अंगीकार करता हूँ - ऐसा कहा जाता है। आहाहा !

(श्रोता :- ऐसा भी कहा कि तुम्हारी कृपा से) कहा न व्यवहार से... - ऐसा कहा तुम्हारी कृपा से... अर्थात तुम्हारा यह निमित्त है न ? सहचर है न ? जहाँ तक मैं पूर्ण वीतरागी न होऊँ वहाँ तक मेरे निश्चय अनुभव के साथ, तुम्हारा सहचर देखकर, तुम्हारे प्रसाद से अर्थात निमित्त के कारण यह व्यवहार का कथन है। हमारी प्राप्ति होगी। आहाहाहा ! है तो यहाँ व्यवहार का फल बंधन। जिनवाणी ने कहा इसका फल बंधन है। अब इस बंधन के कारण अबंध दशा हो ? बड़ा घोटाला अभी पूरा, मिथ्याश्रद्धा का पोषण ही है अभी पूरा। आहाहा ! परिसह सहन करो उपसर्ग सहन करो।

(श्रोता :- परिषह उपसर्ग तो मिथ्यात्व का है) परिषह भी किसे हो ? जिसे सम्यग्दर्शन, आनंद का अनुभव हुआ है, उसे प्रतिकूलता के समय सहन करने की दशा को परिषह कहते हैं, अज्ञानी को परिषह कैसा ? यह तो उसे अकेला कष्ट है। आहाहा !

इस तीसरे बोल में बहुत कठिन बात है, जिनवाणी में भी... जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश... आहाहा ! क्योंकि निश्चय सम्यक्त्व जो आत्मा के अवलम्बन से होता उसके साथ व्यवहार समकित के आठ अंग, निमित्त रूपसे साथ में सहचर होने से, उपचार से उसे व्यवहार का उपदेश किया। आहाहा ! इसीप्रकार निश्चय सम्यग्ज्ञान

अनुभव हुआ, आत्मा के आनन्द का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान के साथ, आठ आचार जो श्रुतज्ञान के है, विनय करना, उपधान करना... आदि यह साथ में होते हैं सहचररूप में निमित्तरूप में, इसलिये उसका उपदेश भगवान ने दिया (है)। फिर भी उस निमित्त का फल, सहचर जो है उसका फल, संसार (में) भटकना है। आहाहाहा ! हीराभाई ! आहाहा !

कहा न ? समयसार नाटक... कि जो आत्मा के अंदर सम्यग्दर्शन अनुभव हुआ मुनिपना हुआ। अंदर अतीन्द्रिय आनंद की लहर जाग उठी, उनको भी पंचमहाव्रत का विकल्प व्यवहार आये, समझ में आया ? परंतु यह जग पंथ है। यह संसार पंथ है। शुभराग यह स्वयं संसार पंथ है।

तव कहते हैं भगवान ने इसे क्यों कहा ? कि यह वस्तुस्वरूप के ज्ञानवालों के साथ एक - ऐसा व्यवहार राग की मंदता का भाव निमित्त अपेक्षा होता है, इस कारण उसे - ऐसा व्यवहार कहा है। परंतु इसका फल संसार है। आहाहाहा ! समझ में आया ? है कि नहीं इसमें देखो न ! पाठ पढ़े तो ख्याल आये। आहा ! बहुत मीठी बात है। यह तो अलौकिक बातें है बापा ! आहाहा ! अभी तो शास्त्र पढ़ना भी आता नहीं, उसे समझना तो... आहाहा !

कहते हैं कि हम यहाँ त्रिकाली भगवान पूर्णानंद का नाथ को सम्यक् सत्यार्थ कहा, और हमने पर्याय को उसके गुण भेद को `नहीं' - ऐसा कहा। असत्यार्थ है - ऐसा कहा। क्यों ? यह तो मुख्य गौण करके कहा है। त्रिकाली को मुख्य किया और निश्चय कहा और उसका आश्रय कराया है और पर्याय के भेदों को गौण करके `नहीं' कहकर व्यवहार कहा `नहीं' - ऐसा कहा है। परंतु इस पर्याय में व्यवहार आता है। सम्यग्दृष्टि को भी... आहाहाहा ! (श्रोता :- समकिती को सच्चा व्यवहार होता है) फिर भी इस व्यवहार का फल संसार है - यहाँ तो - ऐसा कहा है। आहाहा ! समझ में आया ? बहुत शांति से समझने जैसा है बापू ! अभी तो संप्रदाय में बड़ा विरोध उठा है इसका। कि सोनगढ़ का निश्चयाभास है और एकांत है एवं इसप्रकार कहते हैं, पता नहीं उन्हें तब क्या करें।

यहाँ तो ग्रंथकार नहीं, परंतु सिद्धांतकार स्वयं कहते हैं कि व्यवहार और पर्याय वह झूठी है। - ऐसा कहकर उसे गौण करके झूठी है - ऐसा कहा है, उसका अस्तित्व तो है, इसीप्रकार दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का अस्तित्व तो है, परंतु उसे गौण करके, और यह नहीं तथा त्रिकाली सत्य है उसे सत्यार्थ कहकर मुख्य करके निश्चय कहा उसका आश्रय कराया है। अरे..रे..! आहाहा ! समझ में आया कुछ ?

जिनवाणी में भी... बाद में कहेंगे जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय के साथ व्यवहार होने से, सहायक अर्थात सहचर साथ में होने से, निमित्त गिनकर, समझकर बहुत किया है, बीच में निमित्त आता है, व्यवहार आता है, जिनवाणी ने उसका उपदेश किया है। आहाहा ! दर्शनाचार ! ज्ञानाचार ! चारित्राचार ! तपाचार ! वीर्याचार ! लो ! आहाहा ! यह सभी आये, परंतु इस व्यवहार का फल तो... संसार है।

समकिति को जो व्यवहार आता है उसका फल संसार है। अज्ञानी को तो व्यवहार होता नहीं। व्यवहारभास है। आहाहाहा ! कहो `रतिभाई'! - ऐसा सूक्ष्म है। ओहो ! टीकाकार ने कितनी स्पष्टता की है। गाथा में यह भाव है, क्योंकि व्यवहार को झूठा कहा, निश्चय को सच्चा कहा, तब व्यवहार का उपदेश तो केवली ने भी दिया है। तो भाई यह झूठा कहा, यह गौण करके झूठा कहा है और निश्चय को मुख्य करके निश्चय कहा है। त्रिकाली को मुख्य करके निश्चय कहा है।

परंतु - ऐसा क्यों कहा ? निश्चय को ही सत्य कहा और व्यवहार को असत्य गौण करके कहा, क्यों कहा ? कि भेद का और व्यवहार का पक्ष तो जीव को अनादि से है और यह परस्पर उपदेश करते ही हैं, इसलिये यह उपदेश किया है और तीसरी बात, जिनवाणी में भी जहां तहाँ व्यवहार का उपदेश बहुत है। ज्ञान का आचार एवं सम्यक्त का व्यवहार आचार पालना चाहिए न ! व्यवहार सम्यक्त्व के आठ अंग यह तो विकल्प राग है। ज्ञान के आठ आचार विनय से पढ़ना और यह कहना और यह भी तो शुभ राग है। चारित्र का व्यवहार व्रत, तप आदि जो अनशन ऊनोदर आदि तप, यह सभी शुभराग है। आहाहा ! परंतु बीच में - ऐसा व्यवहार आता है इसलिये ज्ञानी को भी - ऐसा साथ में निमित्त देखकर भगवान ने उसका उपदेश किया है उसको कथन करके समझाया है परंतु उसका फल तो संसार है। आहाहा ! गजब बात है !

एक चैतन्य भगवान परिपूर्ण प्रभु ! उसके आश्रय से होनेवाला एक मार्ग ही सत्य है और उसका फल मोक्ष है। शेष जो निश्चय स्वभाव के आश्रयसे भान होनेवाले को भी, जिनवाणी में कहा हुआ व्यवहार आता है, फिर भी उसका फल संसार है। आहाहाहाहा ! है न इसमें ? (श्रोता :- है, है इसका फल संसार है) संसार ही है।

दिवाली आये तब घर के बही खाते कितने मिलाते हो ? तब यह शास्त्ररूपी बही खाते मिलाने पढ़ेंगे कि नहीं ? दिवाली आये तब बही खाते मिलाते है कि नहीं भाई ! यह दो लाख-पांच लाख का खर्च हुआ, इसमें लाख पैदा हुआ, पचास हजार पैदा हुआ। यह दश लाख थे इसमें दो लाख बढ़े, बार लाख हुये, यह तो धूल के खर्च बढ़ते रहते हैं। तब यह भगवान के बहीखाते क्या कहते हैं ? उसे देखो

न ! आहाहा ! सुरेन्द्रजी ! है न सामने ? तीन प्रकार कहे, तीनों का फल संसार है। आहाहाहाहा ! आहा !

अभी पहले समझें तो ! पहली वस्तु अभी व्यवहार। आहाहा ! (श्रोता :- आपने अभी उपदेश दिया यह भी व्यवहार है) हाँ यह व्यवहार है। (श्रोता :- ऐसा समझे तो अवश्य कि यह व्यवहार का उपदेश है, यह कहाँ निश्चय का उपदेश है) यहाँ तो ग्यारहवीं गाथा... जैनदर्शन सर्वज्ञ जैनशासन का प्राण है। क्योंकि जैनशासन खड़ा कैसे रहता है ? अर्थात कि जैन धर्म उत्पन्न कैसे होता है ? कि त्रिकाली द्रव्य के आश्रयसे उत्पन्न होता है और चारों अनुयोग के कथन का तात्पर्य वीतरागता है। यह पंचास्तिकाय एकसौ बहत्तर गाथा (में) चारों अनुयोग के शास्त्र का फल वीतरागता है।

और वीतरागता ! वह कैसे प्रगट हो ? कि त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से वीतरागता प्रगट होती (है)। पर के आश्रय से राग होता (है) पर के आश्रय से वीतरागता नहीं होती। समझ में आया ? चाहे तो भगवान की विनय करे, भक्ति करे परंतु यह पर आश्रय है राग है। आहाहाहाहा ! ज्ञान में - ऐसा आता कि... सामयिक करना, उपवास करना, विनय करना, शब्द अक्षर बराबर शुद्ध जानना, स्पष्ट अक्षर उसका अर्थ बराबर जानना, उभय अर्थात् दोनों को बराबर जानना। आहाहा ! ऐसी बात तो व्यवहार की जिनवाणी में भी आती है। फिर भी ! (उसका फल संसार) आहाहा ! ऐसी बात है प्रभु !

क्योंकि ? त्रिकाली प्रभु जो अभेद वस्तु है, उसके आश्रय बिना धर्म की शुरुआत सम्यग्दर्शन होता नहीं। उसका आश्रय करने के लिये उसे सत् कहा और व्यवहार एवं पर्याय के होने पर भी उसका लक्ष्य छुडाने, उसका आश्रय छुड़ाने यह `नहीं' - ऐसा कहा।

अब तो (व्यवहार) `है' - ऐसा तो जिनवाणी कहती है। यहाँ `नहीं' कहा गौणरूप में कि गौणरूप से नहीं कहा न ? परंतु भावरूप में है कि नहीं ? तब भावरूप से यहाँ जिनवाणी... निश्चय सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को भी बीच में व्यवहार निमित्त-सहचार रूप में, सम्यग्दर्शन के व्यवहार आठ अंग, ज्ञान के व्यवहार आठ अंग, चारित्र का व्यवहार व्रत, तप, नियम, समिति, गुप्ती का भाव, तप का भाव अनशन, अनोदर, वीर्यचाररूप शुभभाव में... शुभभाव का वीर्यचार - इसका कथन जिनवाणी में आता है न ? क्यों ? कि निश्चय है इसके साथ - ऐसा सहचर इसप्रकार होता है - ऐसा देखकर जिनवाणी में कहा है। परंतु यह जिनवाणी फिर - ऐसा कहती है, आहाहा ! इसका फल संसार है। आहाहाहा! समझ में आया ? कठिन बात है बापा ! वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ हैं ! (श्रोता :- आत्मभावना किये बिना अनुभव किस प्रकार हो ?) आतम भावना, भावना

अर्थात स्वरूप में एकाग्रता... आतम भावना भावता जीव लहे केवलज्ञान। श्रीमद् में है। आतम भावना कि राग भावना ? आहाहा !

सूक्ष्म बात है भाई ! अर्थ करनेवालोंने गाथा का स्पष्टीकरण किया है। गाथा में व्यवहार को (झूठा) गौण करके झूठा कहा है, अर्थात झूठा है - ऐसा नहीं, यह ज्ञानी को भी सहचर निमित्तरूप अंदर आता है। अस्तिरूप में आता है। आहाहाहा ! परंतु उसको गौण करके और निश्चय के आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञानादि होते हैं उसे मुख्य कहकर उसे सत्य कहा है और यह सत्य तो है, परंतु सहचर में सत्य होने पर भी उसे गौण करके झूठा कहकर स्वका आश्रय कराया है।

अब कहते हैं कि गौण करके झूठा कहा। उसका अर्थ। कारण क्या ? कि यह व्यवहार का पक्ष तो अनादि का जगत के जीवों को है, और परस्पर उपदेश भी कर रहे हैं। सम्यक्त्व बिना सामयिक करो, उपवास करो, प्रतिक्रमण करो, एकासन करो- ऐसा अज्ञानियों का उपदेश एक दूसरों को है और जिनवाणी में भी निश्चय स्वद्रव्य के आश्रय से धर्म होने पर भी, उसके सहचररूप में ऐसे राग की मंदता का भाव, ज्ञान का विनय, समकित का आचार, ज्ञान का आचार, व्यवहार, चारित्र का, यह व्रतादि यह साथ में होता है। जिनवाणी में उसका उपदेश उसकी अस्ती इसलिये किया है, यह (भाव अस्तिरूप से है) जिनवाणी में होता है इसलिए उपदेस किया है। परंतु उसका फल संसार है। आहाहा ! है ? जिनवाणी में। आहाहा ! गजब काम किया है न उन्होंने। ***पण्डित तो यह कहलायें कि जिनको वस्तु की स्थिति में (जो) है वैसा स्पष्टीकरण करें, नहीं हो तो अपने मन का करें।*** (उन्हें पण्डित नहीं कहते) आहाहा !

मोहनलालजी तो शाम को आनेवाले हैं। शाम को न ? (श्रोता :- हां, जी आज निकलेंगे) आहाहा ! यही सुनने जैसी बात थी। बहुत मीठी बात ! गम्भीर बात है। आहाहा ! गजब अर्थ किया है। मूल गाथा को सत्य सिद्ध करने को, क्या अपेक्षा है, यह बात स्पष्ट की है। आहाहा ! समझ में आया ?

पुनश्च जिनवाणी में वीतराग की वाणी में व्यवहार का उपदेश आया है वह भी बहुत आया है। आहाहाहा ! है ? व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का निमित्त देखकर शुद्धनय के साथ सहचर देखकर, शुद्धस्वभाव के आश्रय के साथ, व्यवहार सहचर उपचार देखकर उसे व्यवहार से उपदेश किया है, परंतु इसका फल संसार ही है जिनवाणी में कहा हुआ व्यवहार बहुत शास्त्रों में व्रत और तप तथा भक्ति एव विनय की बहुत व्याख्या की है व्यवहार की। आहाहा ! यह तो मात्र निमित्त सहचर देखकर, बीच में आता है, इसलिये सहचर देखकर उपदेश किया है। परंतु उसका फल तो

भटकना है चार गति में, जिनवाणी में कहा हुआ व्यवहार उसका फल भटकना है। (श्रोता :- महाव्रत का फल भटकना है ?) महाव्रत और तप इन सभी का फल भटकना है। आहाहा ! है कि नहीं परंतु इसमें देखो न !

परंतु... - ऐसा कहा है न बाद में ? - ऐसा कि जिनवाणी में - ऐसा कहा है न ? तब इससे कुछ लाभ हो कि नहीं ? जिनवाणी में - ऐसा व्यवहार का उपदेश किया है न... बापू ! यह तो सहचर देखकर, साथ में - ऐसा एक राग की मंदता का भाव, अनुभवी जीवों को भी, स्थिरता न हो तब उन्हें आये, आता है इसलिये इसे व्यवहार से उसका उपदेश दिखाया परंतु जो व्यवहार आया, उसका फल संसार है। धर्मी जीव को भी जो व्यवहार बीच में - ऐसा आये उसका फल संसार है। आहाहाहाहा !

अभी तो सभी उपदेश की पद्धति बदल गई है। प्रथम से कहें कुछ त्याग करो, ब्रह्मचर्य पालो, प्रतिमा लो, व्रत ले लो, उल्टा शुरु किया है, एकांत मिथ्यात्व के पोषण की प्ररूपणा है सभी। आहाहा ! फिर उसे अभिमान हो जाये कि हमने कहीं व्रत लिये हैं। उसे मिथ्यात्व का अभिमान हो जाता है। आहाहा !

(श्रोता :- वेष बदलना पड़े न) वेष बदले तब लोग माने इसलिये। (श्रोता :- वेष तो पलटा न ?) उत्तर :- धूल में नहीं वेष। ***यहाँ तो गृहस्थाश्रम में भी होनेपर कोट पतलून टेरीकोट का पहना हो, फिर भी अंदर में सम्यग्दर्शन है, आत्मा का ज्ञान है कि में शुद्ध चैतन्य अखण्ड आनंद हूँ, तब वह मोक्षमार्ग में है।*** रत्नकरण्ड श्रावकाचार में, रत्नकरण्डश्रावकाचार में आता है। पण्डितजी !

गृहस्थो मोक्षमार्गस्यो निर्मोहो नैव मोहवान।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहनो मुनेः।।३३।।

समकिती आत्मज्ञानी - आत्मअनुभवी जीव गृहस्थ आश्रम में हो, हजारों रानियाँ हों, और कोट-पतलून टेरीकोट एवं तीन रेशमी गद्दों पर सोता हो... फिर भी यह मोक्षमार्गी है और... नग्न होकर वस्त्र का टुकड़ा न रखता हो, जमीन में नीचे सोता हो, सूखा आहार करता हो, फिर भी, यह धर्म है - ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि है। यह संसार मार्गी है। रत्नकरण्डश्रावकाचार में है। पण्डितजी श्लोक बोले न। समझ में आया ?

अजब - गजब की बात है बापू ! बहुत बदलाव। बहुत अंतर। आहाहाहा ! (श्रोता :- ऐसे मुनि से तो- ऐसा गृहस्थ है यह श्रेष्ठ है) श्रेष्ठ है, मोक्षमार्गी है। हजारों रानियों के भोग में रहे हो और चक्रवर्ती के पद में रहे हों परंतु समकिति है वह

मोक्षमार्गी है। जिसने आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शनज्ञान प्रगट किया है यह मोक्षमार्गी है और जिसने पत्नी छोड़ीं और कपड़े भी छोड़े एवं नग्न हो गया, परंतु जिसने राग की एकता से लाभ हो अथवा व्यवहार करते, करते लाभ हो (- ऐसा माने) यह मिथ्यादृष्टि संसारमार्गी है। आहाहाहा ! बाबूलालजी ! ऐसी बातें है। पंडितजी ने कैसा कितना अर्थ भरा है ? आहाहा ! (श्रोता :- पण्डितजी ऐसे ही हों) आहा ! वस्तु स्थिति है ऐसी ! यह तो वस्तु... आहा !

परंतु... - ऐसा कहा है न फिर कि जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश बहुत किया है न ! शास्त्र में चरणानुयोग में कितने अधिकार। करणानुयोग में कितना... कर्म से हो। ज्ञानावर्णीय ज्ञान रोके, दर्शनावगीय से (दर्शन रुके)। - ऐसा व्यवहार का उपदेश तो भगवान ने भी किया है। आहाहाहा ! और मुनियों को देखकर चलना, (चाहिए) विचार कर बोलना चाहिए, निर्दोष आहार लेना, ऐषणासमिति, ईर्या, भाषा, ऐसणा आदान-निक्षेप, ऐसी समिति कहीं है। भगवान ने कहा है व्यवहार...

भले कहा हो, सुनो न ! यह तो त्रिकाली के आनंद के आश्रय से सहचर का - ऐसा राग देखकर, उसे उपचार से कथन किया है। जैसे मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में कहा है न कि निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ व्यवहार सम्यग्दर्शन का जो विकल्प उठता है, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का। आहाहा ! उसको आरोप से सहचर देखकर निमित्त देखकर उपचार से व्यवहार समकित कहा है। यह कहीं सम्यग्दर्शन है नहीं, यह तो राग है। आहाहाहा !

(निश्चय समकित) व्यवहार समकित, यह समकित का निरूपण दो प्रकार से है, समकित दो प्रकार का नहीं, समकित तो एक ही प्रकार का है। निरूपण आया अतः लोगों को हो गया कि दो प्रकार से है न ? भगवान ने व्यवहार समकित कहा है न ? परंतु निरूपण रूप कथन है यह तो, व्यवहार का कथन है यह तो, सहचर देखकर उसका ज्ञान कराया है। आया है न यह मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में - ऐसा कि व्यवहार निमित्तादि का ज्ञान कराने यह व्यवहार कहा है। दो सो छप्पन पेज मोक्षमार्ग प्रकाशक। आहाहाहा ! क्यों कहा - ऐसा व्यवहार कि निमित्त आदि को सहचर जानकर, ज्ञान कराने, ज्ञान कराने, करने लायक है इसलिये नहीं। आहाहा ! - ऐसा है।

प्रथम तो निवृत्ति नहीं मिले समझने की, निवृत्ति नहीं मिले और पूरे दिन बाहर के प्रपंच में उलझें हों, और उसे - ऐसा मिले, कहा न व्यवहार का उपदेश देनेवाले, इसलिए उन्हें ठीक लगे, जाने कि अपन यह भक्ति करते हैं, देवदर्शन प्रतिदिन करते हैं। बस, यह पन्द्रह मिनट आधा घण्टा पढ़ते हैं सत् स्वाध्याय, देव-गुरु की सेवा

वंदन करते हैं। बस, आहार (दान) पधारो - पधारो छह श्रावक के आचार है यह तो करते हैं। आहा..हा..!

यह तो सभी राग है, यह आचरण है ही नहीं, श्रावक का आचरण तो अंदर सम्यग्दर्शन आत्मा के आश्रय जितनी लीनता होती उतना मोक्ष का मार्ग है बीच में यह सभी भाव जिनवाणी में कहा परन्तु उसका फल भी... भी... है न भी इसका फल... कोई कहे कि जिनवाणी में कहा है इसलिये कुछ लाभ है... समझ में आया कुछ ?

वीतराग मार्ग (में) वीतराग ने स्वयं कहा है कि - ऐसा व्यवहार हो - ऐसा व्यवहार हो। परंतु... यह कहा भगवान ने अधिकांशतः यह तो सहचर और निमित्त का ज्ञान कराने को, फिर भी यह सहचर और निमित्त की दशा उसका फल संसार है। समझ में आया ? आहाहा !

निश्चय व्यवहार का बहुत स्पष्ट कथन... सत्य कर दिया है। पण्डितजी ने स्वयं, पण्डित है, यह जयचन्द पण्डित ग्रहस्थाश्रम में। तिर्यंच के समकित में एवं सिद्ध के समकित में फर्क क्या ? समकित तो दोनों एक जाति के, एक ही जाति है। आहाहा ! समझ में आया ? परंतु यह समकित क्या बापू ! लोगों में अभी... आहाहा ! हाँ देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करो... बस, यह सम्यग्दर्शन। अब व्रत ले लो। परंतु यहाँ ***कहते हैं देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का भाव आया, यह शास्त्र में कहा है यह राग और उसका फल संसार है। आहाहा ! समझ में आया ?***

शास्त्र को पढ़े, खूब सुनो... - ऐसा शास्त्रों में आता है परंतु इसका फल तो विकल्प है न विकल्प का फल बंधन है। आहाहाहा ! समझ में आया ? पुस्तक हाथ में लेकर मस्तक पर (रखकर) ऐसी विनय का भाव, समकिती को आये, परंतु फिर भी यह राग है और यह राग का फल तो बंधन है। अज्ञानी की तो बात क्या करना ? अज्ञानी को तो निश्चय नहीं और व्यवहार भी नहीं एक भी नहीं उसे तो कुछ (नहीं)। आहाहा !

(श्रोता :- ज्ञानी तो राग को हेय मानता है) हेय मानता है परंतु वह (अज्ञानी) तो भला मानता है। आहा ! आहाहा ! (श्रोता :- हेय माने तो पुनः संसार कहाँ से हो ?) फिर भी संसार है न राग है न !

ज्ञानी हेय मानता है वह (तो) मानता है परंतु भाव (आता) है उसका फल ? (श्रोता :- (राग) भाव ही संसार है ?) हाँ यह भाव ही संसार है, जगत है, भव करेगा। आहाहा ! कहा न ? यह जगपंथ है। मुनि के पंचमहाव्रतरूप अठ्ठाइस मूलगुण के परिणाम यह भी जग पंथ है संसार का पंथ है। आता है न समयसारनाटक

में, मोक्ष अधिकार का चालीसवां श्लोक है, समयसारनाटक। आहाहा !

तीन बोलों में तो निश्चयव्यवहार का स्पष्टीकरण कर डाला है। व्यवहार होता है और जिनवाणी ने भी बताया है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी अंतर में स्वरूप की रमणतावाला चारित्रवंत उनको भी पंचमहाव्रत का विकल्प होता है - ऐसा जिनवाणी में कहा है। आहाहाहा ! परंतु... उन पंचमहाव्रत के विकल्पों का फल... बंधन और संसार है.

ऐसी बात वीतराग के अलावा कौन करे ? सभी। पक्षपात को लेकर बैठे है न ? है ? जिनवाणी में भी उसका फल... जिनवाणी में कहे हुये व्यवहार का फल संसार (है) अज्ञानी द्वारा कहे हुये व्यवहार की बात कहाँ (दूर) रही। आहाहा !

ईश्वर कर्त्ता है, एवं ईश्वर की भक्ति करो और इसकी तो बात ही यहाँ है नहीं। यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर सर्वज्ञदेव उनकी भक्ति करो यह शुभभाव है। यह आता है अतः जिनवाणी में ज्ञान कराया है, परंतु इसका फल बंधन है, समझ में आया ? आहाहाहा !

शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं। देखा ? पक्ष का अर्थ यह शुद्धचैतन्य है उसका आश्रय कभी आया नहीं। आहा ! है ? उसका उपदेश भी विरल है। आहाहा ! पक्ष कभी आया नहीं। कभी नहीं आया इसका अर्थ यह कि शुद्ध चैतन्य वस्तु है, उसका आश्रय एक क्षण भी कभी भी आया नहीं। नौवी ग्रैवेयक (गया) अनंतबार दिगम्बर मुनि हुआ तथा हजारो रानी छोड़ी और पंचमहाव्रत निरतिचार (पाले) उसके निमित्त से भोजन बना कर दे, तब प्राण जायें तब भी न ले - ऐसा अनंतबार पाला परंतु उसे शुद्ध चैतन्य प्रभु अंदर भिन्न है, इस क्रियाकाण्ड के विकल्प से... उसका आश्रय नहीं लिया, उसका पक्ष नहीं किया। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहाहा ! (श्रोता :- पक्ष का अर्थ क्या ?) आश्रय। वह व्यवहार का पराश्रय है, इसका स्वाश्रय नहीं लिया। यह कहेंगे।

देखो 'शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर' फिर - ऐसा कहा है पीछे, आयेगा इसमें तुरंत फिर यहाँ (कहा) शुद्ध नय का पक्ष तो कभी आया नहीं। अर्थात कि आत्मा का कभी भी ग्रहण किया नहीं। आहाहा ! अखण्डानंद प्रभु शुद्धचैतन्य इसकी तो दृष्टि कभी की नहीं। वैसे तो ग्यारह अंग पढ़े है, पंचमहाव्रत पाले, परंतु यह चैतन्यशुद्ध है उसका आश्रय किया नहीं। सभी व्यवहार का आश्रय करके रुक गया है। आहाहा !

शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं, अर्थात क्या ? जिसका फल मोक्ष है, ऐसे उस स्वद्रव्य का आश्रय तो कभी आया नहीं। यह यहाँ कहते हैं फिर उसका फल मोक्ष है - ऐसा बताया है। जिस प्रकार उस व्यवहार को जैसे जिनवाणी में

कहा, उसका फल संसार है, और इस शुद्धनय का पक्ष आश्रय है, इसका फल मोक्ष है। समझ में आया ? आहा ! इसका पक्ष आया नहीं, और इसका उपदेश भी विरल है, इसका उपदेश विरल कहीं है। शेष तो सभी जगह यह अधिकतर मिथ्यात्व का (उपदेश) व्यवहार की श्रद्धा है।

विशेष कहने में आयेगा। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ४३ गाथा-११ ता. २५-७-७८ मंगलवार अषाढ वदी-६ सं.२५०४

समयसार ग्यारहवीं गाथा का भावार्थ। यहाँ तक आया है, `शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं' क्या कहा ? व्यवहार है यह सभी असत्यार्थ है अर्थात कि आश्रय करने लायक नहीं, भले भगवान की आज्ञा से व्यवहार आया कोई जानने (लायक) परंतु यह सभी जानने योग्य है, आदरने योग्य नहीं।

श्रोता :- मात्र जानने योग्य है कि हेय है ?

उत्तर :- जानने योग्य का अर्थ ही हुआ कि हेय है।

यह तो आदर करने लायक है यह। चैतन्य ज्ञायक स्वरूप शुद्ध चैतन्य आनंद मंदिर, चैतन्यघन, यही आश्रय करने योग्य (है)। आदर करने योग्य, उपादेयरूप यह एक ही चीज है। तब इसे आनंद और शांति आये, साम्यभाव, पूरे जैनदर्शन का तात्पर्य तो साम्य, वीतरागभाव है। प्रवीणभाई आये लगता है ! ग्यारहवीं गाथा उसका भावार्थ उसमें आखरी है।

श्रोता :- भावार्थ शुरु से लो तो क्या तकलीफ है ?

उत्तर :- भावार्थ शुरु से ? भावार्थ :- `**यहाँ व्यवहार नय को**' अर्थात कि जो आत्मा में गुण-गुणी भेद, पर्याय, राग, उसे जो विषय बनाये उसे व्यवहार नय कहते है। सूक्ष्म बात है भाई ! आहाहा ! जो नय अर्थात ज्ञान का अंश, नय अर्थात ज्ञान का अंश यह गुण-गुणी के भेद को विषय बनाये, गुणी आत्मा और ज्ञानादि गुण ऐसे भेद को विषय बनाये, और पर्याय को विषय बनाये और दया-दान आदि विकल्पों को विषय बनाये यह नय अर्थात ज्ञान के अंश को व्यवहार नय कहा जाता है। अकेले सिद्धांत है। आहाहा !

यह व्यवहार नय अभूतार्थ है, यहाँ झूठा कहा है। है तो अवश्य, पर्याय है,

गुणभेद है, दया-दान के विकल्प भी हैं, परंतु अभूतार्थ असत्यार्थ कहा। क्योंकि उनका आश्रय करने लायक नहीं। आहाहाहा ! उसका आश्रय करने लायक नहीं, गुण भेद का, पर्याय का और राग का, इसलिये उसे असत्यार्थ कहकर गौण करके `नहीं' आश्रय करने लायक नहीं इसलिये `नहीं' - ऐसा कहा है। आहाहाहा !

`शुद्धनय को भूतार्थ कहा है' त्रिकाली वस्तु जो आनंदकंद प्रभु ! उसे जो ज्ञान का अंश जाने-देखे, उसे (भूतार्थ कहा) क्योंकि यह सत्यार्थ त्रिकाली आत्मा है। यह ध्रुव को देखे उसे... शुद्धनय कहते हैं, और यह शुद्धनय भूतार्थ है। क्योंकि यह त्रिकाली को विषय करता है। अरे...! - ऐसा है, धरम का स्वरूप जगत को बहुत कठिन लगे ! है ?

अब, कहते हैं कि अभूतार्थ और भूतार्थ कहा, अब इसका आशय क्या है ? उसकी स्थिति क्या ?

`जिसका विषय विद्यमान न हों' आहाहा ! जिसका ध्येय जो है वह विद्यमान न हो, असत्यार्थ हो - झूठा हो उसे अभूतार्थ कहते हैं। यह व्यवहारनय के अभूतार्थपने की परिभाषा हुई। आहाहाहाहा ! कठिन। नये व्यक्तियों को अभ्यास नहीं, मूल वस्तु का अभ्यास नहीं।

भगवान पूर्णानंदप्रभु ! एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं, उसको विषय बनाना, उसे ध्येय बनाना यह शुद्धनय का विषय है। यह सम्यग्दर्शन का विषय कहो, शुद्धनय का विषय कहो, कि उसका विषय सामान्य है उसे शुद्धनय कहो। आहाहा !

(जिसका) विषय विद्यमान न हो उसे असत्यार्थ कहते हैं। `व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय - ऐसा है कि शुद्धनय का विषय अभेद एकाकार नित्य द्रव्य है' आहाहा ! सम्यग्ज्ञान जो सत्य शुद्ध अंश, नय है वह अंश है यह त्रिकाली ध्रुव को विषय बनाता है। व्यवहार है वह वर्तमान पर्याय को भेद को विषय बनाता है।

और यह शुद्ध सम्यग्ज्ञान का जो एक अंश प्रमाण का, प्रमाण तो द्रव्य को भेद और अभेद दोनों को, जानता है इस प्रमाण में उसका जो नय-भाग, एक अंश है, और वह अंश भी त्रिकाली को जाने वह अंश है, उसे यहाँ शुद्धनय कहते हैं। आहा ! यह सभी आ गया है अपना परंतु यह तो थोड़ा फिर से...

`उसका विषय अभेद' आहा ! चैतन्य ब्रह्म भगवान पूर्णानंद प्रभु अभेद सामान्य जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं और जिसमें पर्याय वर्तमान विद्यमान है वह भी जिसका विषय नहीं। आहाहा ! शुद्धनय का विषय अभेद चैतन्यस्वरूप एकरूप एकाकार, अनेक नहीं, एक स्वरूप भगवान जो शुद्ध चिदानंद प्रभु है, वह नित्य द्रव्य है। (श्रोता :- यह तो शुद्धनय है ?) हो, वह एक नय वह नित्यद्रव्य है। ***शुद्धनय का विषय, वह***

त्रिकाली नित्य द्रव्य है। सम्यग्दर्शन का विषय भी यह त्रिकाली द्रव्य है। आहाहा ! धरम का पहली शुरुआत होने पर सम्यग्दर्शन जो शुरुआत उसका विषय नित्य द्रव्य एकाकार अभेद है। यह शुद्धनय का विषय कहो कि सम्यग्दर्शन का विषय कहो। यहाँ जानने की अपेक्षा लिया है, इसलिए नय लिया है। और प्रतीति में जानना नहीं वहाँ अभेद एकाकार नित्य द्रव्य की प्रतीति करता है। अरे...! ऐसी बातें परंतु यह प्रतीति है यह जानती नहीं। इसलिये यहाँ जानने की अपेक्षा से जो ज्ञान का सम्यक् निश्चय अंश, अभेद एकाकार नित्य द्रव्य को जो विषय करता है, उसे यहाँ शुद्धनय कहा जाता है। आहाहा !

उसकी दृष्टि में, किसकी दृष्टि में ? जिस शुद्धनय का विषय अभेद एकाकार नित्यद्रव्य है, उसके विषय में अभेद को एकाकार को नित्यद्रव्य को देखने की दृष्टि में भेद दिखता नहीं। अरे !... उसकी दृष्टि में - ऐसा कहा न ? जो वस्तु त्रिकाल ज्ञायक चिदानंद प्रभु ध्रुव है वह सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्ज्ञान अर्थात यह निश्चय सम्यग्ज्ञान, व्यवहार भी सम्यग्ज्ञान है परंतु उसका विषय भेद और (व्यवहार) नय है। आहाहा !

यहाँ जो त्रिकाली जो वस्तु है, ध्रुव है, भेद और पर्याय के आश्रय बिना की है एक नित्य त्रिकाली प्रभु यह शुद्धनय का ध्येय विषय होने से, शुद्धनय वह अभेद को देखता जानता है, इसलिये उसकी दृष्टिमें, अभेद को देखनेवाले शुद्धनय की दृष्टि में, भेद नहीं दिखता।

(श्रोता :- इसमें कुछ समझ में नहीं आया) फिर से कहते हैं, इसमें कहाँ अपने को (जल्दी) है ? आहाहा ! वस्तु है अखण्ड एकरूप आत्मा उसे देखनेवाले को भेद दिखता नहीं, क्योंकि अभेद ऊपर दृष्टि है, ***सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाली अभेद है। इस अभेद सामान्य नित्यद्रव्य को, जो नय अथवा दृष्टि देखती है उसमें भेद दिखता नहीं, अभेद देखनेवाले को भेद कहाँ दिखता ? भेद है नहीं इसमें। आहाहा ! (श्रोता :- त्रिकाली में भेद नही ?) त्रिकाली एकरूप में गुणभेद है, परंतु अभेद की दृष्टि में यह गुणभेद दिखता नहीं।*** आहाहा ! ऐसी बातें बापू ! बहुत सुक्ष्म। वीतराग मार्ग बहुत सूक्ष्म।

किसी दिन सुना नहीं भाई और यह बाहर के गोरखधंधे में, या तो इस जगत की सेवा करना और अमुक करना और मर गया वहाँ कौन सेवा करता था ? पर की सेवा कर सकता हूँ - ऐसा माननेवाले आत्मा को मार डालते हैं, आत्मा का इसने खून किया है। क्योंकि आत्मा ज्ञान और आनंद स्वरूप है यह तो जानने-देखनेवाला है, उसे पर का करना है यह उसे सोंपा तव (वह) उसका स्वभाव नहीं,

उसका अनादर किया है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं - व्यवहार अभूतार्थ असत्यार्थ कहा और निश्चय शुद्धनय को सच्चा और सत्यार्थ कहा एवं भूतार्थ कहा। इसका आशय क्या ? कि इसका आशय यह कि जिसका विषय नहीं असत्यार्थ है उसे व्यवहारनय कहते हैं। तब कहते हैं कि व्यवहारनय का विषय क्यों नहीं ? निश्चय में अभेद को देखनेवाले को इसमें भेद दिखता नहीं, इसलिये उसमें भेद नहीं। आहाहा ! वीतराग का मार्ग के लौजिक न्याय बहुत अलौकिक है। आहाहा !

अभी तो सुनना मुश्किल हो गया है। आहाहा..! - ऐसा स्वभाव। भगवान परमानंद प्रभु। वीतरागमूर्ति आत्मा त्रिकाल ! उसकी दृष्टि करने पर, अभेद को और एकाकार को वह देखता है, इसलिये उस अभेद में भेद दिखता नहीं। इसलिये इस अपेक्षा से व्यवहार को झूठा कहा है। अभेद में भेद दिखता नहीं इसलिये भेद का लक्ष्य करनेवाले को झूठा कहा है।

अरे ! अरे ! आहाहा ! - ऐसा मार्ग, यह दया पालना, व्रत करना, अभिमान... दान करना लाखों करोड़ों का- ऐसा कहें तो समझ में अवश्य आये, कुछ ? कर सकते हैं-इसने - ऐसा माना है। आहाहा..! (श्रोता :- कर कब सकता है ?) कर कब सकता था (श्रोता :- पर का कौन कर सकता है ?) यह प्रभु तो ज्ञान स्वरूप है न ! इसमें तो पर्याय एक अवस्था, वर्तमान चलती है हलचल गतिवाली, इसका भी, पर्याय का भी जिसमें अभाव है... आहाहा ! ***जो पर्याय इसको विषय करती है उस पर्याय का भी इसमें अभाव है। आहाहा ! क्या कहते हैं यह जो शुद्ध नय ज्ञान का अंश है अथवा सम्यग्दर्शन जो सच्ची प्रतीति (रूप) अंश है, उसका विषय यह त्रिकाली ध्रुव है अभेद इस तरह विषय होने पर भी, वह पर्याय इसमें नहीं। पर्याय पर्याय में है एवं अभेद अभेद में है।*** आहाहा ! समझ में आये इतना समझना बापू ! यह तो वीतराग का मार्ग कोई अलौकिक है। दुनियाँ में कहीं है नहीं यह। आहाहा !

और इसकी शरण बिना यह जन्म-मरण नहीं छूट सकता प्रभु ! आहाहा ! यह चौराशी लाख की योनि, अजान योनियों में जाकर जन्मे, मरे बापू ! आहाहा ! अरे..रे ! यह दुःख के समुद्र में गिरे, और उस दुःख की बात क्या करना ? जिस नर्क के क्षण (मात्र) के दुःख... भगवान - ऐसा कहते हैं... नर्क के क्षण के दुःख करोड़ों जीभों एवं करोड़ों भवो तक नहीं कहे जा सकते - ऐसा यह नर्क में क्षण (भर) का दुःख है। - ऐसा - ऐसा तो तेतीस सागर तक भोगा। - ऐसा एक बार नहीं परंतु अनंतबार तेतीससागर गया। आहा ! बापू ! तुम्हारे दुःखों को देखकर, देखनेवालों

को आंसु आये हैं भाई ! तुम अभी बाहर में, राजी-खुशी होकर रुके हो, बापू तुम्हारा रास्ता कहाँ से आयेगा नाथ ! आहा...हा !

यहाँ तो एक समय की पर्याय और गुण-गुणी का भेद और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, उसे जो जाने वह व्यवहारनय और यह व्यवहारनय का विषय और उसे यहाँ झूठा कहा। झूठा क्यों कहा ? कि अभेद दृष्टि में यह दिखता नहीं इसलिये उसकी विद्यमानता बाहर में होने पर भी अभेद में विद्यमान दिखता नहीं, इसलिये झूठा कहा। आहाहाहाहाहा ! इसलिये उसकी दृष्टि में - ऐसा है न ? किसकी दृष्टि में ? कि जो ज्ञायक स्वरूप त्रिकाल है, उसे जो देखनेवाला शुद्धनय सम्यग्ज्ञान का अंश है यह अभेद एकाकार नित्य को देखता है, उसकी दृष्टि में भेद दिखता नहीं। आहाहाहाहा !

ऐसा उपदेश किस जाति का यह ? हाँ ? यह तो वीतराग का मार्ग - ऐसा होगा अरे बापू ! भाई ! तुम्हें खबर नहीं। आहा..हा..! यह साम्यभाव यह वीतरागभाव है और यह साम्यभाव चारों अनुयोगों का सार है और यह साम्यभाव, कैसे प्रगट हो ? कि साम्यभाव के संपूर्ण स्वभाव से भरा हुआ भगवान है। इसका आश्रय करने से साम्यभाव आता है, और इस साम्यभाव की दृष्टि से जब, त्रिकाल को देखते है तब वह अभेद है। शुद्धनय से कहो, कि वीतरागभाव से कहो। आहाहाहा !

व्यवहार को झूठा और असत्य कहा इसका कारण क्या ? आशय क्या ? कि, निश्चय जो सत्यज्ञान है एवं जो दृष्टि है यह त्रिकाल एवं अभेद ऊपर पड़ी है तथा अभेद को देखती है अतः उसमें भेद दिखता नहीं। इसलिये उस भेद को अविद्यमान, असत्य कहकर व्यवहारनय का विषय असत् है। इसलिए व्यवहारनय असत् है। आहाहाहा ! उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान, असत्यार्थ ... कहना चाहिए। है ? आहा !

इसमें तो घर पर स्वयं से कुछ सुने तो समझ में आये नहीं, यह क्या लिखा है परंतु यह ? बापू यह तो मंत्र है, बापा ! भाई ! यह तो चैतन्य आनंद का नाथ, आनंद मंदिर चैतन्यरत्नाकर स्वरूप भगवान, अनंतगुणों का सागर अपरिमित शक्तियों का संग्रहालय- ऐसा जो भगवान आत्मा उसकी दृष्टि से देखने पर इसमें भेद नहीं दिखता, इसलिये उस भेद को विषय बनानेवाला नय, इसे झूठ कहा है। आहाहाहा ! शशिभाई ! - ऐसा है।

ऐसा नहीं समझना कि भेदरूप कुछ वस्तु ही नहीं। अब - ऐसा कहते हैं कि अभेद में भेद दिखता नहीं, इसलिये भेद को झूठा कहा, परंतु भेद (रूप) कुछ वस्तु है ही नहीं, पर्याय है ही नहीं, गुणी में गुणों के अनंतप्रकार है ही नहीं, दया, दान का रागरूप विकल्प ज्ञानी को भी आये बिना रहता नहीं, यह `नहीं' - ऐसा नहीं।

समझ में आया ?

ऐसा न समझना कि भेदरूप कुछ वस्तु ही नहीं। यदि - ऐसा माननेमें आये तो तो जैसे वेदांतमतवाले... वेदांतमतवाले सर्व व्यापक एक आत्माको कहते हैं यह भेद रूप पर्याय को और भेदरूप वर्तमान अवस्थाको अनित्य को देखकर... है ? यह अवस्तु माया स्वरूप कहते हैं। यह वस्तु नहीं माया, या...मा वह नहीं यह वह...नहीं - ऐसा वेदांतवाले कहते हैं। आहाहा ! माया है यह तो अर्थात् कि यह नहीं। या मा यह....नहीं। - ऐसा वेदांतवाले, पर्यायका तथा अनंतगुणों के भेद को और रागादिक को और अनेक द्रव्य को `नहीं' कहनेवाले... यदि भेद और व्यवहार नय नहीं। तब तो फिर यह वस्तु ही नहीं, तव वेदांत मत हो गया। आहाहा !

आहा..! यहाँ तो भेद को झूठा कहने का आशय, अभेद की दृष्टि में भेद दिखता नहीं, अतः झूठा कहा है। परंतु व्यवहार अपेक्षा व्यवहार का विषय है उसका, निषेध नहीं। आहाहाहा ! ***और व्यवहार का व्यवहार से विषय है, उसकी श्रद्धा भी करना चाहिए। परंतु यह श्रद्धा छोड़ने लायक है। `है' इस अपेक्षा श्रद्धा करने लायक है। परंतु यह श्रद्धा छोड़ने लायक है।*** आहाहा ! और त्रिकाली भगवान जो आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का सागर एकरूप साम्यभाव से रहनेवाला प्रभु, उसे देखनेवाले को भेद दिखता नहीं, अतः व्यवहार और भेद को पर्याय को झूठा कहा, (है) परंतु इससे यह नहीं समझना कि गुण भेद और पर्याय और दूसरे अनेक द्रव्य आदि `नहीं' - ऐसा नहीं समझना, भाई ! आहाहाहा !

अलौकिक बात है बापा ! यह करोड़ों अरबों रुपया दे तो मिले - ऐसा नहीं,। यह चीज ऐसी है। आहाहा ! अमृतसागर अंदर से उछला है अंदर से। उसकी यह सभी बात हैं। आहाहा !

जहाँ अमृतसागर से भरा हुआ भगवान ! अमृत अर्थात अतीन्द्रिय आनंद का अमृतपना। इससे प्रभु तुम भरचक लबालब भरा है एकरूप स्वरूप... आहाहा ! उसकी जहाँ, दृष्टि हुई और जिसने इसे विषय बनाया, इस विषय में तो भेद है नहीं। इसलिये व्यवहार को झूठा - इस अपेक्षा कहा है। परंतु बिलकुल व्यवहार नहीं ही - ऐसा माने तब वेदांतमतवालों जैसा अज्ञान होकर मिथ्यात्व होगा। आहाहा !

है ? अवस्तु माया स्वरूप कहते हैं और सर्वव्यापक... वस्तु अपेक्षा एक गुणों से अभेद। यह लोग क्या कहते हैं ? कि वस्तु अपेक्षा एक और अभेद इसमें गुणों का भेद भी नहीं यह तो अभेद है। नित्य, पर्याय नहीं यह तो नित्य ही है। एक, अभेद नित्य तीन का यह अर्थ यह हुआ। कि वस्तु एक, गुणभेद नहीं, पर्याय नहीं। समझ में आया ? प्रत्येक शब्द में गंभीरता है। टीकाकार ने... गाथा में व्यवहार को

अभूतार्थ कहा गाथा में, उसकी टीका की प्रभु अमृतचन्द्राचार्य ने... उसकी सरल भाषा में समझाने को यह पंडितजी अर्थ करते हैं, जयचन्द पंडितजी। आहाहा ! गृहस्थाश्रम में रहते थे। यहाँ तो आत्मा का ज्ञान, सम्यग्दर्शन हुआ, यह गृहस्थाश्रम में हों तब भी मोक्षमार्गी है और साधु होकर पंचमहाव्रत पाले, हजारों रानी छोड़े, नग्न होकर जंगल में रहे, परंतु जिसने रागभाव का कण मात्र भी आदरणीय माना है, यह संसारमार्गी है। आहाहाहाहा !

क्योंकि राग स्वयं संसार है, शुभ राग है यह संसार है, शुभराग है दया, दान का यह भव है, यह संसार है, यह भव है, भव का जिसे प्रेम है वह भव-समुद्र में भटकनेवाला संसारी प्राणी है। आहाहाहा !

हजारों रानी छोड़कर मुनि हुआ हो, नग्नरूप धारण किया हो, जंगल में रहता हो, परंतु जो अंतर में महाव्रत आदि के परिणाम का जो राग उत्पन्न होता है, उस राग को स्वयं आदरणीय मानता है। आहाहा ! जिसका विषय ही व्यवहार का राग है, वही मानता है और यह राग का एकत्वपना जिसने माना है वह संसारमार्गी है और छियानवे करोड़ पैदल और छियानवे हजार स्त्रियों के बीच में हो चक्रवर्ती, परंतु अभेद चिदानंद आत्मा का अनुभव है। आहाहा ! यह मोक्ष के मार्ग में है, वह संसार के मार्ग पर है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह लोग तो सर्व व्यापक 'एक', यहाँ वजन 'एक' (पर) है वस्तु अपेक्षा सर्व व्यापक एक, गुण अपेक्षा गुणों का भेद नहीं अभेद, पर्याय अपेक्षा अवस्था नहीं और नित्य - ऐसे शुद्धब्रह्म को वस्तु कहते हैं। एक गुणभेद रहित, पर्याय रहित, शुद्धब्रह्म को वस्तु कहते हैं - ऐसा सिद्ध हो।

जो भेद और पर्याय न हो तब वेदांत मतवालों जैसी मिथ्यात्व की दृष्टि सिद्ध हो। आहाहा ! व्यवहार का विषय भेद पर्याय एवं राग है - ऐसा मानना चाहिए, मानना तो चाहिए। परंतु यह मान्यता छोड़ने लायक है। आहाहाहा ! और अखण्ड अभेद चैतन्यवस्तु उसका ज्ञान करके प्रतीति करना - यह उपादेय है। यही आदरणीय है और यह साम्यभाव स्वरूप भगवान... उसमें से प्रगट हुआ साम्यभाव यह आनंदमय है। वह मोक्ष के मार्ग में है। आहाहाा ! समझ में आया ? ऐसी बातें है।

और इससे सर्वथा, एकांत शुद्धनय का पक्षरूप सर्वथा, अर्थात कि निश्चय एक अभेद ही है और भेद पर्याय नहीं तब सर्वथा एकांत हो जाता है। कथंचित इस प्रकार कहते हो कि त्रिकाली की अपेक्षा नित्य है, पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। गुण-गुणी के भेद बिना की अपेक्षा से अभेद है, परंतु गुण-गुणी के भेद का भिन्न विचार करे तो भेद भी है। तब तो कथंचित नित्य और कथंचित अनित्य तब तो

कथंचित ध्रुव और कथंचित पर्याय - ऐसा सिद्ध हो... परंतु यह सर्वथा एकांत शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का प्रसंग आये। आहाहाहा !

जो व्यवहार का विषय भेद, पर्याय, राग है, अनेकपना भी है, एक में अनेक गुण भी है। ऐसे अनेक गुणों को न माने, पर्याय को न माने, भेद को नहीं माने तब वेदांत मत की भाँति मिथ्यादृष्टि का प्रसंग आता है। आहाहा ! यह तो वीताराग सर्वज्ञ केवली परमात्मा ने देखा है - वह मार्ग है। उसमें कोई सर्वज्ञ नहीं कि उन्होंने देखा (हो) क्या है ? यह तो कल्पना से सभी बातें नई खड़ी की है। आहाहा ! वेदांतमतवालोंने।

अभी वेदांत का बहुत पक्ष है, बड़े बड़े अधिकारी सरकारी ऑफिसर एवं सभी बड़े यह वेदांत (के) पक्ष में है। मुसलमान में भी यह एकपक्ष है - ऐसा कल कहा था। एक सूफी पक्ष है। इनके फकीर `अनहलहक' एक खुदा है - ऐसा माननेवाले फकीर को देखा है हमने। एकबार बोटाद में आहार लेने बाहर निकले थे तभी दो फकीर खड़े थे। वैसे तो... बिचारे एक तरफ हो गये थे उदास! उदास फकीर था। फिर हमने पूँछा कि यह है कौन ? मुसलमान यह सूफी फकीर कहलाते है।

कहते हैं कि `अनहलहक'। एक ही खुदा माननेवाले है - ऐसा माननेवाले, जिस प्रकार वह एक आत्मा माननेवाले है इसीप्रकार यह एक खुदा। अनहलहक-अनहलहक। उनमें एक मंसूर था वह अनहलहक एक ही खुदा है - ऐसा माननेवाला था दुनियाँ ने विरोध करके फाँसी पर चढ़ाया। फांसी पर चढ़ाया तो तब भी बोला कि `अनहलहक' खुदा एक है, आता है उनमें, बहुत अधिक सुना है शुरु से, बहुत देखा दुकान ऊपर हम थे, वहाँ हमारे वेदांती बहुत ग्राहक आते थे। ब्राह्मण था एक बड़ा वेदांती वह तो हमारा ग्राहक था। यह बाहर आये तो पैर छुये बहुत लोग... पालेज के पास गांव है। यह सभी उस समय जाना था, परंतु सभी एक और एक वह समझ बिना की बातें।

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर... आहाहा ! अनंत आत्मा देखे, एक एक आत्मा में अनंत गुण देखे एक एक आत्मामें एक समय की अनंती पर्याय देखीं। आहाहाहा !

अतः यहाँ - ऐसा समझना... यह पहले जहाँ कहा था न ! भावार्थ ? `यहाँ' - ऐसा कहा था न। यहाँ- ऐसा क्यों कहा ? कि इस जगह जो व्यवहार को असत् कहा है, इसका अर्थ क्या है ? दूसरी जगह व्यवहार को सत् कहा है। अर्थात `यहाँ' शब्दका प्रयोग किया है। इस जगह व्यवहार को असत्य कहा है और निश्चय को सत्य कहा, इसका आशय क्या है ? वह समझाओ अब यह लेते हैं।

इसलिये यहाँ, देखो ! पुनः लिया (है)। यहाँ - ऐसा समझना कि इस जगह

जो व्यवहार को असत्य कहा और त्रिकाल को सत्यार्थ कहकर वह `है' - ऐसा कहा यहाँ, आहा...हा..! इन भाई ने प्रश्न किया था रात को भाई ने `व्यवहारोऽभूयत्थो' दूसरी ***जगह कहीं है ? हाँ कहा था न पद्मनंदीपंचविंशतिका में है न उसमें है। निश्चय अधिकार में है व्यवहार अभूतार्थ है परंतु वहाँ यह लिया है उन्होंने `ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्दणओ... भूदत्थमस्सिदोखलु'... यति संत मुक्ति को पाते। यति लिया वहाँ यहाँ सम्यग्दृष्टि लिया है।***

(श्रोता :- वहाँ व्यवहार को व्यवहार से पूज्य कहा है) वह बाद में कहा व्यवहार पूज्य है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य है। बिलकुल व्यवहार से व्यवहार पूज्य न हो तब तो फिर देव-गुरु-शास्त्र को वन्दना यह कुछ रहे ही नहीं। अतः व्यवहार व्यवहार से पूज्य है। व्यवहार में तो जिनवाणी पूज्य है यह नहीं आया ? दूसरे श्लोक में। आहाहा ! यहाँ - ऐसा समझना कि यहाँ जो व्यवहार की असत्य कहा है और निश्चय को सत्य कहा है, अतः यहाँ - ऐसा समझना कि जिनवाणी स्यादवादरूप है। स्याद अर्थात अपेक्षा से कहनेवाली है। अपेक्षा से, किस अपेक्षा है यह, अपेक्षा से कहनेवाली है। आहाहा ! त्रिकाल को नित्य माने कहे, पर्याय को अनित्य कहे, आहाहा ! गुणभेद और पर्याय को व्यवहार का विषय कहे त्रिकाली को निश्चय का विषय कहे, यह स्याद् कथंचित इस प्रकार कहने में आया है।

और इसका अर्थ प्रयोजनवश अर्थात ? कि आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन होता है और आत्मा को आनंद की प्राप्ति हो, ऐसे प्रयोजन के कारण... आहा...! प्रयोजन तो सुख का है, तब यह आनंद का प्रयोजन सिद्ध कैसे हो ? आनंद का प्रयोजन प्रगट कैसे हो ? कि इस `प्रयोजन के वश' आनंद को प्राप्त करने के हेतु से, `नयों को मुख्य गौण करके कहते हैं'। यहाँ निश्चय को... मुख्य को निश्चय कहकर सत्य है - ऐसा कहा। आहाहा ! ***त्रिकाल भूतार्थ वस्तु है वही मुख्य है, और उसे निश्चय... निश्चय तो तीनों द्रव्य-गुण-पर्याय निश्चय है क्योंकि स्व है अतः निश्चय (है) (एवं) पर हो अतः व्यवहार।***

परंतु यहाँ इससे अन्य बात लेना है। यहाँ तो मुख्य जो चीज त्रिकाली है उसे निश्चय कहकर `वह ही है' - ऐसा कहकर, उसे मुख्यरूप से सिद्ध किया है और पर्याय को गुणभेद को गौण करके `है फिर भी' गौण करके वह नहीं - ऐसा कहने में आया है। अभाव करके नहीं, यहाँ - ऐसा नहीं। यहाँ असत्यार्थ कहा परंतु इसका अर्थ - ऐसा नहीं। कि `नहीं ही' - ऐसा नहीं, गौण करके `नहीं' व्यवहार का विषय और व्यवहार इसप्रकार कहा है।

अरे ! - ऐसा एक एक बात (को समझने की) किसको फुरसत है ? एक

तो संसार में पाप के धंधे में पूरे दिन यह कमाना और भोग एवं विषय तथा पैसा दुकान संभालना। एवं यह डॉक्टरी तथा वकालात ... अकेला पाप का धंधा सारे दिन अब इसमें धरम तो कहाँ रहा ? पुण्य भी कहाँ रहा। आहाहा ! पुण्य तो चार-पांच घण्टे सत् समागम करे ! सत् समागम किसे कहना ? इसे पहचाने और इसका समागम करे वांचन दो-चार-पांच घण्टे करे तब पुण्य भी हो। आहाहा ! धरम तो फिर (होगा)।

श्रोता :- धरम तो बहुत कठिन कर दिया है।

उत्तर :- वस्तु ऐसी है बापू !

श्रोता :- गरीबों को पैसा दें अतः पुण्य हो।

उत्तर :- धूल में नहीं। करोड़ों दे न ! विशेष तो - ऐसा है कि यह करोड़ हमने दिये, अपने मान कर दिये है - ऐसा मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व का सेवन करता है। कहो महान पाखण्ड (का) सेवन करता है। पैसा जड़ है, अजीव, भगवान आत्मा जीव, वह अजीव हमारा है - ऐसा मान कर दे तो वह मिथ्यात्व का सेवन करता है। चाहे अंदर राग की मंदता का कोई भाव हो, तब मिथ्यात्व सहित उसे पापानुबंधी पुण्य का बंध हो। आहाहा ! - ऐसा है।

(श्रोता :- पैसा किसी का नहीं और मैं देता हूँ) देता हूँ - ऐसा कहा न ? दे कहाँ सकता है यह ? पर वस्तु को ले सके कि छोड़ सके यह आत्मा में है कहाँ? इसमें गुण तो (है) त्यागउपादानशून्यत्वशक्ति, इसका गुण तो - ऐसा है प्रभु का, चैतन्य का, कि पर का त्याग एवं पर का ग्रहण, इससे तो रहित इसका स्वभाव है। पर का त्याग करुं कि ग्रहण करुं यह स्वरूप में नहीं। आहाहा ! - ऐसा है। दुनियाँ से तो विरुद्ध है भाई !

(श्रोता :- तब गुरुदेव जब पैसा हमारा नहीं तो किस प्रकार दे सके, मैं दे सकता नहीं। मैं ले सकता नहीं तो यह व्यवहार किस प्रकार चले ?) कौन कहता है ? यह विकल्प आया यह व्यवहार (है) यह भी हेय है, यह तो अलग जाति की बातें है बापा ! आहाहा ! तीनलोक के नाथ, वीतरागपरमात्मा, आहाहा ! अकषायी करुणा से परमात्मा, जगत को कहते हैं। अकषायी करुणा हाँ ! है ! आहाहा ! भगवंत ! सुनो तुम्हारे घर की बात प्रभु ! आहाहाहा ! तुम्हारी प्रभुता पूर्ण है उसे देखनेवाली नय को सत्य कहते हैं। क्योकि सच्चा पूर्ण सत्य साहेब विद्यमान है, आहा ! और भेद को और पर्याय को, दया, दान के विकल्प को जो नय जानता है, उस नय को हम झूठा कहते हैं, गौण करके झूठा कहते हैं। इसे मुख्य करके सत्य कहते हैं। आहाहाहाहाहा !

अपना तो यह आ गया है। यह सभी भी, इन लोगों के लिये रामजीभाई कहते हैं... (श्रोता :- हमारे लिये है) हाँ ? तुम्हारे लिये ! आहाहा ! यह तो विषय अलौकिक है बापा ! आहा ! अतीन्द्रिय आनंदादि अनंतगुणों का एकरूप - ऐसा जो नित्यद्रव्य वह जिसका विषय है दर्शन का, अथवा शुद्धनय का आहाहा ! उसे यहाँ सत्य कहकर भूतार्थ वह ही विद्यमान पदार्थ है और भेद और पर्याय को अविद्यमान कहकर नहीं कहकर, झूठी है - ऐसा कहा है। आहाहा ! इसका आशय यह कि अभेद में दृष्टि करने पर भेद दिखता नहीं। अतः भेद को अविद्यमान कहा जाता है। आहाहाहा !

प्रयोजनवश सुख और शांति की प्राप्ति हेतु से, आहाहाहा ! सुख और शान्ति की प्राप्ति के हेतु से, अतीन्द्रिय सुख प्राप्ति के वश, प्रयोजन वश, प्रयोजन जीव को सुख का है। इस प्रयोजन के वश, जिससे आनंद प्राप्त हो - ऐसा त्रिकाली भूतार्थ को सत्य कहा और जिसके आश्रय से आनंद न हो परंतु दुःख हो ऐसे भेद और पर्याय को व्यवहार गिन कर असत्य, गौण करके असत्य कहा। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा है। पोंना घण्टा तो हो गया। वैसे तो याद कितना रहे इसमें से ?

अब, कहते हैं प्रयोजनवश नय को मुख्य गौण करके कहते हैं, `यहाँ'। यहाँ हो यहाँ! अब - ऐसा क्यों कहा ? कि प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि से है। आहाहाहा ! गुण भेद, पर्याय की दृष्टि, पर्याय ऊपर दृष्टि, ***भले यह एक समय की पर्याय को देख सकते नहीं, कारण एक समय की पर्याय को देखने जाय तो उपयोग बहुत सूक्ष्म हो जाये, परंतु उसकी दृष्टि में द्रव्यस्वभाव नहीं, इसलिये उसकी दृष्टि में पर्याय है - ऐसा कहा जाता है।*** समझ में आया ? आहाहाहा !

वैसे तो एक समय में अनंती पर्याय हैं अनंत गुणों की, परंतु इन अनंतगुण की अनंती पर्याय की मर्यादा एक समय की, अब एक समय की मर्यादा की पर्याय दृष्टि करने जाय तो, एक समय पकड़ में आये तो तब उपयोग हो गया शुद्ध। परंतु उसकी दृष्टि का विषय जो त्रिकाली है यह नहीं, इसलिये उसकी दृष्टि भेद एवं पर्याय ऊपर है, अतः पर्याय दृष्टिवाला कहा जाता है। आहाहाहाहा !

प्राणियों को... यहाँ प्राणियों शब्द बहुवचन लिया। बहुत से प्राणियों को तो, भेदरूप व्यवहार का पक्ष अनादि काल से ही है यह तो। आहाहाहा ! एक बात, भेदरूप व्यवहार का पक्ष, आश्रय अवलंबन यह ही है - ऐसा पक्ष तो अनादि का है और उसका उपदेश भी बहुधा उपदेश भी - ऐसा क्यों कहा ? कि एक तो वह और दूसरा यह। प्रथम तो इसे भेदरूप व्यवहार का अनादि का पक्ष है एक, और उसका उपदेश भी, दूसरा `परन्तु' शब्द में लेना दूसरा। दूसरा बोल यह भी है इसके साथ,

यह बहुधा सर्व प्राणियों बहुधा सर्व प्राणियों आत्मायें परस्पर उपदेश करते है, यही करते हैं। दान करना, व्रत करना, व्यवहार करना, तप करना, पूजा करना यह कहनेवाले कहते हैं न सुननेवाले खुश होते हैं। परस्पर व्यवहार का उपदेश करनेवाले बहुधा ऐसे है, कहो समझ में आया ?

वह कहनेवाले कहते कि, निश्चय, निश्चय की बातें करें परंतु व्यवहार बिना निश्चय होता है ? - ऐसा कहकर व्यवहार व्रत तप करो दया करो, सेवा करो, अनाथाश्रम बनाओ, भूखों को आहार दो, प्यासे को पानी दो, रोगी को औषधि दो, रहनेवालों को स्थान दो - ऐसा उपदेश अज्ञानीयों करते है, और सुननेवाले उसे पसंद करते हैं। आहाहा !

पहला बोल यह लिया कि भेद का पक्ष अनादि का है और उसे उपदेशक भी सब ऐसे ही मिलते हैं। आहाहाहाहा !

उपदेश भी बहुधा... बहुधा, सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। एक दूसरे को यही बातें की पुष्टी करते है बस, आहाहा ! सेवा करना चाहिए, दुःखियों की, दुःखी प्राणी है उसे देखकर अनुकंपा नहीं आये ? और अनुकंपा आये तो उसे आहारपानी देने का भाव न हो ? अतः करना ही चाहिए। (श्रोता :- पर (की) सेवा तो गहन विषय है) धूल में नहीं, पर सेवा अर्थात आत्मा की सेवा। पर अर्थात प्रधान - ऐसा भगवान आत्मा उसकी सेवा, पर अर्थात यह (अन्य) नहीं। आहाहा !

यह यह (स्वयं) इसी का ही अर्थ किया। पूर्णानंद के नाथ की सेवा स एव, सेवा अर्थात स एव, से...वा, स एव। त्रिकाली यही वह आत्मा पूर्णानंद उसकी प्रतीति और सेवा दुर्लभ है। यहाँ तो सभी विषय में फर्क है।

- ऐसा है वस्तु स्वरूप - ऐसा है। (श्रोता :- यह आत्मा ही सेवा योग्य (है)) हाँ... अरे ! अंगुली को हिला सकता नहीं न प्रभु। देखो न यह तो जड है, यह हिलता है यह अपने कारण, यह (अंगुली तो) जड़ है। आत्मा इसको हिला सके - ऐसा मानना यह मिथ्यात्व भ्रम है, अज्ञान है और यह दूसरों को दवा दे और आहार दें न ?

(श्रोता :- डॉक्टर मरीज को नली (बोतल) लगाये कि नहीं ? नाड़ी देखे कि नहीं ?) कौन देखता है ? उसे विकल्प आये मात्र, यह क्रिया तो जड़ की है। दुनियाँ से अलग जाति है बापा ! वीतराग का मार्ग। आहाहा ! परमेश्वर त्रिलोकनाथ। आहाहा ! सर्वज्ञ-साक्षात् विराजते हैं। प्रभु ! महाविदेह (में) सीमंधर भगवान तो विराजते हैं, महाविदेह में। आहाहा ! यह सभी उनकी वाणी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे वहाँ से लाये, यह उनकी वाणी हैं। आहाहा ! भगवान का यह संदेश है प्रभु ! आहाहा ! अपनी

पूर्ण प्रभुता को सम्हाल ! प्रभु इसमें तुम्हें आनंद आयेगा... तुम पर्याय और राग की पर को सम्हाल करने जाओगे प्रभु तुम्हें दुःख होगा, राग होगा, दुःख होगा। आहाहा ! - ऐसा प्रभु का कहना है। तीनलोक के नाथ की यह आज्ञा और हुकुम है। प्रभु ! तुम्हें सुख का प्रयोजन है, तब सुख का प्रयोजन तो प्रभु, जिसमें सुख है उसमें दृष्टि दो तो सुख होगा। यह सुख इसमें है ? पर की सेवा में सुख मानता है वह तो राग है, राग है वह दुःख है। आहाहा ! कठिन काम है बापू !

देखा ! बहुधा प्राणी परस्पर करते है ? परस्पर करते हैं। कहनेवाले भी संख्या में बहुत सुननेवाले संख्या में बहुत। प्राणभाई ! यह प्राण है हो। वह प्राण (दस प्राण) तो सभी खोटे है यह सभी। आहाहा ! चैतन्य के भाव प्राण आनंद के प्रभु। उसे सत्य कहकर वही है - ऐसा सिद्ध किया और पर्याय रागादिक `है' फिर भी, उसे असत्य कह कर झूठा कहकर गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा। उसका हेतु यह कि सुख का प्रयोजन तुम्हें हो तो तुम्हें द्रव्य ऊपर दृष्टि देनी पड़ेगी, अभेद ऊपर दृष्टि देनेपर तुम्हें सुख प्रगटेगा। भेद और पर्याय ऊपर दृष्टि देने पर प्रभु तुम्हें राग होगा, तुम्हें दुःख होगा तुम दुःख की आकुलता का वेदन करोगे प्रभु। आहाहा !

दो हुये। अब `जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलंबन जान कर बहुत किया है' आहाहाहा ! क्योंकि निश्चय स्वरूप जो भगवानआत्मा का दर्शन ज्ञान होता है, चारित्र (होता) है, उसके साथ व्यवहार होता है दया और दान एवं व्रत का - ऐसा व्यवहार होता है उसका उपदेश, व्यवहार का भी भगवान ने बहुत किया है। आहाहा ! समझ में आया ?

सम्यक्त्व के आठ अंग, ज्ञान के आठ अंग, चारित्र के आठ अंग व्यवहार इन सभी का वर्णन भगवानने किया है। - ऐसा कहा है। समझ में आया ?

परंतु... यह जिनवाणी में जो उपदेश इस व्यवहार का आया... आहाहाहाहा ! हस्तावलंबन का अर्थ निमित्त लेना सहाय का अर्थ भी साथ में है - ऐसा लेना, निश्चय के साथ - ऐसा विकल्प राग का होता है - ऐसा निमित्त अपेक्षा सहचररूप में जानकर - ऐसा उपदेश वीतराग की आज्ञा में व्यवहार आज्ञा में आया है। परंतु इसका फल संसार है।

(श्रोता :- उपदेश में साधन-साध्य कहा) यह साधन साध्य कहा। परंतु निमित्त रूप साधन का ज्ञान कराया है। साधन तो एक ही है। यही कहा यह, जो विकल्प साधन होता है, उसका ज्ञान कराने के लिए, उसने व्यवहार का उपदेश स्थापा, परंतु है इसका फल संसार। आहा...हा..!

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ४४ गाथा-११ ता. २६-७-७८ बुधवार अषाढ वदी-७ सं.२५०४

समयसार (गाथा) ग्यारहवीं का भावार्थ, यहाँ से फिर से लें। प्राणियों को है? क्या कहते हैं, थोड़ा सूक्ष्म... यहाँ व्यवहार को झूठा कहा इसका अर्थ यह हुआ कि पर्याय इसमें नहीं, और द्रव्य को त्रिकालवस्तु को सत्य कहा एवं पर्याय को गौण करके झूठा कहा है। अब इसका प्रयोजन तो यह कि द्रव्य दृष्टि कराना पर्याय विद्यमान है, फिर भी अभेद को देखने में भेद दिखता नहीं, इसलिये उस भेद को गौण करके `नहीं' - ऐसा कहने में आया है।

अब यहाँ कहते हैं, प्राणियों को, है ? भेदरूप व्यवहार का पक्ष, अर्थात ? ***एक समय की जो अवस्था है और उसमें जो राग होता है, यह भेद का पक्ष है।*** समझ में आया ? यहाँ अभेद को मुख्य कहकर भेद को गौण करके `नहीं' कहा, इसमें प्रयोजन द्रव्य को सम्यग्दर्शन प्राप्त कराने के लिए, द्रव्य का आश्रय लेने पर वह प्रयोजन सिद्ध होता है। इसलिये इस द्रव्य को अभेद कहकर, पर्याय उसमें होने पर भी, भेद अवस्था होने पर, उसका लक्ष्य छुड़ाने, गौण करके नहीं कहने में आया है।

अब यहाँ... `प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से है' यह पर्याय रूप जो भेद है त्रिकाली का वर्तमान, इसकी बुद्धि अनादि काल से, पर्यायबुद्धि... भेदबुद्धि तो अनादी की ही है। समझ में आया ?

और सातमीं गाथा में - ऐसा कहा, कि भेद ऊपर लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा इसलिये अभेद अकेला ज्ञायक स्वभाव है, उसकी दृष्टि करने पर उसे सम्यग्दर्शनज्ञानादिक होंगे और भेद का लक्ष्य पर्याय का लक्ष्य करने जायेगा, तब रागी प्राणी है अतः भेद का लक्ष्य करने पर राग होगा। भेद का ज्ञान करने से राग होता हो तो केवली भी भेद अभेदवस्तु को बराबर जानते हैं। सूक्ष्म बात है। आहाहा !

केवलज्ञानी भी, त्रिकाली अभेद को भी जानते है और पर्याय को जो भेद यह भी केवली तो जानते हैं, भेद को जानने से राग होता हो तो केवली को राग होना चाहिए, परंतु यहाँ सरागी प्राणी है। साधक (दशा) में है उसे द्रव्यऊपर दृष्टि करनेपर, उसका प्रयोजन जो सुख और शांति है वह प्राप्त होता है, अतः भेद इसमें होनेपर भी, भेद को गौण करके `नहीं' कहा है। समझ में आया ?

और मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में सातवें अध्याय में आत्मा को भेदा-भेद कहा नहीं। उसे तो अभेद कहा है। यह पर से भिन्न है और अपने गुण-पर्याय से अभेद है

- ऐसा बताना है वहाँ। समझ में आया ? द्रव्य और पर्याय वस्तु में है। परंतु उसे मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में तो सातवें अध्याय में २५६ पेज के बाद २५७ पेज पर वस्तु को अभेद कहा। अभेद अर्थात ? यह वस्तु है आत्मा, उसके गुण और पर्याय सभी एकमेक पर से भिन्न है, और अपने स्वभाव से अभिन्न है। इस भाषा का प्रयोग किया है न ? अब ऐसी अपेक्षायें ?

कि वस्तु को...मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में - ऐसा कहें, टोडरमल्लजी... कि वस्तु है यह अभेद है। इसमें ज्ञान-दर्शन-चारित्र की पर्याय के भेद करना, यह भेद नहीं, इसे समझाने को भेद कहा है क्योंकि जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र से प्राप्त आत्मा हो, उसे (ज्ञान, दर्शन, चारित्र को) प्राप्त करे अतः उसे भेद से कथन (किया है), परंतु **वस्तु भेदरूप नहीं, वस्तु तो यह दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय सहित आत्मा अभेद है।**

जरा सूक्ष्म बात है भाई ! यह तो इन भेद के विचार आने पर क्या कहते हैं ? ***यहाँ कहते हैं कि प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से है, पर्याय ऊपर दृष्टि इसकी भेदरूप में तो अनादिकाल से है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? और मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में - ऐसा कहा कि वस्तु अभेद है पर्याय सहित वही वस्तु है, पर्याय भेद और द्रव्य अभेद - ऐसा है नहीं, वहाँ तो पर से भिन्न करके, उसके द्रव्य, गुण, पर्याय को अभेद कहकर वस्तु कहा है। और यहाँ जो है उसे गुण और पर्याय जो (भेद) है। यह त्रिकाली की अपेक्षा से, एक समय की पर्याय भेदरूप है।*** आहाहा !

त्रिकाल (वस्तु) है वह वस्तु अभेद है ध्रुव, और पर्याय है वह उसका भेद है और उस भेद का पक्ष तो अनादि का है प्राणियों को, आहाहा ! इसलिये यह पक्ष छुड़ाने (के लिए) वस्तु भेदरूप नहीं, अर्थात व्यवहार नहीं, पर्याय नहीं - ऐसा कहकर त्रिकाली आत्मा का आश्रय लेकर, सम्यग्दर्शन और सुख की प्राप्ति हो, इस प्रयोजन से व्यवहार और पर्याय जो भेद है, यह नहीं - ऐसा कहा है।

बहुत... कठिन बात भाई ! आहा ! और सातमीं गाथा में कहा कि भेद का लक्ष्य करेगा तो राग होगा। यहाँ भी भेद को गौण करके भेद को निकाल दिया। समझ में आया ? और सोलहवीं गाथा में भी दर्शन, ज्ञान, चारित्र की सेवा करना - ऐसा कहा। तब यह स्पष्ट किया कि लोग पर्याय से समझते हैं अतः इस विधि से समझाया है। बाकी दर्शन, ज्ञान, चारित्र का भेद, यह तो पर्याय नय और व्यवहारनय का विषय है। अरे...अरे...! समझ में आया ?

वहाँ पर्याय और उसकी अभेद वस्तु है यह अपने स्वभाव से अभिन्न है। एवं गुण पर्याय से भी अभिन्न है - ऐसा कहना है मोक्षमार्ग प्रकाशक में।

जो पर्याय को नहीं मानता उसे नहीं, परंतु मानता है वह पर्याय एवं द्रव्यगुण अभेद एकाकार है। इसलिये वस्तु अभेद है - ऐसा कहा। अरे ! और सातमी गाथा में वस्तु को अभेद कहकर गुण और पर्याय भेद है उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग होगा, अतः जब तक सरागी प्राणी है, उसे अभेद की मुख्यता कराने, अभेद की दृष्टि एवं अभेद का आश्रय लेने (के लिए) भेद का लक्ष्य करने पर राग होता है अतः भेद का लक्ष्य छोड़ो। आहाहा !

और सोलहवीं गाथा में भी - ऐसा कहा, कि जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र है यह व्यवहारनय का विषय है एवं मलिन है यह मेचक है। सूक्ष्मबात है भाई ! यह तो थोड़ा भेद का पक्ष है, व्यवहार का पक्ष, यह पर्याय है। फिर भी इसका पक्ष है यह गलत है - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ? वस्तु है यह एकरूप अभेद है। उसमें जो पर्याय है यह भेद है। आहाहाहा ! है पर्याय उसकी, यह अवस्तु नहीं, है वस्तु परंतु... त्रिकालमें से पर्याय का अंश भेद है और भेद का लक्ष्य (करने से) रागी प्राणी है अतः राग उत्पन्न होता है, अतः भेद का लक्ष्य छुड़ाया है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसे प्रकार है।

यह फिर से लिया, प्राणियों को... अर्थात बहुत जीवों को भेद अर्थात पर्याय का अर्थात व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से है। समझ में आया ? ***मोक्षमार्ग (प्रकाशक) कहता है कि पर्याय अभेद है, भेद नहीं, यह पर से भिन्न करके अपने स्वभाव गुण पर्याय से अभिन्न है इतना वहाँ बताना है। समझ में आया ? और यहाँ (और) सातवीं गाथा में और सोलहवीं में इन तीनों का यह लक्ष्य है। कि पर्याय भेद है अवश्य जीव में, परंतु इस भेद को लक्ष्य करने जायेगा तो राग होगा और सुख का प्रयोजन है, सम्यग्दर्शन का प्रयोजन है, यह प्रयोजन पर्याय के लक्ष्य से सिद्ध नहीं होगा।*** आहाहा ! ऐसीं बातें है।

प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही है। यह पर्याय है यह भेद है। त्रिकाली द्रव्य की मुख्यता की अपेक्षा से पर्याय है वह गौण करके 'नहीं' कहा, क्योंकि उसका पक्ष करता उसे राग होता है एवं अनादि का पक्ष है। पर्याय का, व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से जीवों को है। समझ में आया ? यह छुड़ाने पर्याय को गौण करके नहीं, भेद कह कर नहीं - ऐसा कहने में आया है। आहाहा !

और इसका उपदेश भी बहुधा... है ? प्रथम तो इसे पर्याय (रूप) भेद का पक्ष तो अनादि का है और (ऐसे) उपदेशक भी इसे ऐसे मिलते हैं कि व्यवहार करना, पर्याय में व्रत करना, तपस्या करना, भक्ति करना। व्यवहार करके-करते कल्याण होगा-

ऐसा कहनेवाले अज्ञानी बहुत... है ? आहाहा ! उपदेश भी अधिक `भी' कहा न प्रथम तो भेद का पक्ष है और इसमें भेद का उपदेश देनेवाले भी हैं। आहाहा !

पर्याय के लक्ष्यसे उसे व्रत और तप तथा - ऐसा करो, लक्ष्य तो वहाँ दृष्टि है, यहाँ द्रव्य ऊपर तो दृष्टि है नहीं। - ऐसा उपदेश परस्पर एक दूसरे को करते हैं। उपदेश `भी' `भी' अर्थात दूसरा बोल... पहला बोल तो अनादि का है ही, उपरांत दूसरा बोल यह उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणियों परस्पर करते हैं। आहाहा ! दो बोल !

`पुनश्च जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्ब जानकर बहुत किया है' जिनवाणी में भी देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति व्रत तप आदि के भाव बताये हैं, जिनवाणी में भी निश्चय वस्तु जहाँ है, आत्मा का आश्रय लेकर जहाँ सम्यग्दर्शन ज्ञान हुआ है, उसको राग की मंदता का भाव, चौथे, पांचमें और छठवें (गुणस्थान में) - ऐसा मंदता का भाव आये, आता है उसको उपदेश जिनवाणी में कहा है। कि देखो ! ऐस व्यवहार (साधकों को) होता है। उन्हें व्रत हो भक्ति हो उन्हें यह हो - ऐसा जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश हस्तावलम्ब जानकर अर्थात निमित्तरूप जानकर निश्चयरूप स्वभाव के ज्ञान के समय में यह व्यवहार सहचर साथ में देखकर सहचर, साथमें देखकर निमित्तरूप जानकर, उसका उपदेश भी जिनवाणी ने दिया है। बहुधा उपदेश यही दिया है। आहाहा ! समझ में आया ?

दर्शन आचार, समकित का व्यवहार, ज्ञान का व्यवहार, आचार `निंदाग्रहा न करना' विनय करना, इत्यादि। आहाहा ! जिसके पास से सुना है उसे न छुपाना यह सभी व्यवहार। - ऐसा व्यवहार जिनवाणी में भी आया है। आहाहा ! `हस्तावलम्ब' अर्थात निमित्त, सहायक अर्थात साथ में रहनेवाला, निश्चय के साथ व्यवहार और राग की मंदता का भाव होता है। - ऐसा देखकर निमित्तरूप देखकर जिसकी स्वभाव के आश्रय की दृष्टि हुई, उसके साथ सहचररूप - ऐसा मंदराग होता है, इतना दिखाकर बताया है परंतु इसका फल संसार ही है। आहाहा ! तीनों... भेदों के पक्षवालों का फल संसार है, व्यवहार का उपदेश करते है एक दूसरे उसका फल संसार है, और जिनवाणी में कहा हुआ व्यवहार, उसका फल संसार है।

तब कहते है कि व्यवहार कहा क्यों ? कि निश्चय जो आत्मा आनंदस्वरूप का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि हुऐ हैं। उसकी पूर्णता न हो तब राग की मंदता सहचर साथ में होती है - ऐसा जानकर उसे भी व्यवहार कहा है। परंतु यह व्यवहार आदरणीय नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? व्यवहार है अवश्य - ऐसा जिनवाणी में कहा! आहाहा ! परंतु वह आदरणीय नहीं उसका फल संसार है। आहाहाहा !

(श्रोता :- करने लायक तो है) करने योग्य नहीं। यहाँ तो आता है सहचर

देखकर उपदेश किया है। करने लायक है ऐसी बुद्धि समकिति को होती नहीं। आ जाता है बीच में, सहचर साथ में आ जाता है, इसलिये इसका उपदेश किया है। परंतु है इसका फल संसार। आहाहाहा !

(श्रोता :- अनादि की है ?) अनादि की पर्यायबुद्धि है - ऐसा कहते हैं, और पर्याय बुद्धि का उपदेश, व्यवहार का परस्पर में करते हैं। व्रत करो, भक्ति करो, तप करो, दान करो तो इससे होगा- ऐसा उपदेश करते हैं। यह मिथ्यात्व का उपदेश (है) और जिनवाणी में भी, निश्चय के स्वरूप के ज्ञान के कालमें भी- ऐसा राग की मंदता का भाव आये बिना रहता नहीं, इसप्रकार बताया है। परंतु बताया है फिर भी उसका फल संसार है। आहाहा !

अब - ऐसा सभी समझना इसे। समझ में आया ? सातवीं गाथा में तो आ गया है अपना... शिष्य ने प्रश्न किया था... कि प्रभु यह आत्मा है, इसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र है यह तो इसकी पर्याय है उसकी वस्तु है, उसकी पर्याय है उसकी वस्तु है, उसे तुम व्यवहार क्यों कहते हो ? क्योंकि व्यवहार तो उसे कहते हैं, अवस्तु को। अवस्तु अर्थात ? कि उसमें न हो, पर हो उसे व्यवहार कहना ? और दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो इसमें है। है तब तो वस्तु है। तब वस्तु है उसे व्यवहार क्यों कहा ? समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा मार्ग बहुत सूक्ष्म बापू ! आहा !

कि भाई ! हमने इसको व्यवहार कहा है, वस्तुतः तो उसकी पर्याय है। परंतु रागी प्राणी है इसलिये, जहाँ तक अभेदरूप पूर्णता को प्राप्त न हो, तब तक इसे राग के कारण, भेद ऊपर लक्ष्य जायेगा, तब राग होगा, बंधन होगा। आहाहाहा ! अतः उसे पर्याय के भेद का भी निषेध करके, अकेले आत्मा की दृष्टि करो - ऐसा बताया है। आहाहा ! अरे ! और सोलहवीं गाथा में भी कहा कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र (का) सेवन करना, मूल गाथा में। तब यह तो पर्याय हुई भेद हुआ। कि भाई ! पर्यायरूप भेद कहा है उसका कारण ? कि लोगों को पर्याय से और व्यवहार से समझाना है इसलिये कहा है। बाकी पर्याय आदरणीय नहीं। भेद, एकद्रव्य का एक अंश जो वर्तमानदशा यह आदरणीय नहीं। आहाहा ! - ऐसा वस्तु का (सूक्ष्म स्वरूप) अब, समझ में आया ?

यही बात यहाँ ग्यारहवीं गाथा में ली है। ***ग्यारहवीं में सातवी में, सोलहवीं गाथा में जो कहा यह शैली, यहाँ ली है और मोक्षमार्ग प्रकाशक में तो परद्रव्य से भिन्न करके और उसका जो स्वभाव, गुण एवं पर्याय उससे वह अभिन्न वस्तु है, परंतु वस्तु तो अभेद है - ऐसा कहा और सातवीं गाथा में वस्तु भेदाभेद है - ऐसा कहा।*** (श्रोता :- इसमें से सच्चा क्या ?) दोनों। किस अपेक्षा से कहा है, कहा न ? ***कि***

भेदा-भेद है - ऐसा कहा है यह वस्तु का स्वरूप है, और वहाँ अभेद कहा है यह पर से भिन्न करके अपने में गुण पर्याय है, इतना बताने उसे अभिन्न कहा है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह तो `भेद का पक्ष' आया न उस पर से यह विचार बहुत आये। (श्रोता :- अच्छे विचार आये है) यह तो भेद का पक्ष हुआ न ? आहाहा ! प्रभु वीतराग का मार्ग - ऐसा कोई है यह, अभी तो बहुत बड़ा घोटाला उठा है। आहाहा ! सर्वज्ञका पंथ वीतरागता का सार है। तब वीतरागता हो कब ? भेद का पक्ष करे, लक्ष्य करे तब वीतरागता न हो, तब राग होता है। समझ में आया ?

पंचास्तिकाय की १७२वीं गाथा में आया है कि सभी शास्त्रो का तात्पर्य क्या ? कि तात्पर्य वीतरागता। चाहे तो चरणानुयोग हो कि करणानुयोग हो द्रव्यानुयोग हो कि कथानुयोग हो, इन चारों अनुयोगों का तात्पर्य तो वीतरागता है। यह वीतरागता तो पर्याय है। परंतु यह वीतरागता प्रगट कैसे हो ? इसका अर्थ हुआ कि वह द्रव्य का आश्रय ले तब वीतरागता प्रगट हो। पर्याय का आश्रय ले तो राग हो। वीतरागता प्रगट हो नहीं। आहाहाहा ! देवीलालजी ! यह तो तीन-चार बोल निकले इसमें से। आहाहा ! आहाहा !

जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का निमित्त देखकर हस्तावलम्ब का अर्थ निमित्त, सहचर, बहुत किया है। बहुत किया है व्यवहार का उपदेश शास्त्र में बहुत है। कारण कि लोग व्यवहार से समझते हैं और पर्याय दृष्टि से, पर्याय है उसे समझाते हैं। इसलिये लोक इस प्रकार समझते है और उपदेश - ऐसा बहुत किया है। परंतु यह बहुधा जिनवाणी में भी उपदेश किया जो व्यवहाररूप दर्शन के आठ अंग करना व्यवहार सम्यग्दर्शन के, ज्ञान के आठ आचार व्यवहार करना।

यह काल कहा था, प्रवचनसार में - ऐसा आया है कि हे दर्शनाचार व्यवहार तुम हमारा स्वरूप नहीं, चरणानुयोग की शैली में... वहाँ अधिकार है, चरणानुयोग (चूलिका) में प्रवचनसार... व्यवहार समकित के जो आठ अंग है निशंक-निकांक्ष आदि व्यवहार ज्ञान के आठ आचार है, उपधान ध्यान विनय से पढ़ना, अक्षर स्पष्ट लिखना, यह सभी व्यवहार से उपदेश किया है उसे - ऐसा कहते हैं कि प्रभु, तुम हमारी वस्तु नहीं। - ऐसा समकिति कहता है। तुम हमारी चीज नहीं। परंतु जब तक मैं पूर्ण न होऊं, तब तक तुम्हारे प्रसाद से अर्थात निमित्त की उपस्थिति में (हम) स्वयं से अपना काम कर लें। आहा..हा ! समझ में आया ? आहाहाहा !

वीतरागशास्त्र अलौकिक है। उसमें दिगम्बर संत, दिगम्बर मुनि और दिगम्बर धर्म यह तो सनातन अनादि मार्ग है। वीतराग का अनादि मार्ग यह है - ऐसा मार्ग अन्य

किसी संप्रदाय में कहीं है नहीं। आहा ! शैली तो देखो ! शैली। आहा ! जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश किया है एवं यहाँ व्यवहार को असत् कहते हैं। व्यवहार झूठा है और जिनवाणी में व्यवहार आता है - ऐसा बताया है। उसका कारण...?

कि निश्चय रूप - आत्मा का अवलम्बन है, निश्चय से सम्यग्दर्शनज्ञान हुआ है। फिर भी पूर्णता नहीं अर्थात राग की मंदता सम्यग्दर्शन के आठ अंग आचार व्यवहार, ज्ञान के आठ आचार विनय आदि, चारित्र के आठ आचार पांच समिति गुप्ती वगैरह- ऐसा भाव वहाँ होता है। होता है - ऐसा जानकर, बताया है उसे जिनवाणी ने भी उसका फल बंधन और संसार है (बताया)। आहाहाहा !

वीतरागी मुनि है वीतरागी सम्यग्दृष्टि हैं, चौथे गुणस्थान में समकित वीतराग है। समकिती सरागी-फरागी होता नहीं। यह वीतरागस्वरूप भगवानआत्मा उसकी दृष्टि करने पर जो वीतरागी सम्यक्पना होता - ऐसे जीव को भी व्यवहार के आठ आचार आते है, ज्ञान के आते है। आहाहा ! यह भक्ति आदि का भाव होता है यह भगवान ने बताया, कि निश्चय के साथ यह होता है। परंतु इसका फल संसार है। आहाहा ! समझ में आया ? - ऐसा अटपटा है। आहाहा !

यहाँ व्यवहार को झूठा कहा और निश्चय को सच्चा कहा। निश्चय अर्थात त्रिकाली, भूतार्थ ध्रुव, वह सत्य है और पर्याय वह असत्य है - ऐसा कहा। इसका अर्थ पर्याय कहो कि व्यवहार कहो कि इसे गौण करके लक्ष्य छुड़ाने के लिए और मुख्य का लक्ष्य कराने के लिए वह त्रिकाली सत्यार्थ है, वह ही सत् है और वर्तमान में भेद है वह है अवश्य परंतु उसका लक्ष्य छुड़ाने, उसे गौण करके, अभेद की दृष्टि में यह भेद दिखता नहीं, अतः उसे झूठा कहा है। ऐसी बातें है। आहाहा !

जिनवाणी में व्यवहारनय का उपदेश... शुद्धनय के उपेदश में, शुद्धनय स्वभाव के साथ हस्तवलम्ब अर्थात हाथ को ज्यों सहारा मिलता यो जैसे छतपर चढ़ें तथा छत कहते हैं न ? यह लकड़ी किनारे पर होती है तब चढ़ता तो स्वयं अपने से, यह निमित्त होती लकड़ी होती है न ? लम्बा हाथ (रखने) को इसीप्रकार, हस्तावलम्ब हाथको जैसे यह निमित्त है, ऐसे यह व्यवहार को निमित्त कहकर निश्चय रूप स्वरूप की श्रद्धा और ज्ञान तथा शांति प्रगटी है, उसे पूर्णता नहीं, इसलिये बीच में - ऐसा व्यवहार आता है इसलिये जिनवाणी में व्यवहार का बहुत उपदेश किया है। उसका (व्यवहार का) उपदेश तो बहुत आता न, चरणानुयोग में आता है। आहाहाहा !

परंतु इस व्यवहार का फल, भेद के पक्षवाले जीव हैं अनादि से, उसका भी फल संसार और परस्पर यह व्यवहार का उपदेश करते हैं, उसका फल संसार तथा जिनवाणी में व्यवहार कहा उसका फल संसार। अरे ! ऐसी बातें हैं।

(श्रोता :- जिनवाणी का फल संसार होता ?) जिनवाणी (में) कहा न कि व्यवहार बीच में आता है अतः जिनवाणी में दर्शाया है, कि - ऐसा हो, वहाँ - ऐसा हो, वहाँ - ऐसा हो, दिखलाया है परंतु उसका फल बंधन है। आहाहा !

वस्तु भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का धाम प्रभु, आनंद मंदिर भगवान ! आहाहा ! वह भजन में कहते पोपटभाई, गांधीको, कुछ आनंद मंदिर खोलो- ऐसा कुछ आता था न, पोपटभाई गाते थे, बाहर का नहीं परंतु यह आनंद मंदिर अंदर, भगवानआत्मा अतीन्द्रिय आनंद का सागर है। पूर्णानंद का नाथ प्रभु ! पूर्ण शक्ति स्वभाव से भरा प्रभु है। यह सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा है। यह आत्मा स्वयं भगवान है, परमेश्वर है, प्रभु है, ईश्वर है। आहा..!

यह वस्तु कृत्य-कृत्य है। आहा..हा ! वस्तु में कुछ करने जैसा नहीं यह तो वस्तु कृत्य-कृत्य है। आहाहाहा ! इसकी दृष्टि कराने, उसे मुख्यकरके निश्चय कहा और पर्याय को राग को गौण करके नहीं - ऐसा कहा है। अभाव करके `नहीं'... कहा है - ऐसा नहीं। यदि पर्याय ही न मानें तो वेदांतियों की तरह मिथ्यादृष्टि हो जाओगे और पर्याय से धर्म होता - ऐसा माने तो भी मिथ्यादृष्टि होगा। आहाहा ! - ऐसा मार्ग वीतराग का। है कि नहीं यहाँ ? हाँ। परंतु इसका फल संसार है। आहाहाहाहा !

तुमने पर्याय का और राग का पक्ष किया है अनादि से, यही संसार है। और पर्याय का और राग का उपदेश परस्पर करते हैं एक दूसरे को - ऐसा करो- ऐसा करो वैसे (अपने आप) कुछ होता होगा ? सम्यग्दर्शन निश्चय से एकदम होता है ? पहले यह कहीं व्यवहार साधन देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा आदि करें और यात्रा पूजा करते-करते शास्त्र बांचन खूब करो - ऐसा विकल्प आयें, इससे धीरे-धीरे लाभ होता - ऐसा जो उपदेश करते हैं, यह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहाहा !

और तीसरा (बोल) जिनवाणी में भी निमित्त देखकर... आहाहा ! निमित्त आदि का ज्ञान कराने... आहाहा ! यह वहाँ सातवें अध्याय में है न ? (मोक्षमार्ग प्रकाशक) ***में कि यह व्यवहार है उसे ग्रहण करना कहा है न ! व्यवहारनय को ग्रहण करना, यह व्रत ग्रहण करना अमुक ने कहा है न ? कि भाई ! ग्रहण करने का अर्थ उपादेय - ऐसा नहीं। ग्रहण करने का अर्थ जानना है।*** आहाहा ! टोडरमलजी ने लिखा है। समझ में आया ? व्यवहारनय से - ऐसा कहा कि व्रत करो एवं तप करो... भक्ति करो और... उपवास करो मंदिर बनाओ न... आहाहा ! पद्मनंदीपंचविंशतिका में - ऐसा कहा है, जो कोई प्रतिमा छोटीसी भी स्थापना करे... तो भी उसको आहाहा ! सिंघई की पदवी मिले, किस अपेक्षा ? बापू ! आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

वहाँ तो बताया है, कि समकिती है, आत्मज्ञान है, आत्मानुभव है उसे भी परमात्मा का... मंदिर बने वह मंदिर के कारण, प्रतिमा की स्थापना यह भी जड़ की पर्याय जड़ के कारण, परंतु इसे - ऐसा शुभ भाव आये बिना रहे नहीं। इतना शुभ भाव आया है उसे व्यवहार से निमित्त अपेक्षा से कहकर बताया है। परंतु यह शुभ व्यवहार आता है बीच में उसका फल संसार और बंधन है। अरे ! हाँ ! (श्रोता :- यह बात यही है) तब मोहनलालजी क्यों आये कलकत्ता से, यहाँ आते हैं। आहाहा !

बापू ! मार्ग बहुत अलग भाई ! आहा ! यह तो जन्म-मरण रहित होने की बातें है प्रभु ! आहाहा ! (श्रोता :- इसका फल संसार है - ऐसा कहने से भड़कते है) लिखा है न प्रभु, देखो न यहाँ का है, यह तो जयचन्द्रजी पण्डितजी का (लिखा हुआ भावार्थ है) (श्रोता :- यहाँ का है) आहाहा ! शांति से समझे तो... व्यवस्थित बैठे ऐसी बात है आहा...हा !

तब जिनवाणी में व्यवहार कहा क्यों ? कहा न यह निश्चय के साथ अपना आया है न मोक्षमार्ग प्रकाशक सातवें अध्याय में कि निश्चय समकित जिसे आत्मा का आश्रय हुआ उसे ही देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, सम्यग्दर्शन के आठ आचार, इन सभी को भी समकित कहा है, तब व्यवहार के साथ देखकर, है तो राग भाव, क्या कहा ? आत्मा जो वस्तु है चिदानंद पूर्णानंद प्रभु ! उसकी जिसे अंतर अभेददृष्टि हुई है, अनुभव हुआ है, यह सम्यग्दर्शन सत्य है और साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग व्यवहार समकित, जो रागादिक का आचरण, यह है तो राग, परंतु यह निश्चय समकित के साथ सहचर देखकर राग पर व्यवहार समकित का आरोप देकर व्यवहार समकित कहा है, यह `व्यवहार' समकित है ही नहीं। आहाहा ! सातवें अध्याय में आता है मोक्षमार्ग प्रकाश में कि निरूपण दो प्रकार है, वस्तु दो प्रकार की नहीं। आहाहा !

व्यवहार और निश्चय का निरूपण दो प्रकार (से) है। आहाहा ! वस्तु दो प्रकार की नहीं, वस्तु तो जो निश्चय के आश्रय से होती यह एक ही प्रकार है। आहाहाहा ! क्या शैली ? क्या शैली ? दिगम्बर संतो की क्या शैली ! गजब शैली ! संक्षिप्त शब्दों में भी गजब बातें है। ऐसी बात श्वेताम्बरों में नहीं एवं स्थानकवासियों में नहीं। अन्यमत में तो है ही कहाँ ? आहाहा !

वह भी... पक्ष में रुके है उन्हें खबर कहाँ है ? आहाहा ! संत कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य आदि, यह सर्वज्ञ के मार्ग पर चलनेवाले। आहाहा ! और कुन्दकुन्दाचार्य अमृतचन्द्राचार्य ने - ऐसा कहा पांचवी गाथा में, हमारे भगवान अरहंत प्रभु वह विज्ञानघन में निमग्न थे। प्रभु ! वीतराग ! उनके बाद गणधर, वह भी विज्ञानघन में निमग्न

थे। मग्न अकेले नहीं निमग्न। मग्न तो सम्यग्दृष्टि होते हैं परंतु यह संत हैं निमग्न है। फिर हमारे गुरुपर्यंत... हम छद्मस्थ हैं परंतु हम दृढ़ता से कहते हैं कि हमारे गुरुपर्यंत विज्ञानघन में निमग्न थे - ऐसा हम कहते हैं। आहाहाहा !

और उन्होंने हमको उपदेश दिया आत्मा का, महरबानी की। आहाहा ! उन्होंने हमें आत्मा का उपदेश दिया, उससे हमारा निज वैभव प्रगटा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निज वैभव आनंद (में) निमित्तरूप में यह था। किया है हम अपने से, परंतु इसमें निमित्त यह थे। और वह निमित्त हमारे गुरु भी विज्ञानघन में निमग्न थे। पंचमहाव्रत और नग्नपना है, यह कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा ! छद्मस्थमुनि पंचमकाल के स्वयं के गुरु भी विज्ञानघन में निमग्न है - ऐसा निश्चय कर लिया ? (श्रोता :- स्वयं विज्ञानघन में निमग्न है) स्वयं है यह तो अलग बात है, यह तो हमारे गुरु भी, अरहंत भी, गणधर से लगाकर उनकी परंपरा तक हमारे गुरु पर्यंत विज्ञानघन में निमग्न थे। - ऐसा गुरु ने हमको आत्मा का उपदेश दिया है। आहाहाहा ! गजब बात करी है न ! कहाँ यह बात तो देखो !

और यह हमारा निज वैभव से हमें प्रगटा है। आहाहाहा ! हम प्रभु आत्मा आनंद स्वरूप हैं। हम पूर्ण ज्ञानस्वरूप हैं - ऐसा अपने द्रव्य का आश्रय लेने पर, हमको पर्याय में निज वैभव, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और अतीन्द्रिय प्रचुर आनंद का वेदन यह हमारा निज वैभव है। यह धूल का वैभव यह नहीं। अरे ! अंदर राग होता यह हमारा निज वैभव नहीं - ऐसा कहते हैं। टीका करने का विकल्प उठा है यह हमारा निज वैभव नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! वस्तु के सत्य की सिद्धि किस प्रकार की। आहाहाहा !

तीनों बोलों का फल संसार `ही' है - ऐसा कहा। एकांत कहा, कथंचित बंधन और कथंचित अबंध... व्रत, तप, भक्ति, पूजा के भाव आए तो कथंचित बंध का कारण एवं कथंचित अबंध का कारण - ऐसा नहीं कहा है - समकिती को भी, यह भाव आता है, यह बंध का कारण है अर्थात संसार है अभी। आहाहाहा ! अज्ञानी को तो... क्या कहना ? उसे तो निश्चय नहीं और व्यवहार भी नहीं।

जिसे निश्चय स्व का आश्रय हुआ है, उसे तो सहचररूप में व्यवहार के राग की मंदता... ज्ञानाचार दर्शनाचार, चारित्राचार, वीर्याचार वगैरह आता है। व्रत, नियम, तप, भक्ति भगवान का विनय आदि यह होता है, सहचर देखकर उसका ज्ञान कराया है भगवान ने भी, इसका ज्ञान कराया है, इसलिये उसका फल... यह वस्तु है उसका फल संसार है। आहाहा !

वस्तु स्वभाव है... अनंत आनंद ज्ञान और अनंत महिमावंत, अपरिमित शक्ति का

सागर प्रभु, महात्मा है, परमात्मा है प्रभु है, ईश्वर है - ऐसा जिसका द्रव्य स्वभाव है। आहाहा ! यही सत्य है - ऐसा कह कर, सम्यग्दर्शन कराने (को) उसे सत्य कहा है और पर्याय में मंदराग भाव और पर्याय होने पर भी, अरे ! ग्यारह अंग का ज्ञान होने पर भी... आहाहा ! उसे असत्य कह कर, गौण करके, गर्भित रखकर गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा है। आहाहा ! समझ में आया ? कहो सुरेन्द्रजी ! कलकत्ता, फलकत्ता में मिले - ऐसा नहीं, वहाँ कहाँ। आहाहा !

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का विरह हुआ, परंतु उनकी वाणी रह गई, और संतो ने जगत को बतलाई। आहाहा ! प्रभु तुम प्रभु हो, इसतरह आचार्य प्रभु कह कर बुलाते है `भगवान हो' - ऐसा पुकारते हैं, बहत्तर गाथा समयसार में। `भगवानआत्मा' भगवान, संत `भगवान' कह कर बुलाते हैं प्रभु ! तुम भगवान हो न प्रभु ! तुम्हारी पर्याय में राग-द्वेष हो यह तुम्हारी चीज नहीं, उसी प्रकार तुम एक समय की पर्याय जितने नहीं। आहाहा ! - ऐसा जो भगवानआत्मा वही सत्य है एवं पर्याय और रागादिक, देव-गुरु की श्रद्धा का रागादि यह सभी असत्य है, इसप्रकार गौण करके असत्य कहा है। यहाँ कहा कि स्वयं सहचर देखकर जिनवाणी में कहा है। आहाहा ! समझ में आया ? लो, ऐसी बातें है यह। आहाहा !

अरे ! यह बात कहाँ है ऐसी बापा ! तीनलोक के स्वामी तीर्थंकरों द्वारा कहा हुआ, केवलज्ञान के पथानुगामी दिगम्बर संत अर्थात केवलज्ञान के पथ पर चलनेवाले, केवलज्ञान लेकर पता लगा लेंगे यह केवलज्ञान का। आहाहा ! पगदंड़ी होती है न ? पगदण्डी कहते हैं, हमारी (भाषा में) केड़ी कहते हैं। आहाहा ! यह - ऐसा कहते हैं, यह तो पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है।

व्यवहार अभूतार्थ कहा और त्रिकाली को सत्य कहा, क्यों ? उसका स्पष्टीकरण करते हैं। अपने घर का कुछ कहते नहीं, अंदर है इसका स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा ! व्यवहार को असत्यार्थ क्यों कहा ? कि है तो अवश्य, पर्याय है, दया, दान का विकल्प भी है। कि यह पक्ष तो व्यवहार का अनादि से जगत को है और उपदेश भी बहुधा प्राणी यही करते हैं और जिनवाणी में भी निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान की भूमिका में सहचररूप में ऐसी व्यवहार दशा होती है इसलिये उपदेश जिनवाणी में किया है। परंतु फल तो तीनों का संसार है। आहाहा !

- ऐसा है (श्रोता :- बहुत अच्छा) परसों चला था कल भी चला न आज भी फिर से आया यह। यह तो भेद पक्ष आया न ! एक तरफ पर्याय भेद (रूप) पक्ष है - ऐसा कहा- ऐसा यहाँ कहते हैं है तो अवश्य ! परंतु गौण करके उसे `नहीं' - ऐसा कहा, क्यों - ऐसा कहा ? कि भेद का पक्ष तो जगत को अनादि से है

और भेद की बातें करनेवाले भी परस्पर उपदेशक भी ऐसे जगत को मिलते है और सुननेवाले भी प्रसन्न होते हैं कि वाह ! यह...यह...यह करो। आहाहा ! यह सच्चा वह तो व्यवहार की बातें भी करते नहीं। अरे ! सोनगढ़िया तो... सोनगढ भी सोनगढ की कहाँ है यह बात ?

प्रभु ! तुम्हारे घर की बात है नाथ ! प्रभु ! तुम्हारा घर अंदर बड़ा है। आहाहा ! आहाहा ! हमारे मामा थे, दो सगे मामा छोटे थे, और हमारे मामा का काका का लड़का बड़ी उम्र का, न पैसावाले यह तो पैसावाले तो मामा थे, परंतु वह बहुत पैसावाले, कभी - ऐसा कहें तो कहें तो हमारी मामी - ऐसा कहें बड़े घर में पूँछो ? हमने कहा बड़ा घर अर्थात क्या ? वह हमारे बड़े मामा थे, बहुत पैसावाले थे मकान जमीन बहुत, सब समाप्त हो गया अभी मर गये लड़का भी न रहा, वैसे पैसावाले थे। कहते हमारी मामी कहती सगी मामी, बड़े घर में वहाँ मामा है, उनसे पूछो... वहाँ पूंछो बड़े घर है - ऐसा कहते।

इस प्रकार यह बड़ा घर भगवानआत्मा है। आहाहा ! छोटाभाई आया हो तो कहते है वहाँ बड़े घर में पूंछो इसप्रकार। यहाँ बड़ा घर तो तीनलोक के नाथ चैतन्य बिराजते है नाथ। आहाहा ! जिसमें अनंत अमृत भरा है, अनंत शांति भरी है। आहाहा ! अनंती स्वच्छता, अनंती ईश्वरता भरी है। आहाहा ! उसकी दृष्टि कराने, उसका आश्रय कराने, पर्याय को गौण करके यह `है' फिर भी `नहीं' - ऐसा कहा है और यह एक ही सत्यार्थ है - ऐसा कहा है। आहाहा ! समझ में आया कि नहीं ?

तुम नये हो अभी तो पहलीबार जल्दी आये हो, तुम्हारे लड़के की बात चलती है। (श्रोता :- यहाँ तो सभी नये है) है न भाई ! हमारे माणिकचन्दजी उनके नाना पहली बार आये है। आहाहा ! ऐसी बातें बापा ! यह तो तुम्हारे घर की बात है नाथ ! आहाहाहा !

तुम्हारे घर (से) बाहर का व्यवहार आये, जहाँ तक वीतराग नहीं इसलिए आये - ऐसा बताया भी है, वीतरागने, परंतु बापू ! यह व्यवहार का फल तो बंधन है। आहाहा ! समयसार नाटक में तो वहाँ तक कहा है। कलशमें से लेकर के मुनियों को तो अंदर में आनंद उछल गया है स्वसंवेदन का आनंद-आनंद, प्रचुर उछल गया है, आहाहा ! उसकी भूमिका में भी जो पंचमहाव्रतादिक के विकल्प आते है, यह जगपंथ संसार है। आहाहाहाहा !

जिसकी दृष्टि मिथ्या है और इसे जो राग की मंदता है, उसकी तो यहाँ बात है ही नहीं। आहाहा ! मिथ्या दृष्टिरूप रह कर कोई राग मंदता की क्रिया करे तो यह व्यवहार ही नहीं और निश्चय नहीं। दोनों झूठे गलत हैं। आहाहा !

परंतु भगवान जागा है अंदर से... अतीन्द्रिय आनंद का नाथ सावधान होकर जागती ज्योति जिसकी दृष्टि में अनुभव में आया है। आहाहा ! उसे भी जो राग मंदता की देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पंचमहाव्रत के परिणाम, श्रावक के बारह व्रत के परिणाम आयें, परंतु इसका फल तो संसार है भाई ! आहाहाहा !

जितना स्वद्रव्य त्रिकाली भगवान, उसका आश्रय लेकर दशा प्रगटी, उतना मोक्षमार्ग है। आहाहाहा ! - ऐसा सत् है प्रभु !

अरे... परंतु टीका में व्यवहार को असत्य जो कहा, उसका स्पष्टीकरण किया है यह। कि क्यों असत्य कहा ? कि प्रथम तो जगत को पक्ष है और इसके उपदेशक भी ऐसे ही सभी हैं बहुधा, और जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश बहुत आया है। यह तो आठवीं गाथा में कहा ना ? आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा भेद करके कहा। परंतु भेद है नहीं उसके स्वरूप में। भेद करके कहा परंतु यह भेद अनुसरण करने लायक नहीं। पुनश्च वहाँ - ऐसा कहा। आहाहा ! समझ में आया ?

आहाहा ! यह अब सीधापनेकी (अस्ति की, शुद्धनय की) बात आती है। जो यहाँ त्रिकाली को भूतार्थ कहा और यही सत्य कहा और ही आश्रय करने लायक है। 'यह शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं' अनंतकाल हुआ मुनिव्रत धारण किया, 'मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रेवेयक उपजायो, पे निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो' यह पंचमहाव्रत एवं अठाईस मूलगुण यह विकल्प यह दुःख है। आहाहा ! गजब बातें। यह कहते पंचमहाव्रत पालें तो धर्म होता है, यह यहाँ करते कि पंचमहाव्रत है वह विकल्प है राग है न ? जगपंथ है भाई ! तुम्हें खबर नहीं। आहाहा ! मुक्त स्वरूप तो भगवान आत्मा मुक्त स्वरूप है अबद्ध है। द्रव्य स्वभाव इसका अबद्ध है, मुक्त है। उसके आश्रय से (जो) परिणाम होते है वह मोक्षमार्ग है। आहाहाहाहा !

शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं, पक्ष की व्याख्या ? कि मैं त्रिकाली शुद्ध हूँ - ऐसा लक्ष्य तो किसी दिन किया नहीं। आहाहा ! व्यवहार में ही रचा और पचा अनंतकालसे मिथ्यादृष्टिरूप रहा। आहाहा ! ***शुद्धनय का पक्ष, पक्ष अर्थात अकेला विकल्प नहीं हाँ यहाँ उसका अंदर आश्रय हो। कारण कि उसका फल मोक्ष कहेंगे न ? शुद्धनय का पक्ष जो है निश्चय नय का विकल्प और यह नहीं यह नहीं। यह अबद्धस्पृष्ट में आता है न ? यह नहीं, यह नहीं यहाँ तो निर्विकल्प पक्ष जो है वह यहाँ है - वह शुद्धनय का पक्ष है यह... आहाहा !***

यह तो कभी आया नहीं। राग रहित भगवान पूर्णानंद, प्रभु ! आहाहा ! यह शरीर और पैसा एवं मकान तथा महल, यह सभी हड्डी की फासफोरस है। आहाहा !

सुन्दर शरीर दिखे एवं कपड़े पहने हों और मुर्दा को श्रंगारे बापा ! यह तो राख है। आहाहा ! उसके बिना का अंदर अमृत का सागर भगवान ! आहाहा ! उसका पक्ष तो कभी आया नहीं। शरीर की क्रिया हमने ऐसी की न ! शरीर से हमने ब्रह्मचर्य पाला आजीवन और आजीवन बाल ब्रह्मचारी हम है न इससे कुछ भी न हो ? यह तो शुभभाव है। आहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं, कभी एक समय भी, आहाहा ! अनादिसे एक समय (भी) आहाहा ! यह मुनिव्रत धारण किया, अट्ठाइस मूल गुण पाले। परिसह उपसर्ग बहुत सहन किये, परंतु यह सभी मिथ्यात्व है। आहाहा ! इसलिये कहा न ! कि `मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रैवेयक उपजायो, पे निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो' तब इसका अर्थ क्या हुआ ? पंचमहाव्रत, अट्ठाइस मूलगुण आजीवन बालब्रह्मचारी, हजारों रानियों का त्याग ! पंचमहाव्रत के परिणाम आदि बराबर निरातिचार निर्मल (होना) फिर भी यह दुःख (है), लेश सुख नहीं पाया, सुख (का) अंश भी न मिला। आहाहाहा !

जो यह शुद्धनय का पक्ष कभी आया नहीं और इसका उपदेश भी दुर्लभ है, कहीं कहीं इसका उपदेश है। आहाहा ! (श्रोता :- यह तो यहाँ सोनगढ़ में है अन्यत्र नहीं, अकेला सोनगढ़ में है !) हमारे मोहनलालजी कहते हैं न ! अभी कहा था कि यहाँ मिलता है। (श्रोता :- परिषह सहन करे और ज्ञान नहीं ?) वहाँ भान नहीं तब क्या ज्ञान है ? परिषह है ही कहाँ ? यह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! अरे बापू ! बहुत कठिन बातें।

उसका उपदेश भी `भी' क्यों कहा ? प्रथम तो शुद्ध का पक्ष आाय नहीं एक, और `भी' उसका उपदेश `भी' यह दूसरा बोल (श्रोता :- स्वयं को आया नहीं न) उपदेश भी मिला नहीं इसका उपदेश - ऐसा कहाँ है ? कहीं है ? आहाहा ! शेष तो व्यवहार व्यवहार आहाहा ! वहाँ धमाचौकड़ी चली थी न अभी कुरावड़ में चली थी न ! अभी पंचकल्याणक था न, हमारे झमकलालजी ! यह झमकलालजी का गांव बालब्रह्मचारी है। और वहाँ बहुत ध्यान रखते थे दस-पन्द्रह हजार व्यक्ति थे। दस हजार व्याख्यान में और नजदीक भिण्डर था वहाँ साधु थे, वहाँ बहुत आदमी परंतु लोगों ने यह सुनकर कितने तो, आहाहा ! कहते कि ऐसी बात तो हमने कहीं सुनी नहीं।

बापू ! यह मार्ग अलग बापू ! यह पक्ष नहीं भाई ! यह तो सत्य को बेल वोई (लगाई) है बापा ! विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ४५ गाथा-११/१२ ता. २८-७-७८ शुक्रवार अषाढ वदी-९ सं.२५०४

समयसार ग्यारहवीं गाथा के भावार्थ का अंतिम भाग है। बात यह आ चुकी है पहली अब यहाँ दूसरी बात है। पहली बात तो यह आयी कि बहुत प्राणियों को अनादि से भेदरूप व्यवहार का पक्ष है। ***वस्तु की पर्याय यह उसका भेद है, राग भी एक इसका असद्भूत भेद है। पर्याय सद्भूत भेद है। इस भेद का पक्ष तो अनादि से है। भेदरूप व्यवहार का पक्ष अनादि से है। सूक्ष्मबात है।***

और आपस में उपदेश भी इस जाति का कर रहे है। व्यवहार भेदरूप व्यवहार का, कि इससे कल्याण होगा। व्रत करो और तप करो तथा भक्ति, पूजा आदि। - ऐसा उपदेश भी परस्पर बहुत कर रहे है। तीसरा जिनवाणी में भी निश्चय स्वभाव के साथ, सहचर साथ में व्यवहार देखकर, इसका उपदेश व्यवहार का बहुत आया है। परंतु, इन तीनों का फल संसार है। आहाहा !

चार गति में भटकना उसका फल है। यहाँ तक आया था। शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं। चैतन्य शुद्धद्रव्य ज्ञायकमूर्ति ध्रुव, उसका आश्रय कभी लिया नहीं। उसका पक्ष कभी आया नहीं। (श्रोता :- पक्ष का अर्थ ?) ***पक्ष का अर्थ आश्रय।*** व्यवहार का आश्रय लिया अनादि से, परंतु अंतर आत्मा ! ज्ञायक स्वभाव भाव ! जो ध्रुव भाव है, उसका आश्रय अवलम्बन पक्ष कभी किया नहीं। आहाहा !

और इसका उपदेश भी विरल है, उपदेश भी कहीं है कि (हे) भाई ! शुद्ध चैतनय् भगवान ! पूर्ण आनंद का ध्रुवकंद, उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता (है)। यह उपदेश विरल है, कहीं... कहीं... है - ऐसा कहते हैं। (श्रोता :- सोनगढ में है) आहाहाहा ! बहुत बदलाव हो गया (है)। इन व्यक्तियों को विचारों को ख्याल नहीं ! परंतु है तो दुःख का पंथ, परंतु इसतरह जानते (कि) हैं कि धर्म होगा - ऐसा मानते है। आहाहा !

आत्मा अखण्ड आनंद ध्रुव ! उसकी शरण उसको ध्येय बनाकर जो दशा होती है... वह बात विरले कहते हैं। आहाहा ! कहीं कहीं है। इसलिये, इस कारण, इसलिये अर्थात इसकारण कि शुद्धनय का पक्ष नहीं और इसका उपदेश भी कहीं विरल है, इसलिये जगत को सत्य मिलता नहीं। `इसलिये उपकारी श्री गुरु ने' आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य ! अमृतचन्द्राचार्य ! आहाहा ! मुनियों ने... दिगम्बर संत केवलज्ञान के पंथानुगामी, उन संतों ने शुद्धनय के ग्रहण का फल अर्थात कि द्रव्यस्वभाव जो

शुद्धचैतन्यध्रुव उसे ग्रहण करना, पकड़ना, उसका आश्रय लेना, उसका अवलंबन लेना, इसका फल मोक्ष जानकर... इसका फल मोक्ष है। व्यवहार के पक्ष का फल, जिनवाणी में कहा (जो) व्यवहार इसका फल संसार है। तब कहा क्यों ? कि निश्चय से स्व के आश्रय से हुई धर्मदशा के समय, सहचर साथ में राग के मंदता की दशा होती है, उसका ज्ञान कराने जिनवाणी में बहुत उपदेश आया है। परंतु फिर भी इसका फल तो संसार है। आहाहा ! निश्चय के ज्ञान सहित का व्यवहार। आहाहा !

चैतन्यप्रभु अतीन्द्रिय आनंद का रस कंद प्रभु आत्मा, उसका आश्रय लेकर जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि हो... उसे पूर्ण वीतरागता नहीं, इसलिये सहचर साथ में राग की मंदता का, विनय का, भक्ति का, पूजा का, व्रत का - ऐसा भाव आये - ऐसा जिनवर ने बताया; परंतु यह जिनवर ने बताया इसका भी फल संसार है। आहाहा ! है न ?

और शुद्धनय के ग्रहण का फल, देखा ? उसमें पक्ष कहा था न ? इतना स्पष्ट किया पक्ष अर्थात ? विकल्परूप पक्ष नहीं। शुद्धनय के ग्रहण का फल अर्थात् त्रिकाली भगवान ज्ञायकभाव-ध्रुवभाव उसे ग्रहण करने का, उसे जानने का और उसका आश्रय लेने का, `ग्रहण करने का फल मोक्ष जानकर इसका उपदेश मुख्यता से किया है'। गौणरूप से व्यवहार है यह बताया है परंतु मुख्यरूप से इसका उपदेश है, इसका फल मोक्ष है, इसलिये। समझ में आया कुछ ?

व्यवहार बीच में आता है इसका ज्ञान कराया है और इसका उपदेश बहुत व्यवहार का ही है शास्त्रों में, परंतु इस व्यवहार का फल तो बंधन संसार है। इसलिये शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से... मुनियोंने मुख्यता से उसका उपदेश किया है। व्यवहार को गौण करके - अभाव करके ऐसी बात की थी परंतु गौण करके... है अवश्य व्यवहार (है)। इसका उपदेश भी है जिनवाणी में। यह तो सहचर राग की मंदता देखकर, व्यवहार जानकर इसे बताया है, कि इस भूमिका में ऐसे राग का व्यवहार होता (है), परंतु यह... राग के फल की अपेक्षा तो बंध और संसार है। आहाहाहाहा !

चाहे तो आत्मज्ञानी को राग आये, कि मुनि जो पंचमहाव्रत धारी को राग आये और तीन कषाय के अभाव (पूर्वक) आनंद का भाव तो उछल रहा है अंदर, इसके साथ महाव्रत का विकल्प आये, अट्ठाईस मूलगुण का, वीतराग के उपदेश में यह ज्ञान कराया है कि यह वहाँ होता है, परंतु इसका फल तो बंधन है। आहाहा ! (श्रोता :- भगवान ने कहा न... इसका फल यह बंधन है ?) - ऐसा है। (तब) यह कहा क्यों है ? कि निश्चय स्वभाव के आश्रित जो शांति, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता,

उसकी अपूर्णता के कारण उसके साथ राग की मंदता का भाव होता है। इतना ज्ञान कराया है। आहाहा !

अभ्यास चाहिए भाई यह तो ! आहाहा ! समझ में आया ? प्रभु ! चैतन्यमूर्ति परम पवित्रता का पिण्ड प्रभु ! आहाहा ! अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनंद, अतीन्द्रिय शांति, अतीन्द्रिय ईश्वरता का तो सागर भगवान है। उसका आश्रय करे और अवलम्बन करे तो उसे मोक्ष का कारण हो। ***ऐसे मोक्ष का कारण प्रगट होनेवाले को भी भूमिकानुसार व्यवहार, राग की मंदता का, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विनय का - ऐसा भाव आये, (तब) साथ में देखकर इसे कहा है... परंतु इसका फल तो संसार है।*** आहाहाहाहा ! ऐसी बातें कठिन बहुत जगत को (लगें) आहा !

देखो न ! अनंत काल से भटकता है देखो न, आहाहा ! यह नीम का फूल होता है, बोर फूल ढेर पड़ा है सामने कोई देखता नहीं। कुचल डालते मसल (देते) एक एक बोर फूल, फूल कहलाये यह नीम का... फूल एक राई जितने टुकड़े में तो असंख्य शरीर और अनंत जीव है। आहाहा ! गंभीर है (श्रोता :- जीवों की संख्या बहुत बड़ी है।) संख्या बड़ी, जीव बहुत है। वस्तु अनंत ! आहाहा ! इससे ***अनंतगुणे तो रजकण है। आहाहा ! जीव की संख्या है, अनंत... अनंत... अनंत... इससे अधिक रजकणों की संख्या अनंतगुणी है। आहाहा ! इसकी अपेक्षा तीनकाल के समय की संख्या अनंतगुणी है, इसकी अपेक्षा आकाश के प्रदेशों की संख्या अनंतगुणी है, इसकी अपेक्षा एक जीव के गुणों की संख्या अनंतगुणी है। आहाहा ! कितना ? आहाहा !***

और यह अनंतगुणो की एक समय की पर्यायों भी आकाश के प्रदेशों से अनंतगुणी है जितने गुण है उतनी ही पर्यायें है। आहाहा !

- ऐसा बड़ा समुद्र पड़ा है भगवान ! इसका जिसने आश्रय लिया इसके संसार का अंत आकर मोक्ष होता है। परंतु इसे छोड़कर अकेले व्यवहार का आश्रय ले, तब संसार और बंधन है और इसका आश्रय लेने पर अपूर्णता होने के कारण व्यवहार आये, इसका भी फल संसार है। आहाहा !

भव मिले। (श्रोता :- कहीं ऊंचा भव तो मिले न ?) भव अर्थात ऊंचा कहना किसे ? (श्रोता :- तीर्थंकर का) ***तीर्थंकर प्रकृति को जहर का वृक्ष कहा है। कठिन (बात !) आहाहा ! एक सौ अड़तालीस प्रकृति, समयसार में पीछे आता है यह जहर का वृक्ष है, अमृत का वृक्ष तो भगवान है अंदर।***

जैसे आम के वृक्ष में आम फले, आम पके, इसीप्रकार भगवान के वृक्ष में तो अमृत पकते हैं। - ऐसा वह अमृत का वृक्ष है और प्रकृति जो है एक सौ अड़तालीस

यह तो जहर का वृक्ष है - ऐसा कहा है। आहाहा ! विष वृक्ष - ऐसा कहा है। कलश में है।

यह तो शांति और धीरज का काम है, बापू ! आहाहा ! इसने अनंतकाल में वस्तु ही पूरी जो पूर्णानंद और पूर्ण शक्ति का संग्रहालय धाम... ऐसे ध्रुव धाम को इसने छुआ ही नहीं। ध्रुवधाम की इसने कीमत की ही नहीं। आहाहा ! त्रिकाली ध्रुव की इसे महिमा आई नहीं। त्रिकाली ध्रुव की आश्चर्यता इसे लगी नहीं। आहाहा !

व्यवहार की आश्चर्यता और महिमा और इसमें उलझ गया, संसारिक व्यवहार की यहाँ बात नहीं। संसार का जो व्यवहार धंधा व्यापारादि यह तो अकेला पाप (है) आहाहा ! यह तो जिनवाणी में कहा हुआ निश्चय सहित का व्यवहार भी (बंध का कारण), जिसे निश्चय नहीं, उसे जो व्यवहार है आहाहा ! उसे तो अकेला संसार का परिभ्रमण है। आहाहा !

`शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर इसका उपदेश प्रधानता से किया है' इसका अर्थ व्यवहार का उपदेश गौणरूप से है। यह मुख्यरूप से है। क्योंकि इसके आश्रय से मोक्ष होता है इसलिए ! आहाहा !

क्या कहा ? इसलिये कहते हैं कि `शुद्धनय भूतार्थ है' - त्रिकाली सत्य वह ही सत्यवत् है। आहाहा ! त्रिकाली सत्यानंदप्रभु ! सत्... आनंद... पूर्ण यही सत्यार्थ यह पदार्थ वस्तु है। पर्याय वस्तु है। रागवस्तु है। परंतु वास्तव में यह वस्तु त्रिकाली नहीं, और इसके आश्रय से कदाचित सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा ! यह तो अव्वलदोम की बातें है भाई !

शुद्धनय तो भूतार्थ है। भूत अर्थात विद्यमान पदार्थ त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक। जैसे पानी का प्रवाह - ऐसा बहता है। इसीप्रकार यह ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... - ऐसा ध्रुवरूप बहता है। आहाहा ! पानी का प्रवाह जो होता है। बाढ़ आती है न घोड़ा पूर, घोड़ा की ऊँचाई प्रमाण पानी आता (है) ऊपर बीस-पच्चीस इंच बरसात आ गई हो और चारों तरफ से नदी-नालों का पानी एकत्र हो... इतना इतना पानी का दल चला आता इस प्रकार, यहाँ सूखी जमीन हो, ऊपर से बाढ़ चली आती (है) हमने तो गाम में देखा है न ? उमराला! बड़ी नदी है वहाँ, कुछ बरसात न हो धूल उड़ती हो नदी में, वहाँ ऊपर से तेज बाढ़ आती थी। वृद्ध आवाज दे लड़कों को... लड़कों बाहर निकल जाओ बाहर, पानी आता है घोडापूर (बड़ा पानी का दल) आता है ऊपर से वहाँ... बरसात की बूंद भी न हो, परंतु ऊपर (गाँवों में) बरसात आयी हों बरसात समझे पानी, पानी का दल इतना इतना ऊँचा हो, ऊँचा दल चला आये। आहाहा ! यदि जल्दी न

करें तो इसमें लड़के बह जायें। यह इस प्रकार दल जाता है। यह भगवान ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... यह - ऐसा जाता है। आहाहा ! अरे ऐसी बातें।

इस देह में प्रभु विराजते हैं। एक समय की पर्याय बिना की जो वस्तु है, यह ध्रुव है, अभेद है सामान्य है, एकरूप है, सादृश्य स्वरूपी है, पूर्णस्वभावी है, यह इसी न इसीप्रकार ध्रुव भूतकाल में रहा है और भविष्य में रहेगा यह दूसरी बात, परंतु यह तो ध्रुव वर्तमान ही ध्रुव है, आहाहाहा ! इस ध्रुव वस्तु का अवलम्बन लेकर मुख्यता से इसका उपदेश करने का कारण यह भूतार्थ है, विद्यमान पदार्थ है। त्रिकाली सत् ध्रुव वस्तु है। यह सत्य है। आहाहा ! इसकी अपेक्षा से पर्याय जो अवस्था है इसे गौण करके असत्यार्थ कहने में आयी है। पर्याय `है', नहीं - ऐसा नहीं।

इसे मुख्य कहकर सत्यार्थ भूतार्थ है इसका आश्रय करने से सम्यग्दृष्टि हो सकते हो। देखा ! अभी तो पहला सम्यग्दर्शन, धरम की पहली सीढ़ी... आहाहा ! त्रिकाली ध्रुव... सरल भाषा में तो बहन की भाषा यही थी। उसमें आता है पियूष में है, आध्यात्म पियूष में ऊपर शब्द है। बताया था मोहनलालजी ! `जागता जीव विद्यमान है' ऊपर है। यह तो है परंतु यह तो उसमें अध्यात्म पियूष है न इसमें है इसमें शीर्षक में पढ़ा था परंतु (`जागृत जीव विद्यमान है') (जागता जीव खड़ा है) अर्थात ?

जागता अर्थात ज्ञायक जीव... ज्ञायक जीव... ज्ञायक यह खड़ा है अर्थात यों का यों ध्रुव है न ? यह सरल गुजराती भाषा। आहाहा ! ध्रुव है और ज्यों की त्यों विद्यमान एक वस्तु पूरी है वह ध्रुव है। इसलिये यह ध्रुव है वह विद्यमान उसमें बदलाव होता नहीं, इसमें पर्याय भी होती नहीं, ऐसे ध्रुव में पर्याय भी नहीं। आहाहा ! दशा है और पर्याय जो है वह तो हल चलवाली, परिणतिवाली, पलटनेवाली वस्तु जो है यह तो हलचल बिना की ध्रुव... इसका आश्रय करने से... है न ? सम्यग्दृष्टि हुआ जा सकता है। आहाहाहाहा ! - ऐसा है। उसे जाने बिना...।

जागतो ज्ञायकभाव-ध्रुवभाव-सामान्य स्वभाव भाव त्रिकाल, इसे जाने बिना जब तक जीव व्यवहार में मग्न है, आहाहा ! पर्याय में राग की मन्दता आदि में मग्न है, तब तक आत्मा का ज्ञान श्रद्धान (रूप) निश्चय सम्यग्दर्शन हो सकता नहीं। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प जो है मंदराग, इसमें जो मग्न है, व्यवहार में मग्न है, तब तक उसे सत्यदर्शन परमतत्व स्वरूप का सत्यदर्शन प्रतीति उसे होती नहीं। आहाहाहा !

कहो समझ में आता है कि नहीं कुछ ? दिनेश भाई ! समझ में आता है कि नहीं यह ? कल पूंछा था भाई का नाम क्या है ? कि दिनेश भाई ! जवाहर

भाई ! आहा ! ऐसी वस्तु बापा मिलना मुश्किल है। कहा ना इसका उपदेश ही कहीं विरल है। आहाहा ! गांव गांव में यह व्यवहार का उपदेश, व्यवहार का उपदेश और `व्यवहार में जहाँतक मग्न है, तब तक उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं' आहाहा ! तब तक उसे धर्म की शुरूआत होती नहीं, वृद्धि होना, स्थिर होना और बढ़ने की बात तो बाद में, आहाहा !

धरम टिके और धर्म बढ़े यह तो बाद में, परंतु प्रथम जो व्यवहार में मग्न है उसे निश्चयसम्यग्दर्शन, धर्म की शुरूआत ही होती नहीं। आहाहाहा !

(श्रोता :- ***व्यवहार करते-करते निश्चय होता ? बिलकुल बात ही झूठी है यह तो... व्यवहार की रुचि छोड़कर और त्रिकाली की रुचि करे और अनुभव करे, तब सम्यग्दर्शन होता है।*** आहाहा ! इसीलिये तो कहा `जबतक इसे जाने बिना जब तक जीव व्यवहार में मग्न है' आहाहा ! उसकी बुद्धि ही वर्तमान पर्याय और राग ऊपर ही है। इसमें यह मग्न है बस। अंदर वस्तु ध्रुव चिदानंद भगवान है, उसकी तरफ इसकी नजर ही नहीं उसका इसे आश्रय नहीं, इसका इसे अवलम्बन नहीं उसकी इसे महिमा नहीं। व्यवहार की क्रिया करे तो बस इसमें, ओहोहो ! रस छोड़ा, इसने इतने रस छोड़े, और अकेला बाजरा का एक खाखरा ही खाता है, दूसरा नहीं और अमुक। अब इसमें भी क्या हुआ ?

(श्रोता :- आप तो कहते हो खा सकता है न ?) खा सकता है यह बात नहीं, परंतु खाने का इसका भाव... इतना खाना है हमको, बात करते थे वे वहाँ कुरावड़ में, कम खाना, कम करना ऐसी क्रिया करते-करते समकित होगा... आहाहा ! छुल्लक हुआ इसके पूर्व यहाँ आ चुका था, विद्यार्थी अवस्था में फिर बोलता था - ऐसा कि महराज मैं तो छात्र हूँ, यदि छात्र हो परंतु छात्र है तो बोलते तो हो तुम - ऐसा... तुम्हारे साथ इसप्रकार हमें बात किस प्रकार करना ? ऐसी क्रिया करे। परिषह सहन करे, उपसर्ग आये, सहन करे, ऐसी क्रिया करे उसे सम्यग्दर्शन हो, फिर। अरे ! धूल में न हो सुनो न। आहाहा !

यह व्यवहार में मग्न है तब तक निश्चय सत्य के दर्शन एवं सम्यग्दर्शन उसे होता नहीं। आहाहा ! व्यवहार के विकल्प और पर्याय की दृष्टि में भगवान पूर्णानंद का नाथ उसे दिखता नहीं। आहाहा ! व्यवहार में मग्न है, यह व्यवहार, संसार के व्यवहार की बात नहीं, हसमुख भाई ! तुम्हारा धंधा और यह पाप इसकी बात नहीं यह। व्यवहार अर्थात यहाँ दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, अनशन, उनोदर, कायक्लेश, रस-परित्याग विनय... विनय... विनय... देव-गुरु-शास्त्र का विनय।

(श्रोता :- विनय तो धर्म का मूल है - ऐसा कहा है) यह विनय कौन सी ?

स्वभाव के भान सहित की, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की विनय यह व्यवहार में ऊँची कहलाती है। निश्चय से तो अपनी विनय है। पूर्णानंद के नाथ की विनय तो तभी कहलाये पूर्ण आनंद स्वरूप है - ऐसा उसके प्रतीति में स्वीकार में आये तब उसने आत्मा का विनय किया - ऐसा कहलाये। और पूर्ण है (जो) उसे अपूर्ण और रागवाला माने, आहा ! तब तक उसने आत्मा की अविनय और अनादर और असातना की। ऐसी बात हैं प्रभु ! मार्ग क्या हो भाई !

इस ध्रुव त्रिकाली को जाने बिना, जहाँ तक जीव व्यवहार में मग्न है। आहाहाहा ! अब तो यही बहुत कहते हैं कि व्यवहार करो, करते-करते निश्चय होगा। आहाहा ! जहर पियो, पीते पीते अमृत की डकार आयेगी, यह तो - ऐसा हुआ ? आहा ! लहसन खाते खाते कस्तूरी की डकार आयेगी - ऐसा है यह। आहाहा !

इसे जाने बिना जबतक यह जीव - ऐसा क्यों कहा ? कि इसे कर्म का जोर है इसलिये यह मग्न है - ऐसा नहीं यह अपने उल्टे पुरुषार्थ से व्यवहार में मग्न है। समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा कि दर्शनमोह का जोर है इसे, अतः व्यवहार में मग्न है। दर्शनमोह कर्म है इसके साथ तुम्हें क्या काम है तुम्हें। आहाहा !

तुम्हारा पूर्ण स्वरूप भगवान चैतन्य ! चैतन्यभगवान प्रभु ! पूर्णानंद प्रभु, इसका आश्रय न करके इसका आदर न करके, पामर जो पर्याय एवं राग, इसका आदर किया, आहाहा ! - ऐसा व्यवहार में मग्न (जीव) को सच्चा सत्यदर्शन समकित होता नहीं आहाहा ! समझ में आया ?

और इसका दुःख मिटता नहीं। आहाहा ! तब तक आत्मा का ज्ञान श्रद्धान निश्चय अर्थात क्या कहा ? व्यवहार में मग्न है तब तक इसे सच्चा समकित होता नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! तब तक आत्मा का ज्ञान और श्रद्धानरूप निश्चय समकित, आत्मा का ज्ञान और आत्मा की श्रद्धा (बिना), व्यवहार में मग्न है तब तक निश्चय आत्मा का ज्ञान और श्रद्धान उसे होता नहीं।

यहाँ - ऐसा आशय जानना लो, ग्यारवीं गाथा बहुत दिन चली, कितने दिन हुये। (श्रोता : ग्यारह) ग्यारह ! आहाहा ! यह तो मूल गाथा है। जैनदर्शन का प्राण है यह गाथा आहाहा ! समझ में आया ?

तब यहाँ व्यवहार का निषेध किया और व्यवहार नहीं - ऐसा कहा, गौण अपेक्षा तो व्यवहार है कि नहीं कहीं ? कि नहीं ही ! तो सुन। यह।

गाथा - १२

अथ च केषाञ्चित्कदाचित्सोऽपि प्रयोजनवान्। यत :-

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारेदसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।१२।।

शुद्धः शुद्धादेशो ज्ञातव्यः परमभावदर्शिभि।
व्यवहारदेशिताः पुनर्ये त्वपरमे स्थिता भावे।।१२।।

अब, `यह व्यवहारनय भी किसी किसीको किसी काल प्रयोजनवान है, सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं है; इसलिये उसका उपदेश है' यह कहते हैं:-

देखै परम जो भाव उसको, शुद्धनय ज्ञातव्य है।
ठहरा जु अपरमभावमें, व्यवहारसे उपदिष्ट है।।१२।।

गाथार्थ :- [परमभावदर्शिभिः] जो शुद्धनय तक पहूँचकर श्रद्धावान हुए तथा पूर्ण ज्ञानचारित्रवान हो गये उन्हें तो [शुद्धादेशः] शुद्ध (आत्मा) का उपदेश (आज्ञा) करनेवाला [शुद्धः] शुद्धनय [ज्ञातव्यः] जाननेयोग्य है; [पुनः] और [ये तु] जो जीव [अपरमे भावे] अपरमभावमें - अर्थात् श्रद्धा तथा ज्ञानचारित्रके पूर्णभाव को नहीं पहूँच सके हैं, साधक अवस्था में ही- [स्थिताः] स्थित हैं वे [व्यवहारदेशिताः] व्यवहार द्वारा उपदेश करने योग्य हैं।

टीका :- जो पुरुष अंतिम पाक से उतरे हुये शुद्ध स्वर्ण के समान (वस्तु के) उत्कृष्ट भाव का अनुभव करते हैं उन्हें प्रथम, द्वितीय आदि पाकों की परंपरा से पच्यमान (पकाये जाते हुये) अशुद्ध स्वर्ण के समान जो अनुत्कृष्ट मध्यम भाव हैं उनका अनुभव नहीं होता; इसलिये, शुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से जिसने अचलित अखण्ड एकस्वभावरूप एक भाव प्रगट किया है - ऐसा शुद्धनय ही, सबसे ऊपर की एक प्रतिवर्णिका (स्वर्ण-वर्ण) समान होने से, जानने में आता हुआ प्रयोजनवान है। परंतु जो पुरुष प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाकों (तावों) की परंपरा से पच्यमान अशुद्ध स्वर्ण के समान जो (वस्तु का) अनुत्कृष्ट मध्यमभाव का अनुभव करते हैं उन्हें अंतिम

ताव से उतरे हुये शुद्ध स्वर्ण के समान उत्कृष्ट भाव का अनुभव नहीं होता; इसलिये, अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला होने से जिसने भिन्न-भिन्न एक एक भावस्वरूप अनेक भाव दिखाये हैं - ऐसा व्यवहारनय, विचित्र अनेक वर्णमाला के समान होने से, जानने में आता (ज्ञात होता) हुआ उसकाल प्रयोजनवान है। क्योंकि तीर्थ और तीर्थ के फल की ऐसी ही व्यवस्थिति है। (जिससे तिरा जाये वह तीर्थ है; - ऐसा व्यवहार धर्म है और पार होना व्यवहारधर्म का फल है; अथवा अपने स्वरूप को प्राप्त करना तीर्थफल है।) अन्यत्र भी कहा है कि :-

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवो ! यदि तुम जिनमत का प्रवर्तना करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय-दोनों नयों को मत छोड़ो; क्योंकि व्यवहारनय के बिना तो तीर्थ-व्यवहारमार्ग का नाश हो जायगा और निश्चयनय के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायेगा।

भावार्थ :- लोक में सोने के सोलह वान (ताव) प्रसिद्ध हैं पन्द्रहवें वान तक उसमें चूरी आदि परसंयोग की कालिमा रहती है, इसलिये तबतक वह अशुद्ध कहलाता है; और ताव देते-देते जब अंतिम ताव से उतरता है तब वह सोलहवान या सौटंची शुद्ध सोना कहलाता है। जिन्हें सोलहवानवाले सोने का ज्ञान, श्रद्धान तथा प्राप्ति हुई है उन्हें पन्द्रह-वान तक का सोना कोई प्रयोजनवान नहीं होता, और जिन्हें सोलह-वानवाले शुद्ध सोने की प्राप्ति नहीं हुई है उन्हें तबतक पन्द्रह-वान तक का सोना भी प्रयोजनवान है। इसीप्रकार यह जीव नामक पदार्थ है, जो कि पुद्गल के संयोग से अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है। उसका, समस्त परद्रव्यों से भिन्न, एक ज्ञायकत्वमात्र का ज्ञान, श्रद्धान तथा आचरणरूप प्राप्ति - यह तीनों जिसे हो गये हैं उसे पुद्गलसंयोगजनित अनेकरूपता को कहनेवाला अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनवान (किसी मतबल का) नहीं है; किन्तु जहाँ तक शुद्धभाव की प्राप्ति नहीं हुई वहाँ तक जितना अशुद्धनय का कथन है उतना यथापदवी प्रयोजनवान है। जहाँ तक यथार्थ ज्ञानश्रद्धान की प्राप्तिरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई हो वहाँ तक तो जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है ऐसे जिनवचनों को सुनना, धारण करना तथा जिनवचनों को कहनेवाले श्री जिन-गुरु की भक्ति, जिनबिंब के दर्शन इत्यादि व्यवहारमार्ग में प्रवृत्त होना प्रयोजनवान है; और जिन्हें श्रद्धान-ज्ञान तो हुआ है किन्तु साक्षात् प्राप्ति नहीं हुई उन्हें पूर्वकथित कार्य, परद्रव्य का आलंबन छोड़नेरूप अणुव्रत-महाव्रत का ग्रहण, समिति, गुप्ति, और पंच परमेष्ठी का ध्यानरूप प्रवर्तन तथा उसीप्रकार प्रवर्तन करनेवालों की संगति एवं विशेष जानने के लिये शास्त्रों का अभ्यास करना इत्यादि व्यवहारमार्ग में स्वयं प्रवर्तन करना और दूसरों को प्रवर्तन कराना - ऐसे व्यवहारनय का उपदेश अंगीकार करना

प्रयोजनवान है। *व्यवहारनय को कथंचित् असत्यार्थ कहा गया है; किन्तु यदि कोई उसे सर्वथा असत्यार्थ जानकर छोड़ दे तो वह शुभोपयोगरूप व्यवहार को ही छोड़ देगा और उसे शुद्धोपयोग की साक्षात् प्राप्ति तो नहीं हुई है, इसलिये उल्टा अशुभोपयोग में ही आकर, भ्रष्ट होकर, चाहे जैसी स्वेच्छारूप प्रवृत्ति करेगा तो वह नरकादि गति तथा परंपरा से निगोद को प्राप्त होकर संसार में ही भ्रमण करेगा। इसलिये शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्ध आत्मा है उसकी प्राप्ति जबतक न हो तबतक व्यवहार भी प्रयोजनवान है - ऐसा स्याद्वादमत में श्रीगुरुओं का उपदेश है।

गाथा - ११, १२ पर प्रवचन

अब यह व्यवहारनय भी किसी किसी को किसी समय प्रयोजनवान है अर्थात ? `अथ च केषकेञ्चित्सोऽपि प्रयोजनवान यतः।' है न संस्कृत में यहाँ, किसी को कभी, किसी को कभी इसप्रकार। किसी किसी को और किसी समय जहाँ तक व्यवहार इसे होता है, निश्चय सहित व्यवहार होता है। आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ है; और पूर्ण नहीं अतः राग की मंदता का व्यवहार होता है, इसलिये किसी को, किसी किसी को अर्थात इस जीव को और किसी समय अर्थात जब तक निश्चयसहित व्यवहार होता है वहाँ तक। प्रयोजनवान अर्थात जाना हुआ प्रयोजनवान। इस अर्थ में बड़ा विरोध करते हैं। किसी किसी को किसी किसी समय प्रयोजनवान है इसका अर्थ संस्कृत टीका में जाना हुआ उस समय प्रयोजनवान है, आदरणीय नहीं। आहाहा !

स्वरूप की दृष्टि हुई है, ज्ञानचारित्रादि हुये और इसके साथ राग की मंदता का (एवं) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, व्रत का विकल्प होता है, इस समय जितना राग है और जितनी थोड़ी शुद्धता है और अशुद्धता है, उसको उससमय में उतना उसप्रकार से जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहा !

जाना हुआ प्रयोजनवान है, इसमें बड़ा विवाद है।

सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं, अर्थात कि व्यवहार नहीं ही... - ऐसा नहीं।

***व्यवहार के उपदेश से - ऐसा नहीं समझना कि आत्मा परद्रव्य की क्रिया कर सकता है, परंतु - ऐसा समझना कि व्यवहारोपदिष्ट शुभभावोंको आत्मा व्यवहारसे कर सकता है, पुनश्च इस उपदेश से - ऐसा भी नहीं समझना चाहिये कि आत्मा शुभभाव करने से शुद्धता को प्राप्त होता है, परंतु - ऐसा समझना कि साधक दशा में भूमिकानुसार शुभभाव आये बिना नहीं रहते।**

जबतक वीतराग दशा न हो, तब तक ज्ञानी को, मुनियों को, सम्यग्दृष्टि को भी अंतर के आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान होने पर भी, राग की मंदता का भाव उसे होता है। समझ में आया ? सर्वथा निषेध... व्यवहार नहीं है - ऐसा कहकर व्यवहार से निश्चय हो ऐसी बात नहीं। `निषेध करने लायक नहीं' अर्थात व्यवहार का निषेध (नहीं) किया अर्थात व्यवहार से भी लाभ हो, यह बात यहाँ नहीं आहाहा !

सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं, कथंचित निषेध अर्थात ? कि स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा निषेध करने लायक है परंतु (वह) वस्तु ही नहीं है - ऐसा नहीं। आहाहा ! मुनियों को भी सच्चे संतों को भी बीच में व्यवहार आता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि (आता है) इसलिये नहीं आता, इसप्रकार निषेध करने लायक नहीं, इसीप्रकार आता है अतः लाभदायक है - ऐसा (भी) नहीं। आहाहा !

इसमें कितना सीखना इसमें ? आहाहा ! (श्रोता :- थोड़े शब्द सीखना) यह तो बहुत कम शब्दों में आता है। सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं अर्थात ? कथंचित निषेध, अर्थात ? निश्चय की अपेक्षा व्यवहार निषेध करने लायक है। परंतु व्यवहार, व्यवहार अपेक्षा वहाँ आता है तब होता है, परंतु वह जाना हुआ प्रयोजनवान है, परंतु गाथा के अर्थ में - ऐसा आयेगा अतः सभी लोग किंकतर्व्य विमूढ हो गये, साहूजी ने प्रश्न किया था दिल्ली (में) यह गाथा आयेगी इसकी।

गाथा - १२

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।१२।।
देखै परम जो भाव उसको, शुद्धनय ज्ञातव्य है।
ठहरा जु अपरमभावमें, व्यवहारसे उपदिष्ट है।।१२।।

यह व्यवहार का उपदेश है न, इसके कितने ही अर्थ अभी चलते हैं। अभी एक बड़ा लेख उसमें लिखा है। दक्षिण देशमें से कोई है, देखो ! व्यवहार का उपदेश करना, व्यवहार का उपदेश करना। `अपर में ट्ठिदा भावे' अर्थात जहाँ तक चौथा, पांचमा, छठवां है तब तक उसे व्यवहार का उपदेश करना... ऐसी बड़ी व्याख्या की है अरे, किसीने। आहाहा ! - ऐसा नहीं। यह दूसरी तरह है देखो ! - ऐसा कहना है।

गाथार्थ :- जो शुद्धनयतक पहूँचकर श्रद्धावान हुए। पूर्णज्ञान चारित्रवान हो गये

अर्थात निर्विकल्पता में स्थित है, निर्विकल्प दशा होगई अथवा पूर्णदशा हो गई, शुद्धनय तक पहुंचकर केवलज्ञान हुआ तब शुद्धनय पूर्ण हो जाना। ***केवलज्ञान हो तब शुद्धनय की पूर्णता हो जाना... यह आस्त्रव अधिकार में है। यह आस्त्रव अधिकार में है, केवलज्ञान हो तब शुद्धनय पूर्ण हुआ, अन्यथा तो शुद्धनय तो ध्रुव का आश्रय वह है। परंतु आश्रय लेना बंद हुआ जब, तब शुद्धनय पूर्ण हुआ - ऐसा कहा जाता है। आहाहा ! बहुत फर्क है।***

जो शुद्धनयतक पहुंचा जो शुद्धनय तक पहुंचा अर्थात सर्वज्ञ हुये और दूसरी अपेक्षासे निर्विकल्प ध्यान में गये, वह श्रद्धावान हुये (तथा) पूर्णज्ञान-चारित्रवंत हो गये उसको तो शुद्ध का उपदेश करनेवाले शुद्धनय जानने योग्य है। उसको अब शुद्धनय जानने योग्य है - ऐसा कहते हैं। जानने योग्य अर्थात उन्हें अब शुद्धनय का विषय (आश्रय करना) रहा नहीं। पूर्ण अखण्ड आनंद हो गया। आहाहा !

वह बड़ा झगड़ा (इस) गाथा में... स्थानकवासीमें से प्रथम झगड़ा आया था। वह दरियापुरी नहीं ? वह नटु नटु दरियापुरी, बहुत समय पहले दरियापुरी नहीं ? वढ़वान (का) नटु के पिताजी का नाम क्या ? हाँ ? कपूरभाई, कपूरभाई संवत चौरानवें में यहाँ स्वाध्याय मंदिरमें आये थे। कपूरभाईका लड़का नटु था, पहले यह पहले देखो ! यह बारमी गाथा में... स्थानकवासी था। स्थानकवासी को बारमी गाथा और यह समयसार है कहाँ ? फिर भी सभी इसका आधार ले। श्वेताम्बरों में भी आधार लेते है, दिगम्बर में भी एकांत पक्षवाला है, यह इसका आधार लेते हैं। देखो ! व्यवहार, व्यवहार का उपदेश करना... व्यवहार का उपदेश करना, किसको ? कि जो निचली दशा में, केवलज्ञान नहीं हुआ ऐसे जीवों को व्यवहार का ही उपदेश करना।

ऐसा नहीं... अर्थफेर बड़ा है। धीरे से समझना चाहिए। जिसको अंतर के अनुभव में पूरण दशा हो गई, ***उसे तो शुद्ध का उपदेश करनेवाला शुद्धनय, अर्थात तब पूर्णदशा हो गई अर्थात जानने योग्य (पूर्ण) हो गया बस। उसे अब कहीं आदर करने लायक कि शुद्धनय आश्रय करने लायक है - ऐसा रहा नहीं।***

पुनश्च जो जीव अपरमभाव अर्थात कि श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र के पूर्णभाव को पहुंच सकते नहीं, और साधक अवस्था में ही स्थित है, उसकी पर्याय में अपूर्ण शुद्ध है, रागादिक है। इसलिये व्यवहार द्वारा (कहा) अर्थात कि उससमय वह जानने लायक है। व्यवहार का उपदेश करने के लिये उस समय वह जानने लायक है। यह टीका में आयेगा। यह तो शब्दों के पद की रचना में `ववहारदेसिदा' शब्द आ चुका है। परंतु उसका भाव... तब वह जहाँ तक पूर्ण केवली हुआ नहीं उसे स्वद्रव्य के आश्रय

से दर्शनज्ञान, चारित्र हुआ है, परंतु पर्याय में अभी अपूर्णता शुद्ध और अशुद्धता है, उसे वह जानना यह प्रयोजनवान है। उसे वह उस प्रकार से वहाँ जानना वह उचित है। समझ में आया ?

इस ग्यारहवीं गाथा में भी बहुत विरोध (है), प्रत्येक में विरोध है। यह प्रश्न किया था, दिल्ली में साहुजी ने... पण्डित लोग उन्हें सिखायें और यह... देखो ! व्यवहार का उपदेश निचली दशावालों को चौथे, पांचवें, छठवेंवालों को ही करना। व्यवहार का ही उपदेश करना। केवलज्ञान हो जाय उसके बाद नहीं - ऐसा कहा है न ? कहा ? परंतु इसप्रकार इसका अर्थ नहीं। आहाहाहा ! इसका अर्थ टीका में देखो ! कहा आयेगा। टीका में आता है देखो ! यह `ववहारदेसिदा' का अर्थ टीका में आता है बाद में। अंत में है। `उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है' टीका के प्रथम पेराग्राफ की अंतिम चौथी पंक्ति। देखो, प्रथम पेराग्राफ की (अन्त से) चौथी पंक्ति। `जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है' संस्कृत टीका है।

व्यवहार का उपदेश करना - ऐसा नहीं। यह तो भाषा है। परंतु उस समय व्यवहार रागादि की मंदता हो उतना उस समय जिस समय शुद्ध का आश्रय लिया है, दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ है, फिर भी पूर्णता नहीं। ***इसलिये राग की मंदता एवं शुद्धता में अपूर्णता होती है। उसे उस उस समय, जितनी शुद्धता की अपूर्णता और अशुद्धता का भाव, उस समय उसे जानना प्रयोजनवान (है), दूसरे समय शुद्धि बड़े अशुद्धता घटे उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान (है), तीसरे समय शुद्धि बड़े, अशुद्धि घटे तब उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान (है) सूक्ष्मबातें है बापू ! यह तो...*** आहाहा !

ग्यारह और बारह (गाथा) में बड़ा विरोध होता है, ग्यारहवीं (गाथा में) जो निश्चय कहा, वह निश्चय का आश्रय हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, परंतु पूर्णता हुई नहीं। उसे वर्तमान पर्याय में थोड़ी शुद्धता और अशुद्धता दोनों वर्तती है, उसे जानना यह प्रयोजनवान है। आदर करने योग्य तो त्रिकाली का आदर है। आहाहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बातें है।

यह `ववहारदेसिदा' का अर्थ में उल्टी प्ररूपणा... टीका में अर्थ अमृतचन्द्राचार्य `व्यवहारदेसिजा' का अर्थ क्या ? तब टीका में कहा है कि उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है। `दिखाना एवं उपदेश करना' - ऐसा इसका अर्थ है ही नहीं। आहाहा !

वैसे तो बंध कथा का पाठ आया है पहले, आत्मा में बंध कथा तो विसंवाद उत्पन्न करती है तब (क्या ?) बंध कथा विसंवाद उत्पन्न करती है ? गाथा तो ऐसी है। भाव बंध है... स्वरूप अबंध है। स्वरूप भगवान उसमें जो भाव बंध है वह विसंवाद

अर्थात एक में दूसरे को जोड़ना में बिगाड़ होता है। यह जुड़ने (का) भाव बंध है। आहाहा ! यह बंध कथा अर्थात बंधभाव, विसंवाद उत्पन्न करती है - ऐसा है। बंध कथा क्या विसंवाद उत्पन्न करती है ? पाठ में बंध कथा है। तीसरी गाथा, कथा का अर्थ तो वाणी का उसका जो वाच्य है - बंधभाव वह विसंवाद, विसंवाद उत्पन्न करती है।

इस प्रकार यहाँ `ववहारदेसिदा' व्यवहार का उपदेश, यह तो शब्द है। उसका वाच्य कि जो उस समय शुद्धता कम और अशुद्धता (है) इसका ज्ञान करना, उसका नाम व्यवहार दिखाया, अर्थात व्यवहार देखा, अर्थात जाना यह (जाना हुआ) प्रयोजनवान है। आहाहा ! कहो समझ में आता है कि नहीं छोटाभाई ! - ऐसा कहीं मिले - ऐसा नहीं कलकत्ता में कि सभी जगह मोहनलालजी कहते हैं। यह कहीं नहीं - ऐसा है ही नहीं, बहुत बदला बदली हो गई बदला बदली हो गई। इन लोगों को बिचारों को पता नहीं और यह वस्तुस्थिति ऐसी है।

कि शुद्धनय जानने योग्य है, पुनश्च जो जीव अपरमभाव अर्थात श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र में पूर्णभाव हुआ नहीं - पूर्णभाव हुआ नहीं। वह पूर्णभाव तक पहुंच सके नहीं। साधक अवस्था में हैं, स्थित हैं उन्हें व्यवहार आता है, उसे जानना, यह प्रयोजनवान है।

`व्यवहारदेसिदा' का अर्थ यह है। आहाहा ! दिल्ली में यह प्रश्न किया था, साहुजी ने... लोग बाहर में बिचारे सभी ने... यह प्रश्न लाये थे। स्थानकवासियों के लिये, देरावासी तो लाते ही हैं वह, दिगम्बर भी यह गाथा बताते है... देखो व्यवहार का उपदेश करना... व्यवहार का उपदेश यहाँ करना (कहा) उपदेश की व्याख्या (का प्रयोजन) नहीं प्रभु ! यह तो शब्द है, इसका वाच्य तो टीका में कहा है उस समय जितना राग होता उतना उसे जानना प्रयोजनवान है। आहाहा ! समझ में आया ? अब इसमें (समझने की) कहाँ फुरसत होती है। इसमें डॉक्टर को इन्जेक्सन देने में सभी, (समय जाता) परंतु यह इन्जेक्सन अलग जाति का है। आहाहा !

कहते हैं प्रभु ! एकबार सुनो कि आत्मा जो है वस्तु प्रभु, यह अतीन्द्रिय आनंद और अतीन्द्रियज्ञान की पूर्ण मूर्ति है। प्रभु ! इसका जिसने आश्रय लिया, इसका अवलम्बन लिया उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। उसके आश्रय से दर्शन हो, उसके आश्रय से ज्ञान हो, उसके आश्रय से चारित्र होता (है) वह तो निश्चय। परंतु जिसे ज्ञान चारित्र श्रद्धादि अभी पूर्ण हुये नहीं, केवलज्ञान की स्थिति हुई नहीं, परमअवगाढ़ समकित नहीं, परम केवलज्ञान नहीं, परम यथाख्यात स्थिर चारित्र नहीं। ऐसे जीव को निचली दशा में जो राग की मंदता और शुद्धता की अपूर्णता दिखती है, उसे जानना यह व्यवहार से प्रयोजनवान कहा है। समझ में आया ?

बहुत से तो इसका अर्थ - ऐसा करते हैं। पंडित साधु, गृहस्थ हो तो वह भी, बहुत बड़ा लेख लिखते हैं। कोई मोतीचन्द्र नाम का कोई है वहाँ फलटन का है कोई ! (श्रोता :- यह तो निमित्त को ही मानता है) है न बेरिस्टर है उस दिन, यह विरोध किया था, फलटन गये तब, व्याख्यान सुनने के बाद (कहते) व्यवहार से इसप्रकार...

अरे ! प्रभु ! भाई सुनो बापा ! व्यवहार उसे कहें कि जिसने स्व चैतन्य प्रभु उसका आश्रय लेकर जिसे निश्चय सत्य दर्शन ज्ञान चारित्र हुआ है उस जीव को पूर्णदशा नहीं, इसलिये वहाँ व्यवहार... राग की मंदता का (भाव) आये बिना रहता नहीं। यह राग की मंदता को जानना यह व्यवहारदेसिदाः का अर्थ है। यह इसे जानना यह प्रयोजनवान है, यह व्यवहार दिखाने के लिये प्रयोजनवान है। आहाहा !

अरे ! कहाँ जगत रुक गया है न, रुक गया (है), अभी तो शास्त्र के अर्थ करने में विपरीतता। अंतर की दृष्टि तो है नहीं। आहाहा ! यह कहें `ववहारेदसिदा' व्यवहार दिखाया फिर अर्थ - ऐसा है और देखो ! देसिदा अर्थात उपदेश करने योग्य इसप्रकार, परंतु इसकी व्याख्या ? जिस धर्मी को अंतर स्वभाव के आश्रय से धर्म प्रगटा है, सत्य दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, परंतु जिसकी दशा पूर्ण हुई नहीं, इसलिये उसे उस समय की राग की मंदता का सहचररूप व्यवहार आये बिना रहता नहीं। इसे जाना हुआ... निश्चय है वह आदरणीय है और व्यवहार है वह जाना हुआ प्रयोजनवान है, जानने लायक है।

निश्चय आदरणीय है एवं व्यवहार आदरणीय है, तब तो दो भाग किये क्यों ? आहा...हा ! दो नय और दोनों का विषय (एक) क्यों हुआ ? जो दोनों आदरणीय हों दोनों विषय (अ) भिन्न (न) होना चाहिए। समझ में आया ? आहा ! इसका अर्थ यह हुआ कि एक निश्चय जो स्वभाव के आश्रय है, वह आश्रय आदरने लायक है और जितनी राग की मंदता का भाव, पूर्ण वीतराग हुआ नहीं, अतः आये बिना रहता नहीं। परंतु उस समय उसे यह जानना कि यह है, बस इतना, आदरणीय है और इससे लाभ है, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। आहा ! समझ में आया ? आहाहा !

अब गाथा का अर्थ करने में बड़ी भूल, अब इसलिए जायें कहाँ ? आहाहा ! - ऐसा अर्थ करते न... वह विचारे साधारण व्यक्ति चलो व्रत लो एवं प्रतिमा ले लो। परंतु तुम्हारी प्रतिमा अंक बिना के शून्य है। (प्रथम) सम्यग्दर्शन ही नहीं जहाँ, वहाँ प्रतिमा कहाँ से आ गई ? महाव्रत ले लो डरो नहीं - ऐसा एक व्यक्ति कहते थे, परंतु क्या कहते यह ? बाहर से ले लेना परंतु बाहर से तो अनंत बार लिया है, नौवीं ग्रेवेयक गया अनंतबार, अभी तो ऐसा महाव्रत कहाँ है ? इससे तो ऊँचे

भाव तब थे, अब तो कहाँ ? यह तो उसके लिये किया गया चौका (लगता) और आहार लेते है सभी। निर्दोष मिलना मुश्किल है। वह चौका लगाये और यह लें, व्यवहार ही नहीं अभी तो (पहले जैसा)।

श्रोता :- रात के समय... नींद कितने घण्टे आती होगी ?

उत्तर :- परंतु यह तो एक तरफ रहा, मुनि को नींद ही पौन सेकेण्ड के अंदर की होती, अभी तो (यह) छह-छह सात घण्टे सोते हैं, तब द्रव्यलिंग का भी पता नहीं, भाव (लिंग) तो है ही कहाँ ? निश्चय सम्यग्दर्शन का... यह व्यक्तियों के लिये नहीं प्रभु हाँ ! यह तो वस्तु की स्थिति यह है। व्यक्ति की बात नहीं, उसकी जिम्मेदारी तो उसकी है न ? (अरे !) यह भगवान है भाई ! भूला है परंतु भगवान है। इस भूल से इसे दुःख होगा, इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा ! व्यवहार करने से निश्चय होगा, ऐसी मान्यता तो मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व है यह महा संसार है।

यहाँ तो मुनि को जो पंचमहाव्रत का विकल्प उठे, उसे भी जगपंथ और संसार कहा। आहाहाहाहा ! तब व्यवहार की क्रिया करते... करते निश्चय हो, यह तो बड़ा जगपंथ - मिथ्यात्व है। आहाहा ! मिथ्यात्व यह जगपंथ है और मिथ्यात्व जाने के बाद राग रहे वह भी जगपंथ है। (श्रोता :- राग का फल ही भव है) आहाहा ! तो फिर अभी शुभ करें, शुभ करते करते आगे जा सकते है (उससे) शुद्ध होगा। यह पहला सोपान है, अशुभ टालकर शुभ (में) आना फिर शुभ टालना यह सीढ़ी है - ऐसा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि मानता है। आहाहा !

यह तो सम्यग्दर्शन होने के बाद, अनुभव होने के बाद... उसे पहले अशुभ छूटे और शुभ में आये और फिर शुभ छोड कर शुद्ध में आये ऐसी बात है। परंतु अभी यहाँ पता न चले, व्यवहार श्रद्धा का पता नहीं मिले और अशुभ पहले टले फिर शुभ आये। उसे तो सभी अशुभ ही है उसे तो। मिथ्यात्व है यही बड़ा अशुभ है। आहाहा ! बहुत कठिन बातें !

इस शब्दार्थ में - ऐसा भाव है। व्यवहारदेसिदा कहा है न ? अर्थात उसका अर्थ यह हुआ कि व्यवहार दिखाया है। बस ! उस समय पूर्ण चारित्र नहीं और अपूर्ण चारित्र में है, दर्शन-ज्ञान हुआ, परंतु चारित्र पूर्ण हुआ नहीं ऐसे साधक जीव को है न ? साधक अवस्था में ही, सिद्ध हो गये, केवली हो गए उन्हें कुछ नहीं, मिथ्यादृष्टि को कुछ नहीं।

क्या कहा ? सर्वज्ञ हुये उनकी यहाँ चर्चा नहीं, उसीप्रकार मिथ्यादृष्टि है उनकी भी यहाँ चर्चा नहीं। यह तो साधक अवस्था में... आहाहा ! जिसने यह आत्मा आनंदस्वरूप का साधन किया है, अंतर के आश्रय से जिसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र अंशरूप प्रगटा है।

परंतु साधक अवस्था है वहाँ बाधक अवस्था अभी विद्यमान है। साधक वहाँ तक कहें उसे कि (जिसे) बाधक अवस्था है। यह बाधक अवस्था है उसे व्यवहार कहकर जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है। आहाहा ! अरेरे ! क्या हुआ। भगवान का विरह हुआ, त्रिलोकनाथ यहां रहे नहीं, केवलज्ञान की उत्पत्ती रही नहीं, अवधि-मनःपर्यय से कुछ प्रत्यक्षज्ञान हो सके ऐसी वस्तु रहीं नहीं। आहाहा ! और सभी (ओर) विरोध उठा (है)।

अर्थात कहते हैं... श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के पूर्णभाव को नहीं पहुंच सका इसप्रकार, मूल तो चारित्र की पूर्णदशा को पाया नहीं और ज्ञान की पूर्णदशा को पाया नहीं इसप्रकार। परंतु श्रद्धा तो श्रद्धा हुई है। समझ में आया ? श्रद्धा भी परमावगाढ़ हुई नहीं, पूर्ण केवलज्ञान हुआ नहीं, चारित्र यथाख्यात हुआ नहीं, ऐसे पूर्ण को नहीं पहुंच सका, साधक वर्तमान बाधक अवस्था में वर्तता है अर्थात कि बाधक अवस्था का नाश किया है मिथ्यात्व का, परंतु दूसरी बाधक अवस्था राग की अभी बाकी है... आहाहा ! समझ में आया ?

साधक हुआ है, स्वरूप शुद्धचैतन्य है उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान हुआ है, साधक है, उसे पूर्ण दशा नहीं, ऐसी अवस्था में, व्यवहार द्वारा अर्थात व्यवहार उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। उसे व्यवहार आता है, इसलिये जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा ! अब ऐसे सभी अर्थ करना... यह लोग - ऐसा कहते हैं कि सोनगढियों ने अर्थ पलटा है, सभी ख्याल है न (श्रोता :- यह तो - ऐसा ही कहें न !)

ऐसा ही कहते हैं क्या हो ? आहाहा ! यहाँ तो प्रभु ! बारहवीं गाथा में भगवान कुंदकुंदाचार्य का आशय यह है कि... उसका स्पष्टीकरण टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य ने स्पष्टीकरण किया है कि भाई ववहारदेसिदा का अर्थ क्या ? कि उस समय राग की मंदता साधक जीव को वर्तती है, उसे जानना वह प्रयोजनवान है - ऐसा व्यवहारदेसिदा का अर्थ यह है, आहाहा ! आयेगी टीका... यह तो शब्दार्थ में (स्पष्टीकरण थोड़ा हुआ)

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. ४६ गाथा-१२ ता. २९-७-७८ शनिवार अषाढ वदी-१० सं.२५०४

समयसार बारहवीं गाथा।

'जो पुरुष अंतिम पाक से उतरे हुए शुद्ध स्वर्ण के समान उत्कृष्ट भाव का अनुभव करते है' जैसे सोना सौ प्रतिशत और सोलहवान का हो, इसप्रकार शुद्धस्वर्ण

समान वस्तु के उत्कृष्ट भाव को आत्मा के उत्कृष्ट भाव को अनुभव करता है। (ध्यान रखो ये हिम्मतभाई ! कहाँ नजर जाती तुम्हारी, यहाँ क्यां कहा जाता है ? इसमें बहुत ज्यादा (चला) गया, बहुत चला गया बहुत।

उत्कृष्ट क्यों कहा ? कि स्वर्ण जैसे सोलहवान का पूर्ण हो, इसप्रकार जिसकी पूर्णदशा प्रगट हो गई केवली की। है ? उन्हें उत्कृष्ट भाव का अनुभव है। सर्वज्ञ परमात्मा... इसमें बहुत फेरबदल है इस गाथा के अर्थ में, इसका अर्थ बहुधा उल्टा करते हैं, अनेक जाति का, अर्थात इसमें फर्क है थोड़ा।

जो पुरुष अंतिम पाक से उतरे हुए शुद्ध स्वर्ण समान, यह तो दृष्टांत है। शुद्ध स्वर्णसमान वस्तु के उत्कृष्टभाव को अनुभवते हैं, अर्थात कि अंतिम दशा केवलज्ञान को प्राप्त हैं, उन्होंने तो प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाकों की परंपरा से पाच्यमान... प्रथम सम्यग्दर्शन होने पर पहली पर्याय का अनुभव, यह अब उन्हें (केवली को) नहीं। उसी प्रकार बीच की दशा का अनुभव भी केवलज्ञानी को नहीं। ध्यान रखना।

`उन्हें प्रथम द्वितीय आदि अनेक पाकों की परंपरा से पकाये जाते हुये अशुद्ध स्वर्ण के समान जो अनुत्कृष्ट मध्यम,' अनुत्कृष्ट क्यों कहा ? कि सम्यग्दर्शन होने पर प्रथम समय जघन्य अनुभव होता है, दूसरे समय उससे अधिक, मध्यम हो गया, जब केवलज्ञान न हुआ, उसके पूर्व के इस तरफ के समय तक उसे मध्यम कहा जाता है।

क्या कहा यह ? सम्यग्दर्शन हो... शुद्धचैतन्यज्ञान स्वरूप... यहाँ तो यह सर्वज्ञस्वरूप ही प्रभु ध्रुव है। ज्ञायक कहो कि सर्वज्ञ स्वभावी - ऐसा नित्यध्रुव, उसकी जब दृष्टि हुई, उसका स्वीकार एवं सत्कार हुआ तब पहले समय का जो अनुभव (है), उसे जघन्य कहते हैं। परंतु वह तुरंत ही दूसरे समय, तीसरे समय अनुभव होता ही है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि जीव को शुद्धचैतन्य ज्ञायकभाव, सर्वज्ञ स्वभावी वस्तु, ऐसी दृष्टि होने के पहले समय का जो अनुभव वह असंख्य समय रहता है इसलिए उसे दूसरा तीसरा आदि मध्यमअनुभव उसे हो जाता है। जघन्यता को पारकरके।

यह तो इसमें बहुत विरोध आया है इसलिये अधिक स्पष्ट होता (है)। परंपरा से पकाने में आता है अशुद्धसुवर्ण समान जैसे स्वर्ण अशुद्ध होता, इसप्रकार यह अभी अनुत्कृष्ट मध्यमभाव, जघन्यभाव न लिया, क्योंकि जघन्यभाव तो पहले समय होता है। क्या कहा यह ? शुद्धचैतन्य ज्ञायकस्वरूप है, ऐसी जो दृष्टि और अनुभव हुआ, उसके पहले समय का वेदन तो जघन्य कहलाये। परंतु यह तो आगे बढ़ जाता (है) तुरंत ही उसे दूसरे समय आदि असंख्य समय की वृद्धि उसको होती ही है, समझ में आया ?

बहुत प्रकार आयेंगे, धीरज से समझना।

मध्यमभाव... उसका अनुभव नहीं होता। जघन्य तो सम्यग्दर्शन होने के बाद भी, जघन्य अनुभव तो उसे भी नहीं। समझ में आया ? और इसे उत्कृष्ट अनुभव नहीं होता, क्योंकि सम्यग्दर्शन होने के बाद भी जब तक केवलज्ञान की दशा न हो, तब तक मध्यम दशा का अनुभव है। बात समझ में आती है ?

अर्थात कहा कि अनुत्कृष्ट अर्थात उत्कृष्ट नहीं। जो पहले कहा कि केवली उत्कृष्ट भाव को अनुभवता है। उन्हें यह उत्कृष्ट भाव का अनुभव, मध्यम अनुभववालों को नहीं। समझ में आता है कुछ ? आहाहा ! और यहाँ से जघन्य तो यह है ही नहीं। यह जघन्य प्रथम समय का गिना है, और आस्रवमें जो जघन्य भाव गिना है मूलगाथा में। भाई ! जघनभावे ! यह जघन्यभाव उत्कृष्ट भाव के नीचे जो भाव है उन सभी को जघन्यभाव गिना है।

क्या कहा ? यहाँ जो जघन्यभाव है यह तो सम्यग्दर्शन अनुभव होने का पहला समय है उसे जघन्यभाव कहें, और बाद के भावों को मध्यम भाव कहा, उत्कृष्ट का अभाव और जघन्य तो गया। समझ में कुछ आया ? और मध्यमभाव का अनुभव होने से उस भाव का अनुभव नहीं, किसे ? केवली को, केवली को, अशुद्धस्वर्ण समान जो अनुत्कृष्टभाव उसका अनुभव होता नहीं, किसे ? केवली को।

जो पुरुष अंतिमपाक से उतरे हुये शुद्धस्वर्ण के समान सोलह, क्या कहा ? सोलह (श्रोता :- सोलहवान समान) सोलह क्या कहा ? (श्रोता :- वान) सोलहवान... भूल जाये तुम्हारी भाषा। सोलहवान जब स्वर्ण हो गया उसे फिर मध्यम और अशुद्ध स्वर्ण की जो मध्यमदशा (है) यह उसे होती नहीं उसे तेरहवान और चौदहवान होता नहीं।

इसप्रकार जिसे सर्वज्ञ पूर्णदशा हुई, उसे जघन्य तो नहीं, सम्यक्दृष्टि को भी जघन्य नहीं, जघन्य तो पहले समय हो गया और सर्वज्ञ न हो वहाँ तक की दशा को उत्कृष्ट दशा नहीं उसे, उस अनुष्कृष्ट दशा को मध्यम दशा कहते हैं। इस मध्यम दशा का अनुभव केवली को होता नहीं। समझ में आया ?

इसमें बड़ा झगड़ा है अर्थात अभी थोड़ा अभी आया है, कि केवली को शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। उन्हें किस दिन शुद्धनय था ? कि तुम उन्हें (जाना हुआ प्रयोजनवान कहते हो) शुद्धनय तो सातमें से शुद्धनय होता है एवं चौथे, पांचवे, छठवें तक व्यवहार होता है।

केवली को शुद्धनय तुम जानना कहते हो तो उन्हें नय कहाँ ? - ऐसा कहते हैं (यह लोग) - ऐसा कहते हैं, धीरज से सुनो, धीरज से, बहुत समझने जैसी सूक्ष्मबात है, जैसे जैसे विरोध आता (होता) उस उस प्रकार स्पष्टीकरण (होता है) यह मोतीचन्द्र

अभी लेखों में - ऐसा कहते हैं। फलटन के है कोई वकील। - ऐसा कि शुद्धनय को जानने का कहा है, यह शुद्धनय केवली को कहाँ है ? केवली को तो नय (नहीं) उन्हें तो पूरणता हो गई है शुद्धनय कहाँ है ? शुद्धनय तो निचली दशा में सातमें से ऊँची दशा में शुद्धनय होता, और चौथे, पाँचवें, छठवें तो व्यवहारनय होता है। (श्रोता :- चौथे से शुद्धनय शुरू हो जाता है) शुद्धनय यहाँ से (चौथे से) नहीं, उन्हें इसका निषेध करना है न इसका ? आहाहा ! शुद्धनय वहाँ से (चौथे से) नहीं।

आहाहा ! कारण कि... - ऐसा तुम कहते हो, यहाँ कहेंगे देखो !

उसका अनुभव होता नहीं, शुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से अर्थात कि शुद्धद्रव्य को अनुभव करनेवाला होने से, कहनेवाला होने से... समझ में कुछ आया ? सूक्ष्म भाषा है बापू ! यह तो अध्यात्म मार्ग अंदर बहुत सूक्ष्म है। इसे पकड़ना समझना यह बहुत पुरुषार्थ मांगता है।

यहाँ शुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से अर्थात कि शुद्धद्रव्य को जाननेवाला होने से पूरा, जिसने अचलित अखण्ड एकस्वभाव एकभाव प्रगट किया है। जिसने अचलित, अखण्ड एक स्वभाव भावरूप, मध्यमभाव था वहाँ तभी एक स्वभाव नहीं था, समझ में आया ? यह तो एक स्वभावभाव सर्वज्ञ हुये। एक स्वभावभाव एकभाव प्रगट किया है। एकभाव प्रगट किया है - ऐसा शुद्धनय ही... यहाँ विरोध है। केवली को तुम शुद्धनय कहो तो वहाँ नय कहाँ है ? वहाँ यह - ऐसा कहते हैं, अतः यह शुद्धनय है यह सातवें, आठवें, नौंवें में लागू होता (है) चौथे, पांचवें, छठवें में शुद्धनय लगाओ यह काम नहीं आये, उसी प्रकार शुद्धनय केवली को लगाओ यह भी काम नहीं आये - ऐसा वह कहते हैं। एक वकील है, बड़ा लेख आया है।

यह तो सब झगड़े चलते ही हैं... सभी इस बारहवीं गाथा की तो... आहाहा ! ***यहाँ तो कहते हैं कि शुद्धस्वर्ण सोलहवान समान, जिसने आत्मा का शुद्ध पूर्ण स्वभाव सर्वज्ञ पूर्ण आनंद जहाँ प्रगट हो गया, भाव प्रगट हो गया, जो एक स्वभाव भाव अचलित-अखण्ड प्रगट हो गया, उसे तो शुद्धनय ही है... शुद्धनय का अर्थ यह कि अब इन्हें शुद्धनय `करना' रहा नहीं।*** भाई ! आस्रव (अधिकार)में आता है न ? केवली को शुद्धनय की पूर्णता हो गई - ऐसा कहा है। आस्रव अधिकार। सुनना, इस बारहवीं गाथा को... बहुत झगड़ेवाली (कहते) है भाई ! उस टीका के बहुत प्रकार इसमें से निकलेंगे।

प्रथम तो आस्रव में जघन्यभाव कहा। वह जघन्यभाव कौन ? कि उत्कृष्ट (तो) केवलज्ञानी का भाव नहीं, और मध्यम है उसे यहाँ जघन्य कहा। दूसरी बात... भावार्थ में शुद्धनय की पूर्णता केवलज्ञान में होती है - ऐसा लिखा है। दो जगह है न?

है न इसमें ? आस्रव आस्रव... देखो ! पेज यहाँ है गुजराती दोसौ चौराशी, एक सौ बीस, कलश है, पेज का फर्क हो तो एक सौ बीस कलश उसमें नीचे है। एकदम नीचे है।

साक्षात् शुद्धनय तो केवलज्ञान होनेपर होता है, है ? अंतिमपंक्ति इसमें अंतिम पंक्ति है। एक सौ बीस कलश के बाद... भावार्थ होने के बाद साक्षात् शुद्धनय तो... देखो ? शुद्धनय साक्षात् तो केवलज्ञान होने पर होता है।

यह किस अपेक्षा कहा ? एक तरफ - ऐसा कहा कि त्रिकाली भूतार्थ वह शुद्धनय और यहाँ साक्षात् शुद्धनय केवलज्ञान में होता है - ऐसा कहा, इसका अर्थ ? कि शुद्धनय का अभी इसमें आश्रय लेने जैसा था यह आश्रय वहाँ है नहीं, अर्थात वहाँ शुद्धनय पूर्ण हुआ इसप्रकार। समझ में आया इसमें ? आहाहा ! ऐसे बहुत से भंग पड़ते यह सभी उठाये हैं इस बारहवीं में... केवली को उन्हें शुद्धनय कहाँ है ? अतः शुद्धनय जाना हुआ, जाना हुआ तुम कहते हो वह शुद्धनय इन्हें जानना है ?

हाँ ! इन्हें शुद्धनय जानना है समझ में आया ? एक सौ तेतालीस गाथा में कहा न ? मूलगाथा में फिर श्रुतकेवली के साथ तुलना की है न ? वहाँ भी शुद्धनय जानतें हैं इतना। एक सौ तेतालीस है न ? एक सौ तेतालीस गाथा, कर्त्ता कर्म (अधिकार) की न ? अंतिम एक सौ तेतालीस हाँ ! देखो ! यह एक सौ तैतालीस गाथा। जिसप्रकार केवली भगवान विश्व के साक्षीपने के कारण... एक बोल, है ? दूसरा बोल। अब दूसरे बोल पर जोर है यहाँ, श्रुतज्ञान के अवयवभूत ऐसे जो व्यवहार निश्चयनय के पक्ष उसके स्वरूप को ही केवल जानते (है) है ?

क्या कहते हैं ? केवली, व्यवहारनय एवं निश्चयनय के पक्ष के स्वरूप को 'ही' मात्र जानते अर्थात शुद्धनय (को) जानते हैं इसका अर्थ यह कि उन्हें शुद्धनय का विषय पूर्ण हो गया अर्थात अब जानना ही रहा बस - ऐसा।

धीरज से समझना बापू ! यह गाथा तो बहुत विवादास्पद है न ?

क्या कहा ? केवली भगवान विश्व के साक्षीपने के कारण श्रुतज्ञान का अवयव श्रुतज्ञान यह प्रमाण है तथा निश्चय और व्यवहार उसके अवयव है, भाग हैं, इसलिये अवयवभूत - ऐसा व्यवहार और निश्चय के पक्ष उनके स्वरूप के केवल जानते है, कहो अब नय कहाँ है वहाँ ? परंतु जानते है इसका अर्थ है यह कि मात्र जानना रह गया इसप्रकार। आहाहा ! समझ में आया ? है ? ***केवली भी निश्चय व्यवहारनय को जानते हैं, केवली भी व्यवहारनय और निश्चयनय उसके स्वरूप को जानते है - ऐसा कहा।***

अब, वहाँ कहीं निश्चय व्यवहारनय है नहीं। इसलिये उसे जानते हैं ज्ञान में

जानते है, जैसा था वैसा जाना इसका नाम व्यवहार और निश्चय को जाननेवाला कहा। अरे ! एक बात। यहाँ कहा कि शुद्धनय केवलज्ञान होने पर होता है। आस्रव (अधिकार में) कहा न ? और यहां कहा, अपने इस चलते अधिकार में... क्या कहा यहाँ देखो ! अनुत्कृष्ट भाव, उसका अनुभव केवली को होता नहीं। इसलिये शुद्ध द्रव्य को कहनेवाला - ऐसा शुद्धनय ही है ? यह शुद्धनय ही, सबसे ऊपर की एक प्रतिवर्णिका स्वर्णपने के समान होने से सोलहवान समान होने से जाना हुआ प्रयोजनवान। शुद्धनय ही जाना हुआ प्रयोजनवान है।

अब यहाँ विरोध करते हैं। उन्हें शुद्धनय कहाँ है कि जाना हुआ प्रयोजनवान है ?

अरे भाई ! जानने में उन्हें सभी आया इसमें जानने योग्य जाना बस इतना। यहाँ तो यही कहा, शुद्धनय तो जाना हुआ, प्रयोजनवान है - ऐसा कहा। नय उन्हें होती नहीं, परंतु जाननेवाला हैं - ऐसा कहा उसने बस इतना। शुद्धनय को भी जाननेवाले हैं। आहाहा ! समझ में आता है ?

इसमें झगड़ा क्या है ? कि इस बारहवीं गाथा में जो व्यवहार कहा, यह तो चौथे, पाँचवे, छठवें तक का व्यवहार और आगे शुद्धनय कहा यह तो सातवें के बाद शुद्धनय (होता) और केवली को शुद्धनय होता नहीं - ऐसा कहते हैं। भाई ! उसका यहाँ स्पष्टीकरण - ऐसा है कि शुद्धनय का पूर्ण स्वरूप... ***शुद्धनय तो भूतार्थ को कहा है त्रिकाली को और त्रिकाली के आश्रय से दृष्टि हुई सम्यग्दर्शन और अनुभव स्थिरता इसे भी शुद्धनय कहा जाता है चौदहवीं गाथा में और यहाँ भी केवलज्ञान में भी... शुद्धनय की पूर्णता हो गई आश्रय लेना उसे भी शुद्धनय जानता है - ऐसा कहा जाता है।*** आहाहाहाहा ! समझ में आया ? रात को प्रश्न करना !

तीन बात हुई। प्रथम तो उत्कृष्ट स्वर्ण का जिसे अनुभव है उसे मध्यम स्वर्ण का अनुभव नहीं, उसीप्रकार जिसे उत्कृष्ट केवलज्ञान का अनुभव है उसे मध्यमदशा का अनुभव नहीं। क्योंकि इसे एकरूप अखण्डदशा प्रगट हो गई है, इसलिये शुद्धनय उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

और यहाँ अनुत्कृष्ट शब्द लिया, लिया न ? क्योंकि जघन्य, मध्यम भाव तो इसे नहीं। परंतु सम्यग्दृष्टि जीव को, अभी बारहवें तक मध्यमभाव है। पूर्ण हो गया तेरहवें, तब अब मध्यमभाव रहा नहीं, उत्कृष्ट भाव की दशा हो गई। उसे शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान - ऐसा कहा। शुद्धनय वहाँ ही होता है उसे शुद्धनय नीचे नहीं होता - ऐसा नहीं। शुद्धनय तो चौथे से लागू होता है।

त्रिकाली भूतार्थ ज्ञायक सर्वज्ञ स्वरूपी प्रभु - ऐसा सर्वज्ञ स्वरूपी सर्वज्ञस्वभावी जो ध्रुववस्तु इसका आश्रय लिया, वहाँ पहले समय जो दर्शन प्रगटा, ज्ञान प्रगटा

यह जघन्य भाव कहने में आता और यह एक समय बाद रहता नहीं फिर तुरंत दूसरे समय, तीसरे समय, चौथे समय उसकी दशा बढ़ जाती है। समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्मबात है। यह तो वह लोग जैसे विरोध करते जाते हैं न इसीप्रकार यहाँ ज्यादा स्पष्टीकरण होता जाता है।

एक तो - ऐसा कहते हैं कि ``शुद्धनय जाना हुआ वहाँ कहा तब उनको नय नहीं। जाना हुआ (कहा) अतः गलत बात है, उन्हें नय नहीं। नय तो शुद्धनय किसे होता ? सातवें, आठवें, नौवें इन्हें शुद्धनय होता केवली को शुद्धनय नहीं होता। चौथे, पाँचवें, छठवें शुद्धनय नहीं होता, चौथे, पाँचवें, छठवें व्यवहार होता केवली को शुद्धनय नहीं होता, बीच की दशा में शुद्धनय होता है'' - ऐसा नहीं। आहाहा !

शुद्धनय की शुरूआत तो भूतार्थ का आश्रय से हुआ, सम्यग्दर्शन की दशा, जिसे ध्रुव... ज्ञायकभाव इसप्रकार अकेला ज्ञानभाव, अन्य प्रकार कहें तो, सर्वज्ञस्वभावभाव, सर्वज्ञ स्वभावभाव, ध्रुवभाव, ज्ञायकभाव - ऐसा सर्व... ज्ञ स्वभाव। आहा ! ***इसमें जब दृष्टि लगी तभी से पहले समय इसका वेदन उत्पन्न हो गया, परंतु यह पहला समय टिकता नहीं, तुरंत दूसरे समय तीसरे समय इसका मध्यम वेदन हो (जाता है) यह मध्यम वेदन कहाँ तक होता ? कि उत्कृष्ट केवली नहीं होंता, तब तक की दशा में मध्यम होता (है), केवल(ज्ञान) हुआ वहाँ तक तो मध्यमवाले को शुद्धनय का आश्रय है। अभी पूर्ण वस्तु का आश्रय है, यह आश्रय केवली का छूट गया अर्थात केवली शुद्धनय को जानते हैं।*** इसप्रकार कहा जाता है।

आहा...! धीरे-धीरे समझना इस विषय की पहली बार शुरूआत होती है। - ऐसा स्पष्टीकरण प्रथम बार आया, विरोध बहुत (आया) न, यह कहते है शुद्धनय चौथे-पाँचवें-छठवें तो `व्यवहार देशिदा' भी आया न इसमें। व्यवहार का उपदेश करना, किसे? चौथे-पाँचवें-छठवें को। आहाहा ! अरे भगवान ! क्या कहते हो प्रभु ! तुम क्या कहते हो भाई ? आहाहा ! भगवान हैं यह भी...! आहाहा ! पर्याय में भूल होती है भाई ! आहाहा !

शुद्धनय नीचे नहीं होता अकेला व्यवहार ही हो... तब यह व्यवहार निश्चय बिना व्यवहार हो ही सके नहीं। निश्चय स्व शुद्ध त्रिकाली भूतार्थ वस्तु है उसका आश्रय हो गया है, सम्यग्दर्शन होते ही इसका आश्रय शुद्धनय का यह वस्तु त्रिकाल है उसे भी शुद्धनय कहते है और उसका आश्रय करनेवाली पर्याय को भी शुद्धनय कहते है। आहाहाहा ! और प्रगटी दशा को भी शुद्धनय कहते है और पूर्ण हुई दशावाले को शुद्धनय पूरण हो गई - ऐसा कहने में आये। अरे ! हीराभाई ! यह प्रभु का मार्ग अरे प्रभु आहा ! सर्वज्ञ रहे नहीं, लोगों ने कल्पना से मार्ग बिगाड़ दिया बापू !

मार्ग - ऐसा नहीं भाई। आहाहा !

यहाँ जघन्यदशा क्यों नहीं ली ? अनुत्कृष्ट लिया क्यों ? वह एक समय की दशा समकित के असंख्य समय, (इसमें) में तो बढ़ ही गयी है अंतर, अर्थात जघन्यदशा अब इसे रही नहीं। आहाहा ! हाँ ! और केवलज्ञान दशा हुई नहीं, इसलिये उसे अनुत्कृष्ट मध्यमदशा कहा जाता है। मोहनलाल जी ! समझ में आता है कि नहीं ? यह तो मार्ग बापू, सर्वज्ञ त्रिलोक नाथ ! यह भी दिगम्बर दर्शन, आहाहाहा ! ऐसी बात कहाँ है, कहाँ ? परम सत्य का उद्घाटन करनेवाली है। `यह' (बात) आहाहा !

एक तो यहाँ कहा कि मध्यमभाव, तो इसका अर्थ यह हुआ कि समकित होनेपर, जघन्य भाव होता नहीं क्योंकि पहले समय जघन्य होता है और तुरंत ही दूसरे समय मध्यम भाव हो जाता है और यहाँ जघन्य लिया नहीं यह मध्यम है इसे आस्त्रव अधिकार में जघन्य कहा है। भाई ! `जहण' भाव परिणमन। जहाँ तक धर्मी जीव को उत्कृष्ट भाव का परिणमन नहीं, तब तक जघन्य भाव है - ऐसा कहने में आया है। अभी इसे कमी है न, कमी है न ! आहाहा !

यह जघन्यभाव एक समय का है, वह नहीं। उत्कृष्ट भाव नहीं, उससे नीचे है इसे जघन्यभाव... जो यहाँ मध्यम कहा उसे वहाँ जघन्य कहा। आहाहा ! अब यहाँ तो - ऐसा कहना है कि शुद्धनय कहनेवाला होने से है न ? अर्थात इन लोगों को विरोध उठता है। शुद्धनय कहनेवाला है परंतु (शुद्धनय) केवली को कहाँ है वह कहीं ? - ऐसा कहते हैं।

परंतु... यहाँ तो शुद्धनय कहनेवाला होने से अर्थात् शुद्धनय का स्वरूप वास्तविक होने से इसप्रकार; कहनेवाली तो `बंधकथा' - ऐसा शब्द आता है, परंतु अंदर `बंधभाव' बताना है। इसप्रकार यहाँ `शुद्धनय कहनेवाला का अर्थ कि शुद्धनय जिसे होने पर, जिसे अचलित पूर्ण हो गया उसे अचलित अखण्ड एक स्वभावरूप एकभाव प्रगट किया है। आहाहा ! सर्वज्ञ परमात्मा को तो अस्खलित एक स्वभावभाव प्रगट हो गया है। - ऐसा शुद्धनय, देखा ? प्रगट हुआ है - ऐसा शुद्धनय...। प्रगट तो केवलज्ञान हो गया है। पूर्णदशा। परंतु उसे अब यहाँ शुद्धनय का आश्रय करना रुक गया, अर्थात कि शुद्धनय पूरा प्रगट हो गया - ऐसा कहा जाता है।

(श्रोता :- शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान हो गया) यह, यह भी जाने हुये का यह कहते हैं कि छद्मस्थ को जाना हुआ हो, केवली को जाना हुआ नय कहाँ से हो - ऐसा कहते हैं। (श्रोता :- केवली तो सभी जानते) परंतु कहा न एक सौ तेतालीस में बताया न... विश्व के साक्षीपने के कारण निश्चय-व्यवहारनय को जानते हैं अब निश्चय व्यवहानय को जानते हैं अर्थात वहाँ निश्चय व्यवहारनय है - ऐसा नहीं

परंतु... जैसे दूसरों को जानते इसीप्रकार निश्चय व्यवहार को भी जानते हैं भाई ! आहाहाहा ! ऐसी बातें है बापा ! वीतराग मार्ग आहाहा !

यहाँ शुद्धनय को कहनेवाला होने से है न ? अतः यह लोग - ऐसा लेते है कि शुद्धनय को कहनेवाले होने से... जो साधते हैं उसे यह शुद्धनय है सातवें में आठवें इत्यादि... उन्हें शुद्धनय... कि ध्यान में जब हो तब...

ऐसा शुद्धनय ही जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहा ! इसका अर्थ यह कि नयपना वहाँ छूट गया है अब और इसलिये - ऐसा भी लिया कि शुद्धनय की पूर्णता केवलज्ञान होने पर होती है। आया न यह ? आस्रव (अधिकार) में दो जगह आया न दोनों जगह यह है। इस पेज पर इस तरफ, आहाहा ! भाई ! किस अपेक्षा है भाई- ऐसा जानना चाहिए। यों खीचातानी करें बापू - ऐसा न चले। प्रभु का मार्ग यह अनेकांत जो है, इसे इसप्रकार जानना चाहिए। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि सोलहवान का सोना जिसे पूर्ण हो गया उन्हें अब तेरह चौदहवान होता नहीं। इसीप्रकार जिसे पूर्णस्वभाव शुद्धनय का पूर्णभाव प्रगट हो गया, उसे अब कहीं स्व का आश्रय लेना - ऐसा रहता नहीं। अतः शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा जाता है। हसमुखभाई ! यह तुम्हारे व्यापार, व्यापार से यह जाति ही अलग है वहाँ कहीं सुनने मिले - ऐसा नहीं वहाँ अकेले करोड़ो रुपया और ऐसे रुपया और धूल - ऐसी बातें बहुत करते हैं लोग। आहाहा !

यह महाप्रभु ! अनंत-अनंत लक्ष्मी का भंडार भगवान है। आहाहा ! इसका आश्रय करना, इस का अर्थ शुद्धनय का आश्रय किया और इसके आश्रय उसे शुद्धनय का अंश प्रगटा और पूर्णशुद्धनय केवली को प्रगटा। आहा ! अर्थात कि अब उन्हें आश्रय करना शेष रहा नहीं। आहाहा !

बीच की दशावालों को मध्यमदशा कही, अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट नहीं अर्थात मध्मय। जिस दशा को आस्रव अधिकार में जघन्यदशा कहीं। भाई ! इस दशा को यहाँ मध्यम कहा। इसे जघन्य क्यों लिया ? कि केवलज्ञान जब तक हुआ नहीं। तब तक जघन्यभावरूप परिणमन है, तब इसे अभी रागादिकभाव है अतः उसे बंध है। बिलकुल बंध नहीं - ऐसा जो कहा था, ज्ञानी को बंध ही नहीं - ऐसा जो कहा था यह अपेक्षा से कहा था। परंतु जहाँ तक जघन्य भावरूप परिणमता है वहाँ तक भी अंदर अभी राग का भाव है अर्थात बंधन है। पूर्ण केवलज्ञान होनेपर जघन्यभाव अर्थात मध्यम भाव छूट गया और पूर्णभाव हो गया उसे तो कहीं थोड़ा भी बंधन है नहीं। यह तो निरास्रवी है।

अरे ! - ऐसा सभी याद कितना रखना ? देवीलालजी ! ए गोविंदरामजी !

परमसत्य है प्रभु। क्या करें ? (श्रोता :- यह मूलबात आ गई। छद्मस्थ को आश्रय है। केवली को आश्रय नहीं, मात्र जानते (है)। जानते बस ! बस ! यह जानते है केवलीप्रभु ! जैसे (केवली) सभी जानते है इसीप्रकार श्रुतज्ञान का अवयवभूत निश्चय और व्यवहार उसे वह जानते हैं - ऐसा आया न, एक सौ तेतालीस गाथा। निश्चय और व्यवहार दोनों को जानते हैं - ऐसा कहा वहाँ। यहाँ शुद्धनय को जानते हैं - ऐसा कहा।

भाई क्या अपेक्षा है बापा ! आहाहा ! वहाँ निश्चयनय और व्यवहारनय को जानते हैं - ऐसा कहा एक सौ तेतालीस गाथा यहाँ शुद्धनय को जानते है - ऐसा कहा। भाई ! वहाँ पूरा जानते है, अतः सभी जानते हैं - ऐसा कहा और यहाँ अभी व्यवहार शेष रहा है, उसे बताने... शुद्धनय पूर्ण हो गई है, इसे शुद्धनय जानता हैं - इसप्रकार कहा जाता है धीरे-धीरे समझना बापू !

(श्रोता :- जाना हुआ प्रयोजनवान है अर्थात ?) जानते अर्थात बस जानते हैं, अब नय नहीं, जैसे सभी को जानते हैं उसी प्रकार नय के भाव को भी जानते हैं। नय-मय उन्हें नहीं अब नय तो... (वहाँ) प्रमाणज्ञान हो गया। आहाहाहा !

बड़ा विरोध अभी यह... (मानते है कि) व्यवहार, व्यवहार से हो न - ऐसा सिद्ध करना है न, अतः चौथे पाँचवें छट्ठे में अकेला व्यवहार होता है, `व्यवहारदेसिदा' (कहा है न) उसे उपदेश व्यवहार का करना उसे निश्चय का नहीं, आहाहाहाहा ! प्रभु तुम क्या करते हो भाई ! - ऐसा न चले, परमात्माका विरह पड़ा, केवली रहे नहीं - ऐसा अर्थ न हो प्रभु ! आहाहा ! उनका जो आशय है भगवान का, उसी प्रकार इसका अर्थ होना चाहिए। आहाहाहाहा !

ऐसा शुद्धनय ही, इसका निष्कर्ष यहाँ है, वह तो दृष्टांत कहा। सबसे ऊपर की एक वर्णिका समान अर्थात सोलहवान ! - ऐसा शुद्धनय ही जाना हुआ प्रयोजनवान है।

समझ में आता है बापू ! समझ में आये - ऐसा है धीरज से समझो ! यह तो वीतराग मार्ग है भाई ! आहाहा ! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ! उनके यह कथन हैं। आहाहा ! इसे संत प्रसिद्ध करते हैं, कि जिसे सोना (में) मध्यमपना जिसका निकल गया और सोलहवान का जिसे हो गया, इसप्रकार ***जिसने शुद्धनय के विषय (का) आश्रय लिया था और अब आश्रय लेना बंद हो गया, उसे शुद्धनय अकेला जानने लायक है - ऐसा हो गया।*** आहाहाहा !

थोड़ी अटपटी बात है, परंतु है बहुत सरल हाँ ? आहाहा ! चेतनजी ! (श्रोता :- बहुत निकाला आपने तो इसमें से) इसमें है - ऐसा। आहा ! बारहवीं गाथा का विरोध तो पहले से चला आता है हमारा। चौरानवें में नटु आया था कपूर (भाई) का, यहाँ...

अरे वहाँ से शुरू किया था उसने। अरे प्रभु ! तुम्हारा समयसार कैसा ? और तुम बारहवीं गाथा का आधार दो भाई ! इसके अर्थ तो तुम किस प्रकार समझते हो? स्थानकवासी, यह देरावासी, इसमें निकालते देखो, बारहवीं गाथा में कहा कि - ऐसा करना - ऐसा करना - ऐसा करना, करना करने का अर्थ ही यह है कि होता है, उसे जानना वहाँ - ऐसा इसका अर्थ है। आयेगा अभी नीचे अर्थ आयेगा।

वह लोग कहते हैं कि शुद्धनय चौथे, पाँचवें, छठवे होता ही नहीं, अन्यथा यह व्यवहार का उपदेश किसे करना ? अब आयेगा। जिसे निश्चय हो गया है, उसे व्यवहार का उपदेश की आवश्यक्ता क्या ? व्यवहार जिसे अभी निश्चय हुआ नहीं उसे व्यवहार के उपदेश की आवश्यक्ता है - इसप्रकार यह कहते हैं। यहाँ - ऐसा नहीं प्रभु ! व्यवहारदेसिदा शब्द तो पद्य में शब्द लिखने में आया है। परंतु स्वयं अर्थ कहेंगे स्वयं यहाँ कि आत्मज्ञान हुआ है, ***शुद्धचैतन्य स्वरूप के अवलम्बन से, अब यह तो निश्चय हुआ, परंतु इसकी पर्याय में अशुद्धता शेष है, और शुद्धता में कमी है, उसे जानना, उस नय को क्या कहना ? कि इस नय को व्यवहारनय कहना।***

यह व्यवहारनय उस समय उस उस समय, जितना शुद्ध अंश रहा यहाँ और अशुद्ध का अंश, उस उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। दूसरे समय शुद्धता का अंश बढ़ता है, अशुद्धता का अंश घटता है, उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। तीसरे समय शुद्धता का अंश बढ़ता है, अशुद्धता का अंश घटता है उस समय यह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बात ! बापू ! क्या हो ? अरे प्रभु ! तुं... विरह... आहाहा !

अब, परंतु... अब यह बात तो ली... ***पूर्णदशा हो गई, उसे शुद्धनय जानने लायक है अर्थात इसे शुद्धनय का विषय है यह अब कहीं रहा नहीं। आश्रय करना रहा नहीं। पूर्ण आश्रय हो गया अर्थात शुद्धनय जानने लायक है - ऐसा कहने में आया।*** आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

'परंतु जो पुरुष प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाकों की परंपरा से पच्यमान अशुद्ध स्वर्ण समान... देखा ?' सोने को पहला ताप दें प्रथम, शुद्ध करने पहला, द्वितीय आदि अनेक पाकों की परंरा से पच्यमान पका हुआ, 'अशुद्ध स्वर्ण की भाँति जो अनुत्कृष्ट मध्यमभाव, उसे अनुभवते है।' सम्यग्दृष्टि को, जब तक पूर्ण दशा का अनुभव नहीं, तब तक इसे जघन्यका भी नहीं और उत्कृष्ट का भी नहीं, कारण कि जघन्य तो पहले ही बीत गया है, उसे उत्कृष्ट है नहीं, मध्यमभाव का अनुभव है। आहाहाहा !

अरे रे ! जिसका अभी ज्ञान भी सच्चा न मिले प्रभु ! वह किसकी शरण जायेगा भाई ! आहाहा ! समझ में आया ? शरण तो चैतन्यस्वरूप है अंदर पूर्ण ! जो सर्वज्ञ

स्वरूपी है `ज्ञ' स्वरूपी है सर्वज्ञस्वरूपी है, `ज्ञ' धातु (अर्थात) ज्ञान को धारण किया हुआ तत्त्व है, अकेला तत्त्व। आहाहाहा ! उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, उसका आश्रय करने से चारित्र होता है। उसका आश्रय जब किया तब जघन्य आश्रय तो बीत गया, अब मध्यम में वर्तता है। सोना जिस प्रकार अभी तेरहवान और चौदहवानवाला रहता है, तब तक सोलहवान का हुआ नहीं। इसीप्रकार जब तक सम्यग्दृष्टि, अपने स्वभाव का आश्रय लेकर मध्यमभाव में वर्तता है, जघन्य भाव तो तुरंत बीत गया वह। आहाहाहा ! समझ में आया ?

अनुत्कृष्ट भावने उसे अनुभवता है। देखा ? `उन्हें अंतिम ताप से उतरे हुए शुद्धस्वर्ण के समान उत्कृष्ट भाव का अनुभव नहीं होता।' जैसे सोना सोलहवान का नहीं, इसीप्रकार इसे पूरणभाव प्रगटा नहीं। बीच की दशा में है। आहाहा ! साधक दशा में जघन्य भाव बीत गया है, उत्कृष्ट भाव है नहीं, मध्यम भाव में वर्त रहा है। आहाहा ! (श्रोता :- यहाँ शुद्धोपयोग और शुभोपयोग दोनों साथ में है ?) है, साथ में है। पूर्ण शुद्ध नहीं वह अशुद्धता है न साथ में। साधक है वहाँ बाधकपना विद्यमान है न साथ में। तब तो उसे मध्यमभाव कहा। राग अभी है कि नहीं ? अरे ! दशवें गुणस्थान के अन्त तक राग है और बुद्धिपूर्वक राग छठवें तक है और अबुद्धिपूर्वक छठवें तक है सातवें में अकेला अबुद्धिपूर्वक है, वह दसमें तक बहुत लम्बी बातें बापू ! तत्त्व की कों ऐसी है। आहाहा !

`अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला होने से, उत्कृष्ट भाव का अनुभव नहीं होता इसलिये अशुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से, जिसने भिन्न-भिन्न एक-एक भाव स्वरूप अनेक भाव दिखाये हैं।' देखा ?

यह अशुद्धद्रव्य अर्थात कि अभी अशुद्धपरिणति है और शुद्ध भी है। शुद्ध भी है मध्यम की, और अशुद्धता भी साथ में है। ऐसे अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाले होने से, जिसने भिन्न-भिन्न एक-एक भाव स्वरूप अनेकभाव दिखाये (है), उसमें क्या था ? एक स्वभाव का एक भाव प्रगट किया है - ऐसा था। जिसने अचलित अखण्ड एक स्वभाव रूप एक भाव प्रगट किया, यह उत्कृष्ट (भाव) और मध्यम में ? आहाहाहा ! ***अशुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से द्रव्य को अशुद्ध क्यों कहा ? द्रव्य तो अशुद्ध है ही नहीं। परंतु उसकी पर्याय अभी अशुद्ध है उसे, शुद्धता थोड़ी है और अशुद्धता भी है, इसलिये अशुद्धद्रव्य, दूसरे के कारण नहीं, परंतु यह स्वयं के कारण द्रव्य अंश मलिन है, निर्मल भी साथ में है।*** आहाहा ! ऐसी बात है।

ओहो ! प्रभु का मार्ग है वीरों का... वहाँ मध्यस्थ जीवों का काम है। आग्रह पकड़नेवालों का यहाँ काम नहीं, बापू, यहाँ। आहाहा ! ऐसे जीव को भिन्न-भिन्न एक-

एक भाव स्वरूप, देखा ? शुद्धता का अंश है, इसके साथ अशुद्धता भी है। आहाहा ! दूसरे समय भी शुद्ध का अंश कुछ बढ़ा, फिर भी अशुद्ध का अंश घटा परंतु अशुद्धता साथ में है, ऐसे भिन्न-भिन्न अनेक भावों को बतानेवाला होने से... आहाहा ! है ? भिन्न-भिन्न एक-एकभाव स्वरूप अनेकभाव, एक-एकभाव स्वरूप अनेकभाव। आहाहा ! जो अंदर पहले समय में जो शुद्धता का अंश है और अशुद्धता है, उसकी जगह दूसरे समय शुद्धता का अंश बढ़ा और अशुद्धता घटी इसप्रकार एक-एकभाव भिन्न-भिन्न ही है... आहाहा ! एक-एक भाव स्वरूप अनेकभाव दिखाये हैं - ऐसा व्यवहारनय विचित्र अनेक वर्णमाला समान होने से, सोने को जैसे आंच देने से, भिन्न-भिन्न वर्ण रंग दिखते (है) न ! सोने का रंग दिखता है, उसमें अनेक प्रकार की अशुद्धता, और शुद्धता के अंश अनेक प्रकार के दिखते हैं। ***यह शुद्धता के अंश है, यह भी व्यवहार का विषय है। आहा ! पर्याय है न ! समझ में आया ? आहाहा ! गजब बातें है!!***

इसलिये अशुद्धद्रव्य को कहनेवाली होने से, अर्थात कहनेवाली होने से अर्थात ? अशुद्ध द्रव्य की दशा होने से, उसमें - ऐसा आया था न, अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला होने से भाई ! ऊपर - ऐसा आया था। `कहनेवाले होने से' उसका आशय क्या कहना ? अशुद्ध द्रव्य, पूर्ण होने पर इसप्रकार यहाँ अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला होने से, अर्थात अशुद्ध द्रव्य की अवस्था होने से... द्रव्य में निर्मलता भी प्रगटी है और कुछ मलिनता भी साथ में है। आहाहाहा ! - ऐसा व्यवहारनय... वह तो - ऐसा कहते हैं कि चौथे, पाँचमें, छठवें (में) तो व्यवहार ही है। अरे भगवान ! परंतु, व्यवहार निश्चय बिना व्यवहार होता नहीं। (श्रोता :- दोनों एक साथ होते है !) आहाहा ! लोगों को व्यवहार से लाभ होता है यह सिद्ध करना है न, अतः इसका अर्थ यह करते हैं, बापू ! - ऐसा नहीं भाई !

पहले ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ है वही शुद्धनय है - ऐसा कहा। फिर पुनः - ऐसा कहा कि भूतार्थ का आश्रय करे यही सम्यग्दर्शन - ऐसा कह कर भेद डाला, परंतु यह आश्रय करे तब उसे सम्यग्दर्शन होता है, वहाँ से तो शुरूआत की। अब यह तो निश्चय का विषय उसने जाना, अब इसकी पर्याय में कुछ अपूर्णता अशुद्धता है कि नहीं ? जैसे द्रव्य इसप्रकार शुद्ध ही है इसीप्रकार पर्याय भी शुद्ध हो गई ? कि नहीं। उसमें भी अभी कुछ शुद्धता है न कुछ अशुद्धता है। इसे व्यवहारनय कहा जाता है। - ऐसा मार्ग बापा !

ऐसा व्यवहारनय, विचित्र वर्णमाला समान होने से... उस सोने में विचित्रता होती न ? आँच देते देते, पीलापना पीलापना, मैलका भाग होता है, यह अनेक वर्णमाला

समान होने से जाना हुआ... देखा ? व्यवहारदेसिदा का अर्थ किया, व्यवहार उपदेश करनेलायक है - ऐसी जो भाषा यह तो पद्य में रखने के लिए है। पद्य का दूसरा अर्थ आता है न उसका अर्थात, परंतु उसका अर्थ यह है। कि व्यवहार उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है, यहाँ वजन है। अमृतचन्द्राचार्य ने व्यवहारदेसिदा की व्याख्या यह की है। आहाहा !

कुन्दकुन्दाचार्य ने व्यवहारदेसिदा में कहने का यह आशय है - ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में स्पष्ट कर दिया (है)। समझ में कुछ आया ? आहाहा ! गाय-भैंस के आंचल में दूध है यह बलशाली महिला निकाल सकती है, यह अंदर में है तब निकालती है। इसप्रकार इस भाषा में ये भाव यही है व्यवहारदेसिदा कहा अर्थात व्यवहार का उपदेश करना - ऐसा नहीं, परंतु उस समय अशुद्धता है, शुद्धता का आश्रय लिया है, उतना शुद्धता का अंश भी है। अशुद्धता भी है, उसे तो व्यवहारनय अर्थात पर्याय शुद्धपर्याय कि अशुद्ध यह व्यवहार, यह व्यवहार उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

अरे रे ! अर्थ भी उल्टा करते है, अपने को सम्मत हो - ऐसा अर्थ करना बापू - ऐसा चले नहीं। यह तो तीनलोक के नाथ, तीर्थंकर आहा ! जिसके गवाह हैं, गणधरों ने जिसे स्वीकारा है। इन्द्र जिसका अनुभव करते है सम्यग्दृष्टि आहाहा ! यह कहीं ऐसे वैसों का मार्ग नहीं। आहा !

श्रोता :- उन्हें - ऐसा कि जयचन्द्रजी को पता नहीं कि जाना हुआ प्रयोजनवान है ?

उत्तर :- भेदज्ञानी को, भेदज्ञान होने के बाद कुछ राग रह गया है, उन्हें जाना हुआ प्रयोजनवान है - यहाँ तो - ऐसा है। जिन्हें पूर्ण हो गया उन्हें कुछ है नहीं अब, उन्हें तो पूर्णता का वेदन है अतः शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा (जानना अर्थात जैसा सभी को जानते - ऐसा नयों को भी जानते है - ऐसा। - ऐसा नय का विषय है नय है न ? - ऐसा कुछ नहीं। यह तो एक सौ तेंतालीस गाथा में आ गया, श्रुतज्ञान के अवयवभूत निश्चय व्यवहार को यह लांघ गये है। एक सौ तेंतालीस गाथा। आहाहाहा ! भगवान को फिर श्रुतज्ञान में...

व्यवहार और निश्चय यह श्रुतज्ञान के भेद हैं। क्या कहा ? समझ में आया ? श्रुतज्ञान है वह प्रमाण है भावश्रुत हो ! तो प्रमाण है, यह द्रव्य को भी जाने पर्याय को भी जाने। अब इसका अवयव अर्थात भाग निश्चय और व्यवहार। निश्चय यह त्रिकाली को जानता है (एवं) व्यवहार वर्तमान पर्याय को जानता, तब व्यवहार वर्तमान पर्याय को जानता... निश्चय का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हुआ अब इसकी पर्याय में अशुद्धता है नहीं ? उसे पर्याय में शुद्धता की पूर्णता नहीं तब अशुद्ध अपूर्ण पर्याय है कि

नहीं ? आहाहा ! इसके लिये यह बारहवीं गाथा कहीं (है)।

कि यह जो अपूर्ण शुद्धता है उसके साथ अशुद्धता है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान, जानना चाहिए। उसके ज्ञान में बराबर यह बात आना चाहिए। आहाहाहा ! समझ में आया ? पंडितजी ! आहाहा ! - ऐसा है... धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा (समझना) बापू ! यह तो परमात्मा का मार्ग है। आहाहा ! जिनको सौ इन्द्र नमन करते हैं। आहाहा ! असंख्य देवों का स्वामी इन्द्र, जिनकी सभा में इसप्रकार हाथ जोड़कर कुत्ते के बच्चे की तरह (बैठे हों) बापू ! यह मार्ग कैसा होगा भाई ?

यह कोई साधारण मार्ग नहीं प्रभु ! आहा ! और संत इस मार्ग की प्रसिद्धि करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ! अमृतचन्द्राचार्य ! आहाहा ! जगत को... समाज में संतुलन रहेगा कि नहीं, इसकी कुछ परवाह संतों को नहीं। सत्य यह है और असत्य यह है। बैठे या न बैठे यह तुम्हारी जिम्मेदारी ! आहाहा !

अर्थात कोई - ऐसा कहे कि शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। शुद्धनय तो केवली को नहीं, इसलिये नीचेवालों को शुद्ध है। इसलिये इसके नीचेवालों को शुद्ध नहीं उन्हें व्यवहार है - ऐसा नहीं समझ में आया ?

यहाँ तो पूर्णशुद्ध... ग्यारहवीं गाथा में कहा `ववहारोऽभूदत्थो' पर्याय मात्र गौण करके `नहीं - ऐसा कहकर, तो अब कुछ पर्याय में है ही नहीं ? यहाँ तो उसे गौण करके असत् कहा था। अब सम्यग्दर्शन हुआ, अंतर स्वरूप की दृष्टि हुई, तब अब पर्याय में कहीं अशुद्धता, पर्याय है कि नहीं ? नहीं - ऐसा कहा था, वह तो गौण करके कहा था। अब यहाँ पर्याय, वह सम्यग्दृष्टि को है कि नहीं ? आहाहाहा ! यह सम्यग्दर्शन की पर्याय, शुद्धता की अपूर्णता और अशुद्धता का अंश साथ में होता है। उसे यहाँ व्यवहार कहकर, जानने लायक है - ऐसा कहा है। आदर करने लायक है इससे लाभ है - ऐसा कहा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

ऐसा व्यवहारनय, विचित्रवर्णमाला समान, जाना हुआ उस समय प्रयोजनवान है। विशेष आयेगा। - प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. ४७ गाथा-१२ ता. ३०-७-७८ रविवार अषाढ वदी-१२ सं.२५०४

बारहवीं गाथा उसकी टीका समयसार,

पहले तो - ऐसा कहा कि सोने का अंतिमभाग सोलहवान होता है, उसमें अनेक

वर्ण नहीं, एक ही वर्ण सोने का है। इसीप्रकार जिसने आत्मा का आश्रय लेकर और पूर्ण सोलहवान सोना समान, एकरूप स्वर्णसमान, एकरूप दशा जिसे प्रगटी है, ऐसे केवलज्ञानी को शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। ***शुद्धनय वहाँ है नहीं। पूर्ण हो गया, परंतु एक अपेक्षा से - ऐसा कहा कल कि शुद्धनय की पूर्णता केवलज्ञान में होती है।*** आस्रव अधिकार में... किस अपेक्षा ? कि जो आत्मा परमब्रह्म आनंद पूर्ण आत्मस्वरूप, यही वस्तु स्वयं शुद्धनय है परंतु इसका आश्रय लेकर, जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा हुई, उसे भी शुद्धनय और जिसका आश्रय लेकर परिपूर्ण दशा प्रगट हुई उसे भी शुद्धनय कहा जाता है। पूर्ण हो गया - ऐसा कहने में आता। समझ में आया ?

आया न यहाँ, यह प्रतिवर्णिका का अर्थ यह हुआ। स्वर्ण का एकरूप सोलहवान, इसीप्रकार आत्मा का एकरूप, केवलज्ञान पर्याय पूर्ण इसप्रकार, एकरूप यहाँ... यहाँ द्रव्य का आश्रय तो है ही, ध्रुव ऊपर दृष्टि तो है, परंतु पर्याय में सोने के स्वर्ण के रंग की तरह पूर्णदशा, जिसे प्रगट हुई है, उसे शुद्धनय जाना हुआ अर्थात अब तो उसे बस जानना अकेला रहा बस ! यह विरोध करते हैं न इसमें से शुद्धनय जाना हुआ उन्हें शुद्धनय केवली को कहाँ है ? - ऐसा कहते हैं। यह केवली को हैं - ऐसा कहते हैं यहाँ।

क्या कहा देखो न, सब से ऊपर की एक (पंक्ति) स्वर्ण के वर्ण समान होने से, शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। ***सर्वज्ञ परमेश्वर जैसे सभी जानते हैं इसीप्रकार नय को जानते हैं, बस इतना यहाँ... अब वहाँ नय नहीं। आहाहा ! परंतु यह शुद्धनय का पूर्णरूप पर्याय में जो आता था वह आ गया, इसलिये यह शुद्धनय को जानता है - ऐसा कहा जाता है।*** - ऐसा यह मार्ग है।

और जिसे यह उत्कृष्ट स्वर्ग समान स्वभाव का अनुभव नहीं, उसे स्वर्ण का जैसे तेरहवान चौदहवान पन्द्रहवान होता है; इसप्रकार जिसे मध्यम (भाव का) अनुभव होता है, पूर्ण नहीं, उसे बीच की दशा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, स्व के आश्रय से हुआ है, परंतु पूर्ण नहीं इसलिये वहाँ राग का भाग भी वर्तता है। तब इस शुद्धता को पर्याय का अंश, और अशुद्धता का अंश अनेक हो गये। जो केवलज्ञान में पूर्णएकरूप था- ऐसा एकरूप यहाँ नहीं साधकदशा में। - ऐसा मार्ग (है)। धीरज से समझे तो समझ में आये - ऐसा है, कोई ऐसी कठिन भाषा नहीं। भगवान पूर्ण स्वरूप शुद्धचैतन्य, इसका आश्रय लेकर जिसकी दशा पूर्ण हो गई, केवलज्ञानी को-परमात्मा को, उन्हें अब कोई आश्रय लेना शेष रहा नहीं। इसलिये शुद्धनय पूर्ण हुआ और शुद्धनय को जानते है - ऐसा कहा जाता है। आहाहा !

(श्रोता :- ***शुद्धनय प्रत्यक्ष हुआ कि परोक्ष ?***) ***शुद्धनय प्रत्यक्ष परोक्ष - ऐसा नहीं। शुद्धनय है तो प्रत्यक्ष ही है, परंतु श्रुत (ज्ञान) की अपेक्षा परोक्ष है। जैसे केवलज्ञान आत्मा के असंख्य प्रदेश प्रत्यक्ष देखता- ऐसा (श्रुतज्ञान) नहीं देखता अतः इसे परोक्ष कहा।*** सूक्ष्मबात है भाई ! तत्त्व की बात बहुत सूक्ष्म, अभी तो प्रचलन कम हो गया अतः लोगों को समझना कठिन लगे, परंतु है तो सत्य सरल।

स्वरूप पूर्णानंद का नाथ प्रभु ! - ऐसा जिसने ध्येय बनाया, कल दोपहर को आया था न, जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... - ऐसा त्रिकाल उसे वर्तमान पर्याय जिसकी है उसका लक्ष्य करने पर उसका ध्रुव ऊपर लक्ष्य जाता है। यहाँ यह कहते हैं कि प्रथम तो ध्रुव ऊपर दृष्टि जाती है तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। सम्यक् अर्थात सत्यदर्शन, सत्य अर्थात जैसा पूर्ण सत्य स्वरूप है, पूर्ण जैसा सत्यस्वरूप है - ऐसा ही ज्ञान और श्रद्धान हो, उसे सम्यक् सत्य दर्शन हुआ - ऐसा कहने में आता (है)।

अब, जिसे पूर्णदशा हुई नहीं, उसे व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा जो यहाँ कहना है। अर्थात क्या ? कि दृष्टि तो मध्यम जीववालों की भी (है) दृष्टि तो एक (ध्रुव) ऊपर ही है (समझ में आया ?) परंतु दशा में शुद्धता की पूर्णता का अभाव है, इसलिये वह मध्यमदशा में वर्तते हैं। जघन्यदशा तो होती नहीं। कारण कि यह तो प्रथम सम्यग्दर्शन होते ही, प्रथम समय जघन्य होती है फिर तो बीत गया है बहुत सा समय... आहाहा ! धैर्यवान का कार्य है बापू ! यह कहीं शीघ्रता में आम पके - ऐसा नहीं, कहावत कहते हैं न ! उतावल करने से आम पके ? गुठली बोई और तुरंत आम लग जाय ? `आम' शांति धीरज रखना चाहिए।

यह सत्य को समझने के लिए बहुत धैर्यता चाहिए। आहाहा !

जिसने पूर्णदशा प्राप्त की है उसे शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है, इसमें विवाद करते हैं कि इन्हें शुद्धनय कहाँ रहा अब ? परंतु यहाँ किस अपेक्षा से कहा है ?

शुद्धनय की पर्याय जो आश्रय करना है जिस चीज का इसे तो शुद्धनय कहते त्रिकाली को भी, उसकी पर्याय जो निर्मल है उसे भी शुद्धनय कहते हैं। ऐसी निर्मलदशा जिसे पूर्ण हो गई, उसे पर्याय में शुद्धनय पूर्ण हो गया - ऐसा। आहाहा ! अब - ऐसा कहाँ, धंधे के कारण सूझे (नहीं) इसमें। आहाहा ! पूरे दिन पाप का धंधा। इसमें सत्य सुनने को मिले नहीं अरे ! इसे कब समय मिले ? समय मिले तब फिर विरोध करें।

`कि यह शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान कहा, केवलीको नहीं क्योंकि, यह शुद्धनय तो सातवें, आठवें, नोंवे श्रेणीवालों को शुद्धनय है, परंतु वहाँ तो पूर्ण हो गया' -

ऐसा कहते हैं। परंतु - ऐसा नहीं। शुद्धनय की पूर्णता मध्यमदशावालों को है नहीं, चौदहवीं गाथा में कहा है न, अनुभव कहो कि शुद्धनय कहो कि आत्मा कहो, बापू ? किस अपेक्षा से भाई ! आहाहा !

जहाँ त्रिकाली भगवान पूर्णानंद स्वरूप अतीन्द्रिय अमृत के सागर से भरा हुआ भगवान है। आहाहा ! इसे जिसने ध्येय बनाया और ध्यान में उसे विषय बनाया, आहाहा ! उसे सम्यग्दर्शन ज्ञान हुआ, उसका विशेष आश्रय हो तो चारित्र भी हुआ, परंतु पूर्ण आश्रय नहीं, इसलिये इसे मध्यम दशा वर्तती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की मध्यम दशा वर्तती (है), पूर्ण जो हो तब तो उसे शुद्धनय का पूर्णस्वरूप पर्याय का फल आ गया। द्रव्य का तो आश्रय शुद्धनय है ही। परंतु पर्याय को भी शुद्धनय कहा है। तब इस शुद्धनय का पूर्ण स्वरूप तो प्रगट हो गया भगवान को, अर्थात इसे कहीं अब... व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है यह बात इसे रहती नहीं। परंतु यह बात किसे रहती है ? जिसने इस आत्मा का आश्रय लिया सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, शांति भी थोड़ी प्रगटी, पूर्णशांति नहीं, इसलिये पर्याय में शांति की पर्याय का भी भेद और अशांति अर्थात राग का भी भेद, ऐसे अनेक भावों को बतानेवाली... (व्यवहारनय) है ?

ऐसे अशुद्धद्रव्य को कहनेवाले होने से, कहने का अर्थ जाननेवाला होने से जिसको भिन्न-भिन्न एक-एक भावस्वरूप शुद्धनय का अंश वह पर्याय निर्मल शुद्ध का अंश और अशुद्ध (का अंश), यह भिन्न-भिन्न भाव है। यहाँ अनेकभाव है, जैसा केवली को एकरूप है - ऐसा यहाँ नहीं। शुद्ध का भी अंश है और अशुद्धका भी अंश है। ऐसे भिन्न-भिन्न एक-एकभाव स्वरूप अनेकभाव दिखाये हैं। - ऐसा व्यवहारनय, उसमें (सोने में) विचित्र वर्णमाला, पहले प्रतिवर्णिका था, स्वर्ण का एकरूप इस प्रकार सर्वज्ञ के ज्ञान की पूर्णदशा का एकरूप, आनंद की पूर्णदशा का एकरूप, (जैसे) सोने का एकरूप इसीप्रकार उसकी पर्याय का एकरूप। हसमुखभाई ! - ऐसा है।

अरे ! - ऐसा अवसर मिला मनुष्यपना, इसमें करनेका तो यह है। शेष यह नहीं किया तो फिर हो गया बाद में निःसार... यह चौराशी लाख (योनी) के अवतार। अनजान... द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों में जाना (है) बापा ! यह तो जानता हुआ आत्मा को कहा, आहाहा ! वस्तु चैतन्य स्वरूप है और ध्रुव और पर्याय दो है, इसमें जिस पर्याय ने ध्रुव को पकड़ा... आहाहा ! अनित्यने नित्य का निर्णय किया... वहाँ सम्यग्दर्शन ज्ञान प्रगट हुआ, चारित्र की स्थिरता का एक अंश भी प्रगट हुआ। इसलिये उस दशा को मध्यम दशा कही। पूर्ण दशा नहीं, जघन्य तो उलंघ गया है, सम्यत्व होते ही। आहा ! बीच की दशा में वर्तता है उसे शुद्ध का अंश है पर्याय में और अशुद्ध

का अंश है वह भी पर्याय में, ऐसे भिन्न-भिन्न अनेक भावों को दिखाया है। आहाहा ! विकारी भाव को भी और अविकारी भाव को भी, भिन्न-भिन्न अनेक भाव है इसे जिसने दिखाया है। दिखाया है। - ऐसा व्यवहारनय विचित्र वर्णमाला समान... यहाँ विचित्र वर्णमाला समान, वहाँ (उत्कृष्ट में) एक वर्णमाला समान।

पूर्ण दशा में सोने का एकरूप सोलहवान - ऐसा जहाँ केवलज्ञान और केवलआनंद एकरूप पूर्णशुद्धता... इसे अब शुद्धनय जाना अर्थात कि इसे पूर्णदशा हो गई। आहाहाहा ! परंतु... ***बीच की मध्यमदशावालें का ध्येय तो ध्रुव ऊपर है, दृष्टि तो ध्रुव ऊपर है वह निश्चय। परंतु पर्याय में शुद्धता और अशुद्धता का अंश अभी मध्यम दशावालों को वर्तते है। यह उन्हें जानना यह व्यवहारनय को जानना प्रयोजनवान कहने में आया है।*** आहाहाहा ! समझ में आया ?

यह तो कल कहा गया था, यह तो उसका अधिक (स्पष्टीकरण है)

जाना हुआ, उस समय प्रयोजनवान है। जो शब्दार्थ में आया था कि `व्यवहारदेसिदा' इसका अर्थ किया था कि व्यवहार का उपदेश करना - ऐसा शब्द था। इसका यह अर्थ है, इसका यह अर्थ है, कि व्यवहार दिखाया अर्थात उपदेश किया। अर्थात क्या ? कि उस समय व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान (है) यह `व्यवहारदेसिदा' का अर्थ है, पहले आ गया न ! व्यवहार ? व्यवहार द्वारा उपदेश करने योग्य है यही पूरा विरोध उठता है न ? इसका अर्थ ही टीकाकार ने - ऐसा किया न इसलिए है। उपदेश करना यह बात यहाँ कहाँ है ? यहाँ तो चैतन्यस्वरूप भगवान दृष्टि में आया और निर्मलदशा प्रगट हुई, जघन्यपना पार कर गया, निर्मलदशा पूर्ण हुई नहीं, तब बीच की दशा में मध्यमदशा में, निर्मलदशा भी है थोड़ी और साथ में अशुद्धता भी है तब यह भिन्न-भिन्न अनेक भावों दिखानेवाला अर्थात जाननेवाला - ऐसा व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा ! शशिभाई ! - ऐसा है। आहाहा !

व्यापारियों को यह जैन धर्म मिला, उन्हें व्यापार से फुरसत लेना नहीं और फिर - ऐसा समझना... बापू ! यह किये बिना, छुटकारा नहीं, अन्यथा चौराशी के अवतार तो हैं ही। आहाहा ! कहाँ जन्मे, कहाँ बिछुड़े, कहाँ खेलोगे कूदोगे। यह हमारे संप्रदाय के गुरु हीराजी महाराज गुजर गये, रास्ते में गुजर गये (थे), तब हमने यह पंक्ति कही थी उस दिन हो। कहाँ जन्में ? मारवाड़ में जन्मे थे, कहाँ जन्मे कहाँ बिछड़े काठियावाड़ में बड़े हुये, साधु हुए थे एवं स्थानकवासी साधु हीराजी महाराज, कहाँ लड़ेगो लाड़, न जाने कहाँ रुह तणे जा पड़ेगा हाड़। किस क्षेत्र में शरीर पड़ेगा ? आहा ! रास्ते में यह भाई वढवान केम्प से चले और वह क्या खेराली गये आधे (रास्ते) वहाँ बीच में देह छूट गई। चलते-चलते देह छूट गई...

कहाँ मारवाड़ में जन्म, काठियावाड़ में स्थानकवासी साधु, उत्कृष्ट अच्छी तरह से ऐसे लोगों को प्रिय हुये, और मरण होने पर जगत के कोई साथ में नहीं थे। यह आगे-आगे चलते थे। अकेले स्वयं पीछे से डचूडो (हर्टअटेक) आया चलते चलते अंदर से। आहाहा ! तेहत्तर (संवत की) चैत्र वदी अष्टमी, तेहत्तर, तेहत्तर। इस प्रकार लड़खडा कर गिर पड़े बस रास्ते में देह छूट गयी वही के वही। कहाँ जन्मे, कहाँ बढ़े, कहाँ देह छूटा। आहाहा ! इसीप्रकार यह कहाँ जन्मा कहाँ बड़ा हुआ, बाहर के साधन आदि और कहाँ जाकर देह छूटेगी ? बापू ! आहाहा ! कारण कि देह कहीं इसकी चीज नहीं। यह तो भिन्न है। संयोग (वश) आयी है एवं संयोग का काल पूरा होने पर छूट जायेगी यह तो। आहाहाहा !

इसके पहले यह आत्मा भगवान पूर्णानंद का नाथ है उसका जो इसने ध्येय बनाया... आहाहा ! तब इसकी पर्याय में निर्मलता प्रगट हुई, तब निश्चय दृष्टि तो ध्रुव ऊपर है। परंतु पर्याय में शुद्धता (भी) है थोड़ी अशुद्धता भी है, इन दोनों दशाओं को एक साथ जानना, इसका नाम व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान कहलाता है आहाहा ! कुछ समझ में आया ?

व्यवहार से निश्चय होता है - यह बात यहाँ नहीं, उसीप्रकार व्यवहारनय का विषय नहीं - यह बात भी नहीं। व्यवहार का विषय है। परंतु जैसे निश्चय में ध्रुव ऊपर दृष्टि है यह तो निश्चय हुआ। अब पर्याय में अपूर्ण शुद्धता के साथ में अशुद्धता है इसे जानना, यह कौन नय कहलाये ? कि यह पर्याय है अतः इसे जानना यह व्यवहार नय कहलाये। त्रिकाल को जानना वह निश्चय कहलाया। आहाहा ! ऐसे सभी भंग, भेद और वह भी सभी के अर्थ करने में विरोध। ये यह `व्यवहार दिखाना, उपदेश करना - ऐसा कह कर चौथे, पाँचवें, छठवें (तक) व्यवहार ही होता - ऐसा बताते हैं। और शुद्धनय, पूर्ण है (वह) केवलज्ञानी को है - ऐसा नहीं, उन्हें नय ही नहीं। नय तो सातवें, आठवें, दशवें में है उन्हें शुद्धनय है ऐसा कहकर मध्यमवालों को ही वहाँ नय सिद्ध किया है। नीचेवालों को निश्चय नहीं, सबसे ऊपर पूर्णतावालों को शुद्धनय नहीं है' शुद्धनय यह बीचवालों को होता, इसमें से - ऐसा वह निकालते है। आहाहा ! - ऐसा नहीं भाई ! वस्तु की स्थिति तुम कुछ ख्याल में लो तो बैठ जाय ऐसी बात है। आहा !

कि वस्तु है यह चैतन्यघन है। अनंत... अनंत... गुणों की राशि और एक-एक गुण में अनंत... अनंत... अनंत... सामर्थ ऐसे अनंतगुणों का पूर्ण पिण्ड प्रभु ! प्रभु स्वयं है। भगवान है ! परमात्मा है ! आहाहा ! ऐसे परमात्मा की दृष्टि करना... उसकी इस दृष्टि का नाम सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प दृष्टि प्रगट करना उसका नाम सम्यग्दर्शन

और उस सम्यग्दर्शन के समय, शुद्धता पूर्ण हुई नहीं तब अशुद्धता भी कुछ साथ में है, चाहे आगे बढ़ा हो कुछ सम्यग्दर्शन बाद चारित्र, तो भी उसे, पूर्णशुद्धता नहीं, उसे अशुद्धता साथ में है।

शुद्धता का अंश वह भी पर्याय है अतः व्यवहार का विषय है, और साथ में अशुद्धता का अंश यह भी पर्याय है अतः व्यवहारनय का विषय (है) अरे ! - ऐसा अब कहाँ। वह विचारे फिर (पक्ष में) चढ़ गये, प्रतिमा लेना और... यह व्रत लेना और कपड़े छोड़ना और नग्न हो गये।

अरे बापा ! - ऐसा भेष तो अनंतबार किया भाई ! परंतु इसमें कुछ है नहीं। आहाहा ! अरे ! जिसमें जन्म-मरण का अंत न आये, जिसमें भव का अंत न आये, यह मार्ग क्या भाई ! आहाहा ! मार्ग तो यह, आहाहा ! कल आया था न दोपहर को कि ***जाननेवाली जो पर्याय है वह वर्तमान है यह वस्तु त्रिकाली को बताती है। यह वर्तमान किसका ? कि कोई त्रिकाली है उसका। आहाहा !***

इसप्रकार वर्तमान सम्यग्दर्शन त्रिकाली को श्रद्धता है। वह इसीप्रकार वर्तमान सम्यग्ज्ञान का अंश त्रिकाली को जानता है। वह निश्चय कहलाता और जो ज्ञान का अंश वर्तमान पर्याय शुद्ध और अशुद्धतारूप भेद है, इन पर्यायों को जो जानता (है) उस नय को व्यवहार कहा जाता है। क्योंकि वर्तमान को व्यवहार कहना और त्रिकाल को जानना यह निश्चय कहलाता है। आहाहा ! समझ में आया ?

और इस व्यवहारनय अपेक्षा यह पर्याय है, कुछ शुद्ध है, पूर्ण शुद्ध हो तो निश्चय, कि शुद्धनय अब रहा नहीं और वहाँ व्यवहार तो है ही नहीं। यहाँ अपूर्णता अशुद्धता है, सम्यग्दर्शन साधकभाव प्रारंभ हो गया है, ज्ञान शांति प्रगट हुई है, परंतु पूर्ण शांति नहीं, पूर्णचारित्र नहीं इसलिये उसकी पर्याय में अशुद्धता का अंश, व्रत नियम आदि का विकल्प होता है। आहाहा ! उसे अशुद्धपर्याय को और शुद्ध पर्याय को जाने। पर्याय को जाने उसे व्यवहारनय कहते है।

क्या कहा ? (श्रोता :- पर्याय को जाने वह व्यवहारनय) पर्याय, पर्याय स्वयं व्यवहारनय का विषय है। द्रव्य स्वयं निश्चयनय का विषय है। आहाहा ! त्रिकाली भगवान यह निश्चय का विषय है, और वर्तमान उसका अंश खण्ड यह पर्याय, यह व्यवहार का विषय है। आहाहाहा ! इसलिए धर्म की शुरूआत जिसने की है अंतर आश्रय लेकर, और पूर्णता हुई नहीं, उसे अभी पर्याय में अशुद्धता और शुद्धता का अंश है, वह भिन्न-भिन्न एक-एक भावस्वरूप... देखा ? यह शुद्धता का अंश भी अलग जाति का है, परंतु एक समय का हाँ ?

एक-एक भाव और बाद में जो भाव होता उसके बाद, यहाँ तो एक-एक समय

में जानना है और जाना हुआ उस-उस समय अर्थात कि जिस समय शुद्धता का अंश है और अशुद्धता का अंश है उसे उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान (है)। दूसरे समय कुछ शुद्धता का अंश बढ़ता है अशुद्धता घटती है उस समय वह भिन्न-भिन्न और अनेक को जानना यह प्रयोजनवान (है)। भाई ! यह भिन्न-भिन्न क्यों ? अर्थात एक समय में भिन्न-भिन्न की बात है ?

बाद के समय में भिन्न-भिन्न... प्रथम समय में भिन्न-भिन्न, तीसरे समय में भिन्न-भिन्न अर्थात ? शुद्ध का अंश है और अशुद्ध का अंश है यह भिन्न-भिन्न जाति है। समझ में आया कुछ ? आहा ! मार्ग बापा ! यह वीतराग का मार्ग बापा बहुत अलौकिक है। (श्रोता :- यह एक ही अलौकिक है) हाँ ! आहाहा ! और यह किस प्रकार कहा है देखो तो अवश्य, संत यह कैसी भाषा की सरलता से इसमें सत्य को प्रसिद्ध किया है। इस टीका का नाम आत्मख्याति है। (इसमें) आत्मा को प्रसिद्ध किया है।

अब आत्मा है यह सम्यग्दर्शन में प्रसिद्ध हुआ। सम्यग्ज्ञान में हुआ यह तो त्रिकाल। परंतु अभी वर्तमान पर्याय में पूर्णता नहीं और कुछ अशुद्धता और शुद्धता है। यह शुद्ध और अशुद्ध भिन्न-भिन्न जाति के भाव समय समय में वर्तते, उसे उस समय में उसे जानना प्रयोजनवान है। दूसरे समय जो शुद्धता का अंश बढ़ा, अशुद्धता का अंश घटा - इस भिन्न-भिन्न भाव को उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है, तीसरे समय भिन्न-भिन्न अर्थात शुद्ध को अंश बढ़ा अशुद्धता का अंश घटा। यह दोनों अलग-अलग जाति है। यह भिन्न-भिन्न अनेक को जानना यह व्यवहारनय कहा जाता है। आहाहाहाहा ! अलौकिक बातें है बापू यह।

वस्तु पूर्ण स्वरूप है न ? ध्रुव नित्य है न ? जिसकी दशा है वह त्रिकाली है न ? दशा है (और) उसका त्रिकाली न हो तब यह दशा किसकी ? आहाहाहा ! दशा अर्थात पर्याय, हालत। जिसकी दशा है (अर्थात) हालत उसका त्रिकाली है, उस त्रिकाली को जानना यह निश्चय है और वर्तमान पर्याय के शुद्ध और अशुद्ध अंश साथ में है, यह भिन्न-भिन्न जाति है, उसे उस उस समय उसे जानना वह व्यवहारनय प्रयोजनवान कहा जाता है। जाना हुआ प्रयोजनवान है। उपदेश करना और आदरना यह बात यहाँ नहीं। आहाहा !

- ऐसा है बापा क्या हो ? (श्रोता :- जानना है - हेय-उपादेय करना ?) जानना है फिर इसमें प्रश्न कहाँ रहा ? जानना है बस इतना। हेय का तो प्रश्न बाद में। हेय तो हेय, परंतु यहाँ तो बस है इतना जानना बस इतनी बात है। पुनश्च यह तो हेय है और यह उपादेय है यह तो अलग प्रश्न है। यह तो दो है इसे जानना

दो है उसे जानना, त्रिकाली को जानना, वह निश्चय है और वर्तमान है उसे जानना वह व्यवहार है, बस इतनी बात है। एक न्याय बदले तो पूरा बदल जाये - ऐसा है। यह तो मार्ग बापा ! त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव का स्वरूप है - ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा ! जिसे सुनने बत्तीस लाख विमानों का स्वामी इन्द्र, एक-एक विमान में असंख्य देव दो-दो सागर की स्थितिवाले। आहाहाहा ! एक सागर में दस कोड़ा कोड़ी पल्य, एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष, ऐसे दो सागर की स्थितिवाले असंख्य देव एक विमान में, ऐसे बत्तीस लाख विमान इसमें कुछ थोड़े छोटे है, परंतु बहुधा तो असंख्य देवोंवाले हैं। उसका स्वामी इन्द्र, वह भी मति, श्रुत और अवधि तीन ज्ञानवाले... आहाहा ! वह भी एक आखरी भव देव का, मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले, यह जब भगवान की सभा में हो, और ऐसी वाणी (निकलती) हो वह कैसी हो बापा ! आहाहाहाहा !

(श्रोता :- इसका कुछ नमूना दो।) यह नमूना ही आता है वहाँ का ही यह। आहाहाहा ! यह विदेह की वाणी है यह। आहाहा ! विदेह में गये थे न कुन्दकन्दाचार्य वहाँ से यहाँ आये और यह (शास्त्र) बनाया। फिर टीकाकार चाहे विदेह में न गए भले परंतु उनके भाव को जानते थे। कि इस गाथा का यह भाव है, स्वयं को जानते थे वह इसे जानते थे। अमृतचन्द्राचार्य ! वह तो एक हजार वर्ष पहले हुए थे कुन्दकुन्द तो दो हजार वर्ष पहले गये थे। आहाहाहा !

उस समय जाना हुआ, उस समय क्यों ? गाथा में है हो यह। देखो ! संस्कृत (टीका में) `व्यवहारनयों विचित्रवर्णमालिका स्थानीयत्वात्परिज्ञानायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्' - ऐसा संस्कृत पाठ है। `परिज्ञान मानत्वात्' - समस्त प्रकार से जानते परंतु, तदात्वे उस समय- ऐसा पाठ है इसमें। संस्कृत में।

यह क्या कहते है ? कि निश्चय है जो वस्तु यह तो त्रिकाल एकरूप ही जानना और पर्याय में जो शुद्धता के और अशुद्धता के भेद है, अभी साधक है, साधक है अतः बाधकपना भी साथ में है। यह साधक का अंश और बाधक का अंश, वह अनेक हुआ, भिन्न-भिन्न जाति के हुये। वह भिन्न-भिन्न जाति के हैं, उसे जानना यह प्रयोजनवान है। यह आदर करने योग्य है कि इससे निश्चय होता है, यह बात है नहीं। मोहनलालजी !

ऐसी बातें है भगवान ! क्या हो ? अरे ! प्रभु का विरह हुआ और यह पीछे रह गये। आहाहा ! और यह वाद का विषय ही नहीं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो - ऐसा कहते हैं कि प्रभु तुम जो ज्ञान स्वरूप को प्राप्त हुये हो, तब स्वसमय और पर समय के साथ वाद-विवाद करना नहीं। कारण यह वस्तु कोई ऐसी है, कि वाद-विवाद से अंत आये - ऐसा नहीं। आहाहा !

(श्रोता :- यह साधक को कहीं शुद्धनय का प्रयोजन रहा नहीं ?) यह तो हो गया है। विषय है और कहा न ध्रुव तो सदा है। ध्रुव जो है वह तो सदा है दृष्टि में यह बात तो प्रथम ही कही। यह शुद्धनय का विषय जो त्रिकाल है यह तो है। ***अब पर्याय में शुद्धनय है यह भी अंश है पर्याय में जो शुद्धता का अंश है यह भी एक न्याय से शुद्धनय का ही अंश है।परंतु इसके साथ अशुद्ध जो है - वह यहाँ शुद्धनय का अंश जिसे कहना है उसे यहाँ व्यवहारनय का विषय कहा है। पर्याय है न ?***

त्रिकाली शुद्धचैतन्यप्रभु उसका अवलंबन लेकर ध्येय बनाकर जो दशा हुई उसे भी शुद्धनय का फल आया इसे शुद्धनय एक अपेक्षा से कहा जाता है। परंतु यह पर्याय है इसलिये उसे त्रिकाली विषय की दृष्टिवाले की अपेक्षा से, वर्तमान पर्याय को देखनेवाली है इसलिये शुद्धनय नहीं, यह व्यवहारनय है। आहाहाहा ! अरे ! भगवान तो महाविदेह में बिराजते है, प्रभु तो सभी बातें करते है वहाँ। आहाहा !

आहा ! - ऐसा व्यवहारनय विचित्र अर्थात उसमें `प्रतिवर्णिका' था। एकरूप स्वर्ण का एकरूप- ऐसा केवलज्ञानी का एकरूप पूर्ण शुद्धनय का पूर्ण एकरूप यह शुद्धनय पूर्ण हो गई इसप्रकार। शुद्ध का आश्रय लेना बंद हो गया। इसलिये पूर्णता हो गयी। और उस समय कहा न आस्रवअधिकार में कल बताया था कि शुद्धनय की पूर्णता केवलज्ञान में होती है। इसका अर्थ ? ***कि इसे अब आश्रय लेना रहा नहीं। इसलिये उसको पूर्णदशा प्रगट हुई उसे भी शुद्धनय कहा जाता है। है तो प्रमाण। अरे ! यह।***

इसप्रकार यहाँ त्रिकाली भगवान प्रभु का अवलम्बन लिया यह निश्चय है। यहाँ शुद्धनय प्रगटा है आंशिक, उसे भी, अनुभव को भी शुद्धनय कहा जाता है। परंतु यह किस अपेक्षा से ? शुद्धता के आश्रय से शुद्धता प्रगटी है इस अपेक्षा से। परंतु जहाँ दूसरी अपेक्षा लें कि त्रिकाल को देखनेवाला वह निश्चयनय है, और पर्याय को देखनेवाला वह व्यवहार है। इस अपेक्षा लेने पर यह शुद्धता का अंश और अशुद्धता का अंश इन दोनों को जाना हुआ व्यवहारनय प्रयोजनवान है। आहाहाहा ! - ऐसा है।

(श्रोता :- जानता है कि सहज जानने में आता ?) ***जानना होता है उस समय, बहुत लम्बी बात करने जायें तो पकड़ सकते नहीं*** अर्थात यथार्थ दृष्टि से देखें तो निश्चय का ज्ञान जब हुआ है उस समय ज्ञानकी पर्याय स्वपरप्रकाश की है वैसी ही पर्याय प्रगटती (है); यह तो बहुत बातें आ चुकीं हैं यह तो सभी एक साथ कहीं... यह वस्तुतः तो जितना राग भाव है और जितना शुद्धनय का अंश प्रगट है, उसे

पर्याय अपेक्षा जानना - ऐसा उस समय की ज्ञान की पर्याय सहज (हुई है), यह है इसलिये हुई है - ऐसा नहीं। यह स्वपर प्रकाशक की पर्याय ही उस समय इस जाति की होती है। आहाहाहा ! क्या इसका मार्ग ? क्या इसका फल ? क्या इसकी कला और क्या इसकी रीति प्रभु ! आहाहा !

यहाँ तक तो अपना आ गया था। यह तो अधिक स्पष्ट के लिये है। यह मार्ग, नाथ प्रभु ! अपूर्व है भाई, यह बाहर की प्रवृत्ति और क्रियाकाण्ड में रुक करके, इसमें धरम मानने से यह वस्तु रह गई। आहाहा ! इसे बाहर की महिमा रह गई।

जो राग आये समकिती को वह भी व्यवहार का विषय जानकर, जाना हुआ है प्रयोजनवान... अब इसने अज्ञान में राग की क्रिया को धर्म मानकर और साधन मानकर इससे शुद्धता होगी, (- ऐसा मानना) बहुत विपरीत दृष्टि है। आहाहाहा ! समझ में आया ?

बालको की समझ में आये - ऐसा है हाँ, बालको ध्यान रखना ! सूक्ष्मबात आती है इसलिये, यह तो आत्मा, आठ वर्ष में तो केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। आहाहा !

चैतन्य के स्वभाव से भरा हुआ भगवान ऐसी केवली की पर्यायें तो जिसके ज्ञान गुण में अनंतो मौजूद है। आहाहा ! यह आठ वर्ष की उम्रवाला शरीर - शरीर की उम्र है न ? यह अंदर में केवलज्ञान को देखता है, केवल अर्थात वह पर्याय नहीं - एक आत्मज्ञान जिसमें केवलज्ञान की अनंती पर्याय मौजूद हैं। ऐसे असाधारणज्ञान को देखनेपर, आता है न भाई प्रवचनसार में। प्रवचनसार में आता है कि असाधारण ज्ञान के कारण को देखने पर इसे इसमें (पर्याय में) कार्य आता है। आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र ने तो गजब कर दिया है। केवली का विरह भुलाया जिसने। आहाहा !

वहाँ - ऐसा कहा है प्रवचनसार में कि असाधारण - ऐसा जो ज्ञान गुण त्रिकाली, आहाहा ! उसे कारणरूप ग्रहण करके अर्थात इसे ध्येय बनाकर। आहाहाहा जिसे निर्मल दशा प्रगट होती है। आहाहा ! मोक्षमार्ग जिससे प्रगट होता है असाधारण ज्ञानगुण है, त्रिकाली इसका आश्रय (लेकर) ध्येय बनाकर पर्याय में सम्यग्ज्ञान दशा प्रगट होती है। यह सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है यह कार्य है। त्रिकाली ज्ञानगुण वह त्रिकाली एकरूपगुण अनंतशक्तिवाला वह कारण है और इसे ग्रहण करने पर फिर जो कार्य आया यह कार्य, पर्याय है। आहाहा ! कार्य पर्याय में होता है। कार्य ध्रुव में नहीं होता।

अरे...! अरे...! बात-बात में फर्क आता है। जहाँ दूसरी बात कहने जाते है वहाँ दूसरी तरह से इसमें आता है, ऐसी शैली ! कोई अलौकिक बातें बापा ! आहाहा ! जैन धर्म सर्वज्ञ का कहा हुआ यह दिगंबर धर्म यह कोई अलौकिक चीज है भाई !

यह कोई संप्रदाय नहीं।

वह तो - ऐसा कहते हैं जयपुर के एक थे न वह पण्डित इन्द्रजीत, इन्द्रजीत न ? हाँ, वह कहते कि दिगंबर में जन्म लिया, यह सभी सम्यग्ज्ञानी तो है ही। इन्द्रलालजी न ? (श्रोता :- हाँ, जी, इन्द्रलालजी) इन्द्रलाल, गुजर गये, वह - ऐसा कहते थे। दिगम्बर में जन्मे वह सम्यग्ज्ञानी तो है ही अब इन्हें व्रत लेना और व्रत पालना, आहा !

बापू ! क्या हो (गया) ? अरे रे...! सिर पर कोई स्वामी रहा नहीं, मालिक बिना के पशु भटकते है जहाँ तहाँ। आहाहा ! लकड़ी खायें, मार खायें - ऐसा कहना है हमें तो। स्वामी बिना के पशु... स्वामी को ख्याल रहता कि कोई मारनेवाला है तब पशुओं को वहाँ नहीं जाने दें। यह तो चलते रहते वहाँ और फिर सिर पर लगे फेर मार धड़ाधड़। आहाहा !

इसीप्रकार इससमय सर्वज्ञवीतराग परमात्मा का विरह हुआ लोगों ने अपनी कल्पना से मार्ग चलाया। मार... लगी सिरपर बापा भटकने की। आहाहा !

यहाँ तो परमात्मा ने कहा वह संत जगत को प्रसिद्ध करते हैं प्रभु तुम त्रिकाली वस्तु हो, वस्तु है उसे ध्येय बनाकर सम्यग्दर्शन होना यह एक मार्ग है। इसके अलावा कोई मार्ग है नहीं।

अब इन दोनों को जाननेवाले नय को क्या कहना ? कि त्रिकाल को जाने उसे निश्चय कहना और वर्तमान गुण प्रगटा है पर्याय एवं कुछ शेष है अशुद्धता, यह भिन्न-भिन्न जाति है, ***उसे उस उस समय उस उस अवसर के समय, उस प्रकार जाना हुआ और उस प्रकार वह पर्याय, उसे जानने की योग्यतावाली ही पर्याय वहाँ प्रगट होती है।*** परंतु उसे समझना है वह किस प्रकार समझावें ? आहाहा !

आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु है त्रिकाल चैतन्य, उसका आश्रय लेकर जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान समय-समय स्व को प्रकाशता है और जो कहीं पर्याय (में) शुद्धता आयी एवं अशुद्धता (शेष है) उसे भी प्रकाशती है। वैसा ज्ञान ही समय... समय प्रगट होता है। यह शुद्धता का अंश एवं अशुद्धता है इसलिए स्वपरप्रकाशक-ज्ञान प्रगट होता है - ऐसा भी नहीं। देवीलालजी ! - ऐसा है बापा ! आहाहा !

अरे ! प्रभु तुम कौन हो ? प्रभु बापू अरे तुम्हें प्रभुता की खबर नहीं भाई ? आहाहा ! ***और प्रभुता को जब पहचाना, यह पहचानने की जब दृष्टि प्रगटी। उसे जानना यह तो व्यवहार कहलाता है। तो भी इसे जानना वह तो उस समय... ज्ञान की पर्याय ही ऐसी प्रगटती है, स्व को जानना और जितनी अशुद्धता है इस प्रकार ही पर्याय को जानना, समय - समय स्वपरप्रकाशक पर्याय वह तो स्वतः होती है।***

बहुत अधिक अधिक विस्तार करने जायें बहु तो...। आहाहा ! आहाहा !

प्रभु का मार्ग बापा ! आहाहा ! भाग्यवान को तो सुनने मिले ऐसी बात है हाँ? शेष तो सभी संसार का ज्ञान किया और यह वकील हुये तथा डॉक्टर हुये एल. एल. बी. एवं एम. ए. की पूँछ लगायी न आहाहा ! यह सभी कुज्ञान है। आहाहा !

यह तो प्रभु जो ज्ञान की गठड़ी है। यह ज्ञान का सागर प्रभु है इसमें से जो ज्ञान ध्येय के साथ प्रगटां ! उसी ज्ञान को वर्तमान ज्ञान कहा जाता है। ***उस ज्ञान को वह ज्ञान जानता शुद्ध (एवं) अशुद्ध को जानता वह ज्ञान सहज प्रगट होता है।*** आहाहा ! अतः व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहने में आया है। आहाहा !

आहाहा ! बारहवीं गाथा में बहुत भरा है। व्यवहारनय विचित्र वर्णमाला समान, कौन ? सोना, सोना है न यह अभी पहले ही पूर्ण (शुद्ध) हुआ नहीं, तब उसे आँच देते है अग्नि की तब विचित्र ! वर्ण पीलाश (दिखती) और इसमें अशुद्धता का भाग (है) तांवे का अंश ऐसे सभी वर्ण दिखते हैं और अनेक प्रकार भिन्न-भिन्न रंग भिन्न-भिन्न पीलापन का भाग और वह तांबा का भाग, भिन्न-भिन्न एक समय में, इसीप्रकार यहाँ शुद्धता अंश और अशुद्धता का अंश अनेक है ? विचित्र वर्णमाला समान होने से। आहाहा ! यह भिन्न-भिन्न एक-एकभावरूप अनेकभाव दिखाई देने से... आहाहाहा ! एक ही समय में भिन्न-भिन्न अनेक भावों को दिखाया होने से प्रथम समय (एक), दूसरे समय दूसरा, तीसरे समय तीसरा। आहाहा ! शशिभाई ! - ऐसा मार्ग है। आहाहा ! यह तो जिसे आत्मा का हित करना हो बापू ! आहाहा ! अरे रे ! अनंतकाल से... भटकता है, देखो न कितने ? आहाहा ! बालक जन्मे तब (कभी) वही के वही काटकर निकालना पड़ता माता के पेटमें से व्यवस्थित नहीं निकले, हाँ ? अरे रे ! होता है न ? (बनाव) बनता है न ? काटकर निकालना पड़ता (है)। आहाहा ! यह नौ माह सवा नो माह तो ओंधे सिर वहाँ, किस प्रकार श्वास लेना ? आहार किस तरह (लेना) ? उसे निकालते (समय) काटकर निकालना काटकर निकालते न तब मरकर कहीं जाये। आहाहा ! अरे प्रभु ! क्या है बापा ! ऐसे भव तुमने अनंतबार किये है भाई !

अब इसके दुःख को टालना हो तो यह उपाय है। आहाहा ! यह तीनलोक का नाथ प्रभु भगवान स्वयं, ध्रुव है उसे ध्येय बनाकर पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करना है और फिर स्वरूप में ठहरने पर उसमें जो जाना है, उसमें ठहरना उसका नाम चारित्र है, चारित्र कहीं पंच महाव्रत कि नग्नपना यह कहीं चारित्र नहीं। आहाहा !

इसमें कहते हैं कि जानकर स्थिर हुआ, परंतु पूर्ण स्थिरता नहीं इसलिये अंदर

में अस्थिरता का अंश है - अशुद्धता का और शुद्धता का पर्याय में अंश है वह एक समय में भिन्न-भिन्न जाति का, उसे जानना और देखना, यह व्यवहार का विषय है, यह व्यवहारनय जाना हुआ, यह ज्ञान उस समय - ऐसा ही प्रगटता है। इसे जाना हुआ प्रयोजनवान कहा जाता है। आहाहाहाहा !

अभी तो यहाँ तक आया न उसे पुनः दुहराया। लो एक घण्टा तो होने को आया। आहा दूल्हेरामजी, राम की लगी यह तो। आहाहा ! प्रभु ! तुम कौन हो भाई ! आहाहा ! और तुम्हारी जाति की छाप पड़े पर्याय में जब, आहाहाहा ! जैसे तुम निर्मलानंद हो, ऐसी जब पर्याय में छाप पड़े, जाति की छाप पड़े, इस दृष्टि और ज्ञान को उस तरफ ले जानेपर... आहाहाहा ! यह ज्ञान की पर्याय और श्रद्धा की पर्याय एवं शांति की पर्याय भी अपूर्ण है अभी, अतः त्रिकाली नो विषय है यह तो निश्चय है तब इसे व्यवहार पर्याय है कि नहीं ? एक तो तुमने त्रिकाली द्रव्य कहा एवं उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन कहा तब अब इसे कोई पर्याय, पर्याय (अधूरी) रही है कि नहीं ? कि पूर्ण(ता) हो गई है ? पूर्ण का आश्रय लिया परंतु पर्याय में पूर्ण हो गया है ? हाँ ! आहाहाहा !

क्या बात की है ? गजब की है न ! शशिभाई ! भाई ! तुमने पूर्ण का आश्रय किया ध्रुव का... परंतु पर्याय में पूर्णता हुई है ? हुआ हो तब तो पर्याय का व्यवहार तुमको हो नहीं, और वह जानना रहे नहीं तुम्हें, और जो पूर्ण हुआ तब उसे अशुद्धता या शुद्धता है नहीं। अर्थात कि उसे जानना है ही नहीं। आहाहा ! इसलिये केवली को शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान - ऐसा कहा, अन्यथा तो वहाँ नय कहाँ है ? आहा ! यह कहा था न कल। एक सौ तेतालीस गाथा कर्त्ता कर्म (अधिकार) कि श्रुतज्ञान में व्यवहार भेदरूप निश्चय और व्यवहार, उस नय को केवली लांघ गये। क्योंकि नय है वह श्रुतज्ञान का भेद है। भगवान तो श्रुतज्ञान को पार कर गये हैं। आहाहाहा ! अर्थात उन्हें नय है नहीं। फिर भी - ऐसा कहा कि शुद्धनय पूर्ण हो गया इसका अर्थ यह कि उसका आश्रय करना बाकी रहा नहीं। पूर्णदशा प्रगट हो गई अब जानना काम रहा बस। आहाहा ! यह एक सौ तेतालीस (गाथा) में आता है कर्त्ता कर्म (अधिकार) में। लो यहाँ तक तो कल कह चुके थे। उसका यह चला इतना। कहो छोटाभाई ! दोपहर कल तो कहो अच्छा चला था, [श्रोता :- बहुत अच्छा निहाल हो जायें - ऐसा (था)।] हाँ निहाल हो जायें ऐसी बात सच्ची। आहाहा !

है उसे प्राप्त करना है न प्रभु ! न हो उसे प्राप्त करना हो तो तब नहीं हो। आहाहा ! - ऐसा आया था है न है... है... है... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... है न ? त्रिकाल... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... बस, है उसे प्रात करना

है, है इसप्रकार उसे स्वीकार करना है। आहाहा ! अतः पर्याय स्वीकार करती है, जिसकी हैं उसे। आहाहा ! समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बापू ! आहाहा !

बाद में कहें न सोनगढ़ इसलिए निश्चयवादी, एकांतवादी, एकांतवादी। प्रभु ! तुम्हें खबर नहीं बापू भाई ! (श्रोता :- तब तो आचार्यों को निश्चयवादी कहा) निश्चयवादी अर्थात यह तो एकांत निश्चयवादी... है - ऐसा कि व्यवहार से होता यह बात कहते ही नहीं। निमित्त से होता यह कहते ही नहीं। बात तो ऐसी ही है। व्यवहार है वह जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहते हैं। परंतु व्यवहार से निश्चय हो ऐसी वस्तु नहीं।

(श्रोता :- निमित्त नहीं, तब दोनों उपादान हैं) परंतु दो नय है उन दोनों का विषय विरुद्ध है अन्यथा दो नाम क्यों रखें ? दो नयो का समान विषय हो तब दो नाम क्यों रखे ? एक नय का विषय त्रिकाल है और एक नय का विषय वर्तमान पर्याय है शुद्ध, अशुद्ध आदि, आहाहाहा ! दोनों विरुद्ध का स्याद्वाद समाधान कर देता है। कि त्रिकाली अपेक्षा इसे निश्चय कहा, वर्तमान पर्याय है वह व्यवहार कहा। भेद हुआ न... चाहे शुद्धअंशरूप भेद है, वह व्यवहार है, त्रिकाली अभेद वह निश्चय है। आहाहा ! लो इतना हुआ लो वह बाद में आयेगा।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. ४८ गाथा-१२ ता. ३१-७-७८ सोमवार अषाढ वदी-१२ सं.२५०४

समयसार बारहवीं गाथा है। 'प्रयोजनवान है' यहाँ तक आ चुका है कल। इसप्रकार अपने अपने समय में अर्थात कि स्वरूप की दृष्टि है वह निश्चय का विषय है, दृष्टि का विषय जो है यह निश्चय है और पर्याय के भेद होते हैं वह व्यवहार है। निश्चय का विषय त्रिकाली द्रव्य है और व्यवहार का विषय वर्तमान पर्याय है। '**इस तरह अपने-अपने अवसर में दोनों नय कार्यकारी है**'। इसप्रकार एक नय निश्चय है यह त्रिकाली को विषय बनानेवाला यह आदरणीय है, और वर्तमान में पर्याय का भेद है, यह व्यवहारनय जानने लायक है। इस प्रकार अपने अपने समय में दोनों नय कार्यकारी है। इसप्रकार कार्यकारी है।

'**कारण कि तीर्थ और तीर्थ के फल की ऐसी ही व्यवस्थिति है।' अर्थात जिससे तिरा जाये वह तीर्थ है।** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो मार्ग है, उससे तिरते हैं,

है पर्याय, है व्यवहार, सद्भूत व्यवहार... टीकाकार जयचन्द्रजी पण्डित(जी) ने असद्भूत व्यवहार का निमित्त अपेक्षा कथन किया है। असद्भूत व्यवहार का कथन किया है। व्यवहार तो वस्तुतः व्यवहार, पर्याय में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय है यह व्यवहार है यह तीर्थ है और इसका फल भी केवलज्ञान, यह भी व्यवहारधर्म का फल है। ***जो मोक्षमार्ग है पर्याय है अतः उसे व्यवहार कहा जाता है और उसके परिणाम स्वरूप केवलज्ञान वह भी व्यवहार है। श्रुतज्ञानी को यह केवलज्ञान भी सद्भूत व्यवहारनय का विषय है।*** अर्थात व्यवहार धर्म जो निर्मल, शुद्ध चैतन्य द्रव्य... गहन और गंभीर चीज, उसकी दृष्टि होने पर, उस दृष्टि में गहन विषय का भान होना वह निश्चय है। और वर्तमान पर्याय का प्रगट होना, यह पर्याय व्यवहार है।

`जिससे तिरें' अर्थात कि मोक्ष का मार्ग पर्याय है, परंतु इससे तिरते हैं, तिरने का यह उपाय है और यह व्यवहार धर्म है। है न ? पर्याय, धरम है और यह पर्याय है और मोक्षमार्ग है... जो कि यहाँ तो असद्भूत व्यवहारनय लेंगे। परंतु यह कहीं तिरने का उपाय नहीं। साथ में होता है, उसका ज्ञान कराया है। आहाहा !

वास्तव में तो भगवान आत्मा ! अनंतगुण गंभीर... संख्या अपेक्षा जिसके गुणों का अंत नहीं, और एक गुण है उसकी सामर्थ का अंत नहीं। - ऐसा जो द्रव्य स्वरूप, जिसमें अनंतगुण हैं उन गुणों की भी सीमा नहीं, और एकगुण की शक्ति की जहाँ (अपरिमित) हद नहीं। - ऐसा जो द्रव्य स्वभाव, उसकी गहनता के गंभीरता के विचाररूप पर्याय में उसकी गंभीरता में विचार करे, तब वह पर्याय द्रव्य तरफ ढल जाती है, वह द्रव्य है वह निश्चय है और जो प्रगट हुई पर्याय, यह व्यवहार है, यह तीर्थ है। चौथे पाँचवें छठवें गुणस्थान की निर्मलदशा, यह व्यवहार, तीर्थ है और उसका फल भी व्यवहार, केवलज्ञान (है), यह भी पर्याय है। आहाहा !

`जिससे तिरा जाय वह तीर्थ है' मोक्षमार्ग की पर्याय... वस्तु महा गंभीर सागर (जैसा) इसकी अंतर में प्रतीति होना होना और उसका ज्ञान होना और इसमें रमणताका अंश होना, यह तिरने का उपाय तीर्थ है। द्रव्य तो निश्चय है। इसमें यह पर्याय एवं उपाय और उपाय का फल यह इसमें नहीं। समझ में आया ? और पार होना वह व्यवहार धर्म का फल है। जो यह मोक्षमार्ग पर्याय है, यह भेद है, इसलिये यह व्यवहार है और उसका फल मोक्ष यह भी पर्याय है उसका फल व्यवहार है। आहाहा ! अरे ऐसी बातें है।

पण्डित जयचन्द्रजी (जी) ने इसमें से असद्भूत व्यवहार का... इस समय जो निमित्त होता है वह उसका ज्ञान कराया है। अब, इसमें से यह सभी विरोध उठा है। कि देखो ! यह पाठ है, छठ्ठेमें - ऐसा करना और व्रतपालना नियम करना।

बापू ! - ऐसा नहीं हो ! यह होता है इसका ज्ञान कराया है। इसलिए व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा है।

और वह व्यवहार तथा अनेक भिन्न-भिन्न धर्म बताये है। कहा है न भाई। बहुत सूक्ष्म बात है बापू !

भगवानआत्मा पूरणानंद का कंद, महा महा आश्चर्यकारी, गंभीर गहन स्वभाव का सागर प्रभु ! उसे ध्येय बनाकर... जो ध्येय हुआ अंदर यह निश्चय और ध्येय बनाकर जो पर्याय हुई, यह नहीं थी और हुई इसलिये यह पर्याय यह व्यवहार है। है, है और है यह त्रिकाल, वह निश्चय का विषय है, परंतु नहीं था और प्रगटा, तैरने का उपाय यह तो व्यवहार हुआ और ऐसे व्यवहार के साथ असद्भूत व्यवहार व्रतादि के विकल्प कैसे हों उसका यहाँ ज्ञान कराया है, भावार्थ में। समझ में आया कुछ ?

`और इस व्यवहार धर्म का फल है, पार होना पूर्ण होना', यह सर्वज्ञपना होना यह भी व्यवहार धर्म का फल है। यह भी पर्याय है यह साधक की अपेक्षा से केवलज्ञान भी व्यवहारनय का विषय है। ***केवलज्ञानी को अब नय नहीं, परंतु यहाँ साधक जीव जब द्रव्य और पर्याय के भेदों का विचार करते है तब केवलज्ञान भी व्यवहारनय का विषय है।*** कारण कि प्रगट हुई पर्याय है, यह कहीं अप्रगट वस्तु जो त्रिकाली गहन स्वभाव का भण्डार, एकरूप रहनेवाली, वह यह वस्तु नहीं। आहाहा ! इसलिए कहते हैं कि व्यवहार से तिरा जाय वह तीर्थ वह व्यवहारधर्म, मोक्ष का मार्ग उसका फल केवलज्ञान यह व्यवहार धर्म का फल, अथवा `अपने स्वरूप को पाना वह तीर्थ फल यह। व्यवहार धर्म का फल यह। जैसा स्वरूप है वैसा पर्याय में सर्वज्ञपना प्राप्त होना यह तीर्थ फल है।

दूसरी जगह भी कहा है। `**जइ जिणमयं पवज्जइ ता मा ववहारणिच्छए मुयह**'। आहाहा ! यह व्यवहार-निश्चय उसे छोड़ना नहीं। `**एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं।।' आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवो, जो तुम जिनमत को प्रवर्ताना चाहते हो...** वीतराग मार्ग का प्रवर्तन जिस प्रकार है, इस प्रकार प्रवर्तना चाहते हो, तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों को न छोड़ो। पर्याय है ही नहीं - ऐसा न छोड़ो। द्रव्य है ही नहीं - ऐसा न छोड़ो। `पर्याय नहीं' - ऐसा कहा था ग्यारहवीं (गाथा) में, असत्यार्थ कही थी, यहाँ अब कहते हैं कि, `पर्याय नहीं' - ऐसा न कहो। पर्याय है असत्यार्थ कही थी यह तो गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा था। त्रिकाली वस्तु की, दृष्टि, वस्तु की कराना... वह मुख्य है वह निश्चय है और पर्याय है वह गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा था। परंतु यह पर्याय नहीं - ऐसा न मानो। आहाहाहा !

दोनों नयों को न छोड़ो कारण कि व्यवहारनय बिना तो तीर्थ का व्यवहारधर्म

का नाश हो जायेगा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्षमार्ग की पर्याय है जो भेदरूप दशा है। त्रिकाली अभेद की अपेक्षा से यह मोक्ष का मार्ग है यह भी भेदरूप व्यवहार धर्म है। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता :- किसी जगह व्यवहार कहें किसी जगह निश्चय कहें इसमें हमको निर्णय किस प्रकार करना ?

उत्तर :- यह किस अपेक्षा से ? राग की मंददशा है तब उसकी अपेक्षा इस राग को जब व्यवहार कहा तब निर्मल पर्याय को निश्चय कहना। परंतु यहाँ जब त्रिकाल को निश्चय कहना तब भेद को व्यवहार कहना- ऐसा है। वस्तु की स्थिति तो ऐसी है। आहाहा ! निर्मल पर्याय... यह तो यहाँ रखा बारहवीं गाथा में भिन्न-भिन्न पर्याय निर्मल और राग यह अनेकप्रकार हुये एक जात नहीं हुई, यह दोनों को जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा है। इन दोनों को जानना यह व्यवहार नय का प्रयोजन है। आहाहा !

जो मोक्ष का मार्ग है यह पर्याय है और उसके साथ असद्भूत विकल्प, व्रतादिक के होते हैं यह भी विकारी पर्याय है अर्थात दो जो हुआ अनेक हुए। इस अनेक को इस तरह जानना, वह व्यवहार है और त्रिकाली को जानना, वह निश्चय है अरे ऐसी बातें है। प्रगटे और नाश हो यह वास्तव में व्यवहार है, उत्पादव्यय है और ध्रुव जो त्रिकाली है वह निश्चय है जिसमें उपजना नहीं, बदलना नहीं, व्यय होना नहीं, एकरूप जो अनंतगुण की राशि प्रभु ! आहाहाहाहा !

एक परमाणु का एक सत्ता गुण लो तो भी एक समान है और एक आकाश का सत्ता गुण लो अनंतगुणा चौड़ा तो भी वह समान। आहाहा !

(श्रोता :- शक्ति और भाव अपेक्षा से समान है) यह, इस प्रकार ही समान है। क्षेत्र से बड़ा अतः बड़ा है - ऐसा नहीं (श्रोता :- भाव अपेक्षा बड़ा न ?) एक (समान) ही है, क्षेत्र से बड़ा अतः बड़ा है यह बात ही नहीं यहाँ।

इसीप्रकार भगवानआत्मा... अंगुल के असंख्य भाग में अनंत आत्मायें है एक-एक आत्मा की सत्ता... आहाहा ! `अस्तित्वरूप जो है' वह पूर्ण है, और यह आत्मा की सत्ता... केवली समुद्घात करें तब भी सत्ता, सत्ता है वह तो सत्ता ही है, यह सत्ता बढ़ गई और यहाँ सत्ता छोटी हुई - ऐसा नहीं। गहन बात है भाई !

वीतराग मार्ग तो समझना बहुत कठिन है। आहाहाहाहा !

यहाँ कहते हैं कि व्यवहार बिना तो तीर्थ... व्यवहार धर्म। पर्याय जो है यही व्यवहार है। पंचाध्यायी में तो स्पष्ट... पर्याय वह व्यवहार और द्रव्य वह निश्चय- ऐसा स्पष्ट लिया है, और यहाँ भी ग्यारहवीं गाथा में, सभी व्यवहार अभूतार्थ है - ऐसा

कह कर... सभी अभूतार्थ है - ऐसा कहकर, उसकी पर्याय का भाव भी अभूतार्थ है - ऐसा कहकर निषेध किया है। आहाहा !

एक त्रिकालभगवान, अनंत... अनंत... गुण इस अनंत की कोई सीमा नहीं। आहाहाहाहा ! जैसे क्षेत्र की कोई मर्यादा नहीं, कि क्षेत्र कहाँ हो रहा पूरा, लोक के बाहर अलोक कहाँ पूरा हुआ ? क्या है यह ? वह बात ! इस क्षेत्र की जहाँ हद नहीं, अंत नहीं। इसीप्रकार काल का कभी अंत नहीं, कब से काल प्रारंभ हुआ ? आहाहाहा ! अनादि ! इसीप्रकार भावों की संख्या की सीमा नहीं, एक आत्मा के गुणों के संख्या की सीमा नहीं, आहा...हा ! क्षेत्र का भी जहाँ माप हद कहीं नहीं, काल की सीमा नहीं, भूत और भविष्य की। आहाहा ! कि यहाँ से प्रारंभ हुआ और यहाँ पूरा हुआ - ऐसा है कहीं ? ऐसी इसकी गहनता...

इसीप्रकार यह भगवानआत्मा में अनंत जो गुण है, इन गुणों की संख्या की भी गंभीरता का पार न मिले, सीमा न मिले, चाहे क्षेत्र इतना शरीरप्रमाण। आहाहा ! ऐसे अनंतगुण... अनंत का अंत नहीं इतने अनंत, इसप्रकार और अनंतगुणों की अनंतता की हद नहीं इतना... और एकगुण की भी शक्ति की सीमा नहीं इसकी एक शक्ति ऐसी। आहाहाहा ! क्योंकि एक-एकगुण में अनंतगुण का रूप, वह गुण कितने ? कि हद नहीं, अंत नहीं। आहाहाहा ! इतने गुणों का एकगुण में रूप। क्योंकि एक-एकगुण में अनंतगुण का रूप, वह गुण कितने ? कि सीमा नहीं, अंत नहीं। आहाहाहा ! इतने गुणों का एकगुण में रूप। आहाहाहा ! तब एकगुण की भी सीमा नहीं। आहा ! बापू ! मार्ग कोई अलग है भाई ! आहाहा !

ऐसा जो एकगुण, उसकी भी जहाँ सीमा नहीं कि यहाँ गुण पूरा हो गया - ऐसा नहीं कहीं ! आहाहाहा ! ऐसे अनंतगुण की एकरूप वस्तु वह निश्चय है, जो कायम है वह निश्चय है, और जो उपजे और विनसे वह व्यवहार है। आहाहा ! संसारी पर्याय होती है, यह जाती है, मोक्ष की पर्याय होती है। फिर से... मोक्ष की पर्याय होती है न ? यह कहीं त्रिकाल नहीं है। आहाहाहा ! यह तो गहन बातें है प्रभु। क्या कहें ? आहाहाहाहा !

इस गंभीरता की छोर पाने जायें, वहाँ दृष्टि निर्विकल्प होती है। दृष्टि में मर्यादित राग रहे, वहाँ तक उसकी बेहद शक्ति का स्वभाव इसकी प्रतीति में न आये, इसके ज्ञान में न आये। कारण कि (जो) राग है सीमित मर्यादित एवं सीमा में है। आहाहाहा ! और अराग जो सम्यग्दर्शनज्ञान की पर्याय, वह सम्यग्ज्ञान की पर्याय भी बेहद है। आहाहा ! क्योंकि यह स्वयं बेहद गुण द्रव्य को स्वयं जाने और मानता है। आहाहाहाहा ! यह तो सूक्ष्मबात है भाई...!

यह सम्यग्ज्ञान की एक समय की पर्याय, असीमित ऐसे गुणों और असीमित - ऐसा एक गुण का सामर्थ ऐसे अनंतगुणों का एकरूप जिसकी पर्याय में जानने में आए वह पर्याय कितनी महान ? आहाहाहा ! इस पर्याय के अविभाग प्रतिछेद करने जायें तो अंत नहीं इतने है। आहाहाहा ! मार्ग बहुत सूक्ष्मभाई ! सत्य है यह कोई अलौकिक बात है। आहा !

यह चीज जो त्रिकाली वस्तु है, जिसमें हलचल नहीं, जिसमें पलटना नहीं, जिसमें नाश होना नहीं, जिसमें उत्पाद नहीं। - ऐसा जो भगवानआत्मा पूर्णानंद का नाथ, यह सम्यग्दर्शन का विषय, यह निश्चय। आहाहा ! और जो पर्याय प्रगटी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान महागंभीर, पदार्थ को जानकर और प्रतीति करके, फिर भी प्रगटी पर्याय वह व्यवहार है। आहाहाहाहा ! और इसके साथ व्रतादिक का विकल्प रहे, यह असद्भूत व्यवहार है। आहाहा !

यह असद्भूत व्यवहार यह धरम नहीं कहीं... इसीप्रकार उसका फल केवलज्ञान... यह इसका फल नहीं। आहाहाहा ! परंतु यह निर्मल पर्याय के साथ व्यवहार का विकल्प किस मर्यादा का होता है - ऐसा बताकर उसे व्यवहार धर्म कहा, उपचार से। समझ में आया ?

वास्तविक तो व्यवहार धर्म यह है। भगवानआत्मा बेहद अपरिमित स्वभाव का सागर (है) आहाहा ! इसका केवलज्ञान में माप आये। परंतु है वस्तु अनंतशक्तियाँ और शक्तियों (में) का सामर्थ, आहाहा ! इसको जिसने प्रतीति में अनुभव में सम्यग्दर्शन में (लिया), आहाहा ! इस पर्याय को भी यहाँ तो व्यवहार कहा जाता है और यह व्यवहार धर्म तिरने का उपाय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो राग की अपेक्षा निश्चय, द्रव्य की अपेक्षा व्यवहार बहुत सूक्ष्म बापू मार्ग ! क्या कहें ? आहाहा !

जिनेश्वरदेव एवं उसके कहे हुये तत्त्व यह अन्यत्र कहीं है नहीं। किसी ने जाना नहीं और इसकी गंभीरता को कोई पकड़ सकता नहीं। सभी ने कल्पित बातें कीं है। आहाहा ! यह तो जिनेश्वर देव का कहा हुआ मार्ग, जो मार्ग द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है, आहाहाहा ! उसे भी यहाँ व्यवहार, तिरने का उपाय कहकर उसे व्यवहार धर्म कहा।

तीर्थ (अर्थात) व्यवहारधर्म का नाश हो जायेगा। देखा ? पर्याय नहीं मानो (तो) असत्यार्थ कही थी ग्यारहवीं (गाथा) में, पर्याय नहीं - ऐसा मानो तो सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र और चौथा, पाँचवां, छठवाँ, सातवाँ, आठवें की पर्याय, उसका नाश हो जायेगा। आहाहा ! हाँ ? क्योंकि चौदहगुणस्थान ही द्रव्य में नहीं और चौदह गुणस्थान को असत्यार्थ और अभूतार्थ कहा है। (श्रोता :- इसे तो अजीव अधिकार में पुद्गल कहा

है) उसे अपेक्षा से (कहा) क्या अपेक्षा है बापू ! आहा ! यह असत्यार्थ कहा है परंतु यदी पर्याय और गुणस्थान है ही नहीं तब तो तीर्थ ही नहीं। चौथा, पाँचवा, छठवाँ, सातवां गुणस्थान की दशा ही नहीं। आहाहा ! छोटाभाई ! - ऐसा गंभीर है। आहाहाहा !

यह तो यहाँ कहेंगे, भावार्थ में आयेगा। भावार्थ में व्यवहार(को) कहेंगे। यह व्यवहार धर्म है - ऐसा कहेंगे। वास्तविक व्यवहारधर्म... तो यह पर्याय है यही व्यवहारधर्म है, त्रिकाली की अपेक्षा से। परमार्थ वचनिका में कहा है, परमार्थ वचनिका में है कि जो निश्चय मोक्षमार्ग है यही व्यवहार है। पर्याय है न यह ? आहाहा !

अर्थात कि जो पर्याय नहीं - ऐसा कहा था, यह गौण करके, मुख्य निश्चय का लक्ष्य कराने, उसे असत्यार्थ कहा था गौण करके। परंतु वह है ही नहीं - ऐसा मानें तब तो चौथा, पाँचवां, छठवां, सातवां, आठवां गुणस्थान की दशा ही नहीं। आहाहाहा ! यह तो वीतरागमार्ग बापू बहुत (सूक्ष्म)... स्याद्‌वाद किस अपेक्षा से कहा है इस अपेक्षा इसे जानना चाहिए। असत्यार्थ कहा था, किस अपेक्षा से, पर्याय को व्यवहार कहते हैं, किस अपेक्षा से ? फिर साथ में राग होता उसे व्यवहार कहते हैं किस अपेक्षा से ? आहाहा ! अकेला व्यवहार असत्, दया, दान, व्रत, भक्ति यह तो बंध का कारण है, यह कहीं मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा ! व्रत, नियम, प्रतिक्रमण बाहर के विकल्प जो सभी उठते हैं, वह तो सभी बंध के कारण है। यह कहीं मोक्ष का कारण भी नहीं, उसका फल मोक्ष ही नहीं, इसका फल तो बंध है। आहाहाहा !

`तीर्थ... व्यवहारधर्म को नहीं मानों तो व्यवहार का नाश हो जायेगा' पर्याय का नाश हो जायेगा। पर्याय नहीं - ऐसा हो जायेगा- ऐसा नहीं और `निश्चय बिना...' वास्तविक पूरणतत्त्व है' उसकी दृष्टि बिना भी तत्त्व का नाश हो जायेगा। तत्त्व तो मूल यह है त्रिकाली, यह पर्याय तो प्रगट हुई दशा है। परंतु जिसे प्रगटना नहीं, जिसे एकरूप त्रिकाल रहना है - ऐसा जो निश्चय न मानों तब तो तत्त्व का नाश हो जायेगा। आहाहाहा ! - ऐसा है। परंतु मार्ग में बहुत बदलाव हो गया, बहुत न ! आहाहा ! तीनलोक के नाथ केवली परमात्मा तो बिराजते हैं न ! महाविदेह में वहाँ से तो यह बात आयी है। आहाहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे आठ दिन रहे थे और यहाँ आकरके यह शास्त्र बनाया है। आहाहा ! निश्चयनय बिना अर्थात द्रव्य के स्वभाव की त्रिकालता बिना, तत्त्व का नाश हो जायेगा, वस्तु का नाश हो जायेगा। निश्चय तत्त्व न मानें तो वस्तु ही नहीं रहेगी कहीं। आहाहा !

निश्चय पूर्ण सत्य को न मानों, तो तब द्रव्य का नाश हो जाता है, और वर्तमान प्रगटी पर्याय नहीं - ऐसा माने तो मोक्ष का मार्ग जो तीर्थ है उसका नाश हो जाता है। समझ में आया ?

अब भावार्थ :- `लोक में सोने के सोलहवान (ताव) प्रसिद्ध है' `सोलहवान कहते हैं न ?' तुम्हारे (यहाँ) क्या कहते हिन्दी में ? सोलहवान। पूर्ण सोलहवान सोना। `पन्द्रहवें वान तक उसमें चूरी आदि, तांबा आदि, जस्ता आदि पर-संयोगों की मलिनता रहती है' चौदहवान पंदरवान तक को सोने में तांबे का जस्ता का अंश मिला हुआ रहता है, सोलहवान में यह अंश रहता नहीं। सोलहवान शुद्ध सोना हो जाता है। इसलिये अशुद्ध कहलाता है। सोने में तेरहवान और चौदहवान यह अशुद्धता कहलाती। पूर्ण सोलहवान नहीं इसलिए, और ताप देते देते अंतिम ताप से उतरे... अग्नि की आँच देने पर सोने को, अंतिम ताप देने से सोलहवान पूरा होता है, `तब सोलहवान शुद्ध स्वर्ण कहलाता है'।

यह तो तुम्हारे घर की, सोने की बात है। आहाहा ! अब यह तो दृष्टांत हुआ।

जिन जीवों को सोलहवान सोने का ज्ञान, श्रद्धान और प्राप्ति हुई उन्हें पन्द्रहवान तक का कुछ प्रयोजनवान नहीं। अर्थात कि इसे पन्द्रहवान है ही नहीं, है ही नहीं फिर उसे प्रयोजनवान कहाँ रहा ? सोलहवान हुआ उसे चौदहवान, पन्द्रहवान है ही नहीं। इसलिये उसका प्रयोजन उसे कहीं नहीं। आहाहा !

और जिसे सोलहवान शुद्ध सोने की प्राप्ति नहीं हुई उसको वहाँ तक पन्द्रहवान तक का प्रयोजनवान है। प्रयोजनवान है अर्थात कि इतना है वह जानना चाहिए। उसे यथार्थ जानना चाहिए कि यह तेरहवान है कि चौदहवान है कि पन्द्रहवान है - ऐसा जानना चाहिए, प्रयोजनवान है। उसे सोलहवान मान लें तब भूल है और पन्द्रहवान है उसे न मानें तो भूल है। आहाहा ! यह तो दृष्टांत हुआ।

`इसीप्रकार यह जीवनामक पदार्थ (है)' भगवानआत्मा अंदर... आहाहा ! जीव नामका पदार्थ। जीव यह पद है शब्द, जी...व दो अक्षर हो तब पद (बनता) और अर्थ यह जीव वस्तु है। जैसे शक्कर शब्द है यह पद है और शक्कर वस्तु है अर्थात इसका अर्थ अर्थात पदार्थ है। इसीप्रकार जीव शब्द है यह पद है, और जो वस्तु है (वह) अर्थ, यह अर्थ यह वस्तु है, यह पदार्थ है। जीवनामक पदार्थ है, वह... पुद्‌गल के संयोग से, पुद्‌गल का निमित्तरूप संयोग होने से, अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है। यह अशुद्धरूप अपने कारण, परंतु उसे पुद्‌गल का निमित्तरूप संयोग है। इस निमित्त के संबंध में उसकी अशुद्धता जीव की पर्याय में हो रही है। है ? पुद्‌गल के संयोग से पुद्‌गल का निमित्तरूप संयोग होने से, अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है। है अशुद्धरूप अपने कारण परंतु इसे पुद्‌गल का निमित्तरूप संयोग है। यह निमित्त के संबंध से, उसकी अशुद्धता जीव की पर्याय में हो रही है। है ? पुद्‌गल के संयोग से, संयोग से कहा है, संयोग अर्थात दूसरी वस्तु है बस इतना। परंतु हुई है अशुद्धता अनेकरूप

हुई वह अपनी पर्याय में। आहाहाहा ! समझ में आया ?

`जीव नामक पदार्थ है वह पुद्‌गल के संयोग से संबंध से अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है' यह संबंध स्वयं किया है, इसलिए अशुद्ध हुआ है। आहाहा ! समझ में आया ? उसका सभी परद्रव्यों से भिन्न, उसे सर्व परद्रव्यों से भिन्न, `एक ज्ञायकपने मात्र का ज्ञान'... आहाहा ! सर्व परद्रव्यों के संबंध से भिन्न एक ज्ञायकपना जाननेवाला सर्वज्ञ स्वभावी भगवान पूर्ण, स्वभाव की बात है हो। त्रिकाल ! ज्ञायक ! एकरूप त्रिकाल सर्वज्ञ स्वभाव, एकरूप त्रिकाल। - ऐसा ज्ञायकभाव मात्र, ज्ञायकभाव मात्र, अकेला ध्रुवपना, ज्ञायकरूप, सर्वज्ञ स्वभावरूप, सामान्यरूप, ध्रुवरूप, एकरूप, सादृश्यरूप मात्र `ज्ञान श्रद्धान और आचरण प्राप्ति' उसका जिसे ज्ञान श्रद्धान और आचरणरूप प्राप्ति पर्याय में, यह तीनों जिसे हो गये उसे तो पुद्‌गलसंयोगजनित अनेकरूपता को कहनेवाला अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनवान (नहीं है) अर्थात उसे अशुद्धनय है नहीं। है नहीं अर्थात जानना प्रयोजनवान रहा नहीं। सोलहवान हुआ उसे पन्द्रहवान रहा नहीं अर्थात् प्रयोजन रहा नहीं। इसप्रकार सोलहवान केवलज्ञान हो गया उसे फिर संयोगजनित पर्याय है नहीं, इसलिए उसे प्रयोजन उसका रहा नहीं। समझ में आया ? गंभीर बातें बापू ! एक-एक बात... ऐसी बात है भाई ! लोगों ने धर्म को साधारण कर डाला परंतु धर्म बापू कोई अलौकिक चीज है। आहााह !

क्या कहा ? सर्व परद्रव्यों से भिन्न, संयोग के संबंधों से भिन्न, एक ज्ञायकरूप मात्र का, अकेला भगवान जाननेवाला शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु उसका जिसे ज्ञान हुआ, आहाहाहा ! उसका जिसे सम्यग्दर्शन हुआ श्रद्धा प्रतीति हुई और उसमें स्थिरतारूप आचरणप्राप्ति हुई। आहाहा ! ज्ञायकरूप मात्र का ज्ञान, ज्ञायकरूप मात्र का ज्ञान, क्या कहा ? ज्ञायकरूप त्रिकाली का ज्ञान, त्रिकाली की श्रद्धा और त्रिकाल में आचरण ठहरना... क्या कहा ? सर्व परद्रव्यों से भिन्न, एक ज्ञायकरूप, त्रिकाली ज्ञायक एकरूप स्वभाव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और आचरण... ऐसे ज्ञायकभाव के पूरणपने का ज्ञान, प्रतीति और आचरण... आहाहा ! प्राप्ति, `यह तीनों जिसे हो गये, उसको तो पुद्‌गल संयोगजनित अनेकरूपभाव को कहनेवाला अशुद्धनय कुछ प्रयोजनवान नहीं।' उसे अशुद्धनय है ही नहीं, प्रयोजनवान नहीं अर्थात कि इसे है ही नहीं, और नीचे है अतः जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहा ! समझ में आया ? ऐसी सूक्ष्म सूक्ष्म बातें और फुरसत मिले नहीं, अवकाश मिले नहीं आदमी को। (श्रोता :- कब विचारे) चिमनभाई ! इस लोहे के सामने इसमें क्या इसमें ? आहाहा ! स्टील का बड़ा कारखाना अब वहाँ रुके कि इस (ज्ञायक) कारखाने में रुकें ? आहाहाहा ! थोड़ा भी पर का हो सकता नहीं, पुण्य और पाप का भाव करे - असंख्य प्रकार का शुभ और असंख्य प्रकार

का अशुभभाव करे अज्ञानी, परंतु पर को तो यह एक अंगुली पलट सके (नहीं)। यह प्रश्न ही कहाँ है ? इसने अनंत काल में सभी किया, अर्थात क्या ? शुभ और अशुभभाव, पर का तो किंचितमात्र एक परमाणु को पलट सके (नहीं) यहाँ है न यहाँ, तीनकाल में कर सकता नहीं। आहाहा ! (श्रोता :- रोज हमें करना और कर सकता नहीं, आप कहते है हमे करते क्या, इसका उपाय क्या ?)

यह कर सकता नहीं, यह कौन है और इसके भाव क्या होते है यह इसे पहले निश्चित करना चाहिए। कर सकता नहीं फिर भी भाव होता है यह क्षणिक है कि उपाधि है कि मैल है - ऐसा इसे जानना चाहिए और इस बिना की त्रिकाली चीज जो है... यह तो क्षणिक उत्पन्न होती है, यह कर सकता है अज्ञानभाव में, शुभ और अशुभभाव अज्ञानभाव से कर सकता है। पर का तो अज्ञानभाव से भी कर सकता नहीं। आहाहाहा !

यह वकील जवाब बोले न ! इस कायदे का यह है और यह भाषा आत्मा कर सकता नहीं तीनकाल में, जयसुखभाई ! (श्रोता :- उस दिन अैसा नहीं जाना ? उस दिन कहाँ खबर थी, उस दिन तो होशियारी में अंदर... आहाहाहा ! पर के एक रजकण को भी आत्मा एक प्रदेश से इसप्रकार दूसरे प्रदेश हटाने की क्रिया कर सकता नहीं। (श्रोता :- इसमें तो दो मत है। एक परमाणु का न कर सके ?) यह तो सभी अज्ञानी कहते हैं यह तो बात हो गई है। वहाँ रामविजय के गुरु थे उनके साथ चर्चा हुई थी। सुमनभाई को... इनका लड़का और जज अपने कनुभाई अहमदाबाद में जज है न ? यहाँ के हीराभाई के लड़के। उस मकान में हम थे सवातीन वर्ष... जज है कनुभाई ! यह दोनों जब गये, यह कहते कि आत्मा पर का कुछ कर सके नहीं। परमाणुं का नहीं कर सके, शरीर का कर सके। आहाहा ! ऐसे न ऐसे। क्या हो भाई !

अर्थात क्या करना ? परद्रव्य का करना अर्थात परद्रव्य अपनी पर्याय बिना का है ? कि उसका करना हो ! जिससमय तुम कहते हो कि इसका करना, तब यह द्रव्य क्या कार्य बिना का है ? कि उसका तुम करो ! लोजिकन्याय से पकड़ना पड़ेगा कि नहीं इसे। (श्रोता :- यह तो अपना काम करे और अपने भाई का भी करे) धूल में करे नहीं, अभिमान करे। आहाहा ! लोगों में - ऐसा कहते हैं कि एक गाय का चरवाहा इसीप्रकार पाँच गाय का चरवाहा, एक गाय को बाहर चरने ले जाये (जंगल में) साथ में पाँच को ले जाये तो क्या तकलीफ ? इसीप्रकार एक के घर का करे और दूसरे घर का करे ! परंतु यहाँ तो कहते हैं कि एक का भी कर सकते ही नहीं। आहाहा !

ऐसी बातें है... अज्ञानदशा में करे तो यह पुण्य-पापभाव को करे। शुभ-अशुभ भाव करे। यहाँ कहते हैं कि जिसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र पूर्ण प्राप्त हुआ उसे अशुद्धि होती नहीं। यह विकार भाव ही होता नहीं अर्थात इसे अशुद्धनय की कुछ जरुरत नहीं अर्थात है ही नहीं अशुद्धि। यहाँ इसका अर्थ यह है कि जिसे अशुद्धनय नहीं, उसे जानना कहाँ रहा, परंतु जिसे अभी राग का अंश है, और शुद्धता भी अंशिक प्रगटी है, उसे जानना रहता है कि मैं अभी अपूर्ण हूँ। हमारी दशा पूर्ण है नहीं - ऐसा उसने जाना हुआ, (इसप्रकार) जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहा !

अनेकरूपता का कहनेवाला अशुद्धनय कुछ प्रयोजनवान नहीं, परंतु जहाँ तक शुद्धभाव की प्राप्ति नहीं हुई, वहाँ तक जितना अशुद्धनय का कथन है अर्थात कि पर्याय की पूर्णता नहीं, और रागादिक का भाव है, उतना यथापदवी प्रयोजनवान (है), जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा ! - ऐसा है (कि) जाना हुआ प्रयोजनवान है। कहा न ? कि पूर्ण शुद्ध हुआ उसे अब अशुद्धनय नहीं अतः उसे अशुद्धनय प्रयोजनवान नहीं। अर्थात अशुद्धनय को जानना उसे है नहीं, और इसको तो अभी अशुद्धि है, शुद्धपर्याय है और अशुद्धराग है, दोनों साथ हैं, इसलिये उसे उस समय उतना उस प्रकार है - ऐसा उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है।

पूर्ण होने के बाद अशुद्धप्रयोजन नहीं इसका अर्थ क्या हुआ ? कि उसे अशुद्धि नहीं। नहीं इसलिए प्रयोजनवान नहीं। इसे अशुद्धता है और जाना हुआ प्रयोजनवान है। अशुद्धता है मेरे में और शुद्धता की पूर्णता नहीं - ऐसा इसे बराबर यथार्थरूप जानना चाहिए। जो इसप्रकार न जाने तो तीर्थ का नाश हो जाये। अर्थात मोक्षमार्ग की पर्याय के साथ निमित्त है उसका भी अभाव हो जाये। आहाहाहा ! समझ में आया ?

इसलिए - ऐसा नहीं कि व्यवहार... जो निर्मलपर्याय आई, वह तो यथार्थ व्यवहार है, परंतु साथ में राग है इसलिये थोड़ी अशुद्धता है और शुद्धता (है) अतः दोनों को जानना, वह उसे प्रयोजनवान है। इसे है अतः जानना प्रयोजनवान (है)। पूरण (दशावालों) को नहीं अतः उसे जानना प्रयोजनवान नहीं उसे अशुद्धता पर्याय में नहीं। यहाँ तो है अतः जानना प्रयोजनवान है - ऐसा कहा। आहाहा ! समझ में आया ?

अब एक-एक गाथा में इतनी गंभीरता भरी है। अब घर (पर) पढ़कर बैठ जाये पूरा समयसार। एक व्यक्ति कहता था कि तुम प्रवचनों में समयसार की बहुत प्रशंसा करते हो, ओहोहोहो ! पन्द्रहदिन में पढ़ लिया कहता था... आहाहा ! (श्रोता :- पढ़ गया न परंतु... समझा कुछ ?) इसमें बापू पन्द्रह दिन में रट के, पहाड़ा रट जाते है न समझे बिना अक्षर पढ़ गया इससे भी क्या हुआ ? परंतु उसमें भाव किस

अपेक्षा से कहा है वह समझे बिना पढ़ा क्या ? `**बांचे पर नहीं करे विचार, वह समझे नहीं पूरा सार**' यह हम पढ़ते थे दलपतराम में उन दिनों सत्तर वर्ष पहले, कवि थे कवि परीक्षा लेनेवाले। वांचे पर नहीं विचार, वह समझे नहीं पूरा सार। पढ़ता रहे परंतु समझे नहीं कि यह क्या है आहाहा !

जब तक शुद्धभाव की प्राप्ति हुई नहीं तब तक, अशुद्धनय का विषय है - ऐसा कहना है। उसका विषय है। (पूर्ण) शुद्धवालों को - ऐसा विषय ही नहीं अर्थात अशुद्धनय प्रयोजनवान नहीं। परंतु यहाँ अभी यह विषय है। अतः उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। मूल में तो - ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा !

उतना यथापदवी प्रयोजनवान है `जहाँ तक यथार्थ ज्ञान श्रद्धान की प्राप्तिरूप' अब तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई उसकी बात करते हैं। वह तो पूर्ण प्राप्ति हुई नहीं, और अपूर्णरूप शुद्धपर्याय पूर्ण हुई नहीं एवं राग है, अर्थात है उसे जानना बराबर है। पूर्ण को तो है नहीं, है नहीं अतः जानना प्रयोजन कहाँ रहा ? यहाँ तो है, वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। कारण कि है उसे जानना है। आहाहा ! समझ में कुछ आया ?

जब तक यथार्थ, अब यहाँ नीचे का लिया, यह यहाँ गाथा में यह कुछ नहीं परंतु इन्होंने (पं. जयचनद्रजीने) लिखा। गाथा में तो मात्र जिसे निश्चय की दृष्टि जिसे हुई है, उसे पर्याय में पूर्णता हो जाय तब उन्हें व्यवहार होता नहीं। परंतु अपूर्ण रहे तो उसे व्यवहार है - ऐसा उसे बराबर जानना चाहिए। क्योंकि शुद्धि की अपूर्णता है और अशुद्धता का अंश साथ में है तब उसे जैसा है तैसा उसे जानना चाहिए। बस, इतना सिद्ध करना है। कहो देवीलालजी ! आहाहा ! - ऐसा है भाई ! वादविवाद से अंत आये - ऐसा नहीं प्रभु ! क्या करें ? आहा...हा !

अब यहाँ इसे स्वयं जयचन्द्रजी पण्डित(जी) थोड़ा, सम्यग्दर्शन के पहले की बात की थोड़ी। गाथा में यह नहीं, गाथा में तो सम्यग्दर्शन हुआ है त्रिकाली का आश्रय लेकर के, उसे जो पर्याय में अशुद्धता और अपूर्णता है, उसे जानना चाहिए इतनी बात है। समझ में आया ? परंतु इसने प्राप्त की है परंतु पर्याय में पूर्णता नहीं और अपूर्ण शुद्ध और अशुद्धता है, वह है अतः जाने, वह है उसे जानना - ऐसा है उसे जानना, इसप्रकार यह प्रयोजनवान। उनको नहीं उन्हें जाना हुआ प्रयोजनवान नहीं - ऐसा कहा। इसका अर्थ। आहाहा !

अब एक घण्टे में कितनी बातें आये। अब इसमें धंधे के कारण कहाँ (फुरसत) डॉक्टर को इन्जेकशन और इसमें सारा दिन... आहाहा ! (श्रोता इन्जेकशन लगाये एवं आयुष्य न हो तो मर जाय ?) वह मर गये शिवलाल यहाँ के, एक शिवलाल

पटेल थे, वह तो बेचारा दुःखी होता था हाँ ! कुछ रोग नहीं था थोड़ा भी, यह वल्लभभाई पटेल कहलाते है न उनके कुटुम्बी। करमसद, करमसद है, आनंद के पास। यह विठ्ठल पटेल करमसद के, वह भी करमसद के थे, हमने करमसद देखा है, दुकान का माल लेने जाते थे उन दिनों। बहुत वर्षों की बातें हैं। करमसद बीड़ी का बड़ा व्यापार बड़ा, सोंफ डालकर तम्बाखु अकेली नहीं, उसमें सोंफ डाल कर बीड़ी (बनाते) करमसद है। वहाँ के शिवलाल पटेल हमारे यहाँ थे। वह भोजन करके आये, अपने भोजनशाला में जीमते थे। खाकर आये वह भोजन को (खाया)... और पहले केले खाये कि नहीं ? (श्रोता :- सिकी हुई मूंगफली) सिकी मूंगफली, मूंगफली-मूंगफली सिकी खाई और यह (भोजन) खाय। यह खाकर जब आये, और अपने यहाँ दहलान थी, वहाँ बैठे थे। हम आहार करके घूमने निकले शाम को ऐसे घूमते-घूमते शिवा पटेल को (पूंछा) कैसे हो ? बैठे थे इसप्रकार नीचे खाकर आये, कुछ नहीं था। कैसे हो पटेल ? अंतक्रिया। पंरतु क्या है ? कहें अंतक्रिया। क्या है क्या हुआ ? नीचे बैठे थे, खाकर आये, श्वांस नाभी से खिसक गई श्वांस, यह नाभी से श्वांस खिसक गई। हमने कुछ किया नहीं, खाकर आया हूँ, पैदल आये। कुछ नहीं था, रोग नहीं था, बैठा और श्वास यहाँ से खिसक गया नाभि से। नीचे नहीं बैठती। अंतिम क्रिया हमारी... अरे मर गये ! फिर थोड़ा जिये सुबह तक कि शाम तक ? (श्रोता :- दो बजे तक) हाँ ? दोपहर तक फिर भाई गये, धरमचंद डॉक्टर के पास वह दुःखी हुआ और इन्जेकशन लगाया। बस, इन्जेकशन दिया (और) श्वास बैठ गई (श्रोता :- दुःखी ज्यादा हुए) देह छूट गया। यहाँ थी दहलान। आहाहा ! जिस स्थिति में जिस समय देह छूटने का समय है उसे कौन बदले ? आहाहा !

बैठे-बैठे श्वास - ऐसा हो गया। कहा न उसने मलकापुरवालो, युवान लड़का क्या नाम ? मलकापुरवाला, पढ़ा लिखा मोक्षमार्गप्रकाशक (याद) जिसे पूरा मोक्षमार्गप्रकाशक कंठस्थ था। पहले से रस है (श्रोता :- स्वरूपचन्द्र) स्वरूपचन्द्र ! बड़ा व्यापारी है कपड़े का। दश दशहजार रुपयों की (खरीद करते) कपड़े के बड़े व्यापारी है। परंतु तत्त्व का रस बहुत मोक्षमार्गप्रकाशक का। कुंआरा था तब से बहुत प्रश्न करता था, अब तो शादी हुई एवं मलकापुर में बड़ी दुकान है। यह कहता था `महराज मैं एक बार बैठा था मित्र साथ में था २५/२६ वर्ष का। मित्र को कुछ रोग नहीं था, दोनों बातें करते थे - ऐसा - ऐसा करते फूंक होकर देह लुड़क गई। कुछ रोग नहीं, कोई श्वास भी नहीं, बात करके-करते फू - ऐसा हो गया कहता, देह छूट गया, यह कहता था स्वरूपचन्द्र कहता था। बहुत होशियार व्यक्ति मलकापुर में। है कोई मलकापुर का ? नहीं' कपड़े का बड़ा व्यापारी है दश दश हजार का

(कपड़ा लाता) आहाहा !

यह तो देह की स्थिति बापू ! जिस समय छूटना इसमें उसका कुछ काम नहीं आये। मालूम नहीं चले यह छूटता... फट छूट जाये।

यहाँ कहते हैं कि अशुद्धता जहाँ तक है, जहाँतक है उसे जानना। पूर्ण शुद्धता में अशुद्धता नहीं, अतः उसे जानने का प्रयोजन नहीं कहा। है वहाँ तक जानना प्रयोजनवान कहा। आदरना - ऐसी बात नहीं।

विशेष कहेंगे...

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. ४९ गाथा-१२ ता. १-८-७८ मंगलवार अषाढ वदी-१३ सं.२५०४

बारहवीं गाथा, इसका भावार्थ, यहाँ तक आया है।

जहाँ तक यथार्थ ज्ञान श्रद्धा की प्राप्तिरूप, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न हुई हो तब तक यह होता है। क्या ? वहाँ तक कि जिसमें से यथार्थ उपदेश मिले... आहाहा ! यह भी शर्त यह... जिससे यथार्थ उपदेश मिले। इतनी तो इसे पहचान पहले करना पड़े न ?

सम्यग्दर्शन होने के पूर्व - ऐसा होता है, फिर भी इससे सम्यग्दर्शन हो - ऐसा नहीं। सम्यग्दर्शन होने के पूर्व, उसे जिससे यथार्थ उपदेश मिले, जिससे यथार्थ उपदेश मिले, ***अर्थात जैसे जो यथार्थ उपदेश देनेवाला कौन है - ऐसा तो इसे पहले ज्ञान होना चाहिए, भले अज्ञान है वहाँ, परंतु उसे इस जाति का ज्ञान तो होना चाहिए न कि यथार्थ उपदेश करनेवाला कौन है ?***

ऐसे जिनवचनों का सुनना, जिसमें से यथार्थ गुण... ऐसे जिनवचन, अर्थात कि इस वीतरागभाव को स्थापित करते हो ऐसे जिनवचनों को सुनना। जो उपदेशक यथार्थ उपदेश में वीतरागभाव की स्थापना करता हो, उसे जिनवचन कहते, और उनसे जिनवचन सुनना।

धारण करना, सुनकर याद रखना, क्या कहते हैं ? वीतरागभाव प्राप्त कैसे हो ? - ऐसा क्या कहते हैं उसे याद रखना। एवं जिनवचनों के कहनेवाले श्रीगुरु की भक्ति, वह ज्ञान श्रद्धा की प्राप्ति जिससे हो, यह जिनवचन को कहने वाले श्री गुरु की भक्ति, वीतरागगुरु की भक्ति... आहाहा ! जिनबिम्ब का दर्शन। सभी (जगह) जिन-

जिन शब्द प्रयोग किया है। वीतरागी... उसमें - ऐसा आया न जिनवचनों को सुनना यह यथार्थ उपदेश मिले और जिनवचनों को कहनेवाले जिनगुरु की भक्ति एवं जिनबिम्ब का दर्शन वीतरागी बिम्ब, प्रतिमा। आहाहा ! जिनके ऊपर श्रृंगार कि वस्त्र न...हो, जैसा जिनस्वरूप था भगवान का - ऐसा जिनबिम्ब यहाँ हो, इसके दर्शन, इत्यादि व्यवहारमार्ग में... यह कहीं समकित है नहीं, परंतु फिर भी - ऐसा भाव उसे होता, उसरूप प्रवर्तना - ऐसा कहा जाता है।

प्रयोजनवान है। इतना तो इसे आये ही। और जिसे श्रद्धा ज्ञान तो हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ परंतु साक्षात् प्राप्ति नहीं हुई, पूर्ण वीतरागी दशा प्राप्त हुई नहीं, सम्यग्दर्शन ज्ञान हुआ परंतु पूर्ण यथाख्यात चारित्र केवलज्ञान हुआ नहीं। उन्हें पूर्वकथित कार्य पूर्वकथित अर्थात यह, जिनभगवान के यथार्थ वचन सुनना, धारण करना, जिनगुरु की भक्ति, जिनबिम्ब के दर्शन उसे यह पूर्वकथित कार्य होते हैं। समझ में कुछ आया ?

सम्यग्दर्शनज्ञान होने के बाद भी, पूर्ण वीतराग नहीं अतः - ऐसा व्यवहार होता है।

परद्रव्य का अवलम्बन छोड़नेरूप अणुव्रत महाव्रत का ग्रहण भी होता है। जितने प्रमाण में यह परद्रव्य का अवलम्बन छोड़ें इतने प्रमाण में उसे अणुव्रत और महाव्रत होते हैं। उनका ग्रहण, समिति, गुप्ति, पाँचप्रकार की समिति, तीन गुप्ति, पंचपरमेष्ठी के ध्यानरूप प्रवर्तन... पंचपरमेष्ठी के ध्यानरूप प्रवर्तन... व्यवहार है न यह ! और यह शुभ विकल्प है।

इसरूप प्रवर्तन करनेवाले की संगति करना... आहाहा ! और विशेष जानने के लिए शास्त्रों का अभ्यास करना। सम्यग्दर्शनज्ञान होने के बाद भी... पूर्णता न हो उसे इस जाति का अभ्यास शास्त्रों का (पठन) उसे होता है। यह शुभभाव है न ? आहाहा ! इत्यादि व्यवहार मार्ग में स्वयं प्रवर्तना... है न ? और दूसरों को प्रवर्ताना अर्थात इसप्रकार उसे उपदेश देते हैं।

- ऐसा व्यवहारनय का उपदेश अंगीकार करना प्रयोजनवान है। नीचे स्पष्टीकरण (है) व्यवहारनय के उपदेश से - ऐसा न समझना कि आत्मा परद्रव्य की क्रिया कर सकता है; परंतु - ऐसा समझना कि व्यवहार उपदिष्ट शुभभाव को आत्मा व्यवहार से कर सकता है। आहाहा ! - ऐसा इसका अर्थ है। व्यवहार से उसे शुभभाव, अशुभ से बचने को होता है। पुनः उस उपदेश से - ऐसा भी न समझना कि आत्मा शुभभाव करने से शुद्धता को पाता है। जिनबिम्ब का दर्शन करने से निश्चय की प्राप्ति हो - ऐसा नहीं। आहाहा !

परंतु - ऐसा समझना कि साधकदशा की भूमिकानुसार शुभभाव आये बिना रहते नहीं, बस इतनी बात है।

वास्तव में बात ऐसी सूक्ष्म है कि सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ। आहाहाहाहा ! उसका ज्ञान ही। जिस प्रकार का राग आनेवाला है उसी प्रकार का ज्ञान स्वपरप्रकाशक उस समय होता ही (है) ज्ञान ही - ऐसा स्व को और जो रागादि जितने अंश में आये उसे जानने की योग्यतावाला ही ज्ञान प्रगट होता (है)। समझ में आया ? जितने प्रकार का... राग जो आता एवं सम्यग्दर्शन है, अर्थात दृष्टि तो ध्रुव ऊपर है और ज्ञान भी स्व को जानता है और उस समय उस उस प्रकार का राग जो आनेवाला होता है, उसे जानता हुआ ही ज्ञान प्रगट होता है। ऐसी बात है भाई ! आहाहा !

इस व्यवहारनय को कथंचित असत्यार्थ कहने में आया है, परंतु जो कोई उसे सर्वथा असत्यार्थ जानकर... झूठा जान कर छोड़ दे तब शुभोपयोगरूप व्यवहार छोड़े शुभ को छोड़े और शुद्ध तो आया नहीं - आहाहा ! शुद्धोपयोग की साक्षात् प्राप्ति तो हुई नहीं, जो शुद्धोपयोगी वीतरागता होना चाहिए, वह तो है नहीं और शुभोपयोग छोड़े, तब तो अशुभ में जाये। आहाहा !

इसलिये उल्टा अशुभोपयोग में ही यह आकर भ्रष्ट होकर चाहे जैसी स्वेच्छारूप प्रवर्ते, तब नरकादिगति तथा परंपरा निगोद को प्राप्त होगा, आहाहा ! दृष्टि हुई नहीं ज्ञान की खबर नहीं और इस शुभ को छोड़कर बैठे, तब तो अशुभ में जाये। आहाहा ! जो शुद्ध की प्राप्ति हुई हो तब तो शुभ छूट जाता है। आहाहा ! नरकादिगति तथा परंपरा निगोद को प्राप्त होगा। आहाहाहा ! आज तो सुबह में - ऐसा विचार आया था, पहले सुबह उठकर यह पढ़ते थे तब, कि अहो। एक श्वास में निगोद के अठारह भव होते है। आहाहा ! ऊपर नीचे करे ऐसी श्वास में मनुष्य का श्वास लेना हाँ। अठारहभव हुए। आहाहाहा ! उसे कितना दुःख होगा ? आहाहा ! देव के भव में एक सागर की आयु होती है, उसे पन्द्रहदिन में अेक श्वासोच्छवास आती है, यह क्या कहते हैं यह ? संसार की स्थिति भी ऐसी कुछ है। आहाहा ! स्वर्ग के देव एक सागर की स्थितिवाले हों, उसे पन्द्रहदिवस में एक श्वाच्छोश्वास (होती) आहाहा ! यह ले सकता कि छोड़ सकता है, यह प्रश्न यहाँ है नहीं। समझ में आया ? और नारकी को तो श्वास का रोग ही पहले से होता है। जन्मे तभी से श्वास (दमा) चलें। आहाहाहा !

इसलिये कितने यह कहते है कि अपन श्वास, धीरे-धीरे लें तब थोड़े श्वास ले सकेंगे तब आयु बढ़ेगी, बहुत होते है न। (श्रोता :- मान्यता होती न - ऐसा माननेवाले

होते न) हैं हमको तो बहुत (मिलते) एक थे त्रिभुवन विठ्ठल सेठ, बूढा पूरा लम्बा, उसे कोई रोग नहीं और यह - ऐसा क्यों चलता है ? थे वृद्ध धीरे-धीरे इसप्रकार (चलें) रोग नहीं। निरोगी। वह कहते कि कितने लोग - ऐसा कहते हैं कि श्वास कम लें तो आयु बड़ी हों, और श्वास बहुत ज्याद लें तो आयु घट जाये - ऐसा नहीं, श्वास के आधार से आयु नहीं। आयु की स्थिति तो जो है सो है। आहाहा !

निगोद का जीव एक श्वास में अठारहभव, भाई ! क्या है बापू ! यह बात। नारकी जीव को जन्म से श्वास की हांफी चलती है, देव के जीव को पखवाड़े में एक श्वास आवे। आहाहा ! यह तो संसार की स्थिति में - ऐसा स्वरूप है श्वाच्छोश्वास का। आहा !

और यहाँ एक देखो तो, एक श्वाच्छोश्वास में, स्वरूप का भान करके भव का अंत लाये। आहाहा ! ***अंतर वस्तु शुद्ध चैतन्यघन है, उसमें अंदर जानेपर, एक ही समय लगता है। यह तो आता है न `रभसा' एक समय लगता परंतु उपयोग असंख्य समय का है और अर्थात असंख्य समय (में) इसके ख्याल में आता (है)। आनंद के अनुभव का आहाहा !*** यह यें नारकी को आती श्वास, देवों को भी दशहजार की स्थितिवालों को श्वास कैसा होगा ? और जिसे एक सागरमें पन्द्रह (दिन) पखवाड़ा में श्वास आये ! सर्वार्थसिद्धि के तेत्तीस सागरवाले सोलह पखवाड़ा, साड़े सोलह पखवाड़ा उन्हें श्वास आती है। आहाहा ! क्या है यह तो संसार ! वह साड़े सोलह पखवाड़िया कितना होता, साड़े सातमाह हुये न ? (श्रोता :- सवा आठ महीना) साड़े आठ महीना हुए। साड़े आठ महीने- ऐसा श्वास एक बार आये। आहाहा !

यह देव में दशहजार की आयुवालों को कितनी होगी ? जिसने सागर में पन्द्रह पखवाड़िया उसके पल्य तो दश कोड़ाकोड़ी पल्य है, उनका श्वास कितना होगा। आहा ! और दशहजार की आयुवाले देव का श्वास कैसा होगा, और नारकी को तेत्तीस सागर की स्थितिवाले को ! आहाहाहाहा ! यह श्वास में दमा। आहाहा !

ऐसी स्थिति में भी अंतर्मूख होकर सम्यग्दर्शन करते हैं। भगवान बिराजते हैं न प्रभु अंदर भाई। पूर्ण परमात्म स्वरूप तुम्हारी पर्याय के नजदीक है न ! आहाहा ! कहीं दूर नहीं। आहाहाहा ! उस पर्याय को अंतर में झुकादो... ऐसी श्वास में। आहाहा ! यह तो यह संसार की गतियों की स्थिति है। यह श्वास में इस प्रकार ले सकूं कि इसप्रकार छोड़ सकूं - ऐसा है ही नहीं। यह तो जड़ की परमाणु की क्रिया है। आहाहा ! परंतु इसमें - ऐसा तुमने किया। आहाहा ! स्वयं अपने स्वरूप का... भवभाय से डरकर... माथे भयभव अनन्त अनन्त भव किए - ऐसे अनंतभव, भवों से डर करके, भव भय से डर चित्त... वह अंतर्मुख होता है। आहाहाहा ! दुःख से

नहीं, भवभय से, भव मात्र दुःख है। चाहे स्वर्ग का भव यह ठीक और नारकी का बुरा- ऐसा भी नहीं। आहाहाहा !

भव मात्र के, भव के भय के डर से... अरेरे ! कहाँ अनंतभव और कहाँ हम भव के भाव बिना का हमारा स्वरूप। आहाहाहा ! भव बिना का तो सही परंतु भव के भाव बिना का हमारा स्वरूप। आहाहाहा ! - ऐसा चिद्घन भगवान ! इसको पीछे लौटाकर अंदर में जाये, आहाहाहाहा ! अंतर्मुहूर्त के अंदर उपयोग की उपयोग की अपेक्षा से, बाकी तो समयांतर में दर्शन होने पर, ज्ञान समयांतर में सम्यक् हो जाता है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह शास्त्रज्ञान की वहाँ जरुरत नहीं। आहाहा ! यह भगवान आत्मा। पूर्ण शुद्धस्वरूप... गहन-गहन जिसका स्वभाव और गहन जिसकी शक्तियाँ। आहाहा ! यह गहन जिसका भवभ्रमण के भाव और भव। आहाहा ! उसमें से हटकर... भगवान महाप्रभु। परमात्मद्रव्यवस्तु... उसकी दृष्टि करते हैं, तब ज्ञान सम्यक् होता है और तब उसे अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। आहाहाहा !

यह देव तेत्तीस सागर (आयुवाले) तेतीस पखवाड़िया में श्वास ले और तेतीस हजार वर्ष के बाद कंठमें से अमृत झरता, यह जड़ का अमृत है। समझ में आया ? एक सागर की स्थितिवाला देव, उसे हजार वर्ष में कंठमें से अमृत झरता है। उन्हें दाल-भात-रोटी बनाना नहीं पड़े, न चूल्हा जलाना - ऐसा नहीं कुछ। आहाहाहा ! यह पुण्य के फल की अपेक्षा संसार की स्थिति तो देखो ! आहाहा ! जिसमें धर्म तो है ही नहीं। आहाहा ! पुण्य के फल में मिला देव (भव) उन्हें हजार वर्ष (बाद) कंठमें से अमृतझरता है, यह जड़ अमृत है। यह तो प्रभु (ज्ञायक) को पकड़ने पर एकक्षण में अमृत, आनंद अमृत झरे। आहाहाहा ! समझ में आया कुछ ?

उनको एक हजार वर्ष में... सागरों की आयुवालों को, कमवालों को, यह तो कहते हैं कि यह प्रभु तुम कौन हो, यदि शुद्धोपयोग की प्राप्ति करो, इस शुद्धोपयोग में आत्मा जानने में आयेगा, और शुद्धोपयोग पूरा होगा, फिर उसे शुभभाव आयेगा नहीं। शुद्धोपयोग से आत्मा को पकड़नेपर, आहाहा ! तुम्हें अमृत झरेगा। उन देवों को अमृत झरता है, यह तो धूल का अमृत (है), पुद्गल का, यह (आत्मा) तो अमृत का नाथ। आहाहाहा !

अरे रे ! इसके लिये समय कहाँ निकालता है यह ? पर के लिये करने में, जगत जंजाल में जीवन बिताया। आहाहा ! अपना एकक्षण मनुष्य (भव) का कौस्तुकमणि (रत्न विशेष) अपेक्षा भी, आहा...हा ! महा कीमती, यह किसके लिए ? धरम के लिए। आहाहा !

एकक्षण में अंदर जाने पर तुम्हें अमृत आयेगा प्रभु ! सागरों की आयुवाले देव को तो पन्द्रहदिन में अमृत आये... हजार वर्ष (बाद) आये, पन्द्रहदिन में एक बार तो श्वास लें, निगोद के जीव प्रभु एक श्वास में अठारह भव करें, उनके एकभव में उनके श्वास की स्थिति कितनी, होगी ? क्या कहा यह ? एक श्वास में जो अठारह भव, तो एक भव में इस श्वास का हिस्सा कितना इसे आता होगा ? आहाहा ! ऐसे भव प्रभु तुमने अनंत किये।

अब यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि होकर बाद में जो व्यवहार आये, आहाहा ! उसका भी जाननेवाला रहना। आहाहाहाहा ! करनेवाला यह कहते हैं यह व्यवहारनय का कथन है। भगवानआत्मा ! भूतार्थ परमात्मा। अनंत... अनंत... अमृत के स्वभाव से लबालब प्रभु भरा है। एकगुण ऐसे तो अनंतगुण उसे तुम ज्ञान में और दृष्टि में लो, तब इससे तुम्हें अमृत आयेगा और उसके बाद तुम्हें शुभभाव आयेगा, फिर भी वह तुम्हारा, ज्ञान तुम्हें और उसे जानती हुई पर्याय प्रगट होगी। आहाहा ! - ऐसा मार्ग ! आहाहा !

सम्यग्दर्शन होने के बाद... वस्तु को जाना देखा अनुभव किया, ओहोहो ! यह तो अमृत का सागर, जिसके अंशरूप नमूनेमें से पूरा आत्मा; यह तो अमृत का सागर प्रभु ! अरे मैं कहाँ गया था ? इसे छोड़ कर मैं कहाँ रहा था ? अब-राग को छोड़कर यहाँ जाता हूँ अब। आहाहाहा ! ऐसी जो दृष्टि हुई अनुभव हुआ, यह तो निश्चय के लक्ष्य से हुआ अतः निश्चय हुआ। परंतु इसे जबतक पर्याय में, शुद्धोपयोग की प्राप्ति न हो, एकधारा (लगातार) शुद्धोपयोग की प्राप्ति न हो, ***शुद्धोपयोग में समकिती हुआ, ज्ञान हुआ परंतु यह शुद्धोपयोग लम्बे समय रहता नहीं। समझे कुछ ? उसे शुभभाव आये, अशुभ भी आये। आहाहाहा ! परंतु यह शुभमें से आगे जाकर अकेला शुद्धोपयोग न हो तब तक - ऐसा शुभभाव आये, उसे ज्ञान की पर्याय उस समय की स्व को और उसको जानने की योग्यतावाली ही पर्याय प्रगट होती है। उसे कुछ नया दूसरा जानना है - ऐसा है नहीं।*** आहाहा !

क्या कहा यह ? यह जो ज्ञान स्वभाव का हुआ, इसमें जो ज्ञान की पर्याय हुई। इस समय जब शुद्धोपयोग अंदर में है, बाहर में तो है नहीं, भले अबुद्धिपूर्वक अंदर राग है, फिर भी राग तरफ का उपयोग नहीं, परंतु फिर भी उसके ज्ञान की पर्याय उस समय भी स्व को जानती है और यह राग है उसे अव्यक्ततारूप भी अंदर जानने की पर्याय होती है। अब बाहर निकला और जब शुभभाव आया तब भी उस समय उसे जानती हुई पर्याय स्व और पर को जानती उस समय उस उस योग्यतावाली। आहाहा ! जितनी पर्याय शुद्ध हुई और जितनी पर्याय अशुद्ध

रही उसे जानता हुआ ज्ञान प्रगट होता है। इसे जाना हुआ प्रयोजनवान कहा जाता है। - ऐसा है प्रभु ! ओहो ! शुद्धोपयोग हुआ न हो, दृष्टि जिसे सम्यक् है यह तो - ऐसा करे नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! परंतु जिसे दृष्टि हुई नहीं और माना है कि मुझे सम्यक्त्व हो गया और वह यह शुभोपयोग छोड़ दे तब तो अशुभ में जाये। आहाहा !

सम्यग्दृष्टि जिसे ध्रुव का... ज्ञान हुआ है, वह तो शुभ में आये उसे जाने, यह शुभ छोड़कर अशुभ में नहीं जाता। आहाहा ! यह शुभ छोड़कर तो शुद्ध में जाता है। परंतु जिसने माना है कि हम समकिती है और श्रद्धा है और वह शुभभाव को छोड़े तब तो अशुभ में आ करके स्वच्छंदी हो। आहाहाहाहा !

तब नरकादि गति एवं परम्परा निगोद- ऐसा क्यों कहा कि ***मूलतत्त्व की विराधना यह निगोद का कारण है, आहाहा ! तत्त्व की आराधना यह मुक्ति का कारण है, तत्त्व की विराधना यह निगोद का कारण है। और बीच में जो तिर्यंच और मनुष्यादि भव होते, नरकादि यह शुभाशुभ भाव का फल है।*** समझे कुछ ? आहाहा ! मार्ग अलौकिक है बापू ! (आहा !)

संसार में ही भ्रमण करें... अतः शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्धात्मा उसकी प्राप्ति जहाँतक पूर्ण न हो - ऐसा। शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्धात्मा / अर्थात द्रव्य नहीं पर्याय में, परंतु यहाँ, शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्धात्मा, उसकी प्राप्ति जहाँतक न हो पर्याय में, आहाहाहाहा ! शुद्धनय का विषय तो आत्मा, परंतु उसकी पर्याय में प्राप्ति जब तक पूर्ण न हो तब तक ***व्यवहार भी जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह प्रयोजनवान है अर्थात - ऐसा - ऐसा ज्ञान ही उसे जानता हुआ प्रगट होता (है) ऐसी बात है भाई।***

इस बात की चर्चा हो गई थी एक व्यक्ति कोई ब्रह्मचारी था और उसके साथ... वह कहें कि ***यह तो ज्ञान ही - ऐसा प्रगटता है। जाना हुआ प्रयोजनवान अर्थात उपयोग लगाकर नया जानना - ऐसा वहाँ नहीं। आहाहा ! भगवानआत्मा चैतन्यबिम्ब प्रभु इसका जब ज्ञान हुआ पर्याय में, तब इस पर्याय में ज्ञान स्वका भी आया और इस समय राग का अंश भी शेष है उसका भी ज्ञान वहाँ परप्रकाशक उसके साथ प्रगटा है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है।***

जैसे अज्ञानी के ज्ञान में भी स्वद्रव्य ही प्रकाशित होता है। इसीप्रकार ज्ञानी के ज्ञान में व्यवहार प्रकाशता ही है, स्व तो प्रकाशित होती ही है, इसके अतिरिक्त। (पर भी) आहाहा ! समझे कुछ ?

ओहो ! - ऐसा मार्ग। अरे ! सुनने न मिले यह मनुष्यपना चला जाता है।

आहाहा ! इसका एक-एक पल...। आहाहाहाहा !

जब तक प्राप्ति न हो, तब तक व्यवहार जानना... - ऐसा स्वरूप इसका है। व्यवहार को जाने - ऐसा ही इसका स्वरूप है। अर्थात (इसका अर्थ) व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा जाता है। आहाहा ! समझे कुछ ?

ऐसे स्यादवाद मत में श्रीगुरुओं का उपदेश है। कुन्दकुन्दाचार्य आदि संतों ! दिगंबर मुनियों जो आत्मज्ञानी अनुभवी चारित्र में, ऐसे श्री गुरुओं का यह उपदेश है। कि जबतक आत्मा के शुद्धनय का विषय द्रव्य है परंतु उसकी पर्याय में प्राप्ति जबतक शुद्ध की न हो तब तक उसे नीचे अवस्था में व्यवहार आता है, और व्यवहार आये वह जानने योग्य है - ऐसा जाने, आदर करने योग्य है - ऐसा है नहीं। आहाहाहा !

- ऐसा अपेक्षा से कहा है, व्यवहार को असत्यार्थ कहा यह इस अपेक्षा से कहा है, मुख्य को निश्चय कहकर उसकी दृष्टि कराने के लिए... असत्यार्थ कहा, सत्य इसे कहा न उसे असत्यार्थ कहा। असत्यार्थ मानकर शुभ छोड़ दे और शुद्धोपयोग की प्राप्ति हुई नहीं तब भ्रष्ट हो जायेगा। आहाहा ! वस्तु की मर्यादा की स्थिति ऐसी है। यह कहीं भगवान कहते है, अतः - ऐसा है - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! वस्तु के स्वरूप की स्थिति इसजाति की है। आहाहा ! कि पूर्ण स्वरूप को जाने, तब इसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, उसी समय उसे उस पर्याय में रागादिक शेष है उसका भी ज्ञान साथ में होता ही है। समझे कुछ ? उसे यह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान कहा, शेष तो तीन सौ बीस और उन्नीस गाथा में तो - ऐसा लिया है, कि धर्मी जीव को आत्मज्ञान हुआ और ज्ञायकभाव है यह आया, वह तो इस उदय को भी जाने जाने, इस व्यवहार को जाने, निर्जरा को जाने, आहाहाहा ! बंध को भी जाने मोक्ष को भी जाने। यह तो जाननेवाला **चैतन्यमूर्ति** ज्ञायक रस है। यह तो दोनों को जाने... जाने... जाने...।

यह निर्जरा करे और उदय करे और आहाहाहा ! - ऐसा कहाँ है ? जाननेवाला भगवान ज्ञायक में - ऐसा कहाँ है ? यह तो बंध को जाने, मोक्ष को जाने। यह बंध को करे और मोक्ष को करे - ऐसा भी नहीं। आहाहाहा ! वस्तु है यह स्वयं पर्याय को करे - बंध की और मोक्ष की पर्याय को करे - ऐसा नहीं। होता है, उसे स्वपर प्रकाशक ज्ञान की पर्याय में... ज्ञायक तो ध्रुव है, परंतु उसका जो ज्ञान हुआ है स्वपरप्रकाशक उसमें, इसे जानता है। आहाहा ! - ऐसा ही वस्तु का वास्तविक स्वरूप है। - ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा !

लो बारहवीं गाथा पूरी हुई।

श्लोक - ४

(मालिनी)

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के।
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव।।४।।

इसी अर्थ का कलशरूप काव्य टीकाकार कहते हैं :-

श्लोकार्थ :- [उभय-नय-विरोध-ध्वंसिनि] निश्चय और व्यवहार-इन दो नयों के विषय के भेद से परस्पर विरोध है; उस विरोध का नाश करनेवाला [स्यात्, पद-अंके] `स्यात्'-पद से चिह्नित जो [जिनवचसि] जिन भगवान का वचन (वाणी) है उसमें [ये रमन्ते] जो पुरुष रमते हैं (-प्रचुर प्रीति सहित अभ्यास करते हैं) [ते] वे [स्वयं] अपने आप ही (अन्य कारण के बिना) [वान्त मोहाः] मिथ्यात्वकर्म के उदय का वमन करके [उच्चैः परं ज्योतिः समयसारं] इस अतिशयरूप परम ज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को [सपदि ईक्षन्ते एव] तत्काल ही देखते हैं। वह समयसाररूप शुद्धात्मा [अनवम्] नवीन उत्पन्न नहीं हुआ; किन्तु पहले कर्मों से आच्छादित था सो वह प्रगट व्यक्तिरूप हो गया है और वह [अनय-पक्ष-अक्षुण्णम्] सर्वथा एकांतरूप कुनय के पक्ष से खण्डित नहीं होता, निर्बाध है।

भावार्थ :- जिनवचन (जिनवाणी) स्याद्वादरूप हैं। जहाँ दो नयों के विषय का विरोध है, जैसे कि-जो सत्‌रूप होता है वह असत्‌रूप नहीं होता, जो एक होता है वह अनेक नहीं होता, जो नित्य होता है वह अनित्य नहीं होता, जो भेदरूप होता है वह अभेदरूप नहीं होता, जो शुद्ध होता है वह अशुद्ध नहीं होता इत्यादि नयों के विषयों में विरोध है - वहाँ जिनवचन कथंचित् विवक्षा से सत्-असत्‌रूप, एक-अनेकरूप, नित्य-अनित्यरूप, भेद-अभेदरूप, शुद्ध-अशुद्धरूप जिसप्रकार विद्यमान वस्तु है उसीप्रकार कहकर विरोध मिटा देता है, असत् कल्पना नहीं करता। जिनवचन

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों में, प्रयोजनवश शुद्धद्रव्यार्थिक नय को मुख्य करके उसे निश्चय कहते हैं और अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप पर्यायार्थिकनय को गौण करके व्यवहार कहते हैं। - ऐसे जिनवचन में जो पुरुष रमण करते हैं वे इस शुद्ध आत्मा को यथार्थ प्राप्त कर लेते हैं; अन्य सर्वथा-एकांतवादी सांख्यादिक उसे प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वस्तु सर्वथा एकांत पक्ष का विषय नहीं है तथापि वे एक ही धर्म को ग्रहण करके वस्तु की असत्य कल्पना करते हैं - जो असत्यार्थ है, बाधासहित मिथ्यादृष्टि है।।४।।

श्लोक - ४ पर प्रवचन

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के।
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव।।४।।

इस अर्थ का कलशरूप काव्य टीकाकार अब कहते हैं। `उभयनय विरोधध्वंसिनि' निश्चय और व्यवहार दो नयों के विषय के भेद से परस्पर विरोध है, क्या कहते हैं निश्चयनय है और व्यवहार है, यह तो दो हुये अतः दोनों के विषय में विरोध है। विरोध न हो तो दो (नाम) हो नहीं दोनों त्रिकाली को जानें या दोनों पर्याय को जानें अथवा दोनों उपादेय को मानें तब यह नयों के भेद दोनों हुए कहाँ से?

एकनय निश्चय स्व को त्रिकाल को उपादेय जानता है, और व्यवहारनय रागादिक को पर्यायादिक को हेय जानता है, जाने, परंतु हेयरूप में जाने। आहाहा ! क्योंकि दो नयों का विषय... (भिन्न-भिन्न) दो नय है, नय अर्थात ज्ञान का अंश और उसका विषय दो है भिन्न-भिन्न। निश्चयनय का विषय है त्रिकाली, व्यवहारनय का विषय है वर्तमान पर्याय और रागादिक। आहाहा ! अरे - ऐसा सीखना और - ऐसा, इसकी अपेक्षा इक्छामि प्रतिक्रमण इयरावियरा। जयसुखभाई ! `मिच्छामिदुःकड़ं' जाओ ! ठाणाउठाणं। एक स्थान... से दूसरे स्थान यह कुत्ता आता और फिर उठाते है न ! फिर ठांणं उठाणं नहीं आता ? यह संप्रदाय (स्थानकवासी में आता) एक स्थान पर जीव हो यहाँ से दूसरी जगह रखना... वैसे तो अपने में, कपड़े ऊपर चढ़ा हो तो हटाने के अलावा दूसरा उपाय न रहे। वह उसका स्थान छोड़कर ऐसे जाये। छोटाभाई ! इच्छामि पडिक्कमणुं। किया था कि नहीं ? किया था ? आता है कि नहीं इसमें? ठाणं उठाणां, जीवीयाउ वऊशवीया, श्वेताम्बर में आता है - पहला णमों अरहंताणं,

दूसरा तिख्खुतो, तीसरा इच्छामि चौथा तरस उतरी, पाँचमा लोगस्स, छठवां करेमि भंते और सातमा नमोत्थुणं। क्यों, सुजानमलजी ! किया था कि नहीं सात? हमने तो दस वर्ष की उम्र से किया था - ऐसा सब, पाठशाला में। जैनशाला में। आहा !

नयों के विषय के भेद से, दो नय का... आहाहा ! एक निश्चयनय, और एकव्यवहार दोनों का विषय भिन्न-भिन्न है, इसलिए दोनों के विषय में विरोध है। दो नय ही विरोधी विषयवालें हैं। निश्चय का विषय भगवान पूर्णानंद का नाथ अभेद त्रिकाल है, व्यवहारनय का विषय उसीका वर्तमान अंश और राग, यह व्यवहारनय का विषय है दो नय और उनका विषय, और उसमें विरोध है। क्या बात है यह ? बापू ! वस्तु का स्वरूप - ऐसा है भाई ! जो ज्ञान का अंश त्रिकाली को जाने उसे निश्चय कहें, जो ज्ञान का अंश वर्तमान पर्यायरूप अंश को और राग को जाने उसे व्यवहार कहते है। वस्तु दो है कि नहीं ? त्रिकाली भी है और पर्याय भी है और राग भी है। आहाहा !

मूलबात की कीमत घट गई और ऊपर के क्रियाकाण्डों में मर गया (फँस गया) घुसकर इसमें न इसमें हो गया लो... वस्तु क्या है और उसके भेद क्या... नय है न ! यह दो नय क्या है और उसका विषय क्या है और दोनों का विरोध क्या है ? आहाहा ! यह वस्तु है न भगवान आत्मा। पूर्ण शुद्धचैतन्यघन। अभेद एक स्वरूप। यह तो निश्चय का विषय है, और उसीका एक वर्तमान अंश, त्रिकाली नहीं अपितु वर्तमान अंश और रागादि-द्वेषादि, यह व्यवहारनय का विषय अर्थात व्यवहार उसे जानता है, निश्चय इसे जानता है। आहाहा !

परस्पर विरोध है, इस विरोध को नाश करनेवाला स्यात् पद अंक... स्यादपद से चिन्हित लक्षण है। अपेक्षा से कहना जिसका लक्षण है, त्रिकाली को जाने वह निश्चय है पर्याय को जाने वह व्यवहार है। - ऐसा कथंचित निश्चय और कथंचित व्यवहार दोनों का ज्ञान जिनवचन कराता है। 'जिनवचसि रमंते' जिन भगवान का वचन वाणी उसमें जो पुरुष रमते हैं। अब इसमें से लोगो - ऐसा निकालते है कि जिनवचन में रमते है अर्थात निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों में रमते है। - ऐसा कहा न? जिनवचन (दो में एक साथ रमण कर सकते नहीं) - ऐसा हो सकता ही नहीं, कलश टीकाकारने जिनवचसि रमे उसका अर्थ ही यह किया है कि जिनवचन में आत्मा त्रिकाली है वह उपादेय कहा है उसमें जो रमते हैं... जिनवचन तो जड़ है। उसमें रमण कैसा ? जिनवचसि रमन्ते उसमें रमना वह क्या ? इसे दूसरी तरह से जिनवचन में दोनों कहे है, निश्चय और व्यवहार तो दोनों में रमना किस प्रकार, क्या ? आहाहा ! समझे कुछ ? अर्थात स्यात् कथंचित् त्रिकाली वस्तु है वह निश्चय है और वर्तमानपर्याय

का अंश वह व्यवहार है। - ऐसा कहकर त्रिकाली में रमना - ऐसा जिनवचन में कहा है। आहाहा !

इसमें से बहुत से - ऐसा निकालते हैं, परंतु कलश टीकाकार ने तो स्पष्ट कहा (है) जिनवचसि रमन्ते - कलश टीकाकार... इस गाथा के अर्थ में ही यह कहा है, जिन वचसि (कलश टीका है न राजमलजी की) रमन्ते अर्थात वीतराग ने जो पूर्ण शुद्धचैतन्य को उपादेय कहा, यह जिनवचन है। उसे वाणी में रमना नहीं, ***परंतु जिनवचन में कहा हुआ - ऐसा जो आत्मा, आहाहा ! उसमें रमना - ऐसा जिनवचसि रमन्ते का अर्थ है।*** अब इसके तीन अर्थ करते (हैं) एक तो कहते हैं, जिनवचन में रमना, तब वाणी में रमना यह तो वस्तु है नहीं, फिर दूसरा कहते हैं, जिनवचन में दो कहे हैं निश्चय और व्यवहार, दोनों में रमना, ***इस एक शब्दमें से तीन अर्थ निकलते हैं। क्या कहा ? कि जिनवचसि रमंते अर्थात वाणी में रमना। तब वाणी में रमना क्या ? वाणी तो जड़ है, भाषा तो ऐसी है।***

दूसरा - ऐसा कहते कि जिनवचन में तो दो नय कहे है दोनों में रमना - ऐसा नहीं परंतु दो नय कहे है इन दोनों को जानना, जानना, जानने की अपेक्षा दोनों एक है। परंतु आदर करने की अपेक्षा एक त्रिकाली आदरणीय है, वर्तमान (पर्याय) हेय है। आहाहा ! व्यक्ति अपनी कल्पना से और अपनी बात में जो दृष्टि स्थित हो उस दृष्टि में ले जाना चाहते है। जिनवचन में वर्तमान में सभी यह कहते हैं, निश्चय और व्यवहार दोनों कहे हैं, देखो ऊपर नहीं आया ? निश्चय व्यवहार दो नयों का विषय के भेद से विरोध है। विरोध को नाश करनेवाला `स्यात्' पद यह जिनभगवान का वचन है। उसमें कथंचित निश्चय और कथंचित व्यवहार दोनों कहे हैं, इसमें रमना - ऐसा यह कहते हैं - ऐसा नहीं, भाई ! दोनों में रम सकते नहीं। राग में रमें और स्वरूप में रमे यह दोनों कैसे हों ?

अर्थात रमने योग्य ऐसी चीज जो त्रिकाली है, उसमें रमना उसको उपादेय करके... भगवान ने उपादेय कहा है, वहाँ रमने को कहा है, यह कलशटीका में अर्थ है परंतु अभी यहाँ नहीं, वहाँ है, समझे कुछ ? जिल्द कल चढ़ाई है किसी ने दूसरे में अर्थात ऐसी ही जिल्द है उसकी। कल, कलशटीका चाहिए थी सुबह में, नहीं थी। मैंने कहा कौन ले गया ? फिर कहा कोई जिल्द चढ़ाने ले गये, कोई बहन बेटियाँ ले जाती हैं जिल्द (कबर) बदलने। सुबह में, वह जिल्द थी न जरी की।

क्या कहा यह ? `स्यात्' अपेक्षा से भगवानका कथन, त्रिकाल है वह सत्य है। और वर्तमान पर्याय असत्य है - ऐसा कहा। परंतु यह अपेक्षा से कहा है, क्योंकि

त्रिकाल का सत्य का आश्रय लेने पर सम्यक् होता है, इसलिए उसे सत्य कहा और उसका आश्रय होता नहीं, अतः उसे असत्य कहा, परंतु यह गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा था, पर्याय नहीं - ऐसा कहकर असत् कहा है - ऐसा नहीं। आहाहा ! इसके लिये फुरसत कहाँ ? इसमें कौन (समय दे) कमाना और खाना-पीना और भोगना, मर के जीना फिर ढोर में हो गया जाओ। आहाहाहा ! अररर ! (श्रोता :- वहाँ तो कमाना नहीं; और अकेला खाना) अरेरे ! क्या हो बापू ? चाहे पाँच पच्चीस लाख मिले हों और धूल, परंतु मरकर पशु में जायेंगे यह। पशु होंगे। अकेला व्यापार सारे दिन कमाना और भोग, पाप... पाप... और पाप। आहाहा ! कदम-कदम पर पाप है संसार में तो। धर्म तो नहीं, परंतु पुण्य भी नहीं वहाँ, आहाहा ! अरेरे ! स्त्री के सामने देखना, लड़कों के सामने देखना दुकान देखना, दुकान के नौकर क्या काम करते है, यह देखना और मुझे यह क्या काम करना है - यह देखना, यह झंझट पाप की चलती है, सुबह से लगातार अरेरे ! उसे पुण्य का समय मिले नहीं, जिससे गति कहीं मनुष्य की देव की मिले - ऐसा समय मिले नहीं, उसे धर्म के लिए समय... बापू ! यह तो बहुत अलौकिक बातें भाई !

उसे तो विकल्प से भी पार प्रभु ! आहाहाहा ! यह विकल्प जो गुण-गुणी के भेद का विकल्प, परंतु प्रवृत्ति से पार वस्तु है। आहाहाहा ! कहाँ जाना और कितनी निवृत्ति हो बापू ! आहाहाहा ! ***जिसे विकल्प भी बोझ लगे... आहाहा ! यह बोझा का भार निकालकर हलकी शुद्ध चैतन्यवस्तु में दृष्टि करना...*** आहाहा ! - ऐसा मार्ग है प्रभु ! दुनियाँ में वीतराग मार्ग को बिगाड़ कर मार डाला, नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। आहाहा ! क्या करते हो प्रभु ! बापू ! यह जिनवचन में रमना - इसका यह अर्थ करते है कि `निश्चय में भी रमना और व्यवहार भी रमना, जिनवचन में दोनों नय कहे है न ?' इसप्रकार अर्थ करते हैं। अरे प्रभु ! आहाहा !

जिनवचन में तो त्रिकाली ज्ञायक को ही उपादेय कहा है और पर्याय को राग को तो हेय कहा है, असत्यार्थ कहा न ? परंतु असत्यार्थ का अर्थ कि `है' परंतु आश्रय करने लायक नहीं इस अपेक्षा से उसे असत्य कहा भी है, उसे असत्य कहा। आहाहा ! परंतु इन दोनों में रमना... यह जिनवचन में दो नय कहे है। वीतराग ने दो नय कहे है और दोनों में रमना - ऐसा उसका अर्थ नहीं प्रभु यहाँ। आहाहा ! - ऐसा अर्थ यह करते हैं। जिनवाणी में दोनों आये हैं, निश्चय और व्यवहार। दोनों में रमना - ऐसा अर्थ करते है न पण्डित लोग अभी भाई ! - ऐसा नहीं बापू ! (श्रोता :- जिनवाणी में हेय उपादेय दोनों आदर करने लायक होते है ?) यह हेय-उपादेय - ऐसा नहीं, दोनों जानने लायक है कि नहीं। जानने लायक दोनों है कि

नहीं ? अतः दोनों आदर करने लायक हैं ? जानने लायक हैं परंतु एक तो उपादेयरूप जानने लायक है, और एक हेयरूप जानने लायक है। जानने योग्य की अपेक्षा दोनों बराबर है। आहाहाहा ! क्या हो भाई ? वर्तमान में भगवान है नहीं, केवली रहे नहीं। ***केवलज्ञान की उत्पत्ति रही नहीं। भले भगवान न हों परंतु यह भी रहा नहीं, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान जो प्रत्यक्ष- ऐसा सामने हो जाय कि अहो ! यह तो हमारे मन की बात जानते है भाई ! तो इनको यह भी नहीं रहा। अब इस श्रुतज्ञान द्वारा... भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को पकड़ना, यह बात अकेली रही है। आहाहा ! और वह श्रुतज्ञान वस्तुतः तो परोक्ष है, आनंद की अपेक्षा से अनुभव की अपेक्षा से प्रत्यक्ष भले कहो। आहाहाहा !***

जिनवचन... भगवान के वचन... वाणी, उसमें जो पुरुष रमते है यह जिनवचन आये न ? परंतु जिनवचन में कहीं हुई मुख्यता, यह वस्तु जो है। पूर्णानंद का नाथ प्रभु। वह उपादेय है, यह आश्रय करने लायक है, यह आदरणीय है और यह ही जगत में मूलप्रभु स्वयं है। आहाहा ! ऐसी वस्तु में जो रमते हैं। आहाहा ! उसमें प्रीति सहित (जो) अभ्यास करते है, वह पुरुष अपने द्वारा अन्य कारण बिना मिथ्यात्व कर्म के उदय का वमन करके, आहाहा ! अर्थात ? ***जो शुद्धचैतन्य स्वभाव है वहाँ अंदर रमते हैं, उन्हें मिथ्यात्व का उदय होता ही नहीं। उसने मिथ्यात्व का वमन कर दिया - ऐसा कहा जाता है।***

विशेष कहेंगे...

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. ५० श्लोक-४ ता. २-८-७८ बुधवार अषाढ वदी-१४ सं.२५०४

है न चौथा कलश !

'उभयनयविरोधध्वंसिनी' क्या कहते हैं ? कि निश्चयव्यवहार दो नय, विषय के भेद से परस्पर विरोधी (है), क्या कहा ? निश्चयनय का विषय त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है। शुद्ध चैतन्य अखण्ड परमस्वभाव भाव परमात्म द्रव्य, वह निश्चय का विषय है। उसके लक्ष्य से, परमात्म द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन जो होता है। प्रथम धर्म की शुरूआत... वह त्रिकाली ज्ञायक परमात्मा द्रव्य वस्तु, उसके

आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। व्यवहारनय है, पर्याय है, राग है गुण भेद है, परंतु वह तो व्यवहारनय का विषय है, निश्चयनय के विषय से व्यवहारनय का विषय विरुद्ध है, दोनों में विरुद्धता है। आहाहा ! यह निश्चय यथार्थ दृष्टि जो है अथवा ज्ञान है। वह त्रिकाली को विषय करती है, पूर्णानंदस्वरूप सहजानंद प्रभु ! उसका वह विषय है, यह निश्चयनय का ध्येय है, यह सम्यग्दर्शन का आश्रय करनेवाली चीज है। आहाहा !

और व्यवहारनय, वर्तमानपर्याय अवस्था और रागादिक भाव, उनको बतानेवाला व्यवहारनय है, तब दोनों के विषय में विरुद्धता हो गई। है ? निश्चय और व्यवहार इन दो नयों के विषय अर्थात उसके लक्ष्य का जो आश्रय है उसमें परस्पर विरोध है, इस विरोध का नाश करनेवाला ***स्याद्पद से चिह्नित, आहा ! अपेक्षा से कहना है। त्रिकाली सत्य है और पर्याय असत्य है - ऐसा जो कहना है यह अपेक्षा से कहना है त्रिकाली सत्य जो ध्रुव चैतन्यमूर्ति परमानंदप्रभु वह ही सत्य है, उसको मुख्य कहकर निश्चय कहकर उसे सम्यग्दर्शन का विषय बताया। आहाहा ! सूक्ष्मबात है बापू !***

और एक समय की पर्याय का और राग शुभ दया-दान-भक्ति का राग आदि हो यह सब पर्याय का व्यवहारनय का विषय, उसको `नहीं है', गौण करके `नहीं है' - ऐसा कहने में आया है ! ऐसी कठिन बात ! जगत को बाहर को क्रियाकाण्ड से - ऐसा होगा और वैसा होगा, वह तो पुण्य बंध का कारण है कोई धर्म नहीं। आहाहा ! (श्रोता :- मिथ्यात्व बिना का पुण्य कि मिथ्यात्व सहित का पुण्य ?) मिथ्यात्व सहित का पुण्य, ***भगवान की प्रतिमा, पूजा, जिनदर्शन श्रवण, वांचन, यह सब शुभराग है, राग है और उसमें धर्म मानते है, यह मिथ्यात्व सहित पुण्य है।*** आहाहाहा ! कठिन बात है भाई !

यहाँ कहते हैं कि मूलवस्तु तो त्रिकाली आत्मा आनंदस्वरूप भगवान, सहजात्मस्वरूप शुद्ध उसको विषय करनेवाला नय... (निश्चय) उस नय को विषय बननेवाला, नय का विषय ध्रुव, उसको सत्य कहा और व्यवहारनय का विषय पर्याय वर्तमान अवस्था और दया-दान-रागादिक के भाव, उसको असत्य कहा, इस अपेक्षा से कहा है। मुख्य की दृष्टि कराने को, व्यवहार को गौण करके (किसी) अपेक्षा से, `नहीं है' - ऐसा कहने में आया है। आहाहाहाहा !

जिन भगवान के वचन वाणी है उसमें जो पुरुष रमते है, क्या कहते हैं ? भगवान जिनेन्द्रदेव की वाणी में तो यह पूर्णानंद का नाथ प्रभु शुद्धचैतन्य वही उपादेय कहने में आया है। आहा ! वीतराग की वाणी में जिनेश्वर की दिव्यध्वनि में भगवान

पूर्णानंद प्रभु, पर्याय नहीं राग भी नहीं, निमित्त भी नहीं, गुण-गुणी का भेद भी नहीं, ऐसी अभेद चीज जो है, उसको ही जिनवाणी में आदर करने लायक कहने में आया है। आहाहाहा ! इसमें है न ! कल कहा था ना, यह कल यहाँ नहीं था चौथी गाथा में कलश टीका (के) कलश में कहा है न लो !

'जिनवचसि' दिव्यध्वनि के द्वारा कहीं हुई है उपादेयरूप शुद्धजीववस्तु... त्रिकाल सच्चिदानंदप्रभु ! शुद्धचैतन्यद्रव्य स्वभाव ! वह जिनवचन में आदरने लायक कहने में आया है, पर्याय और राग आदर करने लायक है - ऐसा जिनवाणी में है नहीं। आहाहाहा ! ऐसी बात है हाँ ? राजमलजी ने ऐसी टीका की है, 'जिनवचसि' अर्थात **दिव्यध्वनि द्वारा कहने में आया है ऐसी जो शुद्धजीव वस्तु वही उपादेय है।** ***वहाँ नजर करने लायक है और वही आदरणीय है।***

वर्तमान पर्याय और दया-दान-व्रत-भक्ति आदि का भाव, वह आदर करने लायक नहीं। यह जानने लायक है, कि है, आदर करने योग्य नहीं। आहाहा ! समझ में आता है ? और एक जीववस्तु, उसमें रमते सावधान होकर रुचि श्रद्धा प्रतीति करते हैं। त्रिकाल... पूर्णानंदप्रभु ! उसकी रुचि प्रतीति, श्रद्धा करते हैं, शुद्ध जीव का प्रत्यक्षरूप से अनुभव करते हैं... उसका अर्थ यह है, ***श्रद्धा रुचि प्रतीति का अर्थ यह कि भगवानआत्मा पूर्ण शुद्ध एक समय की पर्याय रहित - ऐसा त्रिकाली भगवान आत्मा यह वस्तु को प्रत्यक्षरूप अनुभव करते हैं इसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहाहा ! (श्रोता :- अनुभव तो ज्ञान की पर्याय है) भले ही ज्ञान की पर्याय, उसमें प्रतीति है कि नहीं ? साथ में आचरण भी है कि नहीं स्थिरता ? स्वरूप आचरण। समझ में आया ?***

श्रीमद् में तो अनुभव लक्ष्य प्रतीति... लक्ष्य यह ज्ञान, प्रतीति यह श्रद्धा और अनुभव को आचरण कहा है। परमात्मस्वरूप अपना बाहर की चीज को निमित्त भले हो, साक्षात् भगवान हो तब भी परद्रव्य के लक्ष्य से तो राग ही होगा। उससे धर्म होगा; यह तीनकाल में नहीं। आहाहाहा ! समझे कुछ ?

तब जिनमंदिर और भगवान की प्रतिमा और सम्मेदशिखर, यह सब पर के लक्ष्य से तो शुभ राग ही होगा, (यह) आयेगा परंतु है राग। है हेय, छोड़ने लायक। आहाहा ! परमात्मस्वरूप एक शुद्ध चैतन्य... कल प्रश्न था न, कि भाई प्राप्ति के पहले क्या होता है ? कि यह क्या हो उसका कहीं विकल्प कैसा हो यह उसका किसीका प्रमाण हो यह अपने इसमें, बेन के वचनामृत में लिखा है, पहला विकल्प कैसा हो - ऐसा कोई नियम नहीं है, विकल्प होता अवश्य परंतु - ऐसा ही हो कि मैं शुद्ध हूँ अखण्ड हूँ एक हूँ... किस प्रकार के विकल्प आये - ऐसा होता

नहीं, कैसा आये उसे उस समय - ऐसा (नियम नहीं)। समझे कुछ ? बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा !

फिर भी विकल्प आये, यह वस्तु नहीं। उसके अवलम्बन से आत्मा का धर्म सम्यग्दर्शन होता है, यह नहीं। आहाहाहा ! विकल्प है वह तो व्यवहारनय का विषय है, राग आया यह व्यवहारनय का विषय है। यह व्यवहारनय है यह जानने लायक है, परन्तु हेय रूप में... छोड़ने लायक जैसा जानने लायक है, और त्रिकाली भगवान पूर्णानंदप्रभु उपादेय अपेक्षा जानने लायक है। ऐसी बातें है।

है ? प्रत्यक्षरूप अनुभव, उसका नाम रुचि श्रद्धा प्रतीति, उसका नाम रुचि श्रद्धा प्रतीति यों की यो श्रद्धा हमारे आत्मा की है - ऐसा नहीं। आहाहा ! भगवान पूर्णानंदप्रभु ! ***वस्तु ध्रुव उसका वर्तमान पर्याय में प्रत्यक्ष अनुभव होना, और इस अनुभव में प्रतीति होना उसका नाम सम्यग्दर्शन है।*** आहाहा ! अभी तो मार्ग में बदलाव (आया), बाहर से होगा - ऐसा करो, व्रत करो और तपस्या करो और भक्ति करो मंदिर बनाओ एवं प्रतिमा के दर्शन करो और यात्रा करो, धूल में नहीं। मुनि (राज) को आहार दो। मुनि को आहार दो, यह तो सभी राग है। आहाहा ! मुनि को आहार देने की क्रिया का भाव यह राग है, यह कोई धर्म नहीं। आहाहा ! धर्म तो अंदर आत्मा पूर्णानंदप्रभु, उसको उपादेय बनाकर एकाग्रता होना, और निर्विकल्प दशा प्रगट होना उसका नाम धर्म है। ऐसी बात है। आहाहा !

(बीच में) पूर्ण वीतराग जब न हो तब तक बीच में - ऐसा राग आता है। व्रत का भक्ति का आता है परंतु है यह हेय, उससे बंधन होता है। समझ में आया ? तब कहा वचन पुद्गल जिनवचन है न ! गाथा में तो - ऐसा है, `जिनवचसिरमन्ते' है ? तब कहते हैं कि जिनवचन तो पुद्गल है, जड़ है, जड़ में रमना है ? पाठ तो - ऐसा है `जिनवचसिरमन्ते' परंतु आचार्य कहते हैं उसका अर्थ क्या ? उसका आशय क्या ? पुद्गल... उसकी रुचि करने पर स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, ऐसे वचन द्वारा कहने में आनेवाली कोई उपादेय वस्तु, आदरणीय वस्तु, आहाहाहा ! उसका अनुभव करना यह फल प्राप्ति है। आहाहाहा ! कलश टीका है न पहले आया था कल नहीं थी। कल यहाँ नहीं थी न !

`जिनवचसिरमन्ते' हाँ ? इसका अर्थ यह, और दूसरी बात कहें तो चारों अनुयोगों का सार तो वीतरागता है, और वीतरागता जो है यह जिनवचन में वीतरागता बताई (है) कि वीतरागता प्रगट करो। तब वीतरागता प्रगट कब होगी ? कि त्रिकाली भगवान ज्ञायकस्वरूप है उसका आश्रय करने से वीतरागता (प्रगट) होगी। आहाहाहा ! तब `जिनवचसिरमन्ते' में यह क्यों कहा ? ***`जिनवचसिरमन्ते' इसमें जीव उपादेय - ऐसा***

क्यों कहा ? कि जिनवचन में चार अनुयोगों में सार वीतरागता बताना है, तात्पर्य अपेक्षा वीतरागता बताना है, तो वीतरागता जब बताना है, तो वीतरागता होगी कब ? यह तो त्रिकाली द्रव्य... उसके आश्रय से होगी। उसका मतलब यह हुआ, `जिनवचसिरमन्ते' समझ में आया ? आहाहाहा ! भगवान की वाणी दिव्यध्वनि त्रिलोकनाथ परमात्मा उनकी वाणी में चारों अनुयोग आये परंतु उसका तात्पर्य क्या ? भले कथानुयोग आये करणानुयोग आये, चरणानुयोग आये, परंतु उसका तात्पर्य क्या ? कि, वीतरागता। तब जिनवचन की तात्पर्य वीतरागता बताना है, तब वीतरागता कब होगी ? शुरुआत में त्रिकाली जिनस्वरूपी भगवानआत्मा। परमानंदस्वरूप प्रभु ! वह वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है उसके अवलम्बन से वीतरागता, सम्यग्दर्शन होगा। आहाहाहा ! समझ में आया ?

क्या कहा ? `जिनवचसिरमन्ते' का - ऐसा अर्थ क्यों किया उन्होंने ? आहाहा ! कोई कहे यह तो कलश (टीका)कार ने किया है, परंतु क्यों किया ? कारण कि जिनवचन जितना है चारों अनुयोगों का कथन भगवान की वाणी में आया। तो यदि भगवान की वाणी में आया, उसका तात्पर्य क्या ? उसका फल क्या, कि वीतरागता ! चारों अनुयोग का तात्पर्य वीतरागता। ***कहीं राग करना और राग का फल वह जिनवचन में है ही नहीं। यह तो जानने की अपेक्षा कही। समझ में आया ? और यह तो वीतरागता प्रगट करने को कहा (है) तब वीतरागता प्रगट कब हो ? वह कहीं वर्तमान पर्याय है, कि राग है, कि निमित्त है उसके आश्रय से वीतरागता नहीं होगी।*** आहाहाहाहा !

तब वीतरागता पर्याय में कब होगी ? कि वीतरागस्वरूप भगवान जिनस्वरूपी प्रभु आत्मा है, अप्पा सो परमप्पा। आत्मा सो परमात्मा। आहाहा ! यह भगवानआत्मा परमात्म स्वरूप त्रिकाल, उसका आश्रय लेने से वीतरागता होती है, तो उसमें जिनवचन का तात्पर्य बताया है, भाई ! कि राजमल (जी) ने - ऐसा इसमें क्यों किया, वहाँ तो जिनवचसिरमंते कहा - ऐसा अर्थ कैसे किया ? इन वीतराग वचनों में शास्त्र जो आये, उसका तात्पर्य वीतरागता है और वीतरागता जो है यह त्रिकाली आत्मा आनंदस्वरूप भगवान उपादेय है, उसीको उपादेय करें (मानें) उसीको वीतरागता होगी समझ में आया ?

(श्रोता :- बतानेवाले के प्रति आदर हो तो आत्मा प्रति आदर हो न) बतानेवाले की यहाँ जरुरत नहीं। बतानेवाला बतानेवाले के घर रहा। यह तो राग है। बतानेवाले को सुनते है यह तो राग है, सूक्ष्म बात है भाई ! आहाहा ! बतानेवाला आया और सुना वह तो राग है, परंतु राग का तात्पर्य तो बाद में वीतरागता है, तब उसका आशय क्या हुआ ? कि राग का भी नहीं और सुनना है - ऐसा भी नहीं। आहाहा ! १७२ गाथा पंचास्तिकाय ! सारे शास्त्र वीतराग जिनशासन सारे शास्त्र का तात्पर्य

वीतरागता है - ऐसा १७२ गाथा में लिया। तब `जिनवचसिरमन्ते' का अर्थ - ऐसा क्यों किया ? सार कहा है कि, वीतरागता बताना यह जैनशासन की वाणी का सार है, तो वीतरागता कब होगी ? कि `जिनवचसिरमन्ते', वीतरागता बतानेवाली वाणी। यह वीतरागता कब होगी ? कि त्रिकाली (को) उपादेय मानकर वीतरागता होगी तो जिनवचन - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा ! समझ में आया ?

- ऐसा अर्थ क्यों किया और इसका अर्थ साधारण लिया है, इसका तो मर्म लिया है भाई ! क्या ? क्या कहा ? आहाहा ! मर्म क्या ? कि जिनवचन में रमन्ते इतनी व्याख्या शब्द पाठ है। अब जिनवचन है वह तो जड़ है उसमें तो कुछ रमना है नहीं अब जिनवचन में कहने में आया जो चार अनुयोग उसका सार तात्पर्य फल क्या है वीतरागता, तव वीतरागता जो है वह कब प्रगट होगी ? यह त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान पूर्णानंदप्रभु, उसके सन्मुख होनेपर उसका आश्रय लेते हैं, तो वीतरागता होगी, तब चारों अनुयोगों में उपादेय यह आत्मा है, उसमें रमना है - ऐसा कहने में आया है। राजमलजी ! देवीलालजी ! आहाहा !

वस्तु कही है। इसे `जिनवचंसिरमंते' यहाँ - ऐसा क्यों कहा ? जिनवचन आत्मा को उपादेय कहते हैं, ऐसा क्यों कहा ? कि जिनवचन में तो वीतरागता तात्पर्य है। एक वीतरागता सार बताना है, फल रूप में, तब वीतरागता आत्मा का फल कैसे होगा ? वह त्रिकाली वस्तु भगवान पूर्णानंद जिसमें निमित्त तो नहीं, देव-गुरुका आश्रय भी नहीं। क्योंकि देव-गुरु पर हैं, उसकी श्रद्धा करना वह भी राग है, यहाँ तो वीतरागता तात्पर्य है। जिनवचन का तात्पर्य तो वीतरागता है। आहाहा ! छोटालालजी ! (श्रोता :- अपूर्व बात है।) ऐसी बाते हैं। (श्रोता :- निहाल हो जायें ऐसी बात है) शैली तो देखो प्रभु की। आहाहा ! जिनवचन - ऐसा कहें... चारो अनुयोग, चाहे तो कथानुयोग हो, चरणानुयोग हो परंतु उसका तात्पर्य तो वीतरागता बताना है, वीतरागता प्रगट करना, तब वीतरागता प्रगट करना तब उसका अर्थ यह हुआ कि चारों अनुयोग में इसका अर्थ वीतरागता प्रगट करना है ? पूर्णानंद प्रभु को उपादेय करे तो उसको वीतरागता होगी। आहाहाहा ! न्याय है कि नहीं ? आहाहा !

राजमलजीने तो मर्म निकाला है - ऐसा कोई अर्थ कर सकते नहीं साधक ! अभी जगमोहनलालने किया है परंतु यह तो `जिनवचंसिरमंते' क्यों किया - ऐसा अर्थ ? वीतराग की वाणी चार अनुयोगरूप निकली `दिव्यध्वनि' तब भी उसका तात्पर्य क्या ? फल क्या ? कि वीतरागता प्रगट करना, तब वीतरागता प्रगट कब होगी ? कि त्रिकाली जिनस्वरूप जिन, घट घट में जिन वसे, भगवान आत्मा जिनस्वरूपी परमात्मा हैवही आत्मा है। आहाहा ! `घट घट अंतर जिन वसे घट घट अंतर जैन, मत

मदिरा के पान सो मतवाला समझे न' भगवान अंदर जिनस्वरूपी प्रभु है... वीतरागता तात्पर्य है उसका अर्थ जिन स्वरूपका आश्रय करना। मोहनलालजी ! १७२ गाथा में तो - ऐसा कहा, पंचास्तिकाय में कि भाई सूत्र तात्पर्य तो शब्द शब्द गाथा में आया वह तात्पर्य कहा, अब सारे शास्त्र का तात्पर्य क्या ? भगवानने चारो अनुयोग कहे, परंतु उसको फल क्या ? उनका कहने का फल क्या, कि वीतरागता प्रगट करना यह बताया है, तो यह वीतरागता प्रगट होगी कब ? यह त्रिकाली ज्ञायक को उपादेय बनाके जाने माने उसको वीतरागता होगी।

प्रथम सम्यग्दर्शन भी वीतरागी पर्याय है। त्रिकाली भगवान जिन स्वरूपी परमात्मा, यह अप्पा सो परमात्मा। अप्पा सो परम-अप्पा। तारण स्वामी में यह शब्द है `अप्पा सो परमप्पा'। आत्मा सो परमात्मा है, दूसरे परमात्मा... उनके घर रहे, यह आत्मा स्वयं परमात्म स्वरूप है अंदर स्वशक्ति। आहाहा ! यह वीतराग स्वरूप ही प्रभु है। अर्थात वीतरागता बताने का हेतु, स्वका आश्रय करना वह सभी अनुयोगों का सार है। भाई ! यह तो `जिनवचंसिरमंते' - ऐसा अर्थ क्यों किया उन्होने ? भाई ! यह तो वस्तु के मर्म का अर्थ किया है। आहाहा !

जिनवचनमें ऐसी बात बहुत ली, परंतु उसका फल क्या ? वीतरागता प्रगट करना, तब वीतरागता प्रगट कब होगी ? प्रथम सम्यग्दर्शन भी वीतराग पर्याय है, सम्यग्दर्शन (कहीं) सराग समकित - ऐसा है नहीं कहीं। आहाहा ! सराग समकित और वीतराग समकित यह तो चरणानुयोग अपेक्षा दोषो का वहाँ ज्ञान कराने को (है)। कि समकित तो वीतराग पर्याय ही है। प्रथम चौथे गुणस्थान की समकित दशा यह वीतरागी पर्याय है, तब वीतरागी पर्याय है यह जैन शासन का तात्पर्य है, तब वीतरागता पर्याय है यह प्रगट कैसे होगी ? तब कहते (कि) द्रव्य को उपादेय मानने से। त्रिकाली को उपादेय माने प्रथम से अंत तक। पूर्ण वीतरागता प्रगट होने में भी पूर्ण उपादेय का आश्रय करना, वह जैन शासन का तात्पर्य है। आहाहा ! गजब बात है। कैसी शैली ! कैसी शैली ! आहाहा ! और कैसी रीति न्याय से बैठती। आहाहा ! - ऐसा अर्थ किया (है)।

यह लोगो को रूचे नहीं फिर - ऐसा अर्थ उसमें से निकालते है कि `जिनवचंसिरमंते' जिनवचन में तो दो नय कहे हैं, तब दोनो नयों में रमना - ऐसी है ही नहीं, दोनो नयों में तो विरोध है, इसलिए तो कहते हैं, विरोध है, तो दोनों में रमना ? निश्चयमें रमना और व्यवहारमें ? आहाहा ! समझ में आया ? कठिन मार्ग बापा ! आहाहाहा ! वहाँ तो सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो कल्याण हो जायेगा, धूलमें नहीं कही वहाँ लाख बार जाओ करोड़बार, सम्मेदशिखर (यात्रा) यह तो शुभ राग है, आता है परंतु

यह धर्म नहीं। यह वीतरागता नहीं। आहाहाहा ! जिनवचन में वीतरागता बताना है। पंचास्तिकाय ! चेतनजी ! पंचास्तिकाय १७२ गाथा। चारों अनुयोगों का सार शास्त्र (तात्पर्य) वीतरागता लाना (है) वीतरागता कब आयेगी ? आहाहा ! कि वीतराग स्वरूप जो, घट घट अंतर जिन वसे, जिन प्रभु स्वयं घट घट में भगवान परमात्मा स्वयं है, उसका आश्रय करने से वीतरागता होगी, तब चारों अनुयोगों में स्व का आश्रय करना वह उसका आशय है। देवीलालजी ! हाँ ? आहाहा !

गजब बात की है न ? यह सभी विचार आये थे हाँ कि अभी, इसने - ऐसा क्यों कहा ? यह भाई - ऐसा यहीं `जिनवचसिरमन्ते' शब्द है, वहाँ जिनवचन में उपादेय जिनवस्तु जो कही उसमें रमना, उसका अर्थ क्या ? आहाहाहा ! यह अर्थ तो वही करे। दूसरों का भाव नहीं... अंदर से कहीं का कहीं निकालें यह कहीं। आहाहाहा ! जिन वीतराग त्रिलोकनाथ की चाहे जो वाणी हो चारों अनुयोगों की, परंतु उसमें से वीतरागता सार निकालना है। वीतरागभगवान है, तब वाणी में वीतरागता कैसे प्रगट हो - ऐसा बताना है। तो वह वीतरागता सारे अनुयोगों का सार जिनशासन का सभी शास्त्रों का तात्पर्य है, तब यह वीतरागता कब होगी ?

आहाहाहा ! त्रिकाली जिनस्वरूप भगवानआत्मा, परमात्मा स्वरूपी विराजमान आत्मा है, आहाहाहाहा ! उसका आश्रय करने से, क्योंकि वीतरागस्वरूपी जिनस्वरूपी आत्मा है उसका आश्रय करने से वीतरागता होगी। आहाहा ! चारों अनुयोगों की पुकार यह एक है। समझ में आया ? व्रत आना और भक्ति आना, यह आते हैं, यह अलग बात है। परंतु हैं हेय, यह वीतरागता बताना (है) यह उसमें आया नहीं। आहाहाहा ! ऐसे व्रत करना और ऐसे उपवास करना - ऐसी चरणानुयोग में बात आती है परंतु उसका अर्थ क्या ?

(स्व) सन्मुख होने के बाद अस्थिरता रहती है, तब - ऐसा विकल्प आता है, परंतु वह विकल्प आदरणीय नहीं। आदरणीय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव, वीतरागभाव उत्पन्न होने में कारण है अतः आदरणीय है। आहाहा ! और उसमें से भी तात्पर्य वह वीतराग भाव (का) निकला, तव (वीतरागता) त्रिकाली के आश्रय से होती है। तो व्यवहार के आश्रय से तो वीतरागता नहीं हो, तब व्यवहार हेय हो गया। जानने लायक हो गया। जानने लायक, जानने लायक है इतना। आहाहा ! गजब बात है, निश्चय और व्यवहार की संधि।

यहाँ तो बाहर में उपवास करे और भक्ति की और पूजा की एवं पांच पच्चीस लाख खर्च किये और हो गया धर्म। धूल में धर्म नहीं। धर्म कैसा वहाँ ? कदाचित राग की मंदता किया हो तो वह पुण्य है, राग है यह कहीं धर्म नहीं। आहाहाहा !

शेठ ! - ऐसा मार्ग है। आहाहा ! - ऐसा कैसा अर्थ किया है ? इन्होंने अरे क्या किया होगा ? आहाहा ! जिनवचन वीतराग का वचन, वीतरागता प्रगट करने का वचन, वाच्य। आहाहा ! राग तो अनंतबार प्रगट किया। वह कोई जिनवचन, शास्त्र का तात्पर्य नहीं कहीं। व्यवहार-व्यवहार अकेला आता है। यह कोई शास्त्र का तात्पर्य नहीं। आहाहाहा !

समकिती को भी व्यवहार आता है, यह कहीं शास्त्र का तात्पर्य नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ? आहा ! भगवान त्रिलोकनाथ। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर ! उनकी दिव्यध्वनि ओमकार ध्वनि `मुखओमकार ध्वनि' सुनी अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश `भविकजीव संशय निवारे' परंतु यह संशय निवारे अर्थात कि मिथ्यात्व टाले अर्थात राग की एकता टाले और वीतरागता करे। आहाहाहा ! उन चारों अनुयोगों में आगम की रचना गणधर ने उसमें की। आहाहाहा ! क्या शैली ? क्या शैली ? गजब शैली ? चारों तरफ से मिलाओ तो ऐसा मिलान हो जाता है। आहाहा ! कि ग्यारहवीं गाथा में कहा १२ वीं में यहाँ कहा। ११ वीं में कहा कि त्रिकाली भगवान पूर्णानंदप्रभु, यह परमात्मा है और उसका आश्रय करो, उसका अवलम्बन करो, आहा ! यह अवलम्बन तो वीतरागता उत्पन्न होने का कारण है। वीतरागी स्वरूप त्रिकाली है उसीका अवलम्बन, यह वीतरागता की पर्याय उत्पन्न करने का कारण है। आहाहाहा ! ***बीच में व्यवहार आता है वह (व्यवहार) जैनशासन का वीतराग वाणी का तात्पर्य नहीं है। आहाहाहा ! यह तो बीच में पुरुषार्थ की कमजोरी से आता है। यह कोई शास्त्र का तात्पर्य नहीं। आहाहाहा ! यह व्यवहार कहीं शास्त्र का तात्पर्य नहीं।*** आहाहा ! सारे करोड़ों अरबों शास्त्र, आहाहा ! एक आचारंग में अठारह हजार पद, और एक पद में इक्यावन करोड़ से भी ज्यादा श्लोक, पहला एक आचारंग सूत्र १८ हजार पद एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक- ऐसा - ऐसा डबल छत्रीस हजार सूत्रांग, ७२ हजार पद, यह सब शास्त्र बारह अंग, तात्पर्य क्या है ? कि जो अनंत काल में स्व का आश्रय लेकर वीतरागता प्रगट की नहीं, यह स्व का आश्रय लेकर वीतरागता प्रगट करना यह सब (शास्त्रों का) तात्पर्य है। आहाहा ! समझ में आया ? देखो यह बात दूसरे प्रकार से आयी। आज बात हिन्दी भाई आये है न, भाई ! यह बहुत सरस बात है। आहाहा ! `जिनवचसिरमन्ते' `जो पुरुष उसमें रमते हैं प्रचुरता सहित अभ्यास करते है अर्थात जिनस्वरूपी भगवान अंदर विराजमान हैं' उसका आश्रय लेकर वीतरागता होती है तब वह जिन वचन में वीतरागता बताना है तब वीतरागता स्व के आश्रय से होती है। तब जिनवचन में स्व को उपादेय करने का कथन है। आहाहाहाहा ! तब जिनवचन में त्रिकाली भगवान उपादेय आनंदकंद प्रभु, वह ही उपादेय

कहने में जिनवचन में आया है। व्यवहार उपादेय है - ऐसा जिनवचन में आया नहीं। व्यवहार आता है, परंतु हेय है। आहाहा ! बाबूलालजी ! आज तो थोड़ा हिन्दी (में) आया। आहाहा !

यह तो राजमलजी ने - ऐसा अर्थ क्योंकिया ? जिनवचन तो पुद्‌गल है, तब जिनवचन में कहा हुआ जो भाव है उसका तात्पर्य तो वीतरागता है। तब वीतरागता जिनवचन में कही, तब यह वीतरागता उत्पन्न होगी स्व के आश्रय से, अतः जिनवचन में स्व को उपादेय कहा है। स्व त्रिकाली भगवान यह उपादेय कहकर वीतरागता प्रगट करने को कहा है। आहाहा ! चारों अनुयोग बारह अंग, कोई भी... (चारो अनुयोग हो), अमुक में यह कहा न अमुक में यह कहा न चरणानुयोग में यह सब कहा। आहाहा ! उसका अर्थ ? कि तुम्हारा स्वरूप ही ज्ञातादृष्टा है, ज्ञातादृष्टा हो जा, तभी वीतरागता होगी। आहाहाहाहा ! जयसुखभाई ! यह झगड़ा करे। इससे - ऐसा है न, इसमें - ऐसा है न, इस व्यवहार से निश्चय होता है, प्रभु परंतु - ऐसा नहीं होता। प्रभु तुम अपने तत्त्व की शैली को भूल गये हो और वीतराग (देव) का यह कहना नहीं, वीतराग को तो (- ऐसा) कहना है ही नहीं। आहाहाहा !

वीतराग को तो परमात्मा को तो यह कहना है, त्रिलोकनाथ परमात्म स्वरूप तुम हो न नाथ ! आदर सत्कार करो उसका। आहाहाहा ! वही उपादेय जानो, व्यवहार यह उपादेय नहीं, आता है परंतु हेय है और जैन अनुयोगों के शास्त्र का तात्पर्य कहीं व्यवहार और राग (करना) यह तात्पर्य नहीं। आहाहाहा ! इसलिये जिसको शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता जो स्व के आश्रय से होती है। उसको व्यवहार आता है परंतु वह व्यवहार हेय है, क्योंकि यह शास्त्र का तात्पर्य नहीं। आहाहा ! कहाँ तक यह उपादेय है कि जबतक वीतरागता केवलज्ञान पूर्ण न हो तब तक वीतरागस्वरूप भगवान को ही आदरणीय करना। आहाहा ! शैली तो देखो शैली। आहाहा ! यह वीतरागवाणी और वीतरागवाणी का यह सार। अरे प्रभु ! वाद और विवाद, निमित्त से होगा। अरे प्रभु ! यह तो निमित्त से होगा यह वाणी का तात्पर्य है क्या ?

यदि निमित्त से होगा तब तक राग होगा। आहाहाहा ! भगवान साक्षात् विराजते हैं ! समवशरण में, उनका दर्शन करना वह भी एक शुभराग है। क्योंकि यह परद्रव्य है। यह कहीं जैनशास्त्र का तात्पर्य नहीं। भगवान का दर्शन। आहाहा ! तात्पर्य तो वीतरागता। प्रथम कक्षा से ही त्रिकाली भगवान परमानंद प्रभु आत्मा परमात्मस्वरूप ही अंदर विराजमान है स्वभाव से, शक्ति से, सत्व से, तत्त्वरूप में उसका आश्रय करना वही सभी अनुयोगों का कहना है। यह आश्रय कहाँ तक, जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तबतक। क्योंकि शुरूआत में भी वीतरागता तात्पर्य है, फिर पूर्ण वीतरागता

तात्पर्य है। आहाहा ! है ? आहाहाहाहा ! तब पूर्ण वीतरागता भी स्व का पूर्ण आश्रय लेने से होती है। तब वहाँ भी यह भगवानआत्मा एक उपादेय आया। आहाहाहा ! यह जिनवचसिरमन्तेमें से यह सभी आया। आहाहा ! अपने आप पुरुष रमते है। (स्वयं) अपने आप ही अन्य कारणों के बिना, वान्तमोहाः `मिथ्यात्व रूपी भ्रमणाका' राग की एकता का मिथ्यात्वभाव, आहाहा ! स्व की एकता का तात्पर्य है तब स्व की एकता करते है तब राग की एकता स्वयं नाश हो जाती है। वमन हो जाता है ? आहाहा ! है ? वान्तमोहाः मिथ्यात्वकर्म के उदय का वमन करके, आहा ! भ्रमणा जो पुण्य से धर्म होगा और व्यवहार से धर्म होगा और निमित्त से धर्म होगा, ऐसी जो भ्रमणा मिथ्यात्वभाव वह अपने स्वभाव का आश्रय करने से मिथ्यात्वभाव नाश हो जायेगा, वमन हो जायेगा। वमन का अर्थ ? कि एकवार वमन किया उसका फिर भक्षण करते ही नहीं। आहाहाहाहा !

जिसने भगवानआत्मा पूर्णानंदप्रभु निर्विकल्प वीतराग मूर्ति का आश्रय लिया। आहाहा ! उसका जो मिथ्यात्व वमन हो गया। यह फिर मिथ्यात्व उसको आता ही नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ? स्वतः ही, वहाँ पढ़े तो कहीं समझ में आये - ऐसा नहीं वहाँ। टाइल्स में बहुत उलझ गये हों न, बोम्बे में टाइल्स का है ? थाणामें टाइल्स का, यह तो एक उदाहरण। कोई भी पदार्थ अंदर वहाँ के वहाँ घुसा करें। आहाहा !

`अन्य कारण के बिना' अर्थात क्या कहते हैं ? उसे कोई नाश करने के लिये हमने यह आश्रय लिया इसलिए नहीं, यह तो नाश होने की योग्यता से नाश होगा ही। आहाहा ! जब भगवान आनंदस्वरूप प्रभु वीतरागमूर्ति ध्रुव सच्चिदानंद अखण्ड उसका आश्रय लिया तब मिथ्यात्व का कारण बिना, अन्य कारण के बिना नाश हो जायेगा। यहाँ वीतरागता प्रगट की इसलिए नाश होगा। (- ऐसा नहीं) यह तो नाश होगा वमन उसका सहज हो जायेगा। उसकी पर्याय में उस समय का धर्म - ऐसा है। आहाहाहा ! गजब बात है न !

श्रोता :- वीतरागता प्रगट करने के लिए अपने द्रव्य के सहारे को जरुरत है कि नहीं ?

उत्तर :- वह तो वही का वही हुआ वीतराग भाव का सहारा लेना। द्रव्य के सहारे का अर्थ क्या ? वीतरागभाव का सहारा वीतरागभाव है।

श्रोता :- यह देव-गुरु-शास्त्र कुछ पर्याय को मदद करते है ?

उत्तर :- बिलकुल मदद करे नहीं। आहाहा ! देव-गुरु-शास्त्र कहीं मदद करे नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है।

देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता का विकल्प जो राग है, वह भी अपना आश्रय करने

में बिलकुल मदद करता नहीं। नुकशान होवे प्रभु ! ऐसी बात है बापा। जैनदर्शन। आहाहाहा ! यह वस्तु का स्वरूप ही - ऐसा है, कि स्वयंवीतरागस्वरूप प्रभु वीतरागस्वरूप ही है। कहा न ? `घट-घट अंतर जिन बसे,' सब घट में जिन बसे, भगवान ही जिनस्वरूप ही बसते है। आहाहाहा ! और `घट-घट अंतर जैन।' यह जिन का आश्रय लिया वह जैन। जैन कोई संप्रदाय नहीं। आहाहाहा ! कोई पक्ष नहीं, पंथ नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप (है)। आहाहाहा ! कोई पक्ष नहीं, पंथ नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप (है)। आहाहाहा ! जिनस्वरूपी भगवान। आहाहा ! उसका आश्रय लेने से वीतरागता हुई, वही शास्त्र का कहने का तात्पर्य है।

उसका अर्थ यह भी आया कि शास्त्र के अर्थ का तात्पर्य व्यवहार करना वह तात्पर्य है - ऐसा है नहीं। व्यवहार आता है, उसको जो वीतरागभाव उत्पन्न हुआ (वह) इन भावों में रहने से आता है उसको पर-प्रकाशक के रूप में ज्ञान की पर्याय उस समय पर को जानने की लायकात से उत्पन्न होती है। - ऐसा इसका स्वभाव है। जब यहाँ वीतरागस्वभाव का आश्रय लिया तो जो सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ यह सम्यग्ज्ञान वीतराग पर्याय है, और वह पर्याय स्व को जानना और जो रागादिक शेष रहता है, उसको जानना, यह राग है तो जानना - ऐसा भी नहीं। इस पर्याय का - ऐसा यह स्वभाव है कि स्वपरप्रकाशकरूप से उत्पन्न होगी। आहाहा ! यह वीतरागी सम्यग्ज्ञान है। - ऐसा उत्पन्न होगा। आहाहाहा ! गजब बात है कहाँसे कहाँ ले जाते हैं ! आहाहा !

यह स्वचैतन्य प्रभु ! निर्विकल्पचैतन्य भगवानआत्मा। द्रव्यस्वभाव का आश्रय लिया तो ज्ञान हुआ वो वीतरागी ज्ञान हुआ, क्योंकि वीतारागी स्वरूप आश्रय लेकर ज्ञान हुआ, तव वीतारागी ज्ञान हुआ। वह वीतरागी ज्ञान यह ज्ञान का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है, आहाहा ! तब जो वीतरागी ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन के साथ में ज्ञान, उस ज्ञान का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है तब राग है उसको जानना यह भी कहना व्यवहार है। यह पर्याय जो ऐसी उत्पन्न होती है, स्वपरप्रकाशक वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहाहा ! ऐसी बातें है बापू ! समझ में आया आहाहा !

प्रभु तुम्हारी वस्तु में तुम्हारी वस्तु की महानता इतनी है, कि जहाँ परमात्मा की पर्याय भी इसके पास पानी भरे, क्योंकि पर्याय तो एक समय की और यह भगवान तो अनंतगुणों का पिण्ड (त्रिकाली) पूरा है। आहाहाहाहा ! और भगवान की पर्याय है वह भी व्यवहारनय का विषय है। आहाहाहाहा ! अरे ! क्या कहते हैं यह ? यह प्रभु अंदर बुलाते है। यह मार्ग यह है। आहाहा ! क्या कहा ? व्यवहार आता है न ? परंतु प्रभु सुन तो सही। यह कहीं वीतराग के शास्त्र का तात्पर्य नहीं। इसलिए उसके कारण स्वचैतन्यमूर्ति भगवान, उसको उपादेय मानकर जब ज्ञान हुआ,

सम्यग्दर्शन के साथ, यह ज्ञान भी वीतरागी पर्याय है। वीतराग के आश्रय से वीतरागी पर्याय है, यह सरागीज्ञान नहीं और यह ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है। इसलिये जिसने त्रिकाली ज्ञायक का आश्रय लिया, उसका ज्ञान स्वपरप्रकाशक पर्याय में वीतरागी उत्पन्न होगा, तब वह राग आता है उसको वीतरागी ज्ञान से जानते है - ऐसा कहना भी व्यवहार है। आहाहाहाहा ! वास्तव में तो वीतरागी पर्याय को जानते है। आहाहाहा ! यह परमात्मा की वाणी है बापा ! ऐसी कहीं नहीं है अन्य (जगह) और न्याय से उसे स्वीकृत हो जाय - ऐसा है, थोड़ा ध्यान रखे तो। यह कहीं खींचकर जबरदस्ती मनवाने कराने की बात हो - ऐसा कहीं नहीं। आहाहा ! इसके सहज स्वरूप की बात आयी है। ठीक अभी बराबर हमारे मोहनलालजी और सभी सुनने आये हैं और यहाँ यह नयी बात निकाली है हो - ऐसा अभी तक स्पष्ट आया नहीं। आहाहा !

अन्य कारण के बिना मिथ्यात्व कर्म के उदय का वमन करके `उच्चैः परमज्योति समयसार'। ऐसी अतिशय परमज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा, समयसार अर्थात शुद्धात्मा। - ऐसा ज्योति समयसार कहा न ? समयसार। अर्थात शुद्धात्मा। समयसार शब्द लिखा है न अंदर उच्चै परम ज्योति समयसारः उच्चै अतिशयरूप परम ज्योतिरूप वहाँ तक तो उच्चै परमज्योति अर्थ किया। अब कौन ? कि समयसार। अर्थात कौन ? कि शुद्धात्मा। आहाहा ! यह श्लोक तो संतो का है। यह कहीं बात बापू ! यह कहीं। आहाहा ! गजब बातें भाई !

`यह समयसार... आहाहा ! को तत्काल ही देखते है' शुद्धात्मा को, शुद्धात्मा का आश्रय लिया और उसके कारण से मिथ्यात्व का वमन हो गया। तब तत्काल शुद्धात्मा का दर्शन उसको होगा। समझ में आया ? शुद्धात्मा को तत्काल ही देखते है, `सपदि इक्षन्ते' सपदि अर्थात तत्काल, इक्षन्ते अर्थात देखते हैं। `ऐव' अर्थात `ही' ही तत्काल है न ही तत्काल देखते ही अथवा तत्काल ही देखते हैं। आहाहा ! भगवानआत्मा ! पूर्ण शुद्ध अखण्ड अभेद चीज। उसका जब आश्रय करते हैं तब वीतरागी पर्याय में (जो) पूर्णानंद आत्मा है, यह देखने में प्रतीति में आता है। ***देखने में आता है अर्थात प्रतीति में सारा आत्मा है - ऐसा आया, भले प्रतीति में आत्मा आाय नहीं। आहाहा ! परंतु शुद्धात्मा है - ऐसा पर्याय में ज्ञान आ गया, शुद्धात्मा है ऐसी प्रतीति में श्रद्धा में सारा आत्मा आ गया, आत्मा आ गया अर्थात शुद्धात्मा है कैसा कितना (है) ऐसी प्रतीति आ गई, शुद्धात्मा तो शुद्धात्मा में रहा। आहाहाहा ! मार्ग बहुत सूक्ष्म बापू। आहाहा ! (श्रोता :- आप स्पष्ट करके समझाते है) ऐसी तो बात निकलती है। देखो न अंदर से आती है (वैसी) निकलती है। आहा ! वह बिचारे नहीं आये***

अभी देर से आयेंगे। वह आनेवाले है न दांत के डॉक्टर ? किस्मत हो उसे सुनने मिले ऐसी बात है, यह तो। आहाहाहा !

`सपदि इक्षन्ते एव' जिस जिसने जिनस्वरूप भगवान, इसका आश्रय लिया तब पर्याय में सारा आत्मा तत्काल देखने में आता है, पर्याय में सारा आत्मा कितना कैसा पूर्ण है, उसका ज्ञान हो जाता है। यह पर्याय में उसको देखता है। आहाहा ! पर्याय में देखते हैं। उसका अर्थ ? ***वीतरागी पर्याय में वीतरागस्वरूप जैसा है वैसा ज्ञान में आया। - ऐसा प्रतीति में आया। आहाहा ! वस्तु तो वस्तु में रहीं, परंतु पर्याय जो उसके आश्रय से प्रगट हुई उस पर्याय में सारा भगवान शुद्धात्मा जो वीतरागस्वरूप है - ऐसा वीतरागी सम्यग्ज्ञान में, वीतरागी यह स्वरूप है - ऐसा ख्याल में आ गया।*** आहाहा ! गजब बात है।

अब यह समयसार कोई कहे बाँच गया, बापा ! भगवान ! यह क्या है बापू ! आहाहा ! `वह समयसाररूप शुद्धात्मा नवीन उत्पन्न नहीं हुआ' देखने में आया यह कहीं नया नहीं है। देखने में आया उस समय तो लगता है कि नया। वस्तु तो है यह है। जिस समय देखने में आया। परंतु देखने में आई चीज कोई नयी नहीं है। पर्याय, वीतरागी पर्याय में देखने में आया। यह वीतरागी पर्याय नई है, परंतु जो देखने में आई वह चीज कहीं नई नहीं है। अनादि की है। आहाहा ! किन्तु पहले कर्म से आच्छादित था, राग की एकता बुद्धि से आच्छादित थी, जो सो प्रगटरूप व्यक्त हो गया और वह सर्वथा एकांतरूप कुनय के पक्ष से खण्डित नहीं होता निर्बाध है। कुनय से खण्डित करें तब भी यह खण्डित नहीं होता ऐसी वह वस्तु है।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. ५१ श्लोक-४ ता. ४-८-७८ शुक्रवार श्रावण सुदी-१ सं.२५०४

कलश फिर से लें यह कल हिन्दी था न, आज गुजराती (लेते है) निश्चय और व्यवहार - इन दोनों नयों को विषय के भेद से परस्पर विरोध है। है ? (श्रोता :- इसमें लिखा है परंतु हमें समझ में आता नहीं) अभी तो अर्थ कहाँ किया है। परंतु अभी तो भाई को कहा वहाँ पुस्तक में पेज है कि नहीं ? इतना अर्थ किया नहीं अभी, आहाहा ! क्या कहते हैं ? `निश्चय और व्यवहार दो नयों के विषय के भेद से परस्पर विरोध है। इस विरोध को नाश करनेवाला स्याद्पद से चिन्हित् जिनभगवान

का वचन, उसमें जो पुरुष रमते है' अब यहाँ तक का अर्थ। कि जिनवचन में... मूल तो जिनस्वरूप जो वस्तु है। आत्मा का जिनस्वरूप ही है। (श्रोता :- तब दिखता क्यों नहीं)

यही, यही बात चलती है, देखे वह पर्याय वीतरागी है। यह वीतरागी पर्याय है यह व्यवहार है और त्रिकाली जिनस्वरूप है वह निश्चय है। जैन धर्म कोई पक्ष नहीं। जैन धरम यह वस्तु का स्वरूप है, अर्थात कि यह जिनस्वरूप ही आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। दूसरी भाषा में कहें तो आत्मा मुक्त स्वरूप है। समझ में आता है कुछ? मुक्त स्वरूप है तो - ऐसा कहें कि यह निर्वाण स्वरूप ही है। आहाहा ! सूक्ष्मबात है ! यह किसी दिन सुनी नहीं कुछ बाहर। आहाहा !

अनादि (से) अनंत तीर्थंकरों, अनंत केवलियों अनंत संतो हुए है और होंगे, जो यह आत्मा जिनस्वरूप है उसका अनुभव करना यह मार्ग जैनशासन है। यह जैनधर्म है परंतु अनुभव करना वह पर्याय है और त्रिकाली स्वरूप वह जिन है। पर्याय अर्थात अवस्था हालत-वर्तमानदशा और वस्तु त्रिकाल-त्रिकाल, यह त्रिकाल जो वस्तु है वह वीतरागस्वरूप ही है। मुक्त स्वरूप ही है। आहाहाहा ! यह वीतराग स्वभाव स्वरूप ही आत्मा है, सभी भगवानआत्मा है। आहाहा !

यह वीतरागस्वरूप है, आत्मा उसका अनुभव करना वह पर्याय हुई, तब स्यात् आत्मा नित्य है, इस अपेक्षा से, क्योंकि जो त्रिकाली वस्तु है, जिनस्वरूप वीतरागस्वरूप भगवत् स्वरूप मुक्तस्वरूप, यह जिनस्वरूप। उसका आश्रय लेकर जो अनुभूति की पर्याय प्रगट होती (है) वह अनित्य है, क्षणिक है, अवस्था है। तो स्याद्पद कहकर कथंचित त्रिकाली नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से तो वह अनित्य है, समझे कुछ? आहाहा ! जैनधर्म अर्थात सर्व व्यापक अर्थात यह जिनस्वरूप ही भगवानआत्मा, यह तो कहा था न, घट-घट अंतर जिन बसे। ***`जिनस्वरूप ही प्रभु है। वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा ! यह नित्य है और उसका अनुभव करना, यह अनित्य है। तब स्यात् नित्य और स्यात् अनित्य इस प्रकार कहते हैं। फिर भी यह (विरोध को) नाश करनेवाला `स्यात्' है।***

`जिनवचसिरमन्ते' अब जिनवचन में रमे अर्थात क्या ? जिनवचन में कहा हुआ जिनस्वरूप जो आत्मा उसमें जो रमे, रमे यह पर्याय हुई, त्रिकाली स्वरूप वह नित्य हुआ, आहाहाहा ! और जो त्रिकाली स्वरूप है... मार्ग बापा अलग जाति का है। यह जैनधर्म कोई पक्ष नहीं कोई गुटबंदी नहीं। यह वस्तु का स्वरूप ही - ऐसा है। भगवान आत्मा। आहाहा ! मुक्त जिनस्वरूप से विराजमान है। उसका अनुभव करना, उसका अनुभव करने में राग और निमित्त की अपेक्षा है ही नहीं, कि - ऐसा

इसे व्यवहार हो तो अनुभव हो ! देवीलालजी ! आहाहा !

क्योंकि जो वीतरागस्वरूप है उसमें अकार्यकारण नाम का गुण वीतरागस्वरूप से पड़ा है। क्या कहा यह ? जिनस्वरूप भगवानआत्मा, उसमें एक अकार्यकारण नाम का वीतरागी स्वभाव गुण मौजूद है। अतः उसके वीतराग स्वभाव को, चैतन्य त्रिकाली स्वभाव को... आहाहाहा ! अनुभव करने में, वीतरागपने की पर्याय प्रगट करने में, जिनस्वरूप है उसकी अपेक्षा भले हो, निमित्त अपेक्षा, लक्ष्य अपेक्षा भी उसे किसी कारण व्यवहार - ऐसा हो तो यह निश्चय से अनुभव हो - ऐसा इसके स्वरूप में नहीं, इसलिये उसकी पर्याय में भी - ऐसा नहीं। क्या कहा यह ? आहाहा !

जैन वस्तु है यह स्वरूप (से) जैन है, जिन है। अब यह जिन जैन हो, जब यह जिन का अनुभव करे, तब जैन हो। जयसुखभाई ! लोजिक से तो बात चलती है परंतु अब क्या हो ? अरे प्रभु का मार्ग। आहाहा ! अनंत तीर्थंकरों अनंत केवली हुये है और होंगे उनका एकप्रकार यह है कि दो नय अर्थात ? त्रिकाली चीज है, यह वीतरागस्वरूप है। उसका अनुभव करना यह पर्याय का स्वरूप है। यह पर्याय यह भी वीतरागस्वरूप है। इस वीतरागस्वरूप की पर्याय को, पर के कारण की अपेक्षा नहीं, कि व्यवहार - ऐसा हो तो इससे हो यह बात ही एकदम झूठी है आहाहाहा !

उसका व्यवहार निर्मल पर्याय कैसे प्रगटे ? कि त्रिकाली जिनस्वरूप है उसका दृष्टि में जहाँ स्वीकृति हो तब ज्ञान में उसका अनुभव हो, यह अनुभव पर्याय है, और यह वीतरागी पर्याय है। ***एक बात, और उसके जिनस्वरूप में अकार्यकारण नाम का एक गुण है, यह वीतरागीगुण है। अकार्यकारण नाम का एक गुण है आत्मा में, यह वीतरागी गुण है। आहाहा ! इस वीतरागी गुण को... गुण का आश्रय (दाता) द्रव्य है, परंतु इस द्रव्य का आश्रय करने पर इसमें गुण का अकार्य कारणपना भी पर्याय में आ जाता है। उसकी जो वीतरागी पर्याय है, उसे व्यवहार कारण और निर्विकारी पर्याय कार्य- ऐसा पर्याय का स्वभाव नहीं।*** आहाहाहा ! यह सभी प्रश्न थे न ! पहले - ऐसा हो और - ऐसा हो - ऐसा विकल्प हो कि यह सभी बातें। आहाहाहा !

जैसे यह जिनस्वरूप प्रभु है इसे कोई अपेक्षा नहीं, कोई इसका कर्त्ता है कि इससे बना है कि इस समय हुआ है - ऐसा है कहीं ? वस्तु जो है भगवान ! जिनस्वरूपी परमेश्वर, स्वरूप इसे कोई अपेक्षा नहीं, यह तो है है और है। आहाहा ! ऐसे परमेश्वर स्वरूप का आश्रय लेकर के अर्थात उसकी तरफ लक्ष्य करके... जो पर्याय प्रगट होती, वीतरागी पर्याय, सम्यग्दर्शन यह वीतरागी पर्याय है, सम्यग्ज्ञान यह वीतरागी ज्ञान है और उसमे स्वरूप की स्थिरता यह वीतरागी आचरण है। आहाहाहा !

इस पर्याय में भी अकार्यकारण गुण की पर्याय आयी। इस पर्याय को राग कारण और पर्याय कार्य - ऐसा पर्याय का स्वरूप नहीं। द्रव्य का स्वरूप तो नहीं। आहाहाहा ! गजब बात है। लोगों को व्यवहार से हो और निमित्त से बापू यह जैन धर्म ही नहीं। यह जैन धर्म को जानते ही नहीं। आहाहा ! व्यवहार हो, वह तो जानने के लिये होता परंतु यह तो जानने की पर्याय जो स्व के आश्रय से प्रगट हुई इस जाननेरूप पर्याय में स्वपरप्रकाशकपना स्वयं से प्रगट होता है, उसमें यह रागादिक हों यह जाने, परंतु यह कोई वस्तु आदरणीय है कि इससे यह पर्याय प्रगटी है - ऐसा है नहीं आहाहाहा ! समझे कुछ ?

यह कहते हैं, कि जो जिनभगवान का वचन अर्थात कि जिन भगवान के वचन में जिनस्वरूप है वह आदरणीय है - ऐसा बताया। जिनवचन में जो वस्तु त्रिकाली है, क्यों ? कि उसे आदरणीय बताया इसमें दोनों आ गये एक तो त्रिकाली वस्तु आयी, और आदर करनेवाली पर्याय भी आ गयी। आहाहा ! परंतु यह जिसका आदर करना है, यह जिनस्वरूप यह वीतरागस्वरूप है। आहाहा ! इसलिये इसमें पर्याय में भी वीतरागता ही प्रगट होती है यह जैनधर्म का अनादि स्वरूपरूप है, इसमें आड़ा-टेड़ा कुछ करने जाय तो यह जैनधर्म नहीं। आहाहाहा ! समझे कुछ ? यह पर्याय जो है, और नहीं थी वह प्रगटी... वस्तु तो है त्रिकाल, मुक्त स्वरूप ही है। आता है न ? `मुक्त एव' वस्तु मुक्त कहो, सिद्ध स्वरूप कहो, निर्वाण स्वरूप कहो, मोक्ष स्वरूप कहो, वीतराग स्वरूप कहो, अकेला परमानंद की शक्ति का सागर कहो, आहाहा ! - ऐसा जो भगवानआत्मा यह जिनस्वरूप है। आहाहाहा ! गजब बात करते हैं।

इसकी भाषा वीतराग तो देखो, आहा ! उनकी वाणी में... जिनवचन में रमना अर्थात कहीं वाणी में रमना नहीं शब्द तो यहाँ - ऐसा है। `जिनवचसिरमन्ते' परंतु जिनवचन में, जिनस्वरूप जो है भगवानआत्मा वह आदरणीय है, उपादेय है - ऐसा जिनवचन में कहा है। उसमें रागादिक आये वह आदरणीय है, निमित्त आदरर्णीय है - ऐसा जिनवचन में नहीं। आहाहा ! समझे कुछ ? उसी प्रकार उसके वस्तुस्वरूप में नहीं। जिनवचन कहते हैं यह कहीं बेकार कहते हैं ? वस्तु स्वरूप ही - ऐसा है, कि वीतरागमूर्ति स्वयं पर की किसी अपेक्षा बिना यह चीज अनादि अनंत शाश्वत है। ***उसकी अपेक्षा करके जो कोई पर्याय प्रगट होती है, इसको भले इसकी अपेक्षा कहो द्रव्य की, परंतु पर की कोई अपेक्षा ही नहीं उसे।*** आहाहाहाहा ! वस्तु तो यह है। समझे कुछ ? आहाहाहा !

जैनधर्म कोई संप्रदाय नहीं, पक्ष नहीं कि भाई हम जैन हैं और तुम अन्य हो न ! आहाहाहा ! जिनस्वरूपी भगवान है, उसे उपादेय रूप में जानकर पर्याय में

वीतरागता प्रगट करना, आहाहा ! यह जैनधर्म ! जिनस्वरूप वस्तु ! इसमें कहीं मिले - ऐसा नहीं, वहाँ दवाखाना और डॉक्टर... आहाहा ! वस्तु तो देखो ! आहाहा ! भगवान 'जिन सो ही यह आत्मा, अन्य सो ही कर्म, कर्म कटे जिनवचन से' - ऐसा श्रीमद् ने कहा। वचन सो शब्द अर्थात भाव... जो स्वरूप है जैन, वीतराग अकषाय स्वरूप की मूर्ति प्रभु है। उसके आश्रय से वीतरागता होती है, वह वीतरागता कर्म का नाश करे, यह भी व्यवहार है। नाश करता हैं यह। आहाहाहा ! समझ में आया ? (श्रोता :- कठिन कहते और फिर पूँछते कुछ समझ में आया ?) परंतु धीरे-धीरे तो कहते हैं इसमें कहीं भी... वस्तु ही ऐसी है वहाँ दूसरा क्या ? आहाहा ! आत्मा जिनबिम्ब है। उसमें आता है न भाई ! जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्ति और निकाचित कर्म टलें, बापू ! आहाहाहा ! धवला में (आता) आहाहा ! यह तो निमित्त का कथन है। आत्मा जिनबिम्ब प्रभु है। भाई आत्मा क्या है ? यह वीतरागी गुणों का पिण्ड प्रभु ! वीतरागी बिम्ब है यह। यह वस्तु का स्वरूप यह है। जैनधर्म यह है और अमुक है यह, यह जैनधर्म अर्थात (वस्तु स्वभाव) ही यह। आहाहा !

वस्तु तो वीतरागीबिम्ब है प्रभु ! द्रव्य, उसके आश्रय से निद्धत और निकाचित कर्मों का नाश तो इनके कारण होता है, परंतु यह निमित्त हैं - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहा ! निमित्त कुछ करता नहीं नाश करने में। आहाहा ! अरे ! - ऐसा मार्ग। सुनने मिले नहीं। जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ, अनंत-अनंत तीर्थंकरों की यह आवाज है। उस दिव्यध्वनि की आवाज यह है। भाई ! तुम्हें हित करना हो... दुःखी तो हो ही रहा है बापू ! आहाहा ! पर के लक्ष्यवाले पुण्य और पाप (रूप) विकारी भाव (करके) दुःखी तो हो रहा है, पर के लक्ष्यवाला। आहाहा ! स्व का लक्ष्यवाला भाव तो वीतरागी हो और पर के लक्ष्यवाले वह सभी रागीभाव, रागभाव हो। समझे कुछ ?

चाहे तो तीनलोक के नाथ तीर्थंकर हों तो - ऐसा कहते हैं कि हमारे लक्ष्य से तो तुम्हें राग होगा प्रभु, क्योंकि हम पर हैं और अपने लक्ष्य से तुम 'स्व' हो 'जिनस्वरूप' हो, तो तुम्हारे लक्ष्य से तुम्हें वीतरागता होगी और इस वीतरागता की पर्याय में द्रव्य का जो अकार्यकारण नाम का वीतरागी गुण है, उसकी पर्याय प्रगटी, अनंत गुण व्यक्त (प्रगट) हुये न ? आहाहाहाहा ! ***इसलिए इसकी वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान की जो पर्याय वह किसी का कार्य... राग का कार्य, राग कारण और निर्मल कार्य - है नहीं, क्योंकि यह पर्याय स्वयं भी दूसरों के कारण बिना हुई और दूसरे का कार्य करनेवाली यह पर्याय नहीं।*** आहाहाहा ! अर्थात क्या ? आहाहाहा !

यह जो जिनस्वरूप भगवानआत्मा। यह 'जिनवचसिरमन्ते' में क्या है ? आहा !

भगवान ने तो यह कहा है, कि पर्याय और द्रव्य दोनों है परंतु अब द्रव्य जो है त्रिकाली वह उपादेय किसमें ? कि पर्यायमें। अतः दोनों सिद्ध हो गये। आहाहा ! जैनधर्म यह तो अनादि सनातन सत्य है। आहाहाहा ! समझ में आता है कुछ ? ***और अन्य (मत) में कहीं जो छाया आयी हो तो यह भगवान की (वाणी की) आयी है। कोई-कोई बात उपनिषद में और बौद्धों में और अमुक में और अमुक में यह तो आहाहा ! परम सत्य सूर्य प्रभु !*** - ऐसा जो भगवानआत्मा। उसके गुण अनंत है, परंतु एक उसके गुण का गुण क्या ? यह गुण अकार्यकारण है उसके गुण की क्या विशेषता ? कि पर्याय में वीतरागता होने में, इस गुण की विशेषता यह है कि पर कारण की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहाहा ! मोहनलालजी ! वहाँ कहीं सुनने में आये - ऐसा नहीं वहाँ कलकत्ता में कहीं न मिले। यह तो उन्होंने कहा था पहले दिन ! - ऐसा मार्ग वीतराग का बापा। आहाहाहाहा !

श्रोता :- पर तो कारण नहीं परंतु उपादान कारण तीन हैं।

उत्तर :- एक ही कारण है, ***यह त्रिकाली, वर्तमान पर्यायभी नहीं यहाँ तो, त्रिकाली उपादान एक ही ध्रुव (है), उसका आदर करने से जो उपादान पर्याय होती उसे चाहे उपादान कहो, निमित्त की अपेक्षा, बाकी यह पर्याय है, यह तो, आहाहा !*** अरे ! भगवान की शैली तो देखो ! आहाहाहा ! जो भगवानआत्मा, अनंतगुणों का एकरूप, उसमें एक अकार्यकारण के गुण का एकरूप, इसलिए इसकी पर्याय में भी, जीव का अनुभव करना, यह अनुभव करने में, उसे अनुभूति के लिए कोई विकल्प और कोई निमित्त और किसी राग की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा ! - ऐसा है।

लोगों को निश्चय निश्चय लगे परंतु बापू ! वस्तु ही निश्चय है - ऐसा निश्चित करनेवाली पर्याय भी साथ में जाती है। यह जिनस्वरूप है यह जाना किसने ? पर्याय जानती है न ? कि द्रव्य जानता है ? आहाहा ! भगवानआत्मा पूर्णवीतरागी बिम्ब प्रभु ! जिनबिम्ब है। यह इस जिनबिम्ब में अकार्यकारणत्व नामक एकगुण है। जिनबिम्ब का एकगुण है। इस गुण की विशेषता कि स्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय होती है उस पर्याय को किसी पर के कारण की अपेक्षा नहीं। - ऐसा अकार्यकारण गुण का गुण है। आहाहा ! बापू मार्ग कोई अलौकिक है और इसवस्तु के अलावा कहीं नहीं, वीतरागमार्ग के अलावा कहीं मार्ग है ही नहीं वीतरागमार्ग तो यह है। आहाहा !

'जिनवचसिरमन्ते' यहाँ तो अर्थ में - ऐसा कहा है देखो ! ऐसे जिनवचन में अपूर्व रमण करे। नय को गौण करके व्यवहार कहा है, अर्थ में है, द्रव्यार्थिक अशुद्ध द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक - ऐसा कहा उसे गौण करके उसे व्यवहार कहते हैं, ऐसे

जिनवचन में रमता है, देखो ? अंदर भावार्थ में। आहाहा ! अरे श्लोक गजब है। आहाहाहा !

यह तो सुबह में याद - ऐसा आ गया है, वह आता है न ? अहमदाबाद के शुक्रवार की शोभा भली आठे टाणे थाय। चढ़ते पौरे चोक में भली बजार भराय, आता है न ? स्कूल में आता (था) स्कूल में पहले आता था। यह शुक्रवार है आज। लो ठीक ! यह बात सच्ची, शुक्रवार में कुछ भी नहीं यों ही कहते, यों ही कहीं होगा। यह वानियां व्यापार व्यापार करते हैं। शुक्रवार हुआ - ऐसा कहते है। शुक्रवार हुआ। शुक्रवार अर्थात यों ही कुछ हुआ ! कहीं धूल में नहीं। यह बेकार, सुनो न भाई जहर का टुकड़ा है वहाँ तो। आहाहा !

आत्मा में वीर्य है अनंत शुक्र, वीर्य आत्मा में है शुक्र। आत्मा में अनंतगुण है उसमें एक वीर्य नामका गुण है। तब यह वीर्यगुण भी दूसरे गुण की अपेक्षा से है - ऐसा नहीं। इस गुण का आश्रय द्रव्य है। तब जिसने द्रव्य का आश्रय लिया, यह जैनधर्म, यह जैनस्वरूप उसका आश्रय लिया, यह जैनधर्म, इस जैनधर्म में उसका जो वीर्य है, शुक्रवीर्य, उसने स्वरूप की रचना की, उस स्वरूप की रचना में पर की कोई अपेक्षा नहीं। समझ में आया ? आहाहाहा !

खण्डवा वण्डवा में - ऐसा कुछ नहीं, वहाँ पिस जायें - ऐसा है। आहाहा ! देखो तो सही प्रभु की वाणी तो देखो ! आहाहा ! इस वाणी में द्रव्य और पर्याय दोनों आये। किस प्रकार ! कि जिनस्वरूप में रमना, जिनस्वरूप है उसे उपादेयकरना - ऐसा वीतरागी वाणी में आया। वहाँ दोनों आ गये। त्रिकाली भगवान को उपादेय किया यह पर्याय, अर्थात पर्याय भी आ गई। आहाहा ! और उस पर्याय की रचना में वीर्य नाम का गुण है वह स्वरूप की रचना वीर्य करते हैं। इस परिणति को राग रचे व्यवहार कषाय की मंदता की क्रिया, अशुभ टालकर शुभ किया, अतः इससे यह पर्याय हुई ! तीनकाल में नहीं। (श्रोता :- पहले कुछ तैयारी करनी पड़ती होगी ?) एक ही तैयारी यह है, दूसरी तैयारी नहीं। राग बिना का भगवान है वहाँ दृष्टि करना यह एक ही उपाय है। कोई दूसरी अपेक्षा है ही नहीं। कैसा विकल्प पहले होता है ? आहाहा ! भगवान की वाणी में यह आया, अनंत तीर्थंकर हो गये, (कुछ) बिराजमान हैं, अनंत होंगे, उनकी वाणी में यह आया, वीतरागस्वरूपी प्रभु तुम्हारा स्वरूप है, यह उपादेय है, इस प्रकार वाणी में आया- ऐसा आने पर दोनों नय आ गये। त्रिकाली है वह निश्चय... आहाहा ! और जो वीतरागी पर्याय प्रगटी वह व्यवहार। उसे व्यवहार के राग की कोई अपेक्षा है नहीं। आहाहाहा ! सुजानमलजी ! आहाहा ! - ऐसा वस्तु का स्वरूप ही है। यह किसी ने बनाया है - ऐसा नहीं वस्तु की

स्थिति ऐसी है। आहाहा ! तब यहाँ झगड़ा यह, व्यवहार से निश्चय होता - ऐसा कहो तो अनेकांत, अन्यथा अेकांत... परंतु प्रभु सुन तो सही, तुम्हें एकांत और अनेकांत की बातों की खबर नहीं भाई ! आहाहा ! ***अपने द्रव्य के आश्रय से हुई निर्मल पर्याय उसे पर की अपेक्षा नहीं एवं स्व की अपेक्षा है यह अनेकांत है। त्रिकाली की अपेक्षा है परंतु पर की अपेक्षा नहीं यह अनेकांत है।*** आहाहा ! अकेला वीतरागभाव रटा है, हाँ ? आहाहा ! सम्यग्दर्शन यह वीतरागी पर्याय है। सम्यग्ज्ञान यह वीतरागी पर्याय है। ***स्वरूपाचरण, अंदर स्थिर होना यह भी वीतरागी अनंतानुबंधी के अभावरूप वीतरागी पर्याय है। आहाहाहा ! उसे भी वहाँ मिथ्यात्व और अनंतानुबन्धी का अभाव हुआ इसलिये यह पर्याय हुई ऐसी अपेक्षा है ही नहीं उसे। है ही नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ?***

इसलिये इसके वीर्यगुण को लो अकार्यकारण नामक गुण को लो, यह दोनों गुण है, वीतरागी स्वरूप है। जैसे स्वयं जिनस्वरूप है उसके गुण भी वीतरागी स्वरूप है। आहाहाहा ! उसका आश्रय लेना... यह पर्याय आश्रय ले, अर्थात द्रव्य और पर्याय दोनों सिद्ध हो गये। ***कथंचित नित्य है और कथंचित अनित्य है। आहाहा ! और अनित्य है यह नित्य का निर्णय करती है, वीतरागी पर्याय जो अनित्य है यह त्रिकाली नित्य द्रव्य का निर्णय करती है। आहाहाहा ! निर्णय करना यह कहीं नित्य में नहीं। नित्य तो त्रिकाली एकरूप है। आहाहाहा ! नित्य का आदर किया वही पर्याय आ गई। आहाहाहा !***

वीतराग मार्ग बापू कहीं (अन्य) है नहीं, वीतराग... संप्रदाय में अभी विवाद उठा है। आहा ! मूल की पहले से खबर न लगे। आहाहा ! कहो बाबूभाई ! - ऐसा मार्ग है। जिनभगवान का वचन उसमें जो रमते हैं अर्थात इस वाणी में - ऐसा आया, प्रभु ! तुम जिनस्वरूप हो न ! आहा ! हमने जिनस्वरूपी पर्याय प्रगट की, परंतु तुम जिनस्वरूप ही हो। क्योंकि जिनस्वरूपी पर्याय हुई, यह कहाँ से आयी ? जिनस्वरूपमें से आये कि कहीं रागमें से कि परमें से आये ? आहाहा ! इसलिए - ऐसा कहा, इस वाणी में - ऐसा आया कि जो तुम्हारा जिनस्वरूप है प्रभु, वह उपादेय है। इन भाई ने - ऐसा कहा न यह कलश टीकाकार ने, कलश टीकाकार ने जिनवचन का अर्थ यह किया कि कल चला था हिन्दी में। आहाहा ! 'जिनवचसिरमन्ते' इसका अर्थ ? ***जिनवचन में जो त्रिकाली जिनस्वरूप भगवान उसे आदरणीय और उपादेय किया। उसमें रमना यह जिनवचन में रमना कहलाता है।*** आहाहा ! लोजिक से न्याय से भी यह बात सिद्ध होती है परंतु मनुष्यों को अपना पक्ष छोड़ना नहीं। इसलिये कहा न इसमें 'घट-घट अंतर जिन बसें और घट-घट अंतर जैन।' यह जिन को

माने वह जैन। यह जिनस्वरूपी वीतरागी, उसे अनुभवे और माने वह जैन। यह घट-घट में जैन है यह बाहर में कहीं नहीं। आहाहा ! अब हम जैन है स्थानकवासी जैन हैं, देरावासी जैन... अब छोड़ो न बात सभी। आहाहा !

जैन तो परमेश्वर उसे कहते है जिनस्वरूपी प्रभु तुम उसका आदर करो, पर्याय में तब तुम जैन हो। जिनस्वरूपी तो था ही, परंतु पर्याय में तुमने आदर किया, तब तुम जैन हो गये। जिन से जैन तुम हो गये अब। आहाहा ! अरे ! यह बात थी नहीं हो ! लोग बिचारे कहाँ गये होंगे ? आहाहा ! अरे..रे ! भगवान है यह। आहाहा ! एक कुत्ता अभी रोता था, तब लोग - ऐसा कहते हैं न वह जम को देखता है। इसमें क्या ? उसे इस जाति का शोक आ जाता है। आहाहा ! रोता था खूब रोता था। अरे भगवान ! तुम भगवान हो न प्रभु ! यह क्या है तुम्हें यह। आहाहा ! अरे ! तुम्हें खबर नहीं तुम्हें। आहाहा ! यह आवाज और शरीर और यह कहीं तुम नहीं। आहाहा ! यह आवाज और शरीर यह कहीं तुम नहीं। आहाहा ! यहाँ तो राग का विकल्प यह आत्मा नहीं। दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का विकल्प उठे ब्रह्मचर्य पालने का विकल्प उठे, यह भी आत्मा का नहीं। आहाहा ! कारण कि विकल्प राग है और आत्मा तो वीतराग जिनस्वरूप है। आहाहा ! वाणी बापा वीतराग की... आहाहा !

यह अकार्यकारण गुण से लो, शुक्र (वीर्य) गुण से लो, आहाहा ! ***कोई भी गुण है उसकी पर्याय का कारण वह द्रव्य है। समझे कुछ ? अकेला गुण नहीं। गुण परिणमता है - ऐसा नहीं लिया। चिद्विलास में आया था भाई ! द्रव्य परिणमता है। आहाहा ! चिद्विलास में। कहीं गुण पृथक् है ? द्रव्य पूरा द्रव्य है जिनस्वरूपी प्रभु ! उसका आदर करनेपर सारा द्रव्य वीतरागी पर्यायरूप परिणमित होता है !*** आहाहा ! समझे कुछ ? समझ में आये इतना समझो प्रभु। अमृत की वाणी वीतराग की यह है। इसमें कहीं हेरफेर करे तो कहीं चले - ऐसा नहीं। आहाहा !

यह जिन भगवान का वचन, उसमें पुरुष प्रीति सहित अभ्यास करे - अर्थात रुचि सहित उसमें स्थिर हो अंदर। आहाहा ! आनंद का सागर भगवान, यह आनंद भी जिनस्वरूप है, वीतरागस्वरूपी, वीतरागी आनंद है। यह ज्ञान अंदर है, वीतरागी ज्ञान है, आनंद भी वीतरागी आनंद है, वीर्य यह वीतरागी वीर्य है। आहाहाहा ! अनंता गुण वीतरागी गुण स्वरूप है यह। ऐसे भगवान में जो कोई रमता है। अर्थात ध्रुव है उसमें रमना... ध्रुव तो ध्रुव है। ***द्रव्य तो द्रव्य है। परंतु उसमें जो रमती है यह पर्याय है। आहाहा ! स्वसन्मुख होकर उसमें रमती है। वह जिनवचन में रमते हैं - ऐसा कहा जाता है।*** आहाहा ! राग की क्रियायें करके मानते है कि हम कहीं

त्यागी हुए। समकित के त्यागी हुए, धर्म के त्यागी हुए। आहाहाहा ! जिसमें राग नहीं उसमें राग का त्याग करना यह वस्तु में नहीं। समझे कुछ ? आहाहा ! जहाँ स्वरूप में राग नहीं अब राग का त्याग करना यह कहाँ है ? आहाहा !

यह कैसे कहा परंतु यह ? क्योंकि जिनस्वरूप प्रभु है। उसके आश्रय से तो वीतरागता होती है। आहाहा ! इसे राग करना है या छोड़ना है, यह कहाँ रहा? आहाहा ! ***जिनस्वरूप का आश्रय करनेपर वीतरागी (पर्याय) हुई यह राग का उदय छूट गया। उसने छोड़ा नहीं, छोड़ना नहीं, उसमें कहाँ है जो छोड़ना है ? यह आया है न ३४वी गाथा में, कि राग का त्याग भी परमार्थ से आत्मा में नहीं।*** आहाहा ! यह तो थोड़ा बाहर का त्याग करके हमने त्याग किया न, मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहाहा ! मिथ्यात्व को दृढ करता है, अनंत संसार को, गजब बात है बापा ! मार्ग की पद्धती ऐसी है। आहाहा ! अरे पुरुषो रमते हैं, उसकी व्याख्या की।स्वरूप जो जिनस्वरूप है उसकी रुचि करके... रुचि अनुयायी वीर्य। जिसे रुचि हुई भगवान पूर्णानंद मैं हूँ। वीतराग स्वरूप हूँ। ऐसी रुचि हुई तो उसके अनुसार उसका वीर्य वहाँ काम करे। आहा ! राग में काम नहीं करे। आहाहा !

व्यवहार को उत्पन्न करे यह आत्मा नहीं। आहाहा ! राग है इसमें कहाँ राग था कि उसे उत्पन्न करे ? आहाहा ! परंतु यहाँ - ऐसा कहा है कि जिसने जिनस्वरूप का आश्रय करके वीतरागी पर्याय प्रगट करके, उसे व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान अर्थात ? कि उसकी ज्ञान की पर्याय ही ऐसी हुई है कि स्व का ज्ञान होनेपर यह पर्याय ही ऐसी प्रगटी है। कि स्व को जाने और व्यवहार से राग को जाने, ऐसी ही पर्याय प्रगटी है। राग को करे और राग से हो यह वस्तु स्वरूप में नहीं। उसकी पर्याय के स्वरूप में नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग है। कहो कांतिभाई ! वहाँ कहीं पिलास्टिक के क्रस्टिल में यह कोई बात सुनने मिले - ऐसी नहीं वहाँ यह। आहाहा ! अरे ! जैनधर्म के नाम से लोगों ने तो कहीं का कहीं कर डाला है। आहाहा ! पहले बाह्य त्याग करो, थोड़ा यह छोड़ो वह छोड़ो। (श्रोता :- भूमिका साफ करते है) भूमिका साफ करते हैं कि बिगाड़ते है ? सूक्ष्म बात है बापू ! बहुत बातें। ***राग का त्याग भी आत्मा में नहीं। उसकी पर्याय में राग का त्याग भी नहीं। राग का त्याग कहना यह परमार्थ नहीं, नाम मात्र कथन है।*** आहाहा !

स्वरूप जहाँ चिदानंद जिनस्वरूप है, उसका आश्रय लेकर जो वीतरागता हुई, वहाँ राग की उत्पत्ती इतनी न हुई, उसे राग का नाश किया - ऐसे निमित्त से कथन है। आहाहा ! राग का त्याग किया यह निमित्त से कथन है। वस्तु ऐसी नहीं। तब पर का त्याग तो है ही कहाँ आत्मा में ? ***पर के त्याग ग्रहण रहित***

तो इसका गुण है। क्या कहा ? आहाहा ! त्याग उपादान त्याग, ग्रहण करना और छोड़ना एक-एक रजकण को, शरीर को, वाणी को, पैसा को किसी का भी ग्रहण करना और छोड़ना इससे रहित इसका गुण है। अब इस गुण की पर्याय भी पर के त्याग और ग्रहण रहित ही है। क्या कहा ? समझ में आया ? आहाहा ! यह तो वीतराग का धर्म क्या है, यह बात है बापा ! शेष भटकने के रास्ते तो चल रहे हो सारे दिन। चारगति में कहाँ जाकर गिरोगे ? आहाहा !

क्या कहा ? कि राग का त्याग करना... त्याग जीव ने किया पर्याय में हो... आहाहाहा ! ***क्योंकि राग स्वरूप में नहीं, फिर स्वरूप में नहीं यह राग त्यागना है यह रहा कहाँ ? यह तो वीतराग स्वरूप है। आहाहा ! वीतराग स्वरूप का आश्रय लेता तो वीतरागी पर्याय हो बस। आहाहा ! यह इसकी पर्याय, इस पर्यायने राग का त्याग किया यह भी वस्तु के स्वरूप में, पर्याय में नहीं - ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसके गुणों में भी वीतरागता है। तब इसकी पर्याय में वीतरागता आयी, राग का त्याग - ऐसा इसमें है ही नहीं आहाहा !*** पण्डितजी ! ऐसी बात है। आहाहाहा ! जिसका गुण ही वीतराग है उसके गुण की, गुण की वीतराग पर्याय होती है। यह राग को करे ? और राग को छोड़े ? पर का त्याग ग्रहण तो नहीं ही। आहाहा !

पर का त्याग करके कपड़े छोड़ करके प्रदर्शन करना कि हम कहीं त्यागी हैं। यह बहुत कठिन बात है बापू ! आहाहा ! वीतराग मार्ग को पहचानने में कोई अपूर्व प्रयत्न चाहिए। बापू ! आहाहा ! यह कहीं लड्डू खाना नहीं। आहाहा !

यही कहते हैं देखो ! `प्रचुर अभ्यास करते है' अर्थात की वस्तु की रुचि सहित अंदर एकाग्रता का अभ्यास करते हैं। आहाहा ! वीतराग जिनस्वरूप की रुचि, क्योंकि यह वीतराग मूर्ति ही जिनबिम्ब है प्रभु ! आहाहा ! ***उसकी रुचिपूर्वक जो अंदर में अभ्यास करते है एकाग्रता का, वह अपने-आप अन्य कारण बिना, यह तो इसके कारण बिना मिथ्यात्व का तो अपने कारण नाश होता है। यह मिथ्यात्व की प्रकृति का उस समय उदय नहीं होना और नाश होना उसकी प्रकृति का स्वभाव है। आहाहा ! और मिथ्यात्व भाव का... यह यहाँ जब सम्यक् आश्रय किया वहाँ मिथ्यात्वभाव की उत्पत्ती हुई नहीं, यही मिथ्यात्वभाव का त्याग किया - ऐसा निमित्त से व्यवहार से कथन है। आहाहाहाहा !***

`ये स्वयं वान्त मोहा' अर्थात कि राग अपने आप छूट जाता है प्रकृति भी उसके कारण छूट जाता हैं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! स्वयं है न ? आत्मा छोड़ता है, इसलिये छूट जाता है - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! भगवानआत्मा अपने जिनबिम्ब का जहाँ आश्रय लिया, जिनबिम्ब - ऐसा स्वरूप जो भगवानआत्मा का, उसके नजदीक

गया और आश्रय लिया एवं अवलम्बन लिया, आहाहा ! ऐसी पर्याय ने राग को वमा है और राग नाश किया है - ऐसा भी नहीं, यह तो अपने-आप नाश हो जाती है - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

`स्वयं वान्त मोहः' मोह का मिथ्यात्व का परिणमन और स्वयं अपने आप उत्पन्न होता नहीं। प्रकृति तो अपने आप नाश होती है, यह तो परमाणु है उसका कहीं आत्मा से संबंध नहीं। आहाहा ! शुद्ध चैतन्यद्रव्य का जहाँ अवलम्बन लिया, उसे जहाँ आश्रय (लेकर) उपादेय माना, तव वह दृष्टि में सम्यक् चैतन्य की दशा हुई, वहाँ उसे राग का छूटना यह राग अपने कारण छूट जाता है और प्रकृति तो उसके द्वारा ही वहाँ नाश होने योग्य थी वह नाश होती है। उसका यह वीतराग पर्याय का, निमित्त और राग का नाश होना यह उपादान उसका, निमित्त ने कहीं कुछ किया नहीं, उसने नाश किया (नहीं) - ऐसा कहना है। आहाहा ! यह निमित्त का झगड़ा है न ? इतना तो स्वीकारा है कि निमित्त तो सोनगढ़वाले मानते हैं परंतु इससे पर में हो - ऐसा नहीं। आहाहा ! अरे बापू ! सोनगढ़वालों की बात नहीं यह, यह तो वीतराग के घर की बातें हैं। कहो छोटाभाई ! - ऐसा मार्ग (है)।

`स्वयं वान्त मोहाः' शुद्ध चैतन्य स्वरूप भगवान, उसका जहाँ आश्रय लिया, उपादेय माना, यह मान्यता की पर्याय जहाँ स्वतंत्र प्रगट हुई उस समय मान्यता की पर्याय मात्र निमित्त और मिथ्यात्व का नाश हुआ वह उसके कारण उपादान के कारण। प्रकृति (कर्म) का नाश हुआ उसके कारण। आहाहा ! कलश गंभीर-गंभीर, कलश है यह तो बापू ! आहाहा !

यह `अतिशयरूप परम ज्योति' भगवान चैतन्यज्योति जलहलजिनबिम्ब था, उसका यह अंदर में आश्रय लिया आदरणीय (किया) वहाँ चैतन्यज्योति पर्याय में प्रगट हुई, यह तो चैतन्य के प्रकाश का पूर है आत्मा तो इसमें राग भी नहीं और शरीर नहीं क्रिया क्रिया इसमें है ही नहीं। आहाहा ! उसे कर्म का नाश करना यह इसके स्वरूप में नहीं, आहाहा ! घाति कर्म का नाश करके भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया - ऐसा कथन आता ना - आहाहा ! ***भाव घाती कर्म का नाश करना यह भी स्वरूप में नहीं, कारण कि यह वीतराग मूर्तिप्रभु जहाँ है और जब पर्याय ने इसका आश्रय लिया तब वीतरागी पर्याय हुई, इसमें राग की पर्याय का वीतरागी पर्याय ने नाश किया - ऐसा भी नहीं, स्वयं अपनी योग्यता से राग और कर्म नाश हो जाते है। आहाहा !***

विशेष कहा जायेगा...

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

प्रवचन नं. ५२ श्लोक-४ ता. ५-८-७८ शनिवार श्रावण सुदी-२ सं.२५०४

`उभयनय विरोध ध्वंसिनि' कहा है न ? इसका स्पष्टीकरण करते हैं। जिन वचन वह स्याद्‌वादरूप है, अपेक्षा से कथन करता है। स्पष्टीकरण आयेगा अभी, जब दो नयों के विषय में विरुद्ध है, क्योंकि एक वस्तु त्रिकाली भी है और उसकी पर्याय भी है। यह वस्तुका स्वरूप है, पर्याय है यह व्यवहारका विषय है, द्रव्य है यह निश्चयनयका विषय है। दोनों का विषय विरुद्ध है, फिर भी दो नय है। विषय का विरोध है, फिर भी दो नय है। क्योंकि जो वस्तु नित्यप्रभु है, आत्मा जिनस्वरूप में नित्य है। ऐसे नित्य का निर्णय करनेवाली और ध्यान करनेवाली पर्याय, यह तो पर्याय है। समझे कुछ ? जो वस्तु नित्य है, यह भगवानआत्मा जिन स्वरूप में नित्य है। जिन स्वरूप ही स्वयं है, यह नित्य है परंतु यह नित्य है इसका निर्णय करनेवाला कौन ? नित्य निर्णय करें ? यह पर्याय निर्णय करे, यह पर्याय है वह अनित्य है। वस्तु स्वयं नित्य है। अर्थात जिनवाणी (में) इसप्रकार दो नयों का विरोध होनेपर भी, उसका समाधान करते हैं। यहाँ तो आत्मा ऊपर घटाते है और यहाँ आत्मा ऊपर की बात है न ? जिनवचन में रमंति।

जिनवचन में द्रव्य जो जिनस्वरूपी वीतराग मूर्ति प्रभु है यह उपादेय है, यह तो पर्याय हुई, यह उपादेय है - ऐसा जो निर्णय, यह तो पर्याय हो गई। उपादेय वस्तु, समझे कुछ ? जिनवचन में दो नयों में विरोध कहकर जो निश्चय है, उसे आदरणीय बताता है, और आदरणीय करता है कौन ? कि पर्याय। सूक्ष्मविषय बापू ! बहुत अलौकिक बात (है)। यह जैनधर्म के अलावा कहीं भी यह बात हो सकती ही नहीं। जो जिनस्वरूपी प्रभु है, वीतराग बिम्ब चैतन्य है। परंतु यह वीतराग बिम्ब है, यह तो नित्य और ध्रुव है। अब यह निश्चयनय का विषय तो ध्रुव है। तब इसका निर्णय करनेवाली यह पर्याय है, यह पर्याय है, न हो तब तो इसका निर्णय कौन करे ? नित्य-अनित्य वस्तु का स्वरूप ही है। भगवान ने कहीं धर्म कहा यह कहीं पक्ष से कहा नहीं। यह तो जैसा वस्तु का स्वरूप है उस प्रकार उन्होने बताया समझे कुछ ? आहाहा !

अर्थात जो नित्यप्रभु है और इसमें भी आया न ? ४७ गाथा द्रव्य संग्रह `दुवियंपि मोख हेयु झाणे पाहुडे णियमा' आहाहा ! गजब बात करते है न ? क्या कहते हैं यह। भगवानआत्मा जिनस्वरूपी जिनबिम्ब ही स्वयं परमात्मा स्वरूप ही है यह। आहा !

उसका जो ध्यान करे अर्थात की उस तरफ की एकाग्रता करे, वह मोक्षमार्ग, यह तो पर्याय हुई, वस्तु है उसका जो घ्यान करे एकाग्रता, यह तो नई पर्याय हुई, यह त्रिकाली चीज न रही। विषय इसका त्रिकाली। समझे कुछ ? आहाहा ! `दुवियंपि मोक्ष हेयु झाणे पाहुडे णियमा' जैनदर्शन जिनस्वरूप आत्मा उसका जो लक्ष्य करना, एकाग्रता करना यह इसका ध्यान और यह ध्यान यह पर्याय है। आहाहा ! अब यहाँ मोक्षमार्ग दो प्रकार से कहा। अर्थात एक ही वस्तु तो निश्चय मोक्षमार्ग वही मोक्षमार्ग है। दूसरा तो रागादिक उसे आरोप से उसका कथन करके और वह निश्चय जो सम्यग्ज्ञान है, यह त्रिकाली जिनस्वरूप ने आश्रय हुआ, ध्रुव के आश्रय से हुई जो पर्याय इस पर्याय में स्वपरप्रकाशक स्वभाव होने से, यह स्व ने जाने और राग बाकी रहा है और व्यवहार मोक्षमार्ग कहा। परंतु उसे यह जाने, उसको जाने यह भी नहीं। वास्तव में उसे जानना और स्व को जानना स्वपरप्रकाशक, स्वयं सिद्ध पर्याय होने से वह व्यवहारनय का विषय है। अरे ! अरे ! ऐसी बातें हैं धन्नालालजी ! वस्तु ही ऐसी है और जैनधर्म कोई पक्ष, घेरा नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप है आहाहा !

जो जिनस्वरूप है प्रभु ! उसका ध्यान अर्थात उसका आश्रय करना, वह तो पर्याय है। अर्थात पर्याय है और उसका विषय है वह त्रिकाली है। दो नयों का विषय विरुद्ध हो गया। समझे कुछ ? है ? दोनों नयों के विषय में विरोध है। जैसे कि सत्‌रूप हो वह असत्‌रूप न हो - ऐसा लोगों को ख्याल में आता है। यह पर्याय अपेक्षा असत् है, असत् अर्थात त्रिकाली में नहीं। आहाहाहा ! वस्तु अपेक्षा सत् स्वरूप है। जो सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन है यह पर्याय है, परंतु उसका विषय है वह त्रिकाली ध्रुव है। जिनस्वरूप है, इसलिए जिनस्वरूप का ध्यान करने पर अथवा उसमें एकाग्रता होनेपर, उसे वीतराग पर्याय प्रगट होती है। यह वीतरागी पर्याय वह मोक्ष का मार्ग। आहाहाहा ! समझ में आया ?

वस्तु है यह तो वीतरागस्वरूप ही है। अब उसके ऊपर लक्ष्य गया, लक्ष्य गया किसका ? पर्याय का, अर्थात पर्याय और पर्याय का विषय दो नय हो गये। आहाहाहाहा ! एक सत् स्वरूप है वह ही असत्‌रूप है। पर्याय अपेक्षा से वह सत् नहीं। द्रव्य अपेक्षा से सत् है। आहाहाहा ! किस अपेक्षा से पर्याय-पर्याय अपेक्षा सत् है, परंतु त्रिकाली की अपेक्षा असत् है। स्वयं जो अविनाशी है तब पर्याय नाशवान है। समझे कुछ ? बहुत सूक्ष्म है यह ! यह समझे बिना पूरी जिंदगी जायेगी तो व्यर्थ जायेगी। आहाहाहा ! तीनलोक के नाथ सर्वज्ञ देव सर्वज्ञस्वभावी वस्तु से सर्वज्ञपना प्रगट किया, यह सर्वज्ञ स्वभाव वह तो नित्य है, परंतु प्रगट किया वह तो अनित्य है। (श्रोता :- वहीं का वही नित्य और वही का वही अनित्य) वही का वही अनित्य कहाँ - कहाँ

है ? उसके आश्रय से (जो) प्रगट किया वह अनित्य है - ऐसा कहा। सर्वज्ञ स्वभाव जो त्रिकाल है, वह नित्य है और उसके आश्रय से प्रगट होनेवाली पर्याय सर्वज्ञ वह अनित्य है। (श्रोता :- एक सर्वज्ञ में नित्यपना और उन्हीं सर्वज्ञ में अनित्यपना) यही कहते हैं न नय का विषय बापू !

वीतराग मार्ग - ऐसा है कोई अलौकिक और इसके अलावा कोई धर्म है ही नहीं कहीं, क्योंकि वस्तु की स्थिति इसप्रकार है। द्रव्य और पर्याय, एवं इसप्रकार जिसके मार्ग में नहीं इसमें पर्याय का धर्म, धर्मी त्रिकाली के आश्रय होता है इसमें द्रव्य और पर्याय दो वस्तुरूप है - ऐसा जिसमें नहीं, उसे कहीं धर्म हो सकता नहीं। समझे कुछ ? आहाहा ! शुद्धभाव अधिकार में नियमसार में नहीं आया, केवलज्ञान नाशवान है। ***केवलज्ञान नाशवान पर्याय है न ? आहाहा ! एक अपेक्षा परद्रव्य कहा परंतु है परद्रव्य पर्याय। यहाँ तो परद्रव्य कहा क्यों ? कि जैसे परद्रव्यमें से नई पर्याय आती नहीं, ऐसे धर्म की पर्याय में से नई पर्याय नहीं आती वह (अपने) द्रव्यमें से आती है। अतः स्वद्रव्य को द्रव्य कहा, और पर्यायमें से नई पर्याय आती नहीं, परद्रव्यमें से जैसे नहीं आती इसीप्रकार पर्यायमें से (पर्याय) नहीं आती, अतः पर्याय को परद्रव्य कहा, आहाहा ! - ऐसा मार्ग है।***

(श्रोता :- यह बात तो सच्ची परंतु धर्म कैसे हो ?) देखो यह क्या चलता है यह ?

कि धर्मी जो जिनस्वरूपी प्रभु वस्तु ! उसका आश्रय करने पर अर्थात कि इसका ध्यान करने से अर्थात कि इसका लक्ष्य करनेपर जो पर्याय प्रगट हो वह धर्म है। (श्रोता :- परंतु हमारे घर में पर्याय शब्द का प्रयोग ही नहीं होता) पर्याय शब्द का प्रयोग नहीं होता, भगवान के शासन में तो घर में प्रयोग होता है न यहाँ।

(श्रोता :- पैसा को द्रव्य कहा है) पैसा धूल में वहाँ कहाँ ? पैसा में वह परमाणु है, वह नित्य है और उसकी पर्याय अनित्य है। उसे अनित्य से नित्य का निर्णय करना - ऐसा उसमें है नहीं। वह वस्तु है नित्यानित्य, परंतु यह तो नित्यानित्य में, अनित्य नित्य का निर्णय करती है। इसलिये यह अनित्य भी वस्तु है और नित्य भी है। त्रिकाली को सत्य कहें तो पर्याय अपेक्षा असत्य कहने में आये। आहाहाहाहा ! ऐसी वस्तु है क्या हो... वस्तु का स्वरूप ही - ऐसा है, भगवान ने कुछ किया नहीं। जैसा है वैसा जानकर कहा है। आहाहा ! जो सत् हो वह असत् न हो - ऐसा लगे, परंतु त्रिकाली है वह सत् है और एक समय की पर्याय स्थाई रहनेवाली नहीं अतः असत् है। आहाहाहा ! भावार्थ है न ? चौथे श्लोक का ! पाँचवा तो अब आयेगा।

'एक हो वह अनेक न हो' देखो ! - ऐसा लगे परंतु वस्तु अपेक्षा एक है

और पर्याय अपेक्षा अनेक है। आहाहा ! यह अनेक न हो तो एक का निर्णय करे कौन ? आहाहाहा ! पर्याय अनेक है, ज्ञान की दर्शन की आदि अनेक है और यह पर्याय स्वयं भी एक समय की दूसरे समय की (दूसरी) इसप्रकार अनेक है। यह अनेकपना है, वह भी है, वह व्यवहारनय का विषय है और यह अनेक ने एक का निर्णय किया- ऐसा एक है, वह निश्चयनय का विषय है। आहाहा ! ऐसी बातें है बापू ! समझे कुछ ?

(श्रोता :- थोड़ा कठिन लगे) जिसे अभ्यास न हो उसे कठिन तो लगे, परंतु वस्तु तो यह है। वस्तु का स्वरूप है - ऐसा है - ऐसा न हो तो किसी प्रकार सत् और असत् की, द्रव्य और पर्याय की सिद्धि हो सके नहीं। समझे कुछ ? आहाहाहा ! यह त्रिकाल है यह तो है, परंतु त्रिकाल है यह जाननेवाली पर्याय है कि जाननेवाला त्रिकाली द्रव्य है ? आहाहाहा ! त्रिकाली भगवान आत्मा पूर्णानंद का नाथ प्रभु ! जो सम्यग्दर्शन का विषय, परंतु सम्यग्दर्शन है यह अनित्य है कि नित्य है। पर्याय है कि द्रव्य है ? स्थाई रहनेवाली है कि एक समय रहनेवाली है ? आहाहाहा ! समझे कुछ ? यह तो मूलतत्त्व का पता लगाने की बात है भाई ! हाँ आहाहा ! है यह श्लोक वस्तु का है। इसलिये यहाँ यह वस्तु का स्वरूप है। अतः यह दो नय ली है न ? और वह `विरोधध्वंसिनी' - ऐसा कहा न ! जो मूल श्लोक है देखो चौथा। `उभयनय विरोध ध्वंसिनि स्यात्पदांके जिनवचसि रमन्तें' आहाहाहा !

जिनवचन में द्रव्य और पर्याय वस्तु का स्वरूप है - ऐसा जिनवचन में दो नयों का विषय बताया (है)। ऐसे विरोधी है एक त्रिकाली रहनेवाला है, एक-एक समय की पर्याय है। एक अविनाशी है तब एक नाशवान है, इस प्रकार विरोध होने पर भी वस्तु का स्वरूप है। समझे कुछ ? आहाहाहा ! इस पर्याय को अरे ! मोक्ष का मार्ग जो है, यह पर्याय है और उसका विषय है वह द्रव्य त्रिकाली है यह त्रिकाली है तब एकरूप भगवान जिनस्वरूप एकरूप है और जिनस्वरूप का आश्रय लेकर, उसका ध्यान करे उसे ध्येय बनाकर जिसने पर्याय प्रगट की है, ऐसी पर्याय वह वीतरागी पर्याय है, यह वीतरागी पर्याय वह मोक्ष का मार्ग है, यह मोक्ष का मार्ग वह पर्याय है और उसका विषय है वह त्रिकाली ध्रुव है। आहाहाहाहा ! क्या हो ? अभी तो बहुत ज्यादा गड़बड़ हो गई है, अतः यह बात इसे पकड़ना कठिन लगे, हाँ ? आहाहा ! प्रथम तो अभ्यास नहीं करते, उसमें लिखा है। उसने (इतिहासकार) अभी वानियों को व्यापारियों को जैनधर्म हाथ आ गया भाई ! हाँ। आहाहा ! वानियाँ अकेला सारे दिन व्यवसाय धूल (पैसा) यह और वह और यह, विकल्प करते रहते। पर का करे नहीं। आहाहा ! वानियाँ को जैनधर्म मिला। यह जैनधर्म तो अलौकिक

चीज है। आहाहा ! जो इस व्यापार में उलझ गये है, उसे यह (अंदर का) व्यापार हाथ में न आये। आहाहाहा ! समझे कुछ ?

जिनवचन 'विरुद्धध्वंसिनी' दो नयों का विरोध समाप्त कर देता है। क्योंकि दोनों का विषय विरुद्ध होनेपर भी दोनों वस्तु है। आहाहा ! दोनों है एक का विषय पर्याय है, और एक का विषय ध्रुव है, परंतु दोनों है। समझे कुछ ? आहाहा ! यहाँ तो सम्यग्दर्शन को प्रगट करना, यह वीतरागी पर्याय है, वीतरागी पर्याय है, यह वीतरागी मूर्ति प्रभु है। यह वीतरागी स्वरूप के लक्ष्य से और उसमें ध्येय और उसमें एकाग्रता होने पर सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा ! धन्नालालजी ! आहाहाहा ! यह तो सरल भाषा में - ऐसी वस्तु है। लम्बी बातें बहुत हैं, परंतु वस्तु ऐसी है। आहाहा !

इसलिये कहा न ! बहुतबार कहते हैं कि 'जिन सो ही आत्मा, जिन सो ही यह आत्मा अन्य सो ही कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' जो कि श्रीमद् में इसको दूसरी तरह कहा है 'जिन सो हि आत्मा' अन्य सो ही कर्म, कर्म कटे जिनवचन से (यही धर्म का मर्म) - ऐसा आया, परंतु इसका अर्थ यह कि वीतराग मूर्ति प्रभु आत्मा ! त्रिकाल वीतरागस्वरूप ही है, सर्वज्ञस्वरूप ही है, परमात्मस्वरूप ही है, आहाहा ! उसका आश्रय लेनेपर, उसको ध्यान का ध्येय बनाने पर, आहाहा ! उसे वर्तमान ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाने पर आहाहाहा ! जो पर्याय प्रगट होती है वह अनित्य है। कारण कि नहीं थी और हुई न ? और वह (द्रव्य) तो है, है न है। आहाहा ! समझे कुछ ?

कांतिभाई ! उस प्लास्टिक के क्रिस्टिल (पाऊडर) में कुछ हाथ आये - ऐसा नहीं यह। आहाहाहा ! बहुत पैसे पैदा होते हैं इसमें। धूल में पैसा नहीं। वह तो जड़ है पैदा हो तो क्या इसमें ? आहाहा ! इसके पास कहाँ आते है यह ? यह तो मुझे मिले ऐसी ममता आयी उसके पास। यह ममता भी एक पर्याय है, और ममता बिना की चीज है यह त्रिकाली द्रव्य है। आहाहाहा ! समझ में आया ? इसमे *आयेगा। बाद में आयेगा देखो ! 'नित्य हो वह अनित्य न हो' - ऐसा लगे परंतु नित्य है, यह त्रिकाली है और उसका निर्णय करनेवाली पर्याय, यह नित्य है - ऐसा निर्णय करनेवाली पर्याय अनित्य है। यह विरोध है परंतु यह है। समझे कुछ ? आहाहा !*

'भेदरूप वह अभेदरूप न हो' वस्तु अभेद है उसमें पर्याय का भेद है। परंतु - ऐसा जाने अभेद हो, वह भेद न हो परंतु अभेद है यह पर्याय भेद है। यह, जो वस्तु का स्वरूप - ऐसा है। आहाहाहा ! और अभेद वस्तु है त्रिकाली प्रभु ! उसे पर्याय के भेद से उसका निर्णय होता है। अर्थात वीतरागी पर्याय से अभेद का निर्णय होता है, भले वीतरागी हो परंतु है पर्याय, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह

पर्याय है और यह पर्याय भेदरूप है और भेदरूप भी है, और उसका विषय अभेद भी है। - ऐसा लगे कि अभेद और भेद विरोधी है, अभेद हो वह भेद न हो, यह अभेद हो वह भेद न हो। परंतु साथ में दूसरी चीज न हो, यह अभेद हो वह भेद न हो। आहाहाहा ! यह तो भाई पहले तो जानने की बात है। आहाहा ! जिसप्रकार वस्तु स्वरूप है इसप्रकार ज्ञान न हो तब वह अंतर में नहीं झुक सके। आहाहा ! जैसा वस्तु का स्वरूप है, इसीप्रकार ज्ञान न हो, तब यह ज्ञान सत् ही नहीं, जब सच्चा ज्ञान हो, तब द्रव्य को त्रिकाली जाने, पर्याय को क्षणिक जाने। ***जानकर यह सच्चा ज्ञान - ऐसा जाने कि वस्तु त्रिकाल (है) पर्याय अनित्य है। तब उसका त्रिकाली ऊपर (लक्ष्य) जाय, उसका लक्ष्य त्रिकाली ऊपर जाय। आहाहा ! यह लक्ष्य है यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान है।*** आहाहाहा !

यह तो चौथे श्लोक का भावार्थ गंभीर है। है ? शुद्ध हो वह अशुद्ध न हो, त्रिकाली भगवान शुद्ध है वह अशुद्ध न हो परंतु पर्याय में अशुद्ध हो। अशुद्ध पर्याय जो न हो तब उसे वेदन में शुद्धआनंद आना चाहिए। तब पर्याय में जब आनंद का वेदन नहीं कि जो आनंद की पर्याय ध्रुव के आश्रय हो ऐसी नहीं, तब यह पर के लक्ष्य से हो ऐसी अशुद्ध पर्याय है। आहाहा ! यह तो बापू ! थोड़ी निवृत्ति लेकर... हाँ ! आहाहा ! अनंतकाल से इसने एक समय मात्र भी, सम्यग्दर्शन क्या चीज है? प्रगट किया नहीं बापू ! यह चीज कैसी हो भाई ! यह कोई सरलता से प्रगट हो - ऐसी वस्तु नहीं। आहाहा !

यह शास्त्रज्ञान है, यह परलक्षी अनित्य है और स्वरूप का ज्ञान है यह स्वलक्षी, परंतु है ज्ञान अनित्य। सम्यग्ज्ञान है यह अनित्य है, यह पर्याय। आहाहा ! और वस्तु है, यह शुद्ध है। वस्तु है, यह वस्तु है वह अपूर्ण न हो, अशुद्ध न हो, आवरण न हो, विकृत न हो, वस्तु है यह वस्तु पवित्रता का पिण्ड प्रभु है, परंतु इसका जिसे लक्ष्य नहीं। इसका जिसने अनादि से आश्रय नहीं (लिया) इसलिये उसे परद्रव्य का आश्रय है, पर्याय में। (परका) आश्रय है अतः वहाँ अशुद्धता होती है। यह अशुद्धता भी है, पर्याय में अशुद्धता है। वस्तु शुद्ध है। आहाहा !

(श्रोता :- क्षणभर में शुद्ध क्षणभर में अशुद्ध) क्षणभर में और क्षणभर में किसे, उसे न उसे अशुद्ध कहाँ कहा ? जिसे शुद्ध कहा उसे अशुद्ध कहाँ कहा ? शुद्ध है वह तो शुद्ध ही है, परन्तु उसके आश्रय से जैसी पर्याय होना चाहिए, वह नहीं हैं, `अर्थात शुद्ध नहीं। इसलिये वह पर के आश्रय से अशुद्ध है। यह वस्तु का स्वरूप है। आहाहाहाहा ! कहो देवीलालजी ! यह तो लौजिक से बात चलती है। आहाहाहा ! प्रभु का मार्ग है वीरो का, ये कायर का वहाँ काम नहीं बापा ! आहाहाहा ! शुद्ध

हो वह अशुद्ध न हो - ऐसा विरोध दिखे इत्यादि, (दोनों) नयों के विषय में विरोध है। जिनवचन कथंचित विवक्षा से किसी अपेक्षा से, विवक्षा अर्थात किसी अपेक्षा से ? किसी अपेक्षा से सत् किसी अपेक्षा से असत् ? त्रिकाली की अपेक्षा से यह नित्य, वर्तमान की अपेक्षा अनित्य। त्रिकाली की अपेक्षा शुद्ध, वर्तमान की अपेक्षा से अशुद्ध। - ऐसा अनादि से है। - ऐसा सत् असत्रूप, एक अनेकरूप, नित्य-अनित्यरूप, भेद-अभेदरूप, शुद्ध अशुद्धरूप, जिसप्रकार विद्यमानवस्तु है, फिर इसप्रकार। वस्तु यह विद्यमान है, और उसकी पर्याय भी विद्यमान है। व्यवहारनय का विषय है कि नहीं ? नय है ज्ञान का अंश तब उसका विषय विद्यमान है कि नहीं। पर्याय के रूप में विद्यमान है। द्रव्य अपेक्षा विद्यमान द्रव्य है।

कठिन बात है बापू ! मार्ग - ऐसा है कोई, अभी तो क्रिया-काण्ड के कारण कुछ सूझता नहीं। व्रत पालो और भक्ति करो और यह करो एवं वह करो न यह सभी अशुद्ध विकारी भाव, जो पर के लक्ष्य से होता है, यह व्यवहारनय का विषय है। जिसे निश्चय का विषय जब प्रगटा नहीं तब उसे व्यवहारनय का विषय भी (उसे) नहीं। यह तो एकांत अज्ञान है। आहाहाहा ! क्या कहा यह ? कि पराश्रित जितना व्रत, नियम, भक्ति, पूजा आदि का भाव जो राग है और यह सभी परलक्षी, यह दशा परदिशा तरफ झुकनेवाली दशा है। तब आत्मा जो है वह त्रिकाली शुद्ध है उस तरफ झुकनेवाली जो दशा हो तब तो यह शुद्ध हो, तब उसकी ओर झुकाववाली दशा नहीं तो तब पर के लक्ष्यवाली पर दिशा तरफ परणति ढलती है, ऐसी अशुद्धता की सत्ता है। धन्नालालजी ! मोहनलालजी ! पकड़ में आये - ऐसा है धीरे धीरे हाँ ! व्यापारी व्यापार में ऐसे उलझ गये और यह पूरा मार्ग कोई (अलग)... आहाहा !

जिसप्रकार विद्यमान वस्तु है, देखो ! त्रिकाली अपेक्षा नित्य, विद्यमान है, पर्याय अपेक्षा अनित्य विद्यमान है। त्रिकाली अपेक्षा शुद्ध विद्यमान है, पर्याय अपेक्षा अशुद्ध विद्यमान है, अशुद्ध है। अशुद्धता न हो तो उसे आनंद की दशा का वेदन होना चाहिए, वह नहीं, तब इसे दुःख का वेदन है, अशुद्धता का, यह भी है। आहाहा ! (श्रोता :- पैसा कमाते है इसमें कहीं दुःख का वेदन नहीं।) कमाने का भाव ही दुःख है। आहाहा ! यह गिनने का भाव ही दुःख है, कि यह पच्चीस लाख मिले और दश लाख मिले और धूल मिली न ! यह तो पाप ही है। आहाहाहा ! परंतु यह है, पाप ही है गिनो तो यह। आहाहाहा ! परलक्षी के भाव ही करते रहते हीं बहुधा तो, २२ घण्टे, २३ घण्टे। आहाहा !

सत् समागम में और सत्शास्त्रों के पढ़ने परिचय में आये दो-चार घण्टे तो वहाँ शुभभाव हो, धर्म बाद में। परंतु शुभ भी है अशुभ भी है। इसप्रकार विद्यमान है उसका

विषय बताया है, ज्ञान कराया है। आहाहाहा ! इसप्रकार... जिसप्रकार विद्यमान वस्तु है यह सर्वज्ञ के अलावा, वीतराग के अतिरिक्त यह वस्तु कहीं हो सके नहीं। समझे कुछ ? क्योंकि वीतराग ने वीतरागी पर्याय प्रगट की। वह वीतरागी द्रव्य के आश्रय से, यह दो वस्तु उसे उसके ज्ञान में आयीं और जैसा आया वैसा उनके कथन में (आया) कहा, आहा ! वाणी में आया। यह वाणी में आई ऐसी यह विद्यमानवस्तु और जो है इसप्रकार, उसे बताया। आहाहा ! समझे कुछ ?

... कहकर विरोध मिटा देती है, देखा ! जिसप्रकार विद्यमान... त्रिकाली अपेक्षा त्रिकाल विद्यमान है, पर्याय अपेक्षा पर्याय भी विद्यमान है। है न ? व्यवहारनय का विषय है कि विषय नहीं ? तब नय किसकी ? आहाहाहा ! पर्याय भी व्यवहार नय का विषय है, और त्रिकाल निश्चयनय का विषय है। यह विरोध होने पर भी दोनो अपेक्षायें है। आहाहा ! एक व्यक्ति को धर्म करना है, तब उसका अर्थ यह हुआ कि उसकी पर्याय में अधर्म है। द्रव्य में कहाँ है ? तब उसे पलटना है न ! इस पलटनेवाली अवस्था में अधर्म है न ? जो पलटती दशा में अधर्म न हो तब तो धर्म होना चाहिए। तब उसे धर्म करना यह रहता नहीं। आहाहा !

मुझे धर्म करना है इस शब्द में तीन ध्वनि (प्रश्न) उठे। एक तो वर्तमान (में) अधर्म है, उसे हटाकर धर्म उसकी दशा में लाना है दो, और धर्म लाना है उसका आश्रय वस्तु द्रव्य है। आहाहा ! धर्म की पर्याय का आश्रय (दाता) परद्रव्य नहीं। समझे कुछ ? आहाहाहा ! धर्म की पर्याय का आश्रय द्रव्य है ? क्योंकि धर्म जो वीतरागी पर्याय है, धर्म यह वीतरागी पर्याय है, मोक्षमार्ग यह वीतरागी पर्याय है। यह वीतरागस्वरूप जो त्रिकाली है उसके आश्रय से होती है। अर्थात दोनों सिद्ध हो गये। त्रिकाली जिनस्वरूप भी है और उसके आश्रय से हुई पर्याय... आहाहाहा ! यह भी है (वह भी है) दोनों विद्यमान है। इसलिये वर्तमान पर्याय के विषय को व्यवहार कहा, (है) (और) त्रिकाली को विषय बनानेवाला, उसे निश्चय कहा, दोनों वस्तु है।

वेदांत अकेले द्रव्य को मानें, परंतु वह द्रव्य है और दुःख से मुक्त हो - ऐसा जो कहा कि भाई एकरूप है - ऐसा निर्णय करो ! परंतु एकरूप है नहीं - ऐसा निर्णय तो है। तब उस पर्याय में द्वैतपना भी आ गया और एकरूप (का) निर्णय करने जाता है। अनेकरूप माना था यह दूर किया और एक हूँ - ऐसा (निर्णय) यह तो पर्याय में आया हाँ ? हटाना और होना यह तो पर्याय में आता है हटाना और होना यह ध्रुव में नहीं होता, आहाहा ! इसलिए - ऐसा कहते हैं... भगवान जिनवचन जिसप्रकार है उस प्रकार कहते हैं, क्या कहा ? जिनवचन पहले कहा न ! वहाँ जिनवचन कथंचित किसी अपेक्षा से, कहकर विरोध मिटा देते हैं। आहाहा !

बापू यह तो समयसार है। आहा ! हाँ ? यह तो अभी शुरूआत की बात है। आहाहाहा ! और - ऐसा द्रव्य और पर्याय, एवं शुद्ध और पर्याय अशुद्ध, एवं द्रव्य शुद्ध और फिर पर्याय भी शुद्ध - ऐसा कहाँ है ? (जिनवचन में है) समझ में आया ? आहाहा !

और वह द्रव्य जो शुद्ध है, त्रिकाली भगवान है, उसका लक्ष्य करता है, तब उसे शुद्धपर्याय प्रगट होती है। यह प्रगट हुई है यह पर्याय है। प्रगट होना जिसमें नहीं यह तो ध्रुव त्रिकाली है। जयसुखभाई ! - ऐसा सूक्ष्म है बापू ! आहाहा ! वकीलात में सभी बेकार है वहाँ। यह तो वीतरागी वकालात है है बापा ! इसके नियम और इसके कायदे। आहाहा ! जिनवचन `कथंचित्' विवक्षा त्रिकाली की अपेक्षा नित्य है, वर्तमान की अपेक्षा अनित्य है - ऐसा कहने से विरोध मिट जाता है। समझे कुछ ?

इसमें तो भाई दिमाग को चलाना चाहिए। यह तो वीतरागसर्वज्ञ परमेश्वर जैन परमेश्वर का जैनधर्म, यह जैन धर्म अर्थात क्या ? जो जिनस्वरूप त्रिकाल है भगवान, उसके आश्रय से हुई दशा वह जैनधर्म... और पर के लक्ष्य से हुआ वह अधर्म चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति हो, परंतु है तो यह अधर्म, क्योंकि स्व चैतन्यभगवान वीतरागमूर्ति प्रभु उसके आश्रय से तो जो दशा हुई नहीं। यह तो व्रत एवं तप तथा भक्ति और पूजा एवं ब्रह्मचर्य हम शरीर से ब्रह्मचर्य पालते है। अरे ! शरीर अर्थात जड़ आहा ! इससे ब्रह्मचर्य पालना अर्थात क्या ? यह तो विकल्प है, शुभराग है। आहाहा ! (श्रोता :- ब्रह्मचर्य किसे कहना ?) ब्रह्म अर्थात आत्मा आनंद का नाथ उसमें लीनता अर्थात रमना उसका नाम ब्रह्मचर्य है।

उसमें आया था कल नहीं ? अनुभूति वह जैनधर्म है। और (आत्म) अनुशासन, उसमें यह आया था भाई ! अनुशासन अर्थात कि इसमें रमना। आहाहा ! आनंद स्वरूप को दृष्टि में लिया है उसमें रमना, यह संयम है। आहाहाहा ! यह संयम भी पर्याय है। आहाहा ! क्योंकि नईदशा प्रगटी है, प्रगटे वह गुण न हो, द्रव्य न हो, द्रव्य और गुण तो त्रिकाल रहते है। आहाहा ! बदले नाश हो और उपजे यह तो पर्याय में होता है, आहाहा ! इसलिये केवलज्ञान भी उत्पन्न होता है यह पर्याय है। आहाहा ! यह जिनवचन... आहाहा !

किसी अपेक्षा कहने से त्रिकाल को नित्य कहा और पर्याय को अनित्य कहा, त्रिकाल को शुद्ध कहा पर्याय को अशुद्ध कहा। इस अपेक्षा दो नयों का विषय विरुद्ध होने पर भी (विरोध) मिटा देता है। - ऐसा होता है, इसप्रकार होता है। झूठी कल्पना करता नहीं। वीतरागी वाणी कहीं कल्पना से हुई नहीं, यह तो सत् है इसप्रकार वाणी आयी है। आहाहा !

जिनवचन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दो नयों में द्रव्यार्थिक अर्थात त्रिकाली द्रव्य,

उसे जाननेवाला नय और पर्याय अर्थात वर्तमान अवस्था को जाननेवाला नय और पर्यायार्थिक, दोनों नयों में प्रयोजनवश, आवश्यकता के कारण अपने लाभ के कारण, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके... आहाहा ! अपना प्रयोजन सुख का है। इस सुख की प्राप्ति के कारण शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके वह है - ऐसा कहा है। आहाहा ! समझे कुछ ? आत्मा का प्रयोजन तो सुखी होने का है न ? सुखी होने के प्रयोजन के लिये शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके उसे निश्चय कहा, वह है वह सत् है - ऐसा कहा... और अशुद्ध द्रव्यार्थिकरूप। अर्थात क्या ? ***अशुद्ध है वह व्यवहार का विषय यह पर्यायार्थिक, परतुं यह द्रव्य स्वयं पर्यायरूप (से) अशुद्धरूप परिणमा है। पर्यायरूप हाँ, इसलिए अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहा। कर्म के कारण नहीं, पर के कारण नहीं। यह द्रव्य स्वयं पर्याय में अशुद्धरूप परिणमा है। यह पर्याय में हाँ ! द्रव्य स्वयं अशुद्ध होता नहीं। आहाहा ! यह द्रव्य स्वयं पर्याय में अशुद्धरूप... अशुद्ध द्रव्यार्थिकरूप उसे कहा। विकाररूप परिणमता है जो पर्याय उसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहा अर्थात जो द्रव्य है उसकी यह पर्याय है। परंतु यह अशुद्ध है। इसलिए उसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहा, यह अशुद्ध द्रव्यार्थिक स्वयं पर्याय है। आहाहा !***

इस पर्यायार्थिक नय को गौण करके नहीं - ऐसा नहीं, परंतु इसे गौण करके, और त्रिकाली को निश्चय को मुख्य करके और उस (पर्याय को) व्यवहार कहते हैं। आहाहाहा ! पर्याय मात्र होनेपर भी, अशुद्धता होनेपर भी, उसे गौण करके व्यवहार कहते हैं। और त्रिकाली को मुख्य करके निश्चय कहते हैं, त्रिकाली को मुख्य करके पर्याय को `नहीं' - ऐसा कहते नहीं... गौण करके नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझे कुछ ?

अब ऐसी फुरसत कहाँ, इसमें लेना ? बहनों को सारे दिन धंधा, पकाना (रसोई) सूपा से साफ करना और पापड़ करना, क्या कहलाये बड़ी, और बालबच्चों को सम्हालना, स्कूल जाने के पहले उन्हें बनाकर खिलाना (पहले) अन्यथा समय हो जाय, आहाहा ! अरेरे ! ऐसे समय में यह कहाँ निर्णय करना - ऐसा सभी। और समय तो चला जाता है प्रभु ! आहाहा !

ऐसे जिनवचन में जो पुरुष रमन करते (है) ऐसे अर्थात ? व्यवहारनय को गौण करके और द्रव्य को मुख्य करके, द्रव्य में जो रमते हैं। - ऐसा कहने का आशय है। इसका अर्थ - ऐसा करते है कि दोनों नयों में रमण करना, जिनवचसि जिनवचन में दो नय कहे है। परंतु दो नय में एकनय को गौण करके और एकनय को मुख्य करके उसमें रमना है। समझे कुछ ? आहाहा ! क्योंकि रमना है यह तो पर्याय है, जिसमें रमना है यह द्रव्य है समझे, कुछ ? इसलिये वह पर्याय का...

पर्याय पर से लक्ष्य छुड़ाने, पर्याय को गौण करके व्यवहार कहा और त्रिकाली को मुख्य करके निश्चय कहा। - ऐसा त्रिकाली जो आत्मा ध्रुव नित्यानंद प्रभु यह जिनवचन में उपादेयरूप कहा है। कलश टीका में है, `जिनवचसिरमन्ते' इसका अर्थ यह किया है - यह जिनवचन में त्रिकाली द्रव्य उपादेय कहा है। धन्नालालजी !

(श्रोता :- दोनों नयों को न छोड़ना चाहिए - ऐसा भी कहा है न ?) नय है न ? नहीं ? है इसलिए छोड़ना नहीं चाहिए। गुणस्थान भेद नहीं ? समकित ज्ञानादिक भेद है कि नहीं ? है इसलिए छोड़ना नहीं चाहिए, नहीं - ऐसा नहीं। परंतु है अतः आश्रय करने लायक है - ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसे जिनवचन में जो... अर्थात कि, जो द्रव्यार्थिक को मुख्य करके कहा, ऐसे जिनवचन में जो आया - ऐसा नित्यानंद प्रभु में जो रमण करता (है) आहाहाहा ! सहजात्म स्वरूप सहजरूप से पलटती अवस्था भी जहाँ नहीं - ऐसा सहजात्मस्वरूप। शुद्ध जिनबिम्ब प्रभु ! यही उपादेय है - ऐसा जिनवचन में कहा है। आदरणीय और सत्कार करने जैसा हो ग्रहण करने जैसा हो, तो यह शुद्ध त्रिकाली द्रव्य है। आहाहाहा ! समझे कुछ ?

बात सूक्ष्म निकालना और फिर समझे कुछ कहना... परंतु मार्ग तो - ऐसा है बापा भाई ! अभी तो बिखर गया है। आहाहा ! अभी तो व्रत, तप, भक्ति, पूजा और उपवास एवं परिषह सहन करो इन सभी से कल्याण होगा तुम्हारा। आहाहा ! यह सहन करते हैं यह कहाँ रुंधा हुआ क्रोध है न `बहिन' ने लिखा ? कठिन काम भाई ! यह किसी व्यक्तिगत कुछ नहीं, अपन को तो सत्यरूप वस्तु क्या... व्यक्ति की जिम्मेदारी तो स्वयं की है, उल्टे परिणाम का फल तो उसे वेदना (भोगना) है न ? दूसरा क्या है ? आहाहा ! किसी के प्रति विरोध नहीं, आनादर नहीं, तिरस्कार नहीं, वह प्रभु हैं। भगवान ! अरे रे ! उसे विरोध करने के भाव में... विरोध (में) दुःख का फल आयेगा बापू ! आहाहा ! उसके प्रति अनादर नहीं करना चाहिए। करुणा लाना चाहिए। आहाहाहा !

यहाँ तो प्रभु - ऐसा कहते हैं कि जिनवचन में - ऐसा जिनवचन कैसा ? कि मुख्य को निश्चय कहें और पर्याय को गौण करके व्यवहार कहा, ऐसे जिनवचन में अर्थात ऐसी मुख्य वस्तु है उसमें रमते (है)। गौण करके व्यवहार कहा न, व्यवहार छोड़ने लायक है। आहाहाहा ! समझे कुछ ? कांतिभाई ! इसमें कहाँ फुरसत मिले ? ऐसी बात को। आहाहा ! अरे रे ! उसे करने जैसा प्रभु ? दूसरे माने न मानें समझे... इसके साथ कुछ संबंध नहीं।

स्वयं भगवान ! पूर्णानंद का नाथ जिनस्वरूपी ! उसका आश्रय कराना उसे मुख्य करके वही है - ऐसा कहा। उसे मुख्य करके वही है - ऐसा कहा और

पर्याय है उसे गौण करके वह नहीं - ऐसा कहा। आहाहाहा ! समझे कुछ ? ऐसे पुरुष इस शुद्धात्मा को यथार्थ प्राप्त करते हैं। आहाहा !

वास्तव में तो जो शुद्धपर्याय सम्यग्दर्शन है, वह स्व के लक्ष्यसे होता है। फिर भी वह द्रव्य से होता नहीं, पर्याय से पर्याय होती है। समझे कुछ ? जो समकित का उत्पाद हुआ इस उत्पाद को ध्रुव का भी आश्रय नहीं, उत्पाद को व्यय का आश्रय नहीं, उसे ध्रुव का आश्रय नहीं, यह तो स्वतंत्र उत्पाद हुआ है। आहाहा ! समझे कुछ ? क्योंकि शास्त्र में तो - ऐसा कहा १०१ गाथा प्रवचनसार, उत्पाद को ध्रुव का आश्रय नहीं उत्पाद को व्यय का अवलम्बन नहीं, कि व्यय हो अतः उत्पाद होता है, ध्रुव है अतः उत्पाद होता है। आहाहाहाहा ! पर्याय भी... सम्यग्दर्शन ज्ञान यह पर्याय है और उत्पादरूप है और वह सत् है। यह सत् का इतना फर्क कि इस पर्याय का लक्ष्य इस तरफ जाता है इतना, परंतु उसे द्रव्य का आश्रय मिला अतः पर्याय हुई - ऐसा नहीं।

(श्रोता :- बहुत कठिन लगेगा यह।) हाँ ? वस्तु स्थिति gfतो ऐसी है। आहाहा ! दूसरा क्या करें ?

अनादि का अभ्यास नहीं, और यह अभ्यास राग और द्वेष एवं आहाहा ! पुण्य-पाप का, पर का अभ्यास है नहीं, पर का तो कर सकते नहीं, विकार का अभ्यास है अनादि से शुभ और अशुभ भाव का, और वह भी शुभाशुभ पर्याय परंतु उसे अपने समय उत्पन्न होने में जिसे कर्म की अपेक्षा नहीं, ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहाहा ! कठिन लगता था, अभी तो बड़ा-बड़ा पण्डित चक्कर खाते हैं। नहीं, विकारी पर्याय कर्म के कारण होती है। अन्यथा स्वभाव हो जायेगा। ***भाई पर्याय का उस प्रकार का उस समय की उत्पत्ति का काल है उस समय होता है। आहाहाहा ! जिसकी पर्याय विकारी है मिथ्यात्व की, उसे द्रव्य का आश्रय नहीं, उसे पूर्व पर्याय का आश्रय नहीं। उसी प्रकार निमित्त का आश्रय नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा वस्तु का स्वरूप ही इस प्रकार है। इसप्रकार न जाने वह विपरीत दृष्टि है। समझे कुछ ?***

जो कोई जिनवचन अर्थात आत्मा में रमता है, अर्थात कि त्रिकाली ज्ञायक स्वरूप भगवान, उसके तरफ जिसका लक्ष्य जाता है। बस ! इतना फर्क। वह शुद्धात्मा को यथार्थ पाते हैं। आहाहा ! वह शुद्धात्मा को जैसा है उसप्रकार पाते हैं।

विशेष कहेंगे...

- प्रमाण वचन गुरुदेव !

मैं परमात्मा हूँ - ऐसा नक्की कर!

मैं परमात्मा हूँ - ऐसा निर्णय कर!

मैं परमात्मा हूँ - ऐसा ऐसा अनुभव कर!

- पूज्य गुरुदेवश्री